

# भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

६

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,  
साहित्य, पुराण आदिका यथा सम्भव  
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रथाङ्क १-३

प्राप्तिस्थान

मैनेजर

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय, नया ससार प्रेस, काशी ।

Sri Dig Jain Sangha Granthmala No. 1-III

# KASĀYA-PĀHUDAM

III

(THIDI VIHATTI)

BY

**GUNABHADRACHARYA**

WITH

**CHURNI SUTRA OF YATIVASHABDHACHARYA**

AND

**THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF**

**VIRASENACHARYA THERE-UPON**

EDITED BY

**Pandit Phulachandra Siddhantashastri**

*EDITEOR MAHABANDHA*

*JOINT EDITOR DHAVALA,*

**Pandit Kailashchandra, Siddhantashastri**

*Nyayatirtha Siddhantarajna*

*Pradhasadhyaapak Syadvada Digambara Jain*

*Vidyalyaya, Benaras.*

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT

**THE ALL INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA**

**CHAURASI, MATHURA**

VIRA SAMVAT 2481 ] VIKRAMA B. 2012

[ 1955 A. C.

# Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—]

[—Vira Niravan Samvat 2468

*Aim of the Series —*

**Publication of Digambara Jain Siddhanta,  
Darsana, Purana, Sahitya and other Works  
in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi  
Commentary and Translation.**

*DIRECTOR —*

**SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA**

**NO. 1. VOL. III.**

*To be had from —*

**THE MANAGER  
SRI DIG. JAIN SANGHA.  
CHAURASI, MATHURA,  
U P (INDIA)**

*Printed by—S N UPADHYAYA,  
AT THE NAYA SANSAR PRESS, BANARAS*

**800Copies,**

**Price Rs Twelve only**

## प्रकाशककी ओर से

आज साठ वर्षके पहचान् कसावपाहुड ( वयवपला ) के तीसरे भाग ( स्थिति विमर्श ) को प्रकाशित करते हुए हमें जहाँ हुए हैं वहाँ अपन पर लेख भी है । दूसरा भाग प्रकाशित करते समय ही बहुत कागज दुष्प्राप्य था और प्रस सम्बन्धी कठिनाइयों भी थीं । उसके पहचान् भाष्यिक कठिनाई भी उपस्थित होगी और प्रयास करनेपर भी द्वयार्थका कार्य प्रारम्भ न हो सका ।

इसी बीचमें संवत् प्रयात्तमर्त्री पं० रामेन्द्रकुमारजीने प्रधानमंत्रित्वके कार्य-कारसे मुक्ति ले ली और पं० जगमोहनसाहजी शास्त्रीको प्रधानमंत्रित्वका भार सौंपा गया । आपके कार्यकालमें कुण्डलपुर ( मध्यप्रदेश ) में संवत्त भाषिक अधिवेशन हुआ और हमका समापतिपत्र बोंगरगढ़ ( मध्यप्रदेश ) के प्रसिद्ध ज्ञानरत्ना दानवीर सेठ मागचन्द्रजीने सुरोभित किया ।

उस अवसर पर आपन कसावपाहुड ( वयवपला ) के प्रकाशकको पत्र रखनेके लिये म्याह्र हजार रुपयोंके दानकी वृद्धा धारणा की और यह भी आश्वासन दिया कि द्रव्यकी कमीके कारण यह सत्कार्य बन्द नहीं होगा । इससे समीका हर्ष हुआ और कागज तथा प्रेसकी व्यवस्था होते ही तीसरा भाग प्रेसमें द दिया गया जो एक वर्षके पहचान् प्रकाशित हो रहा है । तथा चौथे भागके भी कुछ कार्य हुए चुके हैं और पाँचवें भाग भी प्रेसमें दिया जानेवाला है ।

यह सब दानवीर सेठ मागचन्द्रजीकी वृद्धा दानवीरताका ही सुफल है । उन्होंने अपनी संपत्तिकी विनियोग उसे सत्कार्यमें करके धनिकों और दानियों के समुदाय एक आदर्श उपस्थित करनेके साथ साथ अक्षय पुण्यसाम लिया है । क्योंकि शास्त्रकारोंमें क्या है—

ये यजन्त भूतं मन्त्रया तं यजन्तेऽञ्जसा जिनम् ।

न किञ्चिदन्तरं प्राहुरासा हि भुतदेवयोः ॥

‘जा मच्छिपूर्वकं भूतकी पूजा करत हैं वे स्यायसे जिनदेवकी ही पूजा करते हैं क्योंकि सर्वज्ञ-देवने भूत और जिनदेवमें कुछ भी भेद नहीं बतलाया है ।’

अतः कसावपाहुड जैसे प्रन्वराजके प्रकाशकमें द्रव्यका विनियोग करके सेठ मागचन्द्रजीने प्रकाशकके गद्दरव महोत्सवको ही सन्मभ किया है, क्योंकि जिनविन्द प्रतिष्ठासे जिनवाणी प्रतिष्ठा किसी भी प्रकारमें कम नहीं है ।

हम सेठ मागचन्द्रजीको उनकी इस उदारताके लिय शतराः अभ्यवाह देते हैं और आशा करते हैं कि अब यह सत्कार्य अक्षय ही निर्धिप्त पूर्ण होगा ।

इस भागके अनुवादादि समस्त कार्य पं० पूरुषचन्द्रजी सिद्धान्तराक्षीने निष्पन्न किये हैं । मूल व अनुवाह आदिका संशोधन व पाठ मिलान आदि कार्यमें मैंने भी पंडितजीके साथ सहयोग किया है । पण्डितजी आगेके खण्डोंका भी सब कार्य बड़ी तत्परतासे कर रहे हैं । कुछ धनमें भी उनकी प्रेरणा विशेषतः रही है । इसलिये व भी अभ्यवाहके पात्र हैं ।

इस भागमें स्थितिविमर्श नामक अधिकार आया है, वा अपूर्ण है, वह चौथे भागमें पूर्ण होगा । इसलिये उसके सन्वत्तमें संपादकीय कछम्ब बरौह चौथे अधिकारमें दिया जायेगा ।

कार्यमें गजराज पर स्थित स्व० बाबू जेरीलालजीके जिनमन्त्रिके नीचेके भागमें वयवपला कार्यालय अपन कामकारसे ही स्थित है । और वह स्व० बाबू सा के सुपुत्र धर्मधेमी बाबू गंधारवासीजी और पौत्र वा सलिंगराजजी तथा अफनचन्द्रजीके सौत्रम्य और धर्मधेयका परिचायक हैं, अतः मैं उन सज्जनोंका भी आभारी हूँ ।



संहारनपुरके स्व० लाला जम्बूप्रसादजीके सुपुत्र रायसाहिव लाला प्रद्युम्नकुमारजीने अपने जिन-मन्दिरजीकी श्री जयधवलजीकी प्रति मिलानके लिये प्रदान की । श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी-के अकलङ्क सरस्वती भवनके ग्रन्थोंका उपयोग विद्यालयके व्यवस्थापकोंके मौज्जन्मसे जयधवलके सम्पादनमें हो सका है । तथा जैन सिद्धान्त भवन आराके पुस्तकाध्यक्ष श्री प० नैमिचन्द्रजी ज्योति-पाचार्यके सौहार्दसे भवनसे सिद्धान्त ग्रन्थोंकी प्रतिया आदि प्राप्त होती रहती हैं, अतः उक्त सभी सज्जनोंका भी मैं आभारी हूँ ।

नया ससार प्रेसके व्यवस्थापक प० शिवनारायणजी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने इस ग्रन्थके मुद्रण में पूर्ण सहयोग दिया ।

जयधवला कार्यालय  
भदौनी, काशी  
भाद्रपद कृष्णा १  
वी० नि० सं० २४८१

}

कैलाशचन्द्र शास्त्री  
मन्त्री साहित्य विभाग  
भा० दि० जैनसंघ





## चित्र परिचय

देरी बोलीमें 'माम्म को 'माग' कहत है और जिनका माग सपानने योग्य होता है उन्हें मागचन्द्र कहत है। बोंगरगढ़निवासी दानधीर सेठ मागचन्द्रजी पेसे ही ब्यक्तियोंमेंसे एक है। यह इसलिये नहीं कि वे आधुनिक साख्तसत्राबाज मन्दर मन्त्रन्में रहते हैं उनके यहाँ निरंतर दस-पाँच नौकर लगे रहते हैं और बहाँकी परिस्थितिके अनुरूप व साधनसम्पन्न हैं वरिष्ठ इसलिये कि उन्हें पुणने और मये जो भी साधन मिले हैं अपनी परिस्थितिके अनुरूप व उनका उपयोग लोकसेवा व सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंमें करना जानत है।

लगभग इस वर्ष पूर्व सेठ सा० से हमारी प्रथम भेट हुई थी। उस समय व मोटर अपपातसे पीड़ित हो अस्पतालमें पड़ हुए थे। सेठ सा०का छाती व सिरमें मुड़ी चोट आई थी, इसलिये उनके बर्से-कार्य कई परिचारक परिचर्यामें लगे हुए थे डाक्टर कुन्सी बाज़कर सिरछाने बैठा हुआ था और दस-पाँच नाथ रिश्तेदार व मित्र दौड़पूप कर रहे थे। किसीको मिलन नहीं दिया जाता था। बात भीत करना तो बुरकी वान थी। हम कंबल बुरसे देखनेभरका अवसर मिला था। हम चाहते भी नहीं व कि पमी परिस्थितिमें उनसे किसी प्रकारकी बातचीत की जाय। किन्तु उनकी सतर्क भावोंने हमें पहिचान लिया और डाक्टरके साथ मना करनपर भी वे योलनसे अपने आपको स रोक सके। पासमें जुलाकर कहने लगे—'पण्डितजी आप आगब, अच्छा हुआ। हमारी सेवा स्वीकार किये बिना आप जा नहीं सक्ते। सिर्फ़ दो दिन रुठें। इतनेमें ही हम इस लाबक हो जावेंगे कि आपसे बन्द भिन्न बातचीत कर सठें और आपक मुखसे भर्मके दो शब्द सुन सकें ?'

सेठ सा० एक भावनाप्रधान उसही व्यापारपुत्रात्त ब्यक्ति हैं। वे किसी विद्वान स्वामी या अधिविधिमें अपने पर आया हुआ देखकर सिल छठे हैं और सपत्नीक हर तरहसे क्लृप्ता आचर-स्तकार करनेमें जुन जात हैं। कमी कमी तो पता भी देखा गया है कि वे इस भावमगठमें लगे रहनेके कारण उस दिन करने योग्य अन्य आवश्यक कार्योंको भी भूल जाते हैं। इस कारण उन्हें काफी झूठि भी पठानी पड़ती है।

सेठ सा० की मुख्य रुचिअ विषय शिक्षा है। संस्कृत शिक्षा और ज्ञानरूपि पर गुन और प्रभाराहूपमें आप निरन्तर लक्ष करते रहते हैं। रामदेव गुरुकुलसे आप प्रभान आलम्बन हैं। एक मात्र इसीकी सेवाके उत्तरवर्गमें समाज द्वारा आप 'दानधीर' पदसे सम्सूत किये गये हैं। आप अपने गौर्भमें एक हाइस्कूल जोसना चाहते थे। किन्तु हमारे यह करने पर कि इस शिक्षापर लक्ष करनेवाले व्युत हैं आपको सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंकी ओर ही मुख्य रूपसे ध्यान देना चाहिये सेठ सा० ने यह विचार त्याग दिया है।

इपर आपका ध्यान साहित्यिक सेवाकी ओर भी गया है। श्री ग कर्षी जैन ग्रंथमालाको आप निरंतर सहायता करते रहते हैं। इस लय भी बोंगरगढ़ जाते हैं, काही दान नहीं झीन्ते। यह भी नहीं कि इमें भौंगना पड़ता हो। बलपे समय हजार-पाँचसौ जो भी देना होता है, स्नेहसे उपस्थित कर देत हैं। यह पूछने पर कि इसे किस मर्गमें लक्ष किया जाय एक मात्र यही उत्तर मिसता है कि आपकी इच्छा।

श्री भारतवर्षीय विद्यारत्न जैनसंघ एक पुरानी संस्था है। मुख्यरूपसे इसके सहायक विद्वाह हैं। अब तक इस संस्थामे साहित्यसेवा और धर्मप्रचारके क्षेत्रमें जो सेवा की है और कर रही है यह किसीके झिपी हुई नहीं है। शास्त्रार्थिक व दिन हमें आज भी याद आते हैं जब आर्त्तसमाजका

जोर था और जैनियोंको शास्त्रार्थके लिये सार्वजनिक रूपसे ललकारा जाता था। उस समय यही एक ऐसी सस्था थी जिसने आर्यसमाजियोंसे न केवल टक्कर ली, अपि तु अपने प्रचार और शास्त्रार्थके बलपर उनका सदाके लिये मुँह बन्द कर दिया और बल तोड़ दिया। ऐसी प्रसिद्ध सस्थाके वर्तमान स्थायी अध्यक्ष सेठ सा० ही हैं। आप इस पदका बड़ी सुन्दरतासे निर्वाह कर रहे हैं। इसके साथ आप श्री जयधवलजीके प्रकाशनका भार भी सम्हाल रहे हैं। उसीके परिणामस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें आपकी जो विशेषता है वह राजनैतिक और सार्वजनिक क्षेत्रमें भी देखनेको मिलती है। आप अपने क्षेत्रमें इतने अधिक लोकप्रिय हैं कि गरीब अमीर सभी आपकी सलाह लेने तथा उचित सहायता प्राप्त करनेके लिये आपके पास आते रहते हैं। कई वर्ष पूर्व आपकी इस लोकप्रियता और परोपकारी स्वभावके कारण आप खैरागढ़ राज्य और जनता द्वारा 'राज्यरत्न' जैसी सम्मानित उपाधिसे विभूषित किये गये थे। जनता और सरकारमें आज भी आपका बड़ी सम्मान है।

सयोगवश आपको जीवनसाथी भी आपके अनुरूप ही मिला है। वहिन नर्मदावाई अपने ढंगकी एक ही महिलारत्न हैं। इनकी टक्करकी बहुत ही कम महिलाएँ समाजमें देखनेको मिलेंगी। आपके मुखपर प्रसन्नता और बोलीमें मिठास है। समय निकालकर धर्मशास्त्रके स्वाध्यायद्वारा आत्म-कल्याणमें लगे रहना आपका दैनंदिनका कार्य है। सेठ सा० जो भी लोकोपकारी कार्य करते हैं उन सबमें आपका पूरा सहयोग रहता है। फिर भी आपकी रुचिका मुख्य विषय आयुर्वेदिक औषधियोंका समग्र कर और जो सम्भव हैं उन्हें स्वयं तैयार कर गरीब अमीर सबको समान भावसे वितरित करना है। चिकित्साशास्त्रका आपने सत्रिंशे अध्ययन किया है, अतएव आप स्वयं रोगियोंको देखने जाती हैं और आवश्यकता पडने पर दूसरे वैद्य वा डाक्टरकी भी सहायता लेती हैं। इनके इस कार्यमें सेठ सा० भी बड़ी रुचि रखते हैं और वहिन नर्मदावाईको उत्साहित करते रहते हैं। तथा कभी कभी स्वयं भी इस कार्यमें जुट जाते हैं।

वर्तमान देश और समाजके लिये ऐसे सेवाभावी महानुभावोंकी बड़ी आवश्यकता है। हमारी मङ्गलकामना है कि यह दम्पति युगल चिरजीवी हो और परोपकार जैसे महान् लोकोपकारी कार्यको करते हुए पुण्य और यशके भागी बने।

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

# विषय-सूची

## स्थितिविमक्ति पु० १

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१	स्वामित्व	१६-२२
स्थितिविमक्ति के दो भेद	२	उत्कृष्ट स्वामित्व	१६-२०
स्थितिविमक्ति की साम्यकता	२	अपत्य स्वामित्व	२०-२५
स्थितिविमक्ति के दो भेदों का समुक्तिक निर्वेश	२-३	काश	२५-४७
मूल प्रकृतिस्थितिका विशेष उदाहरण	३-४	उत्कृष्ट काश	२५-३६
स्थितिविमक्तिका अर्थपर	५	अपत्य काश	३६-४७
मूल प्रकृतिस्थितिमें विमक्ति परकी साम्यकता	५-६	मूलोच्चाण्या पाठका निर्वेश	४०
उत्तर प्रकृतिस्थितिमें विमक्ति परकी साम्यकता	६-७	अन्तरलुगम	४७-५३
मूल प्रकृतिस्थितिविमक्ति के अनुबोधद्वारा	७-८	उत्कृष्ट अन्तरलुगम	४७-५०
य ही अनुबोधद्वारा उत्तर प्रकृतिस्थिति विमक्तिमें भी लागू होते हैं	८	अपत्य अन्तरलुगम	५१-५३
मूलप्रकृतिस्थितिविमक्ति	८-१३०	माना जीर्णोकी अपेक्षा मूलविषय	५३-५७
२४ अनुबोधद्वारा	८-६५	उत्कृष्ट मूलविषय	५३-५६
अद्याच्छेद	८-१४	अपत्य मूलविषय	५६-५७
उत्कृष्ट अद्याच्छेद	८-११	भागामागलुगम	५८-६०
अपत्य अद्याच्छेद	११-१४	उत्कृष्ट भागामागलुगम	५८-५९
सर्व-नोत्सर्गविमक्ति	१४	अपत्य भागामागलुगम	५९-६०
उत्कृष्ट-अनुकृष्टवि	१४	परिमाखलुगम	६१-६३
अपत्य-अपत्यवि	१४	उत्कृष्ट परिमाखलुगम	६१-६२
सर्वस्थिति और अद्याच्छेदकी उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर कथन	१४-१६	अपत्य परिमाखलुगम	६२-६३
उत्कृष्ट विमक्ति और उत्कृष्ट अद्याच्छेदमें अन्तर कथन	१६	क्षेत्रलुगम	६४-६७
सर्वविमक्ति और उत्कृष्ट विमक्तिमें अन्तर कथन	१६	उत्कृष्ट क्षेत्रलुगम	६४-६५
साक्षि-अनक्षि मुख-अग्रमुखवि	१६-१६	अपत्य क्षेत्रलुगम	६५-६७
		स्वरांतलुगम	६८-७०
		उत्कृष्ट स्वरांतलुगम	६८-७०
		अपत्य स्वरांतलुगम	७०-७०
		कम्बालुगम	७०-७३
		उत्कृष्ट काललुगम	७३-७५
		अपत्य काललुगम	७३-७५
		अन्तरलुगम	७५-७९
		उत्कृष्ट अन्तरलुगम	७५-७९
		अपत्य अन्तरलुगम	७९-७९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भावानुगम	६३	कालानुगम	१७५-१८०
अल्पबहुत्वानुगम	६३-६५	अन्तरानुगम	१८०-१८५
उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम	६३-६४	भावानुगम	१८५
जघन्य अल्पबहुत्वानुगम	६४-६५	अल्पबहुत्वानुगम	१८५-१८६
भुजगारके १३ अनुयोगद्वार	६५-१२७	स्थानप्ररूपणा	१८६-१९०
समुत्कीर्तनानुगम	६५-६६	उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्ति	१९१-५४४
स्वामित्वानुगम	६६-६७	अर्थपद और उसकी व्याख्या	१९१-१९२
कालानुगम	६८-१०८	स्थिति पदकी व्याख्या	१९२
अन्तरानुगम	१०८-१११	उत्तरप्रकृति पदकी व्याख्या	१९२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग विचय	१११-११३	चौवीस अनुयोग द्वार	१९३-५४४
भागाभागानुगम	११३-११४	अनुयोगद्वारोंका नाम निर्देश	१९३
परिमाणानुगम	११४-११५	भुजगार आदि अनुयोगद्वारोंका २४	
क्षेत्रानुगम	११६-११७	अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव	१९३
स्पर्शनानुगम	११७-१२०	अद्वाच्छेद	१९४-२१४
कालानुगम	१२१-१२२	उत्कृष्ट स्थिति अद्वाच्छेद	१९४-२०२
अन्तरानुगम	१२३-१२५	मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति	१९४-१९५
भावानुगम	१२६	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी	
अल्पबहुत्वानुगम	१२६-१२७	उत्कृष्ट स्थिति	१९५-१९६
पदनिक्षेपके ३ अनुयोगद्वार	१२७ १३५	सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति	१९७
समुत्कीर्तना	१२७-१२८	नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति	१९७-१९८
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना	१२७-१२८	चारों गतियोंमें सब कर्मोंकी	
जघन्य समुत्कीर्तना	१२८	उत्कृष्ट स्थिति	१९८
स्वामित्वानुगम	१२९	१४ मार्गणाश्रमों उच्चारणाके	
उत्कृष्ट स्वामित्वानुगम	१२९-१३३	अनुसार उत्कृष्ट स्थिति	१९९-२०३
जघन्य स्वामित्वानुगम	१३३-१३४	जघन्य स्थिति अद्वाच्छेद	२०२-२१४
अल्पबहुत्व	१३४-१३५	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और	
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१३४-१३५	वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति	२०३-२०५
जघन्य अल्पबहुत्व	१३५	सम्यक्त्व, लोभसज्वलन, स्त्रीविद्	
वृद्धिके १३ अनुयोगद्वार	१३६-१८६	और नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति	२०५-२०७
समुत्कीर्तना	१३६-१३७	क्रोधसज्वलनकी जघन्य स्थिति	२०७-२०८
स्वामित्वानुगम	१३८-१४१	मानसज्वलनकी	२०८-२०९
कालानुगम	१४१-१४६	मायासज्वलनकी	२०९
अन्तरानुगम	१४६-१६०	पुरुषवेदकी	२०९-२१०
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	१६०-१६४	छह नोकपायोंकी	२१०
भागाभागानुगम	१६४-१६६	गतियोंमें जघन्य स्थिति जानने	
परिमाणानुगम	१६६-१६८	की सूचना	२११
क्षेत्रानुगम	१६८-१६९	१४ मार्गणाश्रमों उच्चारणाके अनु-	
स्पर्शनानुगम	१६९-१७५	सार जघन्य स्थिति	२११-२२५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उच्चारणके अनुसार नोकपायके		और सुगुप्ता	२६६
बन्धक कालका अस्मयदुस्त	२१३	सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यात्व	२७०
इस विषयमें व्याख्यानार्थका		कीर्तव्य, पुरुषत्व, हास्य और रति	२७०-२७१
अभिप्राय	२१३-२१४	चार गतियोंमें	२७२
सर्व-सोसर्वस्वितिविभक्ति	२२६	उच्चारणके अनुसार काल	२७२-२६०
उक्त-अमुक्तस्विति०	२२६	अप्य स्वितिका काल	२६०-३१५
अप्य-अप्यस्विति०	२२६-२२७	मिप्यात्व, सम्यक्त्व सम्यग्मि	
सादि अनावि प्र-अमुबस्वि०	२२७-२२८	प्यात्व, सोसह कपाय और	
एक जीवकी अर्थात् स्वामित्व	२६६ २६६	तीन वष	२६०-२६१
उक्त स्वितिका स्वामित्व	२२६-२४१	इह नोकपाय	२६१-२६२
मिप्यात्व	२२६-२३०	अप्य स्विति और अप्य अद्या	
सोसह कपाय	२३०	च्छेद तथा उक्त स्विति और	
सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यात्व	२३१-२३२	उक्त अद्याच्छेद विचार	२६१-२६२
नौ नोकपाय	२३३-२३४	उच्चारणके अनुसार अप्य	
१४ मार्गशास्त्रोंमें उच्चारणके		स्वितिका काल	२६२-३१५
अनुसार स्वामित्व	२३४-२४१	अन्तर	३१६-३४५
अप्य स्वितिका स्वामित्व	२४१-२६६	उक्त स्वितिका अन्तर	३१६-३३०
मिप्यात्व	२४१-२४२	मिप्यात्व और १६ कपाय	३१६-३१७
सम्यक्त्व	२४३	नौ नोकपाय	३१७-३१८
सम्यग्मिप्यात्व	२४४	सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यात्व	३१८-३१९
अनन्तानुबन्धी चार	२४५-२४७	उच्चारणके अनुसार उक्त स्विति-	
मध्यकी आठ कपाय	२४८-२४९	का अन्तर	३१९-३३०
कोबसंज्ञान	२४९-२५०	अप्य स्वितिका अन्तर	३३०-३४५
मान और माया संज्ञान	२५०	मिप्यात्व, सम्यक्त्व, चारह कपाय	
शोभ संज्ञान	२५१	और नौ नोकपाय	३३१
कीर्तव्य	२५१-२५२	सम्यग्मिप्यात्व और अनन्तानु-	
पुरुषत्व	२५२-२५३	बन्धी चार	३३१-३३२
नपुंसकत्व	२५३	उच्चारणके अनुसार अप्य स्विति	
उह नोकपाय	२५३-२५४	का अन्तर	३३ -३४५
भारतियोंमें अप्य स्वामित्व	२५४-२५८	नाना जीवोंकी अप्य अत्रविषय	३४५-३५१
शेर गतियोंमें	२५८	अर्थवद्	३४५-३४६
सय मार्गशास्त्रोंमें उच्चारणके अनु-		उक्त स्वितिका अत्रविषय	३४६-३४९
सार अप्य स्वामित्व	२५८-२६६	मिप्यात्वकी अप्य अत्रविषय	३४६-३४८
काल	२६६-३१५	शेष अत्रियोंकी अप्य अत्रविषय	३४८
उक्त स्वितिपिच्छिका काल	३१७-३६०	उच्चारणके अनुसार अत्रविषय	३४८-३४९
मिप्यात्व	२६०-२६८	अप्य स्वितिका अत्रविषय	३४९-३५३
सोसह कपाय	२६८-२६९	अर्थवद्	३५०
पुनस्तत्रैव अरति, शाक, भय		मिप्यात्वकी अप्य अत्रविषय	३५०-३५१



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	३५१	मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कपाय	
उच्चारणके अनुसार भङ्गविचय	३५१-३५३	और छह नोरुपाय	४१०-४११
भागाभागानुगम	३५४-३५७	सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-	
उत्कृष्ट भागाभागानुगम	३५४-३५५	नुवन्धी चार	४११
जघन्य भागाभागानुगम	३५६-३५७	तीन सञ्चलन और पुरुषवेद	४१२-४१३
परिमाणानुगम	३५८-३६३	लौभसञ्चलन	४१३
उत्कृष्ट परिमाणानुगम	३५८-३५९	स्त्रीवेद और नपुसकवेद	४१३-४१४
जघन्य परिमाणानुगम	३६०-३६३	नरकगतिमें सब प्रकृतियोंके अन्तर	
चैत्रानुगम	३६४-३६७	का विचार	४१५
उत्कृष्ट चैत्रानुगम	३६४	उच्चारणके अनुसार जघन्य अन्तर	४१५-४२४
जघन्य चैत्रानुगम	३६५-३६७	भावानुगम	४२४-४२५
स्पर्शानुगम	३६८-३८७	उत्कृष्ट भावानुगम	४२४
उत्कृष्ट स्पर्शानुगम	३६८-३७८	उपशान्तकपाय गुणस्थानमें सब	
श्रीवसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें		प्रकृतियोंका औदयिक भाग	
स्पर्शनके मतभेदका निर्देश	३६८	कैसे बनता है इस शाकाका	
जघन्य स्पर्शानुगम	३७९-३८७	परिहार	४२४
तिर्यञ्चोमें कुछ प्रकृतियोंकी अपेक्षा		जघन्य भावानुगम	४२४-४२५
स्पर्शनमें पाठभेद	३८०	सन्निकर्ष	४२५-५२४
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३८७-४०६	उत्कृष्ट सन्निकर्ष	४२५-४९४
उत्कृष्ट काल	३८७-३९४	मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-	
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके		म्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४२५-४५४
उत्कृष्ट कालका स्वतन्त्र निर्देश	३८३-३८९	सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-	
उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट काल	३८९-३९४	म्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४५५-४५८
जघन्यकाल	३९४-४०६	सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका	
मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कपाय		अवलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४५८-४५९
और तीन वेद	३९४-३९५	सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका	
सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-		आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४५९
नुवन्धी चार	३९५-३९६	स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका आलम्बन	
छह नोरुपाय	३९६	लेकर सन्निकर्ष विचार	४५९-४७२
उच्चारणके अनुसार जघन्य काल	३९६	शेष प्रकृतियोंकी अर्थात् हास्य, रति,	
चूर्णिसूत्र, घषपदेवकी उच्चारण		और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका	
और वीरसेन द्वारा लिखित		आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार	४७२-४७५
उच्चारणमें पाठभेदका निर्देश	३९८-४०६	मतभेदका उल्लेख	४७४
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	४०६-४१४	नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका आल	
उत्कृष्ट अन्तर	४०६-४१०	म्बन लेकर सन्निकर्षका निर्देश	४७६-४८२
सप्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर	४०६-४०७	अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी	
उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट अन्तर	४०७-४१०	उत्कृष्ट स्थितिका आलम्बन लेकर	
जघन्य अन्तर	४१०-४२४	सन्निकर्षका निर्देश	४८२-४८५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उच्चारणके अनुसार दृक्छन्द सन्धिकर्ष	४८५-४८४	नरकजातिमें सब प्रकृतियोंके अस्य	
अपम्य सन्धिकर्ष	४८४-५२४	बहुत्व का विचार	५२६-५२७
भिध्यात्वकी अपन्य स्थितिका		उच्चारणके अनुसार दृक्छन्द स्थिति	
आत्मन्वन केन्द्र सन्धिकर्ष विचार	४८४	अस्यबहुत्व	५२८-५३०
श्रेय प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका		उच्चारणके अनुसार अपम्य स्थिति	
आत्मन्वन केन्द्र सन्धिकर्ष विचार	४८५	अस्यबहुत्व	५३०-५४२
उच्चारणके अनुसार अपम्य सन्धिकर्ष	४८५-५२४	उच्चारणके अनुसार वच्यक कालकी	
अस्यबहुत्व	५२४-५४४	अपेक्षा संघट्टि स्थिति सब	
स्थिति अस्यबहुत्व	५२४-५४२	प्रकृतियोंके अस्यबहुत्वका निर्देश	५३१-५३२
दृक्छन्द स्थिति अस्यबहुत्व	५२४-५३०	चिरन्तन व्याख्यानानाशयके द्वारा	
नौ नोकराय	५२४-५२५	निर्दिष्ट अस्यबहुत्व	५३२-५३३
सोमस्य कपाय	५२५	दानों अस्यबहुत्वोंमें मतभेदका	
सम्यग्भिध्यात्व	५२५	परिच्छेद	५३३
सम्यक्त्व	५२५-५२६	तियज्ञगतिमें एक दोनों अस्य-	
पूर्वीसूत्र और उच्चारणाका आत्मन्वन		बहुत्वोंकी अपेक्षा पुनः विचार	५३५
केन्द्र अक्षप्रधान और निरक्षप्रधान		जीव अस्यबहुत्व	५४२-५४४
स्थितिका आदरय सहित निर्देश	५२५-५२६	दृक्छन्द जीव अस्यबहुत्व	५४२-५४३
भिध्यात्व	५२६	अपम्य जीव अस्यबहुत्व	५४३-५४४

### शुद्धि

पृष्ठ २२७ के मूलकी ७ वीं पंक्ति इस पृष्ठकी प्रथम पंक्ति है।





कसायपाहुडस्स

ट्टि दि वि ह ती

तदियो अत्थाहियारो





सिरि अइबसहाइरियविरइय-बुण्णिण्णुत्तसमण्णिण्णं

सिरि-भगवत्सुण्णहरमहारभोवइडुं

# क सा य पा हु डं

तस्स

सिरि-अरिसेणाइरियविरइया टीका

## जयधवला

तस्य

विदिषिइची णाम विदिओ अत्थाहिपारो

- ००३०३०० -

अँताइ-मअकरहिया आइ-अरा-मरणगंवपोरइ।

संसारसया तमइ जेण ष्चिण्णा निर्णं वदे ॥

जिन्होनि अगदि मध्य और अरुसे रहित तथा जाति अरु और मरणरूपी अस्त्व  
पोरोसे अस्त्व संसाररूपी अस्त्वो अरे विद्या हे अरु जिन्होबका मी (धीरसेन स्वामी) ममस्वर  
करता है ।

विशेषार्थ—अरु संसारके अस्त्वो कयमा ही हे । अस्त्व अगदि मी हे, मध्य मी हे और

❀ द्विदिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिद्विदिविहत्ती चेव उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती चेव ।

§ १ द्विदिविहत्ति त्ति, अहियारो किमट्टमागओ ? पुब्बं पयडिविहत्तीए जाणाविदअट्टावीसमोहकम्मसहावस्स सिस्सस्स तेसिं चेव अट्टावीसमोहकम्माणं पवाहसरूवेण आदिविवज्जियाणमेगेगसमयपवद्धविसेसप्पणाए सादिसपज्जवसाणाणं जहण्णुक्कस्सट्टिदीओ चोइस-मग्गण-ट्टाणाणि अस्सिदूण परूवणट्टं द्विदिविहत्ती आगया । सा दुविहा मूलपयडिद्विदिविहत्तीउत्तरपयडिद्विदिविहत्तीभेदेण । तिविहा किण्ण होदि ? ण, मूलुत्तरपयडिद्विदिवदिरत्ताए अण्णिस्से पयडिद्विदीए अभावादो । णोक्कम्मपयडिरूव-रसादीणं द्विदीणं द्विदीओ अत्थि, ताओ एत्थ किण्ण उच्चंति ?

अन्त भी है तथा उसकी पोरों भी स्वरूप होती हैं, पर यह संसार ऐसी वेल है जो सन्तान-क्रमसे अनादि कालसे चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, अतः उसके आदि, मध्य और अन्तका निर्णय नहीं किया जा सकता है । तथा उसमें अनन्त जन्म, जरा और मरण होते रहते हैं । ऐसी संसाररूपी वेलको जिन जिनेन्द्रदेवने छेद दिया उन्हें मैं ( वीरसेन स्वामी ) नमस्कार करता हूँ । यहा प्रश्न होता है कि जिसके आदि, मध्य और अन्तका पता नहीं उसका छेद कैसे किया जा सकता है । समाधान यह है कि यद्यपि नाना जीवोंकी सन्तानकी अपेक्षा ससार आदि, मध्य और अन्तसे रहित है फिर भी कोई एक भव्य जीव उसका अन्त कर सकता है । इस प्रकार उक्त मगल गाथामे वीरसेन स्वामीने दोनों प्रकारके ससारके स्वरूपका निर्देश कर दिया है ।

❀ स्थितिविभक्ति दो प्रकारकी है—मूलप्रकृति स्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृति स्थितिविभक्ति ।

§ १. शंका—स्थितिविभक्ति यह अधिकार किसलिये आया है ?

समाधान—पहले जिस शिष्यको प्रकृतिविभक्ति नामक अधिकारके द्वारा मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके स्वभावका ज्ञान करा दिया है उसे प्रवाहकी अपेक्षा आदिरहित और प्रत्येक समयमें वधनेवाले एक एक समयप्रवद्धविशेषकी अपेक्षा सादि तथा सान्त उन्हीं मोहनीयकी अट्टाईस कर्मप्रकृतियोंकी चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका कथन करनेके लिये यह स्थितिविभक्ति नामक अधिकार आया है ।

वह स्थितिविभक्ति मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिके भेदसे दो प्रकारकी है ।

शंका—वह तीन प्रकारकी क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिको छोड़कर प्रकृतियोंकी अन्य स्थिति नहीं पाई जाती है, अतः स्थितिविभक्ति तीन प्रकारकी नहीं होती ।

शंका—नोकर्म प्रकृतियोंके रूप और रसादिककी स्थितियों पाई जाती हैं, उनका यहाँ

ण, कम्मपयडिद्विदिपरूणपाए पंक्ताए णोकम्मद्विदिपरूणपाए असभवादो ।

§ २ का मूलपयडिद्विदी णाम ? अहानीसपयडीणं पयडिसमाणत्तणेण एयत्त मुनगवाणं द्विदिभित्तेसा मूलपयडिद्विदी । कथं पुत्रभूद्विदीजमेयथा ? सरिसत्तणेण पयडीए । ण च पयडिसरिसत्तमसिद्धं, सप्पण्णमोहपयडीए पद्मसमयप्यहुदि अविणासादा मोहपयडीसरूप्तेण अवहाशुनलभादो । मोहपयडिद्विदीए सामण्णाए आदिषिवज्जियाए कथं परूयथा कीरवे ? ण, पवाहसरूप्तेण अणादिमोहपयडिद्विदिं मोत्तूण एगसमयम्मि बुक्कमाहासंसपयडीणं माहपयडित्तणेण एयत्तमुनगवाणं द्विदीए परूयथा कीरदि चि दोसाभावादा । एवं संते मूलपयडिद्विदि चि कथं जुज्जद ? ण, सम्भसिं समयपवद्दानं पयडिसमूहस्स मूलपयडित्तमुनगवाभावादा । का पुण

कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं क्योंकि कर्मप्रकृतियोंकी स्थितिकी प्ररूपणा करते समय नाकर्मकी स्थितिकी प्ररूपणा करना असंभव है, अतः यहाँ नोकर्मप्रकृतियोंकी स्थितियोंका प्ररूप नहीं किया है ।

§ २ शंका—मूलप्रकृतिस्विति कैसे करते हैं ?

समाधान—प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त हुई अहर्तस प्रकृतियोंकी जो स्थिति-विशेष है उसे मूलप्रकृतिस्विति करते हैं ।

शंका—क्या कि सब प्रकृतियोंकी स्थितियाँ अलग अलग हैं, तब इनमें एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—प्रकृतिसामान्यकी अपेक्षा सभी प्रकृतिशै एक हैं, अतः इनकी स्थितियोंमें एकत्व माननेमें कोई बाधा नहीं आती ।

शंका—क्या बाव कि प्रकृतियोंकी सद्यता असिद्ध है सो भी बात नहीं है, क्योंकि मोहप्रकृतिके उत्पन्न होनेके पहले समयसे क्षेत्र अब तक उसका विनाश नहीं होता तब तक उसका मोह प्रकृतिरूपसे ही अवस्थान पाया जाता है, इसलिये इनमें सद्यता माननेमें कोई बाधा नहीं आती है ।

शंका—मोहकर्मकी सामान्य स्थिति आविर्द्विह अर्थात् अनादि है, अतः उसकी प्ररूपणा कैसे की जा सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रवहत्त्वसे अमादिकालीन मोहकर्मकी स्थितिको ब्राह्मण एक समर्थमें जो मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियाँ कर्मको प्राप्त होती हैं या कि मोहप्रकृति सामान्य की अपेक्षा एक हैं, इनकी स्थितिकी यहाँ प्ररूपणा की गई है, इसलिये कोई शंका नहीं है ।

शंका—यदि ऐसा है तो मूलप्रकृतिस्विति कैसे बन सकती है ?

समाधान—नहीं क्योंकि संपूर्ण समयप्रवहत्त्वको प्रकृतिसमूह है उसे यहाँ मूलप्रकृतिरूपसे स्वीकार नहीं किया है ।

शंका—तो फिर यहाँ मूलप्रकृति परसे किसका प्ररूपण किया है ?



एत्थ मूलपयडी ? एगसमयम्मि वद्धासेसमोहकम्मक्खंधाणं पयडिसमूहो मूलपयडी  
णाम । तिस्से द्विदी मूलपयडिद्विदी । पुथ पुथ अट्टावीसमोहपयडीणं द्विदीओ उत्तर-  
पयडिद्विदी णाम । एवं द्विदिविहत्ती दुविहा चेव होदि ।

§ ३ उत्तरपयडिद्विदिविहत्तीए परूविदाए मूलपयडिद्विदिविहत्ती णियमेणेव  
जाणिज्जदि तेण उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती चेव वत्तव्वा ण मूलपयडिद्विदिविहत्ती, तत्थ  
फलाभावादो । ण, दव्वद्वियपज्जवद्वियणयाणुग्गहट्ठं तप्परूवणादो । एत्थतण वे वि  
'च' सहा समुच्चए दट्ठव्वा । एगेणेव 'च' सहेण समुच्चयट्ठावगमादो विदिय 'च'  
सहो अणत्थओ चि णावणेदु' सक्किज्जदे । अप्पिदेगणयं पडुच्च परूवणाए  
कीरमाणाए मूलपयडिद्विदिविहत्ती उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती च उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती  
मूलपयडिद्विदिविहत्ती चेदि एग'च'सद्दुच्चारणं मोत्तूण विदिय ( च ) सद्दुच्चार-  
णाए अभावेण पुणरुत्तदोसाभावादो । 'एव'सहो इदिसदत्थे दट्ठव्वो; अवहार-  
णत्थस्स एत्थासंभवादो ।

समाधान—एक समयमें बधे हुए संपूर्ण मोहनीय कर्मके स्कन्धोंके प्रकृतिसमूहका  
यहा मूलप्रकृतिरूपसे ग्रहण किया है । उस मूलप्रकृतिकी स्थितिको मूलप्रकृतिस्थिति  
कहते हैं । तथा मोहनीयकी पृथक् पृथक् अट्टाईस प्रकृतियोंकी स्थितियोंको उत्तरप्रकृतिस्थिति  
कहते हैं । इस प्रकार स्थितिबिभक्ति दो प्रकारकी ही होती है ।

§ ३ शंका—उत्तर प्रकृतिस्थितिबिभक्तिका कथन करनेपर मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका  
नियमसे ज्ञान हो जाता है, अतः उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका ही कथन करना चाहिये,  
मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका कथन करनेमें कोई  
फल नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका अर्थात् द्रव्यार्थिक और  
पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये दोनों स्थितियोंका कथन किया है ।

उपर्युक्त सूत्रमें आये हुए दोनों ही 'च' शब्द समुच्चयरूप अर्थमें जानना चाहिये ।  
एक ही 'च' शब्दसे समुच्चयरूप अर्थका ज्ञान हो जाता है, अतः दूसरा 'च' शब्द अनर्थक  
है इसलिये उसे निकाला नहीं जा सकता है क्योंकि अर्पित एक नयकी अपेक्षा कथन करनेपर  
द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा 'मूलपयडिद्विदिविहत्ती उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती च' इस प्रकार और  
पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा 'उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती मूलपयडिद्विदिविहत्ती च' इस प्रकार प्राप्त  
होता है अतः एक 'च' शब्द के उच्चारणके सिवाय दूसरे 'च' शब्दका उच्चारण नहीं रहता,  
अतः पुनरुक्त दोष नहीं प्राप्त होता है । सूत्रमें जो 'एव' शब्द आया है वह 'इति' शब्दके अर्थमें  
जानना चाहिये, क्योंकि यहा उसका अवधारणरूप अर्थ नहीं हो सकता है ।

विशेषार्थ—यहा स्थितिबिभक्तिके दो भेद किये गये हैं—मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्ति  
और उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्ति । 'मूलप्रकृति' पदसे भवान्तर भेदोंकी गणना न कर सामान्य  
मोहनीय कर्मका ग्रहण किया है और 'उत्तरप्रकृति' पदसे मोहनीयके प्रत्येक भेदका पृथक् पृथक्

⊗ तस्य अद्वयत्वं एवा द्विवी द्विविद्विहती, अयेगाभो द्विवीभो द्विविद्विहती ।

§ ४ तस्य दोषं पि द्विदिविहतीणं पुष्पुत्ताणमेदमद्वयत्वं उच्यते । तं जहा, एगा द्विदी द्विविद्विहती । विहती भेदो पुपभाभो चि एयहो । द्विदीए विहती द्विविद्विहती जे जेवं द्विविद्विहतीसरो द्विदिमेदपरूपजा, तेष मूलपर्यदिद्विदीए विहचिच णत्व, एकिस्से भेदाभावादो । मान वा ण सा मूलपर्यदिद्विदी, एकिस्से पर्यदीए द्विविद्विहतीसरोहादो चि उचे एगा द्विदी द्विद्विहचि चि परिहारो पर्यदिदो । कपमेकिस्से द्विदीए णाणत्वं ? ण, एकिस्स वि द्विदीए पदसभेदेण पर्यदि भेदेण च णाणत्वंसंभादो । ण च पर्यदिपदेसभेदो द्विविद्विहत्स कार्णं ण होदि; मिष्ण-

प्रत्यय किया है। वद्यपि प्रवाह रूपसे मोहनीय कर्म अनादि है पर यहां प्रत्येक समकर्म का समयप्रत्यय प्राप्त होता है उसकी स्थिति सी गई है इसलिये स्थितिबिभक्तिकी अवधि बन जाती है। वसमें जो प्रत्येक भेदकी विभक्ता क्रिये बिना सामान्य रूपसे माहनीयको स्थिति प्राप्त होती है वह मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तित है और प्रत्येक भेदकी जो स्थिति प्राप्त होती है वह उत्तरप्रकृति स्थितिबिभक्तित है। यहां सामान्य और विशेषरूपसे मोहनीयकी स्थितिअ ही प्रत्यय किया है इसलिये वह दो प्रकारकी बतसाई है। नोकरअ प्रकरय न होनेसे पर। वसकी स्थितिअ प्रत्यय नहीं किया है। सूत्रमें जो 'वा अण् भाव्य' हैं सो वे दानों ही समुच्चयार्थक बान्धन चाहिए। प्रथम 'वा अण्' द्वारा मुख्यरूपसे मूलप्रकृति स्थितिबिभक्तित और गौणरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तित का समुच्चय होता है। तथा दूसरे 'वा' अण् द्वारा मुख्यरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तित और गौणरूपसे मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तित का समुच्चय होता है। शेष विवेचन स्वयं ही है।

⊗ अब उन दोनों स्थितिबिभक्तियोंके अर्थपदको कहते हैं—एक स्थिति स्थितिबिभक्तित है और अनेक स्थितियां स्थितिबिभक्तित हैं।

§ ४ अब पूर्वोक्त दोनों ही स्थितिबिभक्तियोंके इस अर्थपदका सुझावा करता है। जो इस प्रकार है—एक स्थिति स्थितिबिभक्तित है। बिभक्तित भेद और एवमभा ये तीनों एकार्थवाची शब्द हैं। और स्थितिकी बिभक्तित स्थितिबिभक्तित कही जाती है। यतः स्थितिबिभक्तित शब्द स्थितिभेदका अर्थ करता है, और इसलिये मूलप्रकृतिकी स्थितिमें बिभक्तितयां नहीं बनती है, क्योंकि एकमें भेद नहीं हो सकता। यदि एकमें भेद माना जाय तो वह मूलप्रकृतिस्थिति नहीं ठहरती, क्योंकि एक प्रकृतिकी अनेक स्थितियां माननेमें विरोध आता है इसे प्रकार आक्षेप कर्म पर 'एगा द्विदी द्विविद्विहती' इस प्रकार कहकर उस आक्षेपका परिहार किया है।

शुंका—एक स्थितिमें नानात्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक स्थितिमें भी प्रवेसभेद और प्रकृतिभेदकी अपेक्षा नानात्व पाया जाता है।

यदि कहा जाय कि प्रकृतिभेद और प्रवेसभेद स्थितिभेदका कारण नहीं है' सो भी बात नहीं है क्योंकि मित मित प्रकृति और प्रवेसोंमें पर्यं बान्धनकी स्थितिको एक सामग्री विरोध





विचञ्चो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अतरं सण्णियासो अप्पाबहुअं च भुजगारो पदण्णिकखेवो वड्डी च ।

§ ७ एदाणि मूलपयडिद्विदिविहत्तीए अणियोगद्वाराणि । एत्थ अंतिल्लो 'च'सदो उत्तसमुच्चयदो । अप्पावहुअंते द्विदो 'च'सदो अवुत्तसमुच्चयदो । तेण एदेसु अणियोगद्वारेसु अवुत्तस अद्धाच्छेदाणिओगद्वारस्स भागाभागभावाणिओगद्वाराणं च गहणं कदं । एत्थ मूलपयडिद्विदिविहत्तीए जदि वि सण्णियासो ण संभवइ तो वि उत्तो; उत्तरपयडीसु तस्स संभवदंसणादो । एत्थ मोत्तूण तत्थेव किण्ण वुच्चदे ? सच्चं, तत्थ चेव बुत्तो ण एत्थ । जदि एवं, तो किण्णावणिज्जदे ? ण, मूलुत्तरपयडिद्विदिविहत्तीणं साहारणभावेण परुविदाणिओगद्वारेसु द्विदसण्णियासस्स अवणयणुवायाभावादो ।

❀ एदाणि चेव उत्तरपयडिद्विदिविहत्तीए कादव्वाणि ।

§ ८. सुगमभेदं;अण्णणाहियाणभेदेसिं तत्थ संभवादो ? संपहि एदेसिमणियोगद्वारेहि मूलपयडिद्विदिविहत्ती वुच्चदे । तं जहा,अद्धाच्छेदो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ

की अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष और अल्पबहुत्व तथा भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि ।

§ ७ ये मूलप्रकृति स्थिति विभक्तिके विषयमें अनुयोगद्वार होते हैं । इस सूत्रमें जो अन्तमें 'च' शब्द आया है वह उक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है । तथा अल्पबहुत्व पदके अन्तमें जो 'च' शब्द स्थित है वह अनुक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है, इसलिए इस 'च' शब्दके द्वारा इन उपर्युक्त अनुयोगद्वारोंमें अनुक्त अद्धाच्छेद अनुयोगद्वार तथा भागाभाग और भाव अनुयोग द्वारोंका ग्रहण किया गया है ।

यद्यपि यहाँ मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिमें सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है तो भी वह यहाँ पर कहा गया है, क्योंकि उत्तर प्रकृतियोंमें उसकी सम्भावना देखी जाती है ।

शंका—सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको यहाँ न कह कर वहीं उत्तर प्रकृतियों के प्रकरणमें क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—यह ठीक है, क्योंकि सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको वहीं उत्तर प्रकृतियोंके प्रकरणमें ही कहा है यहाँ मूल प्रकृतिके प्रकरणमें नहीं ।

शंका—यदि ऐसा है तो यहाँसे उसे क्यों नहीं अलग कर दिया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति इन दोनोंके विषयमें साधारणरूपसे ये अनुयोगद्वार कहे गये हैं, इसलिये इनमें स्थित सन्निकर्षको अलग करनेका कोई कारण नहीं है ।

❀ उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें ये ही अनुयोगद्वार कहने चाहिये ।

§ ८ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि न्यूनता और अधिकतासे रहित ये सभी अनुयोगद्वार उत्तर प्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें संभव हैं ।

अब इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका कथन करते हैं । यथा—ज्ञान्य और उत्कृष्टके भेदसे अद्धाच्छेद दो प्रकारका है ।

च । बहुसु अणिभोगहारेसु संतेसु अद्यावेदा वेप परम किमट्ठं बुध्वे ? ण, अद्यावेदे अणवगए संते वनरियअदियारपक्खिज्जमाणत्वाणमणगमानुषचीदो ।

§ ६ उक्तस्ते पर्यट् । दुषिहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्व आभेण मोहणीयउक्तस्तद्विदिविहरी केचिया ? सत्तरिसागरोपमकोडाकोठीमो पडिबुप्पाओ । कुदो ? अकम्मसरूपेण हिदा कम्मइयवग्गाणक्खंधा मिच्छत्तादिपवणण मिच्छत्तकम्म-सरूपेण परिणदसमए च व नीषेण सह वंषमागदा सत्तनाससहस्तावार्थं मोक्षूण सत्तरिसागरोपमकोडाकोठीसु जहाकमेण णिसिचा सत्तरिसागरोपमकोडाकोठिमैत्तकालं कम्मभावेणच्छिय पुणो वेसिमकम्मभावण गमणुवलंभादो । एवं सव्यणिरय-विरिक्ख पंचिदियविरिक्खविय-मणुस्सविय-वेष भयणादि भाव सहस्सार-•पंचिदिय-पंचि-•पञ्ज-• तस-तसपञ्ज-•पंचमण-•पंचषधि-•कायमोगि-ओरासिय-•वेत्तम्भिय-•तिग्गिवेद चत्तारि कसाय-मदिसुदअप्याण विरंग-•असंजद-•चक्खु-•अचक्खु-•पंचलोस्ता-•अनसिद्धि-•अम्मस-•मिच्छाइहि-•सण्णि-आहारि सि ।

शंका—बहुतसे अनुयोगधारोंके रहत हुए सबसे पहले अद्यावेदका ही कवन क्यों किया ?

समाधान—नहीं क्योंकि अद्यावेदके अद्यत रहनेपर आगेके अधिकारोंके दायर बड़े जानेवाले अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । अतः सबसे पहले अद्यावेदका कवन किया जा रहा है ।

§ ६ उक्त अद्यावेदका प्रकृत्य है । उसकी अपेक्षा निर्बंध दो प्रकारका है—ओषनिर्बंध और आवेदनिर्बंध । उनमेंसे ओषनिर्बंधकी अपेक्षा मोहनीयकी उक्त स्थितिविर्मल कितनी है ? पूरी सत्तर कोडाकोठी सागर है, क्योंकि जो कानेखगोष्ठाओंके स्वरूप अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे मिथ्यात्व कर्मरूपसे बरिखत होनेके समर्थमें ही जीवके साथ कंधडा प्राप्त होकर सात हजार वर्षप्रमाण आवाधा कासठे कम सत्तर काडाकोठी सागरोंके समर्थमें पचासमस मियेकमाककी प्राप्त हो जाते हैं और सत्तर कोडाकोठी सागर कलाठक कर्मरूपसे रहकर पुनः वे अकर्म सावको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार सभी नारकी सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच पोनिमती तिर्यंच सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य मनुष्यी सामान्य देव भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त ब्रह्म, ब्रह्म पर्याप्त पौर्षो मनोयोगी, पौर्षो वचनयोगी अथयोगी औदारिक-काययोगी, वैकियिकाययोगी तीनों ब्रह्मास्त्र, कापादि चारों कयाववास्त्रे, मत्पज्ञानी ब्रह्मज्ञानी विनीगज्ञानी असंयत बबुइशीमी अचबुइशीमी, उष्य आदि पौंच सेत्यावास्त्रे, भव्य अमध्य, मिथ्यात्तहि संकी और आहारक जीवोंके जामना आदि ।

विशेषार्थ—कन्यकर्ममें मिथ्यात्वकी उक्त स्थिति सत्तरकोडाकोठी सागर प्रमाण प्राप्त होती है अतः ओषसे मिथ्यात्वकी स्थितिअ उक्त अद्यावेद सत्तर कोडाकोठी सागर कहा है । आगे और कितनी मार्गदार्थे गिन्दाई हैं वे सब संकी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अथवास्त्रे रहते हुए सम्भव हैं और उनके मिथ्यात्व गुणस्थानके सद्भावमें मिथ्यात्वका यह उक्त स्थितिकन्य सम्भव है इसीलिसे इनके कवनको ओषके समान कहा है । उक्तत्रलेख्यमें संकी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अथवा और मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है परन्तु इनकालेख्यमें अमत्ताटाकोठीसे अधिक

§ १० पंचिन्द्रियतिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ । एवं मगुसअपज्ज०-वादरेइंदियअपज्जत्त--मुहमेइंदियपज्जत्ता-पज्जत्त-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि०अपज्ज०-वादरपुट्ठवि०अपज्ज०-वादरआउ०अपज्ज०-वादरवणप्फदि०पत्तेयअपज्ज०-तेउ-वाउ०-त्रादर-मुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-मुहुमवणप्फदि०-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि०-मुट्ठ०-ओहि०-ओहिदंस०--मुक्क-सम्मादिद्वि-वेदग०-सम्भामिच्छादिद्वि त्ति ।

§ ११ आणदादि जाव सव्वट्ठ त्ति मोह० उक्क० अद्धच्छेदो अंतोकोडाकोडीए । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजट०-सामाद्यच्छेदो०-

स्थिति नहीं बधती अतः उसको यहाँपर नहीं ग्रहण किया है और इसी कारण आनतादि उपरिम विमानोंको भी छोड़ दिया है ।

§ १० पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंके मोहनीय कर्मकी स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथ्वी-कायिक अपर्याप्त, वादर जलकालिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त अग्निकायिक, वायुकायिक, वादर अन्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अन्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अन्निकायिक अपर्याप्त, वादर वायु-कायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सब निगोद, त्रस अपर्याप्त, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ** — जिस मनुष्य या तिर्यंचने सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका बन्ध किया वह यदि मरकर पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है तो अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही उत्पन्न हो सकता है इसके पहले नहीं, अतः पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर ही प्राप्त होता है अधिक नहीं । इसके सिवा और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद इसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्तके पहले उस उस मार्गणास्थानको नहीं प्राप्त होता है । सादि मिथ्यादृष्टि सात प्रकृतिकी सत्तावाले जिसने मोहनीयका उत्कृष्ट बध किया है वह स्थिति काबक घात किये बिना वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है अतः उस सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टिके मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर पाया जाता है । इसी प्रकार मिश्र गुणस्थानमें भी जानना चाहिए ।

§ ११ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मन पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-

परिहार०-सुहुम०-महाबत्वाद०-संमदासंनद-खड्य०-उबसम०-सासणसम्मादिदि चि ।

§ १२ एहिदिपसु मोह० उह० अदुच्छेदो० सत्तरिसागराधमकोठाकाडीभो समयुपाभो । एवं वादरेहिदिय-वादरेहिदियपज्ज० वादरपुडवि०-वादरपुडविपज्ज० वादरआठ०-वादरआठपज्ज०-वादरवणफदिपसेय०-वादरवणफदिपत्तियपज्ज०-ओरानिपमिस्स०-वेदवियमिस्स०-कम्मइय० असण्णि अणाहारि चि ।

एवमुक्त्सभो अदुच्छेदो समघा ।

विद्युद्धिसंयत, सुस्मसाम्पराधिकर्नयत स्याभ्यात्तसयत, संयतासंबत द्याधिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि और सासाधनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नौ अक्षुविश और पाँच अनुत्तर, विमानोंमें तो सकलसंयमी सम्यग्दृष्टि ही पैदा होता है । किन्तु जानतादि चार कर्मोंमें और नौ प्रैयकर्मों मिथ्यादृष्टि जीव भी उत्पन्न हो सकता है । पर ऐसा जीव ब्रह्मज्ञिगी मुनि संबतान्यत अक्षय होगा और ऐसे जीवके कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोठीकाही सागरसे अधिक नहीं पाई जाती है । तथा जानतादिकर्म उत्पन्न होमके पश्चात् भी इसके स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिवाले कर्मका ही कथ्य होता है अतः जानतादिकर्म मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अदुच्छेद अन्तःकोठाकोठी सागर कहा है । इनके सिवा और जितनी मातृग्याएँ गिनती हैं उनमें भी इसी प्रकार मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अदुच्छेद अन्तःकोठाकोठी सागर भन्ति कर लेना चाहिये । यद्यपि इनमें कर ऐसी मातृग्याएँ हैं जिनमें अन्तःकोठाकोठी सागर प्रमाथ स्थितिकल्प नहीं होता पर प्राक्तन उत्पत्ती अपेक्षा यहां भी यह अदुच्छेद उत्पत्त्य हा जाता है ।

§ १२ एनेत्रिजोमें माहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अदुच्छेद एक समय कम सत्तर कोठाकाही सागर है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त वादर दृष्ठी कायिक, वादर दृषिथी कायिक पर्याप्त, वादर अज्ञकायिक, वादर अज्ञकायिक पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त औदारिक मिमकाययोगी, वक्षियकमिमकाययोगी कम्मसक्ययोगी असंघी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जा देव मोहनीयकी सत्तर काठाकोठी प्रमाथ उत्कृष्ट स्थितिअ वत्त करके और दूसरे समयमें मरकर एकेन्द्रियादिकर्म उत्पन्न होते हैं उन एकेन्द्रियादिकर्मके माहनीयकी स्थिति का उत्कृष्ट अदुच्छेद एक समय कम सत्तर कोठाकाही सागर पाया जाता है । इसी प्रकार इस अपेक्षासे अक्षुविशोह मोहनीयकी स्थितिका एक समय कम सत्तर कोठाकोठी प्रमाथ अदुच्छेद कल्पना चाहिये । किन्तु औदारिकमिमकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अदुच्छेदका कथन करत समय दुब और मरक पर्याप्त तिर्यचोंमें उत्पन्न कराकर कल्पना चाहिये । वैकियिकमिमकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अदुच्छेदका कथन करत समय मनुज्य और तिर्यच पर्याप्तसे नादिकर्मोंमें उत्पन्न कराकर कल्पना चाहिये । कर्मसक्ययोगी और अनाहारकमें उत्कृष्ट अदुच्छेदका कथन करत समय चारों गतिके जीवोंकी अपेक्षा कल्पना चाहिये क्योंकि सब विवचिंत गतिक जीव मरके अन्तमें माहनीयका उत्कृष्ट स्थितिकल्प करके चार मरकर औदारिकमिमकाययोगी आदि हात हैं तब इनके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अदुच्छेद एक समय कम सत्तर कोठाकाही सागर पैदा जाता है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अदुच्छेद समाप्त हुआ ।



§ १३ जहण्णअद्धाच्छेदाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जहण्णिया अद्धा केत्तिया ? एगा द्विटी एगसमइया । एव मणुसतिय-पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०-अवगढ०-लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-सुहुमसांपरा०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक०-भवसिद्धि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि०-आहारि ति ।

§ १४ आदेसेण एरइएसु मोह० सागरोवमसहस्सस्स सत्तसत्तभागा पलिदो-वमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया । एवं पढमाए पुढवीए पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचि०-तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोगिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज-मणुसअपज्ज० [देव-] भवण०-वाण०-पंचिंदियअपज्ज० वत्तव्वं ।

§ १५ विटियादि जाव सत्तमि ति मोह० अंतोकोडाकोडीए । एवं

§१३. जघन्य अद्धाच्छेदानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्यकाल कितना है ? एक समयवाली एक स्थितिप्रमाण जघन्यकाल है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, अमगतवेदी, लोभकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी सूक्ष्म-सांपरायिक सयत, सयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षाधिकसम्यग्दृष्टि, सज्जी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहणकर सूक्ष्मसांपरायिके अन्तिम समयमें स्थित रहता है उसके मोहनीयका एक समयवाला एक स्थितिप्रमाण अद्धाच्छेद उपलब्ध होता है यहा अन्य जितनी मार्गणएँ गिनाई हैं उनमें क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है इसलिये इनमें मोहनीयका अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§१४ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पत्योपमके सत्तातवें भाग कम सात भागप्रमाण होती है । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके जीवोंके तथा पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, पचेन्द्रिय तिर्यच लव्यपर्याप्त, मनुष्य लव्यपर्याप्त, देव, भवनवासी व्यन्तर और पंचेन्द्रिय लव्यपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—असज्जी पचेन्द्रियके मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पत्यके सत्यातवें भाग कम हजार सागर प्रमाण होता है और यह जीव सामान्यसे नारकियोंमें, प्रथम पृथ्वीके नारकियोंमें, देवोंमें, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें तथा मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मरकर उत्पन्न हो सकता है इसलिए तो इन मार्गणाओंमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है । मात्र ऐसे असज्जी जीवको इनमें उत्पन्न करानेके पहले प्राक्तन सन्ध इससे अधिक नहीं रखना चाहिए । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच आदि चार अवस्थावाला असज्जी पचेन्द्रिय भी होता है इसलिए उनमें भी मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§१५. दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति

नोटिसियादि जाब सञ्चद० वेठभिय०-वेठभियमिस्स० आहार० आहारमिस्स०  
अकसाय०-बिईग०-परिहार० जहाक्साद०-संनदासंमद-तेठ०-पम्म०-वेदय०-उब  
सम०-सासण०-सम्माभि० भक्तन् ।

§ १६ तिरिक्ख० मोह० जह० सागरोबम सचसचभागा पस्सिदोबमस्स  
असंस्खज्जदिभागण ऊणया । एव सञ्चपुद्दिय-पंचकाय० आरात्थियमिस्स०-कम्मइय०  
मदि-सुअण्णाण० असंमद-विण्णित्त०-अभव० मिच्छा० असण्णि० अणाहारि चि ।  
सम्भविगलिंदिय० मोह० जह० सागरोबमपणुषीसाए सागरोबमपण्णासाए सागरोबम  
सदस्स सच सचभागा पस्सिदोबमस्स संस्खेअदिभागणे ऊणया । तसअपज्ज०  
वेईदियअपञ्चमगो ।

§ १७ वेदाणुवादेण इत्थि०-णुस० माह० संस्खेज्जाणि वस्ससइस्साणि ।

अन्तःकोशकोषी सागर होती है । इसी प्रकार ज्योतिषी वेदोंसे लेकर सवार्थसिद्धिकर वेव, वैदिक-  
विकल्पयोगी, वैदिकविभक्तियोगी आहारकर्मयोगी आहारकर्मिण काययोगी अकसाय, विमंग-  
ज्ञानी, परिहारविहृष्टिसंयत यथाक्यातसंयत, संयतासंयत पीठसेट्यावाशं पञ्चसेट्यावासे, बरकसम्य  
मृष्टि, अज्ञमसम्भट्टि, सासादनसम्भट्टि और सम्यग्मिष्याट्टि जीवोंके कर्मा आदिप ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्ग्याएँ गिनाई हैं उनमें स्वितिकम्भ और प्राक्तन सत्त्व अन्तः  
कोशकोषी सागर प्रमाथ भी सम्भव होनेसे इनमें मोहनीयका अथवा अज्ञात्वेव कृत् प्रमाथ  
क्या है ।

§ १६ तिरिक्खोके मोहनीयकी अथवा स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पस्वोपमके  
असंख्यातर्षे भाग कम सात भागप्रमाथ है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय पूर्वों स्वावरकाय  
और परिक्खिमिअकयोगी कर्मण्यअपयोगी मत्पज्ञानी, भुतज्ञानी, असंयत, कृप्य आदि तीन  
लेपयापसे अथवा मिष्याट्टि, असंघी और अमाहारक जीवोंके कर्मा आदिप । सभी विक-  
सन्त्रिय जीवोंके मोहनीयकी अथवा स्थिति कमसे पचीस, पचास और सौ सागरके सात भागोंमें  
से पस्वोपमके संख्यातर्षे भाग कम सात भाग प्रमाथ है । प्रस कर्त्तव्यपवीतर्षोके द्वीन्द्रिय कर्त्तव्य-  
पयत्तर्षोके समान अथवा स्थिति जाननी आदिप ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मोहनीयका अथवा स्वितिसत्त्व पत्तका असंख्यातर्षा भाग  
कम एक सागर प्रमाथ प्राप्त होता है और एकेन्द्रिय त्रिवेद ही होते हैं इसलिये इनमें मोहनीयका  
अथवा अज्ञात्वेव कृत् प्रमाथ क्या है । यहाँ अन्य एकेन्द्रिय आदि जितनी मार्ग्याएँ गिनाई  
हैं उन मार्ग्यावासे जीव भी एकेन्द्रिय ही कृत् हैं इसलिये इनका कर्त्तव्य कृत् प्रमाथ  
क्या है । इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदिकके अथवा स्वितिसत्त्वको ध्यानमें रखकर इनमें  
मोहनीयका अथवा अज्ञात्वेव पत्तका संख्यातर्षा भाग कम कमसे पचीस पचास और सौ सागर  
क्या है ।

§ १७ बरमार्ग्याके अनुवासे जीवरी और नपुंसकेरी जीवोंके मोहनीय कर्मोंकी  
अथवा स्थिति संख्यात इमार वर्ष है । पुंसकेरी जीवोंके मोहनीयकी अथवा स्थिति संख्यात

पुरिस० मोह० जह० संखेज्जाणि । कोह-माण-माय० मोह० जह० चत्तारि-वे-एकवस्साणि  
पडिबुण्णाणि । सामाइय-छेदो० मोह० जह० अंतोमु० ।

एवमद्वाछेदो समत्तो ।

§ १८, सव्वविहत्ती-णोसव्वविहत्तीअणुगमेण दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण  
य । तत्थ ओघेण सव्वाओ द्विदीओ सव्वविहत्ती, तदूणं णोसव्वविहत्ती । एवं  
जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ १९ उक्कस्स-अणुक्कस्स० दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
सव्वुक्कस्सिया द्विदी उक्कस्सविहत्ती । तदूणा अणुक्कस्सविहत्ती । एवं पेदव्वं जाव  
अणाहारि त्ति ।

§ २० जहण्णाजहण्ण० दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
सव्वजहण्णद्विदी जहण्णद्विदिविहत्ती । तदुवरिमाओ अजहण्णद्विदिविहत्ती । एवं  
पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति । सव्वद्विदीए अद्वाछेदम्मि भणिदउक्कस्सद्विदीए च को

वर्ष हैं । तथा क्रोधी, मानी और माया कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्रमसे परिपूर्ण  
चार, दो और एक वर्ष हैं । सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके मोहनीय क्रमकी  
जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त हैं ।

**विशेषार्थ**—उक्त तीन वेदवाले और क्रोधादि तीन कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी यह  
स्थिति क्षपकश्रेणिमें अपने अपने उदयके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इन मार्गणाओं-  
में मोहनीयका जघन्य अद्वाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

इस प्रकार अद्वाच्छेद समाप्त हुआ ।

§१८ सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सर्व स्थितियाँ सर्वविभक्ति  
हैं और उससे न्यून नोसर्वविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणतक जानकर कथन  
करना चाहिये ।

§१९ उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्टविभक्ति  
है और उससे न्यून स्थिति अनुत्कृष्टविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणतक  
कथन करना चाहिए ।

§२० जघन्यविभक्ति और अजघन्यविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थिति जघन्यस्थिति  
विभक्ति है और उससे ऊपरकी सब स्थितियाँ अजघन्य स्थितिविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गण तक ले जाना चाहिए ।

**शंका**—सर्वस्थिति और अद्वाच्छेदमें कही गई उत्कृष्ट स्थितिमें क्या भेद है ?

भंगो ? बुधदे—चरिमणितेयस्स जो कालो सो उक्कस्सअद्वाधेदम्मि भणित्ठक्कस्सद्विदी गाम । तत्तणसत्त्वणियेयाणं समूहो सम्भद्विदी गाम । तेण दोण्हमत्थि मेदो । उक्कस्सविहतीए उक्कस्सअद्वाधेदस्स च को मेदो ? बुधदे—चरिमणितेयस्स कालो उक्कस्सअद्वाधेदो गाम । उक्कस्सद्विदिविहती पुण सम्भणितेयाणं सम्भणितेयपदेसाणं वा कालो । तेण एत्थं पि अत्थि मेदो । एषं संते सम्भुक्कस्सविहतीएणत्थि मेदो ति एत्थं कण्ठिअं । ताएणं पि णयभिससबसण कथंचि भेदुपसंभादो । तं जहा--समुदायपहाणा उक्कस्सविहती । अवयवपहाणा सम्भविहति ति ।

३२१ सादि०४ बुधिहो णिद्वदसो—अपेण आदसणय । तत्त ओघण मोह० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ? सादि० अद्बुधुप० । अनह० किं सादि०४ ?

समाधान—अन्तिम निवेकको जो काल है वह उक्कस्स अद्वाधेदमें कही गई उक्कस्स स्थिति है । तथा वहाँ पर रखनासे सम्पूर्ण निवेकोंका जो समूह है वह सबैस्वियि है, इसलिये इन दोनोंमें भेद है ।

शुंका—उक्कस्स विमत्थि और उक्कस्स अद्वाधेदमें क्या भेद है ?

समाधान—अन्तिम निवेकके कालको उक्कस्स अद्वाधेद कहत हैं और समस्त निवेकोंके वा समस्त निवेकोंके प्रदेशोंके कालको उक्कस्स स्थितिविमत्थि कहत हैं इसलिये इन दोनोंमें भी भेद है । ऐसा होते हुए सबैविमत्थि और उक्कस्सविमत्थि इन दोनोंमें भेद नहीं है परन्तु आश्रय नहीं करनी चाहिये, क्योंकि नय विशेषरूपी अपेक्षा इन दोनोंमें भी अन्वित् भेद पाया जाता है । वह इस प्रकार है—उक्कस्स विमत्थि समुदायप्रधान होती है और सबविमत्थि अवयवप्रधान जाती है ।

विशुपाधी—उक्कस्स अद्वाधेद सबस्वियि विमत्थि और उक्कस्सस्थिति विमत्थि य उक्कस्स प्रयोगमें आते हैं, इतना ही नहीं, इन नामवाले स्वतन्त्र अधिकार भी हैं इसलिये इनमें क्या भेद है यही कहा बननाया गया है । सुझासा इस प्रकार है—मान लो किसी जीवने मिथ्यात्वका सत्तर काड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उक्कस्स स्थितिबन्ध किया । एसी अवस्थामें सत्तर काड़ाकाड़ी सागरके अन्तिम समथमें स्थित जो निरंक है उसका उक्कस्स अद्वाधेद सत्तर कोड़ाकाड़ी सागर प्रमाण हुआ क्योंकि इतने बरस तक इसका सत्तामें रहनी योग्यता है । यह ता उक्कस्स अद्वाधेदका उदाहरण है । तथा इस उक्कस्स स्थितिबन्धके होने पर जो प्रथम निरंकने सत्तर अन्तिम निवेक तक निरंक रचना जाती है वह सबैस्वियि विमत्थि है, क्योंकि यहाँ सबे पर द्वारा सब निरंक सिंग गए हैं । अब रही उक्कस्स स्थिति विमत्थि का हममें उक्कस्स स्थितिबन्ध नाम पर प्रथम निरंकने सत्तर अन्तिम निरंक तककी सब स्थितियोंका धरण किया है । यहाँ सत्ताका प्रकरण होनेसे सत्ताकी अपेक्षा इस अन्तरको पटित कर लेना चाहिये । इतना बिनेप जानना चाहिये कि यह सब जहाँ आप उक्कस्स सम्भव है वहाँ आप उक्कस्स करना चाहिये और जहाँ आप उक्कस्स सम्भव न है वहाँ आदेश उक्कस्स मान कर लेना चाहिये ।

३२१ सादि अनादि अह और अणु अणुगमकी अपेक्षा निर्देश का प्रकारका है—आप-निर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे आपकी अपेक्षा आदेशनिर्देश उक्कस्सविमत्थि, अणुगमविमत्थि

अणादिय० ध्रुवा वा अद्भुवा वा । एवमचक्रवृ०-भवसिद्धि० । एवरि भवसि० ध्रुवं एत्थि । सेसासु मग्गणासु उवक० अणुक्क० जह० अजह० सादि-अद्भुवाओ ।

एवं सादि-अद्भुवाणुगमो समत्तो ।

§ २२. सामिचं दुविधं-जहणं उक्कस्सं च । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविदो णिद्वंसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्सट्ठिटी कस्स ? अण्णटरस्स, जो चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिं वंथंतो अच्चिदो उक्कस्ससंकिल्लेसं गदो । तदो उक्कस्सट्ठिटी पवद्धा तस्स उक्कस्सयं होदि ।

एवमोघपरुवणा गदा ।

और जघन्यविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? अनादि ध्रुव और अदध्रुव है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके ध्रुव यह विकल्प नहीं है । शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चारों सादि और अध्रुव हैं ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कादाचित्क है और जघन्य स्थितिविभक्ति क्षपकश्रेणिके सूत्रमसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है इसलिए ये तीनों सादि और अध्रुव कही हैं । किन्तु अजघन्य स्थितिविभक्तिका विचार इससे कुछ भिन्न है । वात यह है कि जघन्य स्थितिविभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्व तक अनादि कालसे अजघन्य स्थितिविभक्ति होती है इसलिए तो वह अनादि कही है और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव कही है । इसमें सादि विकल्प सम्भव नहीं है, क्योंकि एक बार इसका अन्त होने पर पुनः इसकी उत्पत्ति नहीं होती । अचक्षुदर्शन और भव्य ये दो मार्गणाएँ क्रमसे क्षीणमोह गुणस्थानके अन्त तक और अयोगिकेवली गुणस्थान तक निरन्तर बनी रहती हैं इसलिए इनमें ओघप्ररूपणा अधिकल घटित होनेके कारण वह उक्त प्रकार कही है । मात्र भव्य मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिविभक्तिका ध्रुवपना सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है । शेष मार्गणाएँ कादाचित्क हैं इसलिए उनमें चारों स्थितिविभक्तियोंके सादि और अध्रुव ये दो विकल्प कहे हैं । केवल अभव्य मार्गणा रह जाती है क्योंकि यह कादाचित्क नहीं है पर इसमें ओघके अनुसार जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति सम्भव नहीं है इसलिए इसमें भी चारों स्थितिविभक्तिया सादि और अध्रुव कही हैं ।

इस प्रकार सादि-अध्रुवानुगम समाप्त हुआ ।

§२२ स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो चतुःस्थानीय यवमध्यके ऊपर अन्त-कोडाकोडीप्रमाण स्थितिको बाधता हुआ स्थित है और अनन्तर उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त होकर जिसने उत्कृष्ट स्थितिका ग्रन्थ किया है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ २३ एवं सप्तपुत्रिणोरुप-तिरिक्त-पंचिदियतिरिक्ततिय-मणुसतिय-देव  
 भवणादि जाव सहस्तर०-पंचिदिय०-पंचि०पञ्ज०-तस-सप्तपञ्ज०-पंचमण० पंचवचि०  
 फायजागि०-भारानि०-वठध्विय०-तिभिणवद चचारिकसाय-मठिसुदभण्णाण-विईग०  
 मसजद० अचबभु० चकसुत्० पंचल० मभसिदि -अभवसिदि०-मिच्छानि०-सण्णि०  
 भाहारि ति ।

§ २४ पंचिदियतिरिक्तभपञ्ज० माइ० उक्त कस्त ? अण्णदरस्त सण्णि  
 पचि०तिरिक्तो वा मणुस्ता वा उक्तसिद्धिदि पंचिय पडिमणो होदूण द्विदिघादमफा  
 उण पंचिदियतिरिक्तभपञ्जतएमु उचवण्णो तस्त पडमसमपठववण्णन्त्यस्त  
 उक्तस्तिपा द्विटी । एवं मणुस्तभपञ्ज -भादरेइदियभपञ्ज० मुहुमेइदियपञ्जचापञ्जच  
 सन्वविगण्णिदिय-पंचिदियभपञ्ज०-भारपुरधीभपञ्ज०-भादरआठ०भपञ्ज०-भादरवण-  
 प्पदिभपञ्ज०-मुहुमपुवविपञ्जचापञ्जत-मुहुमभाउ०पञ्जचापञ्जच-मुहुमवण्णफदिपञ्ज  
 चापञ्जत सन्वणिगाद०-सन्वचाउ०-सन्वतउ०-तसभपञ्जच ति ।

§ २५ आणदादि जाव उपरिमगवञ्ज० उक्त० कस्त ? जा दम्पनिगी उक्तस्म  
 द्विदिसंतकम्मिआ पडमसमपठववण्णो तस्त । अणुदिसादि नाव सप्यइ ति माइ०

§ २६ इसी प्रकार अयाग्न चापप्ररूपणाक समान सातो शुधिबिचोके नारकी, सामान्य  
 तियप पंचेन्द्रिय तियप पंचेन्द्रिय तियच पर्याप्त योनिमती तियच सामान्य मनुष्य, पयाज  
 मनुष्य, मनुष्यनी सामान्य देव भवनवासिबोस सतर सहकार स्वग तच्छ देव पंचेन्द्रिय, पंच  
 न्द्रिय पयाज प्रस त्रसपयाज पार्थो मनोवागी, पार्थो वचनयागी, वायवागी, औशरिककाय  
 यागी, वैश्विदिन्द्रियवागी तीमो प्रदारक बन्नास आपादि चारो कयापपप्य, मत्पतानी, सुगप्तानी,  
 विमद्रशानी, असंयत, अचसुहानी पचुरइनी इण्य आदि पांच इत्याबास, अभ्य, अभव्य,  
 मिथ्यादि, संती और आहारक जीवोके जानना यादिए ।

§ २७ पंचेन्द्रिय तियच सत्यवर्षाजकोमो मादनीपकी इच्छति स्थिति विस्ते दाती इ ?  
 जा संती पंचेन्द्रिय तियच वा मनुष्य इच्छ स्थितिका पंच करक और पदास मनुष्य हाकर  
 स्थितिपा पात न करक पंचेन्द्रिय तियच सत्यवर्षाजकोमो इच्छत इच्छा इ, उमक उतम इमक  
 पदस समयमें मादनीपकी इच्छति स्थिति दाती इ । इसी प्रकार सत्यवर्षाजक मनुष्य चार पंच  
 न्द्रिय सत्यवर्षाज सूत्रम इच्छिय तथा उमक पयाज और अपयाज सभी विकल्पिय  
 पंचेन्द्रिय सत्यवर्षाज चार शुधिपीकादि अपयाज चार उतवायिक अपयाज चार  
 वनस्तरिवायिक प्रत्यक और अपयाज सूत्रम शुधिपीकायिक तथा उमक पयाज और अपयाज  
 सूत्रम उतवायिक प इमक पयाज और अपयाज सूत्रम वनस्तरिवायिक और उमक पयाज चार  
 अपयाज सभी त्रिगाइ सभी पायुकायिक, सभी अग्निवायिक और उमक सत्यवर्षाज जीवोके  
 जानना यादिए ।

§ २८ आनन स्वयमे ईच्छ इतिम मायक तच्छ देवोमें इच्छ स्थिति विमद दाती इ ?  
 विस्ते मादनीय कर्मो इच्छ स्थितिमी मता इ एता जा इच्छिगी जीव आननादि स्वयमे  
 चरत इच्छा चरके एत इतक पदस समयमें मादनीपकी इच्छ स्थिति दाती इ । अनुदिसा

उक्क० कस्स० ? अण्णदरस्स जो वेदयसम्माइट्ठी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिट्ठिग्गंतकम्मिओ पढमसमए उववण्णो तस्स ।

§ २६ एइंदिय-वादरेइंदियपज्ज० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णदरस्स जो देवो उक्कस्सट्ठिट्ठि वंधमाणो मढो पढमसमए जादो तरस उक्कस्सट्ठिट्ठी । एवं पुढवि०--आउ०--वणप्फदि०--वादरपुढवि०--वादरपुढविपज्ज०--वादरआउ० वादरआउ-पज्ज०--वादरवणप्फदि०--वादरवणप्फदिपज्जरो त्ति वत्तव्वं ।

§ २७ ओरालियमिस्स० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० देवो णेरुओ वा उक्कस्सट्ठिट्ठिवंधमाणो मढो तिरिक्खेसु उववण्णो पढमसमयओरालियमिस्सो जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिट्ठी । वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० तिग्गिग्गो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिट्ठि वंधमाणो मढो णेरुएसु उववण्णो पढमसमए वेउव्वियमिस्सो जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिट्ठी । आहार० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मा-दिट्ठी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिट्ठिसंतकम्मिओ पढमसमए आहारओ जादो तरस उव्वरिग्गिया ट्ठिट्ठी । आहारमिस्स० मोह० उक्क० कस्स ? वेदग० उक्क० पढमसमयजादस्स । कम्मइय० उक्क० कस्स ? अण्णद० चउगइओ उक्कस्सट्ठिट्ठि वंधिदूण मढो तिरिक्खेसु

लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होनी है ? मोहनीयकी तत्प्रा-योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ २६ एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो देव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिको वाधकर मरा और उक्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ उसके एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक और वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २७ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक देव या नारकी जीव मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति वाधकर मरा और तिर्यच्चोंमें उ पन्न होकर पहले समयमें औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ? वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट किसके होती है ? जो कोई एक मनुष्य या तिर्यक् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति वाध कर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होगया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति हाती है । आहारकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके तत्प्रायोग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है ऐसा कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारकाययोगी होगया उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारक-

गेरहपुत्र या उववण्णो तस्स पइमसमयउववण्णञ्ज्यस्स उक्कस्सिया ढिदी ।

§ २८ अथगद माह० उक्क० कस्स ? जो चउव्वीसविहचिमो तप्याओ ग्युकस्सहिदिसंतकम्मेण पइमसमयअथगदबंदो जादो तस्स उक्कस्सिया ढिदी । एषमफसा०-सुहुम०-नहाक्त्वाद० षत्तव्वं ।

§ २९. आभिणि०-सुद० ओहि० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सहिदि संतकम्मोण तप्यामानोण द्विदिघादमक्काऊण सम्मत्तं पडिबण्णो तस्स पइमसमय वेदयसम्माहिदस्स उक्कस्सयहिदिसंतकम्मं । एषमोहिदंस०-सम्मादि०-चंदय० षत्तव्वं । मणपण्ण० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्माहिदी संजदो तप्याओ ग्युकस्सहिदिसंतकम्मो पइमसमयमणपण्णवणाणी जादो तस्स उक्कस्सहिदि संतकम्मं । एषं संजद०-सामास्य-धेदो० परिहार०-संजदासंजद० षत्तव्वं ।

§ ३० सुक्क० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सहिदिसंतकम्मिओ द्विदिघादमकद्वसप पेष परावधिदपइमसमयमुक्कलेस्सा तस्स उक्कस्सिया ढिदी ।

मिमकाययागी हा गया वसक पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । समयक्रमयोगी बीबोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? कोई एक चारों गतिक्रम बीब मोहनीयकी स्थिति बांधकर मरा और तिर्यैष या नास्तिकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ६८. अपगतवेरी बीबोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? अनन्तानुक्रमी अनुक्रम विना वा बीबीस प्रवृत्तियोंकी सत्तावाला बीब अपगतवेरी बीबके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्ताके साथ अपगतवेरी हुआ उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार अक्रमायी सूक्ष्मसंपत्तिक संयत और यथाकामातसंयत बीबोंके रहना चाहिये ।

§ २९ अर्थभिनवोधिक्रमानी मूलज्ञानी और अर्थविज्ञानी बीबोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? इसके उत्तरमाग्य मोहनीयको उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और वा स्थितिपात व क्रमके समयक्रमके प्राप्त हुआ है उस मतिज्ञानी मूलज्ञानी और अर्थविज्ञानी ब्रह्मसम्यग्दृष्टि बीबक पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति हाती है । इसी प्रकार अर्थविज्ञानी सम्यग्दृष्टि और ब्रह्मसम्यग्दृष्टि बीबोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति रहनी चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी बीबोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? मनःपर्ययज्ञानके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक संयत ब्रह्मसम्यग्दृष्टि बीब मनःपर्ययज्ञानी हुआ उसके पहले समयमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व पाया जाता है । इसी प्रकार संयत सामाधिकसंयत क्षत्रापस्थापनासंयत परिदारविद्युदिसंयत और संयतासंयत बीबोंके रहना चाहिये ।

§ ३ गुणसत्तयापाल बीबोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? जिसके मोह नीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है वार जिसने स्थिति प्राप्त करके उसी समय गुणसत्तयाको प्राप्त कर लिया है उसे किसी भी गुणसत्तयावाला बीबके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति हाती है ।



§ ३१, खइय० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमयखइयसम्मादिट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । उवसम० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमय-उवसामिददंसणमोहस्स उवसमसम्मादिट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । सासण० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसासणसम्मादिट्ठिस्स । सम्मामि० मोह० उक्क० कस्स ? ट्ठिदिसंतकम्मघादमकाऊण पढमसमयसम्माधिच्छाइट्ठी जादो तस्स । असण्णि० एइंदियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

§ ३२ जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देशो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० ट्ठिदी कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स जहण्णट्ठिदी । एवं मणुसतिय-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि-कायजोगि०-

§ ३१ ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसने दर्शनमोहनीय कर्मकी उपशमना की है ऐसे किसी भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव स्थितिसत्त्वका घात न करके सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । असङ्गी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । तथा अनाहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—यहा पर ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके क्रमसे ज्ञायिकसम्यक्त्व, उपशमसम्यक्त्व और सासादनसम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहा गया है । सो इसका कारण यह है कि एक तो इन मार्गणाओंमें पूर्व मार्गणासे आनेपर जितना अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है उतना स्थितिवन्ध नहीं होता । दूसरे प्रथम समयके बाद उत्तरोत्तर स्थितिसत्त्व हीन होता जाता है, अतएव इन मार्गणाओंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका स्वामी प्रथम समयवाले जीवको कहा है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके तथा उसका घात न करके आना सम्भव है और ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सबसे अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है, इसलिए इसके भी उक्त प्रकारसे आनेपर उत्कृष्ट स्थिति कही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ ३२ अब जघन्य स्वामित्व प्रकृत है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे आंघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्यस्थिति किसके होती है ? किसी भी क्षपक जीवके सकपाय अवस्थाके अन्तिम समयमें अर्थात् क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य,

ओरासि० अन्नमद०—सोभक०—आमिणि० सुद० ओहि०—मणपञ्ज० सजद०—सुहुम०  
चक्खु०—अचक्खु० ओहिर्दस०—सुक० भवसि०—सम्मादि०—स्वइय०—सण्णि—आहारि चि ।

§ ३३ आदेसज गेरइएसु मोह० जह० कस्त ? अण्णद० असण्णिपच्छायदस्त  
विदियसमयविग्गहे बहमाजस्त तस्त जहण्णिजा डिदी । एवं पढमपुडबि०—देव  
मवण०—वाण० पत्तम्भं । निदियादि जान इदि चि माह० जह० कस्त ? अण्णद० जो  
उक आउअहिदीए उवनण्णो अप्पिदपुडबिसु अंतोसुहुत्तेण पढमसमत्त पडिबण्णिय  
पुणा अंतोसुहुत्तेण अणंतापुबंधिचउक्कं विसंनोइय चरिमसमयणिप्पिदमागओ तस्त  
अहण्णिजा डिदी । एवं जोइसि० ।

§ ३४ सचमाए पुडपीए मोह० जह० कस्त ? अण्णद० जो उक० आउअहिदीए  
उवनण्णो अंतोसुहुत्तेण पढमसमत्त पडिबण्णो पुणो अणंतापुबंधिचउक्कं विसंनोइय

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके तथा पंचन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त ब्रह्म,  
ब्रह्म पर्याप्त पाँचों मनोयोगी पाँचों बचनयोगी क्षमयोगी औदारिककारयोगी अपगतबेबी,  
लोमक्यायी आमिनिबोधिक्यानी, भुतजानी अचधिजानी मनःपययजानी संयत सूक्ष्मसांपर-  
यिकसंयत चक्षुइसैनी अचक्षुइसैनी अचधिइसैनी हुक्कलेइपाबास, मध्य, सम्भट्टि,  
चाक्किस्तम्भट्टि, संघी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३ आदेसकी अपघा नरकियोंमें माहनीय की ब्रह्मन्व स्थिति किसके होती है ? जो असेंकि-  
बोमेंसे नरकमें आया है और जो विपद्गतिके वृत्ते समयमें विद्यमान है ऐसे नारकीके मोहनीयकी  
ब्रह्मन्व स्थिति होती है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी जीवोंके तथा सामान्य देव भवन  
बासी और व्यन्तर देवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—असेंकी जीव नरकमें उत्पन्न हो सकता है और वृत्तेके विपद्गतिके असेंकीके  
योग्य स्थितिके होता है इसलिये यहां असेंकियोंमेंसे आप हुए नारकी जीवके द्वितीय विपद्में  
अपग्य स्थिति कही है । मात्र ऐसे असेंकी जीवके प्राक्तन सत्त्व तत्त्वायोग्य अपग्य स्थितिके  
अधिक नहीं होना चाहिए । यह असेंकी प्रथम नरकके समान भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें भी  
उत्पन्न होता है इसलिये प्रथम नरक सामान्य देव भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें यह  
स्वामित्व इसी प्रकार दिया है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें माहनीयकी अपग्य स्थिति  
किसके होती है । जो कोई एक जीव दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक अपनी अपनी  
पृथिवीके अनुसार छट्टट आसुओ लेकर उत्पन्न हुआ है, तथा जिसने उत्पन्न होकर अन्तर्महूर्त  
कालके बाद प्रथमोपशम सम्पत्त्वको प्राप्त करके अनन्तर अन्तमु हुर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी  
अनुपककी विन्यासना की है उस जीवके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें माहनीयकी अपग्य  
स्थिति होती है । इसी प्रकार क्यातिपा देवोंके मोहनीयकी अपग्य स्थिति जाननी चाहिए ।

§ ३४ मातवी पृथिवीमें मोहनीयकी अपग्य स्थिति किसके होती है ? जो छट्टट आसुओ  
लेकर सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ तथा अन्तमु हुर्त कालके पश्चात् जिसने प्रथमोपशम सम्पत्त्व

अंतोमुहुत्तं जीवियमत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो जावदि सका ताव संतकम्मस्स हेटा वंधिय से काले समट्ठिदि वंधिय बोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं ।

§ ३५ तिरिक्खगदं मोहं जहं कस्स ? अण्णदरस्स जो एइंदियो हदसमु-पत्तियं काऊण जाव सका ताव संतकम्मस्स हेटा वंधिय से काले समट्ठिदि बोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । एवं सव्वएइंदिय-पंचकायं-ओरालियमिस्स-कम्मइयं-मदि सुदअण्णाण-असंजदं-तिण्णि लेस्सा-अभच्च-मिच्छादि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ३६. पंचिदियतिरिक्खतियम्मि मोहं जहं कस्स ? जो एइंदियपच्छायदो ट्ठिदीए कयहदसमुप्पत्तियो पढभविदियविग्गहे वट्टमाणो तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । एवं पंचिदियतिरिक्खअपज्जं-मणुसअपज्जं-सव्वविगलिदिय-पंचिं-अपज्जं-तस अपज्जत्ते त्ति वत्तवं । णवरि विगलिदिएसु सत्थाणे वि सामित्तमविरुद्धं दट्ठवं ।

§ ३७. सोहम्मीसाणादि जाव सव्वट्ठं मोहं जहं ? अण्णदं दो वारे

प्राप्त किया है, पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना करने वहा रहा और जब जीवनेमें अन्तमुहूर्त काल शेष रह जाय तब मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जहा तक शक्य हो वहा तक सत्तामें स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें जो सत्तामें स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३५ तिर्यचगतियं मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो कोई एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिको करके जय तक शक्य हो तब तक सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पाचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्र काययोगी, कार्मण काययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असञ्ची और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिनी इन तीन प्रकारके तिर्यचोमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो एकेन्द्रियोंमेंसे लौटकर आया है, जिम्ने स्थाितका हतसमुत्पात्तक किया है और जो पहले या दूसरे विग्रहमें स्थित है उस पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त या योनिनी तिर्यचके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच लव्य-पर्याप्तक, मनुष्य लव्यपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लव्यपर्याप्तक और त्रस लव्यपर्याप्तक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रिय जीवोंमें स्वस्थानकी अपेक्षा भी स्वामित्वके कथन करनेमें कोई विरोध नहीं आता । अर्थात् जो विकलेन्द्रियोंमेंसे भी विकलेन्द्रियोंमें लौटकर आया है उसके भी जघन्य स्थितिसत्त्व हो सकता है ।

§ ३७ सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी जघन्य

उभसमसदिमाकडो पच्छा दंसणमोई स्वविय अप्पण्णो उक्कस्ताउद्विदीए उववण्णो तस्स धरिमसमयणिप्फिदमाणयस्स जहण्णायं द्विदिसंतकम्मं ।

§ ३८ वेठविय० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० सम्बद्ध० देवस्स स्वइय सम्मादिद्विस्स उवसंतकसायपच्छायदस्स सगसगुक्कस्माउद्विदिचरिमसमए वेठविय कायजोगे षट्ठमाणस्स तस्स जहण्णाय द्विदिसंतकम्मं । षठ्ठवियमिस्स० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० स्वइयसम्मा० उवसंत० पच्छायदस्स धरिमसमयवठवियमिस्स कायनोगिस्स जहण्णायं द्विदिसंतकम्मं । आहार० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० स्वइयसम्माइद्विस्स स काले मूलसरीरं पविसंतस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । आहारमिस्स० माह० जह० कस्स ? अण्ण० स्वइयसम्मा० से काले सरीरपज्जतिं कोइदि (काइदि) ति तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ३९ षट्ठाणुवावेण इत्थिवेद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० अणियद्विस्वयमो धरिमसमए इत्थिवेदंभा तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । एवं पुरिस०-बाबुंस० षट्ठव्यं ।

§ ४० कोइ०-माप०-माय० जह० कस्स ? अण्णद० अणियद्विस्वयमो

स्विति किसके होती है ? जो कोई एक जीव उपशममेयी पर दो चार बड़ा है अनन्तर पशुनमाह नीयका जब करके आयुक्रमी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्वितिको लेकर सौभर्मादिमें उत्पन्न हुआ है उसके बहासे निकलनेके अन्तिम समयमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व होता है ।

§ ३८ वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी अपन्य स्विति किसके हाती है ? जो चायिकसम्बन्धट्टि उपशान्तकपाय गुणस्थानसं सर्धार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ तथा जो अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें वैक्रियिकत्रययोगमें विद्यमान है उस सर्वावसिद्धिमें रहनेवाले वैक्रियिककाययोगी जीवके मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व होता है । वैक्रियिकमित्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी अपन्य स्विति किसके हाती है ? या चायिकसम्बन्धट्टि जीव उपशान्तकपाय गुणस्थानसे आकर वेधोंमें उत्पन्न हुआ है उसके वैक्रियिकमित्रकाययोगके अन्तिम समयमें अपन्य स्वितिसत्त्व होता है । आहारकमित्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व किसके होता है ? जो चायिकसम्बन्धट्टि आहारकाययोगी जीव उपशान्तकपाय गुणस्थानसे आकर वेधोंमें उत्पन्न हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व होता है । आहारकमित्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व किसके होता है ? या चायिकसम्बन्धट्टि आहारकमित्रकाययोगी जीव उपशान्तकपाय गुणस्थानसे आकर वेधोंमें उत्पन्न हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व होता है ।

§ ३९ वेदमाणाक अनुवावसे श्रीवरी जीवोंमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व किसके होता है ? या श्रीवरी अनिष्टविद्यपक जीव है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व हाता है । इसी प्रकार पुरुषवरी और नपुंसकवरी जीवोंके मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व कहा जादिय ।

§ ४० अथ मान आर मायाकायवाले जीवोंमें मोहनीयका अपन्य स्वितिसत्त्व किसके

अप्पणो चरिमसमए वट्टमाणो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । अकसा० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० चरिमसमयअकसायस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । विहंग० मोह० जह० क० ? अण्ण० जो उवरिमगेवज्जदेवो चउवीससतकम्मिओ अवसाणे मिच्छत्तं गंतूण चरिमसमयविहंगणाणी जादो तस्स० जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ४१ सामाइय-छेदो० जह० कस्स ? अण्ण० अणियट्ठिखवओ चरिमसमय-सामाइय-छेदोवट्टावण० संजमो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । परिहार० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० जो दो वारे उवसमसेहिं चट्ठिय पच्छा खविददंसण-मोहणीओ देवेषु तेत्तीससागरोवममेत्ताउट्ठिट्ठिमणुपालिय मणुस्सेसुववज्जिय समय-विरोहेण पडिवण्णपरिहारसुद्धिसंजमो तस्स चरिमसमयपरिहारसुद्धिसंजदस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । संजदासंजद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो खइयसम्मा० परिहारस्स भण्णदविहाणेणागंतूण चरिमसमयसंजदासजदो जादो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ४२, तेउ०-पम्म० परिहार०भंगो । णवरि चरिमसमयतेउपम्मलेस्सालावो कायवो ।

होता है ? जो अनिवृत्तिसत्त्वक क्रोध, मान और मायाकपायके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । अकषायी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि 'अकषायी' जीव है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । विभगज्ञानी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? चौबीस प्रकृतियोंकी रूत्तावाला जो उपरिम अथैयकका देव आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर विभगज्ञानी हो गया है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ४१ सामायिक और छेदोपस्थापना सयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो अन्तिम समयवर्ती अनिवृत्ति क्षपक है उस सामायिकसयत और छेदो-पस्थापना सयत जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । परिहारविशुद्धि सयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? दो बार उपशमश्रेणीपर चढ़कर अनन्तर जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय किया है ऐसा जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न होकर और वहा तेतीस सागर प्रमाण आयुको समाप्त करके अनन्तर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर जिस प्रकार आगममें वताया है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि सयतको प्राप्त हुआ है उस परिहारविशुद्धि सयतके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । सयतासयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि परिहारविशुद्धि सयत जीव आगममें जिस प्रकार विधि वताई है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि सयतको त्यागकर संयतासयत हो गया है उस सयतासयतके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ४२ पीतलेरया और पद्मलेरयावाले जीवोंके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व परिहार

१४३ वेदग० मोह० अह० क० ? अण्णाद० चरिमसमयअवस्तीणार्दसणमोहणी यस्स अह० द्विदिसंतकम्मं । उवसम० मोह० अह० क० ? अण्णा० उवसमसदीए द्विदि घार्द कादूण अघद्विदिगसणाए च गाल्लिय से काखे वेदयसम्मादिदी होद्विदि चि ओ द्विदो तस्स अह० द्विदिसंतकम्मं । सासण मोह० अ कस्स ? अण्णाद० चरिमसमय० सासण० तस्स अह० द्विदिसंतकम्मं । सम्मामि० मोह० अ० क० ? अण्णाद० षड्डीस- संतकम्मिओ जो चरिमसमयसम्मामिष्सादिदी तस्स अह० द्विदिसंतकम्मं ।

एवं सामिच समच' ।

१४४ कालो दुबिहो—अण्णाओ उवस्सओ वेदि । तत्थ उवस्सए पयदं । दुबिहो जिहेसो—ओपण अद्वेसेण य । तत्थ ओपेण मोह० उवस्सद्विदी केवचिरं कात्मदो होदि ? अह० एगसमओ, उव० अंतोमुहुत्त । अणुक० केवचिरं ? अह० अंतोमुहुत्त, उव० अर्णतकालम्मसंसेजा पोभासपरियहा । एवं मदि-मुदअण्णाण०-असंबद० अचक्खु० मय० अयम०-मिष्सादि० चि वचम्भं ।

विद्युत्संबत बीबोंके समान जानना चाहिये । इतनी विद्योक्ता है कि पीतलेरवा और पपत्लेरवा- बाले बीबके मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व करते समय अन्तिम समयमें पीतलेरवा और पपुम- लेरवा प्राप्त करने के लक्षण कबन करना चाहिये ।

१४३ वेदकसम्पत्ति बीबोंमें मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जिसके वर्तनमोहनीयका अण्ण नहीं हुआ है ऐसे वेदकसम्पत्ति बीबोंके अन्तिम समयमें मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व होता है । उपसमसम्पत्ति बीबोंमें मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो उपसमसम्पत्ति बीब उपसममेघीमें स्थितिपात करके और अघस्तन- स्थिति गलनके द्वारा स्थितिका गला कर तदनन्तर समयमें वेदकसम्पत्ति होगा उसके मोह नीयका अण्ण स्थितिसत्त्व होता है । सासादनसम्पत्ति बीबोंमें मोहनीयका अण्ण स्थिति सत्त्व किसके होता है ? जो सासादनसम्पत्ति हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व होता है । सम्पगिमध्याद्वि बीबोंमें मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व किसके होता है । बीबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो बीब सम्पगिमध्याद्वि हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अण्ण स्थितिसत्त्व होता है ।

इस प्रकार स्वामित्वाद्युयोगद्वार समझ हुआ ।

१४४ अल दो प्रकारका है—अण्णअल और उवह्य अल । इनमेंसे पहले उवह्य अल का प्रकार है । इसकी अपेक्षा निर्देस दो प्रकारका है—ओपनिर्देस और आदेसनिर्देस । इसमें से ओपकी अपेक्षा मोहनीयके उवह्य स्थितिसत्त्वका अल कितना है ? अण्णअल एक समय और उवह्यअल अन्तर्मुहृत है । मोहनीयकी अणुह्य स्थिति सत्त्वका अल कितना है ? अण्ण अल अन्तर्मुहृत और उवह्यअल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमास है जिसका प्रमास अतन्तअल है । इसी प्रकार अल्ल्यानी, मुताय्यानी, असंयत, अचक्खुद्वैती, अण्ण, अण्ण और मिष्साद्वि बीबोंके करना चाहिये ।

§ ४५ आदेसेण गिरयगईए गेरइएसु मोह० उक्क० केवचि० ? जह० एगसमओ, उक्क० अतोमु० । अणुक्क० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि । पढमादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० केवचिरं० ? जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० एकक० तिण्णि० सत्त० दस० सत्तारस० वावीस० तेत्तीससागरोवमाणि ।

§ ४६ तिरिक्ख० मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं कायजोगि०-णवुंस० वत्तव्वं ।

**विशेषार्थ**—मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थिति सत्त्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । उत्कृष्ट स्थिति बन्धकी व्युच्छित्ति होने पर पुनः उसका बन्ध क्रमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही होता है । इस बीच अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध होने लगता है और सत्त्व भी अधःस्तन स्थिति गलनाके द्वारा उत्तरोत्तर न्यून होता जाता है इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा सद्भी पचेन्द्रिय-पर्याप्त पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल होनेसे इस कालमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व रहता है, इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है । यहाँ अन्य जितनी मार्गाएँ गिनाई हैं उनमें ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है ।

§ ४५ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—यहा सर्वत्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओघके समान घटित कर लेना चाहिए । नरकमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय निम्न प्रकार होता है—जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको बाधा है और तीसरे समयमें मरकर जो अन्य पर्यायको प्राप्त हो गया उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ४६ तिर्यचोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असख्यात् पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । इसी प्रकार काययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ४७ पंचिन्द्रियतिरिक्त्वतियमि मीह० उक्क० कव० ? जह० एगसमभो, उक्क० मतोमुहुर्चं । अणुक्क० कव० ? अह० एगसमभो, उक्क० सगसगुक्कस्तद्विदी । एवं मणुसतियस्त ।

§ ४८ पंचि०तिरिक्त्वअपञ्च० माह० उक्क० केच० ? अहणुक्क० एगसमभो । अणुक्क० केच० ? अह० सुदामवगहणं समठणं, उक्क० अतोमुहुर्चं । एवं मणुस-अपञ्च० ।

**विशुपार्थ**—तिर्यँचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्यकाल एक समय नारकियोंके समान पटित कर लेना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आपके समान पटित कर लेना चाहिये । अब जोई जीव अमंशपात पुद्गल परिवर्तनकाल तक पंचेन्द्रिय पयायमें निरन्तर रहता है उस उसके कर्मयोग और नपुंसकधेइ ही होता है अतः काययोग और नपुंसकधेइमें मी मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिक काल तिर्यँचोंके समान बन जाता है । शेष कर्मन मुगम है ।

§ ४९ पंचेन्द्रिय तियच पंचेन्द्रिय तियच पयाय और घानिमती तिर्यँचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिक सत्त्वकाल कितना है ? अचम्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहुर्च है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? अचम्य एक समय और उत्कृष्ट अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशुपार्थ**—उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अचम्य और उत्कृष्ट काल आपके समान तथा अनुत्कृष्ट स्थितिक अचम्य काल एकसमय नारकियोंके समान पटित कर लेना चाहिये । इनका सुखासा इन पहले कर ही भाये हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि किसी भी तिर्यँचके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे मीठर मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका कर्म न हो यह सम्भव है । यहाँ स्थितिसे कायस्थिति का प्रमाण करना चाहिये । इसी प्रकार अचम्य मी अहं भवस्थितिसे कायस्थिति अधिक हो अहं मी स्थिति पक्ष अयस्थितिका ही प्रमाण करना चाहिये । उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंकी कायस्थिति क्रमसे पंचान्ते पूर्वकोटि अधिक तीन पत्त्य, सैतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्त्य और पन्त्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पत्त्य होती है । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीक मी इसी प्रकार जानना चाहिये । इनकी कायस्थिति क्रमशः सैतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्त्य धेइस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्त्य और साठ पूर्वकोटि अधिक तीन पत्त्य होती है ।

§ ४८ पंचेन्द्रिय तियच अचम्यपयायकर्मि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? अचम्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिक सत्त्वकाल कितना है ? अचम्य एक समय कर्म सुदामवगहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तमु हुर्च है । इसी प्रकार अचम्यपातक मनुष्यके जानना चाहिये ।

**विशुपार्थ**—पंचेन्द्रिय तियच अचम्यपयायकर्मके कर्मसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती गयी । हाँ जिसम सैत्री पयाय अचम्यमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिक कर्म किया और वह स्थिति प्राप्त न करके अन्तमु हुर्च कालके जानपर मरकर उक्त जोशोंमें जन्मन हो, गया ता उसके



§ ४६. देवाणं णारगभगो । भवणादि जाव सहस्सार त्ति उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणुक्कणो उक्कस्सट्ठिदी । आणदादि जाव सन्वट्ठ० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहणुक्कट्ठिदी० समऊणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी सणुणा ।

§ ५० एइदिएसु मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० एगस० । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहण, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं वादरेइदिय० । णवरि अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्सकालो वादरट्ठिदी । वादरेइदियपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए एइदियभगो । अणुक्क० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं (एगसमयूणं), उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।

उत्पन्न होनेके पहले समयमें अपनी पर्यायमें सम्भव स्थितिकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अत इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम खुदाभव-ग्रहण प्रमाण प्राप्त होता है । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त बतलाया है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है । मनुष्य लब्धपर्याप्तकोंके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल घटित कर लेना चाहिए ।

§ ४६ देवोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल नारकियों के समान जानना चाहिये । भवनवासियोंसे लेकर सहस्सारस्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों सत्त्वकाल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट अपनी अपनी सम्पूर्ण उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—आनतसे सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयु नहीं होती अतः वहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम तेतीस सागर और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर होगा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५० एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय जीवोंके कहना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल वादर स्थिति प्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा इनके

§ ५१ वादरेइदियअपज्ज०-सुहुमेइदियअपज्ज०-बिगलिदियअपज्ज०-पंचिदियअपज्ज०-पंचकाय०-बादरअपज्ज०-तसि सुहुमअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तमंगा ।

§ ५२ सुहुमेइदिय० उक्क० वेव० ? अइण्णुक्कस्सेण एयसमओ । अणुक्क० अइ० सुहामवग्गहणं समउणं, उक्क० असंसेजा खागा । एवं पंचकायसुहुमाणं पच्चचार्यं ।

§ ५३ सुहमेइदियपज्ज० कप० ? अइण्णुक्कस्सेणेगसमओ । अणुक्क० अइ० अंतोसुहुत्तं समयूणं, उक्क० अंतोसुहुत्तं । एवं पंचकायसुहुम० ।

अमुत्तुष्ट स्थितिका सत्त्वकस्त कितना है ? अपन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात इबार कप है ।

विशयार्थ—एकेन्द्रियों मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सबके पहले समर्थ ही प्राप्त होती है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अवन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । साथ ही यह उत्कृष्ट स्थिति लक्ष्म्यपर्याप्तक एकेन्द्रिय और सूक्ष्म बीबोंके नहीं प्राप्त होती, अतः अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्यकस्त पूरा सुहामवग्गहण्य प्रमाय्य कहा । एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति असंख्यात पुत्रुगल परिवर्तन प्रमाय्य होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल एक प्रमाय्य कहा । बाहर एकेन्द्रिय और बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्त बीबोंकी कायस्थिति क्रमशः अंगुलके असंख्यातवें मात्र प्रमाय्य अर्थात् असंख्यातासंख्यात अक्षरपिण्डी-उत्सर्पिणी कस्त प्रमाय्य व संख्यात इबार बर्ष कस्त प्रमाय्य होनेसे इनके केवल अमुत्तुष्ट स्थितिके उत्कृष्टकालमें एकेन्द्रियोंसे अन्तर है । बाकी सब एकेन्द्रियोंके समान है । सो इसका उत्प्रेक्ष पहले किया ही है ।

§ ५१ वादर एकेन्द्रिय लक्ष्म्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय लक्ष्म्यपर्याप्तक विक्लेन्द्रिय लक्ष्म्यपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय लक्ष्म्यपर्याप्तक पांचों स्वावरकाय वादर लक्ष्म्यपर्याप्तक, पांचों स्वावर कय सूक्ष्म लक्ष्म्यपर्याप्तक और त्रस लक्ष्म्यपर्याप्तक बीबोंके पंचेन्द्रिय तिरैज लक्ष्म्यपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि समी लक्ष्म्यपर्याप्तक बीबोंके उत्कृष्ट और अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समान होता है अतः एक सब लक्ष्म्यपर्याप्तक बीबोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका कस्त पंचेन्द्रिय तिरैज लक्ष्म्यपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये ।

§ ५२ सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकस्त कितना है ? अपन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकस्त एक समय कम सुहामवग्गहण्यप्रमाय्य है और उत्कृष्ट सत्त्वकस्त असंख्यात लोक प्रमाय्य है । इसी प्रकार पांचों सूक्ष्म स्वावर कायिक बीबोंके कहना चाहिये ।

§ ५३ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक बीबोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकस्त कितना है ? अपन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकस्त एक समय कम अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट सत्त्वकस्त अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार पांचों सूक्ष्म स्वावरकायिक पर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ५४ विगलिदिय० मोह० उक्क० केव० ? जहएणुक्क० एयसमओ । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० मखेज्जाणि वाससहस्साणि । एव विगलिदियपज्जत्ताणं पि । णवरि अणुक्कस्सजहएणकालो अतोमुहुत्तं समऊणं ।

§ ५५ पचिदिय-पचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मोह० उक्क० ओघभगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

§ ५६ पुढवि०-वादरपुढवि०--आउ०-वादरआउ० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहण, उक्क० सगसगुक्क-स्सट्ठिदी । वादरपुढविपज्ज०-वादरआउ०पज्ज० उक्क० के० ? जह० एगसमओ,

§ ५४ विकलेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनो एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—सूक्ष्म एकेन्द्रियसे लेकर आगे जितनी मार्गणाश्रोमे काल कहा है उन सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमे ही प्राप्त हो सकती है, अतः सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालका कथन करते समय जहा खुदाभवग्रहण प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहा एक समय कम खुदा भवग्रहण प्रमाण जघन्य काल कहा और जहा अन्तमुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहा एक समय कम अन्तमुहूर्त प्रमाण जघन्य काल कहा । तथा जहा जो उत्कृष्ट काल सम्भव है वहा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल तत्प्रमाण कहा ।

§ ५५ पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर, पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरपृथक्त्व, त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रसकायिक, पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो हजार सागर बतलाई है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त स्थिति प्रमाण जानना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नारकियोंके घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहा भी घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६ पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, जलकायिक और वादर जलकायिक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त

उपक० एगसमभा । अणुबक० अह० अंतोमहुत्तमेगसमऊणं, उपक० सत्सेज्जाणि वाससहस्ताणि ।

§ ५७ तउ०—वादरतउ०—वादरतउपज्ज०—घाउ०—वादरनाउ०—वादरवाउपज्ज०  
उक० महुत्तपुत्तसण एगसमभा, अणुबक० अह० सुदामवमहणं समऊणं । गवरि  
पज्जत्ताणमंतांमुहुत्तं समऊणं । सव्वसिमणुत्तपुत्तसणं सगसगुत्तसहट्ठी ।

§ ५८ वणप्फदिकाइयाणमेइदियमंगो । वादरवणप्फदिकाइयाणं वादरेइ दिय

बीबोंके मोहनीपकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकास कितना है ? अपन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकास एक समय कम अन्तमुं हुते है । और उत्कृष्ट सत्त्वकाल सम्पात हजार बप है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त बीबोंके जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट कास तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य काल पन्थि करके सिद्ध भाये है वसी प्रकार यहां पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त भापि बीबोंके जानना चाहिये । किन्तु इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कासमें कुछ विशेषता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है । पृथिवीकायिक और वादर कायिक बीबोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असम्पात लोक प्रमाण्य करी है । वादर पृथिवीकायिक और वादर वादर कायिक बीबोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति उत्कृष्ट कायस्थिति प्रमाण्य करी है । तथा वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर वादर कायिक पर्याप्त बीबोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति सम्पात हजार बप प्रमाण्य करी है सो इस क्रमसे एक बीबोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट कास जानना चाहिये ।

§ ५७ अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त वायुकायिक, वादर वायुकायिक और वादर वायुकायिक पर्याप्त बीबोंके मोहनीपकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकास एक समय कम सुदामवमहणप्रमाण्य है । इतनी विशेषता है कि पर्याप्तोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकास एक समय कम अन्तमुं हुते है । तथा उपर्युक्त सभी बीबोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकास अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण्य है ।

विशेषार्थ—एक कायवले बीबोंके उनके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट कास एक समय कहा । पर्याप्त बीबोंका अपन्य कास अन्तमुं हुते और लोकका सुदामवमहण्य प्रमाण्य है अतः इस अपन्य कासमें उत्कृष्ट स्थितिके कासके एक समय पटा देन पर जो एक समय कम सुदामवमहण्यप्रमाण्य और एक समय कम अन्तमुं हुते कास बचता है वह इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य कास है । इनमेंसे कौन किसका काल है यह सुसास्ता मूलमें ही किया है । तथा अग्निकायिक और वायुकायिक उत्कृष्ट कास असम्पात लोक प्रमाण्य है । वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक उत्कृष्ट कास कायस्थितिप्रमाण्य है और वादर अग्निकायिक पर्याप्त तथा वादर वायुकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट कास सम्पात हजार बप है । इस प्रकार इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट कास ऊपर करी गई अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण्य जानना ।

§ ५८ वनस्पतिकायिक बीबोंके एकेन्द्रियोंके समान, वादर वनस्पतिकायिक बीबोंके वादर

भंगो । वादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ताणं वादरेइंदियपज्जत्तभंगो ।

§ ५६ पंचमण०-पंचवचि० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं वेउव्वियकाय० वत्तव्वं । ओरालि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वावीसवाससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० खुदाभवग्गहणं तिसमज्जणं, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६० वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं समज्जणं, उक्क० अंतोमु० । एवमाहारमिस्स०-उवसम०-सम्माभि० वत्तव्वं । आहार० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । (अणुक्क०) ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्त्वाद० वत्तव्वं । कम्मइय० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगस०, अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णिण समया ।

एकेन्द्रिय जीवोंके समान और वादर वनस्पतिकाधिक पर्याप्त जीवोंके वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान काल जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इनके सब प्रकारसे एकेन्द्रिय और उनके भेद-प्रभेदोंके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल वन जाता है ।

§ ५६ पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके कहना चाहिये । औदारिककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वका ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है । औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६० वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्निग्ध्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । आहारककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, सूचमसापराधिकसयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । कामरूपाकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय हैं ।

विशेषार्थ—पाचों मनोयोग और पाचों वचनयोगोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक

१६१ इत्यि० मोह० उक्क० जह० एगसमभो, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० नह० एगसमभो, उक्क० सगट्टिदी । एनं पुरिस० ।

समय और उत्कृष्ट कला अन्तर्मुहुत्तं बन जाता है । यही बात वैश्विक कालयोगमें जानना चाहिये । भौतिक कालयोगमें अनुकृष्ट स्थितिके उत्कृष्टकालमें उच्च विद्येता है । बात यह है कि भौतिक-कालयोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुत्तं कम वार्डस इत्तर वर्षभ्रमाय है और इतने काल तक जीवके इसमें मोहनीयकी अनुकृष्ट स्थिति पाई जाती है, अर्थात् भौतिककालयोगमें अनुकृष्ट स्थितिपर उत्कृष्ट काल उच्च प्रमाण कहा । भौतिक मिश्रकालयोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अर्थात् भौतिकमिश्रकालयोगमें उत्कृष्ट स्थिति का अल्प और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । पर ऐसा जीव निवृत्त्यपर्याप्त होगा । इससे सिद्ध हुआ कि अल्पवर्षात्मिक भौतिक मिश्रकालयोगके अनुकृष्ट स्थिति ही होती है । अब यदि कोई जीव तीन मोहा क्षेत्र एकत्रिय सत्त्वप्रपातकोंमें लपन हो तो उसके द्वाराभवप्रणयप्रमाण कालमें से तीन समय और कम हो जायेंगे अर्थात् भौतिकमिश्रकालयोगमें अनुकृष्ट स्थितिका अल्पकाल तीन समय कम द्वाराभवप्रणयप्रमाण कहा । तथा इसके अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहुत्तं होता है यह स्पष्ट ही है । वैश्विकमिश्रकालयोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अर्थात् इसके उत्कृष्ट स्थितिका अल्प और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिके इस एक समयमें कम कर देन पर जो वैश्विकमिश्रकाल एक समय कम अन्तर्मुहुत्तं काल शेष रहता है वह अनुकृष्ट स्थितिका अल्प काल है । वैश्विकमिश्रकालयोगमें अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहुत्तं होता है यह स्पष्ट ही है । आहारकमिश्रकालयोगी, उपश्रमसम्बन्धि और सम्बन्धित्याद्यदि जीवके भी इसी प्रकार कवन करना चाहिये क्योंकि इनके भी पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है, अर्थात् इनके उत्कृष्ट स्थितिपर अल्प और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है । तथा इस एक समयमें कम कर देन पर उक्त मार्गशास्त्रोंका जो एक समय कम अन्तर्मुहुत्तं प्रमाण काल शेष बचता है वह उनकी अनुकृष्ट स्थितिका अल्प काल है और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर्मुहुत्तं होता है यह स्पष्ट ही है । आहारककालयोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अर्थात् इसमें उत्कृष्ट स्थितिपर अल्प और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो जीव एक समय तक आहारक कालयोगके साथ रहकर दूसरे समयमें मर्यादादि निमित्तोंसे अन्य योगको प्राप्त हो बात है इनके अनुकृष्ट स्थितिका अल्प काल एक समय पाया जाता है अर्थात् आहारक कालयोगमें अनुकृष्ट स्थितिका अल्प काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहुत्तं आहारक कालयोगके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा । अपगतवेदी अकपायी, सूक्ष्मसंप्रदायिक संयत और पचासमातसंयत इन मार्गशास्त्रोंकी स्थिति आहारक कालयोगके समान है अर्थात् इनमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका काल आहारककाल योगके समान कहा । कामसाध्य योगके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अर्थात् इसमें भी उत्कृष्ट स्थितिपर अल्प और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा कर्मसुखकालयोगका अल्प काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है अर्थात् इसमें अनुकृष्ट स्थितिपर अल्प काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है ।

१६१ स्त्रीवही जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिपर अल्प सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहुत्तं है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका अल्प सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पुरुषवही जीवके कर्मा चाहिये ।

§ ६२ चत्तारिकसाय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६३ विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि अणुक्क० उक्क० तेत्तीस सागरो० अंतोमुहुत्तणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० द्वावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेटयसम्मादि० । णवरि देटयसम्पत्तिमि अणुक्क० द्वावट्टि-सागरोवमाणि । मणपज्ज० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुक्कवोडी देसूणा । एव संजद०-परिहार०-संजदासंजद० । सामा-इय-छेदो० एवं चेव । णवरि अणुक्क० जह० एगसमओ । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

विशेषार्थ-स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओषके समान घटित कर लेना चाहिये । जो स्त्रीवेदसे अपगतवेदको प्राप्त हुआ जीव उपशमश्रेणीसे उतरते हुए एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर अन्य-वेदी हो गया उस स्त्रीवेदीके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । या जिस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी जीवने उत्कृष्ट स्थितिके पश्चात् एक समयके लिये अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया और दूसरे समयमें वह मर कर अन्यवेदी हो गया उस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदीके अनु-त्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी पत्योपमशतप्रथक्त्व व सागरोपमशतप्रथक्त्व स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६२ चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तात्पर्य यह है कि चारों कपायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमें उक्त प्रमाण काल बन जाता है ।

§ ६३ विभगजानी जीवोंके सातवीं पृथिवीके समान जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर है । आभिनि-वोधिकजानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधि-दर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेद-कसम्यक्त्वमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पूरा छयासठ सागर है । मन पर्ययज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार सयत, परिहारविद्युत्त्रिमयत और संयतासयत जीवोंके जानना चाहिये । तथा सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । पर

§ ६४ किण्व०-गीस०-काठ०-तेर०-पम्म० मोह० उक्क० अघमगो ।  
अणुक्क० नह० मंतोमु० एगसमआ, उक्क० सगुक्कस्तडिदी । सुक्क० मोह०  
उक्क० नहणुक्क० एगसमआ । अणुक्क० नह० मंतोमु०, उक्क० तपीस सागरोव

इतनी विशेषता है कि इनके अनुकृत स्थितिका अल्पस सत्त्वकास एक समय जाता है। बहु-  
दशैनी बीषोंमें त्रसपयातकोंके समान जानता चाहिये ।

**विशेषार्थ**—विमगदान पर्याप्त अवस्थामें ही होता है अतः इसके अनुकृत स्थितिके अल्प  
कासको अन्तर्मुहूर्त कम वेतीस सागर कहा। शेष कथन सुगम है। आमिनिवाधिक छानी, मुतिछानी  
और अश्विछानी बीषोंके अल्प स्थितिका प्राप्त होना पहले समबमें ही सम्भव है अतः इनके अल्प  
स्थितिक अल्प और अल्पकास एक समय कहा। जो बीष अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दृष्टि रहा परचात्  
सम्यक्त्वसे प्युव हो गया या सम्यक्त्व प्राप्तिसे यात्र जिसने अन्तर्मुहूर्तमें कबलदान प्राप्त कर  
लिया उसके एक तीन छानोंके उद्ये हुए अनुकृत स्थितिका अल्पस कास अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।  
तथा आमिनिवाधिकदान अल्पदान और अश्विदानअ अल्पकास चार पूर्वोक्ति अधिक अर्पासठ  
सागर है अतः इनके अनुकृत स्थितिक अल्प कास साधिक अर्पासठ सागर कहा। यहाँ पर  
अधिकसे चार पूर्वोक्तियोंका प्रत्ये करना चाहिये। अश्विदशनी सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि  
बीषक भी इसी प्रकार अल्प और अनुकृत स्थितिका कास करना चाहिये। किन्तु अल्पसम्यक्त्व  
का अल्प कास पूरा अर्पासठ सागर है अतः इसके अनुकृत स्थितिक अल्प कास पूरा अर्पा  
सठ सागर जागा। जो बीष मनापर्यवधानको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें ही अल्प स्थिति  
सम्भव है अतः मनापर्यवधानीके अल्प स्थितिका अल्प और अल्प कास एक समय कहा।  
तथा मनापर्यवधानका अल्प कास अन्तर्मुहूर्त और अल्प कास कुछ कम पूर्वोक्ति प्रमाण है,  
अतः इसके अनुकृत स्थितिका अल्प कास अन्तर्मुहूर्त और अल्प कास कुछ कम पूर्वोक्ति  
प्रमाण कहा। यहाँ कुछ कमसे आठ वष अल्प हुए लिया है। पूर्वोक्तिमेंसे इतना कास कम कर  
देना चाहिये। संबत, परिहारविद्युत्संयत और संयतासंयतकी स्थिति मनापर्यवधानके समान  
है अतः इनमें अल्प और अनुकृत स्थितिके अल्पको मनापर्यवधानके समान कहा। परन्तु  
इतनी विशेषता है कि परिहारविद्युत्संयत अल्प कास १८ वर्ष कम एक पूर्वोक्ति वष है और  
संयतासंयत अल्प कास अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वोक्ति वष है। जो बीष उपशमनेशीसे  
उतर कर और एक समय तक नीचे गुणस्थानमें रह कर भर जाता है उसके सामाधिक और वेद-  
पस्थापना संयतका अल्प कास एक समय पाया जाता है, अतः इनके अनुकृत स्थितिका  
अल्प कास एक समय बन जाता है। शेष कथन मनापर्यवधानके समान है। त्रसपयातसं बहु-  
दशैनीकी स्थितिमें अन्तर नहीं है अतः बहुदशैनीके अल्प और अनुकृत स्थितिक कास त्रस  
पर्याप्तके समान कहा।

§ ६५ कृष्णदेववाकल नीलनेरवाकल वापातल वाकले, पीतसेरवाकल और पद्मनेरवा-  
कले बीषोंके मोहनीयकी अल्प स्थितिक अल्पकास आपक समान है। तथा अनुकृत  
स्थितिका अल्पस अल्पकास मार्मकी तीन श्रेण्यापार्लोंके अल्पमुहूर्त और पीत तथा पद्मनेरवा-  
कलोंके एक समय है। तथा अल्प अल्पकास अल्पमी अपनी अल्प स्थितिप्रमाण है। अल्प  
श्रेण्याकल बीषोंके माहनीयकी अल्प स्थितिक अल्प और अल्प अल्पकास एक समय है।



माणि सादिरैयाणि । एवं खड्य० वत्तव्वं ।

§ ६५ सासण० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० एग-  
समओ, उक्क छ आवलियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । असण्णि० एइंदियभंगो ।  
आहारि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिटी ।  
अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक तेतीस सागर  
है । इसी प्रकार चायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मरते समय यदि अशुभ लेश्या हो तो दूसरी पर्यायमें उत्पन्न होने पर अन्तर्मु-  
हूर्त काल तक वही लेश्या बनी रहती है पर पीत और पद्म लेश्याकी यह बात नहीं, क्योंकि  
उक्त लेश्यावाला यदि कोई देव तिर्यचोमें उत्पन्न होता है तो उसके तिर्यच पर्यायमें कापोत लेश्या  
हो जाती है, अतः तीन अशुभ लेश्याओंमें अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त  
होता है । तथा पीत और पद्म लेश्यामें अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त हो  
जाता है । जैसे किसी पीत या पद्म लेश्यावाले देवने आयुके उपान्त्य समयमें मोहनीयका उत्कृष्ट  
वध किया और अन्तके एक समयमें पीत तथा पद्म लेश्याके साथ अनुकृष्ट स्थिति विभक्तियाला हो  
गया । फिर मरकर तिर्यचोमें उत्पन्न होनेसे लेश्या पलट गई । इस प्रकार पीत व पद्मलेश्यामें अनुकृष्ट  
स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है । शुक्त लेश्याके तो पहले समयमें ही उत्कृष्ट  
स्थिति सम्भव है अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा ।  
लेश्याओंमें शेष कथन सुगम है । चायिकसम्यक्त्व की स्थिति शुक्त लेश्याके समान है, अतः  
इसके कथनको शुक्त लेश्याके समान कहा । इतनी विशेषता है कि शुक्त लेश्याका उत्कृष्ट काल  
अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है और चायिक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त  
क्रम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । अतः इनकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते  
समय अपना अपना काल कहना चाहिये ।

§ ६५. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट  
सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट  
सत्त्वकाल छह आवली है । सद्गी जीवोंके पुरुषवेदो जीवोंके समान जानना चाहिये । असद्गी  
जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए । आहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका  
सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कार्मण काययोगियोंके समान  
जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है, अतः  
इमके अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण प्राप्त होता  
है । किन्तु सासादनसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही प्राप्त हो सकती है । अतः इसके  
उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो आहारक उपान्त्य समयमें  
उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके अन्त समयमें अनुकृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे

§ ६६ जहण्यए पयदं बुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसणं य । तत्तय ओघेण मोह० जह० के० ? जहण्युक्कस्सेण एगसमभो । अजहण्य० अजादिओ अपज्जवसिदो अजादिओ सपज्जवसिदो वा । एवमचक्खु० भवसि० । सादिसपज्जवसिदमंगो अजहण्यस्स जत्थि; जहण्यद्विदीदो चरिससमयसुहुमसांपरायस्त्ववपस्स अनहण्यद्विदीए णिभायाभावादो । उवसंतकसाए माहोदयवज्जिदे हेहा णिवदिदे अजहण्यद्विदीए सादिणं किण्णं घेण्णदं ? वा, उवसंतकसाए वि मोह० अनहण्यद्विदीए सम्भाजुवत्तंभादो ।

§ ६७ आदेसेण णिरय० मोह० जह० अहण्युक्क० एगसमभा । अजहण्य०

समयमें मरकर अनाहारक हो जाता है उसके आहारकके अनुकूल स्थितिक लक्षण एक समय प्राप्त होता है और एककाल अंगुलके अर्कस्यातवे मास प्रमाण अर्कस्यातासंस्नात अब सर्पिणी अर्कपिणी प्रमाण है । सेव कथन सुगम है ।

इस प्रकार एककालानुगत समाप्त हुआ ।

§ ६८ अब कथन कालानुगत प्रकरण प्राप्त है । इसकी अपेक्षा निर्वेद्य को प्रकरण है—आपनिर्वेद्य और आदेसनिर्वेद्य । उनमेंसे ओषधी अपेक्षा मोहनीयकी कथन स्थितिक कितना सत्त्वकाल है ? कथन और एककाल सत्त्वकाल एक समय है । तथा अत्रकथन स्थितिक सत्त्वकाल अनादि अनन्त और अनादि-साम्त है । इसी प्रकार अपचुर्द्धनी और मय्य बीबके जानना चाहिये । अत्रकथन स्थितिक सादि-साम्त मंग नहीं है क्योंकि कथन सूत्रसांपरायिक बीबके अन्तिम समयमें मोहनीयकी कथन स्थिति होती है और उससे अथवा अत्रकथन स्थितिमें पतन नहीं होता । अर्थात् सामान्यसे मोहनीयका कथन स्थिति कथन सूत्रसांपरायिक बीबके अन्तिम समयमें होती है और वह बीब तदगन्तर बीबमाह हा जाता है पुनः वह अत्रकथन स्थितिमें ओटकर नहीं जाता है अतः अत्रकथन स्थितिक सादि-साम्त मंग नहीं है ।

शुंका—मोहनीय कर्मके अन्तसे रहित उपशान्तकथाय बीब अब नीच वृत्तों गुणस्वानमें जाता है तब उसके अत्रकथन स्थितिक सादिपना क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि उपशान्तकथायमें भी मोहनीयकी अत्रकथन स्थितिक सद्भाव पाया जाता है, अतः सामान्यकी अपेक्षा मोहनीयकी अत्रकथन स्थितिमें सादि-साम्त मंग नहीं बनता ।

विशेषार्थ—कथन सूत्रसांपरायण गुणस्वानके अन्तिम समयमें सूत्र सामक कथनरूप निरुक्त होय रहता है जो उसी समय कल रिकर निर्वाप्य हो जाता है अतः ओषधसे माहकी कथन स्थितिक कथन और एककाल एक समय कथा । तथा पूरे मोहनीयक अभाव होकर पुनः उसका सद्भाव नहीं होता, अतः ओषधसे मोहकी अत्रकथन स्थितिक कल अनादि-अनन्त और अनादि-साम्त ही होता है, सादि-साम्त नहीं । इनमेंसे अनादि अनन्त कल अमर्षोंकी अपेक्षा कथा और अनादि-साम्त कल मर्षोंकी अपेक्षा कथा । यह ओषधरूपणा अचक्षुरशेनबासे और मर्षोंके अतिक्रम बन जाती है अतः इनकी मरूपणाओ ओषधके समान कथा । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि मर्षोंके मोहकी अत्रकथन स्थितिक अनादि अनन्त विरुद्ध नहीं बनता । कथन जो मय्य अमर्षोंके समान हैं उनकी अपेक्षा यह विरुद्ध मर्षोंके भी बन जाता है ।

§ ६९ आदेससे अरक्यतिमें मोहनीयकी कथन स्थितिक कथन और एककाल

जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्टिदी । पदमाए ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज०  
 जह० एगसमओ, उक्क० सागरोवमं । विदियादि जाव छट्टि ति मोह० ज० जहण्णुक्क०  
 एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णेण जहण्णट्टिदी, उक्कस्सेण उक्कस्सट्टिदी । सत्तमाए पुढवीए  
 मोह० जहण्णट्टिदी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० ज० अंतोमु०, उक्क०  
 तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और  
 उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पहले नरकमें मोहनीयकी जघन्य  
 स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य  
 सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक सागर है । दूसरे नरकसे लेकर छठे  
 नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
 एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अपनी अपनी जघन्य स्थिति-  
 प्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सातवें नरकमें मोह-  
 नीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।  
 तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—जो असज्ञी पचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवंधमेंसे पत्यो-  
 पमके सख्यातवें भाग प्रमाण कम जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करके पुन जघन्य स्थिति सत्त्व  
 होनेके समय ही जघन्य स्थिति सत्त्वके समान स्थितिको वाधकर दो समय विग्रह करके नरकगति  
 में उत्पन्न होता है और विग्रहमें असज्ञी पचेन्द्रियके जघन्य स्थिति सत्त्वसे हीन स्थितिका वध करता  
 है उसके दूसरे विग्रहके समय मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः नरकमें जघन्यस्थितिका  
 जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा ऐसे नारकीके पहले समयमें अजघन्य स्थिति रहती है  
 अतः नरकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा नरकमें अजघन्य स्थिति  
 का उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । सामान्य नारकियोंके  
 समान पहले नरकमें भी मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अज-  
 घन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । पहले नरककी उत्कृष्ट स्थिति  
 एक सागर है अतः यहा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल एक सागर कहा । दूसरे नरकसे लेकर छठे  
 नरक तकके नारकियोंके मोहकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है  
 अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । किन्तु यह जघन्य स्थिति  
 अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके ही प्राप्त हो सकती है सो भी सबके नहीं,  
 अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपने अपने नरककी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल  
 अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयुवाला जो नारकी  
 पर्याप्त पूर्ण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अन-  
 न्तानुबन्धी स्थितिसत्कर्मकी विसंयोजना कर जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तर्मुहूर्त आयु  
 शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ पुनः मिथ्यात्वमें जितने काल तक शक्य हो उतने काल तक  
 स्थिति सत्कर्मसे हीन वध करके अगले समयमें सत्त्व स्थितिसे अधिक स्थिति वध  
 करेगा, उस जीवके जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है और जो सत्तामें स्थित  
 स्थितिके समान स्थितिवाले बर्माका वध करता रहता है उसके जघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्त-

§ ६८ विरिक्त-मोह-जहण्यद्विदी म-एगसमभो, चक-अंतोमु० । अजहण्य-अ-एगसमभो, चक-असंसेज्जा सोगा । एवं भदि-सुदअण्णाण-असंजद-अमव-मिच्छादि-असण्णि चि वचम्व । गवरि असण्णिअण्णिएसु अज अ-अंतोमु० ।

§ ६९ पंचदियतिरिक्तवचम्व मोह-जहण्यद्विदी जह-एगसमभा, चक-असमया । अजहण्य-जह-सुहाभवमाहण विसमऊण, अतोमुहुचं विसमऊण । एत्य

मुहुते होता है । तथा अजपम्य स्थितिके बाद जो अन्तमु हुते काल क्षण रह जाता है वह अजपम्य स्थितिका अजपम्यकाल है । तथा अजपम्य स्थितिका उत्कृष्टकाल सातवें नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, यह स्पष्ट ही है ।

§ ६८ तिर्यक् गतिमें मोहनीयकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमु हुते है । तथा अजपम्य स्थितिका अजपम्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार मत्पज्ञानी, भूतज्ञानी, असंभत, अमम्य मिप्यादृष्टि और असंती जीवोंके रहना चाहिय । इतनी विवेकता है कि असंशियोंके जोइकर क्षेप मत्पज्ञानी आदि जीवोंके अजपम्य स्थितिका अजपम्य सत्त्वकाल अन्तमु हुते है ।

विशेषार्थ-तिर्यक्में माहनीयकी अजपम्य स्थिति एकेन्द्रियोंके प्राप्त होती है और वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमु हुते काल तक रहती है, क्योंकि प्रत्येक स्थिति का अजपम्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमु हुते है । अतः इनके मोहनीयकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुते कहा । तथा जो तिर्यक् अजपम्य स्थितिके बाद एक समय तक अजपम्य स्थितिके साथ रहा और मरकर दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल एक समय प्राप्त जाता है । तथा तिर्यक् पर्यायमें मोहनीयकी अजपम्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है, अतः इनके अजपम्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । यह जो ऊपर सामान्य तिर्यक्के अजपम्य और अजपम्य स्थितिका काल कहा वह एकेन्द्रियोंकी प्रधानतासे कहा है और एकेन्द्रिय पर्यायके रहत हुए मत्पज्ञान भूतज्ञान असंभत, अमम्य मिप्यादृष्टि और असंती व समांखार्ये सम्भव हैं ही अतः इनका कवन तिर्यक्के समान जानना । किन्तु ऊपर अजपम्य स्थितिका अजपम्यकाल जो एक समय कहा है वह असंती अजपम्यमें ही प्राप्त होता है क्षेप मार्गलाभोंमें नहीं क्योंकि जो जीव अजपम्य स्थितिके बाद एक समय तक अजपम्य स्थितिका प्राप्त हुआ और उपनन्तर मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है इसका असंती मार्गला भा बल जाती है पर ऊपर कही हुई मार्गलायें नहीं वरसती अतः मत्पज्ञानी आदि व्यक्तिके क्षेप मार्गलाभोंमें अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल अन्तमु हुते जानना चाहिये ।

§ ६९ पंचत्रिय पंचत्रिय पञ्चाल योमिमती और मध्यपञ्चाल इन चार प्रकारके तिर्यक्में माहनीयकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल का समय है । तथा अजपम्य स्थितिका अजपम्य सत्त्वकाल पंचत्रिय तिर्यक् और मध्यपञ्चाल एकेन्द्रियतिर्यक्में का समय कम सुराभयमध्य प्रमाण और क्षेप का प्रकारके तिर्यक्में का समय कम अन्तमु हुते है । यहां मूलोच्चारणाका पाठ है कि अतः चारों प्रकारके तिर्यक्के अजपम्य

जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कससट्टिदी । पढमाए ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जह० एयसमओ, उक्क० सागरोवमं । विट्टियाट्टि जाव छट्टि त्ति मोह० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णेण जहण्णाट्टिदी, उक्कस्सेण उक्कस्सट्टिदी । सत्तमाए पुढवीए मोह० जहण्णाट्टिदी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पहले नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक सागर है । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अपनी अपनी जघन्य स्थिति-प्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सातवें नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—जो असद्धी पचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवंधमेसे पत्थो-पमके सख्यातवें भाग प्रमाण कम जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करके पुन. जघन्य स्थिति सत्त्व होनेके समय ही जघन्य स्थिति सत्त्वके समान स्थितिको बाधकर दो समय विग्रह करके नरकगति में उत्पन्न होता है और विग्रहमें असद्धी पचेन्द्रियके जघन्य स्थिति सत्त्वसे हीन स्थितिका वध करता है उसके दूसरे विग्रहके समय मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अत. नरकमें जघन्यस्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा ऐसे नारकीके पहले समयमें अजघन्य स्थिति रहती है अत. नरकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा नरकमें अजघन्य स्थिति का उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । सामान्य नारकियोंके समान पहले नरकमें भी मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । पहले नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है अतः यहा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल एक सागर कहा । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तकके नारकियोंके मोहकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अत. इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । किन्तु यह जघन्य स्थिति अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके ही प्राप्त हो सकती है सो भी सबके नहीं, अत. अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपने अपने नरककी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयुवाला जो नारकी पर्याप्त पूर्ण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धी स्थितिसत्कर्मकी विसंयोजना कर जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ पुन. मिथ्यात्वमें जितने काल तक शक्य हो उतने काल तक स्थिति सत्कर्मसे हीन वध करके अगले समयमें सत्त्व स्थितिसे अधिक स्थिति वध करेगा, उस जीवके जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है और जो सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिवाले वर्मका वध करता रहता है उसके जघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्त-

सुखामवन्गाहणं मंतोमुहुरां, उक्त० सगद्विदी । मशुसअपञ्ज० पंषिदियतिरिक्त्तअप  
 क्तचर्मगो ।

१७१ देव० मोह० जहण्णद्विदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगस-  
 मओ, उक्त० सगद्विदी । मवण०-वाण० मोह० जहण्णद्विदी जहण्णुक्क० एगसमओ ।  
 अजह० जह० एगसमओ, उक्त० सगसण्णुक्त्तद्विदी । बोदिसियादि जाप सम्भट्ट० पि  
 जह०द्विदि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णुक्क० जहण्णुक्त्तद्विदी ।

स्थितिका ज्ञानस्य सत्त्वकाल सामान्य मनुष्योंके क्षुरामवपणप्रमाण और क्षेत्र दोके अन्तर्मुहुर  
 है तथा उक्त सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सत्त्वपर्याप्तक मनुष्योंके ज्ञानस्य  
 और अज्ञानस्य स्थितिका काल पंचेन्द्रवर्तियज्ञ सत्त्वपर्याप्तकोंके समान जानना ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके  
 मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और उक्त काल को एक समय बतलाया है सो इसका  
 कुलासा जिस प्रकार औपम्यरूपकाके समान कर भाये हैं उस प्रकार कर लेना चाहिये । तथा  
 सामान्य मनुष्यका ज्ञानस्य काल क्षुरामवपणप्रमाण और क्षेत्र दो प्रकारके मनुष्योंका ज्ञानस्य काल  
 अन्तर्मुहुर है अतः इनके अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य काल उक्त प्रमाण कहा । तथा अज्ञानस्य  
 स्थितिका उक्त काल अपनी अपनी उक्त कालस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । इस  
 विषयमें सत्त्वपर्याप्त मनुष्यकी स्थिति सत्त्वपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यकके समान है, अतः इसके  
 ज्ञानस्य और अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और उक्त काल सत्त्वपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यकके  
 समान कहा ।

१७२ देवोंमें मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और उक्त सत्त्वकाल एक समय  
 है । तथा अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य सत्त्वकाल एक समय और उक्त सत्त्वकाल अपनी स्थिति  
 प्रमाण है । अन्तर्वासी और व्यन्तर देवोंमें मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और उक्त  
 सत्त्वकाल एक समय है । तथा अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य सत्त्वकाल एक समय और उक्त  
 सत्त्वकाल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वांसिद्धितकके देवोंके ज्ञानस्य  
 स्थितिका ज्ञानस्य और उक्त सत्त्वकाल एक समय है । तथा अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और  
 उक्त सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी ज्ञानस्य और उक्त स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सामान्य नारिक्योंके मोहनीयकी ज्ञानस्य और अज्ञानस्य स्थितिका  
 ज्ञानस्य और उक्त काल पटित करके किल भाय हैं वसी प्रकार सामान्य देवोंके पटित कर  
 लेना चाहिये । तथा अन्तर्वासी और व्यन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । जिसप बात इतनी है कि  
 इनके अज्ञानस्य स्थितिका उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि  
 इतने काल तक उनके मोहकी अज्ञानस्य स्थिति पाइ जा सकती है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वांसि-  
 द्धितकके देवोंके मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थिति उनके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अतः इनके  
 ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और उक्त काल एक समय कहा । पर यह ज्ञानस्य स्थिति उक्त  
 ज्ञानुवास्तके होती है और यह भी सक्ते नहीं अतः अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य काल अपनी अपनी  
 ज्ञानस्य स्थितिप्रमाण और उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण कहा ।

मूलोच्चारणापाठों जह० एयसमओ त्ति । तत्थायमहिष्पाओ एहंदिण्णु समयुत्तरममणिण-  
द्विट्ठि सणिणद्विट्ठिघादवसेण कादण गदस्स पढमविग्गहं तदुवलभसंभवो त्ति । उवरु-  
स्सेण सगट्ठिटी ।

§ ७० मणुसतिय० मोह० जहण्णट्ठिटी जहण्णुक्क० एगममओ । अजह० जह०

स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । इसका यह अभिप्राय है कि जो सजी एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने मन्त्रीकी स्थितिका घात किया । अनन्तर वह मरकर एक समय अधिक असञ्जीके योग्य स्थितिके साथ उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले विग्रहमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जो एकेन्द्रिय दो मोडा लेकर पचेन्द्रिय तिर्यचचतुष्कमे उत्पन्न होते हैं उनके पहले और दूसरे समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति सम्भव है अत उनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । तथा इन दो समयोंको खुदाभवग्रहणप्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालमे पटा देने पर जो दो समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण काल शेष रहता है वह पचेन्द्रिय तिर्यच और पचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक तिर्यचोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जो दो समय कम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है वह पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । इन चार प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है ऐसा मूलोच्चारणामे पाठ पाया जाता है सो उसका यह तात्पर्य है कि पहले कोई एक सजी जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर उस एकेन्द्रियने सञ्जीकी स्थितिका घात किया और ऐसा करते हुए जब उसके असञ्जीकी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक स्थिति शेष रह गई तब वह मरकर उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हो गया, इस प्रकार इन चारों प्रकारके तिर्यचोंके पहले मोडेके समय अजघन्य स्थिति प्राप्त हो गई और स प्रकार अजघन्य स्थितिका भी एक समय काल बन जाता है । वात यह है कि एकेन्द्रियोंसे लेकर असञ्जी तक जो जीव मर कर सञ्जियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके अनाहारक अवस्थामें असञ्जीके योग्य स्थितिका ही बन्ध होता है । हाँ ऐसे जीवोंके शरीर ग्रहण करनेके समयसे लेकर सञ्जियोंके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगता है । अतः ऐसे सञ्जी जीवोंके पहले और दूसरे मोडेमें असञ्जियोंकी जघन्य स्थिति भी पाई जाती है और यही इनकी जघन्य स्थिति हो जाती है । अब यदि कोई जीव एक समय अधिक असञ्जियोंकी जघन्य स्थितिके साथ सञ्जियोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले मोडेमें अजघन्य स्थिति ही कही जायगी । यही सवव है कि मूलोच्चारणामें उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी माना है । तथा उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें जिसके जितनी कायस्थिति हो उतनी उनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । किसके कितनी कायस्थिति है यह अन्यत्रसे जान लेना चाहिये ।

§ ७० सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य

सुरामवगाहनं अंतोसुहृतां, उक्त० सगटिदी । मणुसभपञ्ज० पंचिदियतिरिस्वभ्रप  
ज्वचर्मगा ।

§ ७१ देव० मोह० जहण्टिदी जहण्टुक्त० एगसमओ । अमह० जह० एगस-  
मओ, उक्त० सगटिदी । भवण०-भाण० मोह० जहण्टिदी जहण्टुक्त० एगसमओ ।  
अजह० जह० एगसमओ, उक्त० सगसगुक्तस्सटिदी । जोदिसियादि नाव सम्भट्ट० पि  
जह०टिदि० जहण्टुक्त० एगसमओ । अजहण्टु० जहण्टुक्त० जहण्टुक्तस्सटिदी ।

स्वितिका अथव्य सत्त्वकाल सामान्य मनुष्योके सुदामवप्रहणप्रमास्य और शेष दोके अन्तमु हुत  
है तथा अकृत सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमास्य है । सव्यपर्याप्तक मनुष्योके अथव्य  
और अजथव्य स्वितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यक्त सव्यपर्याप्तको समान जानना ।

विशेषार्थ-सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योके  
मोहनीयकी अथव्य स्वितिका अथव्य और अकृत काल को एक समय बतलाया है सो इसका  
जुलासा जिस प्रकार शोषप्रकरणाके समय कर आये हैं उस प्रकार कर लेना चाहिये । तथा  
सामान्य मनुष्यका अथव्य काल सुदामवप्रहणप्रमास्य और शेष दो प्रकारके मनुष्योका अथव्य काल  
अन्तमु हुते है अतः इनके अजथव्य स्वितिका अथव्य काल उक्त प्रमास्य कहा । तथा अजथव्य  
स्वितिका अकृत काल अपनी अपनी अकृत कायस्थितिप्रमास्य होता है यह स्पष्ट ही है । इस  
विषयमें सव्यपर्याप्त मनुष्यकी स्थिति सव्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यक्के समान है, अतः इसके  
अथव्य और अजथव्य स्वितिका अथव्य और अकृत काल सव्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यक्के  
समान कहा ।

§ ७२ देवोमें मोहनीयकी अथव्य स्वितिका अथव्य और अकृत सत्त्वकाल एक समय  
है । तथा अजथव्य स्वितिका अथव्य सत्त्वकाल एक समय और अकृत सत्त्वकाल अपनी स्थिति  
प्रमास्य है । मनुवासी और अन्यतर देवोमें मोहनीयकी अथव्य स्वितिका अथव्य और अकृत  
सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजथव्य स्वितिका अथव्य सत्त्वकाल एक समय और अकृत  
सत्त्वकाल अपनी अपनी अकृत स्थितिप्रमास्य है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिकके देवोके अथव्य  
स्वितिका अथव्य और अकृत सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजथव्य स्वितिका अथव्य और  
अकृत सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी अथव्य और अकृत स्थितिप्रमास्य है ।

विशेषार्थ-जिस प्रकार सामान्य नाटकियोंके मोहनीयकी अथव्य और अजथव्य स्वितिका  
अथव्य और अकृत काल पठित करके मिल आते हैं वही प्रकार सामान्य देवोके पठित कर  
लेना चाहिये । तथा मनुवासी और अन्यतर देवोके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि  
इनके अजथव्य स्वितिका अकृत काल अपनी अपनी अकृत स्थिति प्रमास्य होता है, क्योंकि  
इतने काल तक इनके मोहकी अजथव्य स्विति पाई जा सकती है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थ-  
सिद्धि तकके देवोके मोहनीयकी अथव्य स्विति मनुके अन्तिम समयमें ही सम्भव है, अतः इनके  
अथव्य स्वितिका अथव्य और अकृत काल एक समय कहा । पर वह अथव्य स्विति अकृत  
अनुवासेके होती है और वह भी सबके नहीं अतः अजथव्य स्वितिका अथव्य काल अपनी अपनी  
अथव्य स्वितिप्रमास्य और अकृत काल अपनी अपनी अकृत स्थितिप्रमास्य कहा ।



§ ७२ एइंदिय० मोह० जह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्त । अज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एव सुहुमेइंदिय० । वादरेइ दिय०—वादरेइदियपज्ज० मोह० जहण्णट्टिदि० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । वादरेइदियअपज्ज० सुहुमपज्ज०—सुहुमअपज्ज० मोह० जहण्णाजहण्णट्टिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं विगल्लिंदियअपज्ज० पंचकायाणं वादरअपज्ज०—सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स० वत्तव्व ।

§ ७३ विगल्लिंदिय-विगल्लिंदियपज्ज० मोह० जहण्णट्टिदी जह० एगसमओ, उक्क० वे समया; परत्याणसाभित्तावल्लवणादो । अजहण्ण० जह० खुदाभवग्गहणं विसमऊणं अतोमुहुत्त विसमऊणं एगसमओ वा, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

§ ७२ एकेन्द्रिय जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुं हूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय, जीवोंके जानना चाहिए । वादरएकेन्द्रिय और वादरएकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुं हूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुं हूर्त है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पाचों स्थावरकाय वादर लब्ध्यपर्याप्तक, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्मपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक तथा औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्य एकेन्द्रिय और उनके जितने भेद प्रभेद हैं उनमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जिसकी जितनी कायस्थिति वतलाई है उसके जतने काल तक मोहनीयकी अजघन्य स्थिति पाई जा सकती है । किन्तु एकेन्द्रिय जीवोंके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण ही होता है । तथा विकलत्रय अपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय वादर अपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त तथा औदारिकमिश्र-काययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त होता है, क्योंकि इनका उत्कृष्ट काल इससे अधिक नहीं है ।

§ ७३ विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल दो समय है । यह काल परस्थान स्पामित्त्वका अवलम्बन करनेसे प्राप्त होता है । तथा मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल

‡ ७४ पंचिन्द्रिय पंचि० पञ्ज०-सस०-ससपञ्ज० मोह० ब्रह्मण्डिदी ब्रह्मण्डुक्त०  
एगसममो । अन्नहृण्ण० ज० सुहामयमाहर्ण मंतोमु०, उक्त० सगसगुक्तस्तडिदी ।

‡ ७५ पचकायसुहामायां सुहमेइदियमंगो । बादरपुडनि०-बादरमाच०-बादर  
तेज०-बादरबाच०-बादरवणप्फदिपयो० तैसिं पञ्जच० ब्रह्मण्डिदी ज० एयसममो,  
उक्त० मंतोमु० । अन्नहृण्ण० ब्रह्म० एगसममो, उक्त० सगहिदी । वणप्फदि० णिगोद०

क्रमसे वा समय क्रम सुहामयप्रमाण प्रमाण और वो समय क्रम अन्तमु हुते है या एक समय है और उक्त सत्त्वकाल संख्यात इबार बर्ष है ।

विशेषार्थ—जिस पंचेन्द्रियने इतसमुत्पत्ति क्रमसे विकलत्रयोके योग्य अचम्य स्थिति प्राप्त की अनन्तर वह मरा और वो मोहके साथ विकलत्रयोमें इत्यत्र हुआ तो उसके पहले और दूसरे मोहमें अचम्य स्थिति पार्से जाती है अतः विकलत्रयोके मोहनीयकी अचम्य स्थितिका अचम्यकाल एक समय और उक्त काल वो समय कहा । यहां यह जो अचम्य स्थितिका अचम्यकाल एक समय और उक्त काल वो समय बतलाया है सो जो बीच पंचेन्द्रियोमेंसे आकर विकलत्रयोमें इत्यत्र होता है उसकी अपेक्षासे बतलाया है यही यहाँ परस्वान स्वामित्वका अक्षमन है । तथा इन दो समयोंको सुहामयप्रमाण और अन्तमु हुते कालमेंसे पटा वेन पर जो वो समय क्रम सुहामयप्रमाणप्रमाण काल श्रेय रहता है वह सामान्य विकलत्रयोके मोहनीयकी अचम्य स्थितिका अचम्य काल होता है । तथा जो दो समय क्रम अन्तमु हुते काल श्रेय रहता है वह पर्याप्त विकलत्रयोके मोहनीयकी अचम्य स्थितिका अचम्य काल होता है । तथा इन दोनों प्रकारके विकलत्रयोके अचम्य स्थितिका वा अचम्यकाल एक समय बतलाया है सो यह मूलोच्चारणके पाठके अनुसार बतलाया है और इसका सुझावा जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यक चतुष्कके कर भाये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये । उक्त दोनों प्रकारके विकलत्रयोकी उक्त अचम्य स्थिति संख्यात इबार बर्ष है और इतन कालतक इनके मोहनीयकी अचम्य स्थिति प्राप्त होमें बाधा नहीं आती है, अतः इनके अचम्य स्थितिका उक्तकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है ।

‡ ७४ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी अचम्य स्थितिका अचम्य और उक्त सत्त्वकाल एक समय है । तथा अचम्य स्थितिका अचम्य सत्त्वकाल सुहामयप्रमाण प्रमाण और अन्तमु हुते है । तथा उक्त सत्त्वकाल अपनी अपनी उक्त स्थिति प्रमाण है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी अचम्य स्थिति वक्ष्ये गुणस्वानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके अचम्य स्थितिका अचम्य और उक्त काल एक समय कहा । श्रेय कथन सुगम है ।

‡ ७५ पंचो स्वाधरकाय तथा धनके सूक्ष्म जीवोंके सूक्ष्म पंचेन्द्रियोके समान है । बाहर पृथिवीकायिक, बाहर जलकायिक, बाहर अग्निकायिक, बाहर वायुकायिक और बाहर वनस्पति मन्वेक शरीर जीवोंके तथा इन सब पर्याप्त जीवोंके अचम्य स्थितिका अचम्य सत्त्वकाल एक समय और उक्त सत्त्वकाल अन्तमु हुते है । तथा अचम्य स्थितिका अचम्य सत्त्वकाल एक समय और उक्त सत्त्वकाल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । वनस्पतिकायिक और

पट्टदियभंगो । पंचिदियअप०-तस०अप० पंचि०तिरिखवअपज्जत्तभंगो ।

६ ७६. पंचमण०-पंचवचि० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एयसमओ । अजहण्ण० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांपराय०-जहा-  
स्सवाद० वत्तव्वं ।

६ ७७. ओरालिय० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० ज०  
पगसमओ, उक्क० चावीस वाससहस्साणि देसूणाणि । वेजव्विय० मणजोगिभंगो ।  
वेउन्नियमिरस० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णुक०  
अंतोमुत्तं । फायजोगि० मोह० जहण्णट्टिदी० जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण०  
जह० एगसमओ, जहण्णविहत्तियदुचरिमसमए कायजोगेण परिणदम्मि तदुवलंभादो ।  
उक्क० अर्णतफालमसस्वेज्जा पोगलपरियट्टा । एवं णवुंस० वत्तव्वं । आहार०मणजोगि-  
भंगो । आहारमिरस० वेउन्नियमिस्सभंगो । कम्मइय० मोह० जहण्णट्टिदी जह-  
ण्णुक० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

निर्वाण जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान है । पंचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक और त्रस लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंके पंचेन्द्रियार्थश्रवण हास्यपर्याप्तकोंके समान है ।

६ ७६. पाँचों भगोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसापरायिक-मन्यत और अथाख्याताशयता जीवोंके फलना साहित्य ।

६ ७७. औदारिका फाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । वैश्रियिकफाययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । शैश्रियिकमिश्रफाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । फाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । जो जघन्य स्थिति निर्वाणके जघन्य समयमें फाययोगके होनेपर पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमानमाना है । जगता प्रमाण अस्मन्त्यात पुग्दल परिवर्तन है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके फलना चाहिये । आहारक फाययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । आहारक फाययोगी जीवोंके वैश्रियिकमिश्र फाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । तथा कामण्णकाय-योगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है ।

निर्वाण जीवोंके पाँचों भगोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके दशवें गुणस्थानके अन्तमें जघन्य स्थिति माननी है, जगता अन्तके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय

§ ७= वेदाणुवाणेण इत्यिदे० मोह० जह० जहणुक्क० एगसमओ । मज्ज०  
 ज० एगसमओ, उक्क० सगहिदी । पुरिस० मोह० जहणुहिदी जहणुक्क० एग  
 समओ । मज्ज० ज० अंतोमू०, उक्क० सगहिदी ।

कहा । तथा पाँचों मनोयोग और पाँचों बचनयागोंका अपन्यकास एक समय और उत्कृष्ट काल  
 अन्तमुहूर्त है अतः इनके अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल  
 अन्तमुहूर्त बन जाता है । भौतिककामयोगमें अज्ञपस्य स्थितिके उत्कृष्टकालमें विशेषता है ।  
 बात यह है कि भौतिककामयोगका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कम बार्स इबार बपे है अतः इसमें  
 अज्ञपस्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । शेष क्यन मनोयोगियोंके समान है ।  
 वैश्विककामयोगमें भी अज्ञपस्य और अज्ञपस्य स्थितिका काल मनोयोगके समान जानना । किन्तु  
 जो दायिकसम्पत्ति जो ब उपसमवेधीसे सर्वावसिद्धिमें जाता है उसके मन्के अन्तिम समयमें यदि  
 वैश्विककामयोग हो तो वैश्विककामयोगमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः वैश्वि-  
 ककामयोगमें इस प्रकार अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय पटित करके कहना  
 चाहिये । वैश्विकमिश्रकामयोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव  
 है, अतः इसमें अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा वैश्विकमिश्र  
 कामयोगका अपन्य और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इसमें अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य और  
 उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा । कामयोगमें अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल मनोयोगके  
 समान पटित कर लेना चाहिये । कामयोगमें अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य काल एक समय होता है ।  
 इसका कारण यह कतलाया है कि जिस समय अपन्य स्थिति हुई उसके उपन्य समयमें यदि काम  
 योग हो तो कामयोगमें अज्ञपस्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय पाया जाता है । ज्ञानरण्याई  
 वशसे गुणस्वानके अन्तिम समयमें अपन्य स्थिति होती है । वह यदि अन्तिम हो समयके लिये  
 कामयोगी हो जाय तो कामयोगमें अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है ।  
 कामयोगका उत्कृष्ट काल अर्धक्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है अतः इसमें अज्ञपस्य स्थितिका  
 उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । कामयोगियोंके समान नपुंसकोंके कवन करना चाहिये । किन्तु  
 जब नपुंसकके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति होती है इतना विशेष जानना ।  
 आहारक कामयोगमें मनोयोगीके समान अपन्य और अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल  
 पाया जाता है । किन्तु इतना विशेष है कि आहारक कामयोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य  
 स्थिति होती है । शेष क्यन मुगम है ।

§ ७८= वेदमार्ग्याके अनुवाहसे कीवेदी बीर्वामें मोहनीयकी अपन्य स्थितिका अपन्य और  
 उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल एक समय और  
 उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पुरुषनेरी बीर्वामें मोहनीयकी अपन्य स्थितिका  
 अपन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल अन्त  
 मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—उपकके स्त्रीवेदके वयके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति हाती  
 है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपन्य जानना चाहिये, अतः इनके अपन्य स्थितिका अपन्य और  
 उत्कृष्ट काल एक समय कहा । उपसम वेधीसे उतर कर जो जो ब एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ  
 और वृत्ते समयमें मरकर वय हा गया उसके अज्ञपस्य स्थितिका अपन्य काल एक समय प्राप्त होता

§ ७६ चत्तारिकसाय० मोह० जहण्टिट्टी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ८० आभिणि०—सुद०—ओहि० मोह० जहण्णट्टिटी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जहण्णुक्कस्सेण जहण्णुक्कस्सट्टिटी । एव मणपज्जव०—संजट-सामाइय-छेदो-परिहार०—संजटासंजट०—ओहिदंस०—सुक्कले०—सम्मादि-खइय०—वेदग० वत्तव्वं । विहंग० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिटी । चक्खु० तसपज्जत्तर्भंगो ।

है। तथा पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः पुरुषवेदमे अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ७६ चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**—क्षपक जीवके अपनी अपनी कपायके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा प्रत्येक कपायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा।

§ ८० आभिनिवोधिकज्ञानी, भ्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार मन.पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कदना चाहिये। विभगज्ञानी जीवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है। चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी क्षपक जीवके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है। मूलमें और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी जघन्य स्थितिके स्वामित्वका विचार करके जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयका कथन करना चाहिये। जो चौथीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपरिम प्रैवेयकवासो देव आयुके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया उसके अन्तिम समयमें विभगज्ञानमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है। तथा जो अवधिज्ञानी शेष देव या नारकी अन्तिम समयमें मिथ्यादृष्टि हो जाता है उसके विभगज्ञानमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल विभगज्ञानके उत्कृष्ट काल

§ २१ किण्व० णिम्ब०-काठ० मोह० जहण्णहिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोसु० । अज्ज० जह० एगसमओ, उक्क० सगहिदी । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो ।

§ २२ उचसम०-सम्मामि० आहारमिस्सभंगो । सासण० मोह० जहण्णहिदी जहण्णुक्क० एगममओ । अज्ज० जह० एगसमओ, उक्क० इ आवन्नियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । आहार० मोह० जहण्णहिदी जहण्णुक्क० एगसमआ । अज्ज० ने० खुवा मभग्गहणं तिसमऊणं । उक्क० सगहिदी । अणाहार० कम्महपभंगो ।

एवं काल्मजुगमो समचो ।

§ २३ अंतराणुगमो दुषिहो—जहण्णमुक्कस्सं चेदि । उक्कस्से पयदं ।

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । जहण्णस्संवासोमिं प्रस पयत्तं सुक्खं है, अतः जहण्णस्संके कथनको प्रसपयत्तंके समान करा ।

§ २१ कृष्य, मोह और कापोत लेख्यावाले जीवोंके मोहनीयकी जपस्य स्थितिका जपस्य सत्त्वकाल एक समय और उक्कट सत्त्वकाल अन्तमुद्भूत है । तथा अजपस्य स्थितिका जपस्य सत्त्वकाल एक समय और उक्कट सत्त्वकाल अपनी उक्कट स्थितिप्रमाण है । पीतलेख्यावाले जीवोंके सौममस्वगके समान जानना चाहिए । पद्मलेख्यावाले जीवोंके सद्भारम्बगके समान जानना चाहिए ।

§ २२ जपसम सम्मगट्टि और सम्पग्गिध्याट्टि जीवोंके आहारकमिमकायवागी जीवोंके समान जानना चाहिए । सासावन्नसम्पग्गट्टि जीवोंके मोहनीयकी जपस्य स्थितिका जपस्य और उक्कट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजपस्य स्थितिका जपस्य सत्त्वकाल एक समय और काल इह आवली है । संदी जीवोंके पुरुषपरिचयके समान जानना चाहिये । अज्जारक जीवोंके मोहनीयकी जपस्य स्थितिका जपस्य और उक्कटकाल एक समय है । तथा अजपस्य स्थितिका जपस्य सत्त्वकाल तीन समय कम सुभ्रमवप्यखप्रमाण और उक्कट सत्त्वकाल अपनी उक्कट स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कर्मवकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इत्थोदि तीन लेख्याओंमें मोहनीयकी जपस्य और अजपस्य स्थितिका काज सामान्य तियर्थके समान पठित कर जना चाहिए । किन्तु इनके अजपस्य स्थितिका उक्कट काल अपनी अपनी उक्कट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये क्योंकि अपन अपन उक्कट काल तक अजपस्य स्थितिके निरन्तर रहनेमें काइ बाधा नहीं आती है । अज्जारकके वृत्तं गुणुत्पातक अन्तिम समयमें मोहनीयकी जपस्य स्थिति होती है अतः इनके जपस्य स्थितिका जपस्य चार उक्कट काल एक समय करा । तथा जा तीन माइसे सत्त्वपयातकोमें उत्पन्न होना है उसके आहारककाल तीन समयकम सुरामवप्यप्रमाण पाया जाना है अतः आहारकके अजपस्य स्थितिका जपस्य काज तीन समय कम सुरामवप्यप्रमाण प्रमाण करा । अजपस्य स्थितिका उक्कट काल अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । अंत कमन मुगम है ।

§ २३ अन्तराणुगम दा प्रस्सरक है—जपस्य चार उक्कट । उनमेंसे उक्कट अन्तराणुगमस्य

१ प्रथे अ एतन्मभा सुरा इति पाठः ।

दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्सट्ठिदीअंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० अतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणुक्क० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । एवं तिरिक्ख०—कायजोगि० णवुंस०—मदि-मुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०—भवसिद्धि-अभवसिद्धि--मिच्छादिट्ठि ति वत्तव्वं ।

§ ८४ आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि । अणुक्कस्स० ओघभंगो । पढमाटि जाव सत्तमि ति मोह० उक्क० अंतरं केवचिरं ? ज० अतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० ओघभंगो ।

प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तमुं हूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल अनन्तकाल प्रमाण है। जिसका प्रमाण असख्यात पुद्गल परिवर्तन है। अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अंतरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंतमुं हूर्त है। इसी प्रकार तिर्यच, काययोगी, नपुसकवेदी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भन्य, अभन्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि जिसने कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगे तो कमसे कम अन्तमुं हूर्त कालके पहले उस जीवमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करनेकी योग्यता नहीं आ सकती अतः मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुं हूर्त कहा। तथा किसी सञ्जी पंचेन्द्रिय पर्याप्तने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बाधी अनन्तर वह अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगा और मर कर एकेन्द्रियादिमें उत्पन्न होकर अनन्त काल तक बढ़ा घमता रहा। पुनः एकेन्द्रियोंमें अनन्त कालके पूरे हो जाने पर वह सञ्जी पंचेन्द्रिय हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् उसने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया। इस प्रकार इस जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है अतः ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। ऐसा नियम है कि उत्कृष्ट स्थितिका वध एक समय तक भी होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतर एक समय प्राप्त हो जाता है। तथा उत्कृष्ट स्थितिका निरन्तर बन्ध अंतमुं हूर्त काल तक होता है अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुं हूर्त प्राप्त हो जाता है। मूलमें सामान्य तिर्यच आदि और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें ही यह ओघ प्ररूपणा घटित होती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

§ ८४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतरकाल अंतमुं हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेत्तीस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल ओघके समान है। पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अंतर काल कितना है ? जघन्य अंतरकाल अंतमुं हूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ ८५ पंचिदियसिरिक्लतिय० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्व  
 कोदिपुपत्त। अणुक्क० ओपमंगो । एवं मणुसतिय० । पंचि०तिरि०अपज्ज० मोह०  
 उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वह०-सम्भ  
 पइंदिय-सव्वविगालिंदिय-पंचिदियअपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज० ओरालियमिस्स०-वेत्त  
 थियमिस्स० आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय अपगद०-अकसाय-आमिणि०-सुद०  
 आहि०-मणपज्ज०-संभद० सामाइयधेदो०-परिहा० सुइम० महाक्खाद०-संभदासनद  
 ओहिर्वस०-सुकलोस्स०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय०-उषसम०-सासण०-सम्माभि०-  
 असण्णि०-अणाहारि चि पत्तम्भं ।

§ ८६ वेप० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० अहारस सागरोषमाणि सादि  
 रेयापि । मणुक्क० ओपमंगो । मणगादि जान सहस्तारे चि उक्क० अंतरं केव० ? ज०  
 अंतोमु०, उक्क० समहिदी देसणा । अणुक्क० ओपमंगो ।

§ ८७ पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-मोह०उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०,  
 उक्क० सगहिदी देसणा । मणुक्क० ओपं । एवमित्थि० पुरिस०-अक्खु०-पंचलोस्सा०-

§ ८५. पंचेन्द्रियतियं च, पंचेन्द्रियतियं च पयात्र और पंचेन्द्रिय तियं च योनिमती जीवोंमें मोह  
 नीयकी उक्ख स्थितिका जपस्य अंतरकाल अंतमुहूर्त है और उक्ख अंतरकाल पूर्वको विपुदकर है । तथा  
 अनुक्ख स्थितिका अंतरकाल ओपके समान है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य और  
 मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके ज्ञानता चाहिये । पंचेन्द्रिय तियं च लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंमें  
 मोहनीयकी उक्ख और अनुक्ख स्थितिका अंतरकाल नहीं है । इसी प्रकार लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य  
 ज्ञानत स्वर्गसे लेकर सर्वत्रैसिद्धि तकके देव समी पंचेन्द्रिय समी विक्रोन्द्रिय पंचन्द्रिय लक्ष्य-  
 पर्याप्तक पांचों स्वाधरकाय ब्रह्म लक्ष्यपयात्रक, आहारकमिमकाययोगी, वैश्विधिमिमममयोगी,  
 आहारककाययोगी, आहारकमिमकाययोगी कामंकाययोगी अपगतवेदी अकपायी, आमिनि-  
 वाधिक्खानी ज्ञतज्ञानी, अविज्ञानी, मनःपयपज्ञानी संयत सामाधिकसंयत धेदोपस्वापनासंयत  
 परिहापिधुदिसंयत मूषमसापयिकरंजन, यवाभ्यातसंयत संयतासंयत अविज्ञानी  
 हुक्खोदराबाले सम्भयगृष्टि, चायिकसम्भयगृष्टि, बरुफसम्भयगृष्टि, अदमसम्भयगृष्टि, सामानमसम्भयगृष्टि  
 सम्भयगृष्टि, अरंजी और अनाहारक जीवोंके धरना चाहिये ।

§ ८६. देवगतिमें मोहनीयकी उक्ख स्थितिका जपस्य अंतरकाल अंतमुहूर्त है और  
 उक्ख अंतरकाल साधिक अंतरकाल सागर है । तथा अनुक्ख स्थितिका अंतरकाल ओपके समान  
 है । मन्वन्वामिपोंसे लेकर स्रस्तार स्वग तकके देवोंक उक्ख स्थितिका अंतरकाल ज्ञानता है ?  
 अपन्य अंतरकाल अंतमुहूर्त है और उक्ख अंतरकाल हुक्ख कम अपनी अपनी उक्ख स्थिति  
 ममाय है । तथा अनुक्ख स्थितिका अंतरकाल ओपके समान है ।

§ ८७. पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, ब्रह्म आर ब्रह्म पर्याप्तक जीवोंके मोहनीयकी उक्ख  
 स्थितिका जपस्य अंतरकाल अंतमुहूर्त है और उक्ख अंतरकाल हुक्ख कम अपनी अपनी  
 उक्ख स्थिति ममाय है । तथा अनुक्ख स्थितिका अंतरकाल ओपके समान है । इसी प्रकार



सण्ण०-आहारि० त्ति ।

§ ८८. पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेडव्विय०-चत्तारिक०  
मोह०उक्क०णत्थि अंतरं । अणुक्क० ओघं । विहंग०सत्तमपुटविभगा । एवमुक्कस्स-  
द्विदिअंतराणुगमो समत्तो ।

स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पाच लेख्यावाले, सही और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ८८ पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैकियिककाय योगी और क्रोधादि चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है । विभगजानी जीवोंके अन्तरकाल सातवीं पृथिवीमे कहे गये अन्तरकालके समान है ।

**विशेषार्थ**—आदेशसे अन्तरकालका खुलासा करते समय जहा जो विशेषता होगी उसीका स्पष्टीकरण करेंगे ओषका खुलासा ओघके समान जानना । सामान्यमे नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है, अतः यहा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होगा । इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । सामान्य पचेन्द्रिय तिर्यचोंकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सेतालिस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है और योनिमती तिर्यचोंकी उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । किन्तु भोगभूमिमें उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती अतः प्रत्येकके कालमेसे तीन पत्य कम कर देना चाहिये और इस प्रकार जो प्रत्येकका पूर्वकोटिप्रत्यक्त्व प्रमाण काल ओष रहता है वही उनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । इसमे भी प्रारम्भका पर्याप्त होने तकका काल और कम कर देना चाहिये । जिसका मूलमे निर्देश नहीं किया । इसी प्रकार मनुष्य त्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिप्रत्यक्त्व प्रमाण लेना चाहिये । यहाँ सामान्य मनुष्यकी सत्तालिस, पर्याप्त मनुष्यकी तेईस और मनुष्यनीकी सात पूर्वकोटियों लेनी चाहिये । पचेन्द्रिय तिर्यच लक्ष्यपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समय में ही होती है जो सही पचेन्द्रिय से मरकर उत्पन्न हुआ है । इनके बन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट इनमेंसे किसी भी स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता ऐसा कहा है । मूलमें लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंसे लेकर अनाहारक तक और भी जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनके भी इसी प्रकार समझना चाहिए । देवोंमें वारहवें स्वर्गतक ही मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है और वारहवें स्वर्गकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः सामान्यसे देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो उसमेंसे कुछ कम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये । आगे और जितनी मार्गणाए बतलाई हैं उनमे भी इसी प्रकार विचारकर खुलासा कर लेना चाहिए । हा पाचों मनोयोग, पाचों वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, वैकियिककाययोग और चारों कपायोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि इनका काल इतना कम है जिससे इनके कालके भीतर दोवार उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती । किन्तु जिसने अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ इन मार्गणाओंको प्राप्त किया और मध्यमें एक समय

§ ८६. जहण्णए पयदं । तुविहो णिहेसो-ओघेण-ओदेसण य । तत्त ओघण मोह० जहण्णामहण्णहिदीणं गत्ति अंतरं । एवं विदियादि नाव छ्ठी पुढवी० सव्व पंचिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-आदिसियादि भाव सव्वह-सव्वविगमिदिय-सव्वपंचिदिय-सव्वतस-पचमण०-पंचवचि०-कायभोगि०-मोरासि०-वेठन्विय०-अठभियमिस्स० आहार० आहारमिस्स इत्थि० पुरिस० णसुंसय अयगद चत्तारिक्कसाय अक्कसाय-वि-इंग०-आभिणि०-सुद०-ओरि०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइय -झेदो०-परिहार०-सुहुम० अहाक्खाद०-समदासंनद चक्खु०-अचक्खु०-ओरिदंसण विणिण्णे० मवसि-सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्माभि०-सञ्चि०-आहारि पि ।

तक पा अन्तमु हूर्त कल्लतक क्खुस्स स्थितिका पण्य हुआ तो इसके अमुक्कए स्थितिका अण्य अन्तर एक समय और क्खुस्स अन्तर अन्तमु हूर्त प्रमाण वन जाता है । अत उक्त मत्तंभाभोमिं अमुक्कए स्थितिका अन्तरकाल ओपके समान था । अपि अण्ययोग और औदारिक अण्ययोगक काल बहुत अधिक है पर यह काल पचेन्द्रिय और पृथिवीकायिक जीवोंके ही मत्त होता है अतः इन्में मी क्खुस्स स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं ।

इस प्रकार क्खुस्स स्थिति अन्तपट्टमाम समाप्त हुआ ।

§ ८७. अब अण्य स्थिति अन्तपट्टमाम प्रकृत है । उसकी अपेक्षा निर्लेख दो प्रकारका है—ओपनिर्लेख और आदेखनिर्लेख । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा मोहनीयकी अण्य और अण्यस्थितियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर बड़ी पृथिवी तकके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यक सभी मनुष्य, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वाभिसिद्धि तकके देव, सभी वैश्वेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी ब्रह्म, पाँचों मनोयोगी, पाँचों बचन्वागी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैश्वियिककाययोगी, वैश्वियिकमिन्नकाययोगी आहारक काययोगी आहारकमिन्नकाययोगी, बीबेरी, पुरुषवेरी मनुसकवेरी अणगतवेरी ओषादि पाठों कयायवाले, अकयायी, किमंगलानी आग्निवायुविज्जानी मुत्तज्जानी अण्विज्जानी मनःपर्ययज्जानी, संकत, सामायिकसंबत जेहापस्वापनासंबत, परिहारविज्जुदिसंबत, सूक्ष्मसांपरायिकसंबत, पञ्चम्याउसंबत, संयतासंबत, अचुवर्द्धनवाले, अचचुवर्द्धनवाले, अचविचूर्द्धनवाले तीन जेहवावाले मय्य, सम्मण्डपि, वायिकसम्मण्डपि वेचकसम्मण्डपि, अण्यमसम्मण्डपि, सासादनसम्मण्डपि, सम्मग्निध्यादपि, संज्ञी और आहारक जीवोंके क्खना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओपसे मोहनीयकी अण्य स्थिति अण्य जीवोंके इसमें गुणस्वात्मके अन्तिम समकर्म होती है अतः ओपसे अण्य और अण्यस्थिति अन्तर कल्ल नहीं बनता । इसी प्रकार मनुष्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त ब्रह्म ब्रह्म पर्याप्त पाँचों मनोयोगी, पाँचों बचन्वोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अणगतवेरी, स्त्रीमकयायी, आग्निवायुविज्जानी, मुत्तज्जानी अण्विज्जानी, मनःपर्ययज्जानी, संकत सूक्ष्मसांपरायिकसंबत, अचचुवर्द्धनी, अचचुवर्द्धनी अण्विचूर्द्धनी मुक्त जेहवावाले मय्य, सम्मण्डपि, वायिक सम्मण्डपि, संज्ञी और आहारकके जानना चाहिये क्योंकि इन्में मी अण्यकाल इसका गुणस्वात्म पाया जाता है । दूसरे नारकसे बड़े नारक तक नारकी ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वाभिसिद्धि तकके देव, वैश्वियिक काययोगी, वैश्वियिक मिन्नकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिन्नकाययोगी अकयायी, परिहारविज्जुदि

§ ६० आदेसेण णिरयगट्टेण मोह० जहण्ण० णत्थि अतरं । अज० जहण्णुक्क० एगसमओ । एवं पढमपुढवि-देव-भवण०-वाण०-रुम्मइय-अणाहागि त्ति । सत्तमाए मोह० जह० णत्थि अतरं । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ६१ तिरिक्ख० मोह० जह०ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अमंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मट्ठि-गुदअण्णाण-अमंजट्ठ-अभवसि०-

सयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत, वदकसन्मग्दष्टि, उपजमसम्यग्दष्टि आर सासादनसम्यग्दष्टिके अपने अपने उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता । सभी पंचेन्द्रियतिर्षय, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, और त्रस अपर्याप्तकोके उत्पन्न होते समय ही जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी अन्तर नहीं होता । खिंदी, पुरुषवदी, नपुमकवेदी, क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंके नौवें गुणस्थानमें अपने अपने क्षयके अन्तिम समयमें और सामायिक संयत व छेदोपस्थापनावाले जीवोंके क्षणिके नौवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता । विभगज्ञानमें उपरिम प्रवेयरुके देवके आयुके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है, अतः अन्तर नहीं होता । पीत लेश्यावाले और पद्मालेश्यावाले परिहारविशुद्धि सयतके समान जानना ।

§ ६० आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । सातवें पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—जो असह्य जीव नरकमें दो विग्रहसे उत्पन्न होता है उसके दूसरे विग्रहके समय जघन्य स्थिति सम्भव है अतः सामान्यसे नारकियोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा । क्योंकि ऐसे नारकीके प्रथम और तृतीयादि समयोंमें अजघन्य स्थिति हुई और दूसरे समयमें जघन्य स्थिति रही, अतः अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, कार्मणकाय-योगी और अनाहारक जीवोंके अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकाल एक समयको घटित कर लेना चाहिये । सातवें नरकमें जब आयुमें अन्तमुहूर्तकाल शेष रह जाता है तब कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक जघन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है । तथा इस नारकीके इस जघन्य स्थितिके पश्चात् पुनः अजघन्य स्थिति हो जाती है, अतः यदा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त बन जाता है । तथा जघन्य स्थिति दो बार नहीं प्राप्त होती इसलिये उसका अन्तरकाल नहीं बनता ।

§ ६१ तिर्षवगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असख्यात लोक है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अभव्य,

मिष्दादिद्वी०-असण्णि चि । एइदिय० तिरिवस्त्रमंगो । वादरेइदिय-वादरइदियपज्ज०  
 वादरेइदियअपज्ज०-सुहुमेइदिय सुहुमेइदियपज्ज०-सुहुमेइदियअपज्ज० मोइ० जइ०  
 अंतामु०, उक्क० सगडिद्वी टम्णा । अज० जइ० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्त ।  
 एव चचारि काय० । णनरि सगसगुक्कस्सट्टिणी देम्णा । वणप्फदि० एइदियमंगो ।

§ ६२ ओरालियमिस्स० मोइ० जइ० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । अन०  
 अ० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । किण्णइ पील-काठ० सत्तमपुइविभंगो ।

एवअतराजुगमो सनचो ।

मिष्पाद्वि और अमंसी बीबोंके करना चाहिये । एकेन्द्रिकोंके त्रिबैचोक समान जानना चाहिये ।  
 वादर एकेन्द्रिय वादर एकेन्द्रियपमात्तक वादर एकेन्द्रिय सव्यपयात्तक सूदम एकेन्द्रिय  
 सूदम एकेन्द्रिय पर्यात्तक और सूदम एकेन्द्रिय लक्ष्यपयात्तक बीबोंके मोहनीयकी अपन्य  
 स्थितिका अपन्य अन्तरकाज अन्तमुहुत्त है और उक्क अन्तरकाज उक्क कम अपनी अपनी उक्क  
 स्थितिप्रमाण है । तथा अजपन्य स्थितिका अजपन्य अन्तरकाज एक समय है और उक्क अन्तर  
 काज अन्तमु हुत्त है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्वावरकायिक बीबोंके जानना  
 चाहिये । पर इतनी विवेचना है कि इनके मोहनीयकी अपन्य स्थितिका उक्क अन्तरकाज उक्क कम  
 अपनी अपनी उक्क स्थितिप्रमाण करना चाहिये । अन्तस्परिकायिक बीबोंके एकेन्द्रिकोंके समान  
 जानना चाहिये ।

§ ६२ औदारिकमिअजपयोगी बीबोंके मोहनीयकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उक्क  
 अन्तरकाज अन्तमु हुत्त है । तथा अजपन्य स्थितिका अपन्य अन्तरकाज एक समय है और उक्क  
 अन्तरकाज अन्तमु हुत्त है । उक्क, नील और कपोतलेहयावसे बीबोंके सातवीं पृथिवीके  
 समान है ।

विशेषार्थ-उक्क स्थितिके समान आदेशसे अपन्य स्थितिके सम्बन्धमें भी यह नियम  
 समझना चाहिये कि जिसके अपन्य स्थितिके पञ्चान् अपन्य स्थिति हो जाती है उसे पुनः अपन्य  
 स्थितिके प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तमु हुत्त कम अवश्य लगता है तथा जिसके त्रिबैच पर्यायमें  
 अपन्य स्थितिके प्राप्त किया पुनः वह अजपन्य स्थितिके प्राप्त करके यदि निरन्तर उसीके  
 साथ रहे तो उसे पुनः अपन्य स्थितिके प्राप्त करनेमें अधिकसे अधिक असंख्योत्त लोकाप्रमाण  
 कम लगता है अतः त्रिबैचोंमें अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमु हुत्त और उक्क अन्तर  
 असंख्योत्त लोकाप्रमाण प्राप्त होता है यह सिद्ध हुआ । तथा अपन्य स्थितिका अपन्यकाज एक  
 समय और उक्क अन्तर अन्तमु हुत्त होता है अतः त्रिबैचोंमें अजपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक  
 समय और उक्क अन्तर अन्तमु हुत्त है । मूलमें गिदार्थ यह मन्वशानी आदि मार्गशाओंमें  
 अन्तरकाज प्राप्त करनेकी यही विधि जानना अतः इनमें अपन्य और अजपन्य स्थितिके अन्तर  
 कमके सामान्य त्रिबैचोंके समान है । तथा भागे वा वादर एकेन्द्रिकायिकोंके अपन्य और  
 अजपन्य स्थितिका अन्तरकाज है इसमें केवल अपन्य स्थितिके उक्क अन्तरकाजमें ही विवे  
 पता है । एव सब करने सामान्य त्रिबैचोंके समान है । बात यह है कि इन वादर एकेन्द्रिकायिकोंकी  
 उक्क कायस्थिति भिन्न भिन्न है अतः इनमें अपन्य स्थितिका उक्क अन्तरकाज उक्क कम अपनी  
 अपनी कायस्थितिप्रमाण ही करना चाहिये । औदारिकमिअजपयागका उक्क अन्तमु हुत्त है  
 अतः इसमें अपन्य स्थितिका उक्क अन्तरकाज अन्तमु हुत्त है । उक्क नील व कपोतलेहया-

§ ६३ णाणाजीवेहि भंगविचयानुगमेण भण्णमाणे तत्थ णाणाजीवेहि उक्कस्सभंग-  
विचए इदमट्ठपदं—जे उक्कस्सस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सस्स अविहत्तिया । जे अणु-  
क्कस्सस्स विहत्तिया ते उक्कस्सस्स अविहत्तिया । एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो  
ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अवि-  
हत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।  
एवं तिण्णि भंगा ३ । अणुक्क० ट्ठिदीए सिया सव्वे विहत्तिया, सिया विहत्तिया च  
अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । एव सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-  
तिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगळिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छक्काय-  
पंचमण०-पचवचि०--कायजोगि०-ओरालिय०--वेउच्चिय०--ओरालियमिस्स०--कम्म-  
इय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण-

वाले एकेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । एकेन्द्रियोंमें उक्त लेश्याओंका काल  
अन्तमुद्धूत है जो अजघन्य स्थितिके जघन्यकालसे छोटा है अतः जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है  
परन्तु उक्त लेश्याओंका काल जघन्य स्थितिके कालसे बड़ा है अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्धूत घटित हो जाता है जो सातवीं पृथिवीके समान है ।  
शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६३ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमका कथन करते हैं । उसमें भी नाना  
जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट भगविचयके कथनमें यह अर्थपद है—जो उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं वे  
अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं । जो अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं वे उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले नहीं हैं । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे आघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तितसे रहित  
हैं । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तितसे रहित हैं और एक जीव  
माहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तितसे रहित हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं ।  
इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं । कदाचित्  
बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तितसे रहित है, कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं  
और बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तितसे रहित हैं ये तीन भंग होते हैं । इसी  
प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके  
मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वासिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकले-  
न्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक  
काययोगी, वैश्विककाययोगी, औदारिकमिष्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि  
चारों कपायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रतज्ञानी, विभगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,

पञ्च०-संज्ञा०-सामाहय-श्लेशो०-परिहार०-सज्जदासंज्ञद० असंसद०-चक्रुः -अचक्रुः०-  
 ओहि०-श्लेशेस्ता० मम० अमम सम्मादि०-त्वइय०-वेदय०-विचित्रा०-सण्णि० असण्णि०  
 भाहारि -अणाहारि धि ।

§ ६४ मनुसम्पन्न -सकस्तबिहतिपुञ्जा अहमंगा । अणुककस्तबिहतिपुञ्जा  
 पि अहमंगा । एवं वेदभिवयमिस्त आहार०-आहारमिस्त०-अवगत०-अकसा०-  
 सुदुवसाप०-अहाकस्वाद्०-उवसम०-सासप०-सम्मापि० ।

एषमुक्तसमंगविभो समधो ।

मनाःपचयज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत ज्ञेयापस्थापनसंयत, परिहारविद्युद्विसंबत, संयतासंयत,  
 असंबत अचुवर्त्तनबाले अचुवर्त्तनबाले, अचविचर्त्तनबाले, अहो ज्ञेयाबाले मम्य, अमम्य,  
 सम्पत्पटि, शक्तिस्त्वम्पटि बचस्त्वम्पटि, मिथ्यापटि, सत्री, असत्री, आहारक और  
 अनाहारक जीवोंके ब्रह्मा चाहिये ।

§ ६४ लक्ष्यपयात्क मनुष्योंमें एक स्वितिविभक्ति पूर्वक आठ मंग होत हैं और  
 अनुकृत स्वितिविभक्तिपूर्वक भी आठ मंग होते हैं । इसी प्रकार वैदिकविभक्तिमन्त्रायोगी,  
 आहारककाययोगी आहारकमन्त्रायोगी अपगतवशी अकषायी, सूक्ष्मसंपदाधिकसंयत  
 यथाप्यातसंबत अशमसम्पटि, सासादनसम्पटि और सम्पत्प्यापटि जीवोंके  
 ज्ञानना चाहिये ।

विशेषार्थ-निश्चित सिद्धान्तके अनुसार व्यवस्थाके दोषक वाक्यको अवैप्य कहत हैं ।  
 यहाँ निश्चित सिद्धान्त यह है कि जो एक स्वितिबाले होते हैं व अनुकृत स्वितिबाले नहीं  
 होते और जो अनुकृत स्वितिबाले होते हैं वे एक स्वितिबाले नहीं होत । इससे यह व्यवस्था  
 चर्चित हुई कि एक स्वितिविभक्तिबालोंसे अनुकृत स्वितिविभक्तिबाले जीव भिन्न नहीं और  
 अनुकृत स्वितिविभक्तिबालोंसे एक स्वितिविभक्तिबाले जीव भिन्न नहीं । फिर भी एकबार  
 एक स्वितिबालोंको और दूसरी बार अनुकृत स्वितिबालोंको मुख्य करके मंगोंका संपद  
 किया जाय तो प्रत्येकी अपेक्षा तीन तीन मंग मंग होत हैं । जो मूलमें गिमाय ही हैं ।  
 बात यह है कि एक स्वितिबाला जीव कराचिन् एक भी नहीं रहता, तथा कराचिन्  
 एक होता है और कराचिन् अनक होत हैं । अब यदि इन तीन विभक्तियोंको मुख्य करके  
 मंग करे जाते हैं तो उनकी सूत निम्न होती है—(१) कराचिन् सब जीव एक स्विति  
 विभक्तिबाले होत हैं । (२) बहुत जीव एक स्वितिविभक्तिबाले होत हैं और एक  
 जीव एक स्विति विभक्तिबाला होता है । (३) कराचिन् बहुत जीव एक स्विति  
 विभक्तिबाले होते हैं और बहुत जीव एक स्वितिविभक्तिबाले होत हैं । यह ता एक स्विति  
 स्वितिकी अपेक्षा कमन हुआ । अब यदि इसके स्थानमें अनुकृत स्वितिबालोंका मुख्य कर  
 देते हैं और एक स्वितिबालोंका गोप्य तो कभी मंगोंकी एक निम्न हा जाती है—(१) कराचिन्  
 सब जीव अनुकृत स्वितिविभक्तिबाले होते हैं । (२) कराचिन् बहुत जीव अनुकृत  
 स्वितिविभक्तिबाले होते हैं और एक जीव अनुकृत स्वितिविभक्तिबाला होता है ।  
 (३) कराचिन् बहुत जीव अनुकृत स्वितिविभक्तिबाले और बहुत जीव अनुकृत स्विति  
 विभक्तिबाले होत हैं । सब नादिकोंसे लेकर अनाहारकों तक मूलम जिनकी मागछायें गिनाय  
 हैं । इनमें यह आपप्रकृषण बन जानी है अर्थात् इन मागछायोंमें भी इसी प्रकार एक और  
 अनुकृत स्वितिबालोंकी अपेक्षा तीन तीन मंग बन जात हैं अतः इनकी प्रकृषण आपके

§ ६५ जहण्णयम्मि अट्टपदं । तं जहा—जे जहण्णस्स विहत्तिया ते अजहण्णस्स अविहत्तिया, जे अजहण्णस्स विहत्तिया ते जहण्णस्स अविहत्तिया । एट्ठेण अट्टपदेण दुविहो णिहोसो ओघेण आदेसेण य । तस्थ ओघेण मोह०—जहण्ण-द्विदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा । एवमजह० । णवरि विहत्तिया पुवं भाणियवं । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदियतिरिद्ध-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-वादरपुढवि०पज्ज०—वादरआउ० पज्जत्त०—वादरतेउ०—पज्ज०—वादरवाउ०पज्ज०—वादरवणप्फदि०पत्तेय०पज्ज०—सव्वतस०—पंचमण०—पंचवचि०—

समान कहा । किन्तु लब्धपर्याप्तक मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है अतः इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमेंसे प्रत्येकके आठ आठ भग हो जाते हैं । इसी प्रकार और जितनी सान्तर मार्गणाएँ हैं उनमें तथा अपगतवेदी, अकपाथी और यथाख्यातसयत इन तीन मार्गणाओंमें भी आठ आठ भग प्राप्त होते हैं ।

वह आठ भग इस प्रकार हैं—एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (१), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (२), एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (३), अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (४) एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (५), एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (६), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (७), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (८) ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भगविचय समाप्त हुआ ।

§ ६५ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य भगविचयके कथनमें जो अर्थपद है वह इस प्रकार है— जो जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । जो अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं और एक जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाला है । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं इस प्रकार जघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा तीन भग होते हैं । इसी प्रकार मोहनीयकी अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षासे भी तीन भग होते हैं । इतनी विशेषता है कि अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा कथन करते समय 'विहत्तिया' का पहले कथन करना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भगोंमें अविभक्तिवालोंका पहले कथन किया है उसी प्रकार अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भगोंमें पहले विभक्तिवालोंका कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादरजलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादरवायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी ब्रस, पाचों मनोयोगी,

काययोगि०-भोराखि-वेरम्बिय०-तिष्णिवेद०-व्यचारिकसाय-बिहंग०-आमिणि०-मुद०-  
ओहि-मणपज्ज०-सज्जद-सामाहय-छेदा-परिहार-संज्ञदासज्ज०-चक्खु-अचक्खु०-  
ओहिदंस०-तिष्णिलस्सा०-मवसिदि०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय-सण्णि-आहारि चि ।

§ १६ तिरिक्ख मोह० अ अज्ज णियमा अत्थिय । एवं सम्भपुद्दिय-  
पुडवि-वादरपुडवि-वादरपुडविअपज्ज०-मुहुमपुडवि-पज्जत्तापज्जच-भाठ-वादर-  
भाठ०-वादरआठअपज्ज-मुहुमभाठ०-पज्जत्तापज्जच-तेठ-वादरतेठ०-वादरतेठअपज्ज-  
मुहुमतेठ०-पज्जत्तापज्जच-चाठ-वादरचाठ०-वादरचाठअपज्ज०-मुहुमचाठ०-पज्जत्ता  
पज्जच-वादरवणफ्फट्टिपत्तेय०-अपज्ज-वणफ्फट्टि-णिगोद०-आराखियमिस्स०-कम्म-  
इय०-मदि-मुदमण्णाण-असंज्जद०-तिष्णिले०-अमव०-मिच्छादि०-असण्णि०-  
मणाहारि च ।

§ १७ मणुसअपज्ज उक्कस्तमगो । एवं वेठम्बियमिस्स०-आहार०-आहार  
मिस्स- ( अचगद ) अकसाय-मुहुम०-जइक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।  
एवं णाणाबीवेहि मंगविषयो समचो ।

पाँचों बचनयोग काययोगी औदारिककाययोगी बैक्रियिककाययोगी तीनों वेदवाले ओहादि पाठों  
क्यापवाले, विमंगहानी, आमिनिबोधिकज्ञानी, ब्रतज्ञानी, अचधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी संयत सामा  
बिहंसंयत छेदोपस्वानसंयत परिहारविष्णुदिसंयत संयतासंयत अचुर्वर्णनवाले, अचक्खुवर्णनवाले  
अचधियज्ञनवाले पीठ आदि तीन लेखपावाले मध्य सम्पत्ति, वायिकसम्पत्ति, वेदकसम्पत्ति  
रुद्धी और आहारक बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १६ तिर्षणोमें मोहनीयकी अथम्य स्थिति बिभक्तितवाले और अचधन्य स्थितिविभक्ति  
वाले बीब नियमसे हैं । इसी प्रकार छमी एकेन्द्रिय पृथिवीकायिक वादर पृथिवीकायिक, वादर  
पृथिवीकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त जलकायिक, वादर जलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक  
पर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक  
अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक  
वादर वायुकायिक वादरवायुकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त  
सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त वादर मनस्पतिकायिक प्रत्येक छरीर वादर वगस्पतिकायिक प्रत्येक  
छरीर अपर्याप्त मनस्पतिकायिक निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी कामैरुकाययोगी, मत्स्यज्ञानी  
ब्रतज्ञानी अस्तंभ कृष्य आदि तीन लेखपावाले अमम्य निष्पत्ति, अस्तंभी और आहारक  
बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १७ लक्ष्म्यपर्याप्तक मनुष्योके अकृष्ट स्थितिविभक्तिके समान पक्षा मी भाठ आठ मंग  
हैं । इसी प्रकार बैक्रियिकमिश्रकाययोगी आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अचगतवेदी  
अक्यापी, सूक्ष्मसांपर्याप्तकसंयत क्वाथ्मातसंयत, अचधमसम्पत्ति, साम्पादनसम्पत्ति और  
सम्पत्तिमिष्पत्ति बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।



§ ६८ भागाभागानुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कम्मद्विदि—विहत्तिया जीवा सच्चजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिभभागो । अणुक० सच्चजी० के० भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्ख०-सच्चपुढदिय-वणप्फदि०-णिगोद०-काययोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवु स०--चत्तारिक्कसाय-मदि-मुद—अण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा-भवसिद्धि०-अभव०-मिन्हा०-असण्णि-आहारि०-अणाहारि ति ।

§ ६९ आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० सच्चजी० के० भागो ? असंखे० भागो । अणुक० सच्चजी० केवडिओ भागो ? असंखेज्जा भागा । एवं सच्चपुढवि०-सच्चपंचिं०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवरारद०-सच्चविग-लिंदिय-सच्चपचिंदिय-सच्चपुढवि०-सच्चआउ०-सच्चतेउ०-सच्चवाउ०-वादरवणप्फदि०

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भंगविचयका कथन करते समय श्रोध और आदेशसे जिन भगोंको पहले वतला आये हैं वे भग यहा जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसी प्रकार बन जाते हैं । किन्तु सामान्यतिर्यच और एकेन्द्रियोंसे लेकर अनाहारक तक मूलमें गिनाई हुई कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें जघन्य स्थितिवाले बहुत जीव और अजघन्य स्थितिवाले बहुत जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः यहाँ ( १ ) मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं । ( २ ) मोहनीयकी अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं ये दो भग ही प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६८ भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट भागा-भागानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, काय-योगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यजानी, श्रुताजानी, असयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, अस्त्री, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६९ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अमिकायिक, सभी वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर,

पद्येय०-यज्जसापज्जस—सम्बतस-पंचमण०-पंचवचि०-चरुच्यय०-वेचच्ययमिस्स०—  
इत्थि०-पुरिस०—विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि—संजदामंस्सद चक्खु०-ओहिदंस०-  
तिण्णिख्ख०-सम्मादि—स्वइय०-वेदय—उचसम०-सासण—सम्माभि०-सण्णि ति ।

§ १०० मणुसपज्ज०-मणुसि० मोह० उक्क० सव्वधी० के० भागो ? संखे—  
भागो । अणुक्क० सम्बधी० क० ? संखज्जा भागा । एवं सव्वड्ढ०-आहार०-आहार—  
मिस्स०-अवगद—अकसाय—प्रणपज्ज०-संभद—सामाइय-द्धदो परिहार०-सुहुमसाप०-  
अहावत्वाद० ।

एषसुक्कस्सभागामागो समधो ।

§ १०१ अहण्णए पपदं । दुधिहो णिइदेसो—ओपेण मादसण य । सत्य ओपेण

वात्वर बनस्पतिक्रायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त वात्वर बनस्पतिक्रायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त समी त्रस,  
पांचों मनोयोगी पांचों बचनयोगी, वैक्रियिकसम्ययोगी, वैक्रियिकप्रमिसक्रययोगी, कीबेरी, पुरुषवेदी  
विसंगहानी आभिनिबोधिष्णानी भ्रुज्जानी अवधिष्णानी, संयतासंयत, अणुवशीनबालं अवधि  
वधेनबाले पीठ आवि तीन लेख्याबाले मन्मगदष्टि कायिकसम्यगदष्टि वेदकसम्यगदष्टि  
अणुमसमगदष्टि, सासादनसम्यगदष्टि सम्यग्मिध्यादष्टि और संधी बीबोके क्खना पाहिबे ।

§ १० मनुष्यपयाण और मनुष्यनियमों मोहनीयकी च्छकट्ट स्थितिभिभक्तिबाले बीच  
सप बीबोके क्खितन भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अनुत्कट्ट स्थितिभिभक्तिबाले बीच सप बीबोके  
क्खितने भाग हैं ? संख्यात वहुभाग हैं । इसी प्रकार सपार्थसिद्धिके द्वेष, आहारक्रययोगी  
आहारप्रमिसक्रययोगी, अपरातवेदबाले, अकपायी, मनःपर्यय्यानी, संयत, सामायिकसंयत  
वेदापस्थापनासंयत परिहारविभुज्जिसंयत, सुक्खसांपराधिकसंयत और यथाख्यातसंयत बीबोके  
बानना पाहिब ।

विद्यापार्थ-भागामागमें कौन किसके क्खितने भागप्रमाय हैं इसका विचार किया जाता है ।  
प्रकृतमें सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे उक्त स्थिति और अनुत्कट्ट स्थितिबाले बीच किसके  
क्खितन भाग हैं वह बतलाया गया है । ज्ञातमें क्खितन उक्त और अनुत्कट्ट स्थितिबाले बीच हैं  
जन्में अनन्तवें भागप्रमाय उक्त स्थितिबाले हैं और अनन्त वहुभाग अनुत्कट्ट स्थितिबाले हैं ।  
मार्गशास्त्रोंकी अपेक्षा जन्मी रक्तपया तीन प्रकारसे हो जाती है । कुछ मार्गशास्त्रोंमें उक्त और  
अनुत्कट्ट स्थितिबालाकी प्ररूपया आधेके समान है । कुछ मार्गशास्त्रोंमें असंख्यातवें भागप्रमाय  
उक्त स्थितिबाल और असंख्यात वहुभाग अनुत्कट्ट स्थितिबाले हैं । तथा कुछ मार्गशास्त्रोंमें  
संख्यातवें भागप्रमाय बीच उक्त स्थितिबाल और संख्यात वहुभागप्रमाय बीच अनुत्कट्ट स्थिति-  
बाले हैं । इन सब मार्गशास्त्रोंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं । इसी प्रकार सपन्य और अज  
पन्य स्थितिबाले बीबोके भागामागका सुखासा समझना पाहिब ।

इस प्रकार उक्त भागामाग उभाय हुआ ।

§ ११ अब सपन्य भागामागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दा प्रकरण है—  
ओपनिर्देश और और आवेसनिर्देश । जन्मेंसे आपनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी सपन्य स्थिति-

मोह० ज० सव्वजीवा० केवडि० ? अणंतिमभागो । अज० सव्वजी० के० ? अणता भागा । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसिद्धिय-आहारि ति ।

§ १०२ आदेसेण णेरइएसु मोह० ज० सव्वजी० के० ? असंखे०भागो । अज० सव्वजी० के० ? असखेज्जा भागा । एवं सत्तसु पुढ्वीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस- मणुसअपज्ज-देव-भवणादि जाव अवराइद-सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-इकाय-पंचमण-पंचवचि-ओरालियमिस्स-वेउव्विय-वेउ०मिस्स-कम्मइय-इत्थि-पुरिस-मदि-सुदअण्णाण-विहंग-आभिणि-सुद-ओहि-संजदा-संजद-असंजद-चक्खु-ओहिदंस-इलेस्सा-अभव-सम्मादि-खइय-वेदय-उवसम-सासण-सम्मामि-मिच्छादि-सण्णि-असण्णि-अणाहारि ति ।

§ १०३ मणुसपज्ज-मणुसिणी० मोह० जह० सव्वजी० के० ? संखे०भागो । अज० सव्वजी० के० ? सखेज्जा भागा । एवं सव्वट्ट० आहार-आहारमिस्स-अचगद-अकसा-मणपज्ज-संजद-सामाइय-छेदो-परिहार-सुहुमसांप-जहाक्खाद० ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । मोहनीयकी अजघन्य स्थिति-वाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक काययोगी, नपु सकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, मव्य और आहारक जीवों के कहना चाहिये ।

§ १०२ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव विवक्षित जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकी जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले नारकी जीव कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुता-ज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासयत, असयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेख्यावाले, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सज्ञी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०३ मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले अकषायी,

§ १०४ परिमाणाशुगमो दुविहा - अहृष्मओ उक्कस्सओ चदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहृदसा आघण आदसण य । तस्य आघेण मोहं उक्कस्सद्विदि विहधिया जीवा केधिया ? असंखजा । अणुक्कं केधिया ? अर्णता । एवं तिरिक्ख सम्भएइदिय - षण्णफदि - णिगोद - कायनोगि - आराभि - ओरालियमिस्स - कम्मइय - णवु स - चत्तारिक्साय - मदि सुदअण्णाप - असंजद - अचन्नु - तिण्णिले - मभसि - अमवसि - मिच्छा - असण्णि - आहारि - अणाहारि णि ।

§ १०५ आदेसेण णेरइएसु मोहं उक्कं अणुक्कं केधिया ? असंखजा । एवं सत्तपुइदि - सन्नपदिणियतिरिक्ख - मणुसअपअ - देव - भवणादि नाम सहस्सार - सम्भविगळिदिय - सव्वपदिदिय - चत्तारिकाय सव्वतस - पंचमण - पंचवचि - बरुव्विय - षठ्ठवपमिस्स - इत्थि - पुरिस - निहग - आभिणि - सुद - ओहि - संजदासंमद - षवसु - मोहिदंस - तिण्णिले - सम्मादि - वेदय - उवसम - सासण - सम्मापि - सण्णि णि ।

§ १०६ मणुसं मोहं उक्कं के ? संखजा । अणुक्कं असंखज्जा ।

मनःपयमयज्ञानी, संयत सामायिकसंयत ज्ञेयोपस्थापनासंयत, परिहारविमुक्तिसंयत सूक्ष्मसांपर-  
यिच्छसंबत और यथाभ्याससंयत जीवोके ज्ञाना चाहिये ।

इस प्रश्नर मागामागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १०४ परिमाणाशुगम दो प्रकारका है—अपम्य और ककुट । इनमेंसे ककुट परिमाणा

शुगमका प्रकारक है । इसकी अपवा निर्देश वा प्रकारका है—आभनिर्देश और आदसनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपवा मोहनीयकी ककुट स्थितिविमर्षितबाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुककुट स्थितिविमर्षितबाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सभी पंचेन्द्रिय, पनस्वतिकायिक, निगाइ कबयोगी औरारिककाययोगी औरारिकमिअण्ययोगी कामककाय योगी त्पुसकबरी, ओपादि चारों कयबाले मत्पज्ञानी, अतज्ञानी असंयत, अचपुइइनी, कृष्ण आदि तीन केशवाबाले मम्य, अमम्य मिष्णाट्टि, असंखी आहारक और अणहारक जीवोके जानना चाहिये ।

§ १०५. आदेसकी अपवा नाएकियोंमें मोहनीयकी ककुट और अनुककुट स्थितिविमर्षित बाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार साठों प्रविधियोंके नारकी सभी पंचेन्द्रियतिर्यच सव्वपवर्षाक मनुष्य, सामान्य देव, मधनयासियोंसे लेकर सहस्सार तकके देव, सभी विक्खन्निव, सभी पंचेन्द्रिय प्रविधीकायिक आदि चार कयबाले सभी वस षण्ण मनोयोगी, षण्णो बचनयोगी वैकिकिककाययोगी वैकिकिकमिअण्ययोगी जीवोकी, पुरुस्सेरी विमगज्ञानी, आमिनिवाभिकज्ञानी, सुतज्ञानी अचभिज्ञानी, संयतासंयत चपुइइवबाले अचभिअनबाले, पीठ आदि तीन केशवाबाले, सम्पण्टि अणुसम्पण्टि, कण्णसम्पण्टि, सासाहनसम्पण्टि सम्पणिमण्णाट्टि और सभी जीवोके जानना चाहिये ।

§ १०६ मनुष्योंमें मोहनीयकी ककुट स्थितिविमर्षितबाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुककुट स्थितिविमर्षितबाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार जानतसे लेकर अपराजित

एवमाणदादि जाव अरराट्टद० खड्य०दिदि चि । मणुमपज्ज०-माणुसिणी० उअ०  
अणुक्क० केत्ति० ? संरेज्जा । एवं सव्वट्ट०-आहार०-आहारमिम्म०-अणुद०-अणुसा०-  
मणपज्ज०-संजद०-समाहय-अदो०-परिहार०-मुहुम०-जहासराद० ।

एवमुक्कस्मओ परिमाणानुगमो ममचो ।

§ १०७. जहण्णए पयद । दुविणो णिट्ठेसो—ओघेण आदेमेण य । तन्थ  
ओघेण मोह० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? अणता । एव कायजोगि०-  
ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय- अचक्खु०-भवसि०-आहारि चि ।

§ १०८ आदेसेण एरडएमु मोह० ज० अज० केत्तिया ? अमंगेज्जा । एवं  
पढमपुढवि०-सव्वपचिंदिय—तिरिसय—मणुसअपज्ज०-देव०-भवण०-राण०-सव्व—  
विगलिदिय—पचिदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-तसअपज्जत्ते चि ।

तत्कर देव और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पशुपक्ष और मनुष्यनिवोमं  
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार मर्यादा-  
सिद्धिके देव, आहाररुकाययोगी, आहाररुमिश्रकाययोगी, अपगतवदपाले, अकपायी, मनःपर्यय-  
ज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छंदोपस्थापनासयत, परिहारशिशुद्विमयत, सूदनमापरायिकसयत  
और यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—इसमें आंध और आदेशमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंकी मन्त्रा  
वतलाई गई है । आपसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव  
अनन्त हैं । तथा आदेशसे सख्याकी प्ररूपणा चार भागमें बट जाती है । कुछ मार्गणाए अनन्त  
सख्यावाली हैं जिनमें ओषप्ररूपणा घटित हो जाती है । कुछ मार्गणाए असख्यात सख्यावाली हैं  
जिनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दानों स्थितिवाले असख्यात हैं । कुछ मार्गणाए असख्यात सख्या-  
वाली हैं परन्तु उनमें उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असं-  
ख्यात हैं । तथा कुछ मार्गणाए सख्यात संख्यावाली हैं जिनमें उत्कृष्ट स्थितिवाले और अनुत्कृष्ट  
स्थितिवाले दोनों सख्यात हैं । मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ १०७ अथ जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है ? उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका  
है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्ति-  
वाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।  
इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपु सकवेदी, काधादि चारों कपायवाले, अचक्षुशंन-  
वाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०८ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले  
जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, लव्यप-  
र्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लव्यपर्याप्तक, पृथि-  
वीकाधिक आदि चार स्थावरकाय, और त्रस लव्यपर्याप्तक जीवोंका परिमाण जानना चाहिये ।

§ १०६ विदियादि षाव छट्टि चि मणुस०-नोदिसियादि षाव अचराद्द-पंचि०-  
 पंचि०-पञ्च०-तस-तसपञ्च०-पचमण०-पंचपचि-पेठम्बि०-पेठम्बिपमिस्स०-इत्यि०-  
 पुरिस०-बिहंग०-आभिणि०-मुद०-ओहि-संनत्तमद्द०-चक्कु०-ओहिदस०-तिण्णिल०  
 सम्मादि-स्वइय-वेदय-उबसम०-सासण सम्माभि०-सण्णि० मोह०-हिदि० क ?  
 संस्वउत्ता । अद्द० क० ? असंम्बेउत्ता ।

§ ११० सत्तमाइए मोह० ज० अद्द० केत्ति० ? असंम्बउत्ता । तिरिक्ख० मोह०  
 अ० अज० के० ? अरुत्ता । एषं सव्वएइदिय-सम्बपणप्पदि०-सम्बणिगोद०  
 ओरासियमिस्स० कम्मइय०-मदि-मुदअप्पाण-असंज्जद०-तिण्णिले०-अमब० मिच्छा-  
 दिदि०-असण्णि० अणाहारि पि ।

§ १११ मणुसपञ्च०-मणुसिणी० माह० अ० अज० केत्तिया ? संस्वउत्ता ।  
 एषं सव्वह०-आहार० आहारमिस्स०-अचगद०-अकसा०-मणपञ्च०-संज्जद०-सामाइय  
 धेत्ती०-परिहार०-सुहुमसांपराय० अहानत्तादसंज्जदा पि ।

एषं परिमाणानुगमो समथो ।

§ १ E. वृत्ती प्रविषीसे लेखर छठी प्रविषी तफ्फे नारकी सामाम्य मनुष्य, स्योतिषियोंसे लेखर  
 अपराधित तफ्फे देव पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त पाँचों मनोबोगी पाँचों षडनयोगी  
 वैदिकियिद्धमयोगी वैदिकियिद्धमिद्धमयोगी जीवैरी पुरुषवैरी, विमंगलानी प्राग्निबोधिकातानी  
 भुतजानी, अक्षयिजानी संवतान्मथ बहुरक्षेनवाले, अक्षयिद्वैतवाले, पीत आदि तीन सेष्पावाले,  
 सम्बन्धित, आधिकसम्बन्धित, वेदकसम्बन्धित, उपशमसम्बन्धित, सासत्नसम्बन्धित, सम्बन्धि-  
 प्यादित और संती जीवोंमें माहनीयकी अपम्य स्थितिबिभक्तित्वात्त जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।  
 तथा अक्षयन्व स्थितिबिभक्तित्वात्त जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

§ ११० सातवीं प्रविषीमें मोहनीयकी अपम्य और अक्षयन्व स्थितिबिभक्तित्वात्त जीव  
 कितने हैं ? असंख्यात हैं । तियथोंमें माहनीयकी अपम्य और अक्षयन्व स्थितिबिभक्तित्वात्त जीव  
 कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय सभी वनस्पतिअधिक, सभी निगाद और-  
 रिद्धिमिद्धमयोगी कर्मशक्ययोगी मत्पजानी भुतजानी असंयत, कृष्य आदि तीन लक्ष्वा  
 वाले अपम्य, मिष्पादित, असंती और अनाहारक जीवोंके अदना पाहिये ।

§ १११ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्योर्म माहनीयकी अपम्य और अक्षयन्व स्थितिबिभक्ति-  
 वात्त जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सवावैसिद्धिक देव, आक्षरकम्ययोगी,  
 अक्षरकमिद्धमयोगी अपगतबंद्यात्त अक्षपायी मन्यपर्ययजानी संयत सामायिद्धमंयत  
 एवापस्थापनासंयत परिश्रुतिद्विष्टसंयत सूक्ष्मसत्पण्यिद्धमंयत और एवापस्थानमंयत जीवोंके  
 ज्ञानता पाहिये ।

विशुपार्य—आपमे अक्षय स्थिति कृषक जीवक दृष्टिं गुणस्थानके अशितम ममयमें प्राप्त  
 हाती है । अतः ओपकी अपरा अपम्य स्थितिवाते जीव संख्यात हैं । तथा इनके अनिरिक्त

§ ११२ खेताणुगमो दुविहो जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पगद ।  
दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवडि खेचे ?  
लोगस्स असंखे०भागे । अणुक्क० के० खेचे ? सच्चलोए । एवं तिरिक्ख-सव्वएइदिय०—  
पुढवि०—वादरपुढवि०—वादरपुढविअपज्ज०—सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त—आउ०-  
वादरआउअपज्ज-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुम-  
तेउ-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०—वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-  
वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालिय०-  
ओरालियभिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय—मदि—सुदअण्णाण०-असंजद०-  
अचक्खु०-तिणिले०भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति ।

मोहनीयकर्मकी सत्तावाले शेष सब जीव अजघन्य स्थितिवाले हुए और उनका प्रमाण अनन्त है  
अतः ओघसे अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त कहे । तथा मार्गणाओंकी अपेक्षा विचार करने  
पर कहीं ओघ जघन्य स्थिति सम्भव है और कहीं आदेश जघन्य स्थिति सम्भव है । इसीप्रकार  
कहीं जघन्य स्थितिका काल एक समय है और कहीं अन्तमुँहूर्त, अतः जहा जिस प्रकारसे जघन्य  
स्थितिवाले जीवोंका धम या अधिक सचय होता है वहा उसके अनुसार उनकी सख्या कही । किन्तु  
अजघन्य स्थितिवालोंकी सख्या सर्वत्र अपनी अपनी मार्गणाकी सख्याके अनुसार जानना  
चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणामें अनन्त जीव हैं उस मार्गणामें अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी  
सख्या अनन्त जानना । तथा जिस मार्गणामें जीव असख्यात या सख्यात हैं उसमें अजघन्य  
स्थितिवाले जीवोंकी सख्या असख्यात या सख्यात जानना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११२ क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट क्षेत्रानुगमका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे  
ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असं-  
ख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब  
लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर  
पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म  
जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्नि-  
कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त,  
वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक  
पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक  
प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदा-  
रिकमिश्रकाययोगी, कामेणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी,  
असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन जेदयावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहा-  
रक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

११३ आदेसण णेरइपसु मोह० उक्क० मणुक्क० के० स्वत्ते ? लोग० असंस्वे०भागे । एवं सच्चपुइधि-णेरइय-सम्बपंचिदियतिरिक्कन्-सम्बमणुस्स सम्बदन-सम्बभिगण्ठिदिय-सम्बपंचिदिय-आदरपुइधिपज्ज०-आदरआउपज्ज०-आदरतेउ पज्ज०-आदरवणफ्फदियपणेय०पज्ज०-सन्वतस पंचमण०-पंचवचि०-वउन्विय-वउ०मिस्स० [आहार०] आहारमिस्स०-इत्थि० पुरिस०-अवगद०-अकसाय-भिइंग०-आभिणि सुद० आहि०-मणपज्ज०-संजद सामाइय०-अंदा० परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजगसंनद चक्खु-आहिदंसण० तिण्णिलेस्ता-सम्मादि०-स्वइय०-वदय०-उपसम०-सासण० सम्मामि०-सण्णि षि ।

११४ आदरनाउपज्ज० उक्क० क० स्वत्ते ? लोग० असंस्वे०भागे । आणुक्क० लोग० संस्व०भाग ।

एषमुक्कस्सत्त्वत्ताणुगमो समथो ।

११३ आदेशानिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें माइनीयकी छट्ट ब अनुत्तृष्ट स्थितिबिभक्ति-वाले जीव किन्ने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अस्मत्वातमें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारदी समी पंचमिदिय तिर्यक्, समी मनुज्य समी देव समी विक्कसन्निप समी पंचे-मिदिय आदर पृथिवीकायिक पर्याण आदर अलकायिक पर्याण, आदर अग्निकायिक पर्याण आदर वनस्पतिकायिक प्रत्यक् छरीर पर्याण, समी अम पांचों मनोयोगी पांचों वचनयोगी वैदिकिककाय योगी वैदिकिकमिक्काययोगी आहारकमिक्काययोगी आहारकमिक्काययोगी, स्त्रीबेदी, पुरुषबेदी अपगतवेदवाले अकपायी विमंगशानी आभित्तिवायिकशानी, मत्तशानी अपधिशानी, मनःपर्यच्छानी, संयत सामायिकसंयत क्षेत्रोपन्धापनासंयत, परिहारविद्युत्संबत, सूक्ष्ममांपरायिकर्मयत यथा क्वातसंयत संयतासंयत चक्षुइइनी, अक्षपिइइनी, पीत आदि तीन लेदयावाले, सम्पट्टि, पायिकमस्यगट्टि, वेदगसम्यगट्टि, उपशमसम्यगट्टि मासाइमसम्यगट्टि सम्यम्मिध्याट्टि और संघी बीबोंके ज्ञानता आदिय ।

११४ आदर बाणुकायिक पर्याण बीबोंमें उत्तृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव किन्ने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अस्मत्वातमें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्तृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव किन्ने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अस्मत्वातमें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशुपार्य-आपसे उत्तृष्ट स्थितिवाले जीव अस्मत्वात हैं और भागद्वाराओंमेंसे किसीमें अस्मत्वात हैं और किसीमें संत्यात । अतः उत्तृष्ट स्थितियाओंका क्षेत्र मध्य साकक अस्मत्वातमें भाग प्रमाण पदा । किन्तु अनुत्तृष्ट स्थितिवालोंमें आप या आदरमें जिनका प्रमाण अनन्त है उनका क्षेत्र सब साक पदा और जिनका प्रमाण अस्मत्वात है उनका क्षेत्र तीन प्रकारका है । किसी भागद्वाराओंका सब साक क्षेत्र है, किसीका साकका संत्यातमें भाग क्षेत्र है और किसीका साक का अस्मत्वातमें भाग क्षेत्र है । तथा जिन भागद्वाराओंका प्रमाण संत्यात है उनका क्षेत्र साकका अस्मत्वातमें भाग ही है । जिन भागद्वाराओंका जिनका क्षेत्र है उनका अस्मत्वात में प्रमाण ही है ।

इस प्रकार उत्तृष्ट क्षेत्रलुगम समाज हुआ ।





भाठ०-बादरभाठअपज०-सुहुमभाठ-यज्जचापञ्जच-तेठ०-[बादरतेठ०]-बादरतेठअपज०-  
 सुहुमतठ०-पञ्जचापञ्जच-भाठ०-बादरभाठ०-बादरभाठअपज०-सुहुमभाठ०-पञ्जचा  
 पञ्जच-बादरवणफ्फदि०-पत्तेय०-वसिमपज०-सव्यवणफ्फदि०-सन्नपिगोद०-ओरास्त्रिय  
 मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण अमंनद०-विण्णित्तेस्ता अमवसि०-मिच्छादि०-  
 असण्णि-अणाहारि सि ।

§ ११८ एतय मूळुचारणापाठो—तिरिक्कम्ब० मोइ० कइ० सोम० संख० भागे ।  
 अज० सव्यसोग । एदस्साहिप्पाआ सत्यापबिसुद्धवादरइंदियपज्जत्तपसु चेव कइण्ण  
 सामिच्च जावमिदि । एवमेइदिय-बादरेइंदियपज्जचापज्जच-भाठ-बादरभाठ०-तदपज्जचारणं  
 च वत्तम् । एदम्मि अहिप्पाए चचारिकाय-तेसि बादर-तदपज्जचारणं कइ० सोम०  
 अत्तंसे० भागे । अज सव्यत्तगं । मदि सुदअण्णाण०-असज्ज०-तिप्पित्ते० अमव०  
 मिच्छादिदि-असण्णीअं बादरभाठभंगो । एतदणुसारेण च पोसणं णेद्व्यमिदि एद  
 मेत्य पहाणं ।

एवं खेचाणुगामो समचो ।

अपर्याप्त, अलकायिक वात्र अलकायिक वात्र अलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म अलकायिक, सूक्ष्म अलकायिक  
 पर्याप्त सूक्ष्म अलकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक वात्र अग्निकायिक वात्र अग्निकायिक अपर्याप्त  
 सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक, वात्र  
 वायुकायिक वात्र वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त सूक्ष्म  
 वायुकायिक अपर्याप्त वात्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वात्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर  
 अपर्याप्त, समी वनस्पतिकायिक, समी निगोए ओहारिकमिच्छयवागी, कर्मणकायवागी,  
 मत्पञ्चानी मृताञ्चानी, असंयत, कृप्य आदि तीन लोहपात्राले अमध्य, मिष्यादृष्टि, असेनी  
 और अनन्तारक बीबंकि जानना चाहिये ।

§ ११८ वहाँ पर मूळुचारणाका पाठ है कि तिरिक्कंमि मोइनीयकी अपर्याप्त स्थितिबिमन्त्रितवाले  
 बीब लोहक संस्पातवें माग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अत्रापस्य स्थितिबिमन्त्रितवाले बीब सत्र लोहमें  
 रहते हैं । इसका यह अर्थिप्राय है कि स्वस्वान विमुद्ध वात्र परेन्त्रिय पर्याप्तकंमिं ही वहाँ तक  
 अपर्याप्त स्वामित्व है वहाँ तक क्वत् क्षेत्र प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि तिरिक्कंमिं अपर्याप्त स्थिति  
 वात्र परेन्त्रिय पर्याप्तकंमिं ही प्राप्त होती है और क्वत् क्षेत्र लोहके संस्पातवें मागसे अत्रिक  
 नहीं इसलिये सामान्य तिरिक्कंमिं अपर्याप्त स्थितिवाले बीबोंका क्षेत्र क्वत् प्रमाण बतलाना है ।  
 इसी प्रकार परेन्त्रिय वात्र परेन्त्रिय, वात्र परेन्त्रिय पर्याप्त वात्र परेन्त्रिय अपर्याप्त वायुकायिक,  
 वात्र वायुकायिक और वात्र वायुकायिक अपर्याप्त बीबंकि कहना चाहिये । तथा इस  
 अर्थिप्रायानुसार पृथिवीकायिक अग्नि वात्र स्वावरकय उनके वात्र और उनके वात्र अपर्याप्त  
 बीबंमिं अपर्याप्त स्थितिबिमन्त्रितवाले बीब लोहके अस्पातवें माग क्षेत्रमें रहते हैं, तथा अत्रापस्य  
 स्थितिबिमन्त्रितवाले बीब सत्र लोहमें रहते हैं । मत्पञ्चानी मृताञ्चानी, असंयत कृप्य आदि तीन  
 लोहपात्राले अमध्य, मिष्यादृष्टि और असेनी बीबंकि वात्र वायुकायिक बीबंकि समान क्षेत्र है ।  
 तथा इसीके अनुसार स्वयंकेका क्वत् करना चाहिये । इस प्रकार परी विवक्षा यहाँ पर प्रथान है ।

विशुपार्य-ओवसे अपर्याप्त स्थितिवाले बीब संस्पात हैं और मागक्षेत्रोंकी अपर्याप्त

१११६ पोसणाणुगमो दुविहो—जहण्णयो उक्कस्सओ च । उक्कम्मं पयटं ।  
दुविहो णिद्दोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहं उक्कं के० रयेत्तं  
पोसिदं ? लोमं असंखे० भागो अट्ठ-तेरहचोदस भागा वा देमणा । अणुव० खेत-  
भंगो । एवं कायजोगि०-चत्तारिकसाय-मट्टिअण्णाण-मुट्टअण्णाण-अमजद०-अचवरु०-  
भव०-अभव०-मिच्छादि०-आहारि त्ति ।

किसीमें अनन्त हैं, किसीमें असख्यात आर किसीमें सरयात हैं । इनमेंसे जिन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिवाले सख्यात जीव हैं उनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । जिन मार्गणाओंमें असरयात हैं उनमेंसे कुछ मार्गणा तो गेनी हैं जिनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही है । जैसे सातों नरकोंके नारकी आदि । तथा वादरघायुकायिक पर्याप्त यह मार्गणा ऐसी है जिसकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है । इनके अतिरिक्त जो अनन्त सख्यावाली और असख्यात सरयावाली मार्गणा ओप रहती हैं उनकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है । जैसे सामान्य तिर्यच, एकन्द्रिय और पृथिवीकायिक आदि । पर इस विषयमें मूलोच्चारणमें जो पाठ पाया जाता है उसका यह अभिप्राय है कि मूलमें असंख्यात सख्यावाली और अनन्त सख्यावाली जिन मार्गणाओंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है उनमेंसे पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके वादर तथा वादर अपर्याप्त जघन्य स्थितिवाले जीवों का क्षेत्र तो लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही है और इन्हें छोड़कर ओप सब जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके सख्यातवें भागप्रमाण है । सो वीरसेन स्वामीने इस मतभेदका यह कारण बतलाया है कि ऊपर जो सब लोक क्षेत्र कहा है वह मारणान्तिकसमुद्रात् आदिकी अपेक्षासे कहा है और मूलोच्चारणमें जो कुछका लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और कुछका लोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वह स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षासे कहा है, अत दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है । फिर भी वीरसेन स्वामी इन दोनोंमेंसे मूलोच्चारणके अभिप्रायको प्रधान मानते हैं और उसके अनुसार स्पर्शके कथन करनेकी सूचना भी करते हैं । अब रहा ओघ और आदेश से अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सो ओघ या आदेशसे जिसका जितना क्षेत्र बतलाया है, अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसका उतना ही क्षेत्र जानना चाहिये । क्योंकि सर्वत्र यद्यपि जघन्य स्थितिवाले जीव कम हो जाते हैं फिर भी इससे अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा उनके क्षेत्रमें न्यूनता नहीं आती ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

१११६ स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट स्पर्शानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघ निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारो कपायवाले, मत्स्यहानी, श्रुताहानी, अस-यत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यद्वा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो लोकके असख्यात वें भाग प्रमाण

§ १२० आदेसेण गिरय मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेचं पोसिद ? एगस्स असंखे० भागो वचोरस भागा ना देसुणा । पडमाए सुतमगो । निदियादि भाव सत्तमि चि मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेचं पोसिद ? एग० असंखे० भागो एक-व तिष्णि-वचारि पंच-वचोरस भागा देसुणा ।

§ १२१ तिरिकख० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? एग० असंखे० भागो वचोरसभागा ना देसुणा । अणुक्क० के० खेचं पोसिद ? सव्वन्नेगो । एवमोराखि० णनुंस० वचय्वं ।

स्वप्न बतलाया है वह वतमान कालकी मुख्यतासे बतलाया है क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति साठो नरकोंके नारकी सखी पंचेन्द्रिय पयात्त तिर्यक्, पर्यात्त मनुष्य व बारहवें स्वर्ग तकके इयोंके ही सम्भव है । पर इन सबका वतमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय ही है । ब्रसनालीके बौरह मार्गमेंसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम ठेक भाग प्रमाय स्वप्न बतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे बतलाया है क्योंकि विशारपस्वस्वान, बेरना, कपाय और बैक्किचिक्क पत्से परिखत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम आठ भाग स्वप्न किया है और मास्वाम्भिक समुदायसे परिखत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम ठेक भाग स्वप्न किया है । मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके रह्ये हुए तैबस, आहारक और उपपाय ये तीन पद सम्भव नहीं । हाँ स्वस्वामस्वस्वानपद अवश्य होता है सो इसकी अपेक्षा स्वर्ग लोकके असंख्यातवें भागप्रमाय जानना चाहिये । तथा मोहनीयकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंका उद्ग बद्र फि सब लोक है तब स्वप्न तो सब लोक हांगा ही । कुछ मार्ग्याए भी पंखी हैं जिनमें यह भाष प्ररूपया अविच्छन्न बन जाती है अतः उनके कवनको ओपके समान कहा । जैसे क्ययोगी आदि ।

§ १२ आदेसनिर्वेखकी अपेक्षा नरकगतिकें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंने कितन क्षेत्रका स्वप्न किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र और ब्रसनालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम बार भाग क्षेत्रका स्वप्न किया है । पहली पृथिवीमें स्वर्ग क्षेत्रके समान है । तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मत्स्य पृथिवीमें मोहनीय की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंने कितन क्षेत्रका स्वप्न किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र तथा ब्रसनालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम एक दो तीन बार, पांच और छह भागप्रमाय क्षेत्रका स्वप्न किया है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान कालीन स्वप्न लोकके असंख्यातवें भागप्रमाय है और अतीत कालीन स्वर्ग ब्रसनालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम बार भाग प्रमाय बतलाया है । इसीसे यहाँ पर मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके दानों प्रकारका स्वर्ग कृतप्रमाय कहा । जिसपकी अपेक्षा जिस नरकका अतीत कालीन कितना स्वप्न बतलाया है वतमा ही ज्ञान सना चाहिये वा मूलमें बतलाया ही है । यहाँ इमन परपितेसोंका क्सेल नहीं किया है सा यह सब विधेयता बीक्याणसे ज्ञान जनी चाहिये ।

§ १२१ तिर्यक् गतिकें तिर्यकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले जीवोंने कितन क्षेत्रका स्वप्न किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र और ब्रसनालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम बार भागप्रमाय क्षेत्रका स्वर्ग किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियासे जीवोंने कितने

§ १२२ पंचिन्द्रियतिरिक्खतियम्मि उक्क० तिरिक्खोघं । अणुक्क० के० से० पा० ?  
 लो० असखेभागो सव्वल्लो० वा । पंचिन्द्रियतिरिक्खवअपज्ज० मोह उक्क० लो०  
 असखे० भागो । अणुक्क० लो० असखे० भागो सव्वल्लो० वा । एव मणुस-  
 अपज्ज० ।

क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार आदारिककाययोगी  
 और नपुसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सजी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोंके ही  
 सम्भव है और इनका वर्तमान निरास लोके असख्यातवें भागप्रमाण होता है, अतः तिर्यचोंमें  
 मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्श लोके असख्यातवें भागप्रमाण वतलाया  
 है । तथा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह  
 भागप्रमाण वतलानेका कारण यह है कि ऐसे तिर्यचोंने मारणान्तिक समुद्रघात द्वारा नीचे कुछ कम  
 छह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । क्योंकि जिन तिर्यचोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध हो  
 रहा है उनका सजी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, मनुष्य और नारकियोंमें ही मारणान्तिक समुद्रघात  
 करना सम्भव है । तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति सब जातिके तिर्यचोंके सम्भव है और वे  
 सब लोकमें पाये जाते हैं अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका सब लोक स्पर्श  
 वतलाया है । आदारिककाययोग और नपुसकवेदमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके  
 स्पर्शको सामान्य तिर्यचोंके समान वतलाया है ।

§ १२२ पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिमती इन तीन  
 प्रकारके तिर्यचोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तितवाले जीवोंका स्पर्शन मामान्य तिर्यचोंके समान है । तथा  
 उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ?  
 लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पचेन्द्रियतिर्यच  
 लब्धपर्याप्तकोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तितवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका  
 स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तितवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका  
 और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्य तिर्यचोंमें जो उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवों का स्पर्श कहा है वह  
 पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक की मुख्यतासे ही कहा है अतः इन तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्कृष्ट  
 स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान वतलाया है । किन्तु उक्त तीन प्रकारके  
 तिर्यचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंके स्पर्शमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इन  
 तीन प्रकारके तिर्यचोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन  
 स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श उक्त प्रमाण वतलाया है । जो  
 तिर्यच या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके और स्थितिवात किये बिना पचेन्द्रिय  
 तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमें उत्पन्न होते हैं उन्हेंके पहले समयमें मोहनीयकी आदेश उत्कृष्ट स्थिति  
 पाई जाती है । किन्तु इनके अतीतकालीन और वर्तमानकालीन क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह  
 लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले  
 लब्धपर्याप्तक तिर्यचोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है । वैसे  
 पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यचोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और  
 अतीत कालीन स्पर्श सब लोक वतलाया है जो इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्भव है,  
 अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोके दोनों प्रकारका स्पर्श

१०३ षणु०-मणुसपञ्च-मणुसिणीसु उद० फ० ख० पो० ? लो० अमखे० भागो । अणुद० लो० असंखे० भागो सव्यनागा वा ।

१०४ दवसु मोद० उद० अणुद० फ० ख० पा० ? लो० असखं भागो अद्व-गन चोदसभागा वा दमूणा । एषं मोहम्पीसाण० वत्तव्वं । भवण-पाण०-जादिसि० मोद० उद० अणुद० फ० खे० पो० ? लो० अमखे भागा अद्वुष्ट अद्वणस चोदसभागा वा दमूणा । सणनकुमारादि जान महस्सार ति मोद० उद० अणुद० फ० खे० पो० ? लो० असंखे० भागो अद्वचास भागा वा दमूणा । आणद पाणद भारणस्सुद० माद० उद० ख० अमंगो । अणुद० फे० ख० पो० ? लो० असंखे० भागो

कृत प्रमाण पतसाया हे । इन विषयमें मनुष्य सख्यपयापकोही स्थिति पंचत्रिय सख्यपयापक तियपोंके समान है अतः मनुष्य सख्यपयापकोही स्वयं पंचत्रिय तियस सख्यपयापकोके समान पतसाया है ।

१०५ सामान्य मनुष्य, मनुष्य पयाप और मनुष्यनिषेधोंमें माहनीयकी कृष्ट स्थिति विभक्तिपाल जीपाम द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । साकके असंख्यातयें भाग प्रमाण एत्रका स्वयै क्रिया है । तथा अनुष्टुभ स्थितिविभक्तिपाले जीषोन द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । साकके असंख्यातयें भाग और एव साक एत्रका स्वया क्रिया है ।

विशुषार्थ-सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योंमें माहनीयकी कृष्ट स्थितिपाल जीषोंका स्वयं साकके असंख्यातयें भाग बहनका कारण यह है कि एके मनुष्य संग्रहण है । हात है और इनका कृष्ट स्थितिके साथ मन्त्र माण्डानिके समुद्रपात परना मन्त्र नही जना । इनका शरीर मन्त्रका स्वयै इमान अधिक नही प्राप्त होता । किन्तु एके तान प्रकारके मनुष्योंका पतमान स्वयै साकके असंख्यातयें भाग और अज्ञानकार्यन करत सब साक पतनाया है आ माहनीयका अनुष्टुभ स्थितिके साथ सम्भव है अतः अनुष्टुभ स्थितिका कृष्ट तीन प्रकारके मनुष्योंका स्वयं पतमान प्रमाण है ।

१०६ दोषोंमें माहनीयकी कृष्ट और अनुष्टुभ स्थिति विभक्तिपाल जीषोंके द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । साकके असंख्यातयें भाग एत्रका तथा प्रमत्तारीक पाद भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण एत्रका स्वयं क्रिया है । इसी एत्रका स्वयं और एत्रका स्वयं है दोषोंके द्विमा धारिय । मन्त्राधारी एत्रका और एत्राद्विरी दोषोंमें माहनीयकी कृष्ट और अनुष्टुभ स्थिति विभक्तिपाल जीषोंके द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । साकके असंख्यातयें भाग एत्रका तथा प्रमत्तारीक पाद भागोंमेंसे कुछ कम साद तीन पाद और नौ भागप्रमाण एत्रका स्वयं क्रिया है । मन्त्रकारों एत्रका एत्रका स्वयं कृष्ट इसमें माहनीयकी कृष्ट और अनुष्टुभ स्थितिविभक्तिपाल जीषोंके द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । साकके असंख्यातयें भाग एत्रका और प्रमत्तारीक पाद भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग एत्रका स्वया क्रिया है । अतः सामान्य कारण और अनुष्टुभ कारण दोषोंमें माहनीयकी कृष्ट स्थिति विभक्तिपाल जीषोंके द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । तथा एत्रका दोषोंमें माहनीयकी अनुष्टुभ स्थितिविभक्तिपाल जीषोंके द्विन एत्रका स्वया क्रिया है । साकके असंख्यातयें भाग एत्रका और प्रमत्तारीक पाद भागोंमेंसे कुछ कम एत्रका स्वया क्रिया

छचोहस भागा वा देसूणा । उवरि खेत्तभगो । एवं औरालियमिस्स- वेउव्वियमिस्स-  
आहार-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-  
सुहुम०-जहाक्खवाद०-संजदे त्ति ।

§ १२५. ईदिय० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो णव  
चोइसभागा वा देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । एवं वादरेइदिय-वादरेइदियपज्ज० ।  
सुहुमेइदियपज्जत्तापज्जत्त-वादरेइदियअपज्ज० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोगस्स  
असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक्क० सव्वलोगो । एवं पंचकाय-सुहुम-पज्जत्तापज्ज-  
त्ताणं ।

है । अच्युत स्वर्गके ऊपर देवोंके स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अर्थात् नौभेयक  
आदिके देवोंके समान औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकणाययोगी,  
आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्था-  
पनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—<sup>१</sup>वट्टाण आदिमें सामान्य देवोंका व भवनवासी आदि देवोंका जो वर्तमान-  
कालीन व अतीतकालीन स्पर्श वतलाया है वही यहा उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट स्थितिवाले उक्त देवोंका  
स्पर्श जानना चाहिये जो मूलमें वतलाया ही है । अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिवालोकके स्पर्शमें है । बात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमें जो द्रव्यलिंगी मुनि  
उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है और इनके अतीतकालीन  
स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु विहार आदिके समय प्राप्त होता है । इस प्रकार आनतादिकमें  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोकका वर्तमान व अतीत स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण  
ही प्राप्त होता है । मूलमें औदारिकमिश्र आदि मार्गणाओंमें इसी प्रकार है यह वतलाया है सो  
इसका भाव यह है कि इन मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवालोकका स्पर्श अपने अपने क्षेत्रके  
समान जानना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

§ १२५ एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श  
किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग  
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके जानना  
चाहिये । सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय  
अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ?  
लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट  
स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पाचों स्थावर-  
काय, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म  
अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १२६ सन्धविगलित्विय० मोह० उक्क० लो० असंस्ले० भागो । अणुक० लो० असंस्ले० भागो सन्धलो० वा । एषं पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज० पचम्भं ।

§ १२७ पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस तसपज्ज० मोह० उक्क० औपं । अणुक० लो० असंस्ले० भागो अट्ठचोरस भागा वा देसूणा सन्धलो० वा । एषं पंचमण०-पंचवचि० इत्थि०-पुरिस०-विहंग० चकलु -सण्णि पि ।

इस कम नौ बटे पौरुह रसु बतलाया है । यहाँ तीसरी प्रविधीतक हो रसु और ऊपर सात राजु इस प्रकार नौ राजु लेना चाहिये । तथा अनुकृत स्थितिवाले एकेन्द्रिय बीज सब लोकमें पाये जाते हैं अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक कहा । बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें यह व्यवस्था अधिकतर पन्थि हो जाती है इसलिये इनके स्पर्शका एकेन्द्रियके समान कहा । किन्तु इतनी विधेयता है कि इनका सब लोक स्पर्श मारयान्तिक और उपपात्तपक्षी अपेक्षा ही जानना चाहिये । जो संघी पंचेन्द्रिय तिर्यक और मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवा बच करके सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपयाप्त तथा बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्त बीजोंमें उत्पन्न होते हैं क्योंकि पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अब यदि इनके वर्तमान स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण प्राप्त होता है और अतीत कालीन स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह सब लोक प्राप्त होता है । यही सब है कि यहाँ जन्तु मार्गशास्त्रोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्श सब लोक प्रमाण बतलाया जाना सम्भव है अतः जन्तु मार्गशास्त्रोंमें अनुकृत स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक कहा । यहाँ बाहर एकेन्द्रिय अपयाप्त बीजोंका सब लोक स्पर्श उपपात्त और मारयान्तिक पक्षी अपेक्षा ही जानना चाहिये । पाँचों सूक्ष्म स्थावरकण्य आदि कुछ पेसी मार्गोपाय हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके जन्तुको एक प्रमाण कहा ।

§ १२६ समी विच्छेन्द्रिय बीजोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तियाले बीजोंके लोकके असंख्यातवें माग क्षेत्रका तथा अनुकृत स्थितिविभक्तियाले बीजोंके लोकके असंख्यातवें माग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय लक्ष्म्यपर्याप्तक और असंख्यातक बीजोंके कहा जाहिये ।

विशोपार्थ-सब विच्छेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट स्थिति क्योंकि होती है जो संघी तिर्यक और मनुष्योंमेंसे आकर यहाँ उत्पन्न होते हैं । अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण कहा । तथा सब विच्छेन्द्रियोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुकृत स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लक्ष्म्यप्रमाण कहा है । यही व्यवस्था पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और असंख्यातकोंमें बन जाती है अतः इनके जन्तुको सब विच्छेन्द्रियोंके समान कहा ।

§ १२७ पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त अस और अस पर्याप्त बीजोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तियाले बीजोंका स्पर्श ओपके समान है । तथा अनुकृत स्थितिविभक्तियाले बीजोंका स्पर्श लोकका असंख्यातवें माग असनलोकके पौरुह मार्गोंमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाण और सब लोक है । इसी प्रकार पाँचों मरुतोयोगी पाँचों बचनयोगी, स्त्रिवेदी, पुरुषवेदी विमंगलास्त्री, बच्चु वरुनी और संघी बीजोंके जानना चाहिये ।

विशोपार्थ-पंचन्द्रियादि चार मार्गशास्त्रोंमें अनुकृत स्थितिवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका पतलाया है । लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकालकी अपेक्षासे बतलाया है, क्योंकि



§ १२८ कायाणुवादेण पुढवि-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादर-

आउ०—वादरआउपज्ज०—वणप्फदि-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपत्तोय० तस्सेव  
पज्ज० मोह० उक्क० एइदियभंगो । अणुक्क० सव्वलोगो । णवरि तिण्हं पज्जत्ताणं  
मोह० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । वादरपुढविअपज्ज०-वादर  
आउअपज्ज०—तेउ०—वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउ—  
अपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तोयअपज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो  
वा । णवरि वादरपुढविअपज्ज० [ -वादरआउ०अपज्ज०- ] वादरतेउ०अपज्ज०-  
[ वादरवाउअपज्ज०- ] वादरवणप्फदिपत्तोयअपज्जत्ताणं सव्वलोगफोसणं णत्थि ।  
अणुक्क० सव्वलोगो । वादरवाउ०पज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो  
वा । अणुक्क० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा । वादरतेउ०पज्ज० मोह० उक्क०  
के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा ।

जितने क्षेत्रमें उक्त मार्गणावाले जीव निवास करते हैं । उनके वर्तमान क्षेत्रका प्रमाण लोकके असख्यातवें भागसे अधिक प्राप्त नहीं होता । कुछ कम आठ वटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहारवत् स्वस्थान आदिकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि इन जीवोंके ये पद दो राजु नीचे और छह राजु ऊपर इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं । तथा सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षासे कहा है । कुछ और मार्गणाए हैं जिनमें उक्त व्यवस्था ही प्राप्त होती है । जैसे पाचों मनोयोगी आदि ।

§ १२८ कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्शन एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्शन सब लोक है । इतनी विशेषता है कि उक्त तीन प्रकारके पर्याप्त जीवोंमें अनुकृष्ट स्थितिविभक्तित्वाले जीवोंका स्पर्शन लोकका असख्यातवा भाग और सब लोक है । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके सर्वलोक स्पर्शन नहीं है । तथा अनुकृष्ट स्थिति विभक्तित्वाले उक्त जीवोंका स्पर्शन सब लोक है । वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तित्वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तित्वाले जीवोंने लोकके सख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । वादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तित्वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुकृष्ट स्थिति-विभक्तित्वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

§ १२६. बेरुम्बिय० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? सोग० असंखे० भागी  
अह-तेरह चोरस भागा वा देसूणा । कम्माइय० मोह० उक्क० लो० असं० भागो तेरह  
चोरसभागा वा देसूणा । [अणुक्क० सन्नलागो ।] आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क०  
अणुक्क० लो० असं० भागो अहचोरस भागा वा देसूणा । एवमोहिदंस० सम्मादि०-  
वेदय०-उवसम०-सम्माभि० ।

विशेषार्थ-पदां पृथिवीकायिक आदिमें एकदृष्ट स्थितिबालोंका स्पर्श एकैन्द्रियोंके समान  
वतहाकर मी अनुकृष्ट स्थितिबालोंका स्पर्श अलगसे वतलाया है । इसका कारण यह है कि उपर्युक्त  
मार्गणात्मोंसे कुछमें तो अनुकृष्ट स्थितिबालोंका दोनो प्रकारका स्पर्श सब लोक बन जाता है  
पर उनके पर्याप्तकोंमें बर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है क्योंकि  
बाह्यपृथिवीकायिक पयात्क आदि बीबोंने बर्तमानमें लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श  
किया है । बस इतनी विशेषताके लिये ही एक मार्गणात्मोंमें अनुकृष्ट स्थितिबालोंका स्पर्श  
अलगसे कहा है । बाह्य पृथिवीकायिक अपयात्क आदि बीबोंमें मोहनीयकी एकदृष्ट स्थिति जन्हीं  
बीबोंमें प्राप्त होती है वा संज्ञा तिर्येच वा मनुष्य वत्कृष्ट स्थिति वांचकर परचात् इन्में उत्पन्न होते  
हैं । जब यदि इनके बर्तमान और अतीत स्पर्शका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः पदां एक मार्गणात्मोंमें सब लोक प्रमाण स्पर्शका निवेच किया  
है । यद्यपि बाह्य वायुकायिक पर्याप्त बीब काकके संख्यातवें भागका और सब लोकका स्पर्श करते  
हैं किन्तु मोहनीयका एकदृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जब विचार करते हैं तब उनका लोकके संख्यातवें  
भागके स्वानमें लोकका असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्श प्राप्त होता है, क्योंकि जो संज्ञी  
पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्येच वा मनुष्य मोहनीयकी एकदृष्ट स्थितिकी वक्ष्य करके परचात् बाह्य पर्याप्त  
वायुकायिकमें उत्पन्न होते हैं । उनके बर्तमान कालीन स्पर्शका भाग लोकका असंख्यातवें भाग  
प्रमाण ही होता है । हां यदि अतीत कालीन उपपायका अपेक्षा इसका विचार करते हैं तो वह  
सब लोक बन जाता है ।

§ १२६. वैश्विक अयबोगी बीबोंमें एकदृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिविशिष्टतासे बीबोंने किन्तु  
क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा प्रसन्नताकी चौरह भागोंमेंसे कुछ कम  
आठ भाग और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । कम्पेक्षकययोगिबीबोंमें मोहनीय  
का एकदृष्ट स्थाव विभाकेनाल जावान काकके असंख्यातवें भाग और प्रसन्नताकी चौरह भागोंमें से  
कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविशिष्टतासे बीबोंने  
सकेलाक क्षेत्रका स्पर्श किया है । आभिनवापिकजानी, सुतकानी और अन्धधियानी बीबोंमें मोहनीयकी  
एकदृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिविशिष्टतासे जावान काकके असंख्यातवें भाग और प्रसन्नताकी  
चौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अन्धधियानी,  
सम्पदष्टि, बरकसम्पदष्टि, उपसमसम्पदष्टि और सम्पदिमप्याष्टि बीबोंके ज्ञानना चर्हिण ।

विशुपार्य-वैश्विक अयबोगमें एकदृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबालोंका स्पर्श तीन प्रकार  
का वतलाया है । लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श बर्तमानकालीनी अपेक्षा वतलाया है,  
क्योंकि वैश्विकअयबागबालोंका बर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है ।  
अतीतकालीन स्पर्श पृथिवीयोंकी अपेक्षा वा प्रकारका है कुछ कम आठ बटे चौरह राज्य और  
कुछ कम तेरह बटे चौरह राज्य । इसमेंसे पहला विहारणत् स्वत्वात्, वेदना, कयच और वैश्विक

§ १३० संजदासंजद-संजद० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० लोग० असंखे०-भागो छचोदस भागा वा देसूणा । एवं सुक्कले० । तेउले० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो ।

§ १३१ किण्ह०-णील०-काउ० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०-भागो छ-चदु-बे-चोदसभागा देसूणा । अणु० सन्वलो० ।

§ १३२ खइय० मोह० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०-भागो अट्टचोदस भागा वा देसूणा ।

§ १३३ सासण० मोह० उक्क० लोग० असंखे०-भागो अट्टचोदस भागा वा देसूणा । अणुक्क० अट्ट-वारहचोदस भागा वा देसूणा । असण्णि० एइदियभंगो ।

पदोंकी अपेक्षा कहा है और दूसरा मारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा कहा है । कर्मणकाययोगियोंका स्पर्श यद्यपि सब लोक है किन्तु यहा उत्कृष्ट स्थितिवालोकका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग है और अतीतकालीने स्पर्श कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पर्याप्तके ही होती है । अब यदि ऐसे जीव दूसरे समयमें मरकर कर्मणकाययोगी होते हैं तो उनका वर्तमान स्पर्श लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये यहा वर्तमान स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मणकाययोगियोंने अतीत कालमें नीचे कुछ कम छह राजु और ऊपर कुछ कम सात राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है अतः इनका अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु कहा । आभिनवोधिकज्ञानादि मार्गणा-श्रमों उस मार्गणाका जो स्पर्श है वही यहा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

§ १३०. सयतासयत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्कलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श है । पीतलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सौधर्मके देवोंके समान है । तथा पद्मलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सहस्त्रार स्वर्गके देवोंके समान है ।

§ १३१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोकमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागों में से कुछ कम छह, चार और दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सवलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३२. चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाने जावोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३३ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ

अणाहारि कम्मइयमंगो ।

एवं उक्त्स्सपोसणापुगमो समत्तो ।

§ १३४ महण्णप पयदं । दुविहा णिव्वदसो—ओघेण आदसेण य । तस्य ओघेण मीह० सह० के० खे० पो० ? साग० असंखे० भागो । अन्न० सम्बन्धीगो । एवं काययोगि—ओराभि०—णवु स० चचारिक०—अचन्सु० मनसि० आहारि चि ।

§ १३५ आदसेण णेरइय० मीह० जह० खेत्तमंगो । अन्न० अणुक्त्स्समंगो । पइमाए खेत्तमंगो । विदियादि जाप सत्तमि चि मोह० जह० खेत्तमंगा । अन्न० अणुक्त्स्स० मंगा ।

और कुछ कम बाह्य भागप्रमाण क्षेत्रका स्वतंत्र किया है । असंखी बीबोंका स्वतंत्र एकेन्द्रिकताके समान है । तथा अनाहारी बीबोंका स्वतंत्र कर्मण्यकारयोगिकताके समान है ।

विशेषार्थ—संघातसंघातके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति इन गुणास्वान्तोंको प्राप्त होनेके पहले समयमें होती है पर उस समय मारण्यमितक समुद्रपात सम्भव नहीं अतः इन दोनों मार्गव्याप्तोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वतंत्र लोके असंख्यातवें भाग कहा है और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वतंत्र इन मार्गव्याप्तोंके स्वतंत्रके समान ही कहा है । कृष्ण श्लेषामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वतंत्र सातवें नरककी मुख्यतासे, नील श्लेषामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वतंत्र पांचवें नरककी मुख्यतासे और कपोत श्लेषामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वतंत्र तीसरे नरककी मुख्यतासे कहा है । सासारान्तोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो कुछ कम आठ वटे बौद्ध रासु स्वयं उतझाया है वह पूर्वकी प्रधानतासे कहा है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वतंत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ १३६ अय अणपण्य स्वतंत्रानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश जो प्रकरका है—ओपनिर्देश और आरेखनिर्देश । इनमेंसे ओप निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी अणपण्य स्थिति विमल्लिखिते बीबोंने कितन क्षेत्रका स्वतंत्र किया है ? लोके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्वतंत्र किया है । तथा अणपण्य स्थितिविमल्लिखिते बीबोंने सर्वत्रोक्त क्षेत्रका स्वतंत्र किया है । इसी प्रकार काययोगी औदारिककाययोगी नृपसकलेश्वरी क्षेत्रादि चारों कयाववाले, अचक्षुर्दृष्टेनी मय्य और आहारक बीबोंके कहा जाहिसे ।

विशेषार्थ—ओपसे मोहनीयकी अणपण्य स्थिति चक्रमखिमें प्राप्त होती है और अणपण्य स्वतंत्र लोके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है अतः यहाँ ओपसे अणपण्य स्थितिवालोंका स्वतंत्र लोके असंख्यातवें भागप्रमाण उतझाया है । तथा अणपण्य स्थितिवालोंका स्वतंत्र सब लोक है यह स्पष्ट ही है । मूलमें गिनार्थ गई अणपण्यी अपदि कुछ पंथी मार्गव्याप्त हैं जिनमें ओपके समाप्त स्वतंत्र बन जाता है अतः इनके कवनको ओपके समान कहा ।

§ १३७ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा मारण्योमिं मोहनीयकी अणपण्य स्थितिविमल्लिखिते बीबों का स्वतंत्र क्षेत्रके समान है । तथा अणपण्य स्थितिविमल्लिखिते बीबोंका स्वतंत्र अनुत्कृष्ट स्थिति विमल्लिखिते बीबोंके समान है । पक्षी पृथिवीमें स्वतंत्र क्षेत्रके समान है । तथा दूसरी पृथिवीसे लकर स्वतंत्र पृथिवी तकके मारण्योमिं मोहनीयकी अणपण्य स्थितिविमल्लिखिते बीबोंका स्वतंत्र क्षेत्रके समान है । तथा अणपण्य स्थितिविमल्लिखिते बीबोंका स्वतंत्र अनुत्कृष्ट स्थितिविमल्लिखिते बीबोंके स्वतंत्रके समान है ।

§ १३६, तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खे० पोसिदं ? सव्वलोगो । एवं सव्वेइंदिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त - तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज-सुहुम-वाउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०-तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणि-गोद०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-असंजद-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि ति । एत्थ खेत्तम्मि भणिदविहाणेण मूलुच्चारणाए पाठ-भेदो अणुगंतव्वो । तदहिप्पाएण तिरिक्खेसु लोगस्स असंखे० भागमेत्तपोसणुवलंभादो ।

**विशेषार्थ-**नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोकका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । स्पर्श भी उतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो असङ्गी नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके विग्रहके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति होती है । किन्तु असङ्गी जीव पहले नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और पहले नरकका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं है अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिवालोकमें जघन्य स्थितिवालोकको छोड़कर शेष सबका समावेश हो जाता है अतः सामान्यसे अजघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । पहली पृथिवीके नारकियोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है अतः यहा पहली पृथिवीके जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकियोंका स्पर्श क्षेत्रके समान कहा है । दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थिति उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें हाती है जिन्होंने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तातुबन्धीकी विसयोजना कर ली है । तथा सातवें नरकमें उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं । अब यदि इन जीवोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असख्यातवें भाग-प्रमाण ही प्राप्त होता है और इन द्वितीयादि नरकोंके नारकियोंका क्षेत्र भी इतना ही है अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिवालोकका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोकके स्पर्शका खुलासा जैसा ऊपर कर आये हैं उसी प्रकार यहा भी कर लेना चाहिये ।

§ १३६ तिर्यग्गतियमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, आग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक, वादर आग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म आग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायु-कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निर्गोद, औदारिक, निष्काययोगी, कर्मण्णकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, इन्द्रिय, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । यहा पर क्षेत्रानुगममें कही



§ १३६ सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज-० तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअप-  
ज्जत्तभंगो । पंचि- [पंचि-] पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज०  
अणुक्कस्सभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-  
सण्णित्ति ।

§ १४० वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्ते य  
पज्ज० मोह० ज० अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । वादरवाउपज्ज०  
मोह० ज० अज० लोग० संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ।

§ १४१ वेउन्विय० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । एव-  
माभिणि०-सुद०-ओहि०-सजदासंजद०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-  
उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १४२ कालाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं ।  
दुविहो णिहोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवचिर कालादो ?

§ १३६ सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रसअपर्याप्त जीवोंमें स्पर्श पंचे-  
न्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान है । पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें  
मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थिति-  
विभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उन्हींके अनुत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों  
वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४० वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक  
पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अज-  
घन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने  
लोकके सख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १४१ वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श  
उनके क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उनके अनुत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शके समान है । इसी प्रकार आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, सयतासयत, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि,  
वेदगसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।  
इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४२ कालानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उक्कृष्ट । उनमेंसे उक्कृष्ट कालानुगमका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी

१—प्रती अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । वादरवाउपज्ज० अणुक्कस्सभंगो  
इति पाठः ।

जह० एगसमभो, उक० पच्छिदा० असंखे० भागी । अणुक० के० ? सम्बदा । एवं सम्बधिरय-तिरिक्त्त-पंचिदियतिरिक्त्ततिय-ट्रेव भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय पंचि० पञ्ज०-तस-ससपञ्ज०-पंचमण०-पचनधि-कायजोगि०-ओरालिय०-वेचविय० तिणिवेद० चचारिक०-मदि-मुदअण्णाण०-बिईग०-असंजद०-बक्खु० अचक्खु०-पंच से० भवसि० अमवसि०-मिच्छाइदि-सण्णि आहारि पि ?

§ १४३ पंचिदियतिरि०अपञ्ज० मोह उक० केव ? जह० एगसमभो, उक० आवसि० असंखे० भागी । अणुक० सम्बदा । एवं सम्बधिरिय-सम्बधिगसिंदिय पंचि दियअपञ्ज०-पंचकाय०-तसअपञ्ज० ओरालियमिस्स०-कम्मइय० आमिणि०-मुद० मोहि०-संमदासंजद-ओरिदंस०-मुक०-सम्मादि०-वेदय० असण्णि-अणाहारि पि ।

§ १४४ मणुसतिय० मोह० उक० के० ? जह० एगसमभो, उक० अंतोमुहुत्तं । अणुक० सम्बदा । मणुसमपञ्ज० मोह० उक० के० ? जह० एगसमभो, उक० आवसि० असंखे० भागी । अणुक० के० ? जह० खुदामपगहर्णं समउर्णं । उक० पच्छिदा० असंखे० भागी । आणदादि जाव सम्बह० मोह० उक० केव० ? अ० एग-

अपेदा मोहनीयकी एकुत्त स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? अथवा सत्त्वकाल एक समय और एकुत्त सत्त्वकाल परबके असंख्यातर्षे मागप्रमाण है । तथा अनुत्कृत स्थिति-विभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सबैकाल है । इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यक, पंचेन्द्रिय तिर्यक पंचन्द्रिय पर्याप्त तिर्यक पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यक सामान्य देव भवम-वासियोंसे लेकर स्वर्गकार स्वर्ग तकके देव पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म ब्रह्मपर्याप्त पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, कर्मयोगी औदारिककाययोगी, वैद्विदिककाययोगी, तीनों धरवाले क्लेषादि चारों क्लेषवाला मत्प्राणी भ्रुतप्राणी विमग्नप्राणी असंयत पशुपक्षिनी अथकुर्यानी इन्द्र्य आदि पांच शेरवावाले भव्य अमम्य मिध्याट्टि, संझी और अज्ञारक जीवोंके कालना चाहिये ।

§ १४३ पंचेन्द्रिय तिर्यक अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी एकुत्त विभक्तिकाले जीवोंका सत्त्व काल कितना है ? अथवा सत्त्वकाल एक समय और एकुत्त सत्त्वकाल आबलीके असंख्यातर्षे माग-प्रमाण है । तथा अनुत्कृत स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल सबैकाल है । इसी प्रकार सभी पंचे-न्द्रिय सभी विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त पांचों स्थावरकाल ब्रह्म अमर्याप्त औदारिकमिभ कर्मयोगी कर्मब्रह्मकाययोगी आमिनिरोधिकप्राणी, नटप्राणी, अथधिप्राणी संघतासंघत अथविपक्षेनी दुस्तलसंस्थावाले सम्बन्धट्टि, वेदकसम्पट्टि, असंझी और अनाज्ञारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४४ सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी एकुत्त स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? अथवा एक समय और एकुत्त अन्तमु हुत है । तथा अनुत्कृत स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल सबैकाल है । साम्यपर्याप्तक मनु-ष्योंमें मोहनीयकी एकुत्त स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? अथवा एक समय और एकुत्त आबलीके असंख्यातर्षे मागप्रमाण है । तथा अनुत्कृत स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है । अथवा एक समय कर्म कुरामाभ्यस्यप्रमाण और एकुत्त पर्योपमके असंख्यातर्षे



समञ्चो, उक्क० संखेज्जा समया । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं मणपज्ज०-संजट०-सामा-  
इय-छेदो०-परिहार०-खइयसम्भाइत्ति त्ति ।

§ १४५ वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जह० एगसमञ्चो, उक्क०  
आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।  
एवमुवसम०-सम्माभि० वत्तव्वं ।

§ १४६ अवगद० मोह० उक्क० जह० एगसमञ्चो, उक्क० संखेज्जा समया ।  
अणुक्क० ज० एगसमञ्चो, उक्क० अंतोमु० । एवमकसा०-सुहुमसांपरा०-जहक्खादे त्ति ।  
[ एवं आहार०-आहारमि० । णवरि आहारमि० अणुक्क० जह० अंतोमु० । ]

§ १४७ सासण० मोह० उक्क० जह० एगसमञ्चो, उक्क० आवलि० असंखे०-  
भागो । अणुक्क० जह० एगसमञ्चो, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।  
एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

भागप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-  
वाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सख्यात समय है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, सयत,  
सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत और चायिकसन्त्यगृष्टि जीवोंके जानना  
चाहिये ।

§ १४५ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका  
सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलीके असख्यातवें भाग प्रमाण है ।  
तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार उपशमसम्यगृष्टि और सम्यग्मिध्यागृष्टि  
जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १४६ अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल  
एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल सख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका  
जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अकपायी,  
सूक्ष्मसांपरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिए । इसी प्रकार आहारक व  
आहारकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिए । परन्तु आहारकमिश्रकाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थिति  
विभक्तिवालोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है ।

§ १४७ सासादनसम्यगृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका  
जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**--नाना जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक  
और अधिकसे अधिक पल्यके असख्यातवें भाग कालतक होता है । इसके पश्चात् एक भी जीव  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला नहीं रहता, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी

उत्कृष्ट स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल पर्यन्त असंस्मातर्षे भागप्रमाय क्वा । सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्ग्यार्षे हैं जिनमें यह बोधप्रत्यक्षा अविकल पटित होती है, अतः उनकी प्रकृत्याको बोधके समान क्वा । उन मार्ग्यार्षोके नाम मूलमें गिनाये ही हैं । इनके अतिरिक्त और जितनी मार्ग्यार्षे हैं उनमेंसे आठ सन्तर मार्ग्यार्षोको तथा अपगतवेव अक्षय्य और बवास्मातसंयत इन तीन मार्ग्यार्षोके ओइकर शेष सब मार्ग्यार्षोमें अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल सर्वथा है, क्योंकि इनमें अनुकृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । तथा उत्कृष्ट स्थितिका अपन्यकाल एक समय है क्योंकि इन मार्ग्यार्षोमें एक समयतक उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होकर दूसरे समयमें उसका बिच्छु सम्भव है । हा इनमें उत्कृष्टकाल भिन्न भिन्न प्रकार पाया जाता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है । फिर भी यहाँ उसके कारणक संघर्षमें विचार कर लेते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यङ्क लक्ष्यपर्याप्तकेमें एक बीबकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । अब यदि नाना बीब निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिके चारक हों तो वे आत्मिकके असंस्मातर्षे भागप्रमाय काल तक ही होंगे इसके बाद इनमें उत्कृष्ट स्थितिकर निम्नसे अन्तरकाल आ जाता है अतः इनमें उत्कृष्टस्थितिका उत्कृष्ट काल आत्मिकके असंस्मातर्षे भागप्रमाय क्वा । मूलमें निर्दिष्ट सब पंचेन्द्रिय आदि कुछ मार्ग्यार्षोकी स्थिति इसी प्रकारकी है अतः इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल लक्ष्यप्रमाय क्वा । सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योंमें एक बीबकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूँ है । परन्तु इनका प्रमाय संस्मात है अतः लगातार संस्मात नाना बीब भी लक्ष्य यदि उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त हों तो भी उस सब कालक ओइ अन्तमु हूँसे अधिक नहीं होगा । यही कारण है कि इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूँ क्वा । यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असंस्मात है फिर भी यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके प्रकारमें सामान्य मनुष्योंमें लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य प्रधान नहीं हैं । आन्तारिक कर्मोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है जिसका काल एक समय है और यहाँ मनुष्य बीब ही भरकर उत्पन्न होते हैं । अब यदि आन्तारिक कर्मोंमें उत्कृष्ट स्थितिवाले बीब लगातार उत्पन्न हों तो संस्मात समय तक ही उत्पन्न हो सकते हैं क्योंकि इनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य ही संस्मात हैं । अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिकर उत्कृष्ट काल संस्मात समव क्वा । यही बात मनःपर्ययदान आदि मूलमें गिनाई गई शेष मार्ग्यार्षोमें जानना चाहिए । अब रही सन्तरमार्ग्यार्षो और अपगत वेव आदि तीन मार्ग्यार्षोकी बात । जो इनमें कालका मुलासा निम्न प्रकार है—लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंमें एक बीबकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिकर अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । अब यदि अन्तरके बाद नाना बीब एक साथ उत्कृष्ट स्थितिके चारक हुए तो दूसरे समयमें उनकी निम्नसे अनुकृष्ट स्थिति हो जायगी अतः लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंमें नाना बीबोंकी अपेक्षा भी उत्कृष्ट स्थितिकर अपन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । यही बात शेष मार्ग्यार्षोमें जान लेना चाहिए । लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य यदि निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिके चारक होते रहें तो आत्मिकके असंस्मातर्षे भाग प्रमाय काल तक ही होंगे अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिकर उत्कृष्टकाल आत्मिकके असंस्मातर्षे भागप्रमाय क्वा । यही बात वैश्विकविभक्त्यायोगी, ब्रह्मसम्पत्पट्टि सम्बन्धि-प्याट्टि और सासाधनसम्पत्पट्टि मार्ग्यार्षोके विषयमें जानना चाहिये । तथा उत्कृष्ट स्थितिके चारक लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य एक साथ उत्पन्न हुए और दूसरे समयसे इनका उत्पन्न होना ही बन्द हो गया तो लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें अनुकृष्ट स्थितिकर अपन्यकाल एक समय कम सुरामवभय प्रमाय प्राप्त होगा । तथा लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्टकाल पर्यन्त असंस्मातर्षे भागप्रमाय है अतः इनमें अनुकृष्ट स्थितिकर उत्कृष्टकाल भी इतना ही प्राप्त होता है । इसी प्रकार वैश्विकविभक्त्यायोगी, ब्रह्मसम्पत्पट्टि और सासाधनसम्पत्पट्टिके अनुकृष्ट स्थितिकर उत्कृष्ट

§ १४८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्दोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा सामया । अज० सवद्धा । एवं विट्ठियादि जाव छट्ठि त्ति मणुसतिय-जोडिसियादि जाव सव्वट्ठ०-पंचिट्ठिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-फायजोगि०-ओरालि०-वेउक्किय०--तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-विहंग०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंसण०-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-सण्णि०-आहारि० त्ति ।

§ १४९. आदेसेण णेरइधेसु मोह० जह० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-भागो । अज० केव० ? सव्वद्धा । एवं पढमाए । एवं सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०-भवण०-वाण०-सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्व । सत्तमाए० मोह०

काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण जानना । नाना जीवोंकी अपेक्षा भी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जगन्मकाल अन्तमुहूर्त है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । यदि मनुष्य उपशमश्रेणी पर निरन्तर बढें तो सख्यात समय तक ही चढेंगे और उन सबके कालका जोड अन्तमुहूर्त ही होगा अतः अपगतवेद, अकपाय, सूक्ष्मसम्परायसयम और यथाख्यातसयमसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल सख्यात समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । सासादनसम्यक्त्वका जघन्यकाल एक समय है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४८ अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, आद्वारिक काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन.पर्ययज्ञानी, विमंगज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सयतासयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संही और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४९ आदेश निर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आबलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सर्वदा है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी चिकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्ति

बह० स० एगसमओ, उक्क० पसिदो० असंखे० मागो । अज० सम्बद्धा ।

§ १५० तिरिक्त्त० मोह० जह० अज० सम्बद्धा । एवं सम्बद्धादिय पुडवि० वादरपुडवि०-वादरपुडविअपज्ज०-सुहुमपुडवि०-पज्जचापज्जत्त-आठ०-वादरमाठ०-वादरमाउअपज्ज०-सुहुममाठ०-पज्जचापज्जत्त-सेठ०-[वादरतउ०]-वादरतेठअपज्ज०-सुहुमतठ०-पज्जचापज्जत्त-वाठ०-वादरवाठ०-वादरवाठअपज्ज०-सुहुमवाठ०-पज्जचापज्जत्त-वादर-वणप्फदिपसेय तस्सप अपज्ज०-सम्बवणप्फदि-सम्बणिगाद-ओरासियमिस्स०-कम्मइय० मदि सुदअण्णाप-असजत्त तिण्णिले०-अमवसि० मिच्छादि० असण्णि० अणाहारि चि ।

§ १५१ मणुसअपज्ज० मोह० बह० ज० एगसमओ, उक्क० आवसि० असंखे० मागो । अम० के ? जह० सुशामभवमहणं विसमरणं एगसमओ वा, उक्क० पसिदो० असंखे० मागो ।

§ १५२ चत्तारिकापवादरपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज० जह० ज० एगसमओ, उक्क० पसिदो० असंखे० मागो । अज० सम्बद्धा ।

बाल बोधोअ जपन्य सत्त्वकाज एक समय हे और छद्म सत्त्वकाज पत्तोपमका असंख्यातर्षो माग हे । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शितबाले बीधोअ सत्त्वकाज सर्वदा हे ।

§ १५३ तिरिक्त्तोमं मोहनीयकी जपन्य और अजपन्य स्थितिविमर्शितबाले बीधोअ सत्त्वकाज सर्वदा हे । इसी प्रकार समी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वायु पृथिवीकायिक, वायु पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पराप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त बल कायिक वायु बलकायिक, वायु अलकायिक व्यपयात, सूक्ष्म बलकायिक सूक्ष्म बलकायिक पर्याप्त सूक्ष्म बलकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक वायु वायुकायिक, वायु वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वायु वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर, वायु वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर अपर्याप्त समी वनस्पतिकायिक, समी निगाव औदारिकमिभ्रकाययोगी कर्मणअभयोगी, मत्स्यहानी, मुत्तहानी असंयत, कृष्ण आदि तीन शेरपाबाले, जमक्य, मिच्छादष्टि, असंती और जनधारक बीबाके जानना चाहिये ।

§ १५४ मनुष्य अपर्याप्तकोमं मोहनीयकी जपन्य स्थितिविमर्शितबाले बीधोअ जपन्य सत्त्वकाज एक समय हे और छद्म सत्त्वकाज भावलीका असंख्यातर्षो माग हे । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शितबाले बीधोअ सत्त्वकाज किटना हे ? जपन्य हो समय कम सुशामभवमहण्य प्रमाण वा एक समय हे और छद्म पत्तोपमका असंख्यातर्षो माग हे ।

§ १५५ पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय वायु पर्याप्त और वायु वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर पर्याप्त बीधोमं मोहनीयकी जपन्य स्थितिविमर्शितबाले बीधोअ जपन्य सत्त्वकाज एक समय हे और छद्म सत्त्वकाज पत्तोपमका असंख्यातर्षो माग हे । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शितबाले बीधोअ सत्त्वकाज सर्वदा हे ।

§ १५३ वेदन्वियमिस्स० मोह० जह० केव० ? ज० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवमुवसम०-सम्माभि० वत्तव्वं । आहार० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद० अकसा०-मुहुम०-जहा म्वाद०-संजदे त्ति । आहारमिस्स० मोह० जह० [ज०] एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० ।

§ १५४ सासण० मो० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

### एव कालाणुगमो समत्तो ।

§ १५३. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना सत्त्वकाल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपमका असख्यातवा भाग है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। आहारककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ १५४ सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असख्यातवे भाग प्रमाण है।

**विशेषार्थ**—मोहनीयकी जघन्य सत्त्वस्थिति क्षपक सूक्ष्मसापरायिक जीवके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है। तथा क्षपकश्रेणी पर चढ़नेका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है, अत ओपसे जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। ओपसे अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मूलमें दूसरीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारकी, मनुष्यत्रिक आदि कुछ ऐसी मार्गणाए गिनाई हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओपके समान बन जाता है। इसके कारण भिन्न भिन्न हैं। दूसरी पृथिवीसे लेकर नारकियोंमें और ज्योतिषियोंमें तो यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना कर लें, उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है। ऐसे जीव मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होंगे अत उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। सर्वार्थसिद्धि और वैक्रियिककाययोगमें भी करीब इसी प्रकारका कारण जानना चाहिये। विभगज्ञानमें यह कारण है कि चौथीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला उपरिम प्रवेयकका देव यदि अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो उस

विमर्गशान्तिके अन्तिम समयमें अपन्य स्थिति प्राप्त होती है। य मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनके भी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक प्रमाण प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त जो दोन मार्गोपाय गिनाई हैं उनही अपन्य स्थिति मनुष्य पदार्थमें ही प्राप्त होती है अतः उनमें भी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक प्रमाण है। नारदियोंमें एक जीव को अपेक्षा अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अथ यदि इनमें नाना जीव अपन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आधुनिके असे अन्तर्गत भागप्रमाणसुदृष्ट तर्क ही होंगे अतः इनमें अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आधुनिके असेअन्तर्गत भागप्रमाण है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारदी आदि मार्गोपायोंमें जानना चाहिये किन्तु निर्देश मूलमें किया ही है। सातवीं पृथिवीमें एक जीवकी अपेक्षा अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्गत असेअन्तर्गत भागप्रमाण वन जाता है। तिस्रोमें अपन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अन्तर्गत है, अतः यहां अपन्य स्थितिका अन्तर्गत सदैव है। मूलमें सब पदेन्द्रिय आदि और त्रितनी मार्गोपाय गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। यद्यपि इनमें बहुतसी मार्गोपायोंमें जीवोंका प्रमाण असे अन्तर्गत है फिर भी वह संख्या बहुत बड़ी है अतः उनमें अत्रापन्य स्थितिवालोंका काल सदैव मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं आती। सव्यपरायण मनुष्योंमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति विमर्शिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक जीवकी अपेक्षासे एक समय है। यदि इनमें नाना जीव अपन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आधुनिके असेअन्तर्गत भाग प्राप्ततक ही होंगे। अतः इनमें अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट आधुनिके असेअन्तर्गत भाग है। जो पदेन्द्रिय जीव दो विमर्शके साव सम्प्यपरायणक मनुष्योंमें उत्पन्न हो रहा है उसके समय विमर्शमें अत्रापन्य स्थिति हाकर दूसरे समयमें अपन्य स्थिति हागी और विमर्शके वा समय सुरामभयप्रणय प्रमाण आयुमेंसे कम कर देने पर दोन आयुका काल भी अत्रापन्य स्थितिका है अतः अत्रापन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय वा दो समय कम सुरामभयप्रणय प्रमाण है। सव्यपरायणक मनुष्य सन्तत मार्गोपाय है किन्तु उत्कृष्टकाल अन्तर्गत असेअन्तर्गत भाग मात्र है अतः अत्रापन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्गत असेअन्तर्गत भाग है। वादर पृथिवीकाधिक आदि पदात्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। यदि इनमें नाना जीव अपन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्गत भाग प्राप्त तक होंगे अतः इनकी अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्गत असेअन्तर्गत भाग है। वैश्विकमिथिलअयोगियों अपन्य स्थिति आधिक सम्बन्धित उपशान्तमोहसे मरकर सर्वाधिकारिमें उत्पन्न होनेवाले जीवके वैश्विकमिथिलअयोगके अन्तिम समयमें होती है। अतः इसका अपन्यकाल एक समय है अतः इसका अपन्यकाल एक समय है। परन्तु मनुष्योंका प्रमाण संख्या है अतः इनमें निरन्तर संख्यासे अधिक काल तक उत्पन्न नहीं हो सके वत इसका उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। इसी प्रकार उपशान्त सम्बन्धित, सम्पगिम्प्यादि, आहारकअयोगी आहारकमिथिलअयोगी अन्तर्गतवेही सुरयसांरु-पणिक संपत् अन्तर्गतसंयत और सासांरुकी प्रकृतया पदित कर देने चाहिये क्योंकि इन मार्गोपायोंमें अन्तिम समयमें ही अपन्य स्थिति विमर्श होती है। अत्रापन्य स्थितिके विषयमें हर एक मार्गोपायों को विवेचना है वह मूलमें ही ही है।

इस प्रकार कलासुगय समस्त हुआ।

§ १५५ अतराणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कसओ चेदि । उक्कसए पयदं । दुविहो णिद्दो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहो उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाण-मंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो । अणुक्क० णत्थि अंतरं । एवं सत्तपुढवि०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वपिगलिंदियं-सव्वपंचिदिय-सव्वपंचकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउ व्विय०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-मदि-सुदअ-ण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-असंजद०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण०-छलेस्सा-भवसिद्धि०-[अभव०-] सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति ।

§ १५६ मणुसअपज्ज० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० [ जह० एगसमओ, उक्क० ] पलिदो० असखेभागो । एवं सासण०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति । वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० वारस सुहुत्ता । आहार०-आहार-

§ १५५ अन्तराणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तराणुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पाचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, आभिनिवो-धिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसयत, असयत, सयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, छद्दो लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्य दृष्टि, संज्ञी, असज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १५६ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पर्यके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वारह सुहूर्त है । आहारककाययोगी,

मिस्त० मोह० उक्क० भोर्यं । अणुक्क० ज० पगसमभो, उक्क० वासपुषत् । एवम  
कसा० ब्रह्मत्वादसंज्ञे चि ।

१५७ अगद० मोह० उक्क० भोर्यं । अणुक्क० ज० पगसमभो, उक्क०  
धम्मासा । एवं सुहुमसंपराय० बत्थं । उवसम० उक्क० भोर्यं । अणुक्क० ज०  
पगसमभो, उक्क० चचवीसमहोरथे । अथवा अकसा०-नहाक्त्वाठ०-अगद०  
सुहुम० मोह० उक्क० वासपुषत् । उवसम० चचवीसमहोरथे० सादि० । सासण०  
पस्सिओ० असंखे०भागो । त्थय० धम्मासा ।

एवमुक्कस्सभो अंतराणुगमो समथो ।

और आहारकर्मिभ्रमयोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका अन्तरकाल  
ओपके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका अपम्य अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल बर्यपूबकत्व है । इसी प्रकार अकपासी और यथाक्यातसंयत जीवोंके  
दानना चाहिये ।

१५७ अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका अन्तरकाल  
ओपके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका अपम्य अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल ब्रह्म महीना है । इसी प्रकार सूक्ष्मसंपरायिक संयत जीवोंके काना  
चाहिये । उपश्रमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका अन्तरकाल ओपके समान  
है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका अपम्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल चौबीस दिन रात है । अथवा, अकपासी यथाक्यातसंयत अपगतवेदी और सूक्ष्म  
संपरायिकसंबत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्शिताले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल  
बर्पूबकत्व है उपश्रमसम्यग्दृष्टियोंमें साधिक चौबीस दिन रात है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें  
पस्यापमके असंख्यातर्षे मागप्रमाय है और साधिक सम्यग्दृष्टियोंमें ब्रह्म महीना है ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव यदि संसारमें न हों तो कमसे कम एक समय तक  
और अधिक से अधिक अंगुलके असंख्यातर्षे मागप्रमाय काञ्चतक नहीं होते हैं अतः यहाँ  
उत्कृष्टस्थितिका अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातर्षे माग प्रमाय  
क्या । तथा अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव स्मृता पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं क्या ।  
मूलमें सातों प्रविधिकोंके नारकी आदि और बितनी मार्गेषु गिगार्ह हैं इनमें यह व्यवस्था बन  
जाती है अतः इनकी प्ररूपणात्रे ओपके समान क्या । तथा इनके अतिरिक्त और बितनी  
मार्गेषु हैं इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अपम्य और उत्कृष्ट अन्तर ओपके समान है अतः उन सबमें  
उत्कृष्टस्थितिका अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातर्षे मागप्रमाय क्या ।  
हैं इन मार्गेषुओंमें अनुकृष्ट स्थितिका भी अन्तरकाल पाया जाता है जिसका सुज्ञासा निम्न प्रकार  
है—सकृद्भयवर्त्मक मनुष्य सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टिका अपम्य अन्तर एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर पस्के असंख्यातर्षे माग प्रमाय है । वैकिकिभ्रमिभ्रमयोग्य अपम्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है । आहारकर्मिभ्रमयोग और आहारकर्मिभ्रमयोग्य  
अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बर्पूबकत्व है । उपश्रमयोग्य अपम्य अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर बर्पूबकत्व है । अपक अपगतवेद और सूक्ष्मसंपरायसंयतका अपम्य



§ १५८ जहणण पयटं । दुविहो णिद्दोसो—आधेण आदेसेण य । तत्थ आधेण मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० ज्जमासा । अज० णत्थि अंतर । एवं मणुम०-मणुसपज्ज०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तमपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-लोभकसाय-आभिणि०-सुद०-ओहि०-सजद-सामाइय-छेदो०-चक्रु०-अच-क्खु०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खडय०-सण्णि०-आहारि त्ति । णवरि ओहि-णाण० वासपुघत्तं ।

§ १५९. आदेसेण णेरइएमु जह० अज० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवि०-सव्वंपंचिदियतिरिक्ख-देव-भवणादि जाव सव्वद्व०-सव्वधिगल्लिदिय-पंचिदिय-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है, अतः इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल उक्तमण प्राप्त होता है। यहाँ पहले जो उपशमश्रेणीका अन्तरकाल कहा उससे मोहसत्कर्मणाले अरुपायी और यथाख्यातसयतोंका अन्तरकाल लेना चाहिए। यहाँ अथवा कहकर कुछ मार्गणाओंके अन्तरकालमें कुछ फरक बतलाया है जो मूलमें ही दर्ज हैं। अरुपायी, यथाख्यातसयत, अपगतवेदी और सूक्ष्मसापरायिक सयतमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीव उपशमश्रेणीमें ही होते हैं और उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष प्रत्यक्त्व है अतः अथवा कहकर इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष प्रत्यक्त्व कड़ा गया है। परन्तु कुछ आचार्यों का मत यह भी रहा है कि सभी उपशम श्रेणीवालोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती बहुत कम जीवोंके होती है। अतः उनके मतानुसार अरुपायी आदि में उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओषके समान अग्रुलका असख्यातवा भाग भी कहा है जो संभवतः वीरसेन स्वामीको भी इष्ट था। तथा उन्होंने अथवा कहकर दूसरे मतका भी उल्लेख कर दिया है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरके विषयमें मतभेद जान लेना चाहिये। यह अन्तर मूलमें दिया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १५८ अब जघन्य अन्तरानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी, लोभकपायी, आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदो-पस्थापनासयत, चतुर्दशनी, अचतुर्दशनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञो और आहारकोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षप्रत्यक्त्व है।

§ १५९ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर

अपञ्ज०-तसअपञ्ज० चचारिकायबादरपञ्जच-[ बादरचणफ्क०पचेयपञ्ज०-वेठभिय-  
कायभोगि-]विहंग० परिहार०-संभदासंभद-वेठ०-पम्म०-वेदयसम्मादिदि चि ।

§ १६० विरिक्त्व०मोह० अह० अत्रह० गत्यि अंतरं । एवं सम्बएइंदिय-चचारि  
काय-वेसि बादरअपञ्ज०-सुहुम०-पञ्जचापञ्जच-बादरचणफ्कदिपचेय० अपञ्ज०-चण  
फ्कदि-णिगोद०-बादर-सुहुम-पञ्जचापञ्जच-ओरास्त्रियमिम्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-  
अण्णाण-असंभद०-तिष्णिणोस्सि०-अमव०-मिष्णादि०-असण्णि० अभाहारि चि ।

§ १६१ मणुसिणीसु मोह० अ० अ० एगसमओ, उक्क० वासपुपच । अम०  
गत्यि अंतरं । एवं मणपञ्ज० । ओहिर्दस० ओहिणाणिर्मंगो । मणुसअपञ्ज० उक्क-  
स्सर्मंगो । वठभियमिस्स० उक्कस्सर्मंगो । आहार० आहारमिस्स० उक्कस्सर्मंगो ।

§ १६२ इत्थि०-णपुस० अ० अ० एगस०, उक्क० वासपुपच । पुरिस०  
अह० अह० एगसमओ, उक्क० वास सादियेय । अज्ज० तिष्णं पि गत्यि अंतरं ।

सर्वभिसिद्धिकडे वेव समी विकलोत्थिय, पंचेत्थिय अपर्याप्त, इत्थअपर्याप्त वृषिबीभ्रविक आदि चार  
स्वावरकाय बाहर पर्याप्त बादर बनस्त्राति प्रत्येक्यारी पर्याप्त, वैक्त्रियिकअययोगी विमंगळानी  
परिहारविष्णुसिद्धिपथ संयतासंयत पीठलेस्यावाले, पद्यलेस्यावाले और वेदकसम्भददि जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ १६ तिष्णोमिं मोहनीयकी अपम्य और अज्जपम्य स्थिति विमच्छिबी अपका अन्तरकाल  
नहीं है । इसी प्रकार समी पंचेत्थिय, चारों स्वावरकाय चारों स्वावरकाय बादर, चारों स्वावरकाय  
बाहर अपर्याप्त चारों स्वावरकाय सूक्ष्म चारों स्वावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त चारों स्वावरकाय सूक्ष्म  
अपर्याप्त बादर बनस्त्रातिक्रयिक प्रत्येक छरीर, बादर बनस्त्रातिक्रयि प्रत्येक छरीर अपर्याप्त सामान्य  
बनस्त्राति, निगोद बनस्त्रातिक्रयिक बादर बनस्त्रातिक्रयि बाहर पर्याप्त, बनस्त्रातिक्रयिक बादर  
अपर्याप्त बनस्त्रातिक्रयिक सूक्ष्म, बनस्त्रातिक्रयिक सूक्ष्म पर्याप्त बनस्त्रातिक्रयिक सूक्ष्म अपर्याप्त,  
बादर निगोद बादर निगोद पर्याप्त बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद सूक्ष्म निगोद पर्याप्त,  
सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, औदारिकमिभ्रकाययोगी कर्मणकाययोगी भरक्यानी, मृताशानी,  
असंयत कृष्ण आदि तीन लेस्यावाले, अपम्य निष्पाटि, असंयती और अनाहारक जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ १६१ मणुपियचर्यामिं मोहनीयकी अपम्य स्थिति विमच्छिवाले जीवोंका जपम्य अन्तरकाल  
एक समय है और अज्ज अन्तरकाल अपटुवत्त्व है । तथा अज्जपम्य स्थिति विमच्छिवाले जीवोंका  
अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनापर्येयानी जीवोंके जानना चाहिये । अचपियचर्यामिं जीवोंके  
अचपियचर्यामिं जीवोंके समान अन्तरकाल है । अचपियचर्यामिं इनके अज्ज स्थिति विमच्छि-  
वाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । वैक्त्रियिकमिभ्रकाययोगी जीवोंमें इनके अज्ज स्थिति-  
विमच्छिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । तथा आहारककाययोगी और आहारकमिभ्रकाययोगी  
जीवोंमें इनके अज्ज स्थिति विमच्छिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

§ १६२ अविदी और मणुमअवेदी जीवोंमें जपम्य स्थिति विमच्छिवाले जीवोंका जपम्य  
अन्तरकाल एक समय और अज्ज अन्तरकाल अपटुवत्त्व है । पुरुमवरी जीवोंमें जपम्य स्थिति-

अवगद० मोह० ज० ज० एगसमथ्रो, उक्त० छमासा । एवमजहण्णट्टिदीए वि  
वत्तव्वं । एवं सुहुमसंप० । कोह०—माण०—माय० पुरिस०भंगो । अऊसाय० उक्तस्स-  
भंगो । एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं । उवसम०—[सासण०—]सम्मामि० उक्तस्सभंगो ।  
एवमंतराणुगमो समत्तो ।

विभक्तिपाले जीवोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है । तथा तीनों ही वेदवाले जीवोंमें अजघन्य स्थितिविभक्तिपाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । अपगत-वेदियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिपाले जीवोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा इनके अजघन्य स्थितिविभक्तिमी अपेक्षा भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसापर्यायिकमयत जीवोंके कहना चाहिये । क्रोध, मान और माया कपायवाले जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कहना चाहिये । अकपायी जीवोंके इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । इसी प्रकार यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये । तथा उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादानसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

**विशेषार्थ—**जब एक समयके अन्तरमें जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय पाया जाता है और जब छह महीनाके अन्तरसे जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना पाया जाता है । ओषसे अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । सामान्य मनुष्य आदि और जितनी मार्गणाएं गिनार्ड हैं उनमें भी इसी प्रकार अन्तर समझना चाहिये, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें वे सब मार्गणाएं सम्भव हैं अतः उनमें जघन्य स्थितिका अन्तर ओषके समान बन जाता है । और वे मार्गणाएं निरन्तर हैं अतः उनमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं पाया जाता । किन्तु अवधिज्ञानी जीव यदि क्षपकश्रेणी पर न चढ़ें तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं चढ़ते हैं अतः इनमें जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है । सामान्य तिर्यच आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें उनका अन्तरकाल सम्भव नहीं । मनुष्यिनी, मनःपर्ययज्ञानी, स्त्रीवेद और नपुसकवेद इन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । यही बात अवधिदर्शनकी है । पर इनमें अजघन्य स्थितिका अन्तरवाल नहीं पाया जाता । लघ्यपर्याप्तकमनुष्य, वैक्रियिकमिश्रकाय-योगी, आहारककाययोगी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । पुरुषवेदमें कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक क्षपकश्रेणी नहीं प्राप्त होती, अतः इसमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है । किन्तु इसमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है । मोह सत्कर्मवाले क्षपक अपगतवेद और क्षपक सूक्ष्मसम्पराय सयमकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा । क्रोध, मान और माया कपायका कथन पुरुषवेदके समान है, क्योंकि इन तीनों कषायोंका क्षपकश्रेणीमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है । मोहनीयसत्कर्मवाले अकपायी और यथाख्यातसयत उपशमश्रेणीमें

§ १६३ माषाणुगमेण सव्वत्थ भोदइओ भावो ।

एव माषाणुगमो समचो ।

§ १६४ अप्यावहुआणुगमो दुषिहो—नइण्णओ उक्कस्सओ चदि । उक्कस्सं पर्यदं । दुषिहो गिहोसो—भोपेण आदेसेण य । तत्थ ओपेण सन्नत्थोवा मोहं उक्कस्सं द्विदिशिहृषिया जीवा । अणुक्कं० अणंतगुणा । एषं तिरिक्क-सन्नपइदिय सम्बवणप्फदि०-सव्वणिओद०-कायमोगि०-ओराणिय०-ओराणियमिस्सं०-कम्मइय०-णयुंसं चचारिकसाय-मदि-सुदमण्णाण०—अमंनद-अचक्खुं-तिण्णिले०-मवसिं०-अमवसिं०-भिच्छादि० असण्णिं० आहारिं०-अणाहारि चि ।

§ १६५ आदसेण गेरइएसु माहं सन्नत्थोवा उक्कं० । अणुक्कं० असंसज्ज गुणा । एषं सत्तसु पुहवीसु सव्वर्पंचिदियतिरिक्क-मणुस-मणुसअपज्जं०-इव भनपादि वाय भवराइदं०-सम्बविगसिंदिय-सम्बर्पंचिदिय-चचारिकाय-सव्वतस पंचमण०-पंच वधि०-येउण्णिय-पंचत्रियमिस्सं० इत्थि०-पुरिसं० चिहंणं०-आमिणिं०-सुदं०-ओहिं०-

ही होते हैं अतः इनमें वचन्य और अवचन्य स्थितिक्र अन्तर एकत्र और अनुकृत स्थितिके समान बन जाता है । इसी प्रकार वचन्य सम्पत्त्व सासादन और सम्बन्धिमप्यात्ममें एकत्र स्थितिके समान अन्तर जानना, क्योंकि य हीनों सान्तर मायाएँ हैं अतः इनके वचन्य स्थितिके अन्तरमें एकत्र स्थितिके अन्तरसे कोई विशेषता नहीं आती ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

माषाणुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदार्यिक मात्र है ।

इस प्रकार माषाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६४ अस्पृश्याणुगम दो प्रकारका है—वचन्य और एकत्र । इनमेंसे एकत्र अस्पृश्याणुगमका प्रकार है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा मोहनीयकी एकत्रस्थितिके अन्तरमें जीव सक्ते बोधे हैं । इनसे अनुकृत स्थितिके अन्तरमें जीव अन्तर्गुणे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी पंचेन्द्रिय सभी वनस्पतिक्रयिक, सभी निगोह क्लययोगी, औदार्यिककामयोगी औदार्यिकमिक्क-कामयोगी क्लयकामयोगी न्युंसकवेही, अप्यादि चारों क्लयवात्त मत्थयानी, व्रतयानी असंबत अचक्खुसैनी कृष्य आदि तीन लेश्यावाले, मत्थ अमत्थ, मिच्छादधि, असंटी, आहारक और अमाएक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६५ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी एकत्र स्थितिके अन्तरमें जीव सबसे बोधे हैं । इनसे अनुकृत स्थितिके अन्तरमें जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार चारों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च सामान्य मनुष्य मनुष्य अपपर्याप्त सामान्य देव, मन्वन्वासियोंसे लेकर अपराहित स्वर्ग तकके देव सभी विक्रेश्चिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकयिक आदि चार स्थावरकत्व सभी वस पर्वों मनोयोगी पर्वों वचनयोगी, वैदिकिककययोगी,

संजदासंजद-चक्रवु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि-खडय०-पेटय०-उवसम०-सासण०  
सम्मामि०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी०सव्वत्थोवा उप्पक० । अणुक्क० सखेज्ज-  
गुणा । एवं सव्वद्व०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अरुसाय०--मणपज्ज०-  
संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-मुहुमसांपरा०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

एवमुक्कस्स अप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ १६६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्वेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण जह० अजह० उक्कस्स०भंगो । एवं कायजोगि-ओरालि०-णवंगु०-चत्तारिकसा०-  
अचक्रवु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ १६७ आदेसेण णेरइएसु मोह० जह० अज० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो । एवं  
सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद-सव्व-  
एइंदिय-सव्वविगलिट्ठिय-सव्वपंचिंदिय-छक्काय०-पंचमण०-पचवचि०-ओरालियमिस्स०-  
वेउव्विय०-त्रेउव्वियमिस्स --रुम्मइय०--इत्थि०-पुरिस०-मदि-मुदअण्णाण-विहंग०-  
आभिणि०-मुद०-ओहि०--संजदासजद-असजद-चक्रवु०-ओहिदंस-पंचले०-मुक्क०-

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, आभिनिवोधिक्कज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिग्घादृष्टि और सज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियामें उत्कृष्ट स्थितिप्रभक्तिकाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारक-काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी अकपायी, मनःपययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६६ अब जघन्य अल्पबहुत्वानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले जीवोंके अल्पबहुत्वके समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६७ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले जीवोंके अल्पबहुत्वके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनी, अवधि-

अमय०-सम्मादि०-त्वइय०-वेठय०-उचसम०-सासण०-सम्माभि० मिच्छादि०-सण्णि-  
असण्णि-मणाहारि चि ।

§ १६८ मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वत्योवा मइ० । अज्जइ० सत्तेज्जगुणा ।  
एवं सम्बद्ध०-आहार०-आहारमिस्स० भवगद० अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाहय  
द्वेदो०-परिहार०-मुहुमसांपराय०-अहाक्त्वादसंजद चि ।  
एवमप्याबहुगाणुगमो समघो ।

— 1 —

एवं चत्थीस-मणियोगहारारणि समत्ताणि ।

§ १६९. मुनगारे तस्य इमाणि तेरस मणियोगहारारणि-समुक्तिवशादि ज्ञाव  
अप्याबहुप चि । समुक्तिवशाणुगमेण दुबिहो णिहोसो-ओपेण आदसेण य । तस्य  
ओपेण मोइ० अत्थि मुज० अप्पद० भवद्विद्विहृत्तिया बीना । एवं सत्तसु पुढनीसु  
सम्भतिरिक्ख-सम्भमणुस्स-वेध भवणादि ज्ञाव सहस्सार०-सम्भएइदिय-सम्भविगलिदिय  
सम्भर्पिदिय-पंचकाय-सम्भतस-पंचमण०-पंचवधि०-कायभोगि-ओरानि०-ओरानिय-  
मिस्स-वेठणिय०-वेठणियमिस्स-कम्मइय-तिण्णिवेद-वचारिकसा०-मदि-मुदमण्णाण०-  
विहंग०-भसंजद०-वचखु मचखु०-पंचलोस्ता० भवसिद्धि०-अमयसिद्धि०-मिच्छादि०-

इत्यनी कृष्ण आदि पांच लेख्यावाले शुक्ललेख्यावाले, अमय्य सम्मगट्टि, चायिक्खसम्मगट्टि, वेध  
सम्मगट्टि, अणमसम्मगट्टि सासाहनसम्मगट्टि, सम्भम्मिप्याट्टि, मिप्याट्टि, संघी असेयी  
और अनाहारक बीबोके ज्ञानना चाहिये ।

§ १६८. मनुष्य पयास और मनुष्यनिर्णयें जपय्य स्थितिबिभक्तबाले जीव सचसे थाड़े  
हैं । इनसे अजपय्य स्थितिबिभक्तबाले जीव संख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार सर्पायमिद्धिके वेध,  
आहारककाययोगी आहारकमिमकाययोगी अवगतवेधी अकयायी मनःशययज्ञानी, संघत  
सामायिकसंघत ज्ञोपस्थापनासंघत परिहारविशुद्धिसंघत, सूत्रमसांपरायिकसंघत और वषात्स्यात  
संघत बीबोके ज्ञानना चाहिये ।

इस प्रकार अस्ववहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।  
इस प्रकार चौथीस अनुयागहार समाप्त हुए ।  
— 2 —

§ १६९ मुनगार स्वितिबिभक्तिके कथनमें समुत्थीर्तनासे लेकर अस्वपहुत्वतक ऐह्य  
अनुयोगहार हैं । इनमेंसे समुत्थीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारक है-आपनिर्देश और  
आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा माइनीपकी मुनगार, अस्वतर और अक्षयित स्विति-  
बिभक्तबाले जीव हैं । इसी प्रकार सातों वृत्तियोंके मारकी, समी तियव समी मनुष्य, सामाय्य  
वेध भवतवासिबोसे लेकर सहस्सार कस्वतरुद्ध वेध ममी पचेन्द्रिय समी विकलेन्द्रिय समी  
पंचेन्द्रिय पांचों स्वावरकाय समी व्रम, पांचों मनायोगी पांचों बचनयोगी अप्ययागी, औश-  
रिक्कययोगी औहारिकमिमकाययोगी वैश्वियिकययोगी वैश्वियिकमिमकाययोगी, कामख-  
काययोगी तीनों बहबाले आधादि चारों कयावबाले मत्थ्यानी बुतायानी विमंगय्यानी असेयत  
चतुश्चानी अचखुइत्तनी इच्छादि पांच लेख्यावाले, अमय्य, अमय्य, मिप्याट्टि, संघी असेयी

सण्णि-असण्णि-आहारि-अण्णाहारि चि ।

§ १७० आणटादि जाव सव्वट्ठ० मोह० अत्थि अप्पदरविहत्थिया । एवमाहार०-  
आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-  
खेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासजद—ओहिदंस०-मुक्क०-  
सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मायि० ।

एवं समुक्कित्तणाणुगमो समत्तो ।

§ १७१ सामित्ताणुगमेण दुविट्ठो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मोह० भुज० अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० मिच्छादिद्विस्स । अप्पदर० कस्स ? अण्ण०

आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७० आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे मोहनीयकी अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिवाले जीव हैं । इसी प्रकार आहारकमाययोगी, आहारकमिश्रमाययोगी, अप्रगतवेदी,  
अकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, ध्रुनज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत,  
छेदोपस्थापनासयत, परिहारवशुद्विसयत, सूक्ष्मसापराधिकसंयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत,  
अवधिदर्शनी शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंका विचार  
किया जाता है । इसके अत्रान्तर अधिकार तेरह हैं । जो निम्न हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक  
जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन,  
काल, अन्तर, भाव और अल्पवहुत्व । इनमेंसे पहले यहा ससुत्कीर्तनाका विचार करते हैं—ओघसे  
भुजगारस्थितिवाले, अल्पतर स्थितिवाले और अवस्थित स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । जो कर्म  
स्थितिसे अधिक स्थितिको प्राप्त हो उसे भुजगारस्थितिवाला कहते हैं । जो अधिक स्थितिसे  
कम स्थितिको प्राप्त हो उसे अल्पतरस्थितिवाला कहते हैं और जिसकी पहले समयके समान दूसरे  
समयमें स्थिति रहे उसे अवस्थित स्थितिवाला कहते हैं । इस प्रकार ओघकी अपेक्षा इन तीनों  
प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है । सातों पृथिवीके नारकी आदि प्रायः बहुत सी मार्ग  
णाश्रमों इसी प्रकारकी स्थिति है अत वहा भी ओघके समान तीनों प्रकारकी स्थितिवाले जीव  
जानना चाहिये, क्योंकि जिन मार्गणाश्रमों मिथ्यादर्शन सम्भव है वहा तीनों विभक्तिया वन सकती  
हैं । केवल आनतसे लेकर नौ ग्रैवयक तकके देव तथा शुक्ललेश्यावाले इसके अपवाद हैं । किन्तु  
आनतादि कल्पोंमें, शुक्ललेश्यामें और सम्यग्दर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली शेष मार्गणाश्रमोंमें पहले  
समयमें प्राप्त हुई स्थितिसे द्वितीयादि समयोंमें स्थिति उत्तरोत्तर घटती जाती है, अत इनमें  
केवल एक अल्पतर स्थिति ही जाननी चाहिये ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १७१ स्वामित्वाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति किसके होती  
है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी





§ १७४ कालाणुगमेण दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समया । अप्पद० जह एगसमओ, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अतोमुहुत्तम्भहि एहि सादरेय । अवट्टिद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमचक्खु०—भवसिद्धि० ।

स्थिति विभक्तिया सम्भव हैं और सम्यग्दृष्टिके केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही सम्भव है । इस अनुयोगद्वारमें इसी दृष्टिसे विचार किया गया है । पूर्वोक्त सूचनानुसार सामान्य सिद्धान्त यह निष्पन्न हुआ कि सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी हैं और सम्यग्दृष्टि जीव केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्तिके ही स्वामी हैं । आदेशकी अपेक्षा भी विचार करनेका मूल यही है । आनतसे लेकर नौ भ्रूवैयक तकके देवोंको व शुक्ललेश्यावालोकों छोड़कर शेष जिन मार्गणाओंमें मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन सम्भव है वहा मिथ्यादृष्टियोंको तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी जानना चाहिये और सम्यग्दृष्टियोंको केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्तिका ही स्वामी जानना चाहिये । ऐसी मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं । इतना विशेष जानना कि यहा सम्यग्दृष्टि पदसे सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि इनके भी एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही होती है । मनुष्य अपर्याप्त आदि कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमे एक मिथ्यादर्शन ही सम्भव है अतः यहा तीनों स्थिति विभक्तियोंका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव होता है । यद्यपि इस कसायपाहुडके अनुसार इनमें कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें सासादनसम्यक्त्व भी पाया जाता है पर उसकी अपेक्षासे यहा पृथक् कथन नहीं किया । फिर भी उसकी अपेक्षा विचार करने पर एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही प्राप्त होती है । अर्थात् ऐसे एकेन्द्रियादि जीव जो सासादनसम्यग्दृष्टि होंगे वे सासादनसम्यक्त्वके काल तक एक अल्पतर स्थिति विभक्तिके ही स्वामी होंगे । आनत कल्पसे लेकर नौ भ्रूवैयक तकके देवोंके तथा शुक्ललेश्यावालोकोंके मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन दोनों सम्भव हैं फिर भी यहा एक अल्पतर स्थिति ही होती है, अतः उक्त स्थानोंमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवको अल्पतर स्थिति विभक्तिका ही स्वामी वतलाया है । शेष मार्गणाओंमें अल्पतर स्थिति विभक्तिका स्वामी सम्यग्दृष्टि ही होता है, क्योंकि उनमें मिथ्यादर्शन सम्भव ही नहीं है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७४ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार स्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय हैं । अल्पतर स्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन पत्य और अन्तमु हूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर हैं । अवस्थितस्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमु हूर्त हैं । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—किसी जीवने एक समय तक भुजगार स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें वह अल्पतर या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगा तो भुजगारका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव पहले समयमें अद्वाक्षयसे स्थितिको बढाकर बंधता है, दूसरे समयमें सत्तोशक्तयसे स्थितिको बढाकर बंधता है, तीसरे समयमें मरकर और एक विग्रहसे सन्नियोंमें उत्पन्न होकर असन्नियों के योग्य स्थितिको बढाकर बंधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके सब्हीके योग्य स्थितिको बढाकर बंधता है तब उस जीवके भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय प्राप्त होता है, इस प्रकार भुजगार स्थितिका जघन्यकाल

एक समय और एकदृष्ट काल चार समय समझना चाहिये । इसका विशेष सुझावा इस प्रकार है—  
 वहाँ एक स्थिति के बन्धके योग्य कालको अष्टा कहा है । वा कमसे कम एक समयतक और अधिक से अधिक अन्तमुहूर्त तक होता है । तात्पर्य यह है कि किसी बीबके विषयित एक स्थितिबन्ध वन्ध हा रहा है ता वह वन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक होगा । इसके पश्चात् यह बदल जायगा और तब उससे म्युत या अधिक स्थितिका बन्ध होने लगेगा । पर वहाँ मुञ्जगारकी स्थिति विषयित है अतः अधिकका बन्ध कृपणा चाहिए । पर इस प्रकार अष्टावयसे बंधनवाली स्थितिमें फरक पड़ जानेपर भी स्थितिबन्धके कारणभूत संज्ञेरूप परिष्कारोंमें नियमसे बदल होगा ही यह नहीं कहा जा सकता । किसी बीबके अष्टावयके साथ संस्नेहव्य हो जाता है और किसी बीबके अष्टावयके परवान् मी संस्नेहव्य होता है । केवल अष्टावयके होने पर स्थितिमें अधिकसे अधिक वृद्धि पस्वके बसंध्यातवें मागप्रमास्य ही हो सकती है अधिक नहीं क्योंकि एक एक अवेचारि कथयलप परिष्कारमक्षण तक प्रमास्य स्थितिबन्धका ही कारण होता है । पर संस्नेह व्यके होने पर अधिकसे अधिक संख्यात सागर स्थिति बन सकती है और घट भी सकती है । किन्तु वहाँ मुञ्जगारकी विषया है, इसलिय वृद्धि ही जाती पाहिये । इस प्रकार जब किसी ऐकेन्द्रिय बीबके पहले समयमें अष्टावयसे स्थितिमें वृद्धि होती है दूसरे समयमें संस्नेहव्यसे स्थितिमें वृद्धि होती है । तब उसके मुञ्जगारके दो समय तो ऐकेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हो जाते हैं । तथा वह बीब यदि तीसरे समयमें मय और एक मोड़के साथ संक्रियामें उत्पन्न हुआ ता उसके तीसरे समयमें अस्तीके योग्य स्थितिबन्ध होने लगेगा और चाहे समयमें छटांरका प्रणय कर देनेके कारण संज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध वन्ध होने लगेगा । इस प्रकार वही बीबके मुञ्जगारके दो समय संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हुए । इस तरह मुञ्जगारके कुल समय चार हुए । अतः मुञ्जगार स्थितिका एकदृष्ट काल चार समय कहा । जो बाव एक समय तक अत्यन्त स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें मुञ्जगार या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने क्षमता है उसके अत्यन्तका बंधनकाल एक समयका पाया जाता है । तथा जिस बीबने अन्तमुहूर्त काल तक अत्यन्त स्थितिका बन्ध किया । अन्तर वह तीन पस्वकी आत्त लेकर मोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आयुमें अन्तमुहूर्त कालके क्षेत्र खन पर उसका सम्बन्धको प्रवृत्त किया । अन्तर यह वषासठ सागर तक सम्बन्धके साथ परिष्कार करता रहा । तत्पश्चात् अन्तमुहूर्त काल तक सम्बन्धितव्यात्मने रहा और वहाँसे पुनः सम्बन्धको प्राप्त करके दूसरी बार वषासठ सागर तक सम्बन्धके साथ परिष्कार करता रहा । तत्पश्चात् मिष्यात्मने गया और इच्छीस सागरकी आयुवाले क्षेत्रोंमें उत्पन्न हो गया और वहाँसे म्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तमुहूर्त काल तक उसने अत्यन्त स्थितिबन्ध किया पश्चात् वह मुञ्जगार स्थितिबन्ध करने क्षमता । इस प्रकार अत्यन्त स्थितिका एकदृष्टकाल अन्तमुहूर्त और तीन पस्व अधिक एक सौ त्रैसठ सागर प्राप्त होगा है । एक स्थिति बन्धका बंधन काल एक समय और एकदृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अब यदि कोई बीब स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध करता है ता वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक ही पसा कर सकेगा इसके पश्चात् उसके नियमसे अत्यन्त या मुञ्जगार स्थितिका बन्ध होन लगेगा, अतः अवस्थित स्थितिका बंधन काल एक समय और एकदृष्ट काल अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है । अचक्षुस्तेन और मय्य ये दो मार्गाण्ये अत्यन्त बीबके सम्बन्ध और मिष्यात्मने दोनों वषासठोंमें संज्ञता रखती हैं अतः इनमें चाप प्रकृत्या बन जाती है, और इसीक्षिप इनके बंधनको बीबके समान कहा ।

§ १७५. आदेसेण एोरइय० मोह० भुज० ज० एगसमञ्चो, उक्क० वे समया । अप्पद० जह० एगसमञ्चो, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अवट्टि० ओघ-भंगो । पढमादि जाव सत्तमि च्चि भुज०-अवट्टि० गिर०ओघं । अप्प० जह० एग-समञ्चो, उक्क० सगसगुक्कस्सट्टिदी देसूणा ।

§ १७६ तिरिक्ख० मोह० भुज० अवट्टि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमञ्चो, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि अंतोमुहुत्तेण । पंचिदियतिरिक्ख०-पंचि-तिरिक्खपज्ज०-पंचि०तिरिक्खजोणिणीसु भुज० जह० एगसमञ्चो, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्टि० तिरिक्खोघं । पंचि०तिरि०अपज्ज० भुज० ज० एगसमञ्चो, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्टि० जह० एगसमञ्चो, उक्क० अंतोमु० । एव

§ १७५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हैं । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर हैं । तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समझ और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें अद्वाचय और सकलेशचयसे दो भुजगार समय प्राप्त होते हैं अतः यहाँ भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा । कोई एक असह्यी दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न हुआ और उसके यदि दूसरे विग्रहमें अद्वाचयसे तीसरे समयमें शरीरको ग्रहण करनेसे तथा चौथे समयमें सकलेशचयसे भुजगार स्थितिवन्ध हुआ तो इस प्रकार नरकमें भुजगार स्थितिके तीन समय भी प्राप्त हो सकते हैं पर यहाँ पहले कथनकी ही मुख्यता है अत उच्चारणावृत्तिमें उसीका उल्लेख किया है । जिस जीवने नरकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तमुर्तु हूर्त कालमें सम्यक्त्वका ग्रहण कर लिया है और जो अन्तमुर्तु हूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया उसके नरकमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । शेष कथन ओघके समान घटित कर लेना चाहिए । इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमें भी कथन करना चाहिये । किन्तु वहा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिये । यद्यपि पहले नरकमें सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है और उसके अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है । किन्तु ऐसा जीव पहले नरककी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नहीं उत्पन्न होता अत पहले नरकमें भी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक सागरप्रमाण प्राप्त होता है ।

§ १७६ तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्तु हूर्त अधिक तीन पल्य है । पचेन्द्रियतिर्यञ्च, पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तक और पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिमती जीवोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

पवि०अपञ्ज० ।

§ १७७ मणुसतिय० सुज० अशदि० गिरमोषं । अप्यद० जह० एगसमन्ना,  
उफ० तिष्णि पन्दिरोयमाणि पुय्वकोटितिमागण सादिरयाणि । मणुसिणीसु अंतो-  
मुहुत्सेण सान्तिरेयाणि । मणुसअपञ्ज० सुज० अह० एयसमन्ना, उफ० पं समया ।  
अप्यद०-अशदि० अह० एगसमन्ना, उफ० अंतोमुहुत् ।

§ १७८ वेवेसु सुज०-अशदि० गिरमोषं । अप्यद० जह० एगसमन्ना, उफ०

अज्ञ अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार पंचन्द्रिय अपयात्क जीवों के जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस तियचन पर्व पयायमे अन्तमुहूर्त तक अस्वतर स्थितिका बच किया । परवान् मरकर तीन पत्यकी आनुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उल्लस हो गया उसके अस्वतर स्थितिका उल्लसकाल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पत्य पाया जाता है । सामान्य तियचोंमें क्षेत्र क्यन आपक समान है । यदि कोई अन्य इन्द्रियवाला जीव पंचन्द्रिय तियचत्रिम्में उल्लस हुआ तो उसके पहले समय अज्ञाप्यसे हुआ समय शरीरका प्रकण परनसे और तीसरा समय संश्लेशकपसे मुजगार स्थितिका प्राप्त होता है अतः इनमें मुजगार स्थितिका उल्लसकाल तीन समय बड़ा । शय क्यन सुगम है । पंचन्द्रिय तियच संप्रपयात्क और पंचेन्द्रिय संप्रपयात्कक उल्लसकाल अन्तमुहूर्त है अतः इनके अस्वतर और अवस्थित स्थितिक उल्लसकाल अन्तमुहूर्त बड़ा । भेद क्यन सुगम है ।

§ १७९ सामान्य मनुष्य पयात्क मनुष्य और मनुष्यनी "न तीन प्रकारके मनुष्योंमें मुजगार और अवस्थित स्थितिकमिच्छा बात सामान्य नार्थक्योके समान है । अस्वतर स्थिति विमिच्छा अपन्य अज्ञ एक समय और उल्लसकाल पूषकाटिके प्रिमामे अधिक तीन पत्य है । मनुष्यनियोंमें अस्वतर स्थितिकमिच्छा उल्लसकाल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पत्य है । मनुष्य अपयात्कमें मुजगार स्थितिकमिच्छा उपन्य अज्ञ एक समय और उल्लसकाल बात समय है । तथा अस्वतर और अवस्थित स्थितिकमिच्छा अपन्य अज्ञ एक समय और उल्लसकाल अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य पयात्क मनुष्य और मनुष्यनियोंमें एक पूषकाटिके आनु पाते जिस मनुष्यन प्रिमामे शय रूतपर मनुष्यापुष्टा कथ करके प्यात्क काविकमप्यरजनका प्राप्त कर लिया है वह मरकर उत्तम भोगभूमिमें तीन पत्यकी आनुक साथ उल्लस होगा है । इसके प्रिमामे अज्ञ अज्ञ तक निरस्वतर स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिका ही कथ हाता रहता है अतः अस्वतर स्थितिका उल्लसकाल पूषकाटिका प्रिमामे अधिक तीन पत्य प्राप्त हाता है । किन्तु सम्यकदृष्टि जीव मरकर श्रीवर्दी मदी हाता अतः मनुष्यनियोंके अस्वतरस्थितिक अज्ञ अन्तमुहूर्त अधिक तीन पत्य ही प्राप्त हाता । यदि अन्तमुहूर्तसे पूष पयात्क बार तीन पत्यमें उल्लस भाग भूमिक अस्वतर स्थितिक अज्ञक प्रकण करना चाहिए । संप्रपयात्क मनुष्यक उल्लसकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इसके अस्वतर और अवस्थितस्थितिक उल्लसकाल अन्तमुहूर्त बड़ा । शय क्यन सुगम है ।

§ १८० वेचोंमें मुजगार और अवस्थित स्थितिकमिच्छा क्यन सामान्य नार्थक्योके

तेत्तीस सागरोवमाणि । भवणादि जाय सहस्रारे त्ति एवं चेव । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । भवण०-वाण०-जोदिसि० सगट्ठिदी अंतो-मुहुत्तूणा । आणदादि जाय सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जह० जहणट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी ।

§ १७६ एइंदिय०भुज०-अवट्ठि० मणुसभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो असंखे०भागो । एवं वादरेइंदिय-सुहुमेइंदिय-चत्तारिकाय तेसिं वादर-सुहुम-वणप्फदि-वादरवणप्फदि-सुहुमवणप्फदि-णिगोद-वादरणिगोद-सुहुमणिगोदे त्ति । एदेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च एवं चेव । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगु-क्कस्सट्ठिदी ।

§ १८० विगलिंदिय-विगलिंदियपज्जत्ताणं भुज०-अवट्ठि० एइंदियभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । विगलिंदियअपज्ज० भुज०-अवट्ठि०

समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर हैं । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतक इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमे अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । उसमें भी भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार तकके देवोंके तीनों प्रकारकी स्थितियोंका वन्ध होता है । अतः सहस्रार स्वर्गतक अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त हो जाता है । पर इतनी विशेषता है कि भवन-त्रिकोंमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता अतः वहा अल्पतरका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा । किन्तु आनतसे सर्वार्थसिद्धितक अल्पतर स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा, क्योंकि वहा एक अल्पतर स्थितिका ही वन्ध होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ १७६ एकेन्द्रियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्लोपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके वादर और सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवोंके जानना चाहिये । इन वादर एकेन्द्रिय आदिके जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद हैं उनके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमे अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

§ १८० विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय

विगर्षिदियमंगो । अप्यद० मणुसअपज्जसमंगो ।

§ १८१ पंचि०-पंचि०पञ्च० भुज० अषट्ठि० पंचि०तिरिक्खमंगो । अप्यद० मूनायं । तस-तसपज्ज० भुज० अषट्ठि० अप्यद० मूनायं । तसअपज्ज० भुज० शीषं । अप्यद० अषट्ठि० अह० एगसगग्गो, उक्क० अतोमु० । एवमोराडियमिस्स० वत्तम्वं । गवरि भुज० उक्क० तिण्णि समयो ।

और उत्कृष्टफल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पिच्छान्द्रिय अपत्यातक जीवोंके मुद्गार और अवस्थित स्थितिबिम्बच्छिन्ना काल पिच्छान्द्रियोंके समान है । तथा अत्यन्त स्थितिबिम्बच्छिन्ना काल मनुष्य अपत्यातकोंके समान है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें भी अद्यावत् और मन्तशुद्धयसे मुद्गारके दो समय प्राप्त होते हैं अतः इनमें मुद्गार स्थितिका उत्कृष्ट काल भी मनुष्योंके समान है । तथा एकन्द्रियके निरन्तर पत्यक असेन्यातयें भागप्रमाण फलतक अत्यन्त स्थितिश्च इतना सम्भव है, क्योंकि जिन एकन्द्रियक संक्षी पंचन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व है वह उसे पत्य क असंन्यातयें भागप्रमाण फल तक पटाता रहता है । अतः एकेन्द्रियोंमें अत्यन्त स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असंन्यातयें भागप्रमाण है । वायुरप्यन्द्रिय सूक्ष्मण्डन्द्रिय तथा पौषो न्यात्रधर्य और इनके वायु और सूक्ष्म जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पत्यक असंन्यातयें भागस अधिक है अत इनमें भी एकन्द्रियोंके समान काल पत जाता है । किन्तु इन सबके पत्या और अपत्या भेदोंका फल कम है अतः इनमें अत्यन्त स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार विप्लवप्र पत्या और विकलप्र अपत्या जीवोंके उत्कृष्ट काल का विचार करके अत्यन्त स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना । शेष कथन मुगम है ।

§ १-१ पंचन्द्रिय पंचान्द्रियपत्यातक जीवोंके मुद्गार और अवस्थित स्थितिबिम्बच्छिन्ना काल पंचन्द्रिय त्रियकोंके समान है । तथा अत्यन्त स्थितिबिम्बच्छिन्ना काल मूनापक समान है । श्रम और श्रम पत्यातक जीवोंके मुद्गार, अवस्थित और अत्यन्त स्थितिबिम्बच्छिन्ना काल मूनापक समान है । श्रम अपत्यातकोंके मुद्गार स्थितिबिम्बच्छिन्ना काल आपक समान है । तथा अत्यन्त और अवस्थित स्थितिबिम्ब पत्यक उपत्यक काल एक समय और उत्कृष्ट काल अत्यन्त हृत है । इसी प्रकार औदारिकमित्रावयागी जीवोंके कदना आदिप । इसी विषयता है कि इनके मुद्गार स्थितिबिम्बच्छिन्ना उत्कृष्ट काल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पंचन्द्रिय और पंचन्द्रिय पत्यातकोंमें सब पंचन्द्रिय जीव का जल है । इनमें पंचन्द्रिय त्रियकी भी सम्मिलित है अतः पंचन्द्रिय त्रियकोंके जिन प्रकार मुद्गार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय पत्ति करके पतता और है इसी प्रकार इनके भी जानना आदिप । तथा आपमें अत्यन्त स्थितिका या उत्कृष्ट काल पतताया है यह पंचन्द्रिय और पंचन्द्रिय पत्यातकोंके ही प्राप्ता जाता है अत्यन्त ही अतः इनके अत्यन्त स्थितिका काल आपक समान है । आपमें मुद्गार आदि जीवोंके स्थितिबिम्बच्छिन्ना का काल बढ़ा है यह श्रम और श्रम पत्या जीवोंके अतिरिक्त इनका है अतः इनकी अत्यन्त आपक समान है । श्रम अपत्यातकोंका उत्कृष्ट काल भागमु हृत है अतः इनके अत्यन्त और अवस्थित स्थितिबिम्बच्छिन्ना उत्कृष्ट काल भागमु हृत है । या एकन्द्रिय वा विकलप्र पंचन्द्रिय श्रमोंमें उत्पन्न होता है इनके मुद्गार स्थितिका पार समय प्राप्त होत है । किन्तु इनमें मुद्गारका पतता समय विषय मन्तिवें है प्राप्ता है और

§ १८२ पंचमण०-पंचवचि०—वेउन्विय०--वेउन्वियमिस्स० मणुसअपज्जत्त-भंगो । कायजोगि० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । ओरालि० भुज०-अवट्ठि० मणुसअपज्जत्तभंगो । अप्पद० जह० एग-समओ, उक्क० चावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि । आहार० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० अप्पद० जहण्णुक्क० अंतोमु० । कम्मइय० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० वे समया । एवमप्पद० । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समय ।

विग्रहतिमें औदारिकमिश्रकाययोग पाया नहीं जाता, अतः इस योगमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा जो भव ग्रहण अद्वात्तय और सक्लेशत्तयके कारण प्राप्त होता है ।

§ १८२ पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । काययोगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । औदारिक काय योगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । आहारक काययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूत है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । कार्मणकाययोगी जीवोंके भुजगार स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । इसी प्रकार अल्पतर स्थितिबिभक्तिका काल जानना चाहिये । तथा अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है ।

**विशेषार्थ**—पाचों मनोयोग, पाचों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका अद्वात्तय और सक्लेशत्तयसे दो समय ही उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूत ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन योगोंका इससे अधिक उत्कृष्टकाल नहीं पाया जाता, अतः इनमें भुजगार आदि स्थितियोंके कालको लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके समान कहा । काययोगमें सब काययोगोंका अन्तर्भाव हो जाता है और भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय काययोगमें ही बनता है अतः इसमें भुजगार और अवस्थितस्थितिके कालको ओघके समान कहा । तथा सामान्य काययोगका उत्कृष्टकाल तो असख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । पर वह एकेन्द्रियके ही पाया जाता है और एकेन्द्रियके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा, अतः काययोगमें भी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जानना । औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तमुं हूत कम बाईस हजार वर्ष है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें अल्पतर स्थितिबिभक्ति ही होती है अतः इनका जो जघन्य और उत्कृष्टकाल है तत्प्रमाण ही इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल जानना चाहिये । कार्मणकाययोगका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है, अतः इसमें अवस्थित स्थितिबिभक्तिका तो जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय बन जाता





§ १८५. मदि० सुदअण्णाण० भुज०-अवट्टि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमआ, उक्क० एकत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । विभंग० भुज०-अप्पद०-अवट्टि० सत्तमपुठ-विभंगो । णवरि अप्पद० एकत्तीससागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० अप्पद० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मा-मि०-वेदयसम्मादिट्टि ति । णवरि वेदयसम्मादिट्टीसु छावट्टिसागरोवमाणि संपु-ण्णाणि । मणपज्ज० अप्पद० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं संजद-परिहार०-सजदासंजदा ति ।

समय कोई भी एक कषाय पाई जा सकती है अतः चारों कषायोंमें भुजगार स्थितिका काल ओघके समान कहा । एक कषायका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है अतः शेष कालकी औदारिक मिश्रकाय-योगके साथ समानता घटित हो जाती है । शेष कथन सुगम है ।

§ १८५ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है । विभंगज्ञानी जीवोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल सातवीं पृथिवीके नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कम इकतीस सागर है । अभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पूरे छयासठ सागर होते हैं । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है । इसी प्रकार सयत, परिहारविशुद्धिसयत और सयतासयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—प्रारम्भके दो अज्ञानोंके रहते हुए अधिकसे अधिक अल्पतर स्थितिबिभक्ति नौवें प्रवेयक्रममें पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागर कहा । यहा साधिकसे नौवें प्रवेयकके पिछले भवके अन्तका अन्तमुहूर्तकाल और अगले भवके प्रारम्भका अन्तमुहूर्तकाल लेना चाहिये, क्योंकि इन कालोंमें भाँ इस जीवके अल्पतर स्थितिका पाया जाना सम्भव है । किन्तु विभगज्ञानमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिका काल अन्तमुहूर्त कम इकतीस सागर ही प्राप्त होता है जो कि उपरिम नौवें प्रवेयकमें अपर्याप्त अवस्थाके अन्तमुहूर्त कालको कम कर देनेसे प्राप्त होता है । अभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और सामान्य सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर और वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्टकाल पूरा, छयासठ सागर है और इनके एक अल्पतर स्थिति ही सम्भव है अतः इनके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा इन सयका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त कहा । मनःपर्ययज्ञानका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । सयत, परिहारविशुद्धिसयत और सयतासयत जीवोंके भी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जान लेना चाहिये ।

§ १८६ सामास्यच्छदो० अप्यद्० जह० णगममभो, उह० पुञ्जसोटी दमूणा ।  
 भमजद्० णतुंगभंगा । णवरि अप्यद्० उह० वेतीस सागरा० मादिरयाणि । परतु०  
 तसपञ्जभंगा । किण्ट०-णीव० फाउ० भुज० अरुहि० आर्य । अप्यद्० जद्०  
 एगसमभ्रा, उरु० सगहिदी दमूणा । तउ०-यम्भ० भुज० अरुहि० माहम्भंगो ।  
 अप्यद्० ज० पगसमभ्रा, उरु० सगहिदी । मुक्क० अप्य० ज० अनामु०, उरु०  
 तचीस साग० मादिरयाणि । एवं रवश्य० वत्तव्य ।

§ १८७ अथव० मिच्छादि० मन्त्रिभण्णाणिभंगा । उवसम०-सम्मापि० आदार  
 भिसभंगो । सासण० अप्यद्० ज० पगसमभ्रा, उरु० दारलियाभा । सणि० मुञ्ज०  
 स० एगसमभो उरु० यसमया । अप्यद्० अरुहि० आप । अमणि० भुज०  
 पचिदियतिरिक्कमभा । अप्यद्० अरुहि० एहिदियभंगा । आदारि० भुज०

अवट्टि० ओरालियमिस्सभंगो । अप्पदर० ज० एगसमओ, उक्क० ओघभंगो ।  
अणाहार० कम्मइयभंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ १८८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देशां-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मोह० भुज०-अवट्टि० अंतरं केवचिरं कालाडो होदि ? जह० एगसमओ, उक्क०  
तेवट्टिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अंतोमुहुत्तन्भट्टिएहि सादिरेय । अप्पद०  
जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्ता । एव पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-  
पुरिस०-चक्खु०-अचक्खु०-भज्जिसि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ १८९ आदेसेण णेरइएमु भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० तेचीस  
सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओघं । पढमादि जाव सत्तमि त्ति भुज०-अवट्टि०  
अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अप्पद० ओघं ।

है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल पचेन्द्रियोंके समान है । आहारक  
जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओदारिकामिश्रकाययोगी जीवोंके समान  
है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल ओघके समान है ।  
अनाहारक जीवोंके कार्माणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८८ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे  
ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल कितना है ?  
जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन पल्य और अन्तमुहूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर हैं ।  
अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त हैं ।  
इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी,  
भव्य, सखी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ-**—एक कालमें एक जीवके भुजगार आदि स्थितियोंमेंसे कोई एक ही स्थिति  
होगी और इन तीनोंका जघन्यकाल एक समय है अतः जघन्य अन्तर भी इतना ही प्राप्त होता  
है । तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर  
हैं और उस समय अन्य दो स्थितियोंका पाया जाना सम्भव नहीं, अतः भुजगार और अवस्थित  
स्थितिका अन्तरकाल अल्पतरस्थितिके उत्कृष्टकाल प्रमाण कहा । तथा अवस्थितका उत्कृष्टकाल  
अन्तमुहूर्त है, अतः अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा । पचेन्द्रिय आदि कुछ मार्ग-  
णाओंमें यह अन्तरकाल बन जाता है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ १८९ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर हैं । तथा अल्पतर स्थिति-  
बिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक  
नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका  
अन्तरकाल ओघके समान है ।

१६० तिरिकत्त्व० मुद्र० अषट्ठि० जह० एगसमभो, उक्क० पस्त्रिदो० असंखे० भागो । अप्प० ओषं । पंचि० तिरिकत्त्व पंचि० तिरि० पज्ज० पंचि० तिरि० खोणिणी० मुद्र० अषट्ठि० ज० एगसमभो, उक्क० पुब्बकोदिपुघरां । अप्पद० ओषं । पंचि० तिरि० अपज्ज० मुद्र० अप्प अषट्ठि० जह० एगसमभो, उक्क० अंतोसु० । एषं मप्पसअपज्ज० । मणुसतिय० मुद्र० अषट्ठि० ज० एगसमभो, उक्क० पुब्बकोढी देसुणा । अप्पद० ओषं ।

१६१ दवेसु मुद्र० अषट्ठि० ज० एगसमभो, उक्क० अहारस सागरो० सादिरैयाणि । अप्प० ओषं । मषणादि नाव सहस्सार प्ति मुद्र० अषट्ठि० ज० एगसमभो, उक्क० सगट्ठिदी देसुणा । अप्प० ओषं० । आणदादि जाय सम्भ्व इ प्ति अप्प० गस्थि अंतरं ।

१६ तिर्यैषोमिं मुद्रागार और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल एक समय और एक अन्तरकाल पत्सोरमके असंख्यातये माग प्रमाय है । तथा अस्पतर स्थिति भिमक्षितका अन्तरकाल आपके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यैष पंचेन्द्रिय तिर्यैष पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यैष योनिमती कीबोके मुद्रागार और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल एक समय और एक अन्तरकाल पूर्वकोटिपूबकत्व है । तथा अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अन्तर काल आपके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यैष अपर्याप्तकोके मुद्रागार अस्पतर और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल एक समय और एक अन्तरकाल अन्तमु हूत है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकीबोके जानना चाहिये । सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यमिषोमिं मुद्रागार और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल एक समय और एक अन्तरकाल एक कम पूर्वकोटिप्रमाण है । तथा अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अन्तरकाल आपके समान है ।

१६१ त्रैषोमिं मुद्रागार और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल एक समय और एक अन्तरकाल साधिक अठारह सागर है । तथा अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अन्तरकाल आपके समान है । मधनवाचिबोसे छेकर सहस्वार कस्पतकके त्रैषोके मुद्रागार और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल एक समय और एक अन्तरकाल एक कम अपनी अपनी एक अन्तरकाल है । तथा अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अन्तरकाल आपके समान है । आन्त कस्पमे छेकर सर्वांसिद्धि तकके त्रैषोके अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यैषके अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल साधिक तीन पत्स्य बतला भाये है । पर त्रिस तिर्यैषके यह काल प्राप्त होता है उसके तिर्यैष पर्याप्तके रहते हुए पुनः मुद्रागार और अशस्थित स्थिति नहीं प्राप्त होती क्योंकि यह अथ तिर्यैषसम्बन्धी अस्पतर स्थितिभिमक्षितका कालको समाप्त करके त्रैषपर्याप्तये भला जाता है अतः पंचेन्द्रियबोमे जो अस्पतर स्थितिभिमक्षितका अथम्य अन्तरकाल वतलाया है वह सामान्य तिर्यैषके मुद्रागार और अशस्थितस्थितिभिमक्षितका एक अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यैष त्रिकके अस्पतर स्थितिभिमक्षितका साधिक तीन पत्स्य एक अन्तरकाल वतलाया है अतः इसके मुद्रागार और अशस्थित स्थितिभिमक्षितका एक अन्तरकाल माननपर वही आपत्ति खड़ी होती है जो सामान्य तिर्यैषके एक स्थितिभिमक्षितका अन्तरकाल स्पष्टीकरय करके समक वतला

§ १६२ सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज० पंचि०तिरिक्खअप-  
ज्जत्तमंगो । पंचकाय० तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-वेउव्विय० पंचि-  
दियतिरिक्खअपज्जत्तमंगो । एवमोरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स० वत्तव्वं । काय-  
जोगि० भुज०-अवट्ठि० ज० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० अम्मैखे०भागो । अप्पद०  
ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुचं । आहार-आहारपिस्स० अप्पद० णत्थि अंतरं ।  
एवमवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेटो०-  
परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजटासंजद०-ओहिदंस०-मुक्क०सम्मादि०-खइय०-  
वेदय०-उवसम०-सम्पामि०-सासण०दिट्ठि ति । कम्मइय० भुज०-अप्पद० एत्थि

आये हैं अत इनके भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकाटि प्रयत्नप्रमाण  
कहा है । कोई सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च उत्कृष्ट स्थिति वॉधकर मरा और असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चोमें  
उत्पन्न हुआ और सेंतालीस पूर्वकोटि तक पचेन्द्रिय असज्ञियोमें भ्रमणकर फिर सज्ञी पचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च हो गया । इस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमें भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर  
सेंतालीस पूर्वकोटि होता है । क्योंकि जिस असज्ञी जीवके सज्ञी पचेन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व  
होता है उसको घटानेके लिए सेंतालीस पूर्वकोटिसे भी अधिक काल चाहिये परन्तु असज्ञी  
पचेन्द्रिय तिर्यञ्चमें भ्रमण करनेका उत्कृष्टकाल सेतालीस पूर्वकोटि है अतः उक्त काल कहा । इसी  
प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तोमें पन्द्रह पूर्वकोटि और योनिमतिमें सात पूर्वकोटि कहना  
चाहिए । मनुष्यमें असज्ञी नहीं होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि काल कहा है  
मनुष्य त्रिकके यद्यपि अल्पतरका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य वतलाया है पर वह इनके  
भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर नहीं हो सकता । आपत्ति वही आती है जिसका  
पहले उल्लेख कर आये हैं । अतः इनके भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम  
पूर्वकोटि प्रमाण जानना चाहिये । कुछ कमसे यहाँ प्रारम्भके आठ वर्षका और अन्तके  
अन्तमुहूर्त कालका ग्रहण किया है । देवोंमें यद्यपि अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर  
वतलाया है । पर भुजगार और अवस्थित स्थितियों सहस्रार स्वर्गतक ही होती हैं और  
सहस्रार कल्पकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः इनके भुजगार और अवस्थित  
का उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १६२ सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय और पचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंके पचेन्द्रिय तिर्यञ्च  
अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । पाँचों स्थावरकाय, त्रसअपर्याप्तक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों  
वचनयोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान  
जानना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना  
चाहिये । काययोगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । आहारक-  
काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।  
इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी,  
संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यात  
सयत, संयतासयत, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्याहृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । कर्मण-

अंतरं । अत्रदि० महण्णुक्क० एगसममो । एवमणाहारि० ।

§ १६३ वेदाणुवादेण इत्थि० मुञ्ज० अत्रदि० जह० एगसममो, उक्क० पण  
वण्ण पस्सिदोवमाणि देसूणाणि । अप्प० ओषं । णमुंस० मुञ्ज० अत्रदि० जह० एग-  
सममो, उक्क० वेचीस सामरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओषं । एवमसंमद० ।

§ १६४ अचारिकसाय० मण्णोगिमंगो । मदिअण्णाण-सुदअण्णाण०  
मुञ्ज०-अत्रदि० अ० एगसममो, उक्क० एकक्कीस सागरोवमाणि सादिरयाणि ।  
अप्पद० ओषं । विहंग० मुञ्ज० अत्रदि० अ० एगसममो, उक्क० अतोसु० । अप्पद०  
ओषं । पंचल० मुञ्ज०-अत्रदि० अ० एगसममो, उक्क० सर्गाद्वी देसूणा । अप्पद०  
ओषं । अमव० मिच्छादि० मदिअण्णाणिमंगो । असण्णि० कायनोगिमंगा ।  
एवमंतराणुगमो समत्ता ।

§ १६५ खाणामीमहिं मंगविषयणुगमेण दुबिहो णिहोसो-ओषण आदसण य ।  
तत्प ओषेण मुञ्ज० अप्प० अत्रदि० णियमा अत्थि । एवं विरिक्ख-सञ्चपद्दिय पुडवि०

काययोगी बीषोंके मुञ्जगार और अस्पतर स्थितिविमक्तिअ अन्तरकाल नहीं है । तथा अत्रस्थित स्थिति  
स्थितिविमक्तिअ अणम्य और उक्कट अन्तरकाल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक बीषोंके  
ज्ञानना चाहिये ।

§ १६६ वेद मार्गणाके अनुवाचसे स्त्रीवेदी बीषोंके मुञ्जगार और अत्रस्थित स्थिति  
विमक्तिअ अणम्य अन्तरकाल एक समय और उक्कट अन्तरकाल एक समय पचवन पत्य है ।  
तथा अस्पतर स्थितिविमक्तिअ अन्तरकाल आपके समान है । नर्पुसकंधी बीषोंके मुञ्जगार  
और अत्रस्थित स्थितिविमक्तिअ अणम्य अन्तरकाल एक समय और उक्कट अन्तरकाल एक  
समय वेचीस सागर है । तथा अस्पतर स्थितिविमक्तिअ अन्तरकाल आपके समान है । इसी  
प्रकार असंयत बीषोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १६७ पारो कपाववासे बीषोंके मनोबोगी बीषोंके समान ज्ञानना चाहिये । मत्थद्वानी  
और भुताद्वानी बीषोंके मुञ्जगार और अत्रस्थित स्थितिविमक्तिअ अणम्य अन्तरकाल एक समय  
और उक्कट अन्तरकाल साधिक इक्कीस सागर है । तथा अस्पतर स्थितिविमक्तिअ अन्तरकाल  
ओषके समान है । विमंगद्वानी बीषोंके मुञ्जगार और अत्रस्थित स्थितिविमक्तिअ अणम्य  
अन्तरकाल एक समय और उक्कट अन्तरकाल अण्णुसुहं है । तथा अस्पतर स्थितिविमक्तिअ  
अन्तरकाल ओषके समान है । इत्थं आदि पाँच अस्यापससे बीषोंके मुञ्जगार और अत्रस्थित  
स्थितिविमक्तिअ अणम्य अन्तरकाल एक समय और उक्कट अन्तरकाल एक समय आपनी आपनी  
उक्कट स्थितिप्रमाण है । तथा अस्पतर स्थितिविमक्तिअ अन्तरकाल आपके समान है ।  
अमम्य और मिप्यात्थि बीषोंके मत्थद्वानी बीषोंके समान ज्ञानना चाहिये । तथा असंयती  
बीषोंके कायबोगी बीषोंके समान ज्ञानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६८ माना बीषोंकी अपेक्षा मंगविषयणुगमसे निर्देय दो प्रकारके हैं—ओषनिर्देय  
और आश्चनिर्देय । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा मुञ्जगार, अस्पतर और अत्रस्थित स्थितिविमक्तिअ

बादरपुढवि०-बादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढनिपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादर-  
 आउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०  
 [-बादरतेउ०] अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ-  
 अपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०तस्सेव अप्पज्ज०-  
 सव्ववणप्फदि०-सव्वण्णिगोद०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्म०-कम्मइय०-  
 णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णलेस्सिय-भव०-  
 अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि ति ।

§ १६६ आदेसेण णेरइएसु अप्पद० अवट्ठि० णियमा अत्थि । भुज० भजियव्वं  
 सिया एदे च भुजगारविहत्तिओ च । सिया एदे च भुजगारविहत्तिया च २ । धुवे  
 पक्खिचं तिण्णि भंगा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचि०तिरि०-मणुसतिय०-देव०-भव-  
 णादि-जाव सहस्सार०-सव्वविगल्लिय-सव्वपंचिदिय-बादरपुढवीपज्ज०-बादरआउ-  
 पज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-  
 पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि ति ।

जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवी-  
 कायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
 पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
 जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक,  
 बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक  
 अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
 वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर  
 वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी,  
 औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों  
 कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य,  
 अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असखी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव  
 नियमसे हैं । तथा भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं-। ( १ ) कदाचित् बहुत  
 अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव होते हैं और एक भुजगार स्थितिविभक्तिवाला  
 जीव होता है । ( २ ) कदाचित् बहुत अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव होते हैं  
 और बहुत भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव होते हैं । इन दोनों भगोंको ध्रुव भंगमें मिला देनेपर  
 तीन भग होते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त  
 और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके  
 देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादरजलकायिक पर्याप्त,  
 बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी  
 ब्रस, पौचों मनोयोगी, पौचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, खीवेदी, उरुपवेदी, विभंगज्ञानी,  
 चक्षुदर्शनी, पतिलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और सखी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६७ मणुसम्पञ्ज० सम्पपदा मयणिञ्जा । एवं बन्ध्वियमिस्स० । आण  
 दादि भाष सम्बद्धेचि अप्पद० णियमा अत्थि । एवमाभिणि० सुद०-ओहि० मणपञ्ज०  
 संजद० सामाइयच्छदो०-परिहार०-संमडासंजठ०-आहिर्दस०-मुक्क०-सम्मादि०-  
 खइय०-उदपत्ति । आहार० आहारमिस्स० सिया अप्पन्तरिहत्तिमा ष सिया अप्पदर  
 विहत्तिया ष । एवमवगठ० अफसा०-सुहुम० ब्रह्मत्त्वाद्-उपसम०-सम्मायि० सासण  
 सम्मादिदि ति ।

एवं णाणाजीबहि मंगभियआ समत्ता ।

§ १६८ भागाभागाशुगमेण दुबिहो णिहोसा आयेण आदसेण ष । तस्य  
 आयेण सुम्भ० सम्भजीव० क० भागो ? अमत्से०भागो । भवहि० सम्भनी० के० ?  
 संस०भागो । अप्पन्० सम्भजीव० के० भागा ? संसज्जा भागा । एवं सत्तसु पुडवीसु  
 सम्भतिरिक्कन्-मणुस-मणुसअपञ्ज०-इय मयणादि भाष सइस्सार-सम्भपइदिय सम्भपिगळि-

§ १६९ मनुष्य अपयात्तकाम ममी पद् मज्जनीय है । इसी प्रकार वैकल्पिकमिच्छायुगागी  
 जीवोंके जानना चाहिये । आनन्द कल्पसे उत्पन्न सबार्थसिद्धि पर्यन्त अल्पतर स्थितिविमर्शितबाले  
 जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार मतिहानी, बुद्धिहानी अथविद्यानी मनःपयवहानी संयत  
 सामायिक संयत देहापम्पापनाम्नयत परिहायबिभ्रुद्धिमयत संयतासंयत अथविद्यानी, हुक्क  
 लदयापाल, सम्पगट्टि, ज्ञाबिक्कमस्यगट्टि और वेदकसम्यगट्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारक-  
 काययागी और आहारकमिच्छायुगागी जीवोंमें कदाचिन् अल्पतर स्थितिविमर्शितबाला एक  
 जीव होता है कदाचिन् अल्पतर स्थितिविमर्शितबाले अनक जीव होते हैं । इसी प्रकार  
 अपगतवदी अफयायी सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, पयात्त्यातसंयत अपक्षमसम्यगट्टि, सम्पमिध्वाट्टि  
 और सासाहनमस्यगट्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशुषार्थ-भोपसे मुञ्जगार, अल्पतर और अयन्वित स्थितिविमर्शिताने माना जीव  
 सत्ता पाव जात है । पर मागणाधोमें विचार करनपर बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें आप  
 प्ररूपणा धन जाती है । बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें अल्पतर और अयन्वित स्थितिवान माना  
 जीव ता नियमसे है तथा मुञ्जगार स्थितिवाना कदाचिन् एक जीव होता है और कदाचिन् अनेक  
 जीव हात है । इस प्रकार इन दो अथु प मंगोंमें पहला भुक्कमंग मिथा देनपर तीन मंग हा जात  
 है । बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें तीनों पद् मज्जनीय है । जमे लक्ष्ययवज्जक मनुष्य आदि ।  
 अथा यदा २६ मंग होंगे । बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें एक अल्पतर स्थितिवान है । जीव हात है  
 और बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें अल्पतर स्थितिवाना कदाचिन् एक जीव होता है और  
 कदाचिन् नाता जाव हात है । जमे आहारक अपयागी आदि । अथा यदा २७ मंग होंगे ।

इस प्रकार मानाजीवोंकी अपया मंगविषयानुगम समान हुआ ।

§ १६८ भागाभागाशुगमकी अपया निर्देश का प्रकारका है-आपनिर्देश और आदेण  
 निर्देश । इनमें आपकी अपया मुञ्जगार स्थितिविमर्शिताने जीव मय जीवोंके जिनने माग है ?  
 अमंगगतथे माग है । अयन्वित स्थितिविमर्शिताने त्राव मय जीवोंके जिनने माग है ? मन्व्यातथे  
 माग है । अल्पतर स्थितिविमर्शिताने जीव मय जीवोंके जिनने माग है ? मन्व्यात बुद्धमाग है ।



दिय-सव्वपंचिदिय-पंचकाय०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति ।

§ १६६ मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु भुज० सव्वजी० के० भागो ? संखे०भागो । एवमवट्ठिदि० । अप्पदर० संखेज्जा भागा । आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति णत्थि भागाभागं । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयद्धेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहि-दस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवं भागाभागानुगमो समत्तो ।

§ २०० परिमाणानुगमेण दुविहो णिहे सो ओघेण आटेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? अणंता । एव त्तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवुंस०-चत्तारिकसाय-

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकचेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पाचों स्थावरकाय, सभी त्रसकाय, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, वृष्णादि पाच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सज्ञी, असज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६६ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले सख्यातवें भाग हैं । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले संख्यात बहुभाग हैं । आनत कल्पसे लेकर सवार्थसिद्धि पर्यन्त जीवोंके भागाभाग नहीं हैं, क्योंकि वहा एक अल्पतर पद ही पाया जाता है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, द्वेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ल-लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०० परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक,

मदिसुदअप्याण०-असुनद-अचकसु-तिष्णिल०-भवसि०-अमवसि०-मिष्णदि०  
असपि० आहारि०-मणाहारि चि ।

§ २०१ आदसेण णेरइपसु मुअ० अप्पद० अवहि० केचि० ? असंखजा । एवं  
सत्तसु पुडवीसु सम्भपंचि०तिरिक्ख-मणुस मणुसअपज्ज०-दव-मवणादि भाव सह-  
स्सार०-सम्भविगल्लिदिय-सम्भपंचि० अचारिकाय-मादरवणफदिपत्तय० पज्जत्तापज्ज-  
सम्भतस०-पच्चमण०-पंचवचि०-ववम्भिय०-वेउम्भियमिस्स इत्थि -पुरिस०-विईग०-  
चकसु०-तेव०- पम्म०-सण्णित्ति ।

§ २०२ मणुसपज्ज०-मणुसिणी० मुअ० अप्पद० अवहि० केचि० ?  
संखजा । आणदादि भाव अवराइत्ति अप्पदर० केचि० ? असंखजा ।  
एवमाभिणि०-सुद०-आहि०-संभदासव्रद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-त्तइय०-वेदय०-  
उवसम०-सासण०-सम्माभिष्कादिदि चि । सन्वहे० अप्पद० केचिया ? संखजा ।  
एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संभद०-सावाइयवेदो०  
परिहार०-सुहु० व्रहाक्खादसंभदत्ति । सुक्क० आभिणि०भंगो ।

समी निगाह, कर्मयोगी औदारिककर्मयोगी, औदारिक मिमकर्मयोगी कर्मयोगकर्मयोगी  
न्युसकर्मयोगी कर्मयोगी चारों कर्मयोगी मत्स्यजानी, भुतजानी असंयत, अचकसुसैनी कर्मयोगी  
तीन सैस्यावले, मन्व अमन्व मिष्णादि, अरुणी आहारक और अनहारक जीवोंके जानना  
वाहिए ।

२ ? आरेखकी अपेक्षा मरुकिर्णोंमें मुद्रगार अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिम्बित्तबले  
बीच कितन हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सातों प्रकृतियोंके नारकी, समी पंचेन्द्रिय तियज  
सामान्य मनुष्य मनुष्य अपमान, सामान्यरेश मन्ववासियोंसे लेकर सहायक कर्मयोगके श्रेण  
समी विकलेन्द्रिय समी पंचेन्द्रिय प्रकृतिकर्मयोगी आदि चार स्वावरकर्म, बाहर वनस्पतिकर्मयोग  
प्रत्येक शरीर, वातर वनस्पतिकर्मयोग प्रत्येक शरीर पर्याप्त वातर वनस्पतिकर्मयोग प्रत्येक शरीर  
अपर्याप्त, समी त्रस पंचों मनीयोगी पांचों वचनयोगी वैश्विककर्मयोगी वैश्विककर्मयोग  
कर्मयोगी, आन्वयो पुरुषवेदो, विनंगजानी, अचकसुसैनी पीठलेखमावले पद्मलेखमावले और  
रुणी जीवोंके जानना वाहिए ।

§ २ २ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्णयोंमें मुद्रगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिम्बित्त  
बले जीव कितन हैं ? संख्यात हैं । आन्त कर्मयोग लेकर अपराहित कर्मयोगके श्रेणोंमें अल्पतर  
स्थितिबिम्बित्तबले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सो प्रकार मतिजानी, भुतजानी, अपभिजानी  
संयतसंयत, अवचिचर्षनी सम्भदत्ति, क्षयिकसम्भदत्ति वक्कसम्भदत्ति, वपमसम्भदत्ति,  
सासादनसम्भदत्ति और सम्भगिम्भदत्ति जीवोंके जानना वाहिए । सर्वांसिद्धिमें अल्पतर  
स्थितिबिम्बित्तबले श्रेण कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार आहारकर्मयोगी आहारकर्मयोग  
कर्मयोगी अपगतवेदो अरुणी मन्वपंचजानी, संयत सामाधिक संयत ज्ञेयोपस्थापनसंयत  
परिहारिभुदिसंयत सूक्ष्मतापयिकसंयत, और यथावशातसंयत जीवोंके जानना वाहिए ।  
हुक्कलेखमावले जीवोंका कवन मतिजानी जीवोंके समान है

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

§ २०३ खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्वेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोए । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदिसुदअण्णाण-अचक्खु०-तिणिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति ।

§ २०४ आदेसेण णेरइएसु भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खे०? लोग० असखे०-भागे । एव सत्तसु पुढवीसु सव्वपच्चिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगल्लि-दिय-सव्वपच्चिदिय-वादरपुढवि०पज्ज०-वादरआउ०पज्ज०-वादरतेउ०पज्ज०-वादरवाउ०पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयसररपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादिट्ठी-खइय०-वेदय०-

**विशेषार्थ-**ओघसे तीनों स्थितिविभक्तिवाले अनन्त हैं यह तो स्पष्ट है पर मार्गणाओंमें जिस मार्गणाका जितना प्रमाण है उसमें सम्भव स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सामान्यरूपसे उतना ही प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणाका प्रमाण अनन्त है उसमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त ही है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । किन्तु जहा एक ही स्थिति हो वहा एक की अपेक्षा ही कथन करना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०३ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे आघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तियञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २०४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले प्रत्येक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलोन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अरुपायी, विभगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रतज्ञानी, अधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार-

वनसम०-सासण०-सम्मावि०-सण्णि चि । पनरि वादरवाठ०पज्ज० साग०  
सत्ते०मागा ।

§ २०५ पुडवि०-वादरपुडवि० वादरपुडविअपज्ज०-सुहुमपुडवि०-सुहुमपुडवि०  
पज्जतापज्जत्त-आठ०-वादरआठ०-वादरआठ०अपज्ज०-सुहुमआठ०-सुहुमआठ०पज्जता  
पज्जत्त-तठ०-वादरतठ० वादरतठ०अपज्ज०-सुहुमतठ०-सुहुमतेठ०पज्जतापज्जत्त-आठ०  
वादरवाठअपज्ज०-सुहुमवाठ०-सुहुमवाठपज्जतापज्जत्त-वाटरणफ्फटिपणोपअपज्ज०  
मुज्ज० अम्पठ० अमट्टि० क० खेप ! सव्वसागे ।

एवं खेसाशुगमो समसी ।

§ २०६ पोसणाणुणमेण दुविहो शिखरौ मापण आदसण य । तस्य औषण

विद्विष्टसंभत सूक्ष्मसांपर्यायिकसंभत, पर्यायात्संभत संयतासंयत वसुवर्तनी अक्षयिष्ठनी,  
पात आदि तीन क्षेत्रावाले, सम्मगट्टि, चायिकसम्मगट्टि, वेदकसम्मगट्टि, उपशमसम्मगट्टि,  
सासादतसम्मगट्टि, सम्मम्मिप्याट्टि और संघी बीषोंके जानना चाहिये । इतनी विद्येयता है कि  
बादर वायुअयिक पर्याप्त बीषोंका बतैमान क्षेत्र सोफका संभयातर्षा भाग है ।

§ १ L. पृथिवीअयिक, वादर पृथिवीअयिक, वादर पृथिवीअयिक अपयात् सूक्ष्म  
पृथिवीअयिक, सूक्ष्म पृथिवीअयिक पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीअयिक अपयात्, जलअयिक, वादर  
जलअयिक, वादर जलअयिक अपयात् सूक्ष्म जलअयिक सूक्ष्मजलअयिक पर्याप्त सूक्ष्म  
जलअयिक अपयात् अग्निअयिक, वादरअग्निअयिक, वादर अग्निअयिक अपयात्  
सूक्ष्मअग्निअयिक सूक्ष्मअग्निअयिकपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निअयिक अपयात् वायुअयिक वादर वायु  
अयिक, वादर वायुअयिक अपयात् सूक्ष्मवायुअयिक सूक्ष्मवायुअयिक पर्याप्त सूक्ष्मवायु  
अयिक अपयात्, वादरवनम्पतिअयिक प्रत्येक क्षरीर और वादर वनस्वतिअयिक प्रत्येक क्षरीर  
अपयात्तर्षे मुबगार, अररतर और अक्षयित स्थितिविभक्तिशाले बीष कितन क्षेत्रमें रहते हैं ।  
सर्वे साक्षरमें रहते हैं ।

विशुपार्य-आपसे तीनों स्थितिवाले बीष अन्तर्गत हैं अतः इनका क्षेत्र सब साक्षर बन  
जाता है । पर मागशाधोंकी अपक्षा क्षेत्रका विचार करनेपर दो विक्षेप प्रस्य हात हैं । जिन  
मार्गशाधोंमें तीनों स्थितिवालोंमें प्रमात्त अन्तर्गत है उनका ता सब साक्षर क्षेत्र है ही । साथ ही  
पृथिवीअयिक आदि अक्षेय्यात् संख्यावाली कुछ ऐसा मार्गशाध है जिनमें भी तीनों स्थिति  
वालोंमें क्षेत्र सब साक्षर है । तथा इनके अतिरिक्त क्षेत्र जिनकी मागशाध है उनमें अपनी अपनी  
सम्भव मुबगार आदि स्थितियोंकी अपक्षा साक्षर अक्षेय्यात्तर्षे भागप्रमात्त ही क्षेत्र जानना  
चाहिये । किन्तु वायुअयिक पर्याप्त बीष इसके अपक्षा हैं क्योंकि उनके तीनों स्थितियोंकी  
अपक्षा साक्षर संश्रुतातर्षे भाग प्रमात्त क्षेत्र पाया जाता है । तदरथे यह है कि मागशाधोंकी  
अपक्षा जिस मार्गशाध का क्षेत्र है वही पर्याप्त अपनी अपनी सम्भव स्थितिविभक्तिशाली अपक्षा  
भाग होता है ।

इस प्रकार चक्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ = १ सन्तानानुगमकी अपक्षा निर्देश श प्रश्नका है-आपनिर्देश और आदेशनिर्देश

भुज० अप्पद० अवट्टि० खेतभंगो । एवं तिरिक्ख०-णवगेवज्जाटि जाव सव्वट्ट०-  
 सव्वएइंदिय-पुढवि- [ वाटरपुढपि० ] वाटरपुढवि० अप्पज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुम-  
 पुढवि० पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वाटरआउ०-वाटरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुम-  
 आउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वाटरतेउ०-वाटरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्ता-  
 पज्जत्त-त्राउ०-वाटरवाउ०-वाटरवाउअपज्ज०-सुहुमत्राउ०-सुहुमत्राउपज्जत्तापज्जत्त-  
 वाटरवणप्फट्टिपत्तेय० - वाटरवणप्फट्टिपत्तेयअपज्ज० --- कायजोगि० - ओरालि० -  
 ओरालियमिस्स०-वेउळियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय-णवुंस०-अवगट०-  
 चत्तारिकसाय-अकसा०-मदिसुदअण्णाण०-मणपज्ज०-संजद-समाइयच्छेदो-परिहार०-  
 सुहुम०-जहाक्खाद०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छाटि०-  
 असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति ।

§ २०७ आदेसेण गिरय० भुज० अप्पद० अवट्टि० केव० खे० पो० ?  
 लोग० असंखे० भागो छ चोइस भागा वा देसूणा । पढमपुढवि० खेतभंगो । विदि-  
 यादि जाव सत्तमि ति भुज० अप्पद० अवट्टि० के० खेरां पोसिदं ? लोग० असंखे०  
 भागो एक्क वे तिण्णि चत्तारि पच छ चोइस भागा वा देसूणा ।

उनमेंसे ओषधी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन  
 क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, नौ अव्ययकसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी  
 एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वाटर पृथिवीकायिक, वाटरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक,  
 सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वाटरजलकायिक, वाटरजल-  
 कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मजलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक,  
 वाटरअग्निकायिक, वाटर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिक पर्याप्त,  
 सूक्ष्मअग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वाटरवायुकायिक, वाटरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मवायु-  
 कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर,  
 वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी,  
 वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककायोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसक-  
 वेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चारो कपायवाले, अकवायी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत,  
 सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसंयत,  
 असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी, आहारक  
 और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाओंमें जिसका जितना  
 क्षेत्र बतला आये हैं उसका उतना स्पर्शन भी जानना चाहिये।

§ २०७ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित  
 स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और प्रस-  
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें  
 स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार, अल्पतर  
 और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें

§ २०८ सव्यपंचि० तिरिनख० मुन० मप्यद० अशठि० क० खे० पो० ?  
 साग० असंखे० भागा सव्यलोगो वा । एष मणुस्स सव्यविगसिंदिय-पंचिदिय अपज०  
 वादरपुहवि० ( पज्ज० )-वादरआठ० पज्ज०-वादरतेउ० पज्ज०-वादरवाउ० पज्ज० वादर  
 वणप्फदिपचेय० पज्ज० तसअपज्ज० । णवरि वादरवाउपज्ज० सोग० संखे० भागो  
 सव्यलोगो वा ।

§ २०९ दव० मुन्न० अप्य० अशठि० सोग० असंखे० भागो अहणव चोइस  
 भागा वा देसूणा । एषं सोइस्मीसापेणु । भवण० षाण० जोदिसि० एव चेव ।  
 णवरि अद्दुह्म अह णव चोइसभागा वा देसूणा । सणक्कमारदि जाव सहस्सारेचि के०  
 खे० पो० ? सोण० असंखे० भागो अहचोइस भागा वा देसूणा । आणदादि आव  
 अच्चुदेचि के० खेत्तं पा० ? सोग० असंखे० भागो अ चोइसभागा देसूणा ।

§ २१० पंचिदिय पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज० मुन्न० अप्यद० अशठि० के०  
 खे० पो० ? सोग असंखे० भागो अह चोइसभागा देसूणा सव्यलोगो वा । एषं पंच

भाग क्षेत्रअ और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक कुछ कम दो, कुछ कम तीन,  
 कुछ कम चार, कुछ कम पाँच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है ।

§ २८. सभी पंचत्रिय तिर्यंभार्म मुन्नगार, अस्वतर और अशस्वित स्थितिभिभक्ति  
 बाल बीर्बोनि कित्तम क्षेत्रका स्वयं किया है ? लोकके असंख्यातबें भाग और सर्वलोक प्रमाण  
 क्षेत्रअ स्वयं किया है । इसी प्रकार सभी मणुष्य सभी विक्कलत्रिय पंचेत्रिय अवर्याप्ट वादर  
 पृथिवीकायिक पर्याप्त वादर जलकायिक पर्याप्त वादर अग्निकायिक पर्याप्त वादर वायुकायिक  
 पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्त बीर्बोके जानना चाहिये ।  
 इतनी विसेपता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्तबीर्बोने लोकके संख्यातबें भाग और सर्वलोकप्रमाण  
 क्षेत्रका स्वयं किया है ।

§ २९. देवोंमें मुन्नगार अस्वतर और अशस्वित स्थितिभिभक्तिवाले बीर्बोनि लोकके  
 असंख्यातबें भाग क्षेत्रअ तथा प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और नौ भागप्रमाण  
 क्षेत्रअ स्वयं किया है । इसी प्रकार सौधर्म और पशान स्वर्गके देवोंके जानना चाहिये । भवन्-  
 वासी अस्वतर और अशस्वितो देवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । तनी विसेपता है कि  
 इनके अतीतकालीन स्वयं प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन कुछ कम आठ और  
 कुछ कम नौ भागप्रमाण होता है । सानक्कमारसे लेकर सक्कमार स्वर्ग तकके देवोंने कित्तम क्षेत्रका  
 स्वयं किया है ? लोकके असंख्यातबें भाग क्षेत्रअ और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम  
 आठ भाग क्षेत्रका स्वयं किया है ? आनलकस्ससे लेकर अच्चुतकस्स तकके देवोंने कित्तम क्षेत्रअ  
 स्वयं किया है ? लोकके असंख्यातबें भाग क्षेत्रअ और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह  
 भाग क्षेत्रका स्वयं किया है ।

§ २१ पंचेत्रिय पंचत्रियपर्याप्त त्रस और त्रस पर्याप्त बीर्बोनि मुन्नगार, अस्वतर  
 और अशस्वित स्थितिभिभक्तिबाल बीर्बोने कित्तम क्षेत्रका स्वयं किया है ? लोकके असंख्यातबें  
 भाग क्षेत्रअ प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रअ और सर्व लोक क्षेत्रअ स्वयं

मण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्रु०-सण्णि त्ति । वेउव्विय० भुज०  
अप्प० अवट्ठि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ट तेरह चोदस भागा वा  
देसूणा ।

§ २११. आभिणी० सुट० ओहि० अप्पद० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०  
भागो अट्ट चोदस० देसूणा । एवमोहिदंस०-पम्मले०-सम्मादि०-खड्डय०-वेदय०-उव-  
सम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ २१२. संजदासंजद० अप्पद० के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे० भागो छ  
चोदस० देसूणा । एवं मुक्क० लेस्सा । तेउ० सोहम्मभंगो । सासण० अप्पद० के०  
खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ट वारह चोदस० देसूणा ।

एव पोमणाणुगमो समत्तो ।

किया है। इसी प्रकार पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, चन्द्रदर्शनी और सखी जीवोंके जानना चाहिये। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ २११ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, पद्मलेश्यावाले सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१२. सयतासयतोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जावोंके जानना चाहिये। पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्मस्वर्गके समान स्पर्श है। सासादानसम्यग्दृष्टि अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम वारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ—**श्रोघसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक वतलाया है दर्शन भी इतना ही है अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा। इसी प्रकार तिर्यच आदिकमें स्पर्श जाननेकी सूचना की है। इसका यह अभिप्राय है कि उन मार्गणाओंमें, जिनका जितना क्षेत्र है स्पर्श भी उतना ही है। हा, सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनका स्पर्श क्षेत्रसे भिन्न है। अत उनका पृथक् कथन किया। फिर भी जीवद्वाराके स्पर्शन अनुयोग द्वारमें उन मार्गणाओंमेंसे जिसका जितना स्पर्श वतलाया है वही यहाँ उस उस मार्गणामें भुजगार आदि सम्भव पदोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है। जो मूलमें वतलाया ही है। अब श्रमुक मार्गणाओं श्रमुक स्पर्श क्यों प्राप्त होता है इसका विशेष खुलासा स्पर्शन अनुयोगद्वारासे जान लेना चाहिये।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २१३ कासाशुगमेण दुविहो णिइदेसो—आयेण आवेसण य । तस्य भीषेण  
 सुन०-अप्पद० अशठि० केचचिरं कासादा हौति ? सम्बद्धा । एव तिरिक्त्त-सव्य  
 परंदिय पुडधि०-वादरपुडधि०-वादरपुडधिअपज्ज०-सुहुमपुडधि०-सुहुमपुडधिअपज्जघा  
 पज्जस-आठ०-वादरआठ०-वादरआठअपज्ज० सुहुमआठ -सुहुमआठपज्जतापज्जस  
 वेठ०-वादरनेठ०-वादरतठअपज्जस-सुहुमतेठ०-सुहुमतेठपज्जतापज्ज०-आठ०-वादर  
 आठ०-वादरआठअपज्ज०-सुहुमआठ०-सुहुमआठपज्जतापज्जस-वादरवणप्फदिपरोय०-  
 वादरवणप्फदिपरोयअपज्ज०--सव्यवणप्फत्ति सव्यणिगोद०- फायजोगि-ओरासिय०  
 ओरासियभिस्स०-कम्मइय० पणुस०-पत्तारिफ०-मदि-सुदअण्णा० असंजण० अपकसु०  
 तिष्णिखे०-मवसि० अमनसि०-भिष्सादिही-मसण्णि०-आहारि०-अणाहारि चि ।

§ २१४ आवेसेण णेरइपसु सुम० क० ? इह० एयसमओ, उक्क आवसि०  
 असखे०-माणो । अप्पन० अशठि० के०? सम्बद्धा । परं सत्तसु पुडधीसु सव्यपंचिदिय  
 तिरिक्त्त०-देव-मवणादि नाप सहस्सारे चि सव्यविगसिंदिय-सव्यपंचिदिय वादरपुडधि  
 पज्ज० वादरआठपज्ज० वादरतेठपज्ज० वादरवाठपज्ज वादरवणप्फदिपरोयपज्ज०  
 सम्बतस-पंचमण० पंचमचि०-वेठविय इत्थि०-परिस०-विहंग० घनसु० वेठ० पम्म०  
 सण्णि चि ।

§ २११ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकरका इ—धोपनिर्देश और आवेक्षनिर्देश ।  
 उनमेंसे धोपकी अपेक्षा मुञ्जगार अस्तर और अशस्वित स्थितिभिन्निष्ठा किन्ना वात है ?  
 सब कात है । इसी प्रकार सामान्य तिर्येच सभी एकेश्मिय श्रुतिबीकायिक, वादर श्रुतिबीकायिक  
 वादर श्रुतिबीकायिक अपयाण्ट सूक्ष्मश्रुतिबीकायिक सूक्ष्म श्रुतिपीकायिक पयाण्ट सूक्ष्म श्रुतिबीकायिक  
 अपयाण्ट जलकायिक वादर जलकायिक वादर जलकायिक अपयाण्ट सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म  
 जलकायिक पयाण्ट सूक्ष्म जलकायिक अपयाण्ट अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्नि  
 कायिक अपयाण्ट सूक्ष्म अग्निकायिक सूक्ष्म अग्निकायिक पयाण्ट सूक्ष्म अग्निकायिक अपयाण्ट  
 वायुकायिक वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपयाण्ट सूक्ष्म वायुकायिक सूक्ष्म वायुकायिक  
 पयाण्ट सूक्ष्म वायुकायिक अपयाण्ट वादर वनस्वतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्वतिकायिक  
 प्रत्येक शरीर अपयाण्ट सभी वनस्वतिकायिक सभी निगाद फायवोगी औदारिक अस्वयागी  
 औदारिकमिन्नस्वयागी, कर्मणस्वयागी नपुमस्वरी अपादि चारों कथायपाले मत्पक्षानी  
 कृताक्षानी असंयत अशुद्धानी कृष्णादि तीन सहपायासे भस्म अमश्य मिथ्याएदि  
 असंती, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिय ।

§ २१४ आवेक्षकी अपेक्षा नारकियोंमें मुञ्जगार स्थितिभिन्निष्ठा किन्ना पयत इ ?  
 अपम्य वात एक समय और उच्छृणु अथ व्यावलीक असंघातवें भ्रम प्रमाणा है । तथा अस्तर  
 और अशस्वित स्थितिभिन्निष्ठा किन्ना कात इ ? मर कात है । इसी प्रकार मागो श्रुतिविषोके  
 नारकी सभी पंचेश्मिय नियच सामान्य इव मपनपानिदामे सत्तर सहस्रार कस्त तक इव  
 सभी बिच्छुश्रुत्य सभी पंचेश्मिय वादर श्रुतिपीकायिक पर्यन्त, वादर जलकायिक पयाण्ट वादर  
 अग्निकायिक पयाण्ट, वादर वायुकायिक पयाण्ट वादर वनस्वतिकायिक प्रत्येक शरीर पयाण्ट सभी  
 वस पांचों मनायागी पांचों पचनयागी वैदिकिक स्वयागी स्त्रीवंशो पुंस्वरही विभंगयान्ती  
 अशुद्धानी, पीण्ड-वाहन, पद्यमहापाण और संघी जीवोंके जानना चाहिय ।



§ २१५. मणुस० भुज० जह० एयसमञ्चो, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज० के० ? ज० एगसमञ्चो उक्क० संखेज्जा समया । मणुसतिएसु अप्पद०-अवट्ठि सव्वद्धा । मणुसअपज्ज० भुज० के० ? जह० एगसमञ्चो, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अप्प०-अवट्ठि० के० ? जह० एगस० उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं वेजवियमिस्स० ।

§ २१६ आणदादि जात्र सव्वट्ठसिद्धेत्ति अप्पदर० के० ? सव्वद्धा । एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-सजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदामंजद०-ओहिदंसण०-सुकले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति ।

§ २१७ आहार०-आहारमिस्स० अप्पदर० के० ? जह० एगसमञ्चो, उक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि आहारमिस्स० जहणु० अंतोमु० अवगद० अप्प० के०? ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तो । एवमकसा०-सुहुम०-जहाम्खाद०संजदे त्ति । उवसम० अप्पद० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं सम्मामि०-सासण० । णवरि सासण० जह० एयसमञ्चो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ २१५ मनुष्योंमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल सर्वदा है । लब्ध-पर्याप्तक मनुष्योंमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्ति का कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्यिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१६ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । इसी प्रकार आभिनियोधिरुज्जानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१७ आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्ति वाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तमुहूर्त हैं । अपगतवेदी जीवोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अकपायी, सूक्ष्मसापरायिक-सयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टकाल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जघन्यकाल एक समय है ।

§ २१ = अंतराणुगमेण दुविहो गिहोसो—ओघेण आदसेण य । तस्य ओघेण  
 सुद्व०-अप्यद०-अद्वि० अंतरं केवचिरं । ? गत्य अंतरं । एवं विरिक्त्वं-सम्ब  
 पददिय-पुद्वि०-पादरपुद्वि०-पादरपुद्विअपज्ज०-सुहुमपुद्वि० सुहुमपुद्विअपज्जत्ता  
 पञ्च आठ०-पादरआठ०-पादरआठअपज्ज०-सुहुमआठ०-सुहुमआठपञ्चत्तापञ्चत्त

विशुपाय—जाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार करमपर ओषस तीनों स्थितियां निरन्तर  
 है अतः एकत्र काल सदैव का । मातापिताओं में कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें ये सर्वदा पाइ  
 जाती हैं । जैसे सामान्य तिर्यक आदि । कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें अस्पतर और अचस्थित  
 स्थितियां तो सर्वदा पाई जाती हैं पर मुञ्जगार स्थिति सान्तर है कमी होती और कमी नहीं भी  
 होती । यदि होती है तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आचलिके असंख्यातमें  
 भागप्रमाण काल तक होती है । जैसे सामान्य नारकी आदि । किन्तु मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी  
 वे दो मार्गोपाय ऐसी हैं जिनमें मुञ्जगार स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि ये दोनों  
 मार्गोपाय ही संख्यातसंख्यावाली हैं । कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें तीनों स्थितियां सान्तर हैं  
 क्योंकि वे मार्गोपाय स्वयं सान्तर हैं अतः इनमें मुञ्जगारका अल्प काल एक समय और उत्कृष्ट  
 काल आचलिके असंख्यातमें भागप्रमाण है । तथा अस्पतर और अचस्थितका अल्प काल एक  
 समय और उत्कृष्ट काल पस्यके असंख्यातमें भागप्रमाण है । यहाँ यह शंका होती है कि ऐसी  
 मार्गोपायोंका उत्कृष्ट काल पस्यके असंख्यातमें भागप्रमाण है और अंगविषय अनुपातद्वारेण तीनों  
 को मज्जनीय वतसाया है अतः इनमें अस्पतर और अचस्थित का उत्कृष्ट काल एक प्रमाण नहीं  
 जानना चाहिये । सो इसका यह समाधान है कि जब एक मार्गोपाय जीव निरन्तर पस्यके  
 असंख्यातमें भागप्रमाण काल तक होते रहते हैं तब इनमें कदाचित् अस्पतर और अचस्थित  
 स्थितियां नाना जीवोंकी अपेक्षा एक काल तक सदैव पाई जा सकती हैं अतः इनका उत्कृष्ट काल  
 एक प्रमाण बन जाता है । कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें निरन्तर अस्पतर स्थिति ही पाई जाती है  
 अतः इनमें अस्पतर स्थितिका काल सर्वदा है । यथा—मानव कल्पभारिके रूप आदि । कुछ ऐसी  
 मार्गोपाय हैं जिनका अल्प काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु होते हैं । तथा जिनमें एक  
 अस्पतर स्थिति ही पाई जाती है, अतः इनमें अस्पतर स्थितिका अल्प और उत्कृष्ट काल एक  
 प्रमाण जानना । यथा—आहार-द्रव्ययोग आदि । किन्तु आहारभूमिभ्रष्टायणाका अल्प और  
 उत्कृष्ट काल अन्तमु होते हैं अतः इसमें अस्पतर स्थितिका अल्प और उत्कृष्ट काल एक प्रमाण  
 ही प्राप्त होता है । तथा कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनका अल्प काल अन्तमु होते और उत्कृष्ट काल  
 पस्यके असंख्यातमें भागप्रमाण है और इनमें एक अस्पतर स्थिति ही सम्भव है, अतः इनमें  
 अस्पतर स्थितिका अल्प और उत्कृष्ट काल एक प्रमाण है । किन्तु इन मार्गोपायोंमें साधारण  
 सम्बन्धित मार्गोपाय ऐसी है जिसका अल्प काल एक समय ही है अतः इसमें अस्पतर स्थितिका  
 अल्प काल एक समय जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालानुगम समझ लुभा ।

§ २१ = अन्तराणुगमेण अपेक्षा निर्देश वा प्रकाशना है—आपनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
 इनमें से ओष की अपेक्षा मुञ्जगार, अस्पतर और अचस्थित स्थिति निर्माच्छाल जीवों का  
 अन्तरकाल चिन्ता है ? इनका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यक, समी परन्द्रिय,  
 दुविहो-अचिक, पादर दुविहो-अचिक पादर दुविहो-अचिक अपपत्त, सुरम दुविहो-अचिक सुरम  
 दुविहो-अचिक पपत्त, सूक्ष्म दुविहो-अचिक अपपत्त, वतकाचिक, पादर जनकाचिक, पादर वत-



§ २२१ आणदादि जाव सन्नद्वसिद्धि ति अप्यद्० णस्य अतरं । एवमा  
भिभि०-सुद० ओदि०--मणपल०-संजद --सामाह्य-श्रेदो०--परिहार० संज्ञदासंजद०  
ओरिर्वस०-मुक्ते०-सम्मादि०-स्वइय० धवय०दिदि ति ।

§ २२२ आहार० आहारमिस्त० अप्यद्० अतरं फ० ? जह० एगसमभो,  
उक० वासपुधर्त्त । एवगफसाय ब्रह्मत्वावसजद ति । अरगद० अप्यद्० जह० एग  
समभो, उक० इम्मासा । एवं सुहुतांपरायसंजद ति । उवसम अप्यद्० के० ? खह०  
एगसमभो, उक० चवपीस अहोरत्ताणि । सासण०-सम्माभि० अप्यद्० ब्रह० एग  
समभो, उक० पस्सिदो० मसुत्वे०भागो ।

एवमतराशुभो समत्तो ।

§ २२१ आनठ कस्यसे सकर सर्वांसि।इतकक इषामें अस्पतर स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार आग्निनिवायिक्रमानी बुद्धिमान्नी अर्धभिक्षानो, मन्त्रपर्यय  
कानी, संयत, सामायिकसंयत क्षेत्रापस्वापनासंयत परिहारविद्युत्सिंसंयत संयतासंयत अर्धभिक्षानी,  
इन्द्रोत्तरवापलो, सम्बरदृष्टि कायिकसम्बरदृष्टि और वेदकसम्बरदृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२२ आहारकल्पयोगी और आहारकर्मिभूमिकल्पयोगी जीवोंमें अस्पतर स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? अपन्य अन्तरकाल एक समय और इन्द्र अन्तरकाल १५ महीना  
है। इसी प्रकार अकपायी और पयाम्प्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवही अस्पतर  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अपन्य अन्तरकाल एक समय और इन्द्र अन्तरकाल १५ महीना  
है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये। इनसमसम्बरदृष्टि अस्पतर  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? अपन्य अन्तरकाल एक समय और इन्द्र  
अन्तरकाल चौबीस दिनका है। सासाइनसम्बरदृष्टि और सम्बरमिप्यादृष्टि अस्पतर स्थिति  
विभक्तिवाले जीवोंका अपन्य अन्तरकाल एक समय और इन्द्र अन्तरकाल पन्नापमक अर्धस्वातर्त्त  
भाग प्रमास्य है ।

विशुपार्थ—तीनों स्थितिवाले नाना जीव सर्वथा पाव जात हैं अतः आपस इनका अन्तर  
काल नहीं बनता। मार्गणामोंमें कुछ जमा मागणार्थ हैं जिनमें तीनों स्थितिवाले जीव सर्वथा पाव  
जाते हैं अत इनके कलनका आपके समाप्त करा। बुद्ध पर्या मागणार्थ हैं जिनमें मुहगारका  
अपन्य अन्तर एक समय और इन्द्र अन्तर अन्तमुहुत है तथा अन्तर अन्तर अवस्थित  
स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। यथा सामान्य मारुती आदि। इसका कारण यह है कि इनमें कपल  
मुहगार स्थिति ही मारुत है फिर भी माना जीवोंकी अपवा इमका अन्तरकाल अन्तमुहुतम  
अधिक नहीं प्राप्त होता। भाग मनुष्य अपयात आदि जिनकी मार्गणामोंमें मुहगार आदि  
स्थितियोंके अन्तरकालका बयन किया है इनमें जिस मागणामों जितना अन्तर काल है उन्में  
सम्पन्न स्थितियोंका जना अन्तरकाल जानना चाहिये। ब्राह्मणके तिय कल्पपयात मनुष्योंका  
अपन्य अन्तरकाल एक समय और इन्द्र अन्तरकाल पन्नेक अर्धस्वातर्त्त भागप्रमाण है अतः  
इसमें मुहगार आदि तीनों स्थितियोंका जन्म अन्तरकाल एक समय और इन्द्र अन्तरकाल  
पन्नेक अर्धस्वातर्त्त भागप्रमाण करा। इसी प्रकार अन्तरमागणामोंमें भी जानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरातुगम समग्र हुआ ।

तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादग्वाउ-  
वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवण्णफदिपत्तेय-वादरव-  
ण्णफदिपत्तेयअपज्ज०-वण्णफदि-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-  
कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-मदि-सुदअण्णण०-असंजद०-अचस्सु०-तिण्णिले०-  
भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि० चि ।

§ २१६. आदेसेण णेरइएसु भुज० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
अंतोसु० । अप्प०-अवट्ठि० एत्थि अंतरं । एवं सत्तसु पुढमीमु सव्वपचिदियतिरिक्ख-  
मणुसतिय०-डेव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वणिगलिंठिय-सव्वपचिदिय०-  
वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज० - वादरवाउपज्ज० - वादरवण्णफदि-  
पत्तेयपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउविय०-इत्थि०-पुरिस०-विहग०-  
चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि चि ।

§ २२०. मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अंतरं के० ? जह० एग-  
समओ, उक्क० पलिदो असंखे०भागो । एवं वेउवियमिस्स० । णवरि उक्क० वारस  
मुहुत्ता ।

कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-  
कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पति-  
कायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पति, निरगोद, काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों  
कपायकाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य,  
अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असञ्जी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये ।

§ २१६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल  
कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है । तथा अल्पतर और अवस्थित  
स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे  
लेकर सद्दत्तार स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त,  
वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति-  
कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी व्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी,  
ब्रोवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और सञ्जी जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ २२० मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके  
असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी  
विशेषता है कि इनके उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है ।

मुक्त०-सम्मादिही-स्वयं०-वेद्य०-उवसम० सासण०-सम्माभिष्ठादिदि प्ति ।  
 एवमप्यावहुगाणुगमो समचो ।  
 एवं मुज्जगारविहारी समचा ।

—०—

§ २२६ पदविनये तस्य इमाणि तिष्णि अभिभोगद्वाराणि—समुक्तिपद्या  
 सामिच अप्यावहुअं चेदि । समुक्तिचणं दुचिई—अहण्य उक्कस्सय चेदि । तस्य  
 उक्कस्से पयदं । दुबिही णिहोसो—ओपेण आदेसेण य । तस्य ओपेण मोह० अस्ति  
 उक्कस्सिया बह्वी उक्क हाणी उक्कस्समवद्दणं च । एवं सचसु पुटवीसु सच्च  
 तिरिक्कस्स-सम्भमजुस देष भवणादि भाव सहस्सार०-सम्भएइदिय-सम्भविगम्भिय-सम्भ  
 पंचिय-पंचकाय-सम्भतस०-पंचमण०-पंचवधि०-कायजोगि-ओरासिय०-ओरासिय-  
 मिस्स-वेसभिय-वेठ०-मिस्स-कम्मइप-तिष्णिवेद-चचारिकसाय-मदि-मुदअण्णाण०-  
 विहंग०-असंमद०-वक्खु०-अवक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिष्ठादि०-  
 सण्णि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि प्ति ।

§ २२७ आणदादि जाव सम्भइसिद्धि प्ति अत्यि उक्कस्सिया हाणि । एव  
 माहार-[आहार]मिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-मुद०-ओहि०-मणपज्जव०

अवधिबह्वी गुरुलेखयापाने सम्पट्टि, कायिकसम्पट्टि वेदकसम्पट्टि, उपशमसम्पट्टि  
 सासादनसम्पट्टि और सम्भमिष्ठादि बीबोके जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन  
 नामोंवालोंमें एक अस्पतर स्थिति पाई जाती है इसलिये इनमें अस्पष्टत्व नहीं पाया जाता ।

इस प्रकार अस्पष्टत्वानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार मुज्जगार विनयित समाप्त हुई ।

—०—

§ २२६ अब पदविनयेका कवन अवसर प्राप्त है । इसके विषयमें ब तीन अनुयोगकर  
 हाव हैं—समुत्कीर्तना स्वामित्व और अस्पष्टत्व । समुत्कीर्तना दो प्रकार की है—अपत्य और  
 उक्कस्स । इनमेंसे उक्कस्स प्रकार है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और  
 भावेनिर्देश । इनमेंसे आपकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिभिन्निकी उक्कस्स इति उक्कस्स हाति  
 और उक्कस्स अवस्त्तान है । इसी प्रकार सारों पृथिवियोंके मारकी समी तिर्यैव समी मनुष्य  
 सामान्य देष भवतवासियोंसे लेकर उद्धार स्वर्ग तकके देष समी एकेन्द्रिय समी विष्णोन्द्रिय  
 समी पंचेन्द्रिय समी पाँचों स्वावरुण्य समी बस, पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी काययोगी  
 औरारिककाययोगी, औरारिकमिन्द्रकाययोगी वैश्वियिककाययोगी वैश्वियिकमिन्द्रकाययोगी  
 कामयुक्कस्सयोगी तीनों वेदवाले कायाणि चारों ज्ञायवाले मत्तज्जानी, भुताजानी विमंगज्जानी  
 असंयत वक्खुइतवाले अवक्खुइतवाले कम्प्यादि पाँच ज्ञायवाले मध्य अमध्य मिष्ठादि  
 संघी असंघी आहारक और अनाहारक बीबोके जानना चाहिये ।

§ २२७ आन्त कल्पसे लेकर सर्वाभिच्छिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय स्थितिभिन्निकी  
 उक्कस्स हाति है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिन्द्रकाययोगी अपगतवेदी अकपायी  
 आभिनिचोपज्जानी मुत्तज्जानी अवधिज्जानी मन्तपर्ययज्जानी संयत सामायिकसंयत

§ २२३, भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइयो भायो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ २२४ अप्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा भुजं विहत्तिया । अपट्ठिं असंखेगुणा । अप्पटं संखेगुणा । एवं सत्तसु पुढशीसु सव्वतिरिक्खं मणुसं—मणुसअपज्जं—देव-भवणादि जाव सहस्सारं--सव्वएइंदिय--सव्वविगलिटिय--सव्वपंचिं--पंचकाय--सव्वतस-पंचमणं-पंचवचिं-कायजोगिं-ओरालियं-ओरालियमिस्सं-वेउव्वियं-वेउंमिस्सं-कम्मइयं-तिण्णिवेदं-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअएणाणं-विहंगं-असंजदं-चक्खुं-अचक्खुं--पंचलें-भवसिं-अभवसिं-मिच्छादिं-सण्णिं-असण्णिं-आहारि-अणाहारि ति ।

§ २२५ मणुसपज्जं-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा भुजं । अवट्ठिं संखेगुणा । अप्पटं संखेगुणा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धिं ति अप्पटं णत्थि अप्पावहुगं । एममाहारं-आहारमिस्सं-अवगदं--अकसां--आभिणिं--सुद--ओहिं-मणपज्जं-संजदं-समाइय-खेदो-परिहारं-सुहुमसांपरायं-जहाक्खादं-संजदामंजदं-ओहिदंसं-

§ २२३ भावानुगम की अपेक्षा सवत्र ओदयिक भाव है ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२४ अल्पवहुत्वानुगम की अपेक्षा निर्देश दा प्रकार का है—ओपनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमें से ओघ की अपेक्षा भुजगारस्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतर स्थितिविभक्ति वाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सातों प्रथिवियों के नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्ध-पर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियों से लेकर सहस्त्रार स्वर्ग तक के देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, पाचों स्थावर काय, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचन योगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मृत्युज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पाच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सङ्गी, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाएँ अनन्त और असख्यात सख्यावाली हैं अतः इनमें उक्त क्रम बन जाता है ।

§ २२५ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोगे भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । तात्पर्य यह है कि ये मार्गणाएँ सख्यात सख्यावाली हैं । सलिये इनमें उक्त क्रम ही घटित होता है । आनन कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले देवोंका अल्पवहुत्व नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी अकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापराधिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत,

सुष्ठु०-सम्मादिही-स्वइय०-वेदय०-ववसम०-सासण०-सम्माभिच्छादिहि चि ।

एवमप्यापहुगागुगमो समत्तो ।

एवं सुजगारविहारी समत्ता ।



§ २२६ पदणिक्लेने तस्य इमाणि तिष्णि अणिभोगहाराणि—समुच्चिष्टा सामिष अप्यापहुअं चेदि । समुच्चिष्टं दुविहं—अहण्य उक्कस्सय चेदि । तस्य उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तस्य ओघेण मोह० अतिय उक्कस्सिया वड्डी उक्क हाणी उक्कस्सयवहारणं च । एवं सचसु पुडवीसु सव्व तिरिक्ख-सव्वमणुस-देव भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वपइदिय-सव्वभिगसिदिय-सव्व-पंविदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-कायभोगि-ओरासिय०-ओरासिय-मिस्स-वेउच्चिय-वेठ०मिस्स-कम्मइय-तिण्णिवेद-वचारिकसाय-मदि-सुद्धअण्णाण०-पिहंग०-असंजद०-वक्खु०-अचक्खु०-पंचत्ते०-अवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि चि ।

§ २२७ आणदादि जाव सव्वहसिद्धि चि अतिय उक्कस्सिया हाणि । एव माहार-[माहार]मिस्स०-अपगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद्ध०-ओहि०-मणपक्खव०

अवविहारेणी सुक्कलेखावासे सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि उपसमसव्वग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्भम्मिध्याग्दृष्टि बीषोंके जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मानौषाओंमें एक अल्पतर विभक्ति पाई जाती है इसलिये इनमें अवस्यक्त्व नहीं पाया जाता ।

इस प्रकार अवस्यक्त्वानुगम समस्त हुआ ।

इस प्रकार सुजगार विभक्ति ममाप्त हुई ।



§ २२६ अब पदविच्छेपन्न कथन अबसर प्राप्त है । इसके विषयमें वे तीन अनुयोगद्वारा हाते हैं—समुत्कीर्तना स्वामित्व और अवस्यक्त्व । समुत्कीर्तना दो प्रकार की है—अपस्य और वृत्त्य । उनमेंसे वृत्त्यन्न प्रकार्य है । वसकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकार्य है—ओपनिर्देश और भावेसनिर्देश । उनमेंसे आपकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिचिम्बितकी उत्कृष्ट छुटि वृत्त्य हानि और वृत्त्य अवस्वान है । इसी प्रकार सातों वृत्तिचिम्बितकी समी तिर्यक् समी मनुष्य सामान्य देव भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार स्वर्ग तकके देव समी एकेन्द्रिय समी विकसेन्द्रिय समी पंचेन्द्रिय समी पाँचों स्थावरकाय समी प्रस, पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी काययोगी औदारिककाययोगी, औदारिकमिन्द्रिययोगी वैदिकिककाययोगी वैदिकिकमिन्द्रिययोगी अन्नकाययोगी तीनों देववासे आधादि चारों अणववासे मत्त्वजानी, भूताजानी बिसंगजानी अक्षय, अक्षय अक्षय और अनाहारक बीषोंके जानना चाहिये ।

§ २२७ आन्त कथसे लेकर सर्वाधिकार तकके देवोंमें मोहनीय स्थितिचिम्बितकी उत्कृष्ट हानि है । इसी प्रकार आहारकअययोगी आहारकमिन्द्रिययोगी अयगतवेदी, अक्षययी आभिनिबोधकजानी, भूताजानी अवविहारी भन्तपर्ययजानी संवत् सामायिकसंवत्



संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-मुहुम०-जहाक्खाट०-संजटासंजद-ओहिदंस०-  
सुककले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मायि० ।

एवमुक्कस्मसमुक्किक्त्तणाणुगमो समत्तो ।

१२२८ जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण मोह० अत्थि जहण्णवड्ढी जहण्णहाणी जहण्णमवट्ठाणं च । एवं सव्वणिरय-  
सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव-भचनादि जाव सहस्मार०-सव्वएइदिय-सव्वविगलिटिय-  
सव्वपंचिदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगी-ओरालिय०-ओरालिय-  
मिस्स-वेउच्चिय-वेउ०मिस्स-रुम्मइय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकमाय-मदि-मुट्ठअण्णाण-विहंग०-  
असंजद०-चमवु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि-अमण्णि-  
आहारि०-अणाहारि ति ।

१२२९ आणदादि जाय सव्वट्ठसिद्धि ति अत्थि जह० हाणी । एवमाहार०-  
आहारमिस्स-अवगट०-अकसा०-आभिणि० सुट०-ओहि०-मणपज्ज०-मजद०-सामाइय-  
छेदो०-परिहार०-मुहुमसाप०-जहाक्खाट०-संजटासंजद०-ओहिदंस०-सुक०-सम्मा-  
दिद्वी-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मायि० ।

छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसांपरायिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत,  
अवधिदर्शनी, शुक्ललेखावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

१२२८ अथ जघन्य समुत्कीर्तनानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार  
का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमें से ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी  
जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यंच,  
सभी मनुष्य, सामान्य देव, भयनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तरुके देव, सभी एकेन्द्रिय  
सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, सभी पाचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों  
वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी,  
वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मल्यज्ञानी,  
श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी असयत चक्षुदर्शनवाले अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाच लेखावाले, भव्य,  
अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सञ्ज्ञी, असञ्ज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

१२२९ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय स्थितिविभक्तिकी जघन्य  
हानि है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी,  
आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन.पयंयज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदो-  
पस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसांपरायिकसयत यथाख्यातसयत, सयतासयत, अवधि-  
दर्शनी, शुक्ललेखावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन-  
सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जहाँ स्थितिकी वृद्धि और हानिके अनेक विकल्प सम्भव हैं वहाँ जब वन्ध या  
सक्रिय द्वारा सबसे अधिक बढाकर स्थिति प्राप्त होती है तब उत्कृष्ट वृद्धि कहलाती है । तथा

एवं समुक्तिचणाणुगमो समसो ।

§ २३० सामिचणाणुगमो दुषिहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्सए पयदं । दुषिहो णिहोसो—ओपेण आदसेण य । ओपेण मोह० उक्कस्सितया षट्ठी कस्स ? अण्णदरस्स ओ चटुहाणियनवमज्जस्स उवरि अंतोकोडाकादिदिदि बवंतो अण्णदो दिदिबंभद्धाए पुण्णाए भण उक्कस्सदिदिसंकिसेस गदेण उक्कस्सदिदी पबद्धा वस्स उक्कस्सितया षट्ठी । तस्सय स काल उक्कस्समपहाणं । उक्कस्सितया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सदिदिसंतकम्मिओ तेष उक्कस्सदिदिदुंउए इद तस्स उक्क० हाणी । एवं सत्तमु पुड्डीमु तिरिक्क०—पंचिदियतिरिक्कत्त-पंचि०तिरि०पज्ज० पंचितिरि०जोगिणी-मणुसत्तिय-दव-भयणादि ज्ञाव सहस्सार०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज० तस-तसपज्ज०-पंचमण० पंचवधि० कायजोगि०—ओरात्तिय० पंचमिय०—तिण्णिबद्

स्वितिकाण्डकपाठ आधिके ह्यपि च मन्ते अधिक स्थित पदाई जाती है तब उच्यते हानि करताती है । तथा उच्यते वृद्धिं वाच आ अस्मान होता है उसे उच्यते अवस्थान कर्त है । ओपमे मोहनीय कर्मकी स्थितिमें य तीनों पद सम्मथ हैं अतः ओपमे मोहनीय कर्मकी स्थितिकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होता है यह कहा है । इसी प्रकार जिस जिस मार्गणामें अपने अपने योग्य हानि वृद्धि और अवस्थान सम्मथ हैं वम इस मार्गणामें वमके अनुसर उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान नामना चाहिये । किन्तु कुछ ऐसी म गौराए हैं जिनमें हानि ही होती है । जैसे आनन आधिक । फिर भी वहाँ स्थितिकी हानि एक समय प्रमाण मी होती है और अधिक मी होती है । अतः वहाँ उत्कृष्टपदकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि बतलाई है उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दो पद नहीं बतलाय । उपम्य वृद्धि आदिय मी उसा प्रकर कवन करना चाहिये । तत्पय यह है कि वहाँ उत्कृष्ट वृद्धि आदि सम्मथ हैं वहाँ उपम्य वृद्धि आदि मी सम्मथ हैं । किन्तु वहाँ उत्कृष्टकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि है वहाँ उपम्यकी अपेक्षा केवल उपम्य हानि है । कारण स्पष्ट है ।

इस प्रकार उपम्य समुक्तीतनाणुगम समाप्त हुआ ।

§ २३१ स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—उपम्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आपभिरेश और आदेशनिर्देश । ओपकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिबिभक्तिकी उत्कृष्ट वृद्धि किमक होती है ? जो अनुस्थानिक पबमण्यके ऊपर आस्ताकोडाकोडी स्थितिसे बापदर स्थित है और स्थितिदणके काष्ठक पूष होतपर उत्कृष्ट स्थितिसे वाच्य संकलशसे जिसम उत्कृष्ट स्थिति बापी है उसे किसी एक जीवक उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा वमके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान जाता है । उत्कृष्ट हानि किमक होती है ? आ काइ एक जीव मोह कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिसे सत्ताजाता है वह जब उत्कृष्ट स्थितिअवस्था पात करता है तप उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार मार्तो पृथिवियोंके नारकी सामान्य तिर्यच, पंचत्रियुय तिर्यच पंचत्रेयुय तिर्यच पयात्त पंचत्रियुय तिर्यच धानिमनी, सामान्य मनुष्य पयात्त मनुष्य और मनुष्यनी, मामान्य देव अतनवासियोंसे मर मरकार स्वग तदके देव पंचत्रियुय, पंचत्रेयुय पयात्त त्रस, प्रस पयात्त पांचों मनावागी पांचों वपनवागी वपयागा, ओदारिकवपवागी, बैक्रियिकवपवागी, तीनों बरपाते आधादि पांचों वपयवान, मत्यजानी

चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चम्बु०-अचकरु०-पंचले०-भवसि०-  
अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि ति ।

§ २३१. पंचि०तिरि०अपज्ज० उक्क० वड्ढी कस्स ? जेण तप्पायोग-  
जहण्णट्ठिदिं वंधमाणेण उक्कस्सिया ट्ठिटी पवद्धा तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । तस्सेव से  
काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी ढस्स ? अण्णदरस्स जो तिरिक्खो मणुस्सो  
वा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ ट्ठिदिघाट करेमाणो पंचिदियतिरिक्खवअपज्जत्ताएसु उव-  
वण्णो तेण उक्कस्सट्ठिदिरखंडगे हटे तस्स उक्कस्सिया हाणी । एव मणुसअपज्ज०-  
वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगळिंदिय-पंचिदियअपज्ज०-पंच-  
कायाणं वादरअपज्ज०-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-[तेउ०-] वादरतेउ०-वादरतेउपज्ज-[वाउ०]  
वादरवाउ०-वादरवाउपज्ज०-तसअपज्जत्ते ति ।

§ २३२. आणदादि जाव उवरिमगेअज्जो ति उक्कस्सिया हाणी कस्स ?  
अण्णदरो जो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तेण पढमसम्मत्त पडिवज्जमाणेण पढमट्ठिदि-  
खंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति उक्क०  
हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अणंताणुबंधिउक्कं विसंजोएमाणो तेण पढमट्ठिदिरखंडए  
पादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, असयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाच लेश्यावाले, भव्य  
अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सद्गी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३१ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य  
स्थितिको बाधनेवाले जिस जीवने उत्कृष्ट स्थितिका वन्द्य किया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है ।  
तथा उसीके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय  
कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो तिर्यंच या मनुष्य स्थितिघातको करता हुआ पचेन्द्रिय  
तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहाँ उसके उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करने पर उत्कृष्ट  
हानि होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, पाचों  
स्थावरकाय वादर अपर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्तक, पाँचों  
स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्तक, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्तक,  
वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तक जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ २३२ आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ?  
जो मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय जब  
प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । अनुदिशसे लेकर  
सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना  
करनेवाला जो कोई एक जीव जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि  
होती है ।

§ २३३ एइदिय० उक्कस्सपइडि उक्कस्सअवढाणाणं पंचिदियतिरिक्ख-  
अपञ्चचर्मणो । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो पंचिदिओ उक्कस्सट्ठिदिपाद  
मकाऊण एइ दिपसु उववण्णो तेण पढमट्ठिदिसुडए पादिदे तस्स उक्कस्सिपा हाणी ।  
एवं बादरेइदिय-बादरेइदियपज्ज०-पुइधि० बादरपुइधि-बादरपुइधिपज्ज०-माठ०-बादर  
आउ०-बादरआउपज्ज०-अण्णफदि बादरअण्णफदि बादरअण्णफदिपरोयसरीरपञ्च  
असण्णि पि ।

§ २३४ आरास्सियमिस्स० उक्क० वइडि अत्रहा० पंचि०तिरि०अपञ्चचर्मणो ।  
उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो देवो गेरइओ वा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ  
ट्ठिदिपादमकाऊण ओरास्सियमिस्सओगेसु उववण्णो तेण उक्कस्सट्ठिदिसुडए पादिदे  
तस्स उक्क० हाणी ।

§ २३५ वेचखियमिस्स० उक्क० वइडि अत्रहा० पंचि०तिरि०अपञ्चच  
र्मणो । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदि  
संतकम्मिओ ट्ठिदिपादमकाऊण पंचखियमिस्स० उववण्णो तेण उक्कस्सए ट्ठिदिसुडए  
पादिदे तस्स उक्क० हाणी । आहार०-आहारमिस्स० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स  
अइडिदि गळेमाणसंतस्स उक्क० हाणी । एवमकसाय-अहाकसाव०-सासण०दिडि पि।

§ २३३ एकेन्द्रियोमिं उत्तुइ इदि ओर उत्तुइ अवस्वान्ते स्वामित्वा क्वन पंचेन्द्रिय  
तियव अपर्याप्तके समान जानना चाहिये । एकेन्द्रियोमिं उत्तुइ हानि किसके होती है ? जो कोइ  
एक पंचेन्द्रिय तिर्यव उत्तुइ स्थितिका पाठ न करके एकेन्द्रियोमिं उत्पन्न होकर बहो प्रथम स्थिति  
कल्पकका पाठ करता है उसके उत्तुइ हानि होती है । इसी प्रकार वावर एकेन्द्रिय, वावर  
एकेन्द्रिय पर्याप्तक, पृथिवीकायिक, वावर पृथिवीकायिक, वावर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक,  
वावर जलकायिक, वावर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्थितिकायिक, वावर वनस्थितिकायिक, वावर  
वनस्थितिकायिक प्रत्येकस्तर पर्याप्त ओर असंखी बीबोके जानना चाहिये ।

§ २३४ ओदारिकमिन्नकाययोगियोमिं उत्तुइ इदि ओर उत्तुइ अवस्वान्ते स्वामित्वा  
क्वन पंचेन्द्रिय तिर्यव अपर्याप्तके समान जानना चाहिये । ओदारिकमिन्नकाययोगियोमिं उत्तुइ  
हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्तुइ स्थितिकी सत्तावाज्ञा जो कोई एक देव या नारकी  
स्थितिपाठ न करके ओदारिकमिन्नकाययोगियोमिं उत्पन्न होकर बहो उत्तुइ स्थितिकाण्डका  
पाठ करता है उसके उत्तुइ हानि होती है ।

§ २३५ वैश्वियमिन्नकाययोगियोमिं उत्तुइ इदि ओर उत्तुइ अवस्वान्ते स्वामित्वा क्वन  
पंचेन्द्रिय तिर्यव अपर्याप्तके समान जानना चाहिये । वैश्वियमिन्नकाययोगियोमिं उत्तुइ हानि  
किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्तुइ स्थितिकी सत्तावाज्ञा जो कोई एक तिर्यव या मणुप्य  
स्थितिपाठ न करके वैश्वियमिन्नकाययोगियोमिं उत्पन्न होकर बहो उत्तुइ स्थितिकाण्डका  
पाठ करता है उसके उत्तुइ हानि होती है । आहारकअययोगी ओर आहारकमिन्नकाय-  
योगियोमिं उत्तुइ हानि किसके होती है ? वा अज्ञा स्थितिका निजरा करता हुमा विद्यमान है  
उसके उत्तुइ हानि होती है । इसी प्रकार अकण्ठी पदाकपाठसंबध ओर सासणसम्पद्यट्टि  
बीबोके जानना चाहिये ।

§ २३६ कम्मइय० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० जेण पंचिदियसण्णिणा विग्गहगदीए वट्टमाणेण तप्पायोग्गट्टिदिसंतकम्मादो तप्पायोग्गउक्कस्सट्टिदिवंयो पवद्ध। तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरा जो चट्टुगट्टिओ उक्क० ट्टिदिसंतकम्मिओ ट्टिदिकंदयघादमादणिय विदियविग्गहे ट्टिदिसंतकम्मस्स ट्टिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवट्टाण कस्स ? अण्ण० जो एइंदिओ तप्पा-योग्गट्टिदिसंतकम्मादो वड्ढिदूण अवट्टिओ तस्स उक्क० अवट्टाणं । एवमणाहारीणं ।

§ २३७ अवगद० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० इत्थिणवुंम० वेदखवगस्स पदमे ट्टिदिखंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । माद - मुद० - ओहि० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो उक्कस्सट्टिदिसतक रमयो तेण उक्कस्सए ट्टिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । एवं ओहिदस० - मुक्क० - सम्मादि० - वेदय० दिट्ठि ति । मणपज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण सागरोवमपुपत्तमेत्तमुक्कस्सट्टिदिखंडयं पादिदं तस्स उक्क० हाणी । एवं संजद० - सामाइय-छेदो० - खइय० दिट्ठि-परिहार० - संजदासंजद० । सुहुमसांप० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० खवगस्स चरिमट्टिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

§ २३८. उवसम० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० अणंताणु० विमजोयणापदम-

§ २३६ कार्मणकाययोगियामे उक्कट्ट वृद्ध किसके हाती है ? विग्रहगतिमें नियमान जो पचेन्द्रिय सही जीव तद्योग्य स्थितिसत्त्ववाले कर्मके साथ तद्योग्य उक्कट्ट स्थितिका बन्ध करता है उस कार्मणकाययोगीके उक्कट्ट वृद्धि होती है । उक्कट्ट हानि किसके होती है ? जिसके मोहनीयकर्मका उक्कट्ट स्थितिसत्त्व है ऐसा चारों गतिका जीव स्थितिकाण्डक्यातका आरम्भ करके दूसरे विग्रह में जब स्थितिसत्त्वाले कर्मके स्थितिरण्डका घात करता है तब उस कार्मण-काययोगी जीवके उक्कट्ट हानि हाता है । उक्कट्ट अस्थान किसके होता है ? जो एचेन्द्रिय तद्योग्य स्थितिसत्त्व से बढ़ाकर अवस्थित है उसके उक्कट्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार अनाहारक जावोंके जानना चाहिये ।

§ २३७ अपगतवेदियोंमें उक्कट्ट हानि किसके होती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका क्षपक जो कोई एक जीव प्रथम स्थितिरण्डका घात करता है उसके उक्कट्ट हानि होती है । आभिनि-वोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानी जावोंमें उक्कट्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उक्कट्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उक्कट्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उक्कट्ट हानि होती है । इसी प्रकार अवधिदशानी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मन पययज्ञानियामें उक्कट्ट हानि किसके होती है ? जिसने सागरपृथक्त्व प्रमाण उक्कट्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उक्कट्ट हानि होती है । इसी प्रकार सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, परिहारविशुद्धिसयत और सयतासयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसापरायिक संयतामें उक्कट्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक क्षपक अन्तिम स्यातिकाण्डकका घात करता है उसके उक्कट्ट हानि होती है ।

§ २३८ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उक्कट्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक जीव अनन्ताणु-

द्विदिस्वद्वय पादिदे वस्त उक्त० हाणी । अथवा कसायउपसामगस्त पदमद्विदिस्वद्वय पदिदे एदं सामिच वचम्न, उवसमसम्मचफालम्नंतरे अणंताणु० बिसंज्ञोयणपक्त्वाण म्मुषगमादो । अथवा एदं पि आणिय वचम्न, उवसमसद्वीण वंसणतियस्त द्विदिघाद संमवाणुषलंमादो । सम्मामि० उक्त० हाणी कस्म ? अण्ण० उक्तस्सद्विदिस्त-कम्ममि उक्तस्सद्विदिस्वद्वय पदिदे वस्त उक्तस्सिया हाणी ।

एपहुक्तस्ससामिचं समचं ।

§ २३६ ब्रह्मणो पयदं । दुविहो णिहोसो—ओषेण आदेसेण य । तत्त्व ओषेण जह० बद्धी कस्स ? अण्ण० ओ समउणउक्तस्सद्विदि वंचमाणो उक्तस्ससंक्रितोस्तं गंतूण उक्तस्सद्विदि पबद्धो वस्त जह० बद्धी । जह० हाणी कस्स ? अण्ण० अप द्विदकस्वपण । एगदरत्य अपट्टाणं । एदं सचसु पुठरीसु सम्भतिरिक्ख-सम्भमणुस देव० भवजादि आब सहस्सार०-सम्भएदिय०-सन्नधिगसिदिय-सम्भपंचिदिय-इकाय पंचमण०-पंचवचि०-कायनोगि-ओराणि०-ओराणिपमिस्स-वठ्ठियय-वउ०मिस्स०-कम्मइय तिण्णिबद्ध०-वचारिकसाय-तिणिगण्णाण-अमजद०-वक्खु०-अचक्खु०-पंचल० भवसि०-अमयसि० मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि० आहारि-अणाहारि णि ।

कर्मकी विसंज्ञानाके समय प्रथम स्थितिकण्डकण पाठ करता है उनके कृत्य ज्ञानि होती है । अथवा कणपकी उपश्रमना करनेवासे उपश्रमसम्बन्धित जीवके प्रथमस्थितिलक्षण पाठ करनेपर कृत्य ज्ञानिके स्वामित्वका कथन करना चाहिये क्योंकि उपश्रमसम्बन्धके कलाक मीतर अनन्तजन्मकी विसंज्ञानाका पक्ष स्वीकर नहीं किया है । अथवा इसका भी ज्ञान कर ही कथन करना चाहिये क्योंकि उपश्रमभूमिमें वर्तनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके स्थितिपाठकी संभावना नहीं पाई जाती है । सम्भमिध्यादृष्टियोंमें परकृत्य ज्ञानि किसके हाथी है ? माहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावासा को कोई एक जीव उत्कृष्ट स्थितिलक्षण पाठ करता है उसके कृत्य ज्ञानि होती है ।

इस प्रकार कृत्य स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ २३६ अप बपन्य स्वामित्वका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारफा है—आचनिर्देश और आचननिर्देश । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा बपन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्तता हुआ उत्कृष्ट संकलनको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका रूप करता है ऐसे किसी एक जीवके बपन्य वृद्धि होती है । बपन्य ज्ञानि किसके हाथी है ? अथवा स्थितिके रूपसे किसी एक जीवके बपन्य ज्ञानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एकमें अपस्थान होता है । इसी प्रकार मातों पृथिवियोंके मारकी समी तिर्यैच समी मयुष्य सामान्य देव, भवनवासियों से लेकर अज्ञान स्वर्ग तकके सब समी एकत्रिय,समी विकसेत्रिय समी पंचत्रिय, वहाँ कथनवासे पाँचों मनोयोगी पाँचों बचनयागी कथयोगी औशरिककथयोगी औशरिकमिभक्त्ययोगी वैश्विककथयोगी वैश्विकमिभक्त्ययोगी, कर्मकथयोगी, तीनों वेदवासे ओषादि चारों कथा-वासे, तीनों अज्ञानी, अज्ञेयत चतुर्वर्गनवासे, अचतुर्वर्गनवासे इत्यादि पाँच लेशवावासे, मध्य अमन्य मिध्यादृष्टि संज्ञी, अज्ञेयी आहारक और अमाहारक जीवोंके ज्ञानता चाहिये ।

§ २४० आणदादि जाव सव्वट्टसिद्धि त्ति जहं हाणी कस्स ? अण्ण० अधट्टिदिकखएण । एवमाहार०-आहारमिस्स-अगगद०-अरुग्गा०-आभिणि०-मुट्ट० ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाट०-संजदा-संजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्माइट्टि-एइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि-च्छादिट्टि त्ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ २४१ अप्पावहुअ दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी । वट्ठी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाहियाणि । एव सत्तमु पुट्टवीमु तिरिक्ख-पचि० तिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव०-भवणादि जाव महस्सार०-पंचि०-पचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेट-चत्तारिक०-तिण्णअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पचत्ते०-भवसि०-अभवसि०-भिच्छादि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ २४२ पंचि० तिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा उक्क० वट्ठी अवट्ठाणं च । हाणी संखेज्जगुणा । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-ओरालि-

§ २४० आनत कल्पसे लेउर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमे जघन्य हानि किसके होती है ? अध.स्थितिके क्षयसे किसी एकके होती है । इसी प्रकार आहारकनाययोगी, आहारकमिश्रकाय-योगी, अपगतवेदी, अकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन.पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूचमसापरायिकसयत, यथाख्यात-सयत, सयतासयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ २४१ अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानिवाले जीव सबसे स्तोत्र हैं । वृद्धि और अवस्थान इन दोनोंवाले जीव समान होते हुए भी उत्कृष्ट हानिवाले जीवोंसे विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैकिकिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सक्की और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४२ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट हानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय,

यमिस्स-वेउम्बियमिस्स-असण्णि चि ।

§ २४३ आगदादि जाव सव्वहठ० णत्थि अप्पाबहुर्म । एवमाहार०-आहार मिस्स० अवगद०-अकसा०-आभिण्णि०-सुद -ओहि०-मणपज०-संजद०-सामाइय छेदो०-परिहार०-सुहुम० ब्रह्मत्वाव०-संजवांसंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिदि चि ।

§ २४४ एइदिपसु सव्वत्थोधा बद्धी अवहाणं च । हाणी अंसखेज्जगुणा । एवं पंचकाय० । कम्मइय० सव्वत्थोवमवहाणं । बद्धी अमंसखेज्जगुणा । हाणी अंसखेज्जगुणा । एवमणाहार० ।

एवमुक्कस्तप्पाबहुर्म समत्तं ।

§ २४५ अइप्पए पपदं । बुबिहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ मोघेण अइणिया बद्धी हाणी अवहाणं च तिण्णि वि तुप्पसाणि । एवं णेत्तम्भं छाव मणाहारए चि । आणदादिस्सु णत्थि अप्पाबहुर्म, एगपदत्तादो ।

एव पदपिक्खेवा समत्तो ।

पंचेन्द्रिय अपर्मात्क, त्रस अपर्मात्क औरारिकमिभक्त्ययोगी वैद्विकमिभक्त्ययोगी और अंसखी जीवोकि जानना चाहिये ।

§ २४३ आन्त कस्ससे सेक्क स्सार्थसिद्धितक्के वेवोकि अस्सबहुत्व त्थी है । इसी प्रकार आहारकक्रययोगी आहारकमिभक्त्ययोगी अपगतवेही अक्रयावी आभिनिवोधिक्रयानी बुद्धजानी, अविज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी संयत सामाधिकसंयत श्लेषापस्थापनासंबत परिहारविस्तृष्टिसंयत सुत्तसांपराधिकसंबत यथाक्यातसंयत संबतासंयत अवधिबर्सेनबाले बुद्धमेरयाबाले सम्मगट्टि, प्रायिकसम्मगट्टि वेत्तसम्मगट्टि, वपक्कमसम्मगट्टि, सासादानसम्मगट्टि और सम्पम्मिप्पाट्टि जीवोकि जानना चाहिये ।

§ २४४ समी एकेन्द्रियोमिं छत्तइ बुद्धि और अवस्थानबाले जीव सबसे बोधे हैं । इनसे छत्तइ हानिबाले जीव अंसक्यातगुणे हैं । इसी प्रकार समी पौणो स्थावरक्रय जीवोकि जानना चाहिये । कम्मैयक्रययोगियोमिं अवस्थानबाले जीव सबसे बोधे हैं । इनसे बुद्धिबाले जीव अंसक्यातगुणे हैं । इनसे हानिबाले जीव संक्यातगुणे हैं । इसी प्रकार अनन्तारक जीवोकि जानना चाहिये ।

इस प्रकार छत्तइ अस्सबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ २४५ अब अवन्य अस्सबहुत्वका प्रकार है । कस्तकी अपेक्षा निर्रेण वो प्रकारका है—ओपनिर्रेण और आरेणनिर्रेण । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा अवन्य बुद्धि, अवन्य हानि और अवस्थान इन तीनोंबाले जीव समान हैं । इसी प्रकार अनन्तारक मार्गैया तक जानना चाहिये । किन्तु आन्तारिकी अस्सबहुत्व त्थी है क्योंकि यहाँ एक हानिपद ही पत्था जाता है ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।



§ २४६. वृद्धि त्ति तत्थ इमाणि तेरस आणियोगद्वाराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पावहुए त्ति । समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी असंखेज्जगुणहाणी अवट्टाणं च अत्थि । एवं मणुसतिय—पंचिदिय—चि०पज्ज०—तस—तसपज्ज०—पंचमण०—पंचवचि०—कायजोगि०—ओरालि०—तिण्णिवेट-चत्तारिकसाय-चक्खु०—अचक्खु०—भवसि०—सण्णि०—आहारए त्ति ।

§ २४७. आदेसेण णेरइएसु मोह० अत्थि तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणं च । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुपअपज्ज-देव-भवणादि जाव सहस्सार०—पचि०अपज्ज०—तसअपज्ज०—ओरालियभिस्स—वेज्जिय०—वेउ०भिस्स०—कम्मइय—तिण्णि-अण्णाण-अमज्जद०—पंचले०—अभव०—मिच्छादि०—असण्णि०—अणाहारए त्ति ।

§ २४८. आणटादि जाव सव्वट्ट० मोह० अत्थि असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी । एवं परिहार०—संजदासंजद०—उवसमसम्माइट्ठि त्ति । एइदिएसु अत्थि असंखेज्जभागवड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणं च । एव पंचकाय० । विगल्लिदिएसु अत्थि दो वड्डी तिण्णि हाणी अवट्टाणं च । आहार०—आहारभिस्स० अत्थि असंखे०—भागहाणी । एवमकमा०—जहाक्खाद०—सासण० । अवगद० अत्थि असंखेज्जभागहाणी [ संखेज्जभागहाणी ] संखे०गुणहाणी । एवं सुहुमसांप०—वेदय०—सम्माभि०द्विणीं ।

§ २४६ अत्र वृद्धि अनुयोगद्वारका प्रकरण है । उसके कथनमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पवहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा तीन वृद्धि, तीन हानि, असंख्यात-गुणहानि और अवस्थान हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचो मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, काययागी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीय कर्मकी तीन वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यञ्च, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सदस्वार कल्पतकके देव, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, तानों अज्ञानी, असंयत, कृष्णाद पाँच लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४८ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय कर्मकी असंख्यात भागहानि और संख्यातभागहानि हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत, संयनासंयत और उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें असंख्यातभागवृद्धि, तीन हानियों और अवस्थान हैं । इसी प्रकार पाँचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये । सभी विकलेन्द्रियोंमें दो वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जावोंमें असंख्यातभागहानि हैं । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यानसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंमें असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि

आमिणि०-सुद० मोहि० अत्यि घत्तारि हाणीमो । एवं मणपञ्ज०-संज्ञ०-सामाहय-  
वेदो०-मोहिदस०-सुकलोस्सि०-सम्मादिही०-स्वइय० ।

एवं समुद्रिकण समता ।

हे । इसी प्रकार सूक्ष्मसाधारणिकसंघत वेदकसम्पादधि और सम्पगिमध्यादधि बीबोंके जानना चाहिये । आमिनिषाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अथपिज्ञानी बीषोंमें चार हानियाँ हैं । इसी प्रकार मनःपयवज्ञानी संघत, सामाधिकसंघत छेदापस्वापनासंघत अथविश्वनवाले, सुकलोत्पा-  
वास्त सन्वदधि और साधिकमन्पादधि बीषोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पश्चिमोत्तरे उत्कृष्ट बुद्धि उत्कृष्ट इन्द्रिय, उत्कृष्ट अथस्थान, अथम्य बुद्धि,

अथम्य हानि और अथम्य अथस्थानका अथम्य किया जाता है । किन्तु वे उत्कृष्ट बुद्धि आदि एक रूप न होकर अनेकस्वर होते हैं । इसका ज्ञान पश्चिमोत्तरे न होकर बुद्धि अनुयागद्वारासे होता है अतः पश्चिमोत्तरे विशेषसे बुद्धि पढ़ते हैं—समुद्रकीतना, स्वामित्य काय अन्तर, नाना बीबोंकी अथेदा मंगविषय मागामाग परिमाण्य क्षेत्र म्यशन काय, अन्तर, भाव और अस्ववहृत्य इसके ये तरह अनुयोगद्वारा हैं । इनमेंसे पहले समुद्रकीतनाय विचार किया गया है । इसकी अथेदा ओपसे असंख्यात मागबुद्धि, संख्यात मागबुद्धि संख्यात गुणबुद्धि ये तीन बुद्धियाँ, असंख्यात मागहानि संख्यात मागहानि, संख्यात गुणहानि य तीन हानियाँ और असंख्यात गुणहानि तथा इनके अथस्थान हात हैं । बिबद्धित स्थितिमें जो बुद्धि या हानि हाती है वह जब तक उसके असंख्यातमें मग प्रमाण्य रहती है तब तक उसे असंख्यात मागबुद्धि या असंख्यात मागहानि कहते हैं । जब वह बुद्धि या हानि बिबद्धित स्थितिसे संख्यातमें मागप्रमाण्य हो जाती है तब उसे संख्यात माग बुद्धि और संख्यात मागहानि पढ़ते हैं । तथा जब वह बुद्धि या हानि बिबद्धित स्थितिसे संख्यातगुणी बुद्धि या हानिरूप हो जाती है तब उसे संख्यात गुणबुद्धि या संख्यात गुणहानि कहते हैं । इसी प्रकार असंख्यात गुणहानिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये । यह असंख्यात म्यज्ञानि केवल अन्विष्टि रूपके ही होती है अथम्य नहीं । अथस्थान सुगम है । यदि बुद्धिरीके वाय अथस्थान हुआ तो वह बुद्धि सम्बन्धी अथस्थान कहलाता है और हानियोंके वाय अथस्थान हुआ तो वह हानि सम्बन्धी अथस्थान कहा जाता है । मनुष्य त्रिज आधि कुल येही मार्गाद्याप हैं जिनमें यह ओपम रूपका अथिकस्य पन्थि हो जाती है अतः उनके कथनको आथके समान कहा । नारिकियोंके केवल असंख्यात गुणहानि सम्भव नहीं क्योंकि वहाँ अन्विष्टि रूपक थीय नहीं पावे जाते । सेय सब सम्भव हैं इसी प्रकार सातों नरकके नारकी आधि सूक्ष्म गिनती हुई और भी मार्गाद्याप हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको सामान्य नारिकियोंके समान कहा । आन्तरकस्यसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोइकोही सागर प्रमाण्य ही होती है और वह वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समससे अन्तर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है जो मद्धतियोंकी अथम्यता गुणकी कृष्णकी विसंबोधनके समक संख्यातमें मागप्रमाण्य पढती है और सेय समसमें असंख्या-  
तमें मागप्रमाण्य ही पढती है । अतः वहाँ जो हानियाँ ही थीं । परितरविष्णुसिद्धिसंघत संघतासंघत और अथमसम्बन्धति बीषोंके इसी प्रकार जानना । परेम्त्रियोंमें अथम्य स्थितिकथ्य पश्यका असंख्यातमें माग कम एक सागारप्रमाण्य और उत्कृष्ट स्थितिकथ्य एक सागर प्रमाण्य होता है अतः वहाँ बुद्धिरूपसे असंख्यात मागबुद्धि ही सम्भव है क्योंकि किसी बीषम यदि अथम्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थितिकथ्य भी कथ किया तो भी अथम्य स्थितिके असंख्यातमें माग की ही बुद्धि हुई । पर इनके असंख्यात गुणहानिके बोध कर सेय तीनों हानियाँ सम्भव हैं क्योंकि जो संघी

§ २४६, सामित्तागुगमेण दुविहो णिदोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णि वड्डी अब्बणाणि कस्स ? मिच्छादिद्विस्स । तिण्णि हाणीओ कस्स ? सम्मादिद्विस्स मिच्छादिद्विस्स वा । असखे०गुणहाणी कस्स ? आणियद्विखवयस्स । एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचयण०-पंचवचि०-[ काय०- ] ओरालिय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति ।

§ २५०, आदेसेण णेरएसु तिण्णि वड्डी अब्बणा० कस्स ? मिच्छादिद्विस्स । तिण्णि हाणी कस्स ? सम्मादिद्वि० मिच्छादिद्विस्स वा । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-वेउव्विय०-असंजद०-पंचलेस्सा ति ।

पंचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियोमें उत्पन्न होता है उसके तीनों हानिया वन जाती हैं । पाचों स्थावरकायिक जीवोंमें भी इसी प्रकार जानना । विकलत्रयोंमें जघन्य स्थितिवन्धसे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण अधिक है अतः यहाँ वृद्धिरूपसे संख्यात भागवृद्धि और असख्यातभागवृद्धि ये दो वृद्धिया ही सम्भव हैं, क्योंकि जब कोई विकलत्रय अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक स्थितिको वाधता है तब उसके असख्यात भागवृद्धि होती है और जब वह अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक स्थितिको वाधता है तब उसके संख्यातभागवृद्धि होती है । तथा इनके तीन हानियोका खुलासा एकेन्द्रियोके समान कर लेना चाहिये । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें मोहनीयकी स्थिति अन्न कोडाकोडी सागर प्रमाण है और यहाँ स्थितिकाण्डकघात न होकर अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक एक निपेकका ही गलन होता है अतः यहा एक असख्यात भागहानि ही सम्भव है । इसी प्रकार अकपायी, यथाख्यातसयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवेदमें असंख्यात भागहानि उपशमक और क्षपक किसी भी जीवके वन जाती है पर संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि क्षपकके ही वनती है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक सयत और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना । आभिनयोधिकज्ञानी आदि जीवोंके चारों हानिया सम्भव हैं यह स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ २४६ स्वामित्त्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धियों और अवस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । तीन हानियों किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं । असख्यात-गुणहानि किसके होती है ? अनिवृत्तिकरणक्षपकके होती है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रस पर्याप्तक, पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, सही और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५० आदेशकी अपेक्षा नारकियों में तीन वृद्धिया और अवस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । तीन हानियों किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती हैं । इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार कल्पतकके देव, वैक्रियिककाययोगी, असयत और कृष्णादि पाँच लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५१ पंचिदियतिरिक्त्वापञ्च० तिष्णि षट्ठी अषडाणाणि तिष्णि हाणीओ कस्त ? अण्णदरस्त । एवं मणुसअपञ्च०-पंचिदियअपञ्च०-तसअपञ्च०-तिष्णि अण्णाप अभन मिच्छादि० असण्णि चि ।

§ २५२ आणदादि जाव चरिमगेबञ्ज० असंखेज्जमागहाणी कस्त ? अण्ण-दरस्त सम्मादिहि० मिच्छादिहिस्स वा । सखे०मागहाणी कस्त ? अर्णवाणुवधि चठक्कं विसंक्षोए तस्त पइयसम्मर्षं पडिइज्जमाणस्त वा । मणुविसादि जान सम्ब-हसिद्धि चि असंखे०मागहाणी कस्त ? अण्णदरस्त । सखे०मागहाणी कस्त ? अर्णवाणुवधिचठक्क विसंक्षोए तस्त ।

§ २५३ पप्रदिपसु असंखेज्जमागनट्टी तिष्णिहाणी अषडाणाणि कस्त ? अण्णद० । एवं पंषण्हं कापाणं । विगर्भिदिपसु दो षट्ठी तिष्णि हाणी मवडाणाणि कस्त ? अण्णद० ।

§ २५४ ओरासियमिस्स० तिष्णिवट्टि-अषडाणाणि कस्त ? मिच्छादिहिस्स । दोहाणिओ कस्त ? मिच्छादिहिस्स । असंखे०मागहाणी कस्त ? सम्मादिहि० मिच्छा-दिहिस्स वा । एवं वेठक्कियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारि चि । आहार० आहार-मिस्स० असंखे०मागहाणी कस्त ? अषट्ठिदिं गान्धयमाणस्त । एवमकसा०-महा-क्त्वाद्-सासण०दिहि चि ।

§ २५१ पंचेन्द्रिय तिर्यैच अपयात्तत्तौं तीन वृद्धिवां, अबस्थान और तीन हानियाँ किसके हाती हैं ? किसी एक बीजके होती हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, अत अपर्याप्त, तीनों अज्ञानी अमण मिच्छादृष्टि और असंखी बीजके जानना चाहिये ।

§ २५२ अनात कम्मसे लेइर ऊपरिम मैनेयक तक्के देवोंमें असंख्यात मागहानि किसके हाती है ? किसी एक सम्पत्तिके वा मिष्पादृष्टिके होती है । संख्यातमागहानि किसके होती है ? अनन्तालुक्कणी वतुक्कणी विसंयोजना करनेवाले बीजके या प्रबभोपन्न सम्पत्त्वको प्राप्त होनेवाले बीजके हाती है । अनुविशसे लेइर सर्वसिद्धितक्के देवोंमें असंख्यातमागहानि किसके होती है ? किसी एकके हाती है । संख्यातमागहानि किसके होती है ? अनन्तालुक्कणी वतुक्कणी विसंयोजना करनेवाले बीजके होती है ।

§ २५३ एकेन्द्रियोंमें असंख्यातमागवृद्धि तीन हानियाँ और अबस्थान किसके होते हैं ? किसी भी बीजके होते हैं । इसी प्रकार पाँचों स्वाधरकविक बीजोंके जानना चाहिये । विच्छ-न्द्रियोंमें दो वृद्धियाँ तीन हानियाँ और अबस्थान किसके होते हैं ? किसी भी बीजके होते हैं ।

§ २५४ औदारिकमिअकाययोगियोंमें तीन वृद्धियाँ और अबस्थान किसके होते हैं ? मिष्पादृष्टिके होत हैं । दो हानियाँ किसके होती हैं ? मिष्पादृष्टिके होती हैं । असंख्यात मागहानि किसके होती है ? सम्पत्तिके वा मिष्पादृष्टिके होती है । इसी प्रकार वैश्विकमिअ काययोगी कार्मणकाययोगी और अनन्तारक बीजोंके जानना चाहिये । अन्तारककाययोगी और अन्तारकमिअकाययोगियोंमें असंख्यात मागहानि किसके हाती है ? अणुस्थिति गलनाके द्वारा निर्गट करनेवाले बीजके होती है । इसी प्रकार अक्याबी, यथास्थानसंयत और सासाधनसम्पत्तिके बीजोंके जानना चाहिये ।

§ २५५, अत्रगद० असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स उवसामयस्स खवयस्स वा । संखे०भागहाणी संखे०गुणहाणी खवगस्स । आभिणि०-सुट०-ओहि० तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णियट्ठिखवयस्स । एवं मणपज्ज०-[ संजद-] समाइय-च्छेदो०-ओहिदस०-सम्माइट्ठि ति ।

§ २५६ परिहार० असखेज्जभागहाणि-संखेज्जभागहाणीओ कस्स ? अण्ण० । एवरि संखेज्जभागहाणी अण्णंताणुबंधिविसंजोएंतस्स दंसणतियक्खव्वंतस्स वा । एवं संजदासंजद० । सुहुमसांपरा० असखेज्जभागहाणी संखेभागहाणी संखेगुणहाणी कस्स ? अण्णदरस्स ।

§ २५७. सुक्कले० तिण्णि हाणीओ कस्स ? सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णियट्ठिखवयस्स । खइय० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखे०भागहाणी कस्स ? उवसामयस्स खवयस्स वा । संखेज्जगुणहाणी कस्स ? खवयस्स । असंखेज्जगुणहाणी कस्स ? ओघ ।

§ २५८ उवसम० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद अण्णंताणुबंधि० विसंजोएंतस्स कसायोवसामगस्स वा ।

§ २५५ अपगतवेदियोमं असख्यात भागहानि किसके होती हैं ? किसी भी उपशामक या क्षपक जीवके होती हैं । तथा सख्यात भागहानि और सख्यातगुणहानि क्षपक जीवके होती हैं । आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानियों किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती हैं । असख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं । इसी प्रकार मन-पर्ययज्ञानी, सयत सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५६ परिहारविशुद्धिसयतोंमें असख्यात भागहानि और सख्यात भागहानि किसके होती हैं । किसी भी जीवके होती हैं । परन्तु इतनी विशेषता है कि सख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना करनेवाले जीवके या तीन दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके होती हैं । इसी प्रकार सयतासयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसापरायिक सयतोंमें असख्यात भागहानि, सख्यातभागहानि और सख्यातगुणहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं ।

§ २५७ शुक्कलेख्यावाले जीवोंमें तीन हानिया किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्या-दृष्टि जीवके होती हैं । असख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं । चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं । सख्यात भागहानि किसके होती हैं ? उपशामक या क्षपक जीवके होती हैं । संख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? क्षपकके होती हैं । असख्यातगुणहानि किसके होती हैं ? इसका कथन ओघके समान है ? अर्थात् असख्यातगुणहानि अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं ।

§ २५८ उपशामसम्यग्दृष्टियोंमें असख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं । सख्यातभागहानि किसके होती हैं ? अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करनेवाले या

वदय० असंख्येज्जभागहाणी संख्येज्जगुणाहाणी कस्स ? अण्णदग्गस्स । सख्खज्जभाग  
हाणी कस्स ? अय्यंताणुवधि० विम्वोर्पंतस्स दंसणतियं स्ववैतस्स वा । सम्मापि०  
तिण्णिहाणीओ कम्म ? अण्णद० ।

एवं सामिच्छाणुगमो समचो ।

§ २५६ कानाणुगमेण दुनिहा णिहेसो-आपण आदंसण य । तन्य आपण  
तिण्णि वही कनचिरं कालाणो होंति ? जह० एगसमआ, उक्क व समया । अमत्त०  
भागहाणी क्वचि० ? जह० एयसमओ, उक्क० तनहिसागरावमसदं अंतोमुहुत्तन्पहियं  
पस्सिदो० मसुखे०भाग० सादिरगं । सखे०भागहाणी क्व ? जह० एगसमआ,  
उक्क० उक्कस्ससुखज्जं दुरुवूणं । दा हाणी क्व० ? जहण्णुक्कस्सण एगसमआ ।  
अवहि० म० एगममओ उक्क० अंतामु० । एवमचक्खु० भवमि०-तस-तमपक्क० ।

क्यासोंका उदयम करनपाल किसी भी जीवके होती है। वेदकमम्यगृहियोंमें असंख्यगतभागहानि और  
संख्यगतगुणहानि किसके होती है ? किसी भी जावके होती है। संख्यात भागहानि किमके होता है ?  
अनन्तानुवन्धी प्लुत्तकी विसंख्यातना करनवाले जीवके या तीन दौनमाहनीयका रूप करनपाल  
जीवके होती है। सम्यग्मिप्यादृष्टि जीवोंमें तीनों हानियां किसके होती हैं ? किसी भी जीवके  
होती हैं।

इस मध्यर समाप्तिखलुगम समग्र हुआ ।

§ २५६ कालखलुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारका है-आपनिर्देश और आवेदननिर्देश ।  
इनमेंसे आपेक्षी अपेक्षा तीन दृष्टियोंका चिन्ता फल है । अपेक्षक काल एक समय और इच्छ  
काल वा समय है । असंख्यात भागहानिका चिन्ता काल है । उपम्य काल एक समय और उच्छ  
काल अनुमुहूर्त और पत्यका असंख्यातवा भाग अधिक एक सा प्रसठ रागर है । संख्यात  
भागहानिका चिन्ता फल है । उपम्य काल एक समय और उच्छ फल वा कम इच्छ संख्यात  
समय प्रमाण है । संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि इन वा हानियोंका चिन्ता फल  
है । उपम्य और इच्छ काल एक समय है । अवस्थितका उपम्य फल एक समय और उच्छ  
काल अनन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अपेक्षदशनपाल भव्य प्रस और प्रस पयासक जावों-जानना  
पादिय ।

विशुपार्य-अपेक्ष जीव प्रकृष्टव या संख्यगतवसे सम्मक ऊपर एक समय तक

असंख्यातवे भाग संख्यातवे भाग वा संख्यातगुणी स्थितिवा पदापर बांधना है और दूसरे समयमें  
अस्वरण वा अपस्थित स्थितिवा मात्र परना है तब उगके असंख्यातमागृहे संख्यातमागृहे और  
संख्यातगुणहानिका उपम्य रूप एक समय मात्र होता है । अपेक्ष एक ही परन समयमें अकालवम  
और दूसरे समयमें संख्यगतवसे असंख्यातवे भागप्रमाण स्थितिवा पदापर बांधना है तथा तीसरे  
समयम अस्वरण वा अपस्थित स्थितिबन्ध करन संगता है तब उगके असंख्यातमागृहे  
उच्छ फल वा समय मात्र होता है । अपेक्ष एक दृष्टिय जीव संख्यातवम एक समय तक  
संख्यातवे भागप्रमाण स्थितिवा पदापर बांधना है और दूसरे समयमें मध्य तथा प्रीष्टियोंमें  
उपम होकर पूर स्थितिसे संख्यातवे भाग अधिक दृष्टियकि पात्र उपम्य स्थितिसे बांधना है

१२६०. आदेमेण णेरइएसु अमंसेज्जभागवट्ठी केव० ? जह० एगसमओ,

तव सख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दा समय प्राप्त हाता है । अथवा जा तेन्द्रिय जीव स्वस्थानमे सक्लेश्चयसे एक समय तक सख्यात भागवृद्धि करके और दूसरे समयमे मरकर तथा चौदन्द्रियोंमे उत्पन्न होकर चौदन्द्रियोंके योग्य जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके सख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय पाया जाता है । तथा जो एकेन्द्रिय एक मोड़ा लेकर मन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले समयमे असज्ञीके योग्य स्थिति बन्ध होता है जो कि एकेन्द्रियके स्थितिमत्त्वसे सख्यातगुणा है और दूसरे समयमे शरीरको ग्रहण करके सज्ञीके योग्य स्थितिवन्ध होता है जो कि असज्ञीके योग्य स्थितिवन्धसे सख्यातगुणा है अतः सख्यात गुणवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । असख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है क्योंकि समान स्थितिको बाधनेवाले जिस जीवने एक समय तक पूर्व स्थितिसे असख्यातवें भाग कम स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें पुनः सत्त्वके समान स्थितिका बन्ध करने लगा उसके असख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा असख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत और पत्यके असख्यातवें भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । उसका खुलासा इस प्रकार है—कोई मिथ्या-दृष्टि भोगभूमिया, आयुमे पत्योपमका असख्यातवों भाग शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्व को ग्रहण कर सख्यात भागहानि कर, मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । उस समयसे असख्यात भागहानि प्रारंभ हो गई । आयुके अन्तमे वह वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छयासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा । पुनः अन्तमुर्हृत काल तक सम्यग्मिथ्यात्वके साथ रहा और तदनन्तर वह पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छयासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा तथा अन्तमे इकतीस सागर की आयुवाले देवोंमे उत्पन्न होकर मिथ्यादृष्टि हो गया । तदनन्तर वहासे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और एक अन्तमुर्हृतके बाद भुजगार स्थितिको प्राप्त हो गया । इस प्रकार इस जीवके असख्यात भागहानिका उत्कृष्टकाल अन्तमुर्हृत और पत्योपमके असख्यातवें भागसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर पाया जाता है । सख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट सख्यात समय प्रमाण है । इसका खुलासा इस प्रकार है—दर्शनमोहीनीयनी क्षणामें या अन्यत्र जब पत्यके सख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकका घात होता है तब सख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा सूक्ष्मसापराधिक क्षणके अन्तिम दो समय कम उत्कृष्ट सख्यात समय प्रमाण काल तक सख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । जो जीव सत्तर कोड़ाकोडी प्रमाण स्थितिके सख्यात बहुभागका घात करता है उसके तथा अन्यत्र अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय सख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः सख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा अनिवृत्तिकरणक्षणक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके सवेद भागमें स्थितिकाडक की अन्तिम फालिके पतनके समय असख्यात गुणहानि होती है, अतः असख्यात गुणहानिका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा अवस्थित स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत है, क्योंकि, जो जीव एक समय तक अवस्थित स्थितिको प्राप्त होकर दूसरे समयमे भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त हो जाता है उसके अवस्थित स्थिति एक समय तक ही पाई जाती है तथा जो लगातार अन्तमुर्हृत काल तक अवस्थित स्थितिके साथ रहकर भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त होता है उसके अवस्थित स्थितिका अन्तमुर्हृत काल पाया जाता है । अचक्षुदर्शनी, भव्य, अस और प्रसर्प्यासक जीवोंके यह ओघ प्ररूपणा अविकल वन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

१२६० आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असख्यातभागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य

उक्क० ये समय। दो बड़ी० दो हाणी० केव० ? अहण्णुक्क० एगसमओ । असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमभा, उक्क० तचीस सागरोपमाणि दमूणाणि । अवहि० क० ? अह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एव सन्वणेरइ० । गवरि असंखेज्जभागहाणीए उक्कस्म० सगसगुक्कस्सहिदी देखाणा ।

§ २६१ तिरिक्खेसु तिणिण बड़ी संखेज्जगुणहाणी अवहि० ओपं । असंखे० भागहाणी ज० एगसमओ, उक्क० तिणिण पस्सिदावमाण साविरेपाणि । सत्खज्ज भागहाणी नहएणुक्क० एगसमओ । एव पंचिदियतिरिक्खवियस्स । गवरि संखज्ज भागवहि० संखेज्जगुणवड़ीणं नहण्णुक्क० एगसमओ । पंचिदियतिरिक्खअपअज्ज० तिणिणवहि० दाहाणि अवहिदाणं गिरओपमंगो । असंखज्जभागहाणी के० ? अह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एव मणुसअपअज्ज० । मणुसतिय० पंचिदियतिरिक्ख वियमंगो । गवरि संखज्जभागहाणी असंखे० गुणहाणी ओपं ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । वा बुद्धियों और दो हानियोंका कितना काल है ? अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । असंख्यातभागहानिकर कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम वहीस सागर है । अवस्थितपिमच्छिका कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं है । इसी प्रकार सभी नारकियोंके जानना चाहिये । इतनी विद्वेगता है कि सक्क असंख्यातभागहानिकर उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमात्य होता है ।

§ २६२ तिर्येच्चोमिं तीत बुद्धियो संख्यातगुणहानि और अवस्थितपिमच्छिका काल ओपके समान है । असंख्यातभागहानिकर अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पदव है । तथा संख्यातभागहानिकर अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार पंचन्द्रियतिर्येच त्रिकके जानना चाहिये । इतनी विद्वेगता है कि इनके संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि का अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । पंचेन्द्रिय तिर्येच अपर्वात्तिसोमिं तीत बुद्धियो, वा हानियो और अवस्थितपिमच्छिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा असंख्यातभागहानिकर कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्वात्तिसोमिं के जानना चाहिये । तथा मनुष्य त्रिकके पंचन्द्रिय तिर्येच त्रिकके समान काल है । इतनी विद्वेगता है कि इनके संख्यात भागहानि और असंख्यातगुणहानिकर काल आप समान है ।

विशेषार्थ—असंख्यात भागवृद्धि अद्यापय और संकलशपय शानो न मज्ज दा मरुती ह त्रिणु संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि केवल संकलशपयमे ही प्राप्त होता है अतः नारकियोंमें असंख्यात भागवृद्धिपदा अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा क्षय दो वृद्धिषोमिं अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि अस्तिम कण्ठकदी अस्तिम अस्तिक बनक समय ही होती है अतः इनका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बदा । नरकमें असंख्यात भागहानिकर अपन्य काल एक समय आपके समान पदित कर लेना चाहिये । त्रिम नारकोंने मरुत्तमें अन्तमुहुत्तं अन्तमुहुत्तं काल बार बार सम्पत्त्य का प्राप्त कर लिया है और जब अन्तमुहुत्तं अन्तमुहुत्तं



§ २६२ देव० तिण्णि वट्टी दो हाणी अवट्ठि० णिरओघं । असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । भवण०-वाण०-जोइसि० एवं चेव । णवरि असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्स-ट्टिदी देसूणा । सोहम्माट्ठि जाव सहस्सार ति एवं चेव । णवरि असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सग०ट्टिदी । आणटादि जाव उवरिमगेवज्ज ति असंखेज्जभागहाणी के० ? ज० अंतोमु०, उक्क० सगुक्कस्सट्टिदी । संखेज्जभागहाणी के० ? जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुदिसादि जाव सव्वट्टिसिद्धि ति एवं चेव ।

§ २६३ इंदियाणुवादेण एइंदिएसु असंखे० भागवट्टी के० ? जह० एग-समओ, उक्क० वे समया । असंखेज्जभागहाणी के० ? जह एगसमओ, उक्क०

शेष रह गया तब उसका त्याग किया है उसके असख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है। शेष कथन सुगम है। प्रथमादि नरकोंमें असख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष कथन इसी प्रकार जानना। किन्तु असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना। यहा कुछ कमसे भवके प्रारम्भका अन्तर्मुहूर्त काल लेना चाहिये। जो तिर्यच तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य प्राप्त होता है। पचेन्द्रिय तिर्यच त्रिकके सख्यात भागवृद्धि और सख्यात गुणवृद्धि सकलेशक्षयसे ही प्राप्त होगी अतः यहा इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। लव्यपर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। ओघसे सख्यात भागहानि और असख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट काल कहा है वह मनुष्य पर्याय में ही घनता है अतः मनुष्यत्रिक के उक्त दो हानियोंका काल ओघके समान कहा। इस प्रकार ओघप्ररूपणाका और नरकादि तीन गतियोंका जो खुलासा किया है उसीसे आगेकी मार्गणाओं में जहाँ जितनी हानि और वृद्धियाँ सम्भव हों उनके कालका खुलासा हो जाता है अत आगे नहीं लिखा जाता है। हाँ जहाँ कुछ विशेषता होगी वहाँ अवश्य निर्देश कर दंगे।

§ २६२ देवोंमें तीन वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है। तथा असख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्त्रार कल्पतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। आनत कल्पसे लेकर उपरिम त्रैवेद्यक तक के देवोंमें असख्यात भागहानि का कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है। संख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये

§ २६३ इन्द्रिय मार्गणके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें असख्यात भागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। असख्यात भागहानिका कितना

पस्त्रिदा० असखे०भागो । दो हाणी केव० ? अइएणुकक० एगसममो । अइदि०  
 ओप । एन वादरेइदिय वादरेइदियपञ्जत्तापञ्जत्त-सुहुमेइ दिय-सुहुमेइ दियपञ्जत्ता  
 पञ्जत्तार्ण । एपरि असखे०भागहाणी क० ? अइ० एगसममो, उक्क० वादरे  
 इ दिय-सुहुमेइ दियसु पस्त्रिदो० असत्त०भागो । वादरेइ दियपञ्जत्तेशु सम्बन्धाणि वस्स  
 सहस्साणि । अणत्तय संतासुहुत्तं ।

§ २६४ विगसिंदिएसु अमखेउज्जभागवट्टी आर्ष । संख०भागवट्टी दा  
 हाणी० अनदिदार्ण एणरओपमंगो । असखेउज्जभागहाणी केव० ? अइ० एगसममो,  
 उक्क० सगाहिणी । पंचिदिय० पंचि०पञ्ज० मणुसमंगा । एपरि असखे०भागहाणी०  
 आर्ष । पंचिदियअपञ्ज०-तसअपञ्ज० पंचिदियतिगिक्खअपञ्जत्तमंगो । एपरि  
 तसअपञ्ज० संख०भागवट्टी संखे०गुणवट्टी० आर्ष ।

§ २६५ पंचकाय वादर-सुहुमाणमइ दियमंगो । तसि पञ्जत्तापञ्जत्ताणमेव  
 षव । एपरि असखे०भागहाणी० क० ? अ० एगसममो, उक्क० सगाहिदी ।

काल है ? अपन्य काल एक समय और अट्टक काल पत्तोपमक असेमपातवे भाग प्रमाण है ।  
 वा हातियोअ किना काल है ? अपन्य और अट्टककाल एक समय है । तथा अपस्वित्तविमत्तिका  
 कस आपके समान है । इमी प्रकार वादर पचेन्द्रिय वादर पचेन्द्रिय पर्याप्त वादर पचेन्द्रिय  
 अपवात्त, सूख पचेन्द्रिय, सूख पचेन्द्रिय पयात्त और सूख पचेन्द्रिय अपयात्त जीपोंके  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असेमपातभागहातिका किना काल है ?  
 अपन्य काल एक समय है और उक्क काल वादर पचेन्द्रिय और सूख पचेन्द्रियोमें पत्तोपमक  
 असेमपातवे भागप्रमाण है । वादर पचेन्द्रिय पर्याप्तमें संख्यात्त इकार षव है तथा इनके  
 अतिरिक्त षव वादर पचेन्द्रिय अपयात्त, सूख पचेन्द्रिय पयात्त और सूख पचेन्द्रिय अपयात्त  
 जीपोंमें अन्तमु हूत कस है ।

§ २६६ विरुत्तमिद्योमि असेमपात भागवट्टिका काल आपक समान है । संख्यात्त  
 भागवट्टि, वा हातियो और अपस्वित्तविमत्तिका काल सामान्य नारटियों के समान है । तथा  
 असेमपातभागहातिका किना काल है ? अपन्य काल एक समय और अट्टक काल अपनी  
 अपनी अट्टक स्थिति प्रमाण है । पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पयात्तके मनुष्योंके समान जानना  
 चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असेमपातभागहातिका काल आपक समान है । पंचेन्द्रिय  
 अपयात्त और प्रम अपयात्तके क पचेन्द्रिय निर्यय अपयात्तके समान जानना चाहिये । इतनी  
 विशेषता है कि प्रम अपयात्तके संख्यात्तभागवट्टि और संख्यात्तगुणवट्टि पर काल आपक  
 समान है ।

§ २६७ पाँचों व्यापारकाय, पाँचों व्यापारकाय वादर और पाँचों व्यापारकाय सूख जीपोंके  
 पचेन्द्रियके समान जानना चाहिये । तथा पाँचों व्यापारकाय वादर और सूखके वा पयात्त  
 और अपयात्त भइ है इनके मी इमी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असेमपात  
 भागहातिका काल किना है ? अपन्य काल एक समय और अट्टक काल अपनी अपनी अट्टक  
 स्थिति प्रमाण है ।

२६६. पंचमण०-पंचवचि० असंखेज्जभागहाणी० अवट्ठि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे०भागहाणी० ओघं । सेसा० मणुसभंगो । कायजोगि० तिण्णि वड्डी० तिण्णि हाणी० अवट्ठि० ओघं । असंखे०भागहाणी० एइंदियभंगो । ओरालि० मणजोगिभंगो । णवरि असंखे०भागहाणी० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्स० संखे० भागवड्डी असंखे०भागवड्डी अवट्ठि० ओघं । सखे०गुणवड्डी तिण्णि हाणी पंचि-दियअपज्जत्तभंगो । वेउन्वियकायजोगि० तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी अवट्ठि० णिर-ओघं । णवरि असंखेज्जभागहाणी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं वेउन्वियमिस्स० । आहार० असंखे०भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमकसाय० - जहाक्खाद० । आहारमि० असंखे०-भागहाणी के० ? जहएणुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम० । णवरि संखेज्जभागहाणी जहएणुक्क० एगस० । कम्मइय० दो वड्डी दो हाणी के० ? जहणुक्क० एगसमओ । असंखे०भागवड्डी हाणी ज० एगसमओ, उक्क० वे समया । अवट्ठि० ज० एग-समओ, उक्क० तिण्णि समया ।

§ २६६ पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें असख्यातभागहानि और अवस्थितकाल कितना है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सख्यातभागहानिका काल ओघके समान है। तथा शेषकाल मनुष्यों के समान है। काययोगी जीवोंमें तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा असख्यातभागहानिका काल एकेन्द्रियोंके समान है। औदारिककाययोगियोंके मनोयोगियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातभागहानिका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम चाईस हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सख्यातभागवृद्धि, असख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा संख्यातगुणवृद्धि और तीन हानियोंका काल पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है। वैक्रियिककाययोगियोंमें तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य-नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिये। आहारककाययोगियोंमें असख्यातभागहानिका कितना काल है। जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अकपायी और यथाख्यातसयत जीवों के जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असख्यातभागहानिका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके सख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। कर्मणकाययोगियोंमें दो वृद्धियों और दो हानियोंका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा असख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

§ २६७ वेदागुणादेव इत्यं० तिष्णि बह्वी० हो हाणी० अवडि० शिरभोर्यं । असंखे० भागहाणी के० ? न० एगसमभो, उक्क० पगवण्णपत्तिदोवमाणि देसूणाणि । असंखे० गुणहाणी के० ? जहण्णुक० एगसमभो । एवं पुरिसं० । गवरि असंखे० भागहाणी भोर्यं । जवु स० तिष्णि बह्वी सखेज्जगुणहाणी असंखे० गुणहाणी अवहा० भोर्यं । संखे० भागहाणी जहण्णुक० एगसमभ । असंखे० भागहाणी० जह० एगसमभो, उक्क० वेचीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अववद० असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमभो, उक्क० अंतोसु० । संखे० भागहाणी संखे० गुणहाणी भोर्यं ।

§ २६८ चत्तारिक्कासा० तिष्णि बह्वी तिष्णि [ हाणी ] असंखेज्जगुणहाणी अवहाणं गमु सगमंगो । गवरि असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमभो, उक्क० अंतोसु० । सोमकसाय० असंखे० भागहाणी भोर्यं ।

§ २६९ मदि-सुवअण्णाख० तिष्णि बह्वी तिष्णि हाणी अवहा० तिरिक्कोर्यं । गवरि असंखे० भागहाणी जह० एगसमभो, उक्क० एक्कचीस सागरोवमाणि सादि रेयाणि । [ एव भिच्छादहीणं ] विहंगं सत्तमपुढक्किमंगो । गवरि असंखे० भागहाणी जह० एगसमभो, उक्क० एक्कचीस सागरोवमाणि देसूणाणि ।

§ २६० वेदमार्गवाके अनुवासे श्रीवेदियोंमें तीन वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थित विमर्शिक अन्न सामान्य नारिक्योंके समान है । तथा असंख्यात मागहानिका कितना अन्न है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचन पस्य है । तथा असंख्यातगुणहानिका कितना काल है ? अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । इसी प्रकार पुरुषवेदियोंके जानना चाहिये । इतनी विद्येयता है कि इनके असंख्यात मागहानिका अन्न भोजके समान है । नपुंसकवेदियोंमें तीन वृद्धियों संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि और अवस्थितविमर्शिक अन्न भोजके समान है । तथा संख्यातमागहानिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा असंख्यातमागहानिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम वेचीस सागर है । अपगतवेदियोंमें असंख्यातमागहानिका कितना काल है ? अपन्य अन्न एक समय और उत्कृष्ट काल अस्तमु हृत है । तथा संख्यातमागहानि और संख्यातगुणहानिका अन्न भोजके समान है ।

§ २६१ श्रेयादि चारों कपायबाले जीवोंमें तीन वृद्धियों तीन हानियों, असंख्यात गुणहानि और अवस्थितविमर्शिका काश्च नपुंसकवेदियोंके समान है । इतनी विद्येयता है कि इनके असंख्यातमागहानिका कितना काल है ? अपन्य अन्न एक समय और उत्कृष्ट काल अस्तमु हृत है । तथा सोमकसायबाले जीवोंके असंख्यातमागहानिका अन्न भोजके समान है ।

§ २६२ मत्स्यानी और भुताशानी जीवोंके तीन वृद्धियों तीन हानियों और अवस्थित विमर्शिक अन्न सामान्य तिरिक्कोंके समान है । इतनी विद्येयता है कि इनके असंख्यातमागहानिका अपन्य अन्न एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इक्कीस सागर है । इसी प्रकार मिष्यादिवोंके जानना चाहिये । विभंगानियोंके सातवों वृद्धियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विद्येयता है कि इनके असंख्यातमागहानिका अपन्य अन्न एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम इक्कीस सागर है ।

§ २७०. आभिणि०-मुद०-ओहि० अमंखे०भागहाणी के० ? ज० अतो-मुहुत्तं, उक्क० व्याट्टिसामगे० देमूणाणि । तिण्णि हाणी ओघं । एणमोहिट्टस०-सम्मादि० । मणपज्ज० अमंखे०भागहाणी जह० एणसमओ, उरु० पुव्वकोडी देमूणा । तिण्णि हाणी ओघं । एणं सजद० । सामाडय-वेदो०मंजटाणमं चं । एवरि मंखेज्जभागहाणीए कालो जहण्णुक्क० एणसमओ । परिहार०-मंजटासंजद० असंखे०भागहाणी जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० मगट्टिटी । मखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एणसमओ । मुहुप० अत्रगदघेदभंगो । असंजद० णवुंमयभंगो । णवरि अमंखेज्ज-भागहाणीए कालो जह० एणसमओ, उक्क० तेत्तीमं सागरो० साट्टिग्याणि । असंखे०गुणहाणीवि० एत्थि । चम्पु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि मंखे०भागवड्डी जहण्णुक्क० एणसमओ ।

§ २७१ किण्ण लील-काउत्ते० अमंजदभंगो । एवरि अमंखे०भागहाणीए जह० एणसमओ, उक्क० सगट्टिटी देमूणा । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमार-भंगो । मुक्क० असंखे०भागहाणीए जह० एणसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० साट्टि-रेयाणि । तिण्णि हाणी ओघ । एवं रडय० । णवरि असंखे०भागहाणी ज०

§ २७० आभिनिमाधिकरानो, अतज्ञानी और अत्रधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर हैं । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार अत्रधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । मन-पर्ययज्ञानी जीवोंके असख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार सयत जीवोंके जानना चाहिये । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । परिहारविशुद्धिसयत और सयतासंयत जीवोंके असख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति-प्रमाण है । तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय हैं । सूक्ष्म-सापराधिकसयत जीवोंके अपगतवेदियोंके समान जानना चाहिये । असयतोंके नपुसकवेदियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । असयतोंके असख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंके असपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ २७१ कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके असयतोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म कल्पके समान जानना चाहिये । पद्मलेश्यावाले जीवोंके सानत्कुमार कल्पके समान जानना चाहिये । शुक्ल लेश्यावाले जीवोंके असख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार चायिकसम्यग्दृष्टि

अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेचीसं साग० सादिरेयाणि । वेद्य० असंखे०भागहाणी०  
आभिणि०भंगो । संखे०भागहाणी सखेजागुणहाणी जहएणुक्क० एगसमओ ।

§ २७२ सासण० असखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० ह आबलि  
याओ । सम्भाभि० असंखे०भाषहाणी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । ष  
हाणी० वेद्यभंगो । सण्णि० पंचिदियभंगो । असण्णि० दो बड्डी सखे०गुणहाणी०  
अबहि० ओघं । सखे०गुणबड्डी संख०भागहाणी जहएणुक्क० एगसमओ । असंखे०  
भागहाणीए एहंदिभंगो । अमभ० मदि०भंगो । आहारि० दो बड्डी षचारि  
हाणी अबहि० ओघभंगो । संखे०गुणबड्डी जहएणुक्क० एगस० । अपाहारि०  
कम्मइय०भंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ २७३ अंतराणुगमेण दुविहो गिहोसो—ओघेण आहंसण य । तस्य ओघेण  
असंखेजागबड्डी० अबहि० अंतरं कव० ? न० एगसमओ, उक्क० तबहिसागरा  
पमसदं अंतोमुहुत्तंमहियतीहि पत्तिओघमेहि सादिरय । दो बड्डी० दो हाणी० जह०  
एगसमओ अंतोमु०, उक्क० अर्णतकाल्मसंग्गञ्जा पोग्गपरियहा । असखे०भाग

जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि असंख्यातभागानिका अपन्य काल अन्तमु हुत  
और उक्कत्त काल साधिक तेचीस सागर है । वेदकसम्पगट्टि जीवों के असंख्यात भागानिका  
काल आभिनिवाधिकज्ञानियोंके समान है । तथा संख्यातभागानि और संख्यातगुणानिका अपन्य  
और उक्कत्त काल एक समय है ।

§ २७२ सासणसम्पगट्टि जीवोंके असंख्यात भागानिका अपन्य काल एक समय  
और उक्कत्त काल हइ आबली है । सम्पगिण्याट्टि जीवोंके असंख्यातभागानिका अपन्य  
काल एक समय और उक्कत्त काल अन्तमु हुत है । तथा दो जानियोंका काल वेदकसम्पगट्टियोंके  
समान है । संखी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । असंखी जीवोंके दो बुद्धियों, संख्यात  
गुणानि और अवस्थितविमत्तिका काल ओघके समान है । तथा संख्यातगुणबुद्धि और  
संख्यातभागानिका अपन्य और उक्कत्त काल एक समय है और असंख्यात भागानिका  
काल पंचेन्द्रियोंके समान है । अमभ्य जीवोंके मत्त्वज्ञानियोंके समान जानना चाहिये ।  
आहारक जीवोंके दो बुद्धियों, चार जानियों और अवस्थितविमत्तिका काल ओघके समान है ।  
तथा संख्यातगुणबुद्धिका अपन्य और उक्कत्त काल एक समय है । अनाहारक जीवों के कर्मण्य  
अपयोगियोंके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालाणुगम समाप्त हुआ ।

§ २७३ अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्रेष दो प्रकारका है—ओघनिर्रेष और आदेशनिर्रेष ।  
जनमेसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातगुणबुद्धि और अवस्थितविमत्तिका अन्तरकाल कितना है ?  
अपन्य अन्तर काल एक समय और उक्कत्त अन्तर काल अन्तमु हुत और तीन पत्तोसे अधिक  
एक ही त्रेखत समान है । तथा दो बुद्धियों और दो जानियोंका अपन्य अन्तरकाल एक समय  
और अन्तमु हुत है और उक्कत्त अन्तरकाल अन्त काल है जो असंखजत पुद्गल परिवर्तन प्रमाण

हाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणी० जहणुक्क० अंतो-  
मुहुचं । एवमचक्खु०-भवसि० ।

है। तथा असख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। तथा असख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**जब असख्यातभागवृद्धि और अवस्थित स्थितिके मध्यमे एक समय तक अन्य स्थितिविभक्ति प्राप्त हो जाती है तब इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा असख्यात भागहानि और सख्यातभागहानिका मिला कर उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है, अतः असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। जब कोई दो इन्द्रिय जीव पहले समयमे सख्यातभागवृद्धि करता है, दूसरे समयमे अवस्थित स्थितिको प्राप्त होता है और तीसरे समयमे मरकर तथा तेइन्द्रियोंमे उत्पन्न होकर पुनः संख्यातभागवृद्धि करता है तब सख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त होता है, अतः सख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा। जो एकेन्द्रिय जीव दो मोडा लेकर सञ्जी पचेन्द्रियोंमे उत्पन्न होता है उसके पहले मोडेके समय सख्यातगुणवृद्धि होती है। दूसरे मोडेके समय अन्य स्थिति होती है और तीसरे समयमे पुन सख्यातगुणवृद्धि होती है अतः संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय कहा। जिस जीवके स्थिति काण्डककी चरम फालिके पतनके समय सख्यातभागहानि हुई पुन अन्तमुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि होती है अतः सख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा। तथा उसी जीवके दूरपकृष्टि प्रमाण स्थितिके उपरिम द्विचरम स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय सख्यातगुणहानि होती है। पुनः अन्तमुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय सख्यातगुणहानि होती है अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा। तथा उक्त दानों वृद्धियों और दोनों हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है, क्योंकि जिस जीवने सञ्जी पचेन्द्रिय पर्यायमे उक्त दो वृद्धिया और दो हानिया की पुनः जो मरकर एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ और वहा असख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् वहासे निकलकर जो सञ्जियोंमे उत्पन्न हुआ और सञ्जी पर्यायमे जिसने पुनः दो वृद्धिया और दो हानिया की उसके उक्त दो वृद्धियों और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है। एक समयके अन्तरसे असख्यातभागहानिका होना सम्भव है, अतः असख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। तथा अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। अब यदि असख्यात भागहानिको अवस्थित स्थितिसे अन्तमुहूर्त काल तक अन्तरित कर दिया जाय तो असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तमुहूर्त प्राप्त हो जाता है। अनिवृत्तिकरण क्षपकके सवेद भागमें स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असंख्यातगुणहानि होती है पुनः अन्तमुहूर्तके बाद दूसरे स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असख्यातगुणहानि हाती है, अतः असख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणमें यह ओघ प्रेरुपणा बन जाती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

१ २७४ आयेसेण जेरइय० असंखे० मागबद्धी अनदि० जइ० एगसमओ । दो वड्डी० दा हाणी० जइ० अंतोमु०, उक्क० तेचीससागरो० देख्णाणि । असंखे० मागहाणी० ओषं । पइमादि जाय सत्तमि पि एव चेव । पवरि सगसगुक्कस्तदिदी देख्णा ।

१ २७५ तिरिक्खेसु असंखेज्जमागवड्डी अनदि० जइ० एगसमओ, उक्क० पस्सिओ० असंखे० मागो । दो वड्डी० दोहाणी० असंखे० मागहाणी० ओषं । पपि० तिरिक्खतियम्मि असंखे० मागवड्डी० अनदि० म० एगसमओ । दो वड्डी० संखे० गुणहाणी छ० अंतोमहुत्तं । उक्क० सम्भसिं पि पुन्वकोडिपुषत्तं । असंखेज्जमागहाणी० ओषं । संखे० मागहाणी ज्ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिरिपिण पस्सिदावमाणि अंतोमुहुत्तंमहिपाणि । एव मणुसतिय० । पवरि पम्हि पुब्बकोडिपुषत्तं तम्हि पुब्बकोडी देख्णा । असंखे० गुणहाणी० ओषं । पपि० तिरिक्खअपज्ज० असंखे० मागवड्डी० हाणी० अनदि० जइ० एगसमओ । दो वड्डी० दा हाणी० जइ० अंतोमु० । उक्क० सम्भेसिमंतोमुहुत्तं । एव मणुसअपज्ज०-पपि०-अपज्ज०-त्तसअपज्ज० विहंग० । पवरि तसअपज्ज० दोवड्डी० जइ० एगसमओ ।

१ २७४ आयेसेणकी अपेक्षा नार्थिकोके असंख्यातमागवड्डी और अवस्थितविमत्तिका अपन्य अन्तरकाल एक समय तथा दो वृद्धियों और दो हानियोंका अपन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा उन्मुक्त समीक उक्त अन्तरकाल कुछ कम होतीस सागर है । तथा असंख्यात मागहाणिका अन्तरकाल ओषके समान है । पक्षी प्रथिपीसे लेकर सातवीं प्रथिपी तक इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी पक्ष्य स्थिति करनी चाहिये ।

१ २७५ तिरिक्खेसु असंख्यातमागवड्डी और अवस्थितविमत्तिका अपन्य अन्तरकाल एक समय और उक्त अन्तरकाल पस्योपमके असंख्यातर्ष मागप्रमाण है । तथा दो वृद्धियों दो हानियों और अवस्थितमागहाणिका अन्तरकाल ओषके समान है । पंचत्रियतिर्यङ्गिकके असंख्यातमागवड्डी और अवस्थितविमत्तिका अपन्य अन्तरकाल एक समय तथा दो वृद्धियों और संख्यातगुणहाणिका अपन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा समीक उक्त अन्तरकाल पूर्वोक्तिप्रकृत्य है । असंख्यात मागहाणिका अन्तरकाल ओषके समान है तथा संख्यात मागहाणिका अपन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उक्त अन्तरकाल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पस्य है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिके जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि पंचत्रिय तिर्यङ्गिकके वहाँ पूर्वोक्ति प्रकृत्य कहा है वहाँ मनुष्यत्रिके कुछ कम पूर्वोक्ति करना चाहिये । तथा असंख्यातगुणहाणिका अन्तरकाल ओषके समान है । पंचत्रिय तिर्यङ्ग अपयत्तकोके असंख्यात-मागवड्डी, असंख्यातमागहाणि और अवस्थितविमत्तिका अपन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियों और दो हानियोंका अपन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा उक्त समीक उक्त अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपयत्तक, पंचत्रिय अपयत्तक, त्रस अपयत्तक और विमंगलानियोंके जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि त्रस अपयत्तकोके दो वृद्धियोंका अपन्य अन्तर काल एक समय है ।



§ २७६. देव० असंखेज्जभागवड्डी० अवट्टि० जह० एगसमओ, दो वड्डी० संखेज्जगुणहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि । असंखे० भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । गवरि सगसगुक्कस्सट्टिदी देसूणा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति असंखे० भागहाणीए जहणुक्क० एगसमओ । संखे० भागहाणीए जह० अंतोमु०, उक्क० सग-ट्टिदी देसूणा । अणुदिसादि जाव सच्चट्टेत्ति असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एग-समओ । संखे० भागहाणी० जहणुक्क० अंतोमु० ।

§ २७६ देवोंमें असख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियों और सख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुर्हृत हैं । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर हैं । तथा सख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुर्हृत और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । तथा असख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुर्हृत हैं । भवनवासियोंसे लेकर सहस्सार स्वर्ग तकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें असख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा सख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुर्हृत और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके असख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय तथा सख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुर्हृत है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें स्वस्थानकी अपेक्षा सख्यातभाग वृद्धि और सख्यातगुणवृद्धि सकलेश ज्ञयसे एक समय तक होती है और पुनः इनका होना अन्तमुर्हृत कालके विना सम्भव नहीं है, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुर्हृत कहा । तथा नरकमें असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः असख्यातभागहानिको छोडकर शेषसवका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा । तिर्यचोंमें असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पत्य है पर ऐसे जीवके तिर्यच पर्यायके रहते हुए असख्यातभागवृद्धिकका उत्कृष्ट अन्तरकाल सम्भव नहीं किन्तु तिर्यचोंमें एकेन्द्रियोंके जो असख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण वतलाया है वही इनके असख्यात भागवृद्धिकका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यचत्रिकमें स्वस्थानकी अपेक्षा सख्यातभागवृद्धि और सख्यातगुणवृद्धि एक समय तक होकर पुनः अन्त-मुर्हृत कालके विना नहीं हो सकती हैं अतः इन दोनोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुर्हृत कहा । तथा तिर्यच त्रिकके असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पत्य वतलाया है किन्तु ऐसा जीव मरकर पुनः तिर्यच पर्यायमें नहीं आता, अतः तिर्यच त्रिकके असख्यात भाग-हानिका जो उत्कृष्ट काल है वह तीन वृद्धि, संख्यातगुणहानि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर-काल नहीं हो सकता किन्तु इनके सबी अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होकर असन्नयोंमें उत्पन्न हो जानेसे असख्यातभागहानि प्रारंभ हो जाती है । पुनः असन्नयोंमें अपने अपने असन्नियोग उत्कृष्ट काल तक, जो क्रमशः ४६, १५ व ७ कोटि पूर्व भ्रमण किया । तथा वहाँ अपनी अपनी असक्षी पर्यायके

१२७७ एहदिपसु असंखे० मागवहूी० हाणी० अबहि० नह० पयसमओ, उह० अंतोमु० । दा हाणी० गतिथ अंतरं । एवं पंचकापाखं । विगसिदिपसु असंखे० मागवहूी हाणी० अबहि० नह० पयसमओ, उह० अंतोमु० । संखे० मागवहूी० संखे० मागहाणी० नहण्युह० अंतोमुहूच । सखे० गुणहाणी० गतिथ अंतरं ।

मारम्हमें षष्ठ तीन वृद्धिबा संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थिति का अन्तर करके षष्ठ पूर्व कोटि दूयस्त्व कास एक असंख्यात मागहानिके साथ रहा । और संक्षियोमें उत्तम होकर पुनः तीन वृद्धियां संख्यातगुण हानि और अवस्थित स्थिति प्राप्त हो गईं तब बाहर इनका उच्छ्रय अन्तरकाल पूर्वकोटि दूयस्त्व प्रमाण ही प्राप्त होता है । जिस तिर्यचने प्रथमोपक्षम सम्बन्धको प्राप्त करते समय संख्यातमागहानि की । पुनः मिष्यात्वमें बाहर और अन्तमु हुते कालके बाद वा तीन पक्षकी आसुके साथ उत्तम मोगभूमिमें उत्तम हुआ और जीवनमें अन्तमु हुत कालके शेष रह जान पर बिसने पुनः प्रथमोपक्षम सम्बन्धको प्राप्त करके संख्यात मागहानि की उसके संख्यात मागहानिका उच्छ्रय अन्तरकाल अन्तमु हुते अधिक तीन पक्ष प्रमाण पाया जाता है । मनुष्यत्रिकके असंख्यातमागहानिका उच्छ्रय काल तिर्यच त्रिकके समान ही है पर इनके भी असंख्यात मागहानि आदिका उच्छ्रय अन्तरकाल तत्प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि तिर्यचत्रिकके समान यहाँ भी वही बाधा आती है । जब यदि कहा जाय कि जिस प्रकार तिर्यच त्रिकके इतका उच्छ्रय अन्तरकाल पूर्वकोटि दूयस्त्व प्रमाण वतला आये हैं वही प्रकार मनुष्योंके भी पठित हो आयगा सा भी बात नहीं है, क्योंकि मनुष्योंमें असंखी न होनेके कारण सम्बन्ध की अपेक्षा मुसगार और अवस्थित स्थिति का उच्छ्रय अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण वतसाया है अतः यहाँ असंख्यात मागहानि आदिका उच्छ्रय अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण ही कहा है । जो पंचेन्द्रिय तिर्यच अपयास स्थितिप्राप्त करता है उसके एक काण्डकी अन्तिम पक्षिके पतनके समय संख्यातमागहानि या संख्यातगुणहानि हुईं । पुनः अन्तमु हुतकालके बाद दूसरे काण्डकी अन्तिम पक्षिके पतनके समय संख्यात मागहानि या संख्यात गुणहानि होगी अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच अपयासक्रममें इनका अपयस अन्तरकाल अन्तमु हुते कहा । किन्तु इस अपयसक्रममें विकल्पत्रय भी सम्मिलित हैं, अतः इनके संख्यातमागहानिका अपयस अन्तरकाल एक समच भी बन जाता है । देवोंमें बारहवें स्वर्गके बाद असंख्यातमागहानि संख्यातमागहानि, संख्यात गुणहानि, संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थिति नहीं पाई जाती अतः इनका उच्छ्रय अन्तरकाल सायिक अठारह सागर कहा । तथा नौ मैथेयके देव सम्बन्धरत्नको प्राप्त करके पुनः मिष्यात्वमें और मिष्यात्वसे सम्बन्धमें वा सत्त्व हैं और इस प्रकार उनके पुनः अन्तस्तुत्पत्तीका सत्त्व और वसती विसंबोबना हो सकती है अतः सामान्य देवोंके संख्यात मागहानिका उच्छ्रय अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा । शेष कवन मुसग है ।

१२७८ पंचेन्द्रियोंमें असंख्यात मागहानि, असंख्यात मागहानि और अवस्थितविभक्ति का कवन अन्तरकाल एक समय और उच्छ्रय अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पाँच स्थावरप्रायिक जीवोंके जानना चाहिये । विकल्पेन्द्रियोंमें असंख्यात मागहानि, असंख्यात मागहानि और अवस्थितविभक्ति का अपयस अन्तरकाल एक समच और उच्छ्रय अन्तर काल अन्तमु हुते है । संख्यात मागहानि और संख्यात मागहानिका अपयस और उच्छ्रय अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा संख्यात गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—लक्ष्मियोंमें असंख्यात मागहानिका उच्छ्रय काल जो पक्षके असंख्यातके

§ २७८ पंचिन्द्रिय-पंचि०पञ्ज० असंखे०भागवद्गी० अवट्टि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेगट्टिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तमभियतीहि पण्डितोपमेहि साट्टिरेयं । असंखे०भागहाणि० अतर ज० एगसम०, उक्क० अतोमु० । दोवड्डी-दोहाणीणं ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं साट्टिरेयं । असंखे०गुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं तस-तसपञ्जत्ताणं । णवरि दो वड्डी० जह० एगसमओ ।

भागप्रमाण वतलाया सो इतने काल तक असख्यात भागहानि उन एकेन्द्रियोंके पाई जाती है जिनकी स्थिति एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे बहुत ही अधिक होती है और इसलिये ऐसे जीवके असख्यात भागवृद्धि, या अवस्थित या इनका अन्तरकाल यह कुछ भी सम्भव नहीं । किन्तु असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि या अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल उन एकेन्द्रियोंके पाया जाता है जिनका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रियोंके स्थितिवन्धके योग्य रह जाता है और इस प्रकार इनका जपन्य अन्तरकाल एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण वन जाता है । तथा जिस सद्गी पचेन्द्रियने सख्यात भागहानि या सख्यात गुणहानिका प्रारम्भ किया है वह यदि स्थितिकाण्डरुके उत्कीरण कालको समाप्त करनेके पहले मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो जाय तो उस एकेन्द्रिय जीवके सख्यात भागहानि या सख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः एकेन्द्रियके इनका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । विरुलत्रयोंमें सख्यात भागवृद्धि भी सम्भव है अतः इनके अपने स्थितिवन्धके योग्य स्थितिके रहते हुए भी सख्यात भागहानि हो सकती है पर इस प्रकार सख्यात भागवृद्धि और सख्यात भागहानि अन्तमुहूर्तके पहले नहीं होती, अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ २७८ पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें असख्यात भागवृद्धि और अवस्थित-विभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और तीन पत्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । असख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । तथा असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके दो वृद्धियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

**विशेषार्थ—**पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके सख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर वतलाया है सो यहा दोनों वृद्धियों और सख्यात गुणहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे तीन पत्य और अन्तमुहूर्त कालका ग्रहण करना चाहिये तथा सख्यात भागहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कालका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पहले असंख्यात भागहानिका जो पत्यका असख्यातवा भाग अधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल वतला आये हैं वह यहा सख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल है और जो अल्पतर स्थितिका अन्तमुहूर्त और तीन पत्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट काल वतला आये हैं वह यहा सख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि और सख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल है । तथा उक्त जीवोंके उक्त दो वृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल जो अन्तमुहूर्त प्रमाण वतलाया है सो इसका कारण यह है कि स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त स्थिति-

§ २७६ पचमपञ्च-पंचमनि० अमंखे० मागवद्बी० अषट्ठि० अंतरं के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अमंखे० मागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । ससदोबद्बी तिष्णिहाणीणं छत्थि अंतरं । एमपोरालियकायनोगीणं ।

§ २८० कायनोगीसु असंखे० मागवद्बी० अषट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पस्सिओ० असखे० मागो । असंखे० मागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दावद्बी-दोहाणीणं जह० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकासमसंखेज्जा पोगस-परियहा । असंखे० गुणहाणी० छत्थि अंतरं । ओरालियमिस्स० असंखे० माग-वद्बी० अषट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असखे० मागहाणी० ज० एगसं०, उक्क० अंतोमु० । सखे० मागवद्बी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दोहाणी० संसा० गुणवद्बी० जह० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । षडभिय० असखे० माग-वद्बी० हाणी० अषट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । ससदोबद्बी-दोहाणीणं छत्थि अंतरं । षडभियमिस्स० असंखे० मागवद्बी हाणी० अषट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसपदेसु णत्थि अंतरं । कम्मइय० अषट्ठि० ज० उ० एगसमओ ।

विभक्तिवाक्य इससे कम अन्तरकाल नहीं पाया जा सकता है । तथा प्रस और प्रस पर्याप्त जावाक संख्यात मागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धिको बचन्य अन्तरकाल का एक समय बतलाया है जो वह परस्वानकी अपेक्षा जानना चाहिए जिसका मुताबिका आप प्ररूपवाके समय कर भाव है ।

§ २७६ पूर्वो मनायागी और पांचा बचनयागी जीवोंमें असंख्यात मागवृद्धि और अषट्ठिवाक्यविभक्तिको अन्तरकाल कितना है ? बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तर-काल अन्तमु हुते है । असंख्यात मागवृद्धिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा शर वा वृद्धिवा और तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार औदारिकमाययागी जीवोंके जानना चाहिए ।

§ २८० काययागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि और अषट्ठिवाक्यविभक्तिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल पर्यापनके असंख्यातमें भागममाय है । असंख्यात मागवृद्धिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । दो वृद्धियों और वा हानियोंको बचन्य अन्तरकाल एक समय और अन्तमु हुते तथा ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाय है । असंख्यात गुणवृद्धिको अन्तरकाल नहीं है । औदारिकमिमाययागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि और अषट्ठिवाक्यविभक्तिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । असंख्यात मागवृद्धिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । संख्यात मागवृद्धिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा दो हानियों और संख्यात गुणवृद्धिको बचन्य और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । वैश्विकमाययागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि असंख्यातमागवृद्धि और अषट्ठिवाक्यविभक्तिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा शर वा वृद्धियों और वा हानियोंको अन्तरकाल नहीं है । वैश्विकमिमाययागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि असंख्यात मागवृद्धि और अषट्ठिवाक्यविभक्तिको बचन्य अन्तरकाल एक समय और ऋच्छ अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा शेष पूर्वो अन्तरकाल नहीं है । कम्मवृद्धिमाययागियोंमें अषट्ठिवाक्यविभक्तिको बचन्य और ऋच्छ अन्तरकाल एक समय है । तथा

सेसपदाणं णत्थि अतरं । आहार०-आहारमिस्स० असंखे० भागहाणी० णत्थि अंतरं ।  
एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण० । अणाहारीणं कम्मइयभंगो ।

§ २८१ इत्थिवेद० असंखे० भागवद्दी० अवट्ठि० ज० एगसमओ । दो  
वद्दी-दोहाणीणं जह० अंतोमु० । उक्क० पणवण्णपल्लिदोवमाणि देसूणाणि ।  
असंखे० भागहाणी-असंखे० गुणहाणीणमोघभंगो । पुरिस० पंचिदियभंगो । णवुंस०  
असंखे० भागहाणी-अवट्ठिदाणं णिरओघं । सेसपदाणमोघभंगो । एवमसंजद० ।

शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें असख्यात भागहानिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अनाहारक जीवोंके कर्मणकाययोगियोंके समान जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—पाचों मनोयोगों और पाचों वचनयोगोंका तथा एकेन्द्रियोंको छोड़कर शेष जीवोंके औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है और विवक्षित किसी एक योगके रहते हुए सख्यात भागवृद्धि आदि तथा सख्यात भागहानि आदि दो बार सम्भव नहीं अतः इनके सख्यात भागवृद्धि और सख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा सख्यात भागहानि, सख्यात गुणहानि और असख्यातगुणहानि इन तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । काययोगमें असख्यात भाग हानिका जो उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवर्षे भागप्रमाण बतलाया है वही यहा असख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । कोई एक त्रस जीव है उसने काययोगके रहते हुए सख्यात भागवृद्धि की । पुनः वह काययोगके साथ मर गया और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर अनन्त काल तक घूमता रहा । तदनन्तर वह त्रस हुआ और वहा उसने पुनः सख्यात भागवृद्धि की । इस प्रकार इस जीवके सख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार सख्यात गुणवृद्धि और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल यथायोग्य रीतिसे घटित कर लेना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है इसलिये इसमें सम्भव सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुं हूतप्रमाण ही प्राप्त होता है । वैक्रियिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है और एक योगके रहते हुए सख्यात भागवृद्धि और सख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा सख्यात भागहानि और सख्यात गुणहानि इन दो हानियोंका दो दो बार होना सम्भव नहीं अतः वैक्रियिककाययोगमें इनका अन्तरकाल नहीं बतलाया । यही बात वैक्रियिकमिश्रकाययोगके सम्बन्धमें जानना चाहिये । कर्मणकाययोगमें अवस्थित पदका ही उत्कृष्ट काल तीन समय बतलाया है । अथ यदि किसी कर्मणकाययोगीने पहले और तीसरे समयमें अवस्थित स्थिति की तो उसके अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय पाया जाता है । यहा शेष पदोंका अन्तरकाल सम्भव नहीं । यही बात अनाहारकोंके जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ २८१ स्त्रीवेदी जीवोंमें असख्यात भागवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुं हूत है । तथा उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य है । तथा असख्यात भागहानि और असख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । पुरुषवेदियोंके पचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । नपुसकवेदियोंमें असख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा शेष पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार असयत

अवधि असंख्ये गुणहाणी पत्यि । अनगद० असंख्ये० मागहाणी नहण्णुक्क० एग-  
समभो । दोहाणीण नहण्णुक्क० अंतोमु० । एनं सुहुमसांपराय० ।

§ २८२ चत्वारिकसाय० तिण्णि वड्डी० असंख्येज्जमागहाणी० अवधि अह०  
एगसमभो, उक्क० अंतोमु० । संख्ये० मागहाणी-संख्ये० गुणहाणी असंख्येज्जगुणहाणीणं  
नहण्णुक्क० अंतोमु० ।

§ २८३ मदि सुदमण्णाणीसु असंख्येज्जभाणवड्डी [अवधि०] अह० एगसमभो,  
उक्क० एककचीस सागरी० साविरेयाणि । सेसमोष । एवममष० मिच्छादिदिदि चि ।

§ २८४ आभिणि० सुद० ओरि० असंख्ये० मागहाणी नहण्णुक्क० एग  
समभो । संख्ये० मागहाणी अह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० आवधिसागरावमाणि देमूयाणि ।

जीवोंके ज्ञानना चाहिये । इतमी विसेरता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं है । अपगतवेदियों  
में अस्मत्काल मागहानिक्रम ज्ञाप्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा दो हानियोंका  
ज्ञाप्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत है । इसी प्रकार सूत्रमसांपरायिकसंबन्ध जीवोंके  
ज्ञानना चाहिये ।

§ २८२ श्लोकादि चार्ते कयापकाल जीवोंमें तीन वृद्धियों असंख्यात मागहानि और  
अवस्थितविभक्तिक्रम ज्ञाप्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा  
संख्यात मागहानि संख्यात गुणहानि और असंख्यात गुणहानिक्रम ज्ञाप्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल  
अन्तमु हुत है ।

विशेषार्थ—वेदोक्ती उत्कृष्ट अन्तु पचवन पत्पर्का है । अब यदि किसी वेदान्त रूपका होनेके  
अन्तमु हुते बाद सम्मवर्द्धनको प्राप्त कर लिया और जीवनोंमें अन्तमु हुते कालके श्रेय रहन पर यह  
मिथ्यादृष्टि हो गई ता उसके इतने काल तक असंख्यात मागहानि ही पार्थ जायगी अतः जीवोदमें  
असंख्यात मागहानि, अवस्थित संख्यात मागहानि, संख्यात गुणहानि संख्यात मागहानि  
और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पचन वत जाता है क्योंकि व सब  
पर सम्मवर्द्धनको प्रदण करनके पूर्व और बादमें सम्मवर्द्धन है । असंख्यात गुणहानि अतिवृत्ति  
वपकके ही जाती है अतः असंबन्ध जीवके इसका निषेध किया । अपगतवर्द्धन असंख्यात मागहानि  
ज्ञाप्य संख्यातमागहानि वा संख्यातगुणहानिसे एक समयके लिये अन्तरित हांजाती है तब असंख्यात  
मागहानिका अन्तरकाल पाया जाता है कि ज्ञाप्य और उत्कृष्ट रूपसे एक समय प्रमाण ही  
होता है । तथा यहां संख्यात मागहानि और संख्यातगुणहानिक्रम अन्तरकाल श्लोकाके समान पठित  
कर जना चाहिये । किन्तु यहां वा ज्ञाप्य अन्तरकाल वतसाया है वही यहां ज्ञाप्य और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल ज्ञानना चाहिये । अपगतवर्द्धन सूत्रमसांपरायिक संबन्ध काइ पितरता नहीं अतः  
उसके कथन को अपगतवेदके समान ज्ञानना चाहिये । चार्ते कयापोंका उत्कृष्टकाल अन्तमु हुत है  
अतः इनमें सम्मवर्द्धनको उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहुत प्रमाण बन जाता है । अत्र अन्त सुगम है ।

§ २८३ मत्त्वहानी और मृताहानी जीवोंमें असंख्यात मागहानि और अवस्थितकाल ज्ञाप्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सापिक इच्छीस सागर है । इन कथन आपक  
समान है । इसी प्रकार ज्ञाप्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ २८४ आभिनिवाधियहानी मृताहानी और अवधिहानी जीवोंमें असंख्यात मागहानिक्रम  
ज्ञाप्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । संख्यात मागहानिका ज्ञाप्य अन्तरकाल अन्तमु हुत

एव संखेज्जगुणहाणीण । पत्ररि ज्ञायद्विभागरो० मादिमेयाणि । असंखे० गुणहाणी०  
 ओघं । एवमोहिदंम०-मम्मादिद्वीणं । मणपज्ज० असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एग-  
 समयओ । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० पुण्वकोटी देसणा । दोहाणी०  
 जहणुक्क० अतोमु० । एव संजट्ट०-मामाडय तेदो० मजट्टे नि ।

§ २८५ परिहार०-मजट्टामंजट्ट० असंखे० भागहाणी-संखे० भागहाणीणं मण-  
 पज्जयभगो । चम्पु० तसपज्जत्तमंगो । पत्ररि संखे० भागवट्ठां० ज० अंतोम० ।

आर उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छियासठ सागर ह । इसी प्रकार सख्यात गुणहाणिका जानना चाहिये । इतनी विशेषता ह कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक द्वासागट्ट सागर ह । तथा असख्यात गुणहाणिका अन्तरकाल ओरके समान ह । इसी प्रकार अत्रविदग्धेनयाने और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें अज्ञान भागहाणिका जपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय ह । सख्यात भागहाणिका जपन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त ओर उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि ह । तथा वा हाणियोंका जपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त ह । इसी प्रकार नयत, सामाधिकमयत और छेदोपस्थापनामयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८५ परिहारविशुद्धिसमयत और मयतामयत जीवोंके अज्ञान भागहाणि और सख्यात भागहाणिका अन्तरकाल मन पर्ययज्ञानियोंके समान ह । चतुष्टयज्ञानाले जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता ह कि इनके सख्यात भागवृद्धिका जपन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त ह ।

**विशेषार्थ—**किसी एक मिथ्यादृष्टि मनुष्यने असख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको किया । अनन्तर वह असख्यात भागहाणिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट प्रायुके साथ नोवें प्रवेयकमें उत्पन्न हो गया और वहा से च्युत होकर वह पुन असख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार मत्वज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर पाया जाता है । आभितियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असख्यात भागहाणिके सम्भव रहते हुए जप अन्य पद एक समयके लिये प्राप्त हो जाते हैं तभी इनके असख्यात भागहाणिका अन्तरकाल प्राप्त होता है अतः इनके असख्यात भागहाणिका जपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहा । सख्यात भागहाणि अनन्तानुबन्धीकी विसयोजनाके समय आदिमें हुई और ६६ सागर के अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें दर्शन मोहकी क्षणिके समय हुई अत इसका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कम ६६ सागर होता है । सख्यात गुणहाणि वेदक सम्यक्त्वके प्रथम समयमें हुई । फिर वेदक सम्यक्त्वमें ३ पूर्वकोटि ४२ सागर काल तत्र रह कर क्षणिक सम्यग्दृष्टि हो २४ सागर व १ पूर्वकोटिके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में क्षणिके कालमें सख्यातगुणहाणि हुई इस प्रकार इसका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम चार पूर्वकोटियोंसे अधिक छियासठ सागरोपम होता है । मनःपर्ययज्ञानी, परिहारविशुद्धि व सयतासयतका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि ह । अतः जिसने इस कालके प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना और अन्तमें दर्शनमोहकी क्षणिकी उसके सख्यातभागहाणिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्थात्, ८ वर्ष, ३८ वर्ष व ८ वर्ष कम पूर्व कोटि होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ २०६ किण्व खीन् काठ० तिण्णि बङ्गी० मषट्टि० नह० एगसमभो, दौहाणी० ज० अंतोमु० । उक्क० सन्वसिं सगट्टिदी दण्णा । असंखे० भागहाणी० ओष० । तेउ० सोहम्ममंगो । पम्प० सहस्सारमंगा । मुक्क० असखे० भागहाणी० अहण्णुक्क० एगसमभो । संखे० भागहाणी० अह० अंतोमु०, उक्क० एकतीस साग० देण्णाणि । संखे० गुणहाणी नहण्णुक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणी० ओष० ।

§ २०७ अहय० असखे० भागहाणी० नहण्णुक्क० एगसमभो । तिण्णि हाणी० अहण्णुक्क० अंतोमु० । गवरि संखे० भागहाणी० उक्क० ततीस सागरायमायि सादि रयाणि । बय्य० दो हाणीण ओषिमंगो । संखे० गुणहाणी० श्रुतिय अंतर । वषसम० असंखे० भागहाणी० अहण्णुक्क० एगसमभो । संखे० भागहाणी० अहण्णुक्क० अंतोमु० । सम्मायि० असंखे० भागहाणी० अहण्णुक्क० एगसमभो । दो हाणी० गतिय अंतर ।

§ २०८ [ सण्णीण पंदिदियमंगो । ] असण्णीमु असखे० भागवट्टी अषट्टि० अह० एगसमभो, उक्क० पत्तिदो० असखे० भागो । संखे० भागहाणी ओष० । संखे० भागवट्टी ज० एगसमभो, संखे० गुणवट्टी-दोहाणीण ज० अंतोमु० । उक्क० सन्वेसिमण्णतक्कामसखेजा पोग्गमपरियट्टा ।

§ २०९ कृष्य नील, और कापात खेद्याबासो बीबोमें तीन वृद्धियों और अश्विष्ट विमलिका जपम्य अन्तरकाल एक समय है और दो हानियोंका जपम्य अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा समीक वृक्ष अन्तरकाल दुब्ब कम अपनी अपनी वृष्टि स्थितिप्रमाण्य है । तथा अक्षयात भागहानिका अन्तरकाल ओषके समान है । पीतक्षेत्राबासो बीबोके सौषर्म स्वर्गके समान और पद्मक्षेत्राबासो बीबोके अक्षरस्वर्गके समान जानना चाहिय । तथा दुग्धक्षेत्राबासो बीबोमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल एक समय है । संख्यात भागहानिका जपम्य अन्तरकाल अठ्ठु हुत और वृक्ष अन्तरकाल दुब्ब कम इक्कीस सागर है । तथा संख्यात गुणहानिका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल अन्तमु हुत और असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओषके समान है ।

§ २१० दायिकसम्पत्तिषोमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल एक समय तथा तीन हानियोंका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल अन्तमु हुत है । इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानिका वृक्ष अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर है । बेदकसम्पत्तिषोमें दो हानियोंका अन्तरकाल अश्विष्टानियोंके समान है । तथा संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । अज्ञमसम्पत्तिषोमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल एक समय है । तथा संख्यात भागहानिका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल अन्तमु हुत है । सम्पत्तिषोमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और वृक्ष अन्तरकाल एक समय है । तथा दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

§ २११. संही बीबोमें पंचेन्द्रियोंके समान मंग है । असंखी बीबोमें असंख्यात भागवृद्धि और अश्विष्टविमलिका जपम्य अन्तरकाल एक समय और वृक्ष अन्तरकाल पन्धोपमके असंख्यातमें भागप्रमाण्य है । संख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओषके समान है । संख्यात भागवृद्धि का जपम्य अन्तरकाल एक समय तथा संख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोंका जपम्य अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा एक समीक वृक्ष अन्तर अन्तरकाल है जो कि असंख्यात पुरापरिवर्तनप्रमाण्य है ।



§ २८९ आहारि० असखे० भागवट्टी हाणी० अवट्टि० ओघं । संखे० गुणवट्टी दोहाणी० जह० अतोमु० । संखे० भागवट्टी० ज० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असखे० भागो । अमंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ २९०. एाणाजीवेदि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदे-सेण य । तत्थ ओघेण अमंखेज्जभागवट्टी-हाणि-अध्वाणाणि णियमा अत्थि । सेस-पदाणि भयणिज्जाणि । भंगा वाटालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४२ । एव तिरिक्ख०-सव्वेडं दिय-पुढवी०-वाटरपुढवी०-वाटरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-वाटरआउ०-वाटरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वाटरतेउ०-वाटरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वाटरवाउ०-वाटरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त०-वणप्फटि०-वाटरवणप्फटि०-वाटरवणप्फटिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फटिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-वाटरणिगोद०-वाटरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-वाटरवणप्फटि-पत्तेय०-वाटरवणप्फटिपत्तेयअपज्ज०-वाटरणिगोदपटिट्ठिद-वाटरणिगोदपटिट्ठिद-

§ २८९ आहारक जीवोंके असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित-विभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान हैं । सख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा सख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा असख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ २९० नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिकाले जीव नियमसे हैं । ओघ पद भजनीय हैं । भग दोसो व्यालीस होते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वाटर पृथिवीकायिक, वाटर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वाटर जलकायिक, वाटर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वाटर अग्निकायिक, वाटर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वाटर वायुकायिक, वाटर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वाटर वनस्पतिकायिक, वाटर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वाटर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, वाटर निगोद, वाटर निगोद पर्याप्त, वाटर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर. वायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वाटर निगोद प्रतिष्ठित, वाटर निगोद

अपवृत्त०-काययोगि०-ओराखिय०-ओराखियमिस्स०-कम्मइय०-णवु स०-षत्तारि  
कसाय-मदि-सुदअण्णाल०-असन्नद०-अधक्खु०-विष्णिले०-मवसि०-अमवसि०-  
मिच्छादि० असण्णि०-आहारि-भणाहारि सि । एवरि मंगा जाणिय भवम्मा ।

प्रतिष्ठित प्रत्येकस्मिन् अपयाण्ट काययोगी, ओरारिककाययोगी ओरारिकमिअकाययोगी,  
कर्मैयकाययोगी सुसुसुवेही, ओषादि चारों कपायभासे मत्पद्यानी भूतादानी, असंयत, अचक्षु  
वर्द्धनवाले, कृप्यादि तीन क्षेत्रवासे मध्य, अमम्य, मिष्यादि, असंखी आहारक और अना  
हारक बीबंकि जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके मंग जान कर रहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मोहनीय कर्मोंकी स्थितिमें असंख्यातमागवृद्धि, संख्यातमागवृद्धि और संख्यात  
गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियाँ, असंख्यातमागवृद्धि, संख्यातमागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि और  
असंख्यातगुणवृद्धि ये चार वृद्धियाँ तथा अवस्थित इस प्रकार आठ पद प्राप्त होते हैं । इनमेंसे  
असंख्यातमागवृद्धि, असंख्यातमागवृद्धि और अवस्थित पदवासे नाना बीब नियमसे पाये  
जाते हैं इसलिये इनका एक प्रु.ब मंग हुआ । किन्तु क्षेत्र पाँच पद मन्नीय हैं । उनमेंसे किसी एक  
पदवासा कराचित् एक बीब होता है और कराचित् नाना बीब होते हैं । पर भी सम्भव है कि  
कराचित् किसी एक पदवासा एक या नाना बीब हों तथा उसी समय उससे मिला अन्य पदवासे भी  
एक या नाना बीब हों । इस प्रकार इन मन्नीय पदोंके मंगोंमें एक प्रु.ब मंगके मिलान पर कुल  
मंगोंका जोड़ २४३ होता है । यथा—

- १ प्रु.ब मंग
- २ संख्यातमागवृद्धिके एक और नाना बीबोंकी  
अपेक्षा
- ३ कुल जोड़
- ४ संख्यातमागवृद्धिके प्रत्येक और संख्यातगुण-  
वृद्धिके साथ एक और नाना बीबोंकी अपेक्षा  
संयोगी मंग
- ६ कुल जोड़
- १८ संख्यात मागवृद्धिके प्रत्येक व पूर्वोक्त दो पदों  
के साथ संयोगी मंग
- २७ कुल जोड़
- ४४ संख्यातगुणवृद्धि के प्रत्येक व पूर्वोक्त तीन  
पदोंके साथ संयोगी मंग
- ८१ कुल जोड़
- १६२ असंख्यातगुणवृद्धिके प्रत्येक व पूर्वोक्त चार  
पदोंके साथ संयोगी मंग
- २४३ कुल जोड़

मूलमें प्रु.ब मंगको सम्मिलित न करके जबस मन्नीय पदोंके २४२ मंग रहें और प्रु.ब  
मंगको अलग बतलाया है । अब यदि इन २४२ मंगोंमें प्रु.ब मंग भी मिला दिया जाता है तो कुल  
मंगोंका जोड़ २४३ होता है तथा कि इसमें पूर्वमें बटित करक बतलाया ही है । आगे सामान्य  
२१

§ २६१ आदेसेण णेरइएसु असखे० भागहाणि-अवट्टाणाणि णियमा अत्थि ।  
 सेसपदा भयणिज्जा । भंगा वाढालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४२ । एवं सत्तमु पुढवीसु  
 सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-  
 सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-वादरपुढवीपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-  
 वादरवाउपज्ज०-वादरवण प्फदिपत्तेयपज्ज०-वादरणिगोदपदिट्ठिदपज्ज०-सव्वतस०-  
 पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-  
 सण्णि त्ति ।

तिर्यंच आदि मार्गणाओंमें जो ओघके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका मतलब यह है कि उन मार्गणाओंमें जहा जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असख्यात भागहानि, असख्यात भागवृद्धि और अवस्थित इन तीन पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भग हे और शेष पद भजनीय हैं । विशेष खुलासा इस प्रकार है—मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओंमेंसे काययोग, औदारिक-काययोग, चारों कपाय, अचक्षुदर्शन, भव्य, आहारक और नपुसकवेद ये मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें अचिक्क ओघ-प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः २४३ भग प्राप्त होते हैं । सामान्य तिर्यंच, औदारिकमिश्रकाय-योगी, कामरूकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असायत, असङ्गी, अनाहारक, मिथ्यादृष्टि, अभव्य और कृष्णादि तीन लेश्यावाले ये मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें असख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती अतः भजनीय पद चार रह जाते हैं और इसलिये इनमें ध्रुव भगके साथ कुल भग ८१ होते हैं । तथा इनके अतिरिक्त जो एकेन्द्रिय और उनके भेद तथा पाच स्थावरकाय और उनके भेद वतलाये हैं । उनमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणहानि और असख्यातगुणहानिके विना एक वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित ये पाच पद ही पाये जाते हैं । सो इनमेंसे असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित पद की अपेक्षा एक ध्रुव भग ही प्राप्त होता है । अब भजनीय पद दो रह जाते हैं, अतः इनमें ध्रुव भगके साथ कुल नौ भग होते हैं ।

§ २६१ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष पद भजनीय हैं । भग दोसौ व्यालीस होते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त, वादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और सङ्गी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें असख्यात गुणहानिको छोडकर सात पद हैं पर उनमें असख्यात भागहानि और अवस्थित ये दो पद ध्रुव हैं तथा शेष पाच पद भजनीय हैं, अतः यहा भी भजनीय पदोंके २४२ भग और एक ध्रुव भग इस प्रकार कुल २४३ भग प्राप्त होते हैं । आगे सातों तरहके नारकी आदि कुछ और मार्गणाओंमें जो सामान्य नारकियोंके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका यह मतलब है कि जहा जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असख्यात भागहानि और अवस्थित इन दो पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भग है और शेष पद भजनीय हैं । विशेष खुलासा इस

§ २६२ मनुस्सअपज्ज० सख्खपदा भयणिञ्जा । एवं बच्चम्मियमिस्स०  
अनगद०-सुद्धम०-सम्मामि० । छपरि मंगा जाणिय वचच्चा ।

§ २६३ आणदादि चाव सख्खसिद्धि चि अमखेज्जभागहाणी णियमा  
अस्यि । सिया एदे च संखेज्जभागहाणिविहचिओ च । सिया एदे च सख्खे०भाग  
हाणिविहचिया च । धुनसहिदा तिष्मि मंगा । पणं परिहार०-संभदासंमद० ।

§ २६४ आहार-आहारामस्स० सिया असखेज्जभागहाणिविहचिओ,  
सिया असख्खे०भागहाणीविहचिया एवं दाण्णि मंगा २ । एवमकसा० ब्रह्मस्वाद०-  
सासण० । आभिणि०-सुद०-ओहिणाणीसु असखेज्जभागहाणी णियमा अस्यि । सेस

प्रश्न है—मूलमें गिनार्ह दुई मार्गोणाज्जेसे साठों नरकके नारकी पंचेन्द्रिय तिर्येच, सामान्य वेच, मयनवासियोसे लेकर सहकार कस्यतकके वेच पंचन्द्रिय अपर्वाण, प्रस अपर्वाण वैकियिककस्य-  
योगी विमंगहानी पीतसेव्यावाले और पद्मसेव्यावाले ये मार्गोणाएँ ऐसी हैं जिनमें सामान्य नार  
किकोंके समान प्रकूपणा बन जाती है अतः इनमें प्र च मंग सहित कुल मंग २४१ होते हैं ।  
सामान्य मनुष्य पर्वाण मनुष्य मनुष्यनी पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याण प्रस, प्रस पर्वाण पाँचों  
मनोयोगी पाँचों धननवाणी, स्त्रीदेवबाले पुरुषदेवबाले, चतुर्धनी और संघी ये मार्गोणाएँ ऐसी  
हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि और पाई जाती है, अतः कुल भाठ पर्वोंसे भवनीय पच  
६ हो जाते हैं अतः यहाँ प्र च मंगके साथ कुल मंग ७२६ हो जाते हैं । विकल्पत्रयोंमें असंख्यात  
मगबुद्धि संख्यातमगबुद्धि तथा तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार बह पच हैं । इनमेंसे चार  
अमृ च हैं अतः यहाँ प्र च मंगके साथ कुल मंग ८१ होते हैं । अच सेप रहीं प्रकियीकस्यिक पर्याण  
व्यधि मार्गोणाएँ सो इनमें असंख्यात मगबुद्धि, तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार पाँच पच  
हैं । इनमेंसे तीन अमृ च हैं अतः यहाँ प्र च मंगके साथ कुल मंग २० होते हैं ।

§ २६२ मनुष्य अपर्वाणकके समी पच भवनीय हैं । इसी प्रकार वैकियिकमिभकस्ययोगी  
अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंबत और सम्मम्मिप्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिये । इतनी विषेपता  
है कि इनके मंग जानकर कचना चाहिये ।

विशेषाये—साम्यपर्याण मनुष्योंके असंख्यात गुणहानिके सिवा साठ पच पाव जाते हैं  
और ये सब भवनीय हैं अतः यहाँ प्र च मंगके बिना कुल मंग २१८६ होंगे । इसी प्रकार वैकियिक-  
मिभकस्ययोगमें २१८६ मंग ज्ञानना चाहिये । अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंबत और सम्मम्मिप्या-  
दृष्टिके असंख्यातमगहानि संख्यातमगहानि और संख्यातगुणहानि ये तीन पच हैं तथा ये तीनों  
भवनीय हैं, अतः यहाँ २६ मंग होंगे ।

§ २६३ अन्तसे लेकर सर्वावैसिद्धिकके वेचोंमें असंख्यात मगहानिबाले जीव नियमसे  
हैं । तथा कदाचित् असंख्यात मगहानिबाले अमक जीव हैं और संख्यातमगहानिबाला एक  
जीव है । कदाचित् असंख्यातमगहानिबाले अनेक जीव हैं और संख्यात मगहानिबाले अनेक  
जीव हैं । इस प्रकार प्र च मंगसहित तीन मंग हाव हैं । इसी प्रकार परिहारविमुद्धिसंबत और  
संपतासंपत जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ २६४ आहारकस्ययोगी और अहारकमिभकस्ययोगी जीवोंमें कदाचित् असंख्यात मग-  
हानिबाला एक जीव है और कदाचित् असंख्यातमगहानिबाले अनेक जीव हैं । इस प्रकार दो  
मंग हैं । इसी प्रकार अकपायी, यथाम्पातसंबत और सासावनसम्पदृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।  
आभिनिवायिकहानी, धुतहानी और अचविशानी जीवोंमें असंख्यात मगहानिबाले जीव नियम

पदा भयणिज्जा । एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मा-  
दि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति । उवसम० दो हाणी भयणिज्जा ।

एव शाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

§ २६५. भागाभागानुगमेण दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य ।  
ओघेण असंखे०भागवट्ठी० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे०भागो । अवट्ठि०  
सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्ज०भागो । असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ?  
संखेज्जा भागा । सेसपदा सव्वजीवा के० ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख०-सव्व-  
एइंदिय - वणप्फदि०-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - सुहुमवणप्फदि०-  
सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद० - वादरणिगोद०-वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-  
सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त - कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-  
कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिणिल्ले०-भवसि०  
से हैं । तथा शेषपद भजनीय हैं । इसी प्रकार मन.पर्ययज्ञानी, सयत, सामाधिकसयत, छेदोपस्था-  
पनासयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानिया भजनीय हैं ।

**विशेषार्थ**—आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असख्यात भागहानि  
की अपेक्षा एक ध्रुवपद है और सख्यातभागहानि, सख्यातगुणहानि और असख्यात गुणहानि  
ये तीन पद अध्रुव हैं अतः यहा ध्रुव भगके साथ कुल भंग २७ होंगे । इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी,  
संयत, सामाधिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि और  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके २७ भग जानना चाहिये । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके असख्यात  
गुणहानि नहीं होती, अतः यहा एक ध्रुवपद और दो भजनीय पद हुए और इसलिये कुल भग नौ  
होंगे । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके असख्यात भागहानि और सख्यात भागहानि ये दो पद ही होते  
हैं । किन्तु दोनों भजनीय हैं अतः यहा कुल भंग आठ होंगे ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६५ भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असख्यात भागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें  
भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । असख्यात  
भागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । शेष पदवाले जीव सब  
जीवोंके कितने भाग हैं । अनन्तवें भाग हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्प-  
तिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,  
निगोद, वादरनिगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त,  
सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी,  
नपु सकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि

ममवसि०-मिच्छादिदि०-असम्बि०-आहारि० अणाहारि चि ।

‡ २६६ आदेसेण जेरइपसु भवदि० सव्वमी० क० ? संखेज्जदिमागो । असंखे० मागहाणी० सम्बजी० के० ? सखेजा मागा । सेसपदा सव्वमीवाण के० ? असंखे० मागो । एवं सससु पुववीसु सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसमपज्जस दस भवणादि जान सहस्सार० सव्वभिगन्धिय सव्वपंचिदिय घचारिकाय-बादर-सुहुम-पज्जचापज्ज-बादरपणप्फदि० पत्तेय०-सव्वतस०-यचमाण०-यचवधि० [वेठम्बि०] वेठम्बियमिस्स० इत्थि-पुरिस० बिहप० चकसु०-वेउ०-यम्म०-सण्णि चि । मणुसपज्ज० मणुसिणीसु असंखे० मागहाणी० सम्बजी० के० ? संखेजा भागा । सेसपदा संखेज्जदिमागो । एवमपगद०-मणुपज्ज०-संनद०-सामाइय-खेदो०-सुहुय०-संभदे चि ।

‡ २६७ आखदादि जाव अवराइदे चि असंखे० मागहाणी० सव्वमी० क० ? असंखेजा भागा । संखे० मागहाणी० सव्वमी० के० ? असंखे० मागा । एव

रीन सेस्याबले मम्म, अम्म्य, मिच्छादिदि असंखी आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ-** यहाँ तिर्येच आदि अम्य मार्गाणाओंमें जो ओपके समान मागामाग जाननी सूचना की सो उसका यह अर्थिप्राप नहीं कि इन सब मार्गाणाओंमें सब पक्षोंकी अपेक्षा ओपके समान मागामाग बन जाता है । किन्तु इसका इतना ही अर्थिप्राप है कि जहाँ कितने पक्ष सम्भव हों वहाँकी अपेक्षा मागामाग ओपके समान ही जानना । तथा जहाँ जो पक्ष न हो उसकी अपेक्षा मागामागका कवन नहीं करना । आगे भी इसी प्रकार विचार करके बचामम्म्य मागामाग जानना चाहिये ।

‡ २६६ आदेज्जनिर्वेणकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितविमट्टिबाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । असंख्यात मागहाणिकाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं । संख्यात ऋतुभाग हैं । दोष पक्षबाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी सभी पंचत्रियतिर्येच सामान्य मनुष्य मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव सभी विकलेत्रिय सभी पंचेन्द्रिय पृथिवीकामिक आदि चार स्थावरकाज तथा इनके वावर और सूक्ष्म तथा वावर और सूक्ष्मोंके पर्वाण और अपर्याण, वावर वनस्पतिकामिक मर्यादपरि, सभी व्रस, पक्षों मनोयोगी, पक्षों कचनयोगी, वैश्विकिकापयोगी, वैश्विकिमिज्जकापयोगी जीवपक्षाले पुस्येवबाले विद्वग जानी बहुरर्जनबाले पीतलेहबाबाले, पक्षलेहबाबाले और संखी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याणक और मनुष्यनियोंमें असंख्यात मागहाणिकाले जीव उक्त सभी जीवों के कितने भाग हैं ? संख्यात ऋतुभाग हैं । तथा दोष पक्षबाले जीव संख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार अपराठ-बदबाले मन्त्रपक्षबाली संवत्, सामाधिकसंवत् क्षेरोपत्थावनासंवत् और सूक्ष्मसांपराधिक संवत् जीवोंके जानना चाहिये ।

‡ २६७ आमत कल्पसे लेकर अपराठित तकके देवोंमें असंख्यात मागहाणिकाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यात ऋतुभाग हैं । संख्यात मागहाणिकाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं । असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार अणमसम्पगदि और संवत्सांवत्

§ ३०५. खड्य० असंखेज्जभागहाणी० के० ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा । वेदग० तिण्णि हाणी० के० ? असंखेज्जा । उवसम० दो हाणी० असंखेज्जा । सासण० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० तिण्णि हाणी० वेदय०भंगो ।

एवं परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ ३०६. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्दसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्डी हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा केवडि खेत्ते ? लोग० असंखेज्ज०भागे । एवमणंतरासीणं ।

§ ३०७. पुढवी-वादरपुढवी-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी-सुहुमपुढवीपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादर आउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउअपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउअपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादर-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउअपज्जत्तापज्जत्त० असंखेज्जभागवड्डी-हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा० के० ? लोग० असंखेज्ज०भागे । सेससंखेज्जासंखेज्जरासीणं सव्वपदा लोगस्स असंखे०भागे । एवरि वादरवाउ-

§ ३०५. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । तथा शेष पदवाले जीव साख्यात हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका प्रमाण वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान है ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०६. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनन्त साख्यावाली राशियोंके कहना चाहिये ।

§ ३०७. पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, जीवोंमें असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । शेष साख्यात और असाख्यात साख्यावाली राशियोंकी अपेक्षा सभी पदवाले जीव

पञ्च० असंख्ये० भागवद्गी हाणी अवधि० सोगस्त संख्येज्जदिभागे ।

एवं संचाणुगमो समप्तो ।

§ ३०८ पोसणाणुगमेण दुविहो थिरेसो—ओपेण आवेसेण य । तस्य ओपेण असंख्येज्जभागवद्गी-हाणी-अवधि० केनचिदं खेचं पोसिदं ? सम्बलोगो । दोषद्गी दोहाणी० के० खे० पो० ? सोग० असंख्ये० भागो अट्ट-ओइसभागा देवणा सम्बलोगो वा । असंख्येज्जगुणहाणी० के० खे० पो० ? सोग० असंख्ये० भागो । एवं कायमीगि०-चचारिकसा०-अचरत्सु० भवसि०-आहारि चि ।

लोकके असंख्यातर्षे मागप्रमाय अत्रमे रहते हैं । इतनी विवेकता है कि बापर वायुकायिक पर्याप्त बीबीमें असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले बीबीका क्षेत्र लोकाय संख्यातर्षा भाग है ।

विशेषार्थ—ओपसे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्ति-वाले बीव अन्तर्हैं यह परिमाणसुयोगद्वारमें बतला ही भाष्य हैं और अनन्त संख्यावाली एकिर्षोका स्वस्मान्की अपेक्षा भी सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इन तीन पर्यायों बीबीका ओपसे सब लोक क्षेत्र फल । किन्तु क्षेत्र पांच पर्यायों बीव बहुत स्वल्प हैं, क्योंकि इन पर्यायों अधिकतर ब्रह्मसे ही सम्बन्ध है । वा हानियां ऐसी हैं जो स्थावरोंके भी पर्यं जाती हैं पर जो वस स्थितिकाण्डकपातके द्वारा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिको कर रहे हैं ऐसे वस पर्यं मर कर एकन्द्रियोंमें छ्यन्न हों तो उन स्थावरोंके ही वे दो हानियां पर्यं जाती हैं अतः क्षेत्र पर्यायोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातर्षे मागप्रमाय ही बनता है । जितनी भी अनन्त संख्यावाली मार्गद्वार हैं उनमें भी अपने अपने सम्मल पर्यायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिये । तथा सामान्य दृष्टिविधिकायिक आदि कुछ असंख्यात संख्यावाली ऐसी मार्गद्वार हैं जिनका सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः उनमें भी अपने सम्मल पर्यायोंकी अपेक्षा अधिकतर ओप मरुपया पदित हो जाती है । पर इतसे अतिरिक्त जितनी भी असंख्यात वा संख्यात संख्यावाली मार्गद्वार हैं उनमें सभी सम्मल पर्यायोंकी अपेक्षा अत्र लोकके असंख्यातर्षे मागप्रमाय ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन मार्गद्वारोंके बीबीका क्षेत्र ही लोकके असंख्यातर्षे मागप्रमाय है । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त बीव इस व्यवस्थाके अधजातभूत हैं क्योंकि इनका अत्र लोकके संख्यातर्षे मागप्रमाय है अतः उनमें असंख्यात भागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित विभक्तिवालोंका अत्र लोकके संख्यातर्षे मागप्रमाय जानना और दोन पर्यायोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातर्षे मागप्रमाय क्षेत्र जानना ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०८ स्वर्णानुगमकी अपत्ता निर्देश वा प्रकारका है—ओपनिर्देश और आवेशनिर्देश ।

उनमेंसे ओपकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले बीबीने कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? सर्वलोकका स्वर्ण किया है । वा वृद्धि और दो हानिवाले बीबीने कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? लोकके असंख्यातर्षे माग क्षेत्रका, वसमातीके ओइह मार्गोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाय क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाय क्षेत्रका स्वर्ण किया है । असंख्यात-गुणहानिवाले बीबीने कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? लोकके असंख्यातर्षे माग क्षेत्रका स्वर्ण किया है । इसी प्रकार व्यवसायी व्यवधि वापे कयवचाने अचरुदर्यन्तवाल, मय्य और आहारक बीबीके जानना चाहिये ।



सुवसम०-संजटासंजटाणं । सव्वट्ठे असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? मंखे०भागा ।  
सखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? सखे०भागो । एवं परिहार० ।

§ २६८. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ?  
असखेज्जा भागा । सेसपदा अमंखे०भागो । एवमोद्धिसं०-गुक्क०-सम्मादि०-खडय०-  
वेदय०-सम्मामिच्छादिट्ठि ति । आहार० आहारमिस्स०-अकसा०-जहाक्खाद०-  
सासणसम्मादिट्ठीणं एत्थि भागाभागं ।

एवं भागाभागानुगमो समत्तो ।

§ २६९, परिमाणानुगमेण दुविहो एहिसे०-ओघेण आदेसेण य । तत्थ-  
ओघेण असंखे०भागवट्ठी हाणी० अवट्ठि० केत्तिया ? अणंता । टोवट्ठी० टोहाणी०  
के० ? असंखेज्जा । असखे०गुणहाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । एव कायजोगि०-  
ओरालि०-एणुसं०-चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवमि०-आहारि ति ।

§ ३०० आदेसेण णेरइएमु सव्वपदा केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरडय-  
सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविग-  
लिट्ठिय-पंचिदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-वादग्घणप्फट्ठिपत्तेय०-तस्सेव पज्जत्तापज्ज०-

जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें असख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके  
कितने भाग हैं । सख्यात बहुभाग हैं । सख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग  
हैं ? सख्यातवै भाग हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धि सयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २६८ आभिनिवोधिकन्नानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असख्यात भागहानिवाले  
जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । तथा जेव पदवाले जीव  
असख्यातवै भाग हैं । इसी प्रकार अवधिदशनवाले, शुक्लेदश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षाधिकसम्यग्दृष्टि,  
वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी, आहारकमिश्र-  
काययोगी, अकपायी, यथाख्यातसयत और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भागाभाग नहीं है ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६९ परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले  
जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । दो वृद्धियों और दो हानियोंवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं ।  
तथा असख्यात गुणहानिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक-  
काययोगी नपुमकवेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, अवचुदर्शनवाले, भव्य और आहारक  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३००. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी  
प्रकार सभी नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर  
सहस्सार-स्वर्गतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक आदि चार स्यावर

तसअपञ्ज०-वेउण्विय०-वेउण्वियमिस्स-विहंग०-सेठ०-पम्मसेस्से चि ।

§ ३०१ तिरिक्त्वा ओषं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमेइदिय सम्बणणफदि० श्रीराम्भियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंनद०-तिप्पसे०-अमप० मिच्छादिदि-असण्णि अण्णाहारि चि ।

§ ३०२ मणुस्समु णिरओषं । णवरि असंखे०गुणहाणी० संखेज्जा । एवं पंथिदिय पंथि०पञ्ज०-तस-तसपन्न०-पंचमण०-पंचमपि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु० सण्णि चि । मणुस्सपञ्ज०-मणुस्सिणीमु सम्बपद० क० ? संखेज्जा । एवं सम्बट्ठ०-अइणद०-मणपञ्ज०-संजद०-सामाइय-जेदो० परिहार० सुइमसांपराप० ।

§ ३०३ आणदादि चाप अवरानिदा चि असंखे०भागहाणी मंखे०भागहाणी केचि० ? असंखेज्जा । [एवं संमदासंजद० । आहार० ] आहार०मिस्स० असंखे०भाग हाणी० केचि० ? संखेज्जा । एवमकसाय०-महाक्त्वाद०चि ।

§ ३०४ आमिण्णि०-सुद०-ओहि० तिप्पि हापि० केचिया ? असंखेज्जा । असंखे०गुणहाणी० संखेज्जा ? एवमोहिदंस०-सुक०-सम्मादिदि चि ।

काय, बाहर बनस्पतिक्रायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त व्रस अपर्याप्त वैश्वियकमन्ययोगी वैश्वियकमिभकाययोगी विमंगहानी पीतसेवनाबाले और पद्यसेवनाबाले बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ३१ तिरिक्त्वा में असंख्यातभागहृदि आविष्की अपेक्षा संख्या व्योषके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात गुणहानि नहीं है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय सभी बनस्पतिक्रायिक, औदारिकमिभकाययोगी, कामैयकाययोगी मत्स्यहानी मुतहानी असंयत, कृष्णादि तीन सेवनाबाले, अभम्म, मिध्यादृष्टि, असंखी और अनहारक बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ३२ मनुष्योंमें असंख्यात भागहृदि आविष्की अपेक्षा संख्या सामान्य नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात गुणहानिबाले बीब संयत हैं । इसी प्रकार पंचन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त व्रस व्रसपर्याप्त पांचों मनोयोगी पांचों बन्धनयोगी स्त्रीबन्धनाले, पुष्पबन्धनाले पशुवर्धनबाले और संघी बीबोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियों में सभी पर्याप्त बीब कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सभासिद्धिक देव व्यपगतवदबाले मनःपर्ययहानी सयत, सामायिकसंयत जेदोपत्त्वापनासंयत परिहारकिसिद्धिसंयत और सूस्म सांपरायिकसंयत बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ३३ अनातकल्पसे लेकर अपराश्रित तकके देवों में असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानिबाले बीब कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार संयतासंयत बीबोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिभकायवागियोंमें असंख्यात भागहानिबाले बीब कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अकपापी और पथाप्यातसंयत बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ३४ आमिन्निबोधिकाहानी भतहानी और प्यबधिहानियोंमें तीन हानिबाले बीब कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा अकशतगुणहानिबाले बीब संख्यात हैं । इसी प्रकार अकपिद्वान-बाले, दुष्सासेवनाबाले और सम्पदृष्टि बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ३०५, खड्य० असंखेज्जभागहाणी० के० ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा । वेदग० तिण्णि हाणी० के० ? असंखेज्जा । उवसम० दो हाणी० असंखेज्जा । सासण० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० तिण्णि हाणी० वेदय०भंगो ।

एवं परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ ३०६, खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवट्ठी हाणी अवट्ठि० केवट्ठि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा केवट्ठि खेत्ते ? लोग० असंखेज्ज०भागे । एवमणंतरासीणं ।

§ ३०७, पुढवी-वादरपुढवी-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी-सुहुमपुढवीपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त० तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त०-वाउ०-वादर-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त० असंखेज्जभागवट्ठी-हाणी अवट्ठि० केवट्ठि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा० के० ? लोग० असंखेज्ज०भागे । सेससंखेज्जासंखेज्जरासीणं सव्वपदा लोगस्स असंखे०भागे । एवरि वादरवाउ-

§ ३०५ चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । तथा शेष पदवाले जीव साख्यात हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सम्यग्मिध्यादृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका प्रमाण वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान है ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०६ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनन्त साख्यावाली राशियोंके कहना चाहिये ।

§ ३०७ पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, जीवोंमें असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । शेष साख्यात और असाख्यात साख्यावाली राशियोंकी अपेक्षा सभी पदवाले जीव

पञ्च० असंस्ते० मागबड्डी हाणी भवटि० सोगस्स संस्तेज्जदिमाग ।<sup>१</sup>

एणं सोत्ताणुगमो समघा ।

§ ३० = पोसणाणुगमेण दुबिहो णिहोसो—ओपेण आदेसेण य । तत्त्व ओपेण असंस्तेज्जमागबड्डी-हाणी-भवटि० केवटिप खेचं पोसिदं ? सम्बसोगो । दोवड्डी दोहाणी० के० खे० पो० ? सोग० असंस्ते मागो अट्ट-ओइसभागा देवूणा सम्बसोगो धा । असंस्तेज्जगुणहाणी० के० खे० पो० ? सोग० असंस्ते० मागो । एणं कायभोगि०-नचारिकसा० अचकसु०-भवसि०-माहारि चि ।

लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी क्षेत्रमें रहते हैं । इतनी बिशेयता है कि बाहर वायुकायिक पर्याप्त बीबेनि असंस्तेज्जमागबड्डी, असंस्तेज्जमागहानि और अवस्थितविमत्तिवाले बीबेनि क्षेत्र लोके संस्तेज्जमाग है ।

बिशेयार्थ—ओपेमे असंस्तेज्जमागबड्डी असंस्तेज्जमागहानि और अवस्थित विमत्ति-वाले बीबेनि अन्तर्गत हैं यह परिमाणानुमागप्रमाणें वतता ही आते हैं और अन्तर्गत संस्तेज्जमागाली राशिपोंका स्वस्मानकी अपेक्षा भी सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इन तीन पत्रवाले बीबेनि ओपसे सब लोक क्षेत्र बना । किन्तु ओप पांच पत्रवाले बीबेनि बहुत स्वल्प हैं, क्योंकि उन पत्रोंका अधिकतर त्रसोसे ही सम्बन्ध है । वा हानियां ऐसी हैं वा स्वाचरोंके भी पार्श्व जाती हैं पर ओ ब्रह्म स्वितिकाण्डकपातके द्वारा संस्तेज्जमाग मागहानि और संस्तेज्जमाग गुणहानिका कर रहे हैं ऐसे त्रस पत्र मर कर पत्रत्रियोंमें उत्पन्न हों तो उन स्वाचरोंके ही व ओ हानियां पार्श्व जाती हैं अतः क्षेत्र पत्रवालोंका क्षेत्र लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी वतता है । अतः ही अन्तर्गत संस्तेज्जमागाली मार्गसायं हैं इनमें भी अपने अपने सम्बन्ध पत्रोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिये । तथा सामान्य पृथिवीकायिक आदि कुछ असंस्तेज्जमाग संस्तेज्जमागाली ऐसी मार्गसायं हैं जिनका स्व लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इनमें भी अपने अपने सम्बन्ध पत्रोंकी अपेक्षा अधिकतर ओप प्रकृत्या बटित हो जाती है । पर इनसे अतिरिक्त अतः ही असंस्तेज्जमाग या संस्तेज्जमाग संस्तेज्जमागाली मार्गसायं हैं उनमें सभी सम्बन्ध पत्रोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी मागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उन मार्गसायं बीबेनि क्षेत्र ही लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी मागप्रमाण है । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त बीबेनि इस व्यवस्थानके अपमानमूल हैं क्योंकि इनका क्षेत्र लोकके संस्तेज्जमागबड्डी मागप्रमाण है अतः इनमें असंस्तेज्जमाग मागहानि, असंस्तेज्जमाग मागबड्डी और अवस्थित विमत्तिवालोंका क्षेत्र लोकके संस्तेज्जमागबड्डी मागप्रमाण जानना और ओप पत्रोंकी अपेक्षा लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी मागप्रमाण क्षेत्र जानना ।

इस प्रकार क्षेत्रानुमाग समाप्त हुआ ।

§ ३ = स्वर्णानुमागकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

अन्तर्गत ओपकी अपेक्षा असंस्तेज्जमाग मागबड्डी, असंस्तेज्जमाग मागहानि और अवस्थितविमत्तिवाले बीबेनि कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? सर्वलोकका स्वयं किया है । दो बड्डी और दो हानियां बीबेनि कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी माग क्षेत्रका त्रसतत्त्वके बौर मागोंमें से कुछ बन आठ मागप्रमाण क्षेत्र और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । असंस्तेज्जमाग-गुणहानिका बीबेनि कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? लोकके असंस्तेज्जमागबड्डी माग क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार कायभोगी, ओपदि चारों कयापवाले, अचकसुर्णनवाले सम्ब और आहारक बीबेनि जानना चाहिये ।

§ ३०९. आदेसेण णेरइण्णु सव्वपदा के० खे० पो० ? लो० अमसंखेभागो छ चोइस० देसूणा । पढमपुढ्वि० खेत्तभंगो । विट्ठियादि जाव मत्तमि त्ति सव्वपदाणं विहत्तिएहि के० खे० पो० ? लो० असंखे०भागो एक्क वे त्तिण्णि चत्तारि पंच छ चोइसभागा देसूणा ।

§ ३१०. तिक्खि० असखे०भागवट्ठी-हाणी०-अट्ठि० के० ? सव्वल्लो० । दोवट्ठी-दोहाणी० के० खे० पो० ? लो० असंखे०भागो सव्वल्लो० वा । एवमो-रालियमिस्स०-कम्मइय०-त्तिण्णिले०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

**विशेषार्थ—**ओपमे असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित पदवालोंका स्पर्श सब लोक वतलानेका कारण यह है कि इन पदवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं। सख्यात भागवृद्धि, सख्यात गुणवृद्धि, सख्यात भागहानि और सख्यात गुणहानि इन पदवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका वतलाया है। लोकका अनसख्यातवा भाग स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा वतलाया है। कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण रपर्ण विहार, वेदना आदि की अपेक्षा वतलाया है, क्योंकि उक्त पदवालोंका नीचे दो राजु और ऊपर छह राजु तक गमना-गमन पाया जाता है। और सब लोक प्रमाण स्पर्श भासणान्तिक समुद्रात और उपपादपदकी अपेक्षा वतलाया है। तथा असख्यात गुणहानिवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण वतलानेका कारण यह है कि इस पदको नीचे गुणस्थानवाले जीव ही प्राप्त होते हैं। पर नाचें गुणस्थानवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं है। कुछ मार्गणाए भी ऐसी हैं जिनमें यह ओप-प्ररूपणा अविफल बन जाती है। जैसे काययोगी आदि, अतः इनके कथनको ओपके समान कहा।

३०९ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पांच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ—**नरकमें सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्श वतलाया है वही यहा सब पदवालोंका स्पर्श है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। कारण यह है कि सब नारकी सबी पचेन्द्रिय होते हैं अतः सबके सब पद सम्भव हैं और इसीलिये यहा प्रत्येक पदकी अपेक्षा वही स्पर्श प्राप्त होता है जो सामान्य नारकियोंके या उस नरकके नारकियोंके वतलाया है।

§ ३१० तिर्यचोंमें असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, असंखी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३११ सम्बन्धि० विरिक्त्त० सम्बन्धि० के० खे० पो० । छाग० असंखे० भागो सम्बन्धो गो वा । एवं मणुस्सम्पन्न०-सम्बन्धिगन्धिय पन्धियमपन्न० वादरपुडपिपन्न० वादरआठपन्न०-वादरतेठपन्न०-वादरवाठपन्न-वादरवणपन्नदिपरोय पन्न०-तसम्पन्नचे धि । एनरि वादरवाठपन्नचपदि असंखेभागावद्दो हाणी-अवधि० के० खे० पोसिर्द ? लो० संखे० भागो सम्बन्धो गो वा । मणुसतिप० पन्धि० विरिक्त्त मंगो । एनरि असं० गुणहाणीए मापमंगा ।

§ ३१२ दन्सु सम्बन्धाण्यं धि० के० खे० पोसिर्द ? लो० संखे० भागो अहण चोइस० देखा । एवं सोहम्मीसाणे । मधण०-माण० नाइसि० सम्बन्धा० के० खे० पो० ? लो० असंखे० भागो अइधुदु णवचोइसभागा वा दसूणा । सणनहुमागदि गाव सहस्सारी धि सम्बन्धा० के० खे० पो० ? लो० असंखे० भागो अहचोइस०

**विशयार्थ—**तिर्यचोमि असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितपदवाले जीव सब शोकमें पाये जाते हैं अतः इन तीन पदवालोंमें स्वयं सब शोक पतलाया है । संख्यात भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि विभिन्नवाले तिर्यच जीव पाये तो लाकके असंख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही जाते हैं किन्तु मारकामिक और उपपात्रपक्षी अपेक्षा अतीत कालमें इन्होंने सब शोकका स्वयं किया है इसलिये इनका शोकके असंख्यातमें भागप्रमाण और सब शोकप्रमाण स्वयं बनताया है । औदारिकमिमन्त्रायबोग आदि मूलमें गिनताई गइ कुत्र और पेसी मार्ग्याए हैं जिनका स्वयं तिर्यचोमि समान है अतः उनके कथनका तिर्यचोमि समान करा ।

§ ३११ सभी पंचेन्द्रिय तिर्यचोमि सभी पदवाले जीवोंमें कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके असंख्यातमें भाग और सर्वलाकप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्मात, सभी विद्वत्त्रिय पंचेन्द्रिय अपपात, वादर एविबीकायिक पर्यात, वादर बलकायिक पर्यात, वादर अग्निकायिक पर्यात वादर वायुकायिक पर्यात वादर धनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्यात और ब्रह्म अपयाम जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि वादर वायुकायिक पर्यातमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविविधवाले जानान कितन क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके संख्यातमें भाग और उपपात्रप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । मनुष्यात्रकके पंचेन्द्रिय तिर्यचोमि समान स्वयं जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि इनके असंख्यात गुणहानिका अपवा स्वयं भागके समान है ।

§ ३१२ वचामि सभी पदवाल जावाने कितन क्षेत्रका स्वयं किया है ? लाकके असंख्यातमें भाग और ब्रह्मनालीके वीइह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम ती भागप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार सोवर्न और पेयान स्वयं के देवोंके जानना चाहिये । मधनवासी, म्यन्तर और ओठिपी देवोंमें सभी पदवाल जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका और ब्रह्मनालीके वीइह भागोंमें से कुछ कम सादे तीन भाग और कुछ कम ती भाग प्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । सत्कुमारसे लेकर सत्कार स्वर्गतके देवोंमें सभी पदवाल जीवोंने कितन क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका और ब्रह्मनालीके वीइह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । अन्तः प्रत्युत, आर्य

देसूणा । आणद-पाणद-आरणचुद० सव्वपदा० के० खेत्तं पोसिदं० ? लोग० असंखे०-  
भागो छचोइसभागा वा देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-  
आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा० मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-  
सुहुम०-जहाक्खादसंजदे ति ।

§ ३१३ सव्वेइंदिय० असंखेज्जभागवड्डी-हाणी-अवट्ठा० के० खे० पो० ? सव्व-  
लोगो । सेसपद० वि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं  
पुढवी०-वादरपुढवी०-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी०-सुहुमपुढवीपज्जत्तापज्जत्त-

और अच्युत कल्पके देवोंमें सभी पदवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके अस-  
ख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
सोलहवें कल्पके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपाथी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत,  
सामाधिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथाख्यात  
सयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सब प्रकारके पचेन्द्रिय तिर्यचोंका वर्तमानकालीन और कुछ अन्य पदोंकी अपेक्षा  
अतीत कालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण तथा मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा  
अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है । तथा सब प्रकारके पचेन्द्रिय तिर्यचोंके असख्यात  
गुणहानिको छोड़कर सब पद समभव हैं अतः सब प्रकारके तिर्यचोंमें सब पदवालोंका स्पर्श लोकके  
असख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है । मूलमें गिनाई गई मनुष्य अपर्याप्तक आदि सब  
मार्गणाओंमें भी अपने अपने पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्श प्राप्त होता है अतः उनके कथनको  
पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान कहा है । किन्तु वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके असख्यात भागवृद्धि,  
असख्यात भागहानि और अवस्थित पदकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात यह है कि इन जीवोंने  
वर्तमानमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और अतीत कालमें सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया  
है अतः उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्श उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है । जिन कारणोंसे  
पचेन्द्रिय तिर्यचोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण या सब लोक प्राप्त होता है वे ही कारण  
मनुष्यत्रिकके भी समझना चाहिये अतः इनमें पचेन्द्रियतिर्यचोंके समान स्पर्श बतलाया है । किन्तु  
मनुष्योंके नौवा गुणस्थान भी होता है अतः यहा असख्यातगुणहानि सम्भव है । फिर भी असख्यात  
गुणहानिवालोंका जो स्पर्श ओघसे कह आये है वही उक्त पदकी अपेक्षा मनुष्योंके जानना चाहिये  
क्योंकि यह पद मनुष्योंके ही होता है । देवोंमें जिसका जितना स्पर्श है सब पदोंकी अपेक्षा उसका  
उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है अतः यहा उसका विशेष खुलासा नहीं किया । 'एव' कह कर मूलमें जो  
कुछ वैक्रियिकमिश्रकाययोग आदि मार्गणाए गिनाई हैं वहा 'एव' का यही अर्थ है कि जिस मार्ग-  
णाका जितना स्पर्श है अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा उस मार्गणाका उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है ।

§ ३१३ सभी पचेन्द्रियोंमें असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित  
विमक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष  
पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्वलोक  
क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त,

मात्-[-वाटरमात्-] वाटरमात्अपज्ज० सुहुममात्० सुहुममात्अपज्जचापज्जत्त  
 वेठ०-वाटरवेठ० वाटरवेठअपज्ज० सुहुमतत्त० सुहुगतेठपज्जचापज्जत्त-वात्-वाटर  
 वात्-वाटरवात्अपज्ज० सुहुमवात्० सुहुमवात्अपज्जचापज्जत्त वणप्फदि०-वाटरवण  
 प्फदि० वाटरवणप्फदिपज्जचापज्जत्त सुहुमवणप्फदि सुहुमवणप्फदिपज्जचापज्जत्त  
 णिमोद०-वाटरणिगोद०-वाटरणिगोदपज्जचापज्जत्त-सुहुमणिगोद० सुहुमणिगोदपज्जचा  
 पज्जत्त-वाटरवणप्फदिपत्तेय०-वाटरवणप्फदिपत्तयअपज्जत्ते चि ।

§ ३१४ पंचिदिय० पंचि०पज्ज० तत्त० तत्तपज्ज० सम्भवदवि० के० खे०  
 पो० ? साग० असंखे०भागो अहचोइस० देसूणा सम्भसोगो वा । जवरि अमस्वेज्ज  
 गुणहाणी० ओषं । एषं पंचमप०-पंचवचि० इत्यि०-पुरिस०-वक्खु०-सण्णि चि ।

बलकायिक वाटर बलकायिक, वाटर बलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म बलकायिक सूक्ष्म बलकायिक  
 पर्याप्त, सूक्ष्म बलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक वाटर अग्निकायिक, वाटर अग्निकायिक  
 अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक,  
 वाटर वायुकायिक, वाटर वायुकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
 वायुकायिक अपर्याप्त बनस्पतिकायिक, वाटर बनस्पतिकायिक वाटर बनस्पतिकायिक पर्याप्त वाटर  
 बनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म बनस्पतिकायिक सूक्ष्म बनस्पतिकायिक पर्याप्त सूक्ष्म बनस्पति  
 कायिक अपर्याप्त निगोद वाटर निगोद वाटर निगोद पर्याप्त, वाटर निगोद अपर्याप्त सूक्ष्म  
 निगोद, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त वाटर बनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और  
 वाटर बनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-इसा कि आधर्म पटित करके बतला आये हैं तदनुसार अस्तस्यैव मागवृद्धि,  
 अस्तस्यैव मागहानि और अस्त्वितपदपदालोका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पष्ट सब  
 शोक एकेन्द्रियोंमें ही पाया जाता है अतः एकेन्द्रियोंमें एक पदपदालोका स्पष्ट सब शोक प्रमाण  
 बतलाया । किन्तु एकेन्द्रियोंमें शेर पद सबके नहीं पाये जाते हैं किन्तु जो पंचन्द्रियोंमेंसे आकर  
 एकेन्द्रिय होते हैं उन्हींके पाये जाते हैं किन्तु ऐसे जीव स्वल्प हात हैं अतः इनका वर्तमान कालीन  
 स्वयं तो शोकके अस्तस्यैवतर्षे मागप्रमाण ही प्राप्त होता है हां अतीत कालीन स्वयं सब शोक बन  
 जाता है अतः इनमें शेर पदोंकी अपेक्षा वर्तमान कालीन स्वयं शोकके अस्तस्यैवतर्षे मागप्रमाण  
 कदा और अतीतकालीन स्वयं सब शोक कदा । मूलमें जो पृथिवी आदि दूसरी मार्ग्यापत्ति गिनती  
 हैं उनमें भी एक प्रमाण स्पष्ट उसी क्रमसे बन जाता है अतः इनके कल्पको एकेन्द्रियोंके समान  
 कदा । इसी प्रकार आगे और अतीत मार्ग्यापत्तियोंमें अपने अपने पदोंकी अपेक्षा स्पष्ट बतलाया  
 है वह उन उन मार्ग्यापत्तियोंके स्वयंके अनुसार बन जाता है । अतः जिस मागलाका अतीत स्वयं  
 है अपने सम्यक् पदोंकी अपेक्षा उतना उतना स्वयं जानना चाहिये जिसका निर्देश मूलमें  
 किया ही है ।

§ ३१४ पंचन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म और ब्रह्म पर्याप्त जीवोंमें सभी पदपदालोका जीवोंने  
 कितने क्षेत्रका हाथ किया है ? शोकके अस्तस्यैवतर्षे माग क्षेत्रका ब्रह्मनस्विके पौत्र मागोंमेंसे  
 कुछ कम पाठ माग क्षेत्रका और सब शोकप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी विवेकता है कि  
 इनके अस्तस्यैवतर्षे मागहानि स्वयं अपर्याप्त समान है । इसी प्रकार पंचों मनायोगी पंचों  
 ब्रह्मनपाणी, स्त्रीबही, पुंस्रबही, वसुदरानवाले और संजी जीवोंके जानना चाहिये । वैश्विक-



वेउच्चिय० सन्वपदवि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ट-तेरहचोदस० देसूणा । श्रीरालि० तिरिकखोघं । एवं णवुंस० ।

§ ३१५. मदि-सुदअण्णा० ओघं । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवम-संजद०-अभव०-मिच्छादिट्ठि त्ति । विहंग० पंचिदियभंगो । णवरि असंखेज्जगुण-हाणी णत्थि । आग्नि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा । असंखे०गुणहाणी ओघं । एवमोहिदंस०सम्मादिट्ठि त्ति । एवं वेदय० । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि ।

§ ३१६ तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० तिण्णिहाणी के० खे० पोसिदं ? लोग० असंखेभागो छच्चोदस० देसूणा । असंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

§ ३१७ खइय० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? लो० असं०भागो । अट्टचोदस० देसूणा । सेसपदाणं खेत्तभंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० संखे०-भागहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा । सासण०

काययोगियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । औदारिककाययोगियोंके स्पर्श सामान्य तिर्यञ्चोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३१५ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार असयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । विभगज्ञानियोंके पचेन्द्रियोंके समान स्पर्श है । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं पायी जाती है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके असख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदशनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है ।

§ ३१६ पीतलेश्यावालोंके सौधर्भ कल्पके समान स्पर्शन है । पद्मलेश्यावालोंके सहस्वार कल्पके समान स्पर्श है । तथा शुक्ललेश्यावालोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके असख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है ।

§ ३१७ ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असख्यातभागहानि और सख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम

असंख्येज्जमागहाणी० के० खे० पो० ? लो० असंखे०भागो अह-वारहसोइस०  
देसणा । सम्मामि० वेदय०भंयो ।

§ ३१८ समदासनद० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? लो० असंखे०  
भागो अचोइस० देसणा । सखे०भागहाणी० खेचमंगो ।

एषं पोसणाणुगमो समघो ।

§ ३१९. कस्मणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण मादेसेण य । तस्य ओघेण  
असखे०भागवह्नी हाणी अवहा० केवधिरं ? सखद्धा । दोवह्नी० दोहाणी० के० ? अ०  
एगसमभो, ठक० आवसि० अससो०भागो । असंखे०गुणहाणी० जह० एगसमभो, ठक०  
संकोजा समया । एषं कायजोगि०-भोरसि०-अर्बुस० चचारिक०-अवस्तु० मवसि०  
आहारि धि ।

आठ मागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्ण किया है । सासाहनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातमागहानिवाले जीवोंमें  
कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? लोके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका तथा प्रसन्तालीके चौदह भागोंमेंसे  
कुछ कम आठ और कुछ कम बारह मागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्ण किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके  
वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान स्वर्ण जानना चाहिये ।

§ ३१८. संघटासंघर्षोंमें असंख्यात मागहानिवाले जीवोंमें कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ?  
लोके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका और प्रसन्तालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम बारह मागप्रमाण  
क्षेत्रका स्वर्ण किया है । तथा इनके संख्यात मागहानिकी अपेक्षा स्वर्ण क्षेत्रके समान है ।

इस प्रकार स्वप्नलुगम समाप्त हुआ ।

§ ३१९. कस्मानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकरका है—आपनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
जन्म से ओषकी अपेक्षा असंख्यात मागवृद्धि, असंख्यात मागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले  
जीवोंका कितना काल है ? सदैवकाल है । वो वृद्धि और वा हानिवाले जीवोंका कितना काल  
है ? अपन्य काल एक समय है और उच्छ्रय काल आवलीके असंख्यातमें मागप्रमाण है । तथा  
असंख्यात गुणहानिवाले जीवोंका अपन्य काल एक समय और उच्छ्रय काल संख्यात समय है ।  
इसी प्रकार अययोगी औदारिकअययोगी, गर्भसंक्रमेववाले आपादि पारों कयाववाले अचक्षु  
पर्यंतवाले मन्त्र और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया जा रहा है । तदनुसार ओषसे  
असंख्यात मागवृद्धि, असंख्यात मागहानि और अवस्थित स्थितिवाले जीव अनन्त हैं अतः इनका  
सर्वत्र सर्वदा पाया जाता है । संख्यात मागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि तथा संख्यात मागहानि  
और संख्यात गुणहानि इनके निरन्तर रहनेका अवश्य काल एक समय और उच्छ्रय काल आवलिके  
असंख्यातमें मागप्रमाण है अतः इनका अपन्य काल एक समय और उच्छ्रय काल आवलिके  
असंख्यातमें मागप्रमाण है । तथा असंख्यात गुणहानि अतिवृष्टि वृष्टिके ही जाती है और  
अतिवृष्टि वृष्टिके इसके निरन्तर प्राप्त होनेका अपन्य काल एक समय और उच्छ्रय काल संख्यात  
समय है, अतः असंख्यात गुणहानिके अपन्य और उच्छ्रय काल उद्यमाद्य वतलाया । यह  
आप प्रकृषया अययोगी आदि कुछ मार्गस्थानों में अवस्थित बन जाती है, अतः इनकी क्वन्ती  
ओषके समान क्वन्ती ।

§ ३२० आदेशेण णेरइएसु असंखेज्ज भागहाणी अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । सेसपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असखे० भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव० भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि० अपज्ज०-सव्व-विगलिंदिय-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादर-वणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउव्विय०-विहग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३२१ तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे० गुणहाणी णत्थि । एवमोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-असजद०-तिणिलेस्सा०-अभव०-भिच्चादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३२२ मणुस० पंचि० तिरिक्खभंगो । णवरि असंखे० गुणहाणी० ओघं । एवं पंचि०-पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव ? णवरि जम्हि आवलि० असंखे०-

§ ३२० आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदवालोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, व्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, विभगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें असख्यात भागहानि और अवस्थितस्थिति ये दो ध्रुव पद हैं अतः यहा इनका सर्वदा काल कहा । इसी प्रकार आगे भी जानना । तथा शेष पद ध्रुव हैं फिर भी यदि वे निरन्तर रहें तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर पाये जाते हैं अतः शेष पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण कहा । सातों नरकके नारकी आदि कुछ ऐसी माणोण्य है जिनमें उक्त रूपाणा अधिकल वन जाती है, अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा ।

§ ३२१ सामान्य तिर्यचोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, असजी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२० सामान्य मनुष्योंके पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात गुणहानिकाल ओघके समान है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, व्रम, व्रम पर्याप्त, पंचो मनोयोगी, पंचो वचनयोगी, खीपदवाले, पुरुषपदेवाले, चतुर्दशनवाले और सद्दी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके भी इमी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पहले जहाँ आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ इनके

मागो तन्दि संस्केता समया । पवरि संस्के० मागहाणी० नह० प्यसमओ, उह० आबलि०  
असंस्के० मागो । मजुसअपड० असंस्के० मागहाणी अपदि० के० ? नह० एगसमओ,  
उह० पसिदो० असंस्के० मागो । सेसपदपि० के० ? नह० एगसमओ, उह० आबलि०  
असंस्के० मागो । एवं वेदभियमिस्स० ।

संस्कात समय काल कबना चाहिये । तथा इतनी और विद्वेयता है कि इनके संस्कातभगवानिका  
बचम्य काल एक समय और उक्तकाल आबलीके असंस्कातबे मागप्रमाय है । मनुष्य अपर्या-  
प्तकेमि असंस्कातमागहानि और अचस्थित विमचित्तले बीबोके कितना काल है ? अचम्यकाल  
एक समय और उक्तकाल पस्योपमके असंस्कातबे मागप्रमाय है । तथा शेष पदवाले बीबोके  
कितना काल है ? अचम्यकाल एक समय और उक्तकाल आबलीके असंस्कातबे मागप्रमाय है ।  
इसी प्रकार वैद्वियमिमकापयोगी बीबोके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यचोके प्रमाय अमल है, अतः इनके सब पदोके काल ओपके समान बन  
जाता है । किन्तु इनके असंस्कातगुणहानि नहीं होती क्योंकि यह पद अनिष्टितकपके ही पाया  
जाता है । औदारिकमिमकापयोग आदि कुछ ऐसी मार्गवाप है जिन्में उक्त प्रकृत्या बन जाती है  
अतः इनमें सब सम्भव पदोका काल सामान्य तिर्यचोके समान कला । मनुष्योके और सब पदोके  
काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान है, क्योंकि इनके घृष और अग्र ब पद पंचेन्द्रिय तिर्यचोके  
समान पाय जात हैं । किन्तु इतनी विद्वेयता है कि इनके असंस्कातगुणहानि और पाई जाती है ।  
पर यह पद मनुष्योके ही होता है क्योंकि अनिष्टित कपक गुणस्थान मनुष्य गतिके लोकर  
अम्य गतिवाले बीबोके नहीं पाया जाता । अतः सामान्य मनुष्योके इस पदक काल वापके  
समान बन जाता है । पंचेन्द्रिय आदि कुछ ऐसी मार्गवाप है जिन्में उक्त प्रकृत्या बन जाती  
है अतः उनमें सम्भव सब पदोका काल सामान्य मनुष्योके समान कला । मनुष्यपयोप  
और मनुष्यनी संस्कात होते हैं अतः इनके संस्कातमागहानि संस्कातगुणहानि, और संस्कात  
गुणहानिका उक्त काल आबलीके असंस्कातबे मागप्रमाय प्राप्त न होकर संस्कात समय मात्र  
होता है । किन्तु उक्त दोनो मागवापको प्रमाण संस्कात होते हुए भी इनके संस्कातभगवानिक  
उक्त काल आबलीके असंस्कातबे मागप्रमाय बन जाता है क्योंकि पहले एक बीबनी अपेक्षा  
संस्कातमागहानिका उक्त काल दो कम उक्त संस्कात समय प्रमाय बतला आव है । अब यदि  
किसी एक पदोकेमनुष्य या मनुष्यनीने संस्कातमागहानिक प्रारम्भ किया और वह संस्कात  
मागहानिके उक्त काल तक इसके साथ रहे और जिस समय समाप्त करता है उसी समय किसी एक  
मागवापके अन्व जीवन उसका प्रारम्भ किया ता इस प्रकार निरन्तर संस्कातमागहानिकी  
प्रवृत्ति आबलीके असंस्कातबे मागप्रमाय काल तक पाई जाती है अतः उक्त मार्गवापके इसका  
उक्त काल एक प्रमाय कला । मनुष्य अपयोप यह सन्तर मार्गवाप है अतः इस मार्गवापको जो  
उक्त काल है वही यहाँ असंस्कातमागहानि और अचस्थित पदक उक्त काल जानना । किन्तु  
अन्तरकालके बाद जब माना जीब इस मार्गवापको प्राप्त होते हैं तब वे यदि एक समय तक  
असंस्कातमागहानि या अचस्थित पदके साथ रहे और दूसरे समयमें अम्य पदके प्राप्त हो गये  
तो इनके उक्त दो पदोके अचम्यकाल एक समय पाया जाता है । वैद्वियमिमकापयोग यह  
मार्गवाप भी सन्तर है, अतः यहाँ भी लक्ष्यपयोप मनुष्योके समान सम्भव सब पदोके काल  
बन जाता है ।

§ ३२० आदेशेण णेरइएसु असंखेज्जभागहाणी अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । सेसपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असखे०भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि०अपज्ज०-सव्व-विगलिदिय-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादर-वणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउव्विय०-विहए०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३२१ तिरिक्खा ओवं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-असजद०-तिण्णिलेस्सा०-अभव०-भिच्चादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३२२ मणुस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० ओवं । एवं पंचि०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचउचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव ? णवरि जम्हि आवलि० असंखे०-

§ ३२० आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें असख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदवालोंका कितना काल है ? जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैकिकिककाययोगी, विभगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें असख्यात भागहानि और अवस्थितस्थिति ये दो ध्रुव पद हैं अतः यहा इनका सर्वदा काल कहा । इसी प्रकार आगे भी जानना । तथा शेष पद अध्रुव हैं फिर भी यदि वे निरन्तर रहें तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर पाये जाते हैं अतः शेष पदोंका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । सातों नरकके नारकी आदि कुछ ऐसी मागोणाए हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा अविकल बन जाती है, अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा ।

§ ३२१. सामान्य तिर्यंचोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२२ सामान्य मनुष्योंके पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात गुणहानिका काल ओघके समान है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पंचों मनोयोगी, पंचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चतुर्दशनवाल और सज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पहले जहाँ आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ इनके

मागो तम्हि संलेखा समय। शवरि संखे० मागहाणी० नह० एयसमभो, उख० आवलि०  
 असंखे० मागो। मणुसअपज० असंखे० मागहाणी-अमठि० के० ? नह० एगसमभो,  
 उख० पसिदी० असंखे० मागो। सेसपदधि० के० ? अह० एगसमभो, उख० आवलि०  
 असंखे० मागो। एषं बेरम्बियमिस्त०।

संख्यात समक काल कइना चाहिये। तथा इतनी और विधेयता है कि इनके संख्यातभागानिका  
 अपन्य काल एक समय और उच्छ्रकाल भावलीके असंख्यातके भागप्रमाय है। मनुष्य अपर्वा-  
 त्कर्म असंख्यातभागानि और अवस्थित विमलितकाले जीवके कितना काल है ? अपन्यकाल  
 एक समय और उच्छ्रकाल पल्लोपमके असंख्यातके भागप्रमाय है। तथा शेष पदकाले जीवके  
 कितना काल है ? अपन्यकाल एक समय और उच्छ्रकाल भावलीके असंख्यातके भागप्रमाय है।  
 इसी प्रकार बैब्रियमिजकाययोगी जीवके जानना चाहिये।

विशेषार्थ-तिर्यचोका प्रमाय अनन्त है, अतः उनके सब पदोंका काल ओपके समान बन  
 जाता है। किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती क्योंकि यह पद अनित्यवृत्तिरूपके ही पान्या  
 जाता है। औदारिकमिजकययोग आदि कुछ पेसी मार्गस्थाप हैं त्रिनमें एक प्ररूपणा बन जाती है  
 अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य तिर्यचोके समान रहा। मनुष्योंके और सब पदोंका  
 काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान है, क्योंकि इनके मूव और अप्र पद पंचेन्द्रिय तिर्यचोके  
 समान पाये जाते हैं। किन्तु इतनी विधेयता है कि इनके असंख्यातगुणहानि और पाई जाती है।  
 पर यह पद मनुष्योंके ही होता है क्योंकि अनित्यवृत्ति रूपक गुणस्थान मनुष्य गतिमें छोड़कर  
 अन्य गतिवाले जीवके नहीं पान्या जाता। अतः सामान्य मनुष्योंके इस पदका काल आपके  
 समान बन जाता है। पंचेन्द्रिय आदि कुछ पेसी मार्गस्थाप हैं त्रिनमें एक प्ररूपणा बन जाती  
 है अतः इनमें सम्भव सब पदोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान रहा। मनुष्यपर्वोत्प  
 और मनुष्यनी संख्यात होते हैं अतः इनके संख्यातभागवृत्ति संख्यातगुणवृत्ति, और संख्यात  
 गुणहानिकर उच्छ्रक काल आवलिके असंख्यातके भागप्रमाय प्राप्त न होकर संख्यात समय प्राप्त  
 होता है। किन्तु एक दोनो मार्गोपासोंका प्रमाय संख्यात होते हुए भी इनके संख्यातभागानिकर  
 उच्छ्रक काल आवलिके असंख्यातके भागप्रमाय बन जाता है, क्योंकि पहले एक जीवकी अपेक्षा  
 संख्यातभागानिका उच्छ्रक काल दो कम उच्छ्रक संख्यात समय प्रमाय बतला आये हैं। अथ यदि  
 किसी एक पयात्मनुष्य वा मनुष्यनि संख्यातभागानिकर प्रारम्भ किया और यह संख्यात  
 भागानिके उच्छ्रक काल तक उसके साथ रहकर जिस समय समाप्त करता है उसी समय किसी एक  
 मार्गोपासले अन्य जीवने इसका प्रारम्भ किया वा इस प्रकार निरन्तर संख्यातभागानिकी  
 वृत्ति आपलिक असंख्यातके भागप्रमाय काल तक पाई जाती है अतः एक मार्गोपासोंमें इसका  
 उच्छ्रक काल एक प्रमाय रहा। मनुष्य अपर्वात यह साप्तर मार्गेशा है अतः इस मार्गोपास जो  
 उच्छ्रक काल है वही यहां असंख्यातभागानि और अवस्थित पदका उच्छ्रक काल जानना। किन्तु  
 अन्तरकालके बाद तब माना जीव इस मार्गोपासो प्राप्त होते हैं तब वे यदि एक समय तक  
 असंख्यातभागानि वा अवस्थित पदके साथ रह और हमरे समयमें अन्य पदका प्राप्त हा गये  
 तो इनके एक दो पदोंका अपन्यकाल एक समय पान्या जाता है। बैब्रियमिजकाययोग यह  
 मार्गोपास भी साप्तर है, अतः यहां भी लक्ष्यपयाप्त मनुष्योंके समान सम्भव सब पदोंका काल  
 बन जाता है।

§ ३२३. आणदादि जाव अवराइद ति असंखे०भागहाणी० के० ? सव्वद्धा । संखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं संजदा-संजद० । सवट्ठे असंखे०भागहाणी० के० ? सव्वद्धा । संखेज्जाभागहाणी ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । एवं परिहार० ।

§ ३२४ सव्वएइंदिएसु असंखे०भागवट्ठी-हाणी-अवट्ठि० तिरिक्खोघं । सेस-पदवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एव पुढवि०-वादर-पुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[-वादरतेउ०-]वादरतेउ-अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुम-वाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-णणप्फदि०-वादरणणप्फदि-वादरणणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणणप्फदि० - सुहुमवणणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - वादरणणणप्फदिपत्तेयसरीर० - तस्सेव अपज्जत्ते ति ।

§ ३२३ आनत कल्पसे लेकर अपराजित कल्पतकके देवोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । सख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा सख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल सख्यात समय है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके प्रत्येक स्थान के देवोंका प्रमाण असख्यात है अतः यहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । पर मवार्थसिद्धिमें देवोंका तथा परिहारविशुद्धि सयतोंका प्रमाण सख्यात है, अतः यहाँ सख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल सख्यात समय ही प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३२४ सभी एकेन्द्रियोंमें असख्यातभागवृद्धि, असख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है । तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२५ आहार० असंख० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक० अंतोसु० । एषम कसा० जहाकत्वावसंमदे ति । आहारमिस्त० असंखे० भागहाणी० जहणुक० अंतोसु० । अण्वगद० असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक० अंतोसु० । ससपदा० मणुसपन्नचर्मगो । एषं सुहुमसांपरा० ।

§ ३२६ आमिणि०-मुद० ओहि० असंखे० भागहाणी० के० ? सवदा । ससपदा० पंचिंदयर्मगो । एषमोहिर्दस०-सुक० सम्मादिष्टि धि । मणपन्न० असंख० भागहाणी० के० ? सन्नद्धा । ससपदा० के० ? अह० एगसमओ, उक० संखेज्जा समया । णवरि संखे-भागहाणी० उक० आवलि० असंखे० भागो । एषं संभद०-सामाइय-खेदोष०-स्वइय० । णवरि सामाइय-खेदोष० संखेज्जमागहाणी० उक० संखेज्जा समया ।

§ ३२७ वेदय० असंखंज्जमागहाणी० के० ? सव्वदा । सेसपद० आमिणि०

§ ३२४. आहारकलायसागिषोम असंख्यातमागहाणित्वाले बीबोका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अणुपामी और पञ्चास्यातसंघत बीबोके ज्ञानना चाहिये । आहारकमिभ्रज्ययोगिषोमि असंख्यातमागहाणित्वाले बीबोका अपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अपगतवेदियोमि असंख्यातमागहाणित्वाले बीबोका कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा इनके शेष पक्षोकी अपेक्षा काल मनुष्य पयातकोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंघतो के जानना चाहिये ।

विशुपार्या—आहारकलाययोगिषिपञ्चित प्रकरकेमि अणुपाम और पञ्चास्यातसंघतका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः यहाँ असंख्यातमागहाणित्वाले अपन्य और उत्कृष्ट काल उत्कृष्टमास्य काल । किन्तु आहारकमिभ्रज्ययोगका अपन्य काल भी अन्तमुहूर्त है अतः इसमें असंख्यातमागहाणित्वाले अपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त ही प्राप्त होता है । अपगतवेद और सूक्ष्मसांपरायका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः इसमें असंख्यात मागहाणित्वाले अपन्य और उत्कृष्ट काल उत्कृष्टमास्य बन जाता है । तथा अपगतवेद अवस्था सूक्ष्म साम्परायसंघत मनुष्योके मी होती है अतः इनमें सम्मल शेर पक्षोका काल मनुष्य पयातकोके समान बन जाता है ।

§ ३२६ आमिनिबोधिकद्वानी ब्रुतद्वामी और अणुपिशागियोमि असंख्यातमागहाणित्वाले बीबोका कितना काल है ? सर्वकाल है । तथा शेष पक्षोकी अपेक्षा काल पंचेन्द्रियोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार अणुपिच्छतपाले सुक्ष्मशेरयावले और सम्पगष्टि बीबोके जानना चाहिये । मनःपययज्ञानियोमि असंख्यातमागहाणित्वाले बीबोका कितना काल है ? सर्वकाल है । तथा शेष पक्षोके बीबोका कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इतनी बियोस्ता है कि संख्यातमागहाणित्वाले बीबोका उत्कृष्ट काल आबलीके असंख्यातसे माग प्रमास्य है । इसी प्रकार संघत सामायिकसंघत शेरपक्षमापनासंघत और वायिकसम्पगष्टि बीबोके जानना चाहिये । इतनी बियोपता है कि सामायिकसंघत और शेरपक्षमापना संघतोमि संख्यातमागहाणित्वाले बीबोका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ३२७. वेदकसम्पगष्टियोमि असंख्यातमागहाणित्वाले बीबोका कितना काल है ? सर्वकाल



भंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । संखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । सासए० असखे०भागहाणी० के० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असखे०भागो । सेसपदाणमोहिभंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ ३२८ अंतराणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवट्ठी-हाणी-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । दो वट्ठी-हाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा । एवं कायजोगि० - ओरालि०-णवु स०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति । एवरि णवु सयवेदे असंखे०गुणहाणी० उक्क० अंतरं वासपुधत्तं । कोध-माण-माया-लोभाणं वार्सा सादिरेंयं ।

है । तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा काल अभिनिबोधिकाज्ञानियोंके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा संख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा काल अवधिज्ञानियोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३२८ अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षु-दर्शनवाले भव्य और, आहारक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषना है नपुसकवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है और क्रोध, मान, माया और लोभमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

**विशेषार्थ**—असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितका काल सर्वदा है अतः इनका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि ये कमसे कम एक समयके बाद और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालके बाद नियमसे प्राप्त होती हैं, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा असंख्यातगुणहानि क्षपकश्रेणीमें ही होती है और इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और छह महीना प्रमाण है, अतः असंख्यातगुणहानिका जघन्य

§ ३२६ आदेसेण गिरयगईए मसखे०भागहाणी-अवटि० गत्यि अंतरं । सेसपदाणं केव० ? ज० एगसमओ, उक० अंतोसुहुत्तं । एवं सत्तसुं पुड्ढीसु पंचिदिय तिरिक्ख-पंचि०तिर०पज्ज०-पंचि०तिर०जोखिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज०-देव० भवणादि वाव सहस्सार०-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउम्बि० विमंग० वेठ०-पम्मसस्स चि ।

§ ३३० तिरिक्खत्ता० आघ । णवरि अस्तंख्खज्जगुणहाणी गत्यि । एवमारासिय मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअग्गा०-मसंजद०-किण्ण णीस-काठ०-अमघ०-मिच्छा० मसण्णि० अणाहारि चि ।

§ ३३१ मणुस० गिरओपं । णवरि अमखे गुणहाणी आघं । एवं पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवधि०-इत्यि०-पुरिस० चक्खु०-सण्ण चि । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चन । एवरि, इत्यि०-मणुस्सिणी० असंखेअगुणहाणी० पासपुपचं । पुरिसवेद० पास सादिरियं ।

अन्तर एक समय और एकदूसरे अन्तर छह महीना प्रमाण कहा । कायवागी आदि कुछ पंती मानेवाले हैं जिसमें यह शोच प्रकृत्या बन जाती है अतः उनके कथनको शोचके समान कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि यदि नपुंसकभेदी जीव कृपकभेदी पर न कहें तो अधिक से अधिक वर्षपूर्वकत्व काज तक नहीं कहता है अतः इसके असंख्यातगुणहानिका उल्लेख अन्तरकाल वर्ष पूर्वकत्व प्रमाण कहा । तथा श्लेषादि कणायवासे जीव यदि कृपकभेदी पर न कहें तो अधिक से अधिक साधिक एक वर्ष तक नहीं कहते हैं अतः इनके असंख्यातगुणहानिका उल्लेख अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा ।

§ ३२६ आपेक्षनिर्वेशकी अपेक्षा नरकगतिके असंख्यातभागहानि और अक्षयित्वविमर्षि वाले जीवोंको अन्तरकाल नहीं है । तथा इनके श्लेष पशुओंकी अपेक्षा अन्तरकाल किटना है ? अथवा अन्तरकाल एक समय है और एकदूसरे अन्तरकाल अन्तमु हूत है । इसी प्रकार सानों पृथिवीयोंके नारकी पंचेन्द्रिय तिब्बज पंचेन्द्रिय तिरैव पर्याप्त पंचेन्द्रियतियैव योनिमयी पंचेन्द्रिय तिरैव अपर्याप्त सामान्य देव भवनवासियोंके लक्षर स्वरूप कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त ब्रह्म अपर्याप्त वैश्वियकप्रययोगी विमंगद्वानी पीतलेस्यावाले और पद्मलेस्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३२ तिरैवोके अन्तरकाल शोचके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती है । इसी प्रकार औरारिकमिजकप्रयोगी, काम्यकप्रयोगी मत्पद्धानी जूताद्वानी असंपत कृष्णलेस्यावाले नीतलेस्यावासे कापोतलेस्यावासे, अमभ्य मिध्यादधि, असंखी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३१ मनुष्योंके अन्तरकाल सामान्य नारिकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल शोचके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म ब्रह्म पर्याप्त पांचों मनोवागी पांचों कथनयोगी क्षीणवृत्तले पुरुषवृत्तवासे चक्षुष्यवृत्तवासे और संखी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि क्षीणवृत्तले और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपूर्वकत्व है । तथा पुरुषवृत्तवासे जीवोंके साधिक एक वर्ष है ।

§ ३३२, मणुमअपज्ज० सव्वपदा० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० अमंसो०भागो ।

§ ३३३ आणदादि जाव अवराडड ति अमंसो०भागहाणीए णत्थि अंतरं । संसो०भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सत्त गादिदियाणि वासपुत्तं । सव्वट्ठे असंग्वेज्जभागहाणीए णत्थि अंतरं । अमंसो०भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० अमंसो०भागो ।

**विशेषार्थ—**नरकगतिमें असख्यातभागहानि और अत्रस्थित ये दो पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं बनना । तथा यहा सम्भव दोष पदोका अन्तरकाल औपमे जिस प्रकार घटित करके लिग्न आये हैं उमी प्रकार यहा भी जानना । मातो नरकके नारकी आदि कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें नरकगतिके समान अन्तरकालकी प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा । तिर्यंचोके असख्यातभागहानि, असख्यात भागवृद्धि और अत्रस्थित ये तीन पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा औपके समान कही । किन्तु तिर्यंचोके असख्यातगुणहानि नहीं हाती, क्योंकि यह पद अनित्यवृत्तिपदके ही पाया जाता ह । आदारिकमिश्रकाययोग आदि कुछ आर भी मार्गणाए हैं जिनमें सम्भव पदोका अन्तरकाल सामान्य तिर्यंचोके समान बन जाता है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यंचोके समान कही । मनुष्योंमें असख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद ही निरन्तर पाये जाते हैं, अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान कही । किन्तु इनके असख्यातगुणहानि भी पाई जाती है जो मनुष्य पर्यायमें ही सम्भव है, अतः मनुष्योंके असख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओषके समान कहा । पचेन्द्रिय आदि कुछ और ऐसी मार्गणाए हैं जिनमें अन्तरकाल सामान्य मनुष्योंके समान है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान कही । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, अतः स्त्रीवेद और मनुष्यनीके असख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वषपृथक्त्व प्रमाण कहा । तथा पुरुषवेदमें क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः पुरुषवेदमें असख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा ।

§ ३३२ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पदमाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**नवव्यपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनके सम्भव सप्त पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा ।

§ ३३३ आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंके असख्यातभागहानिकी अपेक्ष अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन रात और वषपृथक्त्व है । सर्वासिद्धिमें असख्यात भागहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । तथा संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है ।

१ ३३४ एइदिपसु सम्बपदाणं तिरिक्त्वोर्धं । एव पुढवि-वादरपुढवि-  
 वादरपुढविअपज्जम०-सुहुमपुढवि - सुहुमपुढविपज्जचापज्जच-आठ -वादरआठ०-  
 वादरआठअपज्ज -सुहुमआठ० सुहुमआठपज्जचापज्जच-तेउ -वादरतेउ०-वादर-  
 तेउअपज्जम०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जचापज्जच-वाठ०-वादरवाठ०-वादरवाठअपज्जम०  
 सुहुमवाठ०-सुहुमवाठपज्जचापज्जच-वादरवणप्फदिपत्तोय०-तस्सय अपज्ज०-वण-  
 प्फदि०-वादरवणप्फदि-वादरवणप्फदिपज्जचापज्जच-सुहुमवणप्फदि०-सुहुमवणप्फदि  
 पज्जचापज्जच णिगोद०-वादरणिगाद-वादरणिगोदपज्जचापज्जच-सुहुमणिगोद०-सुहुम  
 णिगोदपज्जमचापज्जरो चि ।

१ ३३५ सम्बदिगळिदिय० सम्बपदाणं पंचिदियतिरिक्त्वमगो । एव  
 वादरपुढविपज्जम०-वादरआठपज्जम०-वादरतेउपज्जम०-वादरवाठपज्जम०-वादरवणप्फदि-  
 पत्तोयसरीरपज्जचा चि ।

१ ३३६ बड्धिपमिस्स० सम्बपदानमतरं जइ० एगसमओ, उळ० वारस  
 सुहुत । आहार० आहारमिस्स० असखे० मागहाणि० अंतरं के० ? ज० एगसमओ,  
 उळ० वासपुषत । एवमकसाप बहाक्त्वात्सग्दे चि ।

१ ३३४ एकेन्द्रिचोमिं समी पवोकी अपेसा अन्तरकाल सामाम्य तिर्यचोके समान है । इसी  
 प्रकार पृथिवीकायिक वादर पृथ्वीकायिक वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक,  
 सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक वादर जलकायिक वादर  
 जलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त  
 अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक वादर अग्निकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म  
 अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक, वादर वायुकायिक वादर  
 वायुकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त  
 वादर वनस्पतिकायिक मत्स्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक मत्स्येक शरीर अपर्याप्त वनस्पतिकायिक,  
 वादर वनस्पतिकायिक वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
 वनस्पतिकायिक सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त निगोद वादर  
 निगोद वादरनिगोद पर्याप्त वादर निगोद अपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त और सूक्ष्म  
 निगोद अपर्याप्त बीबोके जानना चाहिये ।

१ ३३५ समी बिचलेन्द्रिचोमिं समी पवोकी अपेसा अन्तरकाल पंचन्द्रिय तिचचोके समान  
 जानना चाहिये । इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्नि-  
 कायिक पर्याप्त वादर वायुकायिक पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक मत्स्येक शरीर पर्याप्त बीबोके  
 जानना चाहिये ।

१ ३३६ त्रैविन्दसिद्धययोगिचोमिं समी पदवाण बीबोका अपर्याप्त अन्तरकाल एक समय  
 और एकत्र अन्तरकाल वादर सुहुत है । आहारकालयोगी और आहारकालमित्राणवागयोमिं  
 असंस्मृतमागहानिवाले बीबोका अन्तरकाल कितना है ? जपम्य अन्तरकाल एक समय और  
 एकत्र अन्तरकाल वैयुक्त्वात् है । इसी प्रकार अकपन्दी और पदाक्यातसंघत बीबोके  
 जानना चाहिये ।

§ ३३७. अवगद० तिणिण हाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३३८ आभिणि०—सुद०—ओहि० असंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं । संखे०भागहाणि०—संखेगुणहाणि० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि । असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवमोहिदंस०—सम्मादिट्ठि ति । णवरि ओहिणाणि०—ओहिदंसणी० असंखे०गुणहाणि० उक्क० वासपुधत्तं । मणपज्ज० असंखे०भागहाणि०—संखे०भागहाणि० ओहि०भंगो । दोहाणि० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ३३९ संजद०—सामाइय-छेद० असंखेज्जभागहाणी० णत्थि अतरं । संखे०भागहाणि० मणपज्जवभंगो । दोहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा । परिहार०—संजदासंजद० असंखे०भागहा०—संखे०भागहाणी० आभिणि०भंगो ।

§ ३४० सुकले० असंखेज्जभागहाणि० णत्थि अंतरं । सेसपदा० ओघं । खइय० संजदभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी० उक्क० छम्मासा । वेदय० सव्व-पदानमाभिणि०भंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

§ ३३७ अपगतवेदियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । इसी प्रकार सूक्ष्मसापरायिक सयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३८ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सख्यातभागहानिवाले और संख्यातगुणहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है । तथा असख्यात गुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शी जीवोंके असख्यात गुणहानिकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षाव्यक्त है । मन पर्ययज्ञानियोंमें असख्यातभागहानि और सख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल अवधिज्ञानियोंके समान है । तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षाव्यक्त है ।

§ ३३९ संयत, सामायिकसयत और छेदोपस्थापनासंयतोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासयतोंमें असख्यातभागहानि और सख्यात-भागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है ।

§ ३४० शुक्ललेख्यावालोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है । चायिकम्यग्दृष्टियोंमें सयतोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सभी पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है ।

§ ३४१ अत्रसहाइरियो उत्रसमसम्माइदिकाश्मि अणताणुर्बिधिसमोपण  
 पिच्छदि वस्साहिव्याएण संखे० भागहाणी लमदि सा एत्य कत्य बि घुत्ता कत्य बि ण घुत्ता  
 तण घर्षं काउख एत्य संखेज्जभागहाणी बसन्ना । अयथा उत्रसमसेदीए दंसणतिपस्स  
 द्विदिपादसंभवपक्खमस्सियूण उत्रसमसम्माइदिकमि सभ्वत्य सखेज्जभागहाणी  
 खिन्निमंक्रमणुगंतन्ना । सासण० असत्वे० भागहा० न० एयसमभो, उक्क० पन्दिदो०  
 असख० भागो । एवं सम्मापि० । एवरि पवमेदा मत्थि ।

एवमेतराणुगमो समघो ।

§ ३४२ माणाणुगमेण सभ्वत्य सन्नपदाण की भावो ? ओदइमो भावो ।

एवं भावाणुगमो समघो ।

§ ३४३ अप्यावहुगाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओपेण आदसेण य । तत्य  
ओपेण सन्नत्योवा असंखे० गुणहाणि विइधिया जीवा । संखे० गुणहाणि विइ०  
जीवा असंख्य० गुणा । संखे० भागहाणिवि० न वा संखे० गुणा । संखे० गुणवट्टिनि०  
जीवा असंख्यज्जगुणा । संखेज्जभागवट्टिनि० जीवा सखेज्जगुणा । असखेज्जभागवट्टि०  
जीवा अणतगुणा । अवट्टिदि० जीवा असखे० गुणा । असंख० भागहाणिविइधिया

§ ३४१ प्रतिपद्यम आचार्ये उपशमसम्यग्दृष्टिके फलमे अनन्तानुपन्वीकी विसंवाजना स्वीकार  
 करत है, अतः इनके अभिप्रायसे उपशमसम्यग्दृष्टियोगे संकषातभागदानि प्राप्त हानी है । पर परों  
 परों परं च्छो गई है और च्छो पर नहीं च्छो गउ है, इसलिय इसे स्वगत फरक परों  
 पर संख्यातभागदानि च्छनी चाहिये । अथवा उपशमप्रयोगे त न दसनमाइनीबका विवतिपात  
 संभव है अतः नम परकम आशय परक उपशमसम्यग्दृष्टिके क्षेत्रे संख्यातभागदानि निष्क  
 जाननी चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टियोगे अनन्तानुपन्वीकी जीवोंका रूपन्य अन्तरगत एक  
 समय और उच्छ्र अन्तरकाल पत्यावमट अनेकान्ये भागप्रमाण है । इसी प्रकार सम्यगभिध्यादृष्टि  
 बीषोके च्छन्न चाहिये । इतना विहायका है कि इनके पर विंगे पाय जत है । अथवा सामान्यमें  
 असंख्यातभागदानि पर है और सम्यगेनध्यायमें असंख्यातभागदानि, संख्यातभागदानि  
 और संख्यातगुणदानि इस प्रकार य तीन पर है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३४२. माणाणुगमकी अपक्का मयत्र समा परोंकी अपका क्या भाव है । ओदइकमाय है ।

इस प्रकार माणाणुगम समाप्त हुआ ।

§ ३४३, अप्यावहुत्वाणुगमकी अपक्का निरों वा प्रकार हा है । आपनिरों और आदेनिरेज ।  
 इनमेंसे आपकी अपक्का परमस्यातगुणदानिपात जीव भवने पाइ है । इनमें संख्यातगुणदानि  
 भाव जीव असंख्यातगुण है । इनमें संख्यातभागदानिपात जीव संख्यातगुण है । इनमें संख्या  
 गुणवट्टिपाव जीव असंख्यातगुण है । इनमें संख्यातसम्यग्दृष्टिपात जीव संख्यातगुण है । इनमें  
 असंख्यातभागदानिपात जीव असंख्यातगुण है । इनमें अत्रन्वितविमन्त्रिपात जीव असंख्यातगुण

जीवा संखे०गुणा । एवं कायजोगि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-अचक्खु—भवसि०-  
आहारि ति ।

§ ३४४ आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०-  
गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखे०भागवड्ढि-संखे०भागहाणिविहत्तिया जीवा  
दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि०  
जीवा असंखे०गुणा । अमंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं पढमाए पुढवीए  
सव्वर्पंचि०तिरिक्ख-मणुसअपज्ज-देव०-भवण०-वाण०-पंचिदियअपज्जत्ते ति । विदियादि  
जाव सत्तमि ति सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि सरिसा । संखे०ज्ज-  
भागवड्ढि-हाणिविह० जीवा दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०ज्जभागवड्ढिवि०  
जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि०  
जीवा संखे०गुणा ।

§ ३४५ तिरिक्खा ओघं । एवरि सव्वत्थोवा संखे०ज्जगुणहाणिविह० जीवा  
त्ति वत्तव्वं । एवमोरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद०-असंजद०-किण्ह-खील-  
काउ०-अभव०-मिच्छा०-असण्ण-अणाहारि ति ।

§ ३४६ मणुस्सेसु सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०गुण-

हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार काययोगी, नपुसकूदेवाले  
श्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे  
सख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सख्यातभागवृद्धि और सख्यातभागहानिवाले  
जीव समान होते हुए भी सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं ।  
इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यात  
गुणे हैं । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव,  
भवनवासी, व्यन्तरदेव और पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । दूमरी पृथिवीसे लेकर सातवीं  
पृथिवी तक सख्यातगुणवृद्धि और सख्यातगुणहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी  
सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातभागवृद्धि और सख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव समान  
होते हुए भी सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे  
अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव  
सख्यातगुणे हैं ।

§ ३४५ तिर्यचोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान हैं । इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात-  
गुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी,  
कर्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्या-  
वाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४६ मनुष्योंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातगुणहानि-

हाणिवि० जीवा असंखे० गुणा । संखे० गुणवद्वि० जीवा भित्तेसाहिया । संखे०  
 मागवद्वि० हाणिवि० जीवा सरिसा संखे० गुणा । असंखे० मागवद्वि० जीवा असंखे०  
 गुणा । अवद्विद्वि० जीवा असंखे० गुणा । असंखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । एवं  
 पंचि० पंचि० पञ्च० इत्थि पुरिस० स्रणिं ति । मणुसपञ्च-मणुसिणीसु एवं चेव ।  
 पपरि त्थि असंखे० गुणं त्थि संखेज्जगुणं कायम्भं ।

§ ३४७ षोडशियादि षाष सहस्सारे ति विदियपुढविमंगा । भाणदादि षाष  
 अषराइदं ति सम्बत्थोवा संखे० भागहाणिवि० जीवा । असंखे० भागहाणिवि० जीवा  
 असंखे० गुणा । एवं संनदानं दानं । सम्बद्धे सम्बत्थोवा संखे० भागहाणिवि० जीवा ।  
 असंखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । एवं परिहार० ।

§ ३४८ पइदिपसु सम्बत्थोवा संखे० गुणहाणिवि० जीवा । संखे० भागहाणिवि०  
 जीवा संखे० गुणा । असंखे० मागवद्वि० जीवा अणंतगुणा । अषद्वि० जीवा असंखे०  
 गुणा । असंखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । एवं सम्बपइदिय वणप्फदि०-वादर  
 वणप्फदि०-वादरवणप्फदिपन्नचापल्ल-सुद्धमवणप्फदि०-सुद्धमवणप्फदिपञ्चचापल्ल  
 षिगाद० वादरणिगोद० वादरणिगोदपन्नचापल्ल-सुद्धमणिगोद सुद्धमणिगोद  
 पन्नचापल्ल चा ति ।

भासे जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे संख्यातगुणद्विबासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे  
 संख्यातमागद्वि और संख्यातभागद्वि इन दोनों पक्षबले जीव समान होते हुए भी संख्यातगुणे  
 हैं । इनसे असंख्यातमागद्विबासे जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिबले जीव असं  
 ख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातमागद्विबासे जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रि  
 य पयास स्त्रीवृक्षबले पुत्रवृक्षबले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपक्षा और  
 मनुष्यमियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ इनके  
 संख्यातगुणा करना चाहिये ।

§ ३४९ षोडशियोंसे लेकर सहस्रारतक दूसरी पृथिवीके समान मंग है । आन्त कल्पसे  
 लेकर अपरलिखित तक संख्यातमागद्विबासे जीव सबसे बोजे हैं । इनसे असंख्यातमागद्विबासे  
 जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार संनदानसंबंधके जानना चाहिये । सर्वाभिसिद्धिसे संख्यात  
 भागद्विबासे जीव सबसे बोजे हैं । इनसे असंख्यातमागद्विबासे जीव संख्यातगुणे हैं ।  
 इसी प्रकार पण्डितद्विसे संबंधके जानना चाहिये ।

§ ३५० पंचेन्द्रियोंमें संख्यातगुणद्विबासे जीव सबसे बोजे हैं । इनसे संख्यातमागद्विबासे  
 जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागद्विबासे जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अवस्थित-  
 विभक्तिबले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातमागद्विबासे जीव संख्यातगुणे हैं । इसी  
 प्रकार सभी पंचेन्द्रिय वनस्पतिअधिक, वातरवनस्पतिअधिक, वातर वनस्पतिअधिक पर्याप्त, वातर  
 वनस्पतिअधिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिअधिक, सूक्ष्म वनस्पतिअधिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति  
 अधिक अपर्याप्त मिगोह, वातर मिगोह वातर मिगोह पर्याप्त वातर मिगोह अपर्याप्त, सूक्ष्म  
 मिगोह सूक्ष्म मिगोह पर्याप्त और सूक्ष्म मिगोह अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।



§ ३४९ सव्वविगल्लिदिएसु सव्वत्थोवा संखे० गुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे० भागवट्ठि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा । असंखे० भागवट्ठिवि० जीवा असंखे० गुणा । अवट्ठिद्वि० जीवा असंखे० गुणा । असंखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । चट्ठुहं कायाणमेइंदियभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे० गुणं कायव्वं । तस०-तसपज्जत्ताणशोघभगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे० गुणं । एवं तस० अपज्ज० । णवरि असंखे० गुणहाणी गत्थि ।

§ ३५० पंचमण०-पंचवचि० सव्वत्थोवा असंखे० गुणहाणिवि० जीवा । सेसं विदियपुढविभंगो । एवमोरालि० । णवरि जम्मि असंखे० गुणं तम्मि अणंतगुणं कायव्वं । वेउच्चिय० विदियपुढविभंगो । वेउच्चियमिस्स० पढमपुढविभंगो । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहानखाद० उवसम०-सासण० गत्थि अप्पावहुअं ।

§ ३५१ अत्रगद० सव्वत्थोवा संखे० गुणहाणि० जीवा । संखे० भागहाणि० जीवा संखे० गुणा । असंखेज्जभागहाणि० जीवा संखे० गुणा । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३५२ आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणि० जीवा । संखेज्जगुणहाणि० जीवा असंखे० गुणा । संखे० भागहाणि० जीवा संखे० गुणा । असंखे०

§ ३४६ सभी विकलेन्द्रियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यात-भागवृद्धि और सख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए संख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यात-गुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । चारों कायवाले जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भग है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंके जिस स्थानमें अनन्तगुणा कहा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके ओघके समान भग है । इतनी विशेषता है कि ओघमें जहा अनन्तगुणा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं है ।

§ ३५० पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनोयोगी और वचनयोगियोंमें जहाँ असख्यातगुणा है वहाँ औदारिककाययोगियोंके अनन्तगुणा करना चाहिये । वैकिकिककाययोगियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भग है । वैकिकिकमिश्रकाययोगियोंमें पहली पृथिवीके समान भग है । आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकपायी, यथाख्यातसयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पवृद्धन नहीं है ।

§ ३५१ अपगतवेदियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यात-भागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसापरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५२ आभिनिघोषिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातगुणहानिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभाग-

भागहाणिविह० जीवा असंख्ये०गुणा । एवमोहिदंसण०-सुक्कले०-सम्मादिदि षि ।  
मणपत्तम्व० एव चेव । णवरि मम्मि असंख्ये०गुणं तम्मि संख्ये०गुणं कायव्व । एव  
संब्रद०-सामाहय-भेदो० ।

§ ३५३ चक्खु० सम्बत्थोवा असंख्येज्जगुणहाणिविहयिया जीवा । सखो०  
गुणहाणिवि० जीवा असंख्ये गुणा । संखे०गुणवट्ठिवि० जीवा विसेसाहिया । संखेज्ज  
भागवट्ठि-हाणिवि० जीवा दो वि तुष्ठा संख्येज्जगुणा । असंख्ये०भागवट्ठि० जीवा  
असंख्ये०गुणा । अषट्ठि० जीवा असंख्येगुणा । असंख्ये०भागहाणिवि० जीवा संख्ये०  
गुणा । विमंग०-तेउ०-पम्म० विदियपुट्ठिभंगो ।

§ ३५४ स्वइय० मणपन्मवमगा । एवरि असंख्ये०भागहाणि० असंख्ये०गुणा षि  
वत्तव्वं । वदय० सव्वस्थाना संख्ये०गुणहाणिवि० जीवा । संख्ये०भागहाणिवि० जीवा  
संख्ये०गुणा । असंख्ये०भागहाणिवि० जीवा असंख्ये०गुणा । एवं सम्मापि० ।

एवं वट्टीसमत्ता ।

§ ३५५ संपहि द्वाणपक्खजे कीरमाजे सत्तरिसागरोबमकोटाकोडीओ समयूण  
दुममयूणादिकमेण ओदारेयम्भाओ भाव णिभियप्यभंतोकोडाकोटि षि । तदा

हानिवासे जीव संख्यातगुण्ये हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुण्य हैं । इसी  
प्रकार अविहारीनवाले बुद्धसंख्येवाचाले और सम्मगट्ठि जीवोंके जानना चाहिये । मन्तपयव  
कामियेके इसी प्रकार जानना चाहिये । पर उनके इतनी विवेकता है कि आभिनित्वाधिक्यानी आदिके  
अर्था असंख्यातगुण्य है परा इनके संख्यातगुण्य करना चाहिये । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत  
और क्षेत्रोपस्थापमासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५६ चक्षुपन्नवासोमि असंख्यातगुण्यहानिवाले जीव सयसे बाइ हैं । इनसे संख्यात-  
गुण्यहानिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इनसे संख्यातगुण्यद्विवाले जीव विज्ञप अधिक हैं । इनसे  
संख्यातभागवट्ठि और संख्यातभागहानि इन दोनों पक्षाले जीव परस्पर समान होते हुए भी  
संख्यातगुण्ये हैं । इनसे असंख्यातभागवट्ठिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इनसे अविहारी  
विमक्तिवासे जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुण्ये हैं ।  
विमंगद्वानी पाठसेहयाचाले और पद्यसेहयाचाले जीवोंमें बृहती वृत्तिभेद समान भंग है ।

§ ३५७ कायिकसम्मगट्ठियोमि अनपय्येयहानियोके समान भंग है । इतनी विचरता है कि  
इनमें असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं ऐसा कहना चाहिये । बद्धसम्मगट्ठियोंमें  
संख्यातगुण्यहानिवाले जीव सयसे धोके हैं । इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुण्ये हैं ।  
इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार सम्मगट्ठियोके जीवोंके  
जानना चाहिये ।

इस प्रकार वृत्ति अनुपांगद्वार समान हुआ ।

§ ३५८ स्थानकी प्रलपणा फरत समय एक समय कम वा समय कम इस क्रमसे सत्तर  
कोडाकोडी सागरप्रवाल स्थितिके निर्बिकर अन्तःकोडाकोडी सागरप्रवाल मत्त हाने तक कम

§ ३४९ सव्वविगल्लिदिण्णु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे०भागवट्ठि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संरोज्जगुणा । अमंखे०भागवट्ठिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा अमंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । चट्ठुण्हं कायाणमेइंदियभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे०गुणं कायव्वं । तस०-तसपज्जत्ताणमावभगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे०गुणं । एवं तस०अपज्ज० । णवरि अमंखे०गुणहाणी णत्थि ।

§ ३५० पंचमण०-पंचवचि० सव्वत्थोवा अमंखे०गुणहाणिवि० जीवा । सेसं विदियपुढविभंगो । एवगोरालि० । णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि अणंतगुणं कायव्वं । वेउच्चिय० चिदियपुढविभंगो । वेउच्चियमिस्स० पढमपुढविभंगो । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहाक्खाद० उवसम०-सासण० णत्थि अप्पावहुअं ।

§ ३५१ अरवगद० सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणि०जीवा । संखे०भागहाणि० जीवा संखे०गुणा । अमंखेज्जभागहाणि० जीवा संखे०गुणा । एवं सुद्धमसांपरा० ।

§ ३५२ आभिणि०-सुट०-ओहि० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणि० जीवा । सखेज्जगुणहाणि० जीवा असंखे०गुणा । संखे०भागहाणि० जीवा संखे०गुणा । असखे०

§ ३४६ सभी विकलेन्द्रियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यात-भागवृद्धि और सख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यात-गुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । चारों कायवाले जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भग है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंके जिस स्थानमें अनन्तगुणा कहा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके धोवके समान भग है । इतनी विशेषता है कि ओघमें जहा अनन्तगुणा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं है ।

§ ३५० पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनोयोगी और वचनयोगियोंमें जहाँ असख्यातगुणा है वहाँ औदारिककाययोगियोंके अनन्तगुणा करना चाहिये । वैकिकिकाययोगियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भग है । वैकिकिकामिश्रकाययोगियोंमें पहली पृथिवीके समान भग है । आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकपायी, यथाख्यातसयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पवहुत्व नहीं है ।

§ ३५१ अपगतवेदियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यात-भागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सुद्धमसांपराधिकसयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५२ आभिनिशोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातगुणहानिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सख्यातभाग-



शुचद्विदीए ददसमुपपत्तियं कादूण गिरतरमोदारदेद्वं जाव एइंदियशुचद्विदि ति । तदो एइंदियशुचद्विदिमग्निमयणियद्विखवणद्विदिस्तकम्मं वेत्तूण सांतरणिरंतरक्रमेण ओदारदेद्वं जाव मुहूमसांपराडयचरिमसमयम्मि एगा द्विदि ति । एवमोदारिडे मूल पयडिट्टाणाणि सव्वाणि ममुपपण्णाणि हाति ।

एव मूलपयडिट्टिदिविहत्ती समत्ता ।

करना चाहिये । तदनन्तर श्रुच स्थितिकी हनसमुत्पत्ति करके एकेन्द्रियोंकी श्रुच स्थिति प्राप्त होने तक क्रम करते जाना चाहिये । तदनन्तर एकेन्द्रियोंकी श्रुचस्थितिके समान अनिवृत्तिकरणचपकी सन्नासे स्थित स्थितिको ग्रहण करके सान्तर-तिरन्तर क्रमसे इमे सूत्रसापराधिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होनेवाली एक स्थितिके प्राप्त होनेतक क्रम करते जाना चाहिये । इस प्रकार प्रारम्भमें स्थितिके उत्तरोत्तर कम करने पर सभी मूलप्रवृत्तिस्थितिस्थान प्राप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार मूलप्रवृत्ति स्थितिभिक्ति समाप्त हुई ।

उत्तरपयद्विदिविहरी

⊗ उत्तरपयद्विदिविहृत्तिमणुमग्गइस्सामो ।

§ ३५६ एवं अइसहाइरियस्स पइन्नावणं । ज चेसा पइज्जा निप्फसा, सिस्साणं परुबिन्जमाणअहियारावगमणफलसादो । अहियारो किमिदि आणाविज्जे ? सिस्समणोगयसंदइविणासणह ।

⊗ तं जहा । तस्य अइपदं—एया द्विदी द्विदिविहृत्ती अयेयाओ द्विदीओ द्विदिविहृत्ती ।

§ ३५७ परुबिज्जमाणद्विदिनिहृत्तीए एवमहपदं अइसहाइरियण किमह परुविदं ? द्विदिविहृत्तिसरूवावगमणह । एया कम्मस्स द्विदी एया द्विदी णाम । कयमयेयाणं पदेसमेवेण मिप्पाणं द्विदीणमेयत्तं ? ज, पयद्विमावेण सम्भपदे साणमेयत्तुपल्लमादो । परिमणिसेयद्विदिपरमाणुखं सम्भसिं कालमस्सिदूण सरिसत्त वंसपादो वा एयत्तं । एसा एगा द्विदी द्विदिविहृत्ती होदि । समयूण-दुसमयूणादि

उत्तरमहतिरिचितिविमक्ति

⊗ अब उत्तरमहति स्थितिविमक्तिका विचार करत हैं ।

§ ३५६ यह यतियुक्त आचार्यका प्रतिज्ञावचन है । यदि कोई कहे कि यह प्रतिज्ञा निष्फला है सा भी बात नहीं है क्योंकि शिष्योंको यह जानेवाले अभिस्तरका ज्ञान करना इसका फल है । शंका—अधिकारक ज्ञान क्यों करना जाता है ?

समाधान—शिष्योंके मनमें उत्पन्न हुए सन्देहको नष्ट करानके लिये अधिकारक ज्ञान करना जाता है ।

⊗ जो इस प्रकार है । उसके विषयमें यह अर्थपद है—एक स्थिति भी स्थितिविमक्ति है और अनेक स्थितियों भी स्थितिविमक्ति हैं ।

§ ३५७ शंका—क्या ज्ञानवाली स्थितिविमक्तिका यह अर्थ पतियुक्त आचार्यने किसलिय कहा ?

समाधान—स्थितिविमक्तिके स्वरूपका ज्ञान करानके लिये पतियुक्त आचार्यने यह अर्थपद कहा है ।

कमकी एक स्थितिको एक स्थिति कहते हैं ।

शंका—प्रदेशोंके भेदसे भेदको प्राप्त हुई अनेक स्थितियोंमें एकत्र कैसे वन सकता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा सभी प्रदेशोंमें एकत्र पाया जाता है । अथवा अस्तिम निवेदकी स्थितिको प्राप्त हुए सब परमशुभोंमें वास्तकी अपेक्षा समानता देखी जाती है अतः इनमें एकत्र वन जाता है ।

यह एक स्थिति भी स्थितिविमक्ति होती है क्योंकि एक समय कम और दो समय कम

द्विदीहितो भेदुवलभादो । अथवा मुहुमसांपराड्यचरिमसमयपरमाणुपोगलकसंधकालो एया द्विदी णाम । तस्म एगसमयणिप्पण्णत्तादो । एसा वि द्विदी द्विदिविहत्ती होदि, दुसमयादिद्विदीहितो पुग्भूदत्तादो । तत्थेव भिण्णपरमाणुद्विद्वयमएहितो अप्पिद-कालसमयस्स पुग्भावुवलभादो वा सगाहारपरमाणुम्मि पोगलकसंधे वावड्ढिद-तिकालगोयराणंतपज्जएहितो एदिस्से द्विदीए पुग्भावदंसखादो वा विहत्तित्तं जुज्जदे । दच्चद्वियणयमस्सिदूण एसा परवणा कदा । उक्कस्स-समउणुक्कस्स-दुममउणुक्कस्सा-द्विभेदेण अणेयाओ द्विदीओ ताओ वि द्विदिविहत्ती होति, समाणासमाणद्विदीहितो परमाणुपोगलभेदेण च भेदुवलभादो । एदमद्वपदं पज्जद्वियसिस्साणुग्गहट्टं कदं ।

§ ३५८ का द्विदी णाम ? कम्मसरूवेण परिणटाणं कम्मइयपोगलकसंधाणं कम्म-भावमच्छडिय अच्छणकालो द्विदी णाम । उत्तरपयडीणं द्विदी उत्तरपयडिद्विदी । का उत्तरपयडी ? मूलपयडीए अवांतरपयडीओ । कथं मदि-मुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणीयाणं पुग्भूदणणेषु वावटाणं पयडीणमेयत्त ? ण, णाणसामण्णेण सव्वेसिं णाणाणमेयत्तमुवगयाणमावरणाण पि एयत्ताविरोहादो ।

आदि स्थितियोसे इममे भेद पाया जाता ह । अथवा सूक्ष्मसापरायिक गुणस्थानक अन्तिम समयमे पुद्गल परमाणुओंके स्क्रन्धका जो काल ह वह एक स्थिति कहलाती ह, क्योंकि वह काल एक समय निष्पन्न ह । यह स्थिति भी एक स्थितिबिभक्ति होती ह, क्योंकि यह दो समय आदि स्थितियोसे भिन्न ह । अथवा उसी सूक्ष्मसापरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें भिन्न परमाणुओं मे स्थित समयोंसे विवक्षित कालममय पृथक् पाया जाता ह । अथवा अपने आधारभूत परमाणुओं में या पुद्गलस्क्रन्धमें अरिपित त्रिकाकनी विषयभूत अनन्त पर्यायोसे यह स्थिति पृथक् देखी जाती है, इसलिये इसमे विभक्तिपना बन जाता ह । यह कथनी द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे की ह । तथा जो उत्कृष्ट, एक समय कम उत्कृष्ट और दो समय कम उत्कृष्ट आदिके भेदसे अनेक स्थितियों हैं वे भी स्थितिबिभक्ति कहलाती हैं, क्योंकि इनमे समान और असमान स्थितियोंकी अपेक्षा तथा पुद्गलपरमाणुओंके भेदकी अपेक्षा भेद पाया जाता ह । यह अर्थपद पर्यायार्थिक बुद्धिवाले शिष्योंके उपकारके लिये किया ह ।

§ ३५८ शंका—स्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मरूपसे परिणत हुए पुद्गलकर्मस्क्रन्धोंके कर्मपनेको न छोडकर रहनेके कालक स्थिति कहते हैं ।

उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिको उत्तर प्रकृतिस्थिति कहते हैं ।

शंका—उत्तर प्रकृति किसे कहते हैं ?

समाधान—मूल प्रकृतिकी अवान्तर प्रकृतियोंको उत्तरप्रकृति कहते हैं ।

शंका—भिन्न भिन्न ज्ञानोंमें व्यापार करनेवाले मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि-ज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरणरूप प्रकृतियोंमें एकपना कैसे बन सकता ह ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा सभी ज्ञान एक हैं, अतः उनकोआवरण

⊗ एदेष अहपदेण ।

३५६. एदमहपदं कादूण उवरिमचउबीसअणियोगहारेहि द्विदिविहरीय मखुगमं कस्सामा । तेसिं चउबीसण्हमणिओगहारणं खुण्णिसुचम्मि पुम्मं परुविदानं पासजयाखुमाहद्ध पुखरवि णामण्हिदेसो कीरदे । तं जहा—अद्दाअद्देसो सम्बद्धिदिविहरी गोसम्बद्धिदिविहरी उक्कस्सद्धिदिविहरी अणुक्कस्सद्धिदिविहरी जहण्णद्धिदिविहरी अमहण्णद्धिदिविहरी सादियविहरी अयादियविहरी घुवद्धिदिविहरी अइधुवद्धिदिविहरी एयवीवेण सामिणं कालो मंतरं णाणाजीवेहि मंगविषअओ भागामागो परिमाणं खेचं पोसणं कालो मंतरं सण्णियासो मावो अप्पावहुअं अदि २४ । सुजगार प्पणिकखेव बद्धि-हाणाणि चि एदाणि चचारि अणियोगहाराणि, एदेहि चि द्विदिविहरी परुविह्वदि । अहावीस मणियांगहाराणि किण्ण होंति चि घुत्ते ण, चउबीसअणियोगहारेसु चेष एदेसिमंतग्भापादो । त जहा—अमहण्णाणुक्कस्स द्विदिविहरीसु सुजगारविहरी पविहा उत्य उक्कस्सयोसकणविहाणपरुषणादो । सुजगारविसेसो पदणिकखेवो, जहण्णुक्कस्सबद्धिहाणिपरुषणादो । पदणिकखेव विसेसो घट्टी, बद्धिहाणीणं भेदपरुषणादो । बद्धिविसेसो हाणं, तत्यतणअन्तातर भेदपरुषणादो । सद्दो द्विदिविहरीय चउबीस चेष अणियोगहाराणि होंति चि सिद्ध ।

अनबाले कर्मोके मी एक माननेमें कोई विरोध नहीं जाता है ।

⊗ इस अर्थपदके अनुसार स्थितिविमर्शिका अनुगम करते हैं ।

§ ३५६. इस अर्थपदका आश्रयन लेकर अग्रे कहे जानेवाले चौबीस अनुयोगहारोंके द्वारा स्थितिविमर्शिका अनुगम करते हैं । ये चौबीस अनुयोगहार बुद्धिसुद्धमें पहले कहे जा चुके हैं फिर मी वास्तवज्ञानके उपकारके लिये इनका फिरसे नामनिर्देश करते हैं । वा इस प्रकार है— अद्दाअद्देस, सबैस्थितिविमर्शिक नोसवैस्थितिविमर्शिक उत्तमस्थितिविमर्शिक, अनुक्कस्सस्थितिविमर्शिक अणुक्कस्सस्थितिविमर्शिक, अरुपम्यस्थितिविमर्शिक साविस्थितिविमर्शिक, अनाविस्थितिविमर्शिक, प्रबुस्थितिविमर्शिक अथ प्रस्थितिविमर्शिक एक बीषकी अपेक्षा स्वामित्व काल, अन्तर, गाना बीषोंकी अपेक्षा मंगविषय, मागामाग परिमाण्य क्षेत्र, स्पष्टन, काल, अन्तर, समित्कर्ष, भाव और अस्यकृत्य ।

क्षेत्र—सुजगार, पत्तियेष बुद्धि और स्वान के चार अनुयोगहार और हैं क्योंकि इनके द्वारा मी स्थितिविमर्शिका कथन किया जायगा, अतः अद्दाईस अनुयोगहार क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चौबीस अनुयोगहारोंमें ही इनका समावेश हो जाता है । यथा— अरुपम्य और अनुक्कस्स स्थितिविमर्शिकोंमें सुजगार स्थितिविमर्शिका अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि उसमें उत्कृष्ट और अपकृष्ट विधिका कथन किया गया है । तथा सुजगार क्षेत्रेण पर तिषेण करते हैं क्योंकि इसमें अरुपम्य और उत्कृष्टरूप बुद्धि और हानिक कथन किया गया है । पत्तियेष का एक विशेष बुद्धि है क्योंकि इसमें बुद्धि और हानिक भेदोंका कथन किया गया है । तथा बुद्धिका एक विशेष स्वान है, क्योंकि इसमें स्वानगत अन्तर्गत भेदोंका कथन किया गया है । इसलिये स्थितिविमर्शिके चौबीस ही अनुयोगहार होते हैं पर सिद्ध हुआ ।



### ❀ पमाणाणुगसो ।

§ ३६०. कीरदे इदि एत्थ अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तहाणुववत्तीदो । चववीसअणियोगहारोसु ताव उत्तरपयडीणमद्धाब्बेदं भणामि त्ति वुत्तं होदि । पढममद्धाब्बेदो चेव किमहं वुच्चदे ? ण, अणवगयअद्धाब्बेदस्स उवरिमअणियोगहारानं परुवणाणुववत्तीदो ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदिविहती सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पड्डिवुण्णाओ ।

§ ३६१. एसो अद्धाब्बेदो एगसमयपवद्धमस्सिदूण परुविदो ए णाणासमयपवद्धे; तत्थ तिण्णिभंगप्पसंगादो । एगसमयपवद्धस्से त्ति कथं णव्वदे ? अरुम्मसरुवेण ट्टिदाणं कम्मइयवग्गणकखंधाणं मिच्छत्तादिपच्चएहि मिच्छत्तकम्मसरुवेण अक्रमेण परिणमिय सव्वजीवपदेसेसु संबंधाणं समयाहियसत्तवाससहस्समाट्ठिं कादूण णिरंतं समयुत्तरादिकमेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्टिदिदंमणादो । जम्मि समयपवद्धे मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिकम्मकखंधा अत्थि तत्थ एगसमयमादिं कादूण जाव सत्तवाससहस्साणि त्ति एदेसु ट्टिदिविसेसेसु एगो वि कम्मकखंधो एत्थि त्ति कुदो णव्वदे ?

\* अब प्रमाणका अनुगम करते है ।

§ ३६० 'पमाणाणुगसो' इस सूत्रमे 'कीरदे' क्रियाका अध्याहार कर लेना चाहिये, अन्यथा सूत्रका अर्थ नहीं बन सकता है । चौबीस अनुयोगद्वारोंमेसे पहले उत्तर प्रकृतियोंके अद्धाच्छेद अर्थात् कालका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—सबसे पहले अद्धाच्छेदका ही कथन किसलिये किया जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अद्धाच्छेदका ज्ञान किये विना आगेके अनुयोगद्वारोंका कथन नहीं बन सकता है, अतः सबसे पहले अद्धाच्छेदका कथन किया जा रहा है ।

\* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पूरी सत्तर कोडाकोडी सागर है ।

§ ३६१ यह अद्धाच्छेद एक समयप्रवद्धकी अपेक्षा कहा है नाना समयप्रवद्धोंकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि नाना समयप्रवद्धोंकी अपेक्षा अद्धाच्छेदके कथन करने पर तीन भग प्राप्त होते हैं ।

शंका—यह स्थिति एक समयप्रवद्धकी है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि जो कर्मणवर्गणास्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्वादि कारणोंसे मिथ्यात्वकर्मरूपसे एक साथ परिणत होकर जब सम्पूर्ण जीव प्रदेशोंमें सम्बद्ध हो जाते हैं तब उनकी एक समय अधिक सात हजार वर्षसे लेकर समयोत्तरादि क्रमसे निरन्तर सत्तर कोडा कोड़ी सागर प्रमाण स्थिति देखी जाती है । इससे जाना जाता है, कि यह स्थिति एक समयप्रवद्धकी है ।

शंका—जिस समयप्रवद्धमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कर्मस्कन्ध हैं वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिविशेषोंमें एक भी कर्मस्कन्ध नहीं है यह किस प्रमाण

मिच्छत्स सत्तवासत्सहस्ताणि चक्रत्सिया आवाहा आवाहूण्या कम्मद्विदी कम्म  
 खिसम्भो चि महारंभमुत्तादो । ए च सम्भासु द्विदीसु सत्तवासत्सहस्ताणि चैव आवाहा  
 होदि चि णियमो; एगावाहाकंदयमेत्तद्विदीसुत्तणियसुबलमादो । आवाहाकंदपरण्य-  
 चक्रत्सद्विदीए समयुत्तसत्तवासत्सहस्ताणि आवाहा होदि चि एषं जाणिय्थ णेयम्भं  
 वाव घुबद्विदि चि ।

● एषं सम्मत्त—सम्मानिच्छत्ताण । णवरि अंतोसुहुत्तणाओ ।

§ ३६२ एदाच्चि ये चि कम्माणि जेण ण रंभपयडीओ तेण एदासिसुक्कस्स-  
 द्विदी सत्तरिसागरोबमकोटाकाटीओ अंतोसुहुत्तणाओ होदि । रंभाभावे कयमेदासि  
 दोणं पयडीयसुक्कस्सद्विदीए वा सहुत्तपी ? मिच्छत्तसंकमादो । तं जहा—पडमसम्मत्त-  
 गहण्यपडमसमए तिहि करणपरिणामेहि विहाविहत्तमिच्छत्तकम्मसेण भट्टासीसत्त-  
 कम्मियमिच्छाद्विदिना बद्धमिच्छत्तसुक्कस्सद्विदिखा अंतोसुहुत्तपरिहण्येण पुणो सम्मत्त-  
 से जाना जाता है ?

समाधान— मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आवाधा सात हजार वर्ष प्रमाय्य है और आवाधासे म्यून  
 कर्मास्विति प्रमाय्य कर्मानिरेके हैं म्हात्म्यके इस सूत्रसे जाना जाता है कि जिस समयप्रवृत्तमें  
 मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाय्य कर्मास्वत्त्व हैं वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाय्य  
 स्थितिके भेदोंमें एक भी कर्मास्वत्त्व नहीं है ।

पवि कहा जाव कि समस्त स्थितियोंमें सात हजार वर्ष प्रमाय्य ही आवाधा होती है ऐसा  
 नियम है सो भी बात नहीं है क्योंकि एक आवाधाकाव्यक्त प्रमाय्य स्थितियोंमें ही एक नियम देना  
 जाता है, अतः आवाधाकाव्यक्तसे म्यून उत्कृष्ट स्थितिकी एक समय कम सात हजार वर्ष प्रमाय्य  
 आवाधा होती है ऐसा समझना चाहिये । आगे भी इसी प्रकार जानकर प्रवृत्तस्थिति तक ले  
 जाना चाहिये ।

● इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थिति  
 है । पर इतनी विशेषता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी  
 सागर है ।

§ ३६२ चू कि ये दोनों ही कर्म रंभते नहीं हैं इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्त  
 कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होती है ।

झका— कर्मके नहीं होने पर इन दोनों प्रकृतियोंकी और इनकी उत्कृष्ट स्थितिकी उत्पत्ति  
 कैसे हो सकती है ?

समाधान—मिथ्यात्वका संक्रमय होकर इन दोनों प्रकृतियोंकी और इनकी उत्कृष्ट स्थिति  
 की उत्पत्ति होती है । उसका जल्लासा इस प्रकार है—तीन करण्य परिणामोंके द्वारा बिस्त्ने  
 प्रबभोपसम सम्यक्त्वके प्रवृत्त कर्मके पहले समयमें सत्तामें स्थित मिथ्यात्व कर्मके तीन मार्गोंमें  
 बंट दिया है ऐसा अट्टाईस प्रकृतिबोंकी सत्ताजाला मिथ्यात्वद्विती बीच बव उत्कृष्ट स्थितिके सब  
 मिथ्यात्व कर्मको बांधकर उत्कृष्ट स्थिति कर्मके योग्य उत्कृष्ट संकलेशपरिणामोंसे निवृत्त होयमें  
 सगनबसे अन्तमुहूर्त प्रमाय्य काजके द्वारा पुनः सम्यक्त्वके प्रवृत्त करणके प्रबभ समयमें ही एक

गहनपहमसमए चेव पडिहगकालेएणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तमिच्छत्तट्टिटीए सम्मत्तसम्माभिच्छरोसु संकामिदाए सम्मत्तसम्माभिच्छात्ताणमुक्कस्सग्रद्धात्तेदो होदि,तेण वंधाभावे वि दोहं पयडीण तदुक्कस्सट्टिटीणं च अत्थिचं सिद्धं । पडिहगकाले एग-दु-तिसमइओ किण्ण होदि ? ण, संकिलेसादो ओयरिय विसोहीए अंतोमुहुत्तावट्टाणेण विणा सम्मत्तस्स गहणाणुववत्तीदी ।

प्रतिभग्नकाल अन्तमुहूर्तप्रमाणसे न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमे सकान्त कर देता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद होता है, अतः बन्धके नहीं होने पर भी दानों प्रकृतियोंका और उनकी उत्कृष्ट स्थितिका अस्तित्व सिद्ध होता है ।

**शंका**—प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमे आरु और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत संक्लेशसे च्युन होकर और विशुद्धिको प्राप्त करके जब तक उसके साथ जीव मिथ्यात्वमें अन्त-मुहूर्तकाल तक नहीं ठहरता है तब तक उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसीलिये प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय नहीं होता ।

**विशेषार्थ**—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतिया बन्धसे सत्त्वको नहीं प्राप्त होतीं किन्तु मिथ्यात्व का इन दोनों प्रकृतियों रूप से सक्रमण होता है और इसीलिये मोहनीय की बन्ध प्रकृतिया २६ तथा उदय और सत्त्व प्रकृतिया २८ मानी गई हैं । यद्यपि एक सजातीय प्रकृति का दूसरी सजातीय प्रकृतिरूप से सक्रमण दूसरी प्रकृतिके बन्धकाल में ही होता है ऐसा नियम है पर यह नियम बन्ध प्रकृतियोंमें ही लागू हाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंमें नहीं, क्योंकि ये दोनों बन्ध प्रकृतिया नहीं हैं । इनके सम्बन्धमे तो यह नियम है कि जब कोई एक २६ प्रकृतियों की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तब वह प्रथमापशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पहले समयमें मिथ्यात्वके तीन भाग कर देता है जिन्हें क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व सन्ना प्राप्त होती है । पर ऐसे जीवके आयु कर्म को छोड कर शेष सात कर्माँका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व अन्त कोडाकोडी सागरसे अधिक नहीं होता है इसलिये ऐसे जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्माँका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व सम्भव नहीं । अतः ऐसा जीव जब मिथ्यात्व में चला जाता है और वहा सक्लेशरूप परिणामों के द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर अन्तमुहूर्त कालके पश्चात् पुन-वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसके मिथ्यात्वकी अन्तमुहूर्त कम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे सक्रमण हो जाता है और इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण प्राप्त होती है । यहा इतना विशेष समझना चाहिये कि मिथ्यात्वमें जाकर जिस जीवने मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसे सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धता प्राप्त करनेके लिये अन्तमुहूर्त से कम काल नहीं लगता है इसलिये यहा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमें से अन्तमुहूर्त काल कम किया है । तथा ऐसा जीव वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त कर सकता है प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके अन्त-कोडाकोडी सागर से अधिक स्थिति नहीं होनी चाहिये ऐसा नियम है ।

✽ सोलसण्ड कसायाणमुक्कस्सद्विदिविहसो चत्तालीससागरोयम कोडाकोडीओ पडिबुण्णाओ ।

§ ३६३ कुदो ? मिच्छाद्विहणा उक्कस्ससंकिण्णियेण पद्धकम्मइयवगणक्त्तपाणं सोलसकसायमकूणेण परिखयाण सयलजीवपदेसुवगयाणं समयारियचचारियाससइस्स माविं कादूण भाव चालीससागरोयमकोडाकोडीओ धि कम्मभावेण भवहाणुक्त्तंभादो । पदेसिं कम्माणं मिच्छदुक्कस्सद्विदीए समाणा द्विदी किण्ण भादा ? ण, वंसण चरिचविरोहीणं पयडीणं सरीए समाणरविरोहादो । अविरारे धा एगा चेष पयडी होअ; तासिं भेदकारणाभावादो । ण च एअं; कोइमाणमायालाहादिकजमेएण पयडीणं पि मवसिदीदो ।

✽ एव णवणोकसायाणं । णवरि आवलिऊणाओ ।

§ ३६४ कुदो, सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिं वंधिय वंधानस्थियकालं बोत्ताविप आबशियूणचालीससागरोयमकोडाकोडामेषमोमकसायद्विदीए णवणोकसायसु सकंताए

✽ सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थिति विमक्ति पूरी चालीस कोडाकोडी सागर है ।

§ ३६२ शंका—सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थिति पूरी चालीस कोडाकोडी सागर क्यों है ?

समाधान—एक कार्य एक मिथ्यादृष्टि की उत्कृष्ट संकलेशरूप परिस्थिति द्वारा कामच

कर्मसास्त्रियोंको बांधकर सोलह कपायरूपसे परिणत करके समस्त जीवमर्शोंमें प्रसन्न कर देता है तब एक समय अधिक बार-बार वर्षसे लेकर चालीस कोडाकोडी सागर तक उन सालह कपायोकी कर्मरूपसे अवस्थान पाया जाता है, इससे सिद्ध होता है कि सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागर है। तत्पर्य यह है कि सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिचम चालीस कोडाकोडी सागर प्रमात्य होता है।

शंका—इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समान क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं क्योंकि इतानमोहनीय और पारित्रमाहनीय परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ

हैं अतः उनकी दृष्टिको समान माननेमें विरोध आता है। यदि इनमें अधिकार माना जाय तो वे दोनों एक ही प्रवृत्ति हो जायगी, क्योंकि अविरोध मानने पर उनमें भ्रष्टाचार का कारण नहीं रहता है। परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि कार्य मान माया और साम आदि रूप कार्यके भ्रष्टे प्रवृत्तियोंमें भी परस्पर भ्रष्ट सिद्ध है अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समान सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है।

✽ इसी प्रकार नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थिति है। किन्तु इतनी निश्चयता है

कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक मात्रकीकम चालीस कोडाकोडी सागर है ।

§ ३६४ शंका—ना नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थिति एक आपर्जाकम चालीस कोडाकोडी सागर प्रमात्य क्यों है ?

समाधान—सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिचम बांधकर चार कपायवलि प्रमात्य कपाय

विचार एक मात्रकीकम चालीस कोडाकोडी सागर प्रमात्य काम करवकी स्थितिके मा नोकपायो

तेसिमावलियूणकसायुकस्सट्टिदिदंसणादो । णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंढाण-मुक्कस्ससंकिलेसेण बंधपाओग्गाणं सोलसकसायाणं व चत्तालीससागरोवमकोडाकोडी-मैत्तो द्विदिवंधो किरण होदि ? ण, कसायणोकसायाणं पुथभूदजादीणं द्विदिभेदे संते विरोहाभावादो । इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणं पडिहग्गकालम्मि वज्झमाण्णं कथमावलि-यूणा कसायाणमुक्कस्सट्टिदी होदि ? ण, पडिहग्गपढमसमए चेव वज्झमाणेसु चदुसु कम्मेसु बंधावलियादिककंतकसायकम्मक्खंधाणमावलियूणउक्कस्सट्टिदीणं संकंतिदंस-णादो । एदाणि चत्तारि वि कम्माणि उक्कस्ससंकिलेसेण किण्ण वज्झंति ? ण, साहावियादो ।

में संक्रान्त हो जाने पर नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर देखी जाती है, अतः नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन जाती है ।

**शंका**—उत्कृष्ट संक्लेशसे वधनेके योग्य जो नपुसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा प्रकृतिया हैं उनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सोलह कषायोंके समान पूरा चालीस कोड़ाकोड़ी सागर क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि कषाय और नोकषाय ये पृथक् जातिकी प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनके स्थिति भेदके रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

**शंका**—प्रतिभग्न कालमें वधनेवाली स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कैसे हो सकती है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि, प्रतिभग्न कालके पहले समयमें ही वधनेवाली इन चार प्रकृतियोंमें बन्धावलिके सिवा शेष कर्मस्कन्धोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण देखा जाता है, अत इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण हो जाती है ।

**शंका**—ये स्त्रीवेद आदि चारों कर्म उत्कृष्ट संक्लेशसे क्यों नहीं बधते हैं ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेशसे नहीं वधनेका इनका स्वभाव है ।

**विशेषार्थ**—वन्धसे स्त्रीवेदकी १५ कोडाकोडी सागर, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और नपुसकवेदकी २० कोडाकोड़ी सागर तथा हास्य, रति और पुरुषवेदकी १० कोडाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है किन्तु जब कषायों की उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकषायरूपसे संक्रमण होता है तब इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिकम ४० कोडाकोड़ी सागर हो जाती है । तत्काल वधे हुए कर्मका एक आवलि काल तक सक्रमण नहीं होता अतः ४० कोडाकोड़ी सागरमें से एक आवलि कम कर दी गई है ! किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट संक्लेशसे होनेवाले कषायकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय नपुसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पाच प्रकृतियोंका ही वन्ध होता है, अतः वन्धकालके भीतर ही इनमें एक आवलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण प्रारम्भ हो जाता है । तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका वन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे नहीं होता अत कषायकी उत्कृष्ट स्थिति वन्धके उपरत होने पर एक आवलिके पश्चात् इनमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण होता है क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके निवृत्त होने के पहले समयसे ही इन स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका वन्ध होने लगता है और इसलिये एक



द्विदिविहती सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ । सोलसकसाय-णव-  
णोकसायाण उकस्सअद्दाद्धेदो चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ अतोमुहुत्तूणाओ ।  
एवं मणुसअपज्ज-वादरेइदियअपज्ज०-सुहुमेइदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिट्टिय-पच्चिदिय-  
अपज्ज०-वादरपुढविअपज्ज० - सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त - वादरआउअपज्ज० - सुहुमआउ-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वत्तेउ०-सव्वआउ०-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-सुहुमवणप्फदि०-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि० सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सुकलेस्सा-  
सम्मादि०-वेदय०-सम्मामिच्छादिट्ठि ति ।

§ ३६८ आणदादि जाव सव्वद्व० सव्वपयडीणमुक्क० अद्दाद्धेदो अंतोकोडा-  
कोडी० । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अषगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-द्धेदो०-  
परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० - संजदासंजद-खइय-उवसम० - सासणसम्मा-  
दिट्ठि ति ।

§ ३६९ एइदिएसु मिच्छत्तुक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समऊणाओ ।  
सम्मत्तसम्मामिच्छत्तणवणोकसायाणमोघ । सोलसक० उक्क० चत्तालीस० कोडाकोडीओ  
समयूणाओ । एवं वादरेइदिय-वादरेइदियपज्ज०-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-  
आउ०-वादरआउ०-वादरआउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-

उत्कृष्ट स्थिति अन्तमु हूर्त कम सत्तर कोडाकोडी सागर है । तथा सोलह कपाय और नौ नोक-  
फपायोकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमु हूर्त कम चालीस कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार मनुष्य  
अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय  
अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवी-  
कायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, वादर जलकायिक  
अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, सब अग्नि-  
कायिक, सब वायुकायिक, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म वनस्पति  
पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्तक, सब निगोद, त्रस अपर्याप्तक, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अधधिज्ञानी, अधधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६८ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सभी ऋकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
अपगतवेदी, अकपायी, मन-पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, द्वेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
शिवुद्धिमयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसयत, सयतासंयत, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-  
राग्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६९ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम सत्तर कोडाकोडी सागर  
है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थिति ओघके समान है । तथा  
सोलह फपायोकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम चालीस कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार  
वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर,

भौरादि०-वेउचियमि०-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि चि ।

एवमुक्तस्तद्विद्विदिभ्रमवाक्येदो समसौ ।

बाहर ब्रमस्वनि प्रत्येकसरीर पयात्त भौरादिभ्रमिभ्रमकाययोगी वैकियिभ्रमिभ्रमकाययोगी कम्मएय काययोगी असंखी भौर अनाहारक जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

**विशेषार्थ** यहाँ पहले श्लोकके अनुमात्र त्रिन मार्गणाश्रमोंमें १८ प्रकृतियोंका अद्याप्येह है इनका मूलमें उल्लेख करते त्रिन मार्गणाश्रमोंमें बिलगता ९ उक्तका अत्रगमे निर्वेग किया है । सुखामा इस प्रकार है—द्विजने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वचन किया है वह एक अशुभ हर्षके बाद ही स्थितिपात किये बिना पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपयात्तश्रमोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपर्याप्तकालके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थिति सरगमें अशुभ हर्षके सम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर बड़ा है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपर्याप्तकालके सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अशुभ हर्षके सम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर ज्ञाननी चाहिये क्योंकि जिस जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति का वचन करके वेदक सम्पत्त्वको प्राप्त है । ९ यह जीव उक्त अति लघुगणक है द्वारा शीघ्र कर मिथ्यात्वमें आता है और स्थितिपात किये बिना मरकर पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपयात्तश्रमोंमें उत्पन्न होता है तब उमरे पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपयात्तक अत्रगमे सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी अशुभ हर्षके सम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाणा उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । यहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिदशमे लेकर पुनः मिथ्यात्वमें आकर पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपयात्तश्रमोंमें उत्पन्न होने तकके कालका जोड़ अशुभ हर्ष ही लेता चाहिये तभी पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपयात्तकालके सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक प्रमाणा वन सकती है । तथा पंचेन्द्रिय नियंत्रण लक्षणपयात्तकालके जीवके जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पठित करके तिस्र भावे हैं इसी प्रकार सोलह कपाय और नौ मोक्षयार्थोंकी उत्कृष्ट स्थिति अशुभ हर्षके सम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर पठित कर लेनी चाहिये । किन्तु इसकी विशेषता है कि सोलह कपायों की उत्कृष्ट स्थिति वचनकी अपेक्षा और नौ मोक्षयार्थोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमकी अपेक्षा पठित करनी चाहिये । मूलमें मनुष्य अपवर्जातक आवि और जितनी मार्गयाएँ गिनार्ह हैं उनमें भी इसी प्रकार सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति ज्ञाननी चाहिये । किन्तु सम्बन्धजनसे सम्बन्ध रखनेवाली आभिन्नित्तोचिकच्छानी आदि जितनी मार्गयाएँ गिनार्ह हैं उनमें सम्पत्त्व सम्बन्धिमिथ्यात्व और नौ मोक्षयार्थोंकी उत्कृष्ट स्थिति करते समय वेदकसम्पत्त्वसे पुनः मिथ्यात्वमें नहीं ले जाना चाहिये । किन्तु वेदकसम्पत्त्वके प्राप्त ज्ञानके पहले समयमें ही उनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कइनी चाहिये । हाँ सम्बन्धिमिथ्यात्वकी जीवके वेदकसम्पत्त्वसे अतिश्रीय सम्बन्धिमिथ्यात्वको प्राप्त कराके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कइनी चाहिये । आनतादि बार कर्मोंमें यदि अचिरती उत्पन्न होता है ता इन्वर्लिंगी मुनि ही उत्पन्न होता है । यही बात नौ प्रमेयकोंकी भी है अतः इनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अशुभकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती । मूलमें आहारककाय योगी अग्नि और जितनी मार्गयाएँ गिनार्ह हैं उनमें उत्कृष्ट स्थिति अशुभकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती यह स्पष्ट ही है । हाँ सूक्ष्मात्मपर्याप्त और यथाक्यात्तसंबन्धके जो उत्कृष्ट स्थिति अशुभकोड़ाकोड़ी सागर पठलाई है वह कपशामकी अपेक्षा ज्ञाननी अग्रिम है । जिसने मिथ्यात्व वा सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति का वचन किया है वह दूसरे समय में मर कर मूलमें कइी गई पंचेन्द्रियादि मार्गयाश्रमोंमें उत्पन्न हो सकता है अतः एक मार्गयाश्रमोंमें मिथ्यात्वकी एक समक कर्म सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कपायों की एक समक कर्म



## ❀ एत्तो जहण्णयं ।

§ ३७०. एदम्हादो उवरि जहण्णयमद्दाच्छेदं वत्तइस्सामो त्ति मंदमेहाविजण-

चालीस कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति वन जाती हैं । किन्तु एकेन्द्रियसे लेकर वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त तक मार्गणाओंमें और असझी मार्गणामें देव पर्यायसे च्युत हुए जीवको उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । औदारिक मिश्रकाययोगमें देव और नारक पर्यायसे च्युत हुए जीव को उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मनुष्य और तिर्यं च पर्यायसे च्युत हुए जीवको नरकमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । कर्मणकाययोग और अनाहारकमें उत्कृष्ट स्थिति कहते समय चारों गतिसे मरे हुए जीवको तिर्यं च और नारकियोंमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । तथा इतनी और विशेषता है कि इन सब मार्गणाओंमें भवके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होगा । तथा एकेन्द्रियसे लेकर वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक तक उपर्युक्त मार्गणाओंमें और असझी मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व इस प्रकार घटित कर लेना चाहिये कि भवनत्रिक व सौधर्म कल्पतक के किसी एक जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया । पुन अति लघु कालके द्वारा वह मिथ्यात्वमें गया और बहा अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति काण्डकघात किये बिना एकेन्द्रियादिक उक्त मार्गणाओंमें से किसी एकमें उत्पन्न हो गया तो उसके उत्पन्न होनेके पहले समय में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि देव और नारक पर्यायसे वेदकसम्यक्त्वके साथ आकर जो औदारिक-मिश्रकाययोगी होता है उसके ही भवके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व कहते समय मनुष्य और तिर्यं च पर्यायसे नारकियोंमें उत्पन्न कराकर भवके पहले समयमें ही कहना चाहिये । किन्तु ऐसे जीवको तिर्यं च और मनुष्य पर्यायमें रहते हुए वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न कराकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये और तब नरकमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ उत्पन्न कराना चाहिये । तथा कर्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व औदारिकमिश्रकाययोगके समान घटित कर कहना चाहिये । तथा नौ नोकपायों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व मिथ्यात्व और सोलह कपायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके समान घटित करके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उस मार्गणा में भवके पहले समयसे लेकर एक आवलिकाल तक प्राप्त हो सकता है, क्योंकि जिस जीवने सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर एक आवलि कालके पश्चात् मरण किया उसके भवके पहले समयमें नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा और जो दूसरे समयमें मर गया उसके एक आवलिकालके पश्चात् उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा । इसीप्रकार एक समयसे लेकर आवलितकके मध्यम विकल्प जानने चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिअच्छाच्छेद समाप्त हुआ ।

❀ इसके आगे जघन्य स्थिति अद्दाच्छेदको बतलाते हैं ।

§ ३७० इस उत्कृष्ट स्थितिअद्दाच्छेदके आगे जघन्य स्थिति अद्दाच्छेदको बतलाते हैं ।

संमालनद्वं परुविदमेदं ।

० मिच्छत्त-सम्प्राप्तिच्छत्त-भारसकसायाणं जहण्णद्विदिविहृती पगा द्विदी वुसमयकालद्विदिया ।

१ ३७? हृदो ? असंनदसम्प्राप्तिद्विप्यद्वि नाव अप्पमत्तसजदो पि एदे वंसण मोहक्खवणाए पामोगा । एदसिं चदुण्हं गुणहाणाणमण्णदरेण पुब्बमेव त्वदिव्अणंताजुबं पि चउक्केण वंसखमोहक्खवणाए अम्भुद्विदेण अभापवत्तकरखद्धाए अखत्तगुखाए विसी- हीए वड्डिसुवगएण अप्पसत्याणं कम्मार्णं समणंतरादीदमणुमागवर्षं पडुव चदअणंत गुणहीणाणुमागेण पसत्याणं कम्माखमणंतरादीदमणुमागवर्षादो चदअणंतगुणाणु मागेण द्विदिव्अणुमागखंडयपादविषमिएण वंसणमोहणीयक्खवणाए गुणसेद्विपदेस- णिअक्कम्मणेण मपुब्बकरखद्धाए पडमसमए आहत्तद्विदिव्अणुमागखंडयपादेण तत्त्वेवाहत्त- पदेसगुणसेद्विपिअरेण वंषदिरिदिव्अप्पसत्वमिच्छत्त-सम्प्राप्तिच्छत्ताणमाहत्तगुणसंक्रमेण अपुब्बकरखद्धाए संखेअसहस्सद्विदिकंडयासि द्विदिकंडएईतो संखेअगुणाणुमागकंड यापि च पादिय संखेअसहस्सद्विदिवंषोसरणाहि ओसरिय गुणसेद्विपिअराए कम्म कत्तं पे गास्सिय अणियद्विकरणं पविट्ठेण तत्य नि अप्पियद्विअद्धाए द्विदिकंडयमणुमाग-  
 पद सूत्र मन्वुयि वनोकि सम्हालनेके सिंये कहा है ।

० मिप्यात्व, सम्पमिप्यात्व और चारह कपायोंकी एक स्थिति अप्पय स्थितिभिन्नि होती है, जिसका स्थितिकाल दो समय है ।

१ ३७? शंका—एक मिप्यात्वादि कर्मोंकी दो समय अलगवाली एक स्थिति अप्पय स्थितिभिन्नि क्यों होती है ?

समाधान—असंयतसम्बन्धिते लंकर अप्रमत्तसंयत तक वे चार गुणस्वान्तवर्ती बीच वसेनमोहनीयकी चपलाके योग्य होते हैं । इनमेंसे पहले जिसने अनन्तगुणकी चतुष्पञ्च क्य कर दिया है ऐसा इन चार गुणस्वान्तोंमें रहनेवाला कोई एक बीच जब वसेनमोहनीयकी चपलाके सिंये क्कयत होता है तब वह अभापवत्तकरखद्धके कालमें अनन्तगुणकी विद्युत्तिका द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता हुआ अप्रमत्त कर्मोंके अनुभागको अपने पूर्वसमवर्ती अनुभागवत्तकी अपेक्षा अनन्तगुणा हीन बनिता है और प्रमत्त कर्मोंके अनुभागको अपने पूर्व समवर्ती अनुभागवत्तकी अपेक्षा अनन्त- गुणा अधिक बनिता है । पर इसके बाईं स्थितिकल्पकपात और अनुभागकल्पकपात नहीं होते हैं और न वसेनमोहनीयकी चपलामें होनेवाली गुणमेधी कर्मसे कर्मप्रदेशोंकी निर्भर ही होती है । तथा जब वह अपूर्वकरखद्धा प्राप्त होता है तब वह इसके पहले समयमें ही स्थिति- कल्पकपात और अनुभागकल्पकपातका आरम्भ कर देता है । तथा यहीसे कर्मप्रदेशोंकी गुण- मेधी निर्भर चल्हू हा जाती है और जिनका कर्म नहीं होता ऐसे मिप्यात्व और सम्पमिप्यात्व इन दो अप्रमत्त कर्मोंका गुणसंक्रम आरम्भ हो जाता है । तथा इस बीचके अपूर्वकरखद्धके कालमें संस्कार द्वारा स्थितिकल्पकपात और स्थितिकल्पकपातोंसे संस्कारगुणो अनुभागकल्पकपात हात हैं तथा संस्कार द्वारा स्थितिकल्पकपातस्य होते हैं । इस प्रकार वह बीच गुणम पी निर्भरके द्वारा कर्मस्त्वोंका नाश करता हुआ अन्तिवृत्तिकारणमें प्रवेश करता है । बाईं अन्तिवृत्तिकारणके

कंडयसहस्साणि घादिय समयं पडि अमंखेज्जगुणाए सेठीए कम्मसुव्हे गालिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मिच्छत्तचरिमफालिं पलिटोपमस्स असखेज्जदि-भागमेत्तमुदयावलियादो वाहिरिल्लयं घेत्तण सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु संकामेतेण उव्वरा-विदसमज्जणुदयावलियमेत्तद्विदीसु थिउक्कमंकेमेण संकमंतीसु मिच्छत्तेयणिसेयणिसंय-द्विदीए दुसमयकालद्विदीए उवलंभादो । कथमणंताणं परमाणुणं विदिववएसो ? ण, आहारे आहेओवयारादो । कथमेयत्तं ? ण, दुसमयकालावट्टाणेण समाणाणमेयत्ता-विरोहादो ।

§ ३७२. एवं सम्मामिच्छत्तवारसकसायाणं पि वत्तव्व । एवरि अप्पप्पणो चरिमफालीओ परसरूवेण संछुहिय उदयावलियपविट्टणिसंयद्विदीओ थियुक्कमंकेमेण संकामिय एयणिसंयद्विदीए दुसमयकालाए सेसाए जहण्णद्विदिविहत्ती होदि त्ति वत्तव्वं । एदेसिं सव्वकम्माणं सगसगअणियट्टिअद्धासु संखेज्जेसु भागेसु गदेसु चरिमफालीओ पदंति । अणंताणुवधिचउक्कसप पुण अणियट्टिअद्धाए चरिमसमए चरिमफाली पददि

कालमें भी यह जीव हजारों स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका घात करके प्रतिसमय असख्यातगुणी श्रेणी रूपसे कर्मस्फुटकोंका नाश करता है और इस प्रकार जब यह जीव अनिष्टचक्रणके कालके संख्यात बहुभागको व्यतीत कर देता है तब वह प्लयोपमके असख्यातवें भाग प्रमाण मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको उदयावलिके बाहरसे ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त करता है और उदयावलिप्रमाण जो निपेक शेष रहे हैं उनमेंसे एक समय कम उदयावलिप्रमाण स्थितिको भी स्तिवुकक्रमणक द्वारा ( सम्यक्त्वप्रकृतिमें ) संक्रान्त कर देता है । तब इस जीवके मिथ्यात्वके एक निपेककी दो समयप्रमाण निपेकस्थिति प्राप्त होती है ।

**शंका—**अनन्त परमाणुओंको स्थिति सहा कैसे प्राप्त होती है ?

**समाधान—**आधारमें आधेयके उपचारसे अनन्त परमाणुओंको स्थितिसहा प्राप्त हो जाती है ?

**शंका—**ये एक कैसे हो सकते हैं ?

**समाधान—**नहीं क्योंकि दो समय काल तक रहनेके कारण इनमें समानता है, इसलिये इनको एक माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

§ ३७२ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी एक जघन्य स्थिति दो समय प्रमाण कही उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कपार्योंकी भी कही जाहिये । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी अन्तिम फालिको पररूपसे सक्रमित करके तथा उदयावलिमें स्थित निपेकोंकी स्थितिको स्तिवुक संक्रमणके द्वारा सक्रमित करके जो दो समय प्रमाण एक निपेककी स्थिति शेष रहती है वह उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है प्रकृतमें ऐसा कथन करना चाहिये । इन सभी कर्मोंकी अपने अपने अनिष्टचक्रणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर अन्तिम फालियोंका पतन होता है । परन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अन्तिम फालिका पतन अनिष्टचक्रणके कालके



मिच्छतादीणं जहण्णट्टिदी एगसमयकालपमाणा त्ति ऋण्ण परुचिदं ? ण, मिच्छत्त-  
सम्मामिच्छत्त-वारसकसायाणं सम्मत्तस्सेव सोदएण क्वचणाभावाटो ।

§ ३७४. सपहि लोहसंजलणस्स जहण्णट्टिदी बुचदे । तं जहा—अप्पणो वाटर-  
किट्टीओ वेदिय तदो तट्टियकिट्टिं वेदयमाणो सुहुमसांपराइयअद्दाए मंखेज्जे भागे गंतूण  
लोभचरिमफालिमागाएंतो मुहुमसांपराइयअद्दाए सेसं सगद्दाए मंवेज्जदिभागं मोत्तूण  
आगाएट्टि । पुणो तं चरिमफालिदच्चं वेत्तूण गुणसेट्ठिकमेण उदयाट्टि णिक्खविय  
तदो जहाकमेण सेसगोबुच्छाओ गालिय एगट्टिदीए उदयगदाए एगसमयकालपमाणाए  
सेसाए लोभसंजलणस्स जहण्णट्टिदिविहती होदि ।

§ ३७५ इत्थिवेदस्स एगा ट्टिदी एगसमयकालपमाणा जहण्णट्टिदिविहती होदि  
त्ति जं भणिदं तस्स विवरणं कस्सामो । तं जहा—इत्थिवेदोदएण खवणसेट्ठिं चडिय  
तदो विदियट्टिदीए ट्टिदमित्थिवेदचरिमफालिं दुचरिमसमयसवेदएण वेत्तूण पुरिसवेद-  
सरूवेण संकामिदे सवेदियचरिमसमयम्मि एगा ट्टिदी एगसमयकालपमाणा सुद्धा  
अवचिट्ठदि ताथे इत्थिवेदस्स जहण्णट्टिदिविहती होदि ।

§ ३७६ सपहि णवुंसयवेदस्स बुचदे । तं जहा—णवु सयवेदोदएण जो खवण-

शका—सम्यग्मिथ्यात्व आदिककी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण क्यो नहीं कही ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और वारह कपायोंका सम्यक्त्वके  
समान स्वादयसे क्षण नहीं होता, इसलिये उनकी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण  
नहीं कही ।

§ ३७४. अब लोभसंजलनकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—लोभसंजलन-  
वाला जीव अपनी वाटर कृष्टियोंका वेदन करके तदनन्तर तीसरी कृष्टिका वेदन करता हुआ  
सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थानके कालमें सद्यथात बहुभागप्रमाण कालका व्यतीत करके लोभकी अन्तम  
फालिको ग्रहण करता हुआ सूक्ष्मसंपरायके कालमें अपने कालके अर्थात् लाभकी अन्तम फालिके  
कालके सख्यातवै भागप्रमाण निपेकोंको छोड़कर शेष निपेकोंको ग्रहण करता है । पुन. उस अन्तम  
फालिके द्रव्यको ग्रहण करके और उसे गुणश्रेणीक्रमसे उदय कालसे लेकरके निक्षिप्त करके तदनन्तर  
यथाक्रमसे शेष गोपुच्छको गलाता है तब जाकर उदय प्राप्त एक स्थितिकी एक समय कालप्रमाण  
स्थितिके शेष रहने पर लोभसंजलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ३७५. अब स्त्रीवेदकी एक स्थिति एक समय कालप्रमाण जघन्य स्थितिबिभक्ति होती  
है यह जो पहले कह आये हैं उसका विवरण करेंगे । वह इस प्रकार है—

स्त्रीवेदके उदयसे क्षणकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर सवेदक जीवके द्वारा द्विचरम समयमें  
द्वितीय स्थितिमें स्थित स्त्रीवेदकी अन्तम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण कर देने पर जब सवेद  
भागके अन्तम समयमें एक समय कालप्रमाण एक स्थिति शुद्ध शेष रहती है तब स्त्रीवेदकी  
जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

। ३७६. अब नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—जो नपुंसकवेदके

सेदिमाहूडो तेण सवेदियदुचरिमसमए इत्यिणबु सयवेदचरिमफासीसु सध्वसंक्रमेण पुरिसवेदे संक्रामिदासु तदो समदियचरिमसमए णभुंसयवदस्स एगा द्विदी एगसमय कालपमाणा पचोदया सुद्धा पिठ्ठदि । तापे णभुंसयवदस्स जहण्णद्विदिविहृती होदि ।

✽ कोहसजखणस जहण्णद्विदिविहृती वे मासा अंतोमुहुत्तूणा ।

§ ३७७ कूदो ? चरिचमोहकस्त्रएण कोपसंमरणवेकिट्टीओ स्वविय कोप तदियकिट्टि स्ववेमाणेण तिस्से पठमद्विदीए समयाहियावस्मियाए सेसाए कोपसंमरणस्स जहण्णवेणे संपुण्णवेमासमेणे पवद्धे तापे समयूणदोआवस्मियमेत्ता समयपवद्धा सुद्धा कोहस्स पिठ्ठपि । तम्मि समए उप्पादायुच्छेदेण कोहपिराणसंतकम्मचरिमफासीए पिस्सेसविणासुवसंभादो । तदो बंधावस्मियाए वदिक्कताए समऊणावस्मियमेत्तफासीसु परसरूवेण संक्रामिदासु दुसमयूणदोआवस्मियमेत्तसमयपवद्धेसुं गिस्सेसं परसरूवेण गदेसु तापे समयूणदोआवस्मियाहि ऊणवेमासमेत्ता कोपचरिमसमयपवद्धस्स द्विदी पक्कदि; तापे कोपसंमरणस्स जहण्णद्विदिदंसण्णदो । समयूणदोआवस्मियाहि ऊण वेमासमेत्ता कोपजहण्णद्विदिविहृती होदि पि अमणिय वेमासा अंतोमुहुत्तूणा पि यणिद्धं कयमेद्धं पवद्धे ? ण, वेमासमम्मंतरआवाहाए अंतोमुहुत्तपमाणाए कम्मणिसेगा-

व्यसे उपक्रमेयी पर बढ़ा है वह सब सर्वे भागके द्विचरम समयमें स्त्रावेर और नपुंसकवेरकी अन्तिम फलियोका सर्वसंक्रमणके द्वारा पुरुषवेरमें संक्रमण कर देता है तब सर्वे भागके अन्तिम समयमें नपुंसकवेरकी अन्तगत एक स्थिति एक समय कालप्रमाण सुद्ध क्षेत्र होती है और तभी नपुंसकवेरकी अपम्य स्थिति विभक्ति होती है ।

✽ कोपसंमरणकी अपम्य स्थितिविभक्ति अन्तमुहूर्त कम दो महीना है ।

§ ३७७ शृंका—कोपसंमरणकी अपम्य स्थितिविभक्ति अन्तमुहूर्त कम दो महीना क्यों है ?

समाधान—चरिचमोहनीयके सबके साथ कोपसंमरणकी दो कृष्टियोंका दय करके कोपकी तीव्ररी कृष्टिका दय करत हुए उसकी प्रथम स्थितिके एक समय अविभक्त आवली प्रमाण क्षेत्र रहने पर कोपसंमरणका अपम्य कल्प पूरा हो महीना होता है और उस समय कोपके केवल एक समय कम दो आवली अल्प प्रमाण समग्रपद्ध क्षेत्र रहते हैं । तथा उसी समय उत्पन्नपुच्छेव की अपेक्षा कोपकी प्राचीन सत्तामें स्थित अन्तिम फलिका पूरा बिनाश प्राप्त होता है । तदनन्तर कल्याणिके व्यतीत हान पर एक समय कम आवलि प्रमाण फलिकोके पररूपसे संक्रमित होने पर तथा दो समय कम दो आवली प्रमाण समग्रपद्धको पूरी तरह पररूपसे प्राप्त होने पर उस समय एक समय कम दो आवलिकोसे न्यून हो महीना प्रमाण कोपके अन्तिम समयपद्धकी स्थिति क्षेत्र रहती है, क्योंकि इसी समय कोपसंमरणकी अपम्य स्थिति देवी जाती है ।

शृंका—कोपसंमरणकी एक समय कम दो आवलिकोसे न्यून हो महीना प्रमाण अपम्य स्थिति होती है देसा न कद्धकर जो अन्तमुहूर्त कम दो महीना अपम्य स्थिति करी है सो यह कैसे बन सकती है ?

१ अमये दुत्तमकूदो इति पठः । २ अमये पिस्सेसं इति पठः ।

भावेण अंतोमुहुत्तूणं वेमासत्तु ववत्तीदो । कथं णिसेयाणं द्विदिववएसो ? ण, णिसेयादो पुधभूदकालाभावेण णिसेयाणं द्विदित्ताविरोहादो । एत्थ कालो पहाणो किण्ण कदो ? ण, कम्मपरूवणाए कालस्स पहाणत्ताभावादो । जहा सम्मामिच्छत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकालपमाणा जहण्णद्विदिविहत्ती होदि त्ति भणिदं तथा एत्थ वि अंतोमुहुत्तूण-वेमासमेत्ताद्विदीओ समयूणवेआवलिऊणवेमासकालपमाणाओ त्ति किण्ण परूविदं ? ण, चरिमणिसेय मोत्तूण सेसणिसेयाणमेम्महंतकालाभावादो । उवदेसेण विणा वि णिसेयाणं कालो अवगम्मदि त्ति वा सुत्ते ण भणिदो ।

\* माणसंजलणस्स जहण्णद्विदिविहत्ती मासो अंतोमुहुत्तूणो ।

§ ३७८ कुदो ? माणवेकिट्टीओ खविय तदियकिट्टि वेदयमाणस्स तिस्से तदियकिट्टीपढमद्विदीए समयाहियावलियमेसाए माणचरिमद्विदिवंधो माममेत्तो । तत्तो उवरि समऊणदोआवलियमेत्तद्धाणे चडिदे चरिमसमयपवद्धद्विदीए अंतोमुहुत्तूणमास-मेत्तणिसेगाणमुवलंभादो । जदि णिसेगद्विदीओ चेव घेत्तूण जहण्णद्विदिविहत्ती बुच्चदि

**समाधान**—नहीं, क्योंकि दो मास प्रमाण स्थितिके भीतर अन्त मुहूर्तप्रमाण आवाधा-कालमें कर्मनिपेक नहीं होनेसे जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्तकम दो महीना बन जाती है ।

**शंका**—निपेकोंकी स्थिति संज्ञा कैसे हो सकती है ?

• **समाधान**—नहीं, क्योंकि निपेकोंसे काल पृथग्भूत नहीं पाया जाता है अतः निपेकोंकी स्थिति संज्ञा होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

**शंका**—यहाँ पर कालको प्रधान क्यों नहीं किया है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि कर्मोंकी प्ररूपणामें कालको प्रधानता नहीं प्राप्त होती है ।

**शंका**—जिस प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थिति जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ऐसा कहा है उसी प्रकार यहाँ भी अन्तमुहूर्त कम दो महीना प्रमाण स्थितियों एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना काल प्रमाण होती हैं ऐसा क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अन्तिम निषेकको छोड़कर शेष निषेकोंका इतना बड़ा काल नहीं पाया जाता है । अथवा उपदेशके विना भी निषेकोंका काल जाना जाता है इसलिये सूत्रमें नहीं कहा है ।

\* मान संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तमुहूर्त कम एक महीना है ।

§ ३८८ **शंका**—मानसंज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त कम एक महीना क्यों है ?

**समाधान**—मानकी दो कृष्टियोंका क्षय करके तीसरी कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके उस तीसरी कृष्टिकी प्रथम स्थिति एक समय अधिक आवलीप्रमाण शेष रहने पर मानका अन्तिम स्थितिवन्ध एक महीना प्रमाण होता है । तदनन्तर एक समय कम दो आवली प्रमाण स्थान जने पर अन्तिम समयप्ररूपकी स्थितिके निषेक अन्तमुहूर्त कम एक महीना प्रमाण पाये जाते हैं ।

तो चरिमसमयमाणबदपम्भि जहण्णसामिच्चं किण्ण परुषिज्जदि, अंतोमुहुत्तूणं पदि विसेसाभावादो ? ए, तस्य समयारियभाबस्त्रियमत्तण्णिसेगद्विदीपं पडमद्विदीपं चबल्लं-  
मादो । पडमद्विदिणिसेगसु गाणिवेसु कियण दिज्जवे ? ए, तस्य हेहा बद्धकम्माणं  
चरिमसमयद्विदिविहृती हेहा यि तण्णिसगाणमुबल्लंभादो । तन्हा समयूणद्वोभाप  
स्त्रियमेत्तद्वारं गंतूण चेष जहण्णद्विदिविहृती हादि ।

ॐ मायासंजलणस्स जहण्णद्विदिविहृती अट्टमासो अतोमुहुत्तूणो ।

§ ३७९ जेण मायासजलणचरिमद्विदिविहृतीस्येया अंतोमुहुत्तूणा अट्ट  
मासमेत्ता तेण समज्जणदोभाबस्त्रियमेत्तपच्चगासमयपप्रद्वेस गाणिवेसु अंतोमुहुत्तूणद  
मासमेत्तणिसेयद्विदीभो अट्टमंति तन्हा तस्य जहण्णद्विदिविहृती हादि । सेसं सुगमं,  
कोपमाणसंमज्जणेसु परुषित्तादो ।

ॐ पुरिसवेदस्स जहण्णद्विदिविहृती अट्टवत्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि ।

§ ३८० हृदो ? चरिमसमयसवेदपण बंधवहण्णद्विदिविहृती अट्टवत्समेत्तो ।

शंका—यदि नित्यकोकी स्थितिको प्रत्य करके अपन्य स्थितिबिमक्ति कही जाती है तो  
मान बेदनके अन्तिम समयमें अपन्य स्थितिका स्वामित्त्व क्यों नहीं कहा क्योंकि दोनों जगह  
तो महीनामें अन्तमु हुते कम है इसकी अपेक्षा दोनों जगह काई विछमता नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि मानवदनके अन्तिम समयमें प्रथम स्थितिके नित्यकोकी भी  
एक समब अधिक आवश्यकप्रमाण स्थिति पाई जाती है अतः वहाँ मानकी अपन्य स्थिति नहीं  
हो सकती है ।

शंका—तो फिर जिसने प्रथम स्थितिके नित्यकोका गला दिया है वह अपन्य स्थितिका  
स्वामी क्यों नहीं माना जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वहाँ पहले वधे हुए कर्मोंकी अपेक्षा अन्तिम समयमें जो स्थिति  
कम होता है उसके नीचे भी इनके नित्यको पाये जाते हैं । अतः एक समय कम हो  
आवली प्रमाण स्वान बाकर ही मानकी अपन्य स्थितिबिमक्ति होती है ।

ॐ मायामन्वज्जनकी अपन्य स्थितिबिमक्ति अन्तमुहुत्तू कम आधा महीना है ।

§ ३९८ चूंकि मायामन्वजनके अन्तिम स्थितिबिमक्ति के नित्यको अन्तमुहुत्तू कम आधा महीना  
प्रमाण होते हैं इसलिये एक समय कम हो आवश्यकप्रमाण नूतन समकर्मकीके गला देने पर  
अन्तमें नित्यकोकी स्थितिवाँ अन्तमु हुते कम अपेक्षा प्रमाण प्राप्त होती है इसलिये  
वहाँ अपन्य स्थितिबिमक्ति होती है । अय कम्य सुगम है, क्योंकि इसका कवन कोष और मान  
संज्ञानकी अपन्य स्थितिअ कवन करते समय कर आते हैं ।

ॐ पुरुषवेदकी अपन्य स्थितिबिमक्ति अन्तमुहुत्तू कम आठ वर्षप्रमाण होती है ।

§ ३८० शंका—पुरुष वेदकी अपन्यस्थिति अन्तमुहुत्तू कम आठ वर्षप्रमाण क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि सबेदमागक अन्तिम समयमें पुरुषवेदका अपन्य स्थितिबिमक्ति आठ वर्षप्रमाण



एणसेयद्विदीओ पुण अतोमुहुत्तूणअद्ववस्समेत्ताओ; अंतोमुहुत्तावाहाए एणसेयरयणा-  
भावादो । पुणो समयूणदोआवलियमेत्तमद्दाणमुवरि गंतूण अंतोमुहुत्तूणअद्ववस्समेत्त-  
एणसेयद्विदीणमुवलंभादो । सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीए जदि सत्तवाससहस्समेत्ता-  
वाहा लब्भदि तो अद्वण्ह वस्साणं किं लभामो त्ति पमाणेणिच्छाणुणिदफले ओवद्विदे  
जेण एगसमयस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि तेण अद्वण्णं वस्साणमावाहा अंतो-  
मुहुत्तमेत्ता त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, ससारावत्थं मोत्तूण खवगसेठीए एवंविह-  
णियमाभावादो । त पि कुदो एव्वदे ? अद्ववस्साणि अतोमुहुत्तूणाणि पुरिसवेदस्स  
जहण्णद्विदिविहत्ती होदि त्ति सुत्तादो । एदमत्थपदमण्णत्थ वि वत्तव्वं ।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णद्विदिविहत्ती संखेज्जाणि वस्साणि ।

§ ३८१ एदस्स अत्यो बुच्चदे, अण्णदरवेदकसायाणमुदएण खवगसेठिं चडिय  
तदो जहाकमेण णवुंसयवेदमित्थिवेदं च खविय तदो छण्णोकसायखवणकालचरिम-  
समए चरिमद्विदिकंडयचरिमफालीए संखेज्जवस्सपमाणए सैसाए छण्णोकसायाणं  
जहण्णद्विदिविहत्ती होदि ।

होता है । परन्तु निषेकोंकी स्थितियों अन्तमु हूत कम आठ वर्षप्रमाण ही होती हैं, कारण कि अन्त-  
मु हूत प्रमाण आवाधामें निषेकोंकी रचना नहीं पाई जाती है । पुन एक समय कम दो आवाली  
प्रमाण काल ऊपर जाकर निषेकोंकी स्थितियों अन्तमु हूतकम आठ वर्ष प्रमाण पाई जाती हैं ।

शंका—सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिकी यदि सात हजार वर्ष प्रमाण आवाधा पाई  
जाती है तो आठ वर्षप्रमाण स्थितिकी कितनी आवाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार त्रैराशिक विधिके  
अनुसार इच्छाराशिसे फलराशिको गुणित करके उसमें प्रमाणाशिका भाग देने पर चूँकि एक  
समयका असंख्यातवा भाग आता है, इसलिये आठ वर्षकी आवाधा अन्तमु हूत प्रमाण होती  
है यह कथन नहीं बनता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार अवस्थाको छोडकर क्षपकश्रेणीमे इस  
प्रकारका नियम नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह भी किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—‘पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति अन्तमु हूत कम आठ वर्ष प्रमाण है’ इस  
सूत्रसे जाना जाता है ।

यह अर्थपद अन्यत्र भी कहना चाहिये ।

❀ ब्रह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यात वर्षप्रमाण होती है ।

। ३८१ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—किसी एक वेद और किसी एक कषायके सदयसे  
क्षपकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर यथाक्रमसे नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्षय करके तदनन्तर ब्रह  
नोकपायोंके क्षय करनेके अन्तिम समयमें उनके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिकी  
संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिके शेष रहने पर ब्रह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

ॐ गदीसु अणुमग्निद्वयं ।

§ ३८२ गदीसु चि देसामासियवर्ण । सेख गदियादिसु चोइसमग्नाप्येसु अणुमग्निद्वयमिदि मणिदं होदि । एवं अइवसहारिण मूचिदस्त अत्यस्त उचारण-इरिण पकचिद्वक्त्वाणं मणिस्तामो । उचारणोचो अइवसहोचेष समाणो चि य तत्य वक्तव्यमति ।

§ ३८३ मजुस०-मजुसपञ्ज०-पंचिदिय-पंचि०पञ्ज तस-तसपञ्ज०-पंचमण-पंच वधि०-कायमोगि०-भोरालिय०-लोमकसाय-आमिणि०-सुद० मोहि०-सजद० चकसु० मचकसु०-ओहिदंस०-सुक० भयसिदि०-सम्मादिदि-सण्णि आहारीकमोपमंगो । गमरि मजुसपञ्ज० इरियेद० अह० मद्दा-अदेदो पस्सिदो० असंखे०मागा । लोमकसाय० दोणं सजलमाणं अह० द्विदि-अद्दा०अहाकमेण अह वस्ताणि चचारि मासा च अंतोमुहुचूणा ।

§ ३८४ आदेसेण गेरइएसु मिच्छत्त-वारसकसाय-भय-दुगुंदाणं अइण्णद्विदि विहरी सागरोवमसइस्सस्त सच सचभागा चचारि सचमागा पस्सिदो० 'संखे०मागेण ऊणा । तं अहा—मिच्छत्तस्त ताव चअदे । असण्णिपंचिद्विभो इदसमुप्यधियकमेण द्विदिपार्दं कादूण कयमइण्णमिच्छत्तद्विदिसंतकम्मो विग्गइगदीए गेरइएसु उवनण्णो

● इसी प्रकार गतियोंमें अनुसंधान करके समझना चाहिये ।

§ ३८२ सूत्रमें आया हुआ 'गदीसु' वह वचन देसामपक है, इसलिये गति आधिक और मार्गोपस्थानोंमें अनुसंधान करके समझना चाहिये यह एक सूत्रका अभिप्राय होता है। इस प्रकार यतिवृत्त आचारके द्वारा सुचित अर्थका उच्चारणार्थके द्वारा जो व्याख्यान किया गया है उसे धरेंगे। इसमें भी उच्चारणका ओप पठित्वमके आचरके समान है अतः उच्चारणके ओपक कवन नहीं करेंगे ।

§ ३८३ इसमें भी सामान्य मनुष्य, मनुष्यवयस पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त अस्त अस्त पर्याप्त, पांचों मनोयोगो पांचों वचनयोगी कावयोगी औदारिकप्रययोगी, लोमकसायी आमिनि-वापिकजानी कुतजानी, अचविहानी संपत्त चकुइवेनी अचकुइवेनी, अचविहवेनी कुकल-लेववाचाले मग्ग सम्मन्दि, संघी और आहारक जीवके आचरके समान मंग है। इतनी विद्येता है कि मनुष्यपर्याप्तके उच्चारण अचम्य स्थितिकार पस्सोमके अस्तव्यातर्त मागममाय है और लोमकसायल जीवके वा संखलताक वनम्य स्थितिकार अमसे अस्तमुहुत्त कम अस्त वर्य और अस्तमु हुत्तकम पार मास है ।

§ ३८४ आदेदोकी अपेक्षा नार्त्तिकोंमें मिथ्यात्वकी अवयव स्थितिविषयिक इकार सागरके सात मार्गोंमेंसे पस्सोमके संख्यातर्त मागमे म्यून सार्तो भगवमाय है और वाज्ज कयाय मव तथा जुगुप्साकी अवयवस्थितिविषयिक इकार सागरकेसात मार्गोंमें से पस्सक संख्यातर्त मग कम पार भागममाय है। सुतासा इस प्रकार है। इसमें पहले मिथ्यात्वकी अवयव स्थिति करते हैं—इसने इतसमुत्पत्तिक्रमसे स्थितिपाठ करके मिथ्यात्वका अवयवस्थिति सत्तमें कर लिया

तस्स विदियसमये णेरइयस्स सागरोवमसहस्सस्स सत्त मत्तभागा पत्तिदो० संखे०-  
भागेण ऊणा जहण्णट्टिदिअद्वाछेदो होदि । णेरइओ सण्णिपच्चिदिओ संतो अंतोकोडा-  
कोडिट्टिदिं भिच्छत्तस्स किण्ण वंधदि ? सरिरे गहिदे पढमसमयप्पहुडि अंतोकोडा-  
कोडिट्टिदिं चेव वंधदि, किं तु विग्गहगदीए असण्णिट्टिदिं चेव वंधदि, पंचिंदियपाओग्ग-  
जहण्णट्टिदीए तत्थ संभवादो असण्णिपच्चिदियपच्छायदत्तादो वा ।

§ ३८५. एवं वारसकसाय-भय-दुग्गुञ्जाणं पि वत्तञ्जं । णवरि सागरोवम-  
सहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पत्तिदोवमस्स संखे० भागूणा । एवं सत्तणोकसायाण ।  
इत्थिवेदस्स जहण्णद्वाछेदो ताव वुच्चदे । तं जहा—जो असण्णिपंचिंदिओ  
हदसमुप्पत्तियकमेण कयत्तत्थतणजहण्णट्टिदिसंतकम्मो तेण वंधावत्तियादिव्वकत्त-  
कसायट्टिदिसत्तकम्मे सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागमेचे पत्तिदो० संखे० भागेणूणे  
इत्थिवेदम्मि संकाभिय णेरइयेसुप्पण्णपढसमए इत्थिवेदवंधवोच्छेदे कदे कसायट्टिदी  
इत्थिवेदम्मि ण संकमदि; वंधाभावेण पडिग्गहत्ताभावादो । तदो अंतोमुहत्तकालं पुरिस-  
है ऐसा कोई एक असञ्जी पंचेन्द्रिय जीव जब विग्रहगतिसे नारकियोमे उत्पन्न होता है तब उस  
नारकीके दूसरे समयमें हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यके सख्यातवें भागसे न्यून सातों भाग  
प्रमाण जघन्यस्थिति होती है ।

शंका—नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय है, अतः वह मिथ्यात्वकी अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिको  
क्यों नहीं बंधता है ?

समाधान—नारकी जीव शरीर ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी  
प्रमाण स्थितिको ही बंधता है किन्तु वह विग्रहगतिसमें असञ्जीकी स्थितिको बंधता है, क्योंकि  
पंचेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिका पाया जाना नारकी विग्रहगतिसमें संभव है । अथवा वह असञ्जी  
पंचेन्द्रिय पर्यायसे लौटकर आया है, इसलिये भी वहाँ असञ्जीके योग्य जघन्य स्थिति पाई  
जाती है ।

§ ३८५ इसी प्रकार वारह कषाय, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये । इतनी  
विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पत्यका सख्यातवों भाग कम  
चार भाग प्रमाण होती है । इसी प्रकार शेष सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है ।  
उनमेंसे पहले स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—जिस असञ्जी  
पंचेन्द्रियने हतसमुत्पत्तिकक्रमसे असञ्जीके योग्य जघन्यस्थिति सत्कर्मको प्राप्त कर लिया है वह  
वन्धावलिके व्यतीत होने पर हजार सागरके सात भागोंमें से पत्योपमके सख्यातवें भागसे न्यून  
चार भागप्रमाण कषायके स्थितिसत्कर्मका स्त्रीवेदमें सक्रमण करके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और  
वहाँ उत्पन्न होने पर पहले समयमें स्त्रीवेदकी वन्धव्युच्छित्ति होनेसे उसके कषायकी  
स्थितिका स्त्रीवेदमें सक्रमण नहीं होता, क्योंकि स्त्रीवेदका वन्ध नहीं होनेसे उसमें प्रतिग्रह शक्ति  
नहीं रहती । ऐसा जीव तदनन्तर अन्तमुहूर्त काल तक पुरुषवेदका वन्ध करके पुनः अन्तमुहूर्त

वेदं वंपिय पुणो अंतोमुहुत्तफाखं ज्युसयवेदं वंपदि । जनुंसयवेदवंपगदापरिमसमए इत्पिवदस्स महण्णादाच्छेदी होदि । एवं पुरिसवेद-जनुंसयवेद-इस्स रदि अरदि-सोगार्ण । जनरि असग्गिअरिमसमए इच्छिदणीकसाय वंपाविय तत्त्वेव वंपवोच्छेदं फारूण जेरइ एमुप्पण्णपइमसमयप्पहुदि अंतोमुहुत्तफाखपडिवक्खपयवीओ वंपाविय पडिवक्खपयडि वंपगदापरिमसमए इच्छिदणीकसायस्स महण्णादाच्छेदी होदि ।

§ ३२६ एत्थ पडिवक्खपयडिवंपयदाणं माहण्णानाणवण्ण णोकसायदाण-मप्पावहुगं सव्वे । त जहा—सम्भत्तोभा पुरिसवेदवंपगदा २ । इत्पिवेदवंपगदा संत्सेव्वगुणा ४ । इस्स-रदिवंपगदा संत्से०गुणा १६ । अरदि-सोमवंपगदा संत्से०गुणा ३२ । जनुंसयवेदवंपगदा विससाहिया ४२ । तिरिकल्लगइ-मणुस्सगईसु वेव खिरय गईसु च एसो अदप्पावहुआलाओ वत्तन्नी । एसो सचारणाइरियाणमहिप्पाओ ।

§ ३२७ अण्णे पुण कक्खाणाइरिया एवं मण्णति—ओपप्पावहुमात्ताओ तिरिकल्ल मणुसगईसु वेव होदि । खिरयमईए पुण मण्णहा । तं जहा—सम्भत्तोभा पुरिस वंपगदा० ३ । इत्पि०वंपगदा संत्से०गुणा ६ । इस्स-रदिवंपगदा विसे० ११ । जनुंसयवंपगदा संत्से०गुणा २२ । अरदि-सोमवंपगदा विसेसाहिया २३ । वेवगइए खिरयमईमणो । इद्विवंपगदासुवरिमवंपगदाग्गि सोहिदे सुदत्तेसं विसेसपमाणं होदि ।

कल्ल तक नपु सञ्जेवका कम्प करता है अता उसके नपु सञ्जेवके वन्ध ज्ञानके अन्तिम समयमें स्त्रीवेदकी कम्प स्थिति होती है । इसी प्रकार पुरुषवेव नपु सञ्जेव ज्ञान्य रति, अरति और मोक्षकी ब्रह्म स्थिति करनी चाहिये । परन्तु इतनी क्लेशता है कि असेहीके अन्तिम समयमें इच्छित नोक्यावका कम्प कराकर और वहीं उसकी कम्पभ्युत्थिति कराके नारकियेमें उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर अन्तमु हुते कल्ल तक प्रतिपन्न प्रकृतियोंका कम्प कराकर प्रतिपन्न प्रकृतियोंके वन्धकालके अन्तिम समयमें इच्छित नोक्यावकी कम्प स्थिति करनी चाहिये ।

§ ३२६ अब यहाँ प्रतिपन्न प्रकृतियोंके वन्ध कालके वीपत्यका ज्ञान करानके लिए अथान् एत्तु वन्धकाल वतजानेके लिये नोक्यावोंके कल्लके अस्पवहुत्वको करते हैं । यह इस प्रकार है— पुरुषवेवका कम्पकाल सबसे जोड़ा २ है । इससे स्त्रीवेवका कम्पकाल संख्यातगुणा ४ है । इससे ज्ञान्य और रतिका कम्प कल्ल संख्यातगुणा १६ है । इससे अरति और शाकल कम्पकाल संख्यातगुणा ३० है । इससे नपुंसक वदका कम्पकाल विशेष अधिक ४२ है । जिनकी अर्कसंहति कम्पका २, ४ १६ ३२ और ४२ है । यह अस्पवहुत्व तिर्यग्गति मनुजगति, वेवगति और नरकगतिमें करना चाहिये । यह प्रकारसक वंछ भूमिमाय है ।

§ ३२७ परन्तु अग्य वन्धमानात्ताय इस प्रकार एवम करत हैं—ओप अन्नवहुत्वालाप तिर्यग्गति और मनुजगतिमें ही होता है । परन्तु नरकगतिमें अग्य प्रकारसे होता है । यह इस प्रकार है—पुरुषवेवका कम्पकाल सबसे जोड़ा ३ है । इससे स्त्रीवेवका कम्पकाल संख्यातगुणा ६ है । इससे ज्ञान्य और रतिका कम्पकाल विशेष अधिक ११ है । इससे नपुंसकवेवका कम्पकाल संख्यात-गुणा २२ है । इससे अरति और शाकल कम्पकाल विशेष अधिक २३ है । जिनकी अर्कसंहति कम्पका ३ ६ ११, २२ और २३ है । तथा वेवगतिमें नरकगतिके समान मंग है । यहाँ नीचेके वन्धकालको करके कम्पकालमेंसे पटा देने पर जो दोन परता है वह विशेष प्रमाणा है । य

ही है। सात नोकपायोंकी यद्यपि जघन्य स्थिति एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यके संख्यातर्वे भाग कम चार भागप्रमाण ही प्राप्त होती है पर यह स्थिति विग्रहके दूसरे समयमें न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् प्राप्त होती है। यथा—वेद तीन हैं और ये प्रतिपत्त प्रकृतियों हैं। इनमेंसे किसी एकका वन्ध होते समय शेष दोका वन्ध नहीं होता। अब यदि कोई असंज्ञी जीव स्त्रीवेदके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमे उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर पुरुषवेदका वन्ध करने लगा। पुनः पुरुषवेदके स्थानमे अन्तर्मुहूर्तकाल तक नपुंसकवेदका वन्ध करने लगा तो उस नारकीके नपुंसकवेदके वन्ध होनेके अन्तिम समय तक स्त्रीवेदकी उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अघस्तन निषेकोंका और गलन हो जायगा किन्तु स्थितिमें वृद्धि नहीं होगी, अतः नरकमे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्व नपुंसकवेदके वन्धके अन्तिम समयमें प्राप्त हुआ। तथा पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके विषयमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु हास्यादिकी जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् कहनी चाहिये, क्योंकि इनकी प्रतिपत्तभूत एक एक प्रकृतियों होनेसे एक अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः इनका वन्ध होने लगता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमेंसे जिनका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना हो उनका असंज्ञीके अन्तिम समयमें वन्ध कराकर नरकमें उत्पन्न होने पर उनकी प्रतिपत्तभूत प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्तकाल तक वन्ध कहना चाहिये और इस अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समयमें उस उस प्रकृतिका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय ओघके समान नरकमें भी बन जाती है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके कृतकृत्यवेदके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकीके अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें बन जाती है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें ही बनेगी, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षण मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। सामान्य नारकियोंके जो मिथ्यात्वादि कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है इसी प्रकार पहले नरकके नारकी, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय न कहकर सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान दो समय कहनी चाहिये, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है। द्वितीयादिक पाँच नरकोंमें न तो असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और न सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी जघन्य स्थिति ऊपर कहे अनुसार नहीं बन सकती। फिर वह किस प्रकार बनती है आगे इसीका खुलासा करते हैं—कोई एक जीव द्वितीयादिक नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहता है। ऐसी हालतमें उसने मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिघात किया और उसे इतनी रची जो उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके कमसे कम हो सकती है। पुनः उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके साथ उत्कृष्ट स्थितिघात किया। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कराकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इसलिये नहीं कही, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके स्थितिघात करनेका कोई नियम नहीं है। पुनः वह जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा और इस प्रकार मिथ्यात्वकी अधःस्थितिके एक एक निषेकको गलाता

§ ३९० तिरिक्खेसु मिच्छत्त-भारसकमाय-गदणोकसायाणं जहण्णाद्विदिभद्वत्तवेदो सामरोषमस्स[सत्त]सत्तमागा चत्तारि सत्तमागा पस्सिदो० असंखे० मागेय ऊणया । सम्मत्त-मम्मामि० अणुताणुषधिचउक्काणमोषं । पंचि०तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० पंचि०तिरिक्खमोषिणीसु मिच्छत्त-भारसकसाय-भय दुगुहाणं जहण्णा० सागरोषम सइस्सस्स सत्त सत्तमागा चत्तारि सत्तमागा ये सत्तमागा पस्सिदो० संखे० मागेय ऊणया । सत्तछोकसायाणं सागरोषमस्स चत्तारि सत्तमागा पस्सिदो० मसंखे० मागेय पबिक्खत्तवर्षगद्वद्वियऊणया । सेत्त तिरिक्खोषं । उअरि भोगिणीसु सम्मत्त० सम्मा मिच्छत्तमंगो । पंचि०तिरि०अपज्ज० पंचि०तिरि०भोगिणीमंगो । उअरि अणुताणु०४ भारसक०मंगो ।

एह। इस प्रकार अपनी आयुके अन्तिम समयमें उसके मिथ्यात्वकी बचन्य स्थिति होगी । इसी प्रकार स्त्रीवेद और तपुस्सवेदकी बचन्यस्थिति करने की चाहिये क्योंकि सम्पत्तिके इन दोनों वेदोंका वन्य नहीं होता अतः इनकी एक प्रकारसे बचन्य स्थिति बन जाती है । तथा इनके सम्पत्त्व सम्भ्रमिध्यात्व और अनन्तलुब्धकी बतुष्ककी बचन्य स्थिति हो समय होती है जिसका सुझावा भवनशास्त्रोंके इनकी बचन्यस्थिति करने समय कर आये हैं । तथा सातवें नरकमें जो विशेषता है उसका सुझावा मूलमें ही कर दिया है ।

§ ३९१ तिर्यचोमिं मिध्यात्वका बचन्य स्थितिभद्वत्तवेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पस्सो पमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंका एक सागरके सात भागोंमेंसे पस्सोपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । सम्पत्त्व सम्भ्रमिध्यात्व और अनन्तलुब्धकी बतुष्कका बचन्य स्थितिफल जोपके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यच पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती कीर्त्तोंमि मिध्यात्वका बचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पस्सोपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । बारह कपायोंका बचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पस्सोपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है और भय तथा दुगुष्ठाका बचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पस्सोपमके संख्यातवें भागसे न्यून दो भागप्रमाण है । सात नोकपायोंका बचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे अपनी प्रतिपद्य प्रकृतिबोके बचकालसे और पस्सके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । शेष कथन सामान्य तिर्यचोंके समान है । इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचोंमें सम्पत्त्वका मंग सम्भ्रमिध्यात्वके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्णात्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतीके समान मंग है । इतनी विशेषता है कि अनन्तलुब्धकी बतुष्कका मंग बारह कपायोंके समान है ।

विशेषार्थ—तिर्यचोंमें पंचेन्द्रिय भी सम्मिलित हैं, अतः पंचेन्द्रियोंकी जो बचन्य स्थिति है वही पक्ष मिथ्यात्व बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी सामान्य तिर्यचोंके बचन्यस्थिति जाननी चाहिये किन्तु अनन्तलुब्धकी विसंबोबना संश्री पंचेन्द्रिय पर्याप्त ही करता है, अतः अनन्तलुब्धकी बतुष्ककी बचन्य स्थिति जोपके समान हो समय जानना । सम्पत्त्व की बचन्यस्थिति इतद्वत्तवेदके समान एक समय जानना । किंतु कर्मकी कितनी बचन्य स्थिति है यह मूलमें बतलाया ही है । पंचेन्द्रियपर्याप्त पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रियपर्याप्त योनिमती कीर्त्तोंके मिथ्यात्व और बारह कपायकी बचन्य स्थिति असंखियोंकी बचन्य स्थितिके

एदाओ वंधगद्दाओ चदुगदिजहण्णअद्दाच्छेदस्स साहणीओ होंति ।

§ ३२८ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुवधिचउक्काणं ओघभंगो । एवरि सम्मत्तं एिएरएमुप्पण्णकदकरणिज्जस्स चरिमसमए जहण्णं होदि । सम्मामिच्छत्तमुव्वेत्तणाए वत्तव्वं । एवं पढमाए भवण०-वाण० । एवरि भवणवासिय-वाणवेंतरेसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । विद्यादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिअद्दाच्छेदे भण्ण-माणे मिच्छाइट्ठी अण्णप्पणो एिएरएसु उप्पज्जिय पज्जत्तयदो होदूण उवसमसम्मत्तं गेण्हमाणेण जेण सव्वुकस्सओ द्विदिघादो कदो, पुणो अंतोसुहुत्तं गतूण अणंताणुवंधि-चउक्कं विसंजोएमाणेण जेण उक्कस्सओ द्विदिघादो कदो तस्स सगसगुक्कस्साउअमेत्त-द्विदीओ अंधाद्विदिगलणाए गालिय सगाउअचरिमसमए वट्टमाणस्स अतोकोडाकोडी-सागरोवममेत्तद्विदीओ मिच्छत्तस्स जहण्णओ अद्दाच्छेदो । एवं इत्थि-एणु सयवेदाणं । सम्मत्त सम्मामिच्छत्त-अणंताणुवंधिचउक्काणमोघभंगो । एवरि सम्मत्तस्स भवण०भंगो; उव्वेत्तणाए जहण्णअद्दाच्छेदग्गहणादो । वारसकसाय-सत्तणोकसायाणं उवसमसम्मत्त-ग्गहणकाले सव्वुकस्सयं द्विदिघादं कादूण पुणो अणताणुवंधिचउक्कस्स विसंजोयणं

बन्धकाल चारों गतियोंके जघन्य कालके साधक होते हैं । अर्थात् इनसे चारों गतियोंका जघन्य स्थितिअद्दाच्छेद निकाला जाता है ।

§ ३२८ नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति होती है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलनाके समय जघन्यस्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, भवनवासी और व्यन्तरोंके कथन करना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तरोंके सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति सम्यग्मिथ्यात्वके समान होती है । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अद्दा-च्छेदका कथन करनेपर जो मिथ्यादृष्टि जीव अपने अपने नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ पर्याप्त होकर जिसने उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सबसे उत्कृष्ट स्थितिघात किया पुनः अन्तमुहूर्तकाल व्यतीत करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके हेतु जिसने उत्कृष्ट स्थितिघात किया वह अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण स्थितियोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलाता हुआ जब अपनी आयुके अन्तिम मयमये विद्यमान रहता है तब उसके अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण मिथ्यात्वका जघन्यस्थितिअद्दाच्छेद होता है । इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुमकवेदका जघन्यस्थिति काल कहना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग आघके समान है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति भवनवासियोंके समान है, क्योंकि यहाँ उद्देलनाके द्वारा प्राप्त होनेवाले जघन्य स्थिति अद्दाच्छेदका ग्रहण किया है । उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके समय सर्वोत्कृष्ट स्थितिप्राप्त करके पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना

कुणमाणदाए वि सञ्चुहस्तय द्विदिपाट कादण पुणो जहस्ताठअमणुपासिय खिपिय माणसम्माइद्विचरिमसमए अंतोकोटाकोटीसामरोदममेचद्विदीओ जहण्णअदाच्छेदो । एवरि एनुसयवद मोत्तूण अण्णासिं सन्वपयवीण परोदएण जहण्णअदाच्छेदो वचओ । कुदो ? उदयद्विदीए विबुद्धसंकमेण गदाए जहण्णअदाच्छेदो ।

§ ३८६ एव सत्तमाए वि वत्तव्वं । एवरि मिच्छत्तस्स जहण्णअदाच्छेदे मण्णमाणे पढमसम्मत्तमाहणअ अणतासुवर्षधिवत्तव्विसंयोजणाए च सञ्चुहस्तयं द्विदिपाटं कादण सम्मत्तेण सह तंतीससागराउअमणुपासिय उदा अंतोसुहुचावसेसे आठए मिच्छत्तं गदूण अंतोसुहुचकात्तं संतस्स हेहा वंधिय पुखा संतसमाणद्विदि वंध माणवरिमसमए अंतोकोटाकादिसागरावममेचद्विदीओ वचूण जहण्णअदाच्छेदो इति । एवं सोलसकसाय मय-इगुंमाणं । सत्तणोकसापारणं पि एवं वेव । एवरि मिच्छत्तं गदूण जहण्णद्विदिसंतसमाणबंधे संनादे अप्यप्यणो पद्विवत्तमपगदाओ वंधाधिय तासिं चरिमसमए जहण्णअदाच्छेदो वत्तव्वो ।

करनेके समय मी सर्वोत्कृष्ट स्थितिपात करके पुनः उत्कृष्ट आसुका प्राप्त करके वो सम्पददृष्टि नरकसे निकलना चाहता है इससे नरकसे निकलानेके अन्तिम समय में वाह्य कृपाय और सात नोकृपायोंका अन्तःकाङ्क्षाकोड़ी सागरप्रमाण्य अथवास्थिति अदाच्छेद होता है । इतनी विशेषता है कि नरकसेवकी छोड़कर अन्य सभी महत्तियोंका परीक्षसे अथवा स्थितिअदाच्छेद करना चाहिये, क्योंकि स्थितबुद्धिअथवाकं द्वाय अथवास्थितिके कम हो जान पर अथवापना वन जाता है ।

§ ३८७ इसी प्रकार सातवीं दृष्टीमें मी करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी अथवा स्थितिका कवन करके समय वा प्रथम सम्पत्तिका अथवा करनेसे और अन्तःसुखकी अथवाकी विरुद्धावना करनेसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिपात करके सम्पत्तके सात ठोस सागर आसुका प्राप्त करके तत्पन्तर आसुके अन्तःसुख कालप्रमाण्य अथवा पर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्तामें स्थित करनेके कम स्थितिपात करनेके वन्व करके पुनः सत्तामें स्थित करनेके समान स्थितिपाते करनेका वन्व करता है इससे अन्तिम समयमें अन्तःकोटाकोड़ी सागरप्रमाण्य स्थितिकी अथवा अथवास्थिति अदाच्छेद होता है । इसी प्रकार सोलह कृपाय मय और सुगुप्ताका अथवास्थिति अदाच्छेद करना चाहिये । तथा इसी प्रकार सात नोकृपायोंका मी करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी प्राप्त होकर अथवा स्थिति सत्तके समान वन्वके होने पर अपनी अपनी प्रतिपक्ष महत्तियोंका वन्व करके उनके यथकासके अन्तिम समयमें सात नोकृपायोंका अथवास्थिति अदाच्छेद करना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो अस्ती कीव मिथ्यात्व वाह्य कृपाय मय और सुगुप्ताके अथवास्थिति सत्तके सात नरकमें अथवा हुआ है इसके विपरीत दूसरे समयमें एक कर्मोंकी अथवा स्थिति विपक्षि होती है । विपक्षितिके दूसरे समयमें रहनेका कारण यह है कि उत्तीर्यकर करनके परमाण्य इसके संती वंधनियक योग्य स्थितिका वन्व होन सगता है । किन्तु विपक्षनिमें एसा कीव अस्तीके योग्य स्थितिका ही वन्व करता है । मिथ्यात्वाविधी अथवा स्थिति मूलमें वंधनार्थ



ही है। सात नोकपायोंकी यद्यपि जघन्य स्थिति एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्थके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण ही प्राप्त होती है पर यह स्थिति विप्रदके दूसरे समयमें न प्राप्त होकर अन्तमुहूर्त कालके पश्चान् प्राप्त होती है। यथा—वेद तीन है आर ये प्रतिपत् प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे किसी एकका वन्ध होते समय उपेद्रका वन्ध नहीं होता। अब यदि कोई असजीव जीव स्त्रीवेदके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर पुरुषवेदका वन्ध करने लगा। पुनः पुरुषवेदके स्थानमें अन्तमुहूर्तकाल तक नपुसकवेदका वन्ध करने लगा तो उस नारकीके नपुसकवेदके वन्ध होनेके अन्तिम समय तक स्त्रीवेदकी उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिके अन्तमुहूर्त प्रमाण अधस्तन निषेकोका और गलन हो जायगा किन्तु स्थितिमें वृद्धि नहीं होगी, अतः नरकमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्व नपुसकवेदके वन्धके अन्तिम समयमें प्राप्त हुआ। तथा पुरुषवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके विषयमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु हास्यादिकी जघन्य स्थिति एक अन्तमुहूर्तके पश्चान् कहनी चाहिये, क्योंकि इनकी प्रतिपत्भूत एक एक प्रकृतियाँ होनेसे एक अन्तमुहूर्तके बाद पुनः इनका वन्ध होने लगता है। किन्तु इतनी विवेकता है कि इनमेंसे जिनका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना हो उनका असजीवके अन्तिम समयमें वन्ध कराकर नरकमें उत्पन्न होने पर उनकी प्रतिपत्भूत प्रकृतियोंका अन्तमुहूर्तकाल तक वन्ध कहना चाहिये और इस अन्तमुहूर्तके अन्तिम समयमें उस उस प्रकृतिका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय ओघके समान नरकमें भी वन जाती है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके कृतकृत्यवेदके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकीके अनिवृत्ति करणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें वन जाती है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें ही वनेगी, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। सामान्य नारकियोंके जो मिथ्यात्वादि कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है इसी प्रकार पहले नरकके नारकी, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी असजीव जीव मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय न कहकर सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान दो समय कहनी चाहिये, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति दो समय वन जाती है। द्वितीयादिक पाँच नरकोंमें न तो असजीव जीव मरकर उत्पन्न होता है और न सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी जघन्य स्थिति ऊपर कहे अनुसार नहीं वन सकती। फिर वह किस प्रकार वनती है आगे इसीका खुलासा करते हैं—कोई एक जीव द्वितीयादिक नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहता है। ऐसी हालतमें उसने मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिघात किया और उसे इतनी रखी जो उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके कमसे कम हो सकती है। पुनः उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके साथ उत्कृष्ट स्थितिघात किया। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कराकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इसलिये नहीं कही, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके स्थितिघात करनेका कोई नियम नहीं है। पुनः वह जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा और इस प्रकार मिथ्यात्वकी अधःस्थितिके एक एक निषेकको गलाता

§ ३९० विरिचलेसु मिच्छन्-भारसकमाय णवगोकसायाणं अहण्णविरिचमदा  
 धरो सागरोवमस्स[सच]सचभागा चचारि सचभागा पस्सिदो० अस्सखे० भागेण ऊणया ।  
 सम्मच्च सम्मामि० अण्णताणुबंधिचरकाणमोचं । पंचि० विरिचस्व-पंचि० विरि० पञ्च०  
 पंचि० विरिचस्वमोण्णणीसु मिच्छन्-भारसकसाय-भय-दुगुंझापं अहण्ण० सागरोवम-  
 सस्सस्स सच सचभागा चचारि सचभागा वे सचभागा पस्सिदो० सखे० भागेण  
 ऊणया । सचणोकसायाणं सागरोवमस्स चचारि सचभागा पस्सिदो० अस्सखे० भागेण  
 पस्सिचस्वभयगद्धाहियऊणया । सेसं विरिचस्वोच । एववि मोण्णणीसु सम्मच्च० सम्मा  
 मिच्छन्मंगो । पंचि० विरि० अपञ्च० पंचि० विरि० मोण्णणीमंगो । एववि अण्णताणु० ४  
 भारसक० मंगो ।

या। इस प्रकार अपनी आसुके अन्तिम समयमें इसके मिथ्यात्वकी अपन्य स्थिति होगी।  
 इसी प्रकार स्त्रीवद् और नपुंसकवद्की अपन्यस्थिति करने चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शिके इन दोनों  
 पक्षोंका बन्ध नहीं होता अतः इनकी एक प्रकारसे अपन्य स्थिति बन जाती है। तथा इनके  
 सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी वस्तुत्वकी अपन्य स्थिति दो समय होती है जिसका  
 श्रुतिसा मभनशासकोंके इनकी अपन्यस्थिति करते समय कर आये हैं। तथा सातवें नरकमें जो  
 विशेषता है उसका श्रुतिसा मूलमें ही कर दिया है।

§ ३९० तिर्यचोमि मिथ्यात्वका अपन्य स्थितिअहण्णवद् एक सागरके सात भागोंमेंसे पस्यो  
 पमके अस्संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। बाह्य कषाय और नो मोक्षयार्थका एक  
 सागरके सात भागोंमेंसे पस्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। सम्यक्त्व,  
 सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी वस्तुत्वका अपन्य स्थितिकाल दोनोंके समान है। पंचेन्द्रियतिर्यच  
 पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती बीजोंमें मिथ्यात्वका अपन्यस्थिति सत्त्वकाल  
 एक इकार सागरके सात भागोंमेंसे पस्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। बाह्य  
 कषायार्थका अपन्यस्थिति सत्त्वकाल एक इकार सागरके सात भागोंमेंसे पस्योपमके संख्यातवें भागसे  
 न्यून चार भागप्रमाण है और अब तथा सुगुणका अपन्यस्थिति सत्त्वकाल एक इकार सागरके  
 सात भागोंमेंसे पस्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून दो भागप्रमाण है। सात मोक्षयार्थका  
 अपन्यस्थिति सत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे अपनी प्रतिपक्ष प्रवृत्तियाके बन्धकालसे  
 और पस्यके अस्संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। शेष कवन सामान्य तिर्यचोंके समान  
 है। इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचोंमें सम्यक्त्वका भी सम्यग्मिथ्यात्वक समान है।  
 पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतीके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि  
 अनन्तानुबन्धी वस्तुत्वका भंग बाह्य कषायोंके समान है।

विशुद्धार्थ—तिर्यचोमि पंचेन्द्रिय भी सम्मिश्रित हैं अतः पंचेन्द्रियोंकी जो अपन्य स्थिति  
 है वही पक्षों मिथ्यात्व बाह्य कषाय और नो मोक्षयार्थकी सामान्य तिर्यचोंके अपन्यस्थिति  
 जाननी चाहिये किन्तु अनन्तानुबन्धीकी विसंयोगना सही पंचेन्द्रिय पक्षात् ही करता है,  
 अतः अनन्तानुबन्धी वस्तुत्वकी अपन्य स्थिति दोनोंके समान ही समय जानना। सम्यक्त्व  
 की अपन्यस्थिति वृत्तवृत्त्येवक सम्यग्दर्शिके समान एक समय जानना। किन्तु कर्मकी कृतिनी अपन्य  
 स्थिति है यह मूलमें बतलाया ही है। पंचेन्द्रियतिर्यच पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच  
 योनिमती बीजोंके मिथ्यात्व और बाह्य कषायकी अपन्य स्थिति अस्संख्यातवें अपन्य स्थितिके

§ ३६१, मणुसिणि० एनुंसयवेद० जहण्ण० पल्लिदो० अमंखे०भागो । पुरिस० जह० संखेज्जाणि वस्साणि । संपयडीणमोघभंगो । मणुसअपज्ज० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो ।

समान जानना । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्लके सख्यातवें भाग कम दो भागप्रमाण होती है । इसका कारण यह है कि ये दोनों प्रधुप्रणिनी प्रकृतियाँ हैं । अथ यदि कोई एकेन्द्रिय जीव उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोमे उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने पहले समयमें असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थितिका ग्रन्थ किया तो उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगी । यदि कहा जाय कि इस जीवके उस समय सोलह कपायोंकी जघन्य स्थिति भय और जुगुप्सारूपसे संक्रमित हो जायगी, अतः भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति भी सोलह कपायोंकी जघन्य स्थितिके समान प्राप्त हो जायगी तो भी बात नहीं है, क्योंकि नवीन वन्धका एक आचलिके बाद ही अन्य प्रकृतिरूपसे मरुमण होता है और यह जीव एकेन्द्रिय पर्यायसे आया है, अतः इसके सोलह कपायोंकी असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति उसी समय प्राप्त हुई है, अतः उसका संक्रमण नहीं हो सकता । तथा सात नोरुपाय प्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं अतः जो एकेन्द्रिय उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोमे उत्पन्न हुआ है उसके समान नोरुपायोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है । किन्तु दृष्टनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति कहते समय अपनी अपनी प्रतिपत्त प्रकृतियोंके वन्धकालको और घटा देना चाहिये, क्योंकि प्रतिपत्त प्रकृतियोंका वन्ध होते समय शेष सजातीय प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता और उसके अधःस्थितिगलनारूपसे प्रतिपत्त प्रकृतियोंके वन्धकाल प्रमाण निपेक गल जाते हैं । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सामान्य तिर्यचोंके समान क्रमसे दो समय, एक समय और दो समय प्रमाण वन जाती है । खुलासा सामान्य नारकियोंके समान जानना । किन्तु योनिमती तिर्यचोमे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता अतः वहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं वनती । अतः जिस प्रकार उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी दो समय जघन्य स्थिति कही उसी प्रकार योनिमतियोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये । पचेन्द्रियतिर्यच लवणपर्याप्तकोके अनन्तानुवन्धी चतुष्कको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति यानिमती तिर्यचोंके समान वन जाती है । किन्तु अनन्तावन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति शेष चारह कपायोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है, क्योंकि इनके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसयोजना नहीं होती ।

§ ३६१ मनुष्यनियोंमें नपुसकवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल पल्लके असख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल सख्यात वर्ष है । तथा शेष प्रकृतियोंका ओघके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भग है ।

विशेषार्थ—मनुष्यनियोंके नपु सकवेद और पुरुषवेदको छोड़कर सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान वन जाती है, क्योंकि इनके क्षाधिक सम्यग्दर्शन और क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है । किन्तु इनके क्षपकश्रेणीमें जिस समय नपुसकवेदकी द्वितीय स्थितिके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदमें संक्रमण होता है उस समय उसकी पल्लके असख्यातवें भागप्रमाण स्थिति पाई जाती है, अतः इनके नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति पल्लके असख्यातवें भागप्रमाण जाननी चाहिये । तथा इनके पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सख्यात वर्ष प्रमाण होती है, क्योंकि मनुष्यनियोंके पुरुषवेदका क्षय छह नोरुपायोंके साथ होता है, इसलिये जब यह जीव पुरुषवेदके साथ छह नोरुपायोंके अन्तिम फालिका संक्रमण ओघसंज्ञलनमें



§ ३६३ एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक० जह० सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पलिदो० अमखे० भागेण ऊणा । सम्भत्त-सम्पामिच्छत्त० जह० एया द्विदी दुसमयकाला । एवं सव्वएइदिय-पंचकाय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-तिणिणलेस्सा०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । णवरि ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-काउलेस्सा-अणाहारि० सम्भत्तमोघं । तिसु लेस्साणु अणंताणुवंधिचउकमोघं ।

§ ३६४ विगलिदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंढा० ज० पणुवीससागराणं पण्णारससागराणं सदसागराणं सत्त मत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पलिदोवमस्स सखेज्जदिभागेण ऊणा । सत्तणोकसायाणं ज० सागरोवमस्स चत्तारि

§ ३६३. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके असख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके अलंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल दो समय हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्त्वज्ञानी, श्रुताज्ञानी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असञ्जी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कपोतलेश्या वाले और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल शोधके समान है। तीन लेश्याओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल शोधके समान है।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियादिक मार्गणाओंमें जो मिथ्यात्व, मोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति बतलाई है वह बहा सम्भव जघन्य स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे जानना। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय उद्वेलनाकी अपेक्षा जानना। किन्तु औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कपोत लेश्यावाले और अनाहारक इन मार्गणाओंमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न हो सकता है और इनके रहते हुए उसका काल भी पूरा हो सकता है, अतः इन भागणाओंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति शोधके समान एक समय भी बन जाती है। तथा कृष्णादि तीन लेश्याओंके रहते हुए अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना भी होती है अतः इन तीन लेश्याओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति शोधके समान दो समय बन जाती है।

§ ३६४. विकलेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण, तीन इन्द्रियोंमें पचास सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण और चौइन्द्रियोंमें सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। सोलह कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके तेइन्द्रियोंमें पचास सागरके और चौइन्द्रियोंमें सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। तथा भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दो इन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके, तेइन्द्रियोंमें पचास सागरके और चौइन्द्रियोंमें सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून

सचमामा पञ्चिदी० अस्तंसे० भागेण ऊणा । सम्पत्त-सम्पामिच्छत्त० पद्दियमंमो ।  
पंषिदियअपञ्च० पंषि०तिरि०अपञ्चचर्ममो । तसअपञ्च० वेइदियअपञ्चचर्ममो ।

‡ ३६५ वेउच्चि० सञ्चदर्ममो । एवरि सम्म०-सम्पामि० जोदिसिय०र्ममो ।  
वेउच्चियमिस्स० मिच्छत्त सोल्लसक०-मय-जुगुब्ब० बइ० मंतोकोडाकोडीसागरावमाणि ।  
सम्पत्त-सम्पामि० साइम्मममो । सत्तणोक्क० बइ० सागरोबपसइस्सत्त चत्तारि  
सचमामा पञ्चिदीबमस्स सल्लेअदिभागेण ऊणा । आहार०-आहारमिस्स० सत्त्वपयडीयां  
बइ० मंतोकोडाकोडीसागरावमाणि ।

हो भागप्रमास्य है। सात मोरुपाओंका अथम्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरक सात  
भागोंमेंसे पत्तोपमके अस्तंस्यातर्षे भागसे म्यून पार भागप्रमास्य है। तथा सम्पत्त्व और  
सम्पमिच्छात्त्वका एकेन्द्रियोंके समान भंग है। पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें पंचन्द्रियार्थैच अपर्या-  
प्तकोंके समान भंग है। त्रस अपर्याप्तकोंमें हो इन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

विशुषार्थ—अब कोई एक एकेन्द्रिय बीब विकल्पत्रयोंमें कल्प होता है तो यह क्या कल्प  
हामके पहले समयमें ही कमसे कम विकल्पत्रयोंके योग्य अथम्य स्थितिका कल्प करने लगता है अतः  
विकल्पत्रयके मिथ्यात्व, सोल्लह कपाय तथा मय और जुगुप्साकी अथम्य स्थिति मूलमें वतखाय  
अनुसार ही प्रज्ञ हागी। किन्तु सात नोक्याय प्रतिपन्नमूत प्रकृतिबां हैं अत विकल्पत्रयोंके  
इतनी अथम्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान भी बन जाती है। तथा सम्पत्त्व और सम्पमिच्छात्त्वकी  
अथम्य स्थिति वल्लनाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान हो समय जानती बाहिय। पंचेन्द्रिय  
अपर्याप्तकोंके पंचेन्द्रिय तियच अपर्याप्तकोंके समान तथा त्रस अपर्याप्तकोंके हीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके  
समान अथम्य स्थिति जानमेकी जो मूलमें सूचना की सो कसका करण्य स्पष्ट ही है।

‡ ३६६ वैकिम्पिककाययोगियोंमें सर्वावैसिद्धिके समान भंग है। इतनी बिरोधा है कि  
इसमें सम्पत्त्व और सम्पमिच्छात्त्वका अथम्य स्थितिसत्त्वकाल अ्योतिपियोंके समान है।  
वैकिम्पिकमिभकाययोगियोंमें मिथ्यात्व सोल्लह कपाय मय और जुगुप्साका अथम्य स्थितिसत्त्वकाल  
अन्तःकोडाकोडी सागर है। सम्पत्त्व और सम्पमिच्छात्त्वका अथम्य स्थितिसत्त्वकाल सौबमके  
समान है। तथा सात मोरुपाओंका अथम्य स्थितिसत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमें  
से पत्तोपमके अस्तंस्यातर्षे भागसे म्यून पार भागप्रमास्य है। आहारकअथमागी और आहारक-  
मिभकाययोगी बीबके सभी प्रकृतियोंका अथम्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है।

विशुषार्थ—वेच वैकिम्पिककाययोगी भी होते हैं अतः वैकिम्पिकअथमागीमें सर्वावैसिद्धिक  
समान सब कर्मोंकी अथम्य स्थिति बन जाती है। किन्तु वैकिम्पिकअथमागीमें कृतकत्त्ववत्क  
सम्पत्त्व नहीं पाया जाता अतः इसमें सम्पत्त्व और सम्पमिच्छात्त्वकी अथम्य स्थिति अ्योतिपियोंके  
समान हो समय जानना। ऐसा नियम है कि शरीर प्रज्ञ करनके परपान् संज्ञी बीब पंचेन्द्रियके  
योग्य स्थितिका ही कल्प करता है अतः वैकिम्पिकमिभकाययोगमें मिथ्यात्व सोल्लह कपाय मय  
और जुगुप्साकी अथम्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर कही है। किन्तु सात नोक्याय सप्रतिपन्न-  
मूत प्रकृतिबां हैं। इनका कल्प एक साथ नहीं होता अतः वैकिम्पिकमिभकाययोगके रहते हुए भी  
इतनी अथम्य स्थिति अस्तंसीके योग्य प्रज्ञ हो जाती है जो मूलमें वतसाईं ही है। तथा वैकिम्पिक  
मिभकाययोगमें कृतकत्त्ववत्क सम्पत्त्व भी पाया जाता है, अतः इसमें सम्पत्त्वकी अथम्य स्थिति

§ ३६६ इत्थिवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माधि०-वारसक०-इत्थिवेदाणमोधं ।  
णवुंस० ज० पल्लिदो० असंखे०भागो । सत्तणोक०-चत्तारिसजल० संखेज्जाणि वास-  
सहस्साणि । एवं णवुंस० । णवरि इत्थि० जह० पल्लिदो० असंखे०भागो । पुरिस०  
इत्थि-णवुंसयवेद० ज० पल्लिदो० अमंखे०भागो । पुरिस-चत्तारिक० जह० संखेज्जाणि  
वस्साणि । सेसं मूलोघं । अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माधि०-अट्टक०-इत्थि-णवुंस०  
जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवभाणि । सत्तणोक०-चत्तारिसज० ओघं ।

एक समय और उद्वलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति दो समय वन जाती हैं जो सौधर्म स्वर्गमें भी सम्भव है। छठे गुणस्थानमें सोलह कपाय और नौ नोरुपायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है, अतः आहाररुकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इनकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा आहाररुकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं होता है और जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया है उसके उक्त दोनों योग नहीं होते, अतः उक्त दोनों योगोंमें तीन दर्शनमोहनीयकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण ही होती है।

§ ३६६ स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है। नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सात नोकपाय और चार संज्वलनोका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सख्यात हजार वर्ष हैं। इसी प्रकार नपुसकवेदमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विघेपता है कि इसमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेदमें स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेद और चार कपायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात वर्ष हैं। तथा शेष मूलोघके समान है। अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कपाय, स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है। तथा सात नोकपाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और स्त्रीवेदकी क्षपणा सम्भव है, अतः स्त्रीवेदकी इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है। तथा स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए नपुसकवेदकी क्षपणा भी हो जाती है पर जिस समय ऐसे जीवके नपुसकवेदके अन्तिम काण्डरुकी अन्तिम फालिका पुरुषवेद रूपसे सक्रमण होता है उस समय उसकी जघन्य निषेक स्थिति पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः स्त्रीवेदकी नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। तथा जिस समय स्त्रीवेदका प्रथम स्थितिमें विद्यमान अन्तिम निषेक रवोदयसे क्षयको प्राप्त होता है उस समय सात नोकपाय और चार संज्वलनका जघन्य स्थितिसत्त्व सख्यात हजार वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः स्त्रीवेदकी उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। नपुसकवेदकी भी इसी प्रकार सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति जानना। किन्तु क्षय नपुसकवेदकी जाव अपने उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डरुकी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण करता है और उस समय अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः नपुसकवेदकी स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा पुरुषवेदकी जघन्य स्त्रीवेद और नपुसकवेदके





§ ३६६ इत्थिवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माधि०-वारसक०-इत्थिवेदाणमोधं ।  
 णवुंस० ज० पल्लिदो० असंखे०भागो । सत्तणोक०-चत्तारिसजल० संखेज्जाणि वास-  
 सहस्साणि । एवं णवुंस० । णवरि इत्थि० जह० पल्लिदो० असंखे०भागो । पुरिस०  
 इत्थि-णवुंसुं सयवेद० ज० पल्लिदो० असंखे०भागो । पुरिस-चत्तारिक० जह० संखेज्जाणि  
 वस्साणि । सेसं मूलोधं । अयवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माधि०-अट्ठक०-इत्थि-णवुंसुं  
 जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि । सत्तणोक०-चत्तारिसंज० ओधं ।

एक समय और उद्वलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिध्यात्व की जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है जो सौधर्म स्वर्गमें भी सम्भव है। छठे गुणस्थानमें सोलह कषाय और नौ नोऋणायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है, अतः आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इनकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ नहीं होता है और जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ किया है उसके उक्त दोनों योग नहीं होते, अतः उक्त दोनों योगोंमें तीन दर्शन मोहनीयकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण ही होती है।

§ ३६६ स्त्रीवेदमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, वारह कषाय और स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओषधके समान है। नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सात नोऋणाय और चार सञ्जलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार नपुसकवेदमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेदमें स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेद और चार कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात वर्ष है। तथा शेष मूलोषधके समान है। अपगतवेदमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है। तथा सात नोऋणाय और चार सञ्जलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओषधके समान है।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, वारह कषाय और स्त्रीवेदकी क्षणिका सम्भव है, अतः स्त्रीवेदीके इनकी जघन्य स्थिति ओषधके समान कही है। तथा स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए नपुसकवेदकी क्षणिका भी हो जाती है पर जिस समय ऐसे जीवके नपुसकवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेद रूपसे संक्रमण होता है उस समय उसकी जघन्य निषेक स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः स्त्रीवेदीके नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। तथा जिस समय स्त्रीवेदका प्रथम स्थितिमें विद्यमान अन्तिम निषेक स्वोदयसे क्षयको प्राप्त होता है उस समय सात नोऋणाय और चार सञ्जलनका जघन्य स्थितिसत्त्व सख्यात हजार वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः स्त्रीवेदीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। नपुसकवेदोंके भी इसी प्रकार सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति जानना। किन्तु क्षणिक नपुसकवेदी जीव अपने उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण करता है और उस समय अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः नपुसकवेदीके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा पुरुषवेदीके जब स्त्रीवेद और नपुसकवेदके

§ ४०० स्वइय० एकावीसपयबीसमोघर्मगो । वेदयसम्मा० परिहार०र्मगो ।  
 चवसम० अकसाइर्मगो । सम्मामिच्छस० सोलसक०-गदणोक० अ० अंतोकोडाकोवि  
 सागरोधमाणि । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० सागरोधमपुधर्त्त । सासण० अकसाइर्मगो ।

परिहारविद्युद्धि संबन्धके राते रूप दर्शनमोहनीयकी रूपणा और अनन्तलुक्की चतुष्कको  
 विसंयोजनता सम्भव है अतः इसके इन प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति ओषके समान करी । तथा  
 यह संयम साठवें मुख्यस्वान तक ही होता है और साठवें मुख्यस्वानमें होय कर्मोंकी अपन्य स्थिति  
 अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण्य पाई जाती है अतः इसके होय कर्मोंकी अपन्य स्थिति सौधर्म  
 करके समान करी । यहां सौधर्म करके समान अपन्य स्थिति करनेसे यह प्रयोजन है । (क विस  
 प्रकार सौधर्म स्वरोंमें एक कर्मोंकी अपन्य स्थिति प्राप्त करनेके लिये विशेषतः कथन किया है  
 वही प्रकार यहां भी जानना । तथा पीत और पद्म लेश्याबल तथा संयतासंयतोंके परिहारविद्युद्धि  
 संयतोंके समान अपन्य स्थितिका कथन करना चाहिये । एक सूक्ष्मसांख्यराय गुणस्वानके अन्तमें  
 सूक्ष्म लोमकी अपन्य स्थिति एक समय यह जाती है जो उस समय लुब्धक्य होती है अतः इस  
 संयमबलके लोमकी अपन्य स्थिति एक समय करी । तथा अनन्तलुक्की चतुष्कको बीह कर होय  
 प्रकृतियोंका सत्त्व सूक्ष्म सांख्यराय गुणस्वानमें उपद्रममेणीकी अपेक्षाये पाया जाता है अतः विस  
 प्रकार अकयायी बीबोंके होय प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति बतला भाये वही प्रकार सूक्ष्मसंयतय  
 संयमबलके बीबोंके जानना । असंयतोंमें एकेत्रिय तियथ मुख्य है और कर्मोंके मिष्यात्वको छोड़कर  
 होय सब प्रकृतियोंकी असंयतोंकी अपेक्षा अपन्य स्थिति सम्भव है, अतः असंयतोंके मिष्यात्वके  
 बिना होय सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति सामान्य तिर्यकोंके समान करी । किन्तु असंयत मनुष्य  
 भी होते हैं और मनुष्य असंयत दर्शनमोहनीयकी रूपणा भी करते हैं अतः असंयतोंके मिष्या  
 त्वकी अपन्य स्थिति ओषके समान एक समय करी ।

§ ४०० चायिकसम्पत्तियोंके इकीस प्रकृतियोंका ओषके समान भंग है । बहक  
 सम्पत्तियोंके परिहारविद्युद्धिसंयतोंके समान भंग है । उपद्रमसम्पत्तियोंके अकयायी बीबोंके  
 समान भंग है । सम्पत्तियोंमें सोलह कयाव, नौ नोकयावोंका अपन्य स्थितिसत्त्वका अन्तः  
 कोडाकोडी सागर है । तथा सम्पत्त्व और सम्पत्तियोंका अपन्य स्थितिसत्त्वका सागर  
 पूवक्य है । सासादनसम्पत्तियोंके अकयायी बीबोंके समान भंग है ।

विशुधार्थ—चायिकसम्पत्तियोंके २१ प्रकृतियां ही पद्य जाती हैं और एक कयायीका अपिकारी  
 यही है अतः इसके २१ प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति आपक समान बन जाती है । वेदकसम्पत्त  
 योंमें विद्युद्धिकी अपेक्षा परिहारविद्युद्धिसंयत मुख्य है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अपन्य  
 स्थिति परिहारविद्युद्धिसंबतोंके समान करी । इसी प्रकार उपद्रम सम्पत्तियोंमें अकयायी बीब  
 मुख्य है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति अकयायी बीबोंके समान करी । किन्तु  
 इनके अनन्तलुक्कीकी अपन्य स्थिति आपके समान जानना, क्योंकि यहां पर विसंयोजनता संभव  
 है । सम्पत्तियोंका बीबक सातह करव और नौ नोकयावोंकी अपन्य स्थिति अन्तः कोडाकोडी  
 सागर प्रमाण्य ही जाती है । किन्तु जिसके सम्पत्त्व और सम्पत्तियोंका अपन्य स्थितिसत्त्व  
 सागरोधमक्य है वह मिष्याएटि बीब भी सम्पत्तियोंका मुख्यस्वानमें प्राप्त हो सकता है, अतः  
 सम्पत्तियोंके इन दोनोंकी अपन्य स्थिति पूवक्य सागर करी । तथा वा अकयायी बीब  
 प्रकार सासादनसम्पत्तियोंके हीना है इसके सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी

§ ३६८ विहग० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० ज० अंतोकोडाकोडीसागरो-वमाणि । सम्मत्त-सम्मापि० एड्दियभंगो । गणपज्ज० ओघं । एवरि इत्थि०-एणु स० ज० पल्लिदो० असंखे०भागो ।

§ ३६९ सामाडय-छेदो० ओघं । एवरि लोभमज्ज० ज० अंतोमुहुत्तं । परिहार० सम्मत्त० मिच्छत्त०-सम्मापि०-अणंताणु० ओघं । सेसाणं सोहम्मभगो । एवं तेउ-पम्म-संजदासंजदाणं । सुहुयसंप० लोभ० ज० एया द्विदी एयममड्या । सेसाणमकसाहभंगो । असज्जद० तिरिवखोघं । णवरि मिच्छत्तस्सोवभंगो ।

कम नहीं होती, अतः अक्रपायी जीवोंके सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण कही है । तथा अक्रपायी जीवोंके समान यथात्प्रातःसवत जीवोंके भी सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति घटित कर लेनी चाहिये ।

§ ३६८ विभगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । मन पर्ययज्ञानमें ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—विभगज्ञान सती पंचेन्द्रिय जीवने पर्याप्त अवस्थामें ही होता है और पर्याप्त अवस्थामें सजी मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तःकोडाकोडी सागरसे कम जघन्य स्थिति सत्त्व नहीं होता, अतः विभगज्ञानियोंके मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण कही है । तथा विभगज्ञानी भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना करते हैं, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान दो समय कही है । यद्यपि मन-पर्ययज्ञानके रहते हुए ज्ञायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति और क्षपकश्रेणी पर आरोहण वन सकता है, अतः इसके स्त्रीवेद और नपुसकवेदको छोड़ कर शेष सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान वन जाती है । किन्तु स्त्रीवेदी और नपुसकवेदी जीवके मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः जिस प्रकार पुरुषवेदी जीवके स्त्रीवेद और नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार मनःपर्यायज्ञानीके भी जानना ।

§ ३६९ सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंज्वलनका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । परिहारविशुद्धिमयतके सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अन्तानुग्रन्धी चतुष्कका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा शेषका सौधर्मके समान है । इसी प्रकार पीत, पद्म लेश्यावाले और सयतासंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसापरायिकसयतोंके लोभकी एक स्थितिका जघन्य काल एक समय है । तथा शेषका अक्रपायी जीवोंके समान भग है । असयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भग है । पर इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका ओघके समान भग है ।

**विशेषार्थ**—सामायिक सयम और छेदोपस्थापना संयमके रहते हुए भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा होती है, अतः इनके संज्वलन लोभको छोड़कर शेष सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । किन्तु ये दोनों सयम नौवें गुणस्थान तक ही पाये जाते हैं और क्षपक नौवें गुणस्थानके अन्तमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्तप्रमाण होती है, अतः इन दोनों संयमोंमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त कही है ।

अदाच्छेदो पुण उक्तस्तकान्नुबलस्वियपगणितेगाभिणाभाविस्वभित्सेयकल्पप्रो तेण  
 [ ग ] पविस्सदि चि वेचम्बं । एवं जहण्णद्विदि जहण्णद्विदिमदाच्छेदार्णं पि मेदो परु-  
 वेदम्बो । एव जेदम्बं जाय अणाहात्तए चि ।

§ ४०४ सादि-अणादि-ध्रुव अद्द वाणुगमेण दुविहो गिहेसो-ओपेण आदेसेण  
 य । तत्य ओपेण मिच्छत्त-भारसक०-णवगोक्क० उक्क०-अणुक्क० मह० किं सादि०४ ।  
 सादि अद्दुर्बं । अजह० किं सादि० ४ ? अणादिओ ध्रुवो अद्दुर्बो वा । सम्मत्त  
 पविस्सदि ? ए उक्तस्तकान्नुबलस्वियपगणितेगो उक्तस्त

वाका-उक्त अदाच्छेदमें उक्त स्थिति विमर्शिका अन्तर्भाव क्यों नहीं होता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि उक्त कालसे उपलब्ध एक निरेकके उक्त स्थितिविमर्शिक  
 करते हैं परन्तु उक्त अदाच्छेद तो उक्त कालसे उपलब्ध एक निरेकके अविनामायी समस्त  
 निरेकके समुदायका नाम है इसलिये उक्त अदाच्छेदमें उक्त स्थितिविमर्शिका अन्तर्भाव नहीं  
 होता है ऐसा प्रमाण करना चाहिये । इसी प्रकार अपन्य स्थिति और अपन्य स्थिति अदाच्छेदके  
 भेदका भी कथन करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक गामावातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-किसी एक मनुष्यके चार बेटे हैं । इनमेंसे सबसे बड़ा बेटा अष्टेय या उक्त,  
 अथ अनुक्त, सबसे छोटा बेटा लघु या अपन्य और शेष अत्रापन्य बेटे करे जायंगे । यही बात  
 स्थितिके विषयमें भी जाननी चाहिये । अनाह उक्त स्थितिसे सबसे अग्रिम निरेककी स्थिति  
 ली जायगी । अनुक्त स्थितिसे अन्तिम निरेककी स्थितिके छोड़कर शेष सब निरेककी स्थितियां  
 ली जायगी । अपन्य स्थितिसे सबसे कम स्थिति ली जाती है तथा अत्रापन्य स्थितिसे सबसे कम  
 स्थितिके छोड़ कर शेष सब स्थितियां ली जाती हैं । इस प्रकार इस कथनसे यह भी जाना जाता है  
 कि इन चारों प्रकारके स्थिति भेदोंमें अत्रापन्यकी सुकृता है समुदायकी नहीं । अतः सर्व स्थितिमें  
 समुदायकालसे सब स्थितियोंका प्रमाण ही जाता है और मासर्वस्थितिमें अविश्विन किसी एक  
 या एकसे अधिक निरेककी स्थितियोंके छोड़ कर शेष स्थितियोंका प्रमाण ही जाता है । यहाँ यह  
 धर्म की जा सकती है कि यद्यपि उक्त स्थिति अत्रापन्य प्रधान है अतः इससे सर्वस्थिति निर-  
 सिद्ध हो जाती है पर अनुक्त और अत्रापन्य स्थितिसे नोसर्व स्थिति कैसे सिद्ध हो सकती  
 है क्योंकि इन तीनोंमें उन स्थितियों का ही प्रमाण किया गया है । पर ठीक तरहसे विचार करने  
 पर यह धर्म निरमूल ही जाती है क्योंकि जिस प्रकार अनुक्त स्थितिमें कथल उक्त स्थितिका  
 और अत्रापन्य स्थितिमें केवल अपन्य स्थितिका अभाव है वह ही वात मासर्वस्थितिकी नहीं  
 है किन्तु इसमें अविश्विन किसी भी निरेककी स्थितिक अभाव है वह ही वात मासर्वस्थितिकी नहीं  
 मनुष्यसे कहा जाय कि तुम अपन्य उक्त कर्णिक मुक्तामा तो वह किसी भी वाक्य पुस्तानसे कहा  
 सकता है । यही बात नामप स्थितिक विषयमें जानना चाहिये । इस प्रकार आप और आहारी  
 अपेक्षा कहा जा स्थिति सम्भव ही जानकर हमका कथन प्रत्येक चाहिये ।

§ ४०४ सादि, अनादि ध्रुव और अध्रुव अनुगमयी अपन्या निर्देश वा प्रकारका है—  
 ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे आपकी अपेक्षा मिष्यत्त, वाह्य कथाय और नो माह-  
 पायोकी उक्त, अनुक्त और अपन्य स्थिति विमर्शिक क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव  
 है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अत्रापन्य स्थितिविमर्शिक क्या सादि है, क्या

एवमद्वाञ्छेदो समतो ।

§ ४०१, सञ्चद्विदिविहत्ति० णोसञ्चद्विदिविहत्ति० । सञ्चाओ द्विदीओ सञ्चद्विदिविहत्ती । तदूणं णोसञ्चद्विदिविहत्ती । एव णेदञ्चं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०२ उक्कस्स०विहत्ति-अणुक्कस्स०विहत्तिअणुगमेण दुविहो० । ओघे० सञ्चुक्कस्सद्विदी उक्कस्सद्विदिविहत्ती । तदूणमणुक्कस्सद्विदिविहत्ती । उक्कस्सद्विदिविहत्ति-सञ्चद्विदिविहत्तीणं को भेदो ? ण, सञ्चणिसेगद्विदीण ममुदाओ सञ्चद्विदिविहत्ती णाम । उक्कस्सद्विदिविहत्ती पुण उक्कस्सकालुवलक्खिओ चरिमणिसेओ एक्को चेव । तेण दोण्हमत्थि भेओ । उक्कस्सद्विदिणिसेयवटिरित्तसञ्चणिसेया अणुक्कस्सद्विदिविहत्ती णाम । सञ्चणिसेयद्विदीसु अणुणटरणिसेगे अवाणिदे सेसद्विदीओ णोसञ्चद्विदिविहत्ती णाम । तेण ण पुणरुत्तदोसो त्ति सिद्धं । एव णेदञ्चं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०३, जहण्ण-अजहण्णद्विदि० दुवि० । ओघे० सञ्चजहण्णद्विदी जहण्णद्विदिविहत्ती तदुवरि अजहण्णद्विदिविहत्ती । उक्कस्मअद्वाञ्छेदे उक्कस्सद्विदिविहत्ती ऋण्ण

सागर प्रमाण होते हुए भी कमसे कम पाई जाती है, अतः सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अकपायी जीवोंके सामान कही ।

इस प्रकार अद्वाञ्छेद समाप्त हुआ ।

§ ४०१ सर्वस्थितिविभक्ति और नोसर्वस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सव स्थितिया सवेस्थिति-विभक्ति हैं और सव स्थितियोंसे न्यून स्थितिया नोसर्वस्थितिविभक्ति हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिये ।

§ ४०२ उत्कृष्टस्थितिविभक्ति और अनुत्कृष्टस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सवसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है और इससे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति, और सर्वस्थितिविभक्तिमें क्या भेद है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सव निपेकोंकी स्थितियोंके समुदायका नाम सर्वस्थितिविभक्ति है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिउत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक अन्तिम निपेक कहलाता है, अत इन दोनोंमें भेद है ।

उत्कृष्ट स्थितिवाले निपेकोंके सिवा शेष सव निपेक अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहलाते हैं । तथा सव स्थितिवाले निपेकोंमें से किसी एक निपेकके निकाल देने पर शेष स्थितिया नोसर्वस्थिति-विभक्ति कहलाती हैं । इस लिये इनके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं है यह सिद्ध होता है । इसी प्रकार अनाहार मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४०३ जघन्य स्थितिविभक्ति और अजघन्य स्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सवसे जघन्य स्थितिको जघन्य स्थितिविभक्ति कहते हैं और इसके ऊपर अजघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

अद्याच्छेदो पुण उक्तस्तकालुबल्वित्त्वयपरगणितेगाविगाभादिसम्बणितेयकसामो तेण  
 [ ग ] पविसदि ति चेतम् । एवं ब्रह्मणद्विदि-अहण्णद्विदिअद्याच्छेदान् पि वेदो पर-  
 वेदव्यो । एवं जेदन्त्वा नाव अणाहारए ति ।

१४०४ सादि-अणादि शुभ अद् बाणुगमेण दुविहो णिहेसो-ओपेण आवेसेण  
 य । सत्य ओपेण मिच्छस-वारसक०-अवणोक्त० उक्त०-अणुपक० मह० किं सादि०४ ।  
 सादि अद्दुर्ब । अमह० किं सादि० ४ ? अणादिओ शुभो अद्दुर्बो वा । सम्पत्  
 पविस्तदि ? ण उक्तस्तद्विद्विदिहरी खाम उक्तस्तकालुबल्वित्त्वयपरगणितेगो उक्तस्त

संज्ञा-उक्त अद्याच्छेदने उक्त स्थिति विमर्शक अन्तर्भाव नहीं होता है ?

समाधान-हाँ, क्योंकि उक्त कालसे उल्लिखित एक निरेकके उक्त स्थिति विमर्श  
 कृत है परन्तु उक्त अद्याच्छेद तो उक्त कालसे उल्लिखित एक निरेकके अविनाशायी समस्त  
 निरेकके समुदायका नाम है, इसलिये उक्त अद्याच्छेदने उक्त स्थिति विमर्शक अन्तर्भाव नहीं  
 होता है ऐसा प्रहस्य करना चाहिये । इसी प्रकार अपन्य स्थिति और अपन्य स्थिति अद्याच्छेदके  
 भेदका भी कथन करना चाहिये । इसी प्रकार अनारक मांग्यातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—किसी एक मनुष्यके चार बेटे हैं । उनमेंसे सबसे बड़ा बेटा अष्ट या उक्त,  
 श्रेय अनुक्त, सबसे छोटा बेटा ज्ञु या अपन्य और श्रेय अज्ञपन्य बड़े बड़े बच्यारे । यही बात  
 स्थितिके विषयमें भी जाननी चाहिये । अर्थात् उक्त स्थितिसे सबसे अन्तिम निरेककी स्थिति  
 ही जायगी । अनुक्त स्थितिसे अन्तिम निरेककी स्थितिके जोड़कर श्रेय सब निरेककी स्थितिवा  
 ही जायगी । अपन्य स्थितिसे सबसे कम स्थिति ली जाती है तथा अज्ञपन्य स्थितिसे सबसे कम  
 स्थितिके जोड़ कर श्रेय सब स्थितिवा ली जाती है । इस प्रकार इस कथनसे यह भी जाना जाता है  
 कि इन चारों प्रकारके स्थिति भेदोंमें अज्ञपन्यकी मुख्यता है समुदायकी नहीं । अतः सर्व स्थितिमें  
 समुदायकेसबसे सब स्थितियोंका प्रहस्य हो जाता है और मोक्षस्थितिमें अविबद्धि किसी एक  
 या एकसे अधिक निरेककी स्थितियोंके जोड़ कर श्रेय स्थितियोंका प्रहस्य हो जाता है । यहाँ यह  
 शंका की जा सकती है कि यद्यपि उक्त स्थिति अज्ञपन्य प्रमात है अतः उससे सर्वस्थिति भिन्न  
 सिद्ध हो जाती है पर अनुक्त और अज्ञपन्य स्थितिसे नासर्व स्थिति कैसे भिन्न सिद्ध हो सकती  
 है क्योंकि इन तीनोंमें इन स्थितियों का ही प्रहस्य किया गया है । पर ठीक उक्तसे विचार करने  
 पर यह शंका निरमूल हो जाती है क्योंकि जिस प्रकार अनुक्त स्थितिमें केवल उक्त स्थितिक  
 और अज्ञपन्य स्थितिमें केवल अपन्य स्थितिक अभाव इष्ट है वह बात मोक्षस्थितिकी नहीं  
 है किन्तु इसमें अविबद्धि किसी भी निरेककी स्थितिक अभाव इष्ट है । अज्ञपन्यके लिये ऊपरके  
 मनुष्यसे क्या जाब कि तुम अपन्य उक्त बेटोंको बुलाओ तो वह किसी भी बेटेके बुलावसे जाब  
 सकता है । यही बात नासर्व स्थितिके विषयमें जानना चाहिये । इस प्रकार ओप और आवेसकी  
 अपेक्षा बाह्य ओ स्थिति सम्भव हो जानकर उक्त कथन करना चाहिये ।

१४४ सादि अणादि शुभ और अणुव अणुगमकी अपेक्षा निर्दिष्ट दो प्रकारका है—  
 ओपनिर्दिष्ट और आवेसनिर्दिष्ट । उनमेंसे आशकी अपेक्षा मिथ्यात्व बाध कराय और नो नो-  
 पायोंकी उक्त, अनुक्त और अपन्य स्थिति विमर्शक क्या सादि है, क्या अनादि है क्या शुभ  
 है या क्या अणुव है ? सादि और अणुव है । अज्ञपन्य स्थिति विमर्शक क्या सादि है, क्या

सम्भामि० उक्क० अणुक्क० जह० अजह० किं सादि०४ ? सादिओ अद्दुवो । [ अणु-  
ताणुवंधिचउक्क० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ? सादि अद्दुवं ] अज०  
किं सादि०४ ? सादिओ अणादिओ वा धुवो अद्दुवो वा । एवमचक्खु० भवसि० ।  
णवरि भवसिद्धिएसु धुवं एत्थि । सेसाणं मग्गणाणं उक्क० अणुक्क० जह० अजह०  
किं सादि०४ ? सादिया अद्दुवो वा ।

अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या  
अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या  
अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या  
ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । इसी प्रकार अचतुदर्शनवाले  
और भव्योंके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भव्योंके ध्रुवभग नहीं होता  
है । शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है,  
क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति कादाचित्क है

तथा जघन्य स्थिति अपने अपने क्षय कालके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होती है, अतः ये तीनों  
स्थितियाँ सादि और अध्रुव हैं । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके विषयमें विशेषता है  
जिसका खुलासा निम्न प्रकार है—यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि जघन्य स्थितिको  
छोड़कर शेष सब स्थितिविकल्प अजघन्य कहे जाते हैं, क्योंकि जघन्यके प्रतिपेध मुजसे  
अजघन्यमें जघन्यको छोड़कर शेष सबका ग्रहण हो जाता है । प्रकृतियोंके विषयमें दूसरी यह  
बात ज्ञातव्य है कि मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंका  
क्षय होनेके पहले तक निरन्तर सत्त्व पाया जाता है और क्षय होनेके बाद पुनः इनका बन्ध नहीं  
होता । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अनादि मिथ्यादृष्टिके तो निरन्तर सत्त्व है किन्तु जिसने सम्य  
दर्शनको प्राप्त कर लिया है उसके इसकी विसयोजना भी हो जाती है और ऐसा जीव जब  
मिथ्यात्वमें आता है तो पुनः उनका बन्ध होने लगता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व  
सादि ही हैं यह स्पष्ट ही है । इन सब विशेषताओंको ध्यानमें रखकर जब इन प्रकृतियोंकी  
अजघन्य स्थितिके सादित्व आदिका विचार करते हैं तो मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ  
नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति अनादि ध्रुव और अध्रुव प्राप्त होती है, क्योंकि अनादि कालसे  
इनकी अजघन्य स्थिति चली आरही है इसलिये अनादि है । तथा भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव और  
अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थिति सादि, अनादि, ध्रुव  
और अध्रुव चारों प्रकारकी प्राप्त होती है, क्योंकि विसंयोजनासे जघन्य स्थितिके प्राप्त होनेके  
पहले तक वह अनादि है । विसयोजना के पश्चात् पुनः बन्ध होनेपर सादि है तथा अभव्योंकी  
अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियाँ  
मूलतः ही सादि हैं अतः इनकी अजघन्य स्थिति भी और स्थितियोंके समान सादि और अध्रुव  
है । अचतुदर्शनमार्गणा छद्मस्थ अवस्थाके रहने तक और भव्य मार्गणा संसार अवस्थाके रहने  
तक निरन्तर पाई जाती है, अतः इसमें उक्त औघप्ररूपणा बन जाती है । किन्तु भव्योंके ध्रुव

एवं अद बाणुगमो समचो ।

⊗ एयजीवेण सामिच ।

§ ४०५ सामिचानुगमेण सामिचं दुषिहं-जहणामुक्कस्स च । उक्कस्स पयदं ।  
दुषिहो णिदेसो-ओपेय्य भादेसण य । तत्प ओपण उक्कस्ससामिचं मस्सामि चि  
पइन्नामुत्तमेदं सुगमं ।

⊗ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहसी कस्स ? उक्कस्सद्विदिं षंपमाणस्स ।

४ ६ एदस्स अइरसहाइरियसुइकमलविणिग्गयस्स सामिचमुत्तस्स अत्यपरु  
षण कस्सामो । तं जहा, मिच्छत्तस्स चि णिदेसो ससपयद्विपदिसेइफलो । उक्कस्स  
द्विदिविहचिणिहेसो ससद्विदिविहचिपदिसइफलो । कस्से चि पुब्बा सयस्स क्कारच  
पदिसइफला । उक्कस्सद्विदिं षंपमाणस्से चि यण अणुक्कस्सद्विदिं षंपेण सह उक्कस्स  
द्विदिसंतपदिसइफलं । अणुक्कस्सद्विदीए च क्कमाणए चि उक्कस्सद्विदिण्णियाण  
मपद्विदिगलणा एत्थि चि उक्कस्सद्विदिविहसी किण्ण हादि ? ण, चरिमणिसेयस्स  
उक्कस्सकालुबलभित्तयस्स उक्कस्सद्विदिसण्णिदस्स अपद्विदिगलणाए एगद्विदीए

बिहस्य नही बनता । इन वा माग्याओंके अतिरिक्त क्षेत्र कितनी मार्गणाए हैं उनमें चारों  
प्रकारकी स्थितियां छानि और अग्रुच हैं, क्योंकि एक ता मार्गणाए परिवर्तनशील हैं और  
दूसरे सब मार्ग्याओंमें यथायोग्य ओष उच्छ्रुट स्थिति आदि न मात्र हाकर आदेश उच्छ्रुट  
स्थिति आदि मात्र होती हैं ।

इस प्रकार अग्रुबलुगम समान हुआ ।

⊗ अथ एक भीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुगमको फलत ई ।

§ ४०६ स्वामित्वानुगमकी अपवा स्वामित्व वा प्रकारअ हे-अपम्य ओर उच्छ्रुट । उनमेंसे  
पहले उच्छ्रुट स्वामित्वअ प्रकारए हे । इसकी अपवा निर्देश वा प्रकारका हे-ओष और आदेश ।  
उनमेंसे आपकी अपेक्षा उच्छ्रुट स्वामित्वअ अरत हैं इस प्रकार यह प्रतिग्राम्य सरल ह ।

⊗ मिध्यात्वकी उच्छ्रुट स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? उच्छ्रुटस्थितिका  
बोधनेवाला भीवक होती है ।

§ ४०७ अथ प्रतिग्राम आवायके मुख्य निष्पत्त हुए इस स्वामित्वमूक अपवा कथन  
करते हैं वा इस प्रकार हे- सूत्रमें मिध्यात्व परक देनअ कथ शर प्रकृतियोंका निरप करना ह ।  
उच्छ्रुट स्थितिबिभक्ति पर देनअ कथ क्षेत्र स्थिति बिभक्तिओंका निरप करना ह । किमक शर्ती  
है ? इस प्रकार सूत्रद्वारा आशय स्पष्टीकरण प्रतिपप करना है । उच्छ्रुट स्थितिअ बोधनबान  
भीवक इस बचनके देनअ कथ अनुच्छ्रुट स्थितिपरक साथ उच्छ्रुट स्थितिअपरक प्रतिपप  
करना है ।

शुद्धा-अनुच्छ्रुट स्थितिअ कथ हात हुए मी उच्छ्रुट स्थितिअ निरर्थक अपवा स्थितिगतन  
नही होता ह, अतः अनुच्छ्रुट स्थितिअपरक समय उच्छ्रुट स्थितिबिभक्ति क्यों नही शर्ती है ।

समाधान-नही क्योंकि जिसकी उच्छ्रुट स्थिति पर मया है एने उच्छ्रुट कातस इतदित



गलिदाए वि उक्कस्सट्टिदिविहत्तिविणासादो । अहवा उक्कस्सट्टिदियद्दाद्येदस्स एदं  
सामिन्नां, सो च कालणिसेगपहाणो, तेण अणुक्कस्सट्टिदि वंधमाणस्स उक्कस्सट्टिदि-  
विहत्ती ण होदि किं तु उक्कस्ससंकिसेएण उक्कस्सट्टिदि वंधमाणस्स चेवे त्ति ।

\* एव' सोलसकसायाणं ।

§ ४०७ जहा मिच्छत्तस्स उक्कस्ससामिन्नां पस्सिदं तहा सोलसकसायाणं  
पि परूवेदन्वं; मिच्छादिट्टिमि तिव्वसंकिसेसम्मि उक्कस्सट्टिदि वंधमाणम्मि चेव एदे-  
सिमुक्कस्सट्टिदिविहत्तीए सभवादो ।

अन्तिम निपेककी अध स्थिति गलनाके द्वारा एक स्थितिके गलित होजानेपर भी उत्कृष्ट  
स्थितिबिभक्तिका विनाश हो जाता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति  
नहीं होती है ऐसा समझना चाहिये । अत्रया यह उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिका स्वामित्व न होकर  
उत्कृष्ट स्थितिअद्वाच्छेदका स्वामित्व है और वह कालनिपेक प्रधान होता है, अतः अनुत्कृष्ट  
स्थितिको बाधनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति नहीं होती है किन्तु उत्कृष्ट मन्त्रेणसे उत्कृष्ट  
स्थितिको बाधनेवाले जीवके ही उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है ।

\* इसी प्रकार सोलह कपायोका उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये ।

§ ४०७ जिस प्रकार मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है उसी प्रकार सोलह कपायोका  
भी कहना चाहिये, क्योंकि तीव्र संक्लेशपाले और उत्कृष्ट स्थितिको बाधनेवाले मिथ्यादृष्टि  
जीवके ही उन सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सभव है ।

विशेषार्थ—चूणिसूत्रमें यह वतलाया है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके ही  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसपर शंकाकारका कहना है कि जो प्रथमादि समयोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर द्वितीयादि समयोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके  
उत्कृष्ट स्थितिके निपेकोका अधःस्थिति गलन नहीं होता अतः अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
भी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने दो प्रकारसे समाधान किया है ।  
पहले समाधानका तात्पर्य यह है कि जिस अन्तिम निपेककी सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण  
स्थिति पड़ी है उस निपेककी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञा है किन्तु द्वितीयादि समयोंमें उस निपेककी  
सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति न रहकर एक समय, दो समय आदि रूपसे कम हो  
जाती है, अतः अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती किन्तु जिस समय  
उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होता है उसी समय उत्कृष्ट स्थिति होती है । इस समाधानपर यह शंका  
होती है कि जब स्थिति निपेकप्रधान होती है और द्वितीयादि समयोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंज्ञावाले  
निपेकोका गलन ही नहीं हुआ तब अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति क्यों न मानी  
जाय ? इस शंकाका विचार करके वीरसेन स्वामी ने दूसरा समाधान किया है । उसका  
सार यह है कि उत्कृष्ट स्थिति कालकी प्रधानतासे कही गई है निपेकोकी प्रधानतासे नहीं, अतः  
अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय  
उत्कृष्ट काल सत्तर कोडाकोडी सागरमेंसे एक, दो आदि समय कम हो जाते हैं । इसी प्रकार  
सोलह कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ।

\* सम्मत्त-सम्मामिच्छसाणमुक्त्तसद्विविहरी कस्स ?

§ ४०८ सुगममेदं पुञ्जासुत्तं ।

\* मिच्छत्तस्स उक्त्तसद्विवि बंधिदूण अंतोमुहुत्तद पडिमग्गो जो द्विदिपादमकावूण सम्बलहुसम्मत्त पडिबण्णो तस्स पदमसमयवेदयसम्मा दिद्विस्स ।

§ ४०९ अदि वि एत्थ अहाभीससतकम्मियग्गहणं ए कदं तो वि अहाभीससंत कम्मियो चि णम्बदे; बंदगसम्मत्तमाहणप्पहाजुनपचीदो । सो वि मिच्छादिद्वि चि णम्बदे; अण्णगुणहाणम्मि मिच्छत्तस्स बंधाभावादो । सो तिप्पसंक्खित्तो चि उक्त्तस्स द्विदिवंधण्णहाजुनपचीदो णम्बदे । एदम्भादो वेव ए सुचो जग्गतो चि णम्बदे, सुचम्मि तम्भंपासंमवादो । उक्त्तसद्विदि बंधंतो पडिहमापडमादिसमपसु सम्मत्तं ण मेवदि चि आणावण्णहमंतीमुहुत्तद पडिमग्गो चि मणिदं । पडिमग्गो उक्त्तसद्विदि बंधुक्त्तस्ससंक्खित्तोपदि पडिणियत्तो हीदूण विसोहीए पडिवो चि मणिदं होदि । द्विदिपादं कावूण वि वेदगसम्मत्तं के वि जीवा पडिबज्जति वप्पडिसेहद्वि द्विदिपादमकाउणे चि

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४०८ यह पूछासुत्त सुगम है ।

\* मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको सांपकर मिस उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणपूत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे निहृत्त हुए मन्तर्मुहूर्त हो गया है और जो स्थितिका घात न करके अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस वेदक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४०९ यद्यपि सूत्रमें 'अहाभीससंतकम्मिय' पदका प्रहण नहीं किया है तो भी ऐसा बीच अहर्षस प्रकृतियोंकी सहायता होता है यह जाना जाता है क्योंकि अन्यथा बंधुक्त्तस्सत्त्वका प्रहण नहीं बन सकता है । और यह भी मिध्यादधि ही होता है यह जाना जाता है क्योंकि अन्य गुणस्वानमें मिध्यात्वका बन्ध नहीं हो सकता है । तथा यह मिध्यादधि भी तीव्रसंक्लेशवाला होता है यह जाना जाता है, अन्यथा मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता है । इसीसे यह बीच सोता हुआ नहीं है किन्तु आगता हुआ है यह बात भी जानी जाती है क्योंकि सोते हुएके मिध्यात्वका उत्कृष्ट बन्ध नहीं हो सकता । उत्कृष्ट स्थितिके बाधनवाला बीच उत्कृष्ट स्थितिकेबन्धसे च्युत होकर प्रथमादि धमबोधमें सम्यक्त्वको प्रहण नहीं करता है इस बातका ज्ञान करनके लिये त्रिसे उत्कृष्ट स्थितिकेबन्धसे निहृत्त हुए मन्तर्मुहूर्त हो गया है' ऐसा कहा है । प्रतिभग्न संवत्स्र अर्ध उत्कृष्ट स्थिति बन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे प्रतिनिहृत्त होकर विमुक्तिको प्राप्त हुआ जाता है । किन्तु ही बीच स्थितिका घात करके भी वेदक सम्यक्त्वका प्राप्त करते हैं अतः इसके प्रतिपन्न करनेके लिये सूत्रमें स्थितिका घात न करके यह कहा है । बहुतसे बीच ऐसे हैं जो स्थितिघात

भण्डं । द्विदिघादमकुणमाणा वि दीहकालेण सम्मचं पडिवज्जंता अत्थि तप्पडिसेहट्टं सव्वलहुग्गहणं कदं । विदियादिसमएसु अधट्टिदिगलणाए गलिदेसु उक्कस्सट्टिदिसंतं ण होदि त्ति पढमसमए वेदगसम्मादिट्टिस्से त्ति परुविद । मिच्छाइट्टिणा अट्टावीससंत-कम्मिण तिव्वसकिलेसेण सागार-जागारउवज्जुचेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिसंतकम्मिण तत्तो परिवदिय अंतोमुहुत्तद्धं तप्पाओग्गविसोहीए अवट्टिदेण अकदट्टिदिघादेण सव्व-लहुएण कालेण वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए सम्मत्तसम्माभिच्छ-चोसु संकामिदाए सम्मत्तसम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदिविहती जायदि त्ति भण्डं होदि । अवधपयडीसु वंधपयडी कथं सकमड् ? ए एस दोसो; वधपयडीणं चेव वंधे थक्के पडिग्गहत्तं फिट्टिदि णाबंधपयडीणं, अण्णहा अवंधपयडीए सम्मत्तादीएणमभावो हज्ज । ए च एवं मोहणीयस्स अट्टावीसपयडिसंतुवएसेण सह विरोहादो ।

नहीं करके दीर्घकालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होते हैं, अतः इसका प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें सर्वलघु पदका ग्रहण किया है । सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर दूसरे आदि समयोंमें अधः-स्थिति गलनाके द्वारा स्थितिके गलित हो जाने पर उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व नहीं रहता है, अतः सूत्रमें वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें ऐसा कहा है । जो मिथ्यादृष्टि जीव अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला है, जो जाग्रत रहते हुए साकार उपयोगसे उपयुक्त है, जिसने तीव्र संक्लेशसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति धाधकर उसकी सत्ता प्राप्त करली है वह जब तीव्र सक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिके साथ अवस्थित रहता हुआ स्थितिघात न करके सबसे लघु कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें सक्रमण कर देता है तब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

**शाका-बन्धप्रकृति** अबन्ध प्रकृतियोंमें सक्रमणको कैसे प्राप्त होती है ?

**समाधान-**यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बन्ध प्रकृतियोंके ही बन्धके रुक जाने पर उनमें प्रतिग्रहशक्ति नष्ट हो जाती है अबन्ध प्रकृतियोंकी नहीं, अन्यथा सम्यक्त्वादिक अबन्ध प्रकृतियों का अभाव हो जायगा । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त कथनका मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके सत्त्वके प्रतिपादक उपदेशके साथ विरोध आता है । अतः जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता किन्तु जो सक्रमण द्वारा ही अपने सत्त्वको प्राप्त होती हैं उनमें बन्ध प्रकृतिका सक्रमण हो सकता है इसमें कोई दोष नहीं है ।

**विशेषार्थ-**ऐसा नियम है कि जिस समय किसी प्रकृतिका बन्ध होता है उसी समय अन्य सजातीय प्रकृतिका उस बधनेवाली प्रकृतिरूपसे सक्रमण होता है, क्योंकि तभी वह बधने वाली प्रकृति प्रतिग्रह या पतद्ग्रहरूप होती है । और इसीका नाम परप्रकृति सक्रमण है । यह सक्रमण मूल प्रकृतियोंमें और चारों आयुओंमें परस्पर नहीं होता । तथा इस प्रकारका संक्रमण दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें भी नहीं होता । तथा इस प्रकारका सक्रमण होते समय संक्रमित होनेवाली प्रकृतिका स्थितिघात या अनुभागघात नहीं होता और न स्थिति तथा अनुभागमें वृद्धि ही होती है, क्योंकि स्थितिघात और अनुभागघात-

• यावथोकसायाणमुक्त्सद्विदिविहीए कस्स ?

§ ४१० सुगममेदं ।

• कसायाणमुक्त्सद्विदि संभिदूण आचलियावीवस्स ।

§ ४११ किमहमावस्मियादीदस्सुक्त्ससामिच दिज्जदि ? ए; अघसावलियमेच कालं बद्धसोससकसायाणमुक्त्सद्विदीए णोकसाएसु संकमाभावादो । इदो एसो

अ सम्बन्ध अपकर्षणसे तथा स्थितिद्विधि और अनुमाणाद्विधि सम्बन्ध अकर्षणसे है और अपकर्षण तथा अकर्षण एक ही प्रकृतिके कर्म परमाणुधर्मों परस्पर होते हैं। इस नियमके अनुसार यहाँ अकर्षणका यह कहना है कि सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्त्व स्वरूप प्रकृतियाँ नहीं हानते उनमें प्रतिग्रहपना नहीं पाया जाता अतः मिध्यात्त्वका सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्वरूपसे संक्रमण नहीं होना चाहिये। इस अर्थात् धीरेसे स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि जो बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनका यदि बन्ध नहीं हो रहा है तो अकम्बकालमें उनमें ही प्रतिग्रहपना नहीं रहता है। अतएव अत्र किये जब साताका बन्ध होता है तभी वह प्रतिग्रहरूप है और तभी उसमें असाधारण कर्मपुंज संक्रमणको प्राप्त होता है। किन्तु जब साताका बन्ध नहीं होता तब उसका प्रतिग्रहपना नष्ट हो जाता है और उसी हाश्वतमें असाधारण कर्मपुंज सातारूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त होता। किन्तु सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्त्व से दोनों अकम्ब प्रकृतियाँ हैं अतः इनके विषयमें संक्रमणका उक्त नियम लागू नहीं है। इनमें तो प्रतिग्रहपना बन्धके बिना भी पाया जाता है और इसलिये इनमें मिध्यात्त्वके कर्मपुंजके संक्रमण होनेमें कोई आपत्ति नहीं है। पर इतनी विशेषता है कि सम्बन्ध ही बंधके ही मिध्यात्त्वका कर्मपुंज इन दो प्रकृतियोंमें संक्रमित होता है। जब यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी अलग स्थिति बतलाना है अतः अर्थात् प्रकृतियोंकी सातासे जिस मिध्याद्विधि बंधन मिध्यात्त्वका अलग स्थितिबन्ध करके और संकल्पपरिणामोंसे निवृत्त होकर तथा मिध्यात्त्वका स्थितिकारणरूपता किये बिना अन्तमुहूर्त कालमें वेदकसम्बन्धको प्राप्त कर लिया है उसके वेदकसम्बन्धके प्राप्त करनेके पहले समयमें अन्तमुहूर्त कम मिध्यात्त्वकी अलग स्थितिका सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्त्वमें संक्रमण हो जाता है अतः इस समय सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्त्वकी अलग स्थिति पाई जाती है। शेष बातोंका सुतासा मूलमें किया ही है।

• नो नोकरायोकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति किसके होती है।

§ ४१० यद्द सूत्र सुगम है।

• जिसने कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बंधकर एक आपत्तीप्रमाण कास व्यतीत कर दिया है उसके नो नोकरायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति होती है।

शुद्धा-विमन कर्मायोंकी अलग स्थिति बंधकर एक आपत्ती प्रमाण कास व्यतीत कर दिया है यही नो नोकरायोंके अलग स्वामित्वका अधिष्ठात्री क्यों है ?

समाधान-नहीं क्योंकि बंधी हुए सातह कर्मायोंकी अलग स्थितिका अचञ्चलता काज्ञतक नो नोकरायोंमें संक्रमण नहीं होता है, अतः सोलह कर्मायोंके अलग स्थितिविधके बाद एक आपत्ती कास व्यतीत होने पर ही नो नोकरायोंका अलग स्वामित्व प्राप्त होता है।

णियमो ? साहावियादो । जदि शोकसायाणमण्णेसिं कम्ममाणमात्रलिउरुणकस्स-  
द्विदिसंक्रमेण उक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि तो पिच्छत्तक्कस्सद्विदिं सत्तगिसागरोवम-  
कोडाकोडिपमाणं शोकसाएसु मंकाभिय उक्कस्सद्विदिविहत्ती किण्ण परुविज्जटे ? ए,  
दंसणमोहणीयस्स चरित्तमोहणीयसंकमाभावादो । कसायाणं शोकसाएसु शोकसा-  
याणं च कसाएसु कुदो संकमो ? ण एस दोसो, चरित्तमोहणीयभावेण तेसिं पचा-  
सत्तिसंभवादो । मोहणीयभावेण दंसणचरित्तमोहणीयाणं पचासत्ती अत्थि त्ति अण्णोण्णेसु  
संकमो किण्ण इच्छदि ? ए, पडिमेउक्कमाणदंसणचरित्ताणं भिएणजाटित्ताण्णेण तेमिं  
पचासत्तीए अभावादो । एवं जइवसहाडरियपरुविदउक्कस्ससामित्तं देमामामियभावेण  
सुचिदादेसं भणिय संपहि उच्चारणाइरियवक्खाणं पुणरुत्तभएण ओध मोत्तूण आदेस-  
विसयं वत्तइस्सामो ।

§ ४१२ सत्तसु पुटवीसु तिरिक्ख-पंचिद्वियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०-

शंका-विवक्षित समयमें वधे हुए कर्मपुत्रका अचलावली कालके अनन्तर ही पर प्रकृतिरूप  
से सक्रमण होता है ऐसा नियम क्यों है ?

समाधान-स्वाभावसे ही यह नियम है ।

शंका-यदि अन्य कर्मोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिके सक्रमणसे नोकपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति होती है तो सत्तारकोडाकोड़ी सागर प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकपायोंमें  
संक्रमित करके उनकी उत्कृष्ट स्थिति आवलिकम सत्तारकोडाकोड़ी सागर प्रमाण क्यों नहीं कही  
जाती है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमे सक्रमण नहीं होता है ।

शंका-कपायोंका नोकपायोंमें और नोकपायोंका कपायोंमें सक्रमण किस कारणसे होता है ?

समाधान-यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे दोनों चारित्रमोहनीय हैं, अतः उनकी परस्पर-  
में प्रत्यासत्ति पाई जाती है इसलिये उनका परस्परमे सक्रमण हो सकता है ।

शंका-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दोनों मोहनीय हैं । इस रूपसे इनकी  
भी प्रत्यासत्ति पाई जाती है, अतः इनका परस्परमें सक्रमण क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि परस्परमें प्रतिपेध्यमान दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के  
भिन्न जाति होनेसे उनकी परस्परमें प्रत्यासत्ति नहीं पाई जाती है, इसलिये उनका परस्परमें  
संक्रमण नहीं होता है ।

इस प्रकार जिसके द्वारा देशामर्षक भावसे आदेशकी सूचना मिलती है ऐसे यतिवृषभ-  
आचार्यके द्वारा कहे गये उत्कृष्ट स्वामित्वको कहकर अब पुनरुक्त दोषके भयसे उच्चारणाचार्यके  
द्वारा व्याख्यात ओष स्वामित्वको छोड़कर आदेशविषयक स्वामित्वको कहते हैं—

§ ४१२. सातो पृथिवियोंके नारकी, सामान तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच

तिरि०जोगिणी-मजुस्तविय०-दृष-मभणादि भाव सहस्तर०-पंधिदिय-पंधि०पञ्ज०  
 तस०-तसपञ्ज०-पंचमण०-पचनवि०-कायजोगि-ओरासि०-वेउम्बि०-विष्णिवेद-वया-  
 रि० असंमद०-वकसु०-मभकसु०-पंचवेस्ता-मभसिद्धि० सयिख-आहारीणमोपमंगो ।

§ ४१३ पंधि०तिरि०मपञ्ज मिच्छय-सोम्भक०-एवणो० उक्क० कस्त ?  
 अण्ण० जो तिरिक्खो मजुस्ता वा उक्कस्तहिदिं पंधिदण हिदिपादमकादण पंधि०  
 तिरिक्खमपञ्जपसु पढमसमयचक्वण्णो तस्स उक्कस्तहिदिनिहरी । सम्मय-सम्मामि०  
 उक्क० कस्त ? अण्ण० तिरिक्खो मजुस्तो वा उक्कस्तहिदिं पंधिदण मंतोमुहुत्थेण  
 सम्मयं पढिण्णो सम्परोण सह सम्बलहु कान्ममिच्छिय मिच्छयं गदो मिच्छयेण  
 हिदिपादमकाऊण पंधि०तिरि०मपञ्जपसु उमपण्णो तस्स पढमसमयचक्वण्णस्स  
 उक्कस्तहिदिनिहरी । एवं मणुसमपञ्ज०-बादरेद्विदियपपञ्ज०-सुहुमेद्विदियपपञ्जत्ता  
 पञ्जय-सम्भविगल्लिदिय-पंधि०मपञ्ज०-बादरपुडवि०मपञ्ज०-सुहुमपुडविपपञ्जत्तापपञ्जय  
 बादरमाचमपञ्ज०-सुहुममाउ०पञ्जत्तापपञ्जय-बादरतंब०पञ्जत्तापपञ्जय-सुहुमतउपपञ्जत्ता

पयात्त, पंधेत्त्रिय तिर्येच मोन्निमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य मनुष्यिनी सामान्य देव, उन्नत-  
 वासिपंधि सेकर सहस्तर कस्तउक्के देव, पंधेत्त्रिय पंधेत्त्रिय पर्याप्त त्रस त्रस पयात्त, पंधि  
 मनोयोगी पंधि चचनयोगी, काययोगी, ओरारिक काययोगी, धैर्यिक काययोगी, तीनों बेरवाले,  
 चारों कयापयात्त असंयत चक्रुद्वैतवासे अचक्रुद्वैतवासे छ्प्यादि पंधि केरवावासे, मध्य, सीधी  
 और आहारक जीवोंके ओपके समान मंग है ।

विशुपार्य-ऊपर बिठनी मार्गवापं गिनार्ई ई उनमें मिध्यात्व आदि सब कर्मोंकी  
 उच्छ्रित्ति स्थिति ओपके समान बन जाती है, अतः इनकी मरुपथाको ओपके समान कहा है ।

§ ४१३ पंधेत्त्रिय तिर्येच लक्ष्म्यपयात्तकामिं मिध्यात्व, साहस्र कयाय और नौ नोकयात्तोंकी  
 उच्छ्रित्ति स्थितिबिभक्ति क्रिसकं हाती है ? जो कोई एक तिर्येच वा मनुष्य उच्छ्रित्ति स्थिति बाँधकर  
 और स्थितिपात न करके पंधेत्त्रिय तिर्येच लक्ष्म्यपयात्तकामिं कल्पन हुआ है उसके कल्पन हानके  
 पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उच्छ्रित्ति स्थितिबिभक्ति होती है । सम्भक्त्य और सम्भगिमिध्यात्वकी  
 उच्छ्रित्ति स्थितिबिभक्ति क्रिसकं हाती है ? जो कोई एक तिर्येच वा मनुष्य उच्छ्रित्ति स्थिति बाँधकर  
 अस्तमु हुतेकालकं हाउ सम्भक्त्यका प्राप्त हुआ तथा सम्भक्त्यके साथ अतिलपु अस्ततक उच्छ्रित्ति  
 मिध्यात्वकी प्राप्त हुआ । पुनः मिध्यात्वके साथ रहते हुए स्थितिपात न करके पंधेत्त्रिय तिर्येच लक्ष्म्य-  
 पर्याप्तकामिं कल्पन हुआ उसके कल्पन हानके पहले समयमें सम्भक्त्य और सम्भगिमिध्यात्वकी उच्छ्रित्ति  
 स्थिति हाती है । इसी प्रकार लक्ष्म्यपयात्तक मनुष्य, बादर पंधेत्त्रिय अपयात्तक, सूक्ष्म पंधेत्त्रिय, सूक्ष्म  
 पंधेत्त्रिय पयात्तक, सूक्ष्म पंधेत्त्रिय अपयात्तक, सब बिच्छ्रित्त्रिय पंधेत्त्रिय लक्ष्म्यपयात्तक, बादर  
 पृथिवीकायिक अपयात्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पयात्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
 अपयात्तक, बादर जलकायिक अपयात्तक, सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म जलकायिक पर्यात्तक, सूक्ष्म  
 जलकायिक अपयात्तक, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पयात्तक बादर अग्निकायिक अपयात्तक, सूक्ष्म  
 अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पयात्तक, सूक्ष्म अग्निकायिक अपयात्तक, वायुकायिक, बादर  
 वायुकायिक पयात्तक, बादर वायुकायिक अपयात्तक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पयात्तक,

पज्जत्त-वादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-  
सुहुमवणप्फदि०पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिओद-तसअपज्जत्ता चि ।

§ ४१४. आणदादि जावुवरिमगेवज्जो चि मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०  
णवणोको उक्क० ? अण्ण० जो दव्वलिंगी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढम-  
समयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । अणुदिसादि जाव सव्वण्हसिद्धि चि सव्व-  
पयडीणमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो वेदय०ट्ठि तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ  
पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ।

§ ४१५ एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो देवो उक्कस्स-  
ट्ठिदि वंधमाणो एइदिएसु पढमसमयउववण्णो तस्स० उक्क० विहत्ती । सम्मत्त०

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति-  
कायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सब निगोद और  
त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस मनुष्य या तिर्यचने मिथ्यात्व या सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिवध  
क्रिया है ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उस उत्कृष्ट स्थितिके साथ मर कर पंचेन्द्रिय तिर्यच  
लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंके भवके पहले समयमें  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागर और सोलह कपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम चालीस कोडाकोड़ी सागर कही हैं तथा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
उस लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यचके होती है जिसने पूर्व भवमें सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
करके और एक आवलिके पश्चात् उसका नौ नोकपायरूपसे सक्रमण करके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त  
कालके बाद पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जन्म लिया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका खुलासा मूलमें ही किया है । मूलमें और जितनी मार्गणाएँ गिनाई  
हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना ।

§ ४१४ आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयकतक मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? आनतादिके योग्य  
उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक द्रव्यलिङ्गी मुनि मरकर आनतादिकमें उत्पन्न हुआ  
उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । अनुदिशसे  
लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ?  
अनुदिशादिकके योग्य उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश  
आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्ति होती है ।

§ ४१५. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके  
होती है ? उत्कृष्ट स्थिति बौधनेवाला जो कोई एक देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न  
होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-

सम्पामि० उक्क० कस्म० ? अण्ण० जो तिगदिओ उक्कस्सहिदिं बंधिदूण अंतोसुदुच  
 पडिहगमो सतो वेदगसम्मसं पडिबण्णो सेण सम्मसेण सह सुअम्महुअमंतोमुहुत्तज्जमच्चिय  
 मिच्छसं गवो । तवो मिच्छराण हिदिपादमकादूण पडमसमयपरिदिआ जादो तस्स  
 उक्क० बिहरी । णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णवरस्स जो देवो उक्कस्सहिदिं  
 पपमाणा कालं कादूण एर दिओ जादो पडमसमयमादिं कादूण जीव आबलियउभ-  
 वण्णास्स तस्स उक्क० हिदिबिहरी । एवमेइ दियपज्ज -वाटरपरुदिय-वादरेइदिय  
 पज्ज० पुडवि०-वाटरपुडवि०-वाटरपुडविपज्ज० आउ०-वाटरआउ०-वाटरआउपज्ज०-  
 वण्णफदि०-वाटरवण्णफदि०-वाटरवण्णफदिपज्ज०-वाटरवण्णफदिपरोय० वाटरवण्णफदि  
 परोयपज्ज० असण्णि चि । ओराखियमिस्स० एमं चेव । णवरि देव गेरइयपज्जा  
 यदाणं कादुप्यं ।

की उत्कृष्ट स्थितिबिमति किसके होती है ? तीन गतिबोका जा काई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
 स्थितिको बाँधकर अस्तमु हुतै कालमें प्रतिग्न होकर तथा सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिका प्राप्त होकर  
 वैश्वसम्बन्धको प्राप्त हुआ । पुनः अतिलग्न कालतक बंधकसम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको  
 प्राप्त हुआ । तदनंतर मिथ्यात्वके साथ स्थितिपाठ न करके एकेन्द्रिय हुआ । इसके उत्पन्न  
 होनेके पहले सम्यक्त्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिमति होती है । नौ  
 मोक्षार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमति किसके होती है ? जो कोई एक देव कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
 को बाँधकर मरु और एकेन्द्रिय हुआ । इसके उत्पन्न होनेके पहले सम्यक्त्व के एक भावसी  
 प्रमाण कालके भीतर नौ मोक्षार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमति होती है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय  
 पर्याप्तक, वाटर एकेन्द्रिय वाटर एकेन्द्रिय पर्याप्तक प्रथिवीकायिक, वाटर प्रथिवीकायिक वाटर,  
 प्रथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक, वाटर जलकायिक, वाटर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पति-  
 कायिक, वाटर वनस्पतिकायिक, वाटर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्यक-  
 क्षरीर, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर पर्याप्तक और आरंभी बीजोंके जानना चाहिये ।  
 औदारिक मिश्रणयोगी बीजोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जो देव  
 और नारक पचायसे बापिस आकर औदारिक मिश्रणयोगी हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिबिमति  
 क्वन्ती चाहिये ।

विशुद्धार्थ—मूलमें एकेन्द्रिय आदि पसी मार्गवाय गिनत हैं जिनमें देव पर्यायसे आकर  
 जीव उत्पन्न हो सकते हैं, अतः इन सबमें एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
 बन जाती है । किन्तु औदारिकमिश्रणयोगमें उत्कृष्ट स्थिति क्वत्त समय देव और नारक पचायसे  
 आकर वा औदारिकमिश्रणयोगी हुए हैं उनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । परां  
 पर ईश्वर की वा सकती है कि वा एक मार्गवायोंमें देव पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं और  
 औदारिकमिश्रणयोगमें देव वा नारक पचायसे आकर उत्पन्न हुए हैं क्वन्तीके उत्कृष्ट स्थिति क्वों  
 प्राप्त होती है वा तिर्बेण वा मनुष्य पचायसे आकर एक मार्गवायोंमें उत्पन्न हुए हैं  
 उनके उत्कृष्ट स्थिति क्वों नहीं प्राप्त होती है । सा इसप्र समाधान यह है कि अतिमंजुसे  
 मरु हुआ तिर्येण और मनुष्य नारक पचायमें उत्पन्न हागा अतः परां देव और नारक पर्यायसे  
 पचायाम्य उत्पन्न क्वत्कर ही एक मार्गवायोंमें उत्कृष्ट स्थिति क्वी है ।



§ ४१६ वेजवियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदि वधमाणो मदो णेरइएसु पढमसमयउव-वण्णो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एव-णोको० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदि वंधिदूण कालं गदो णेरइएसु उववण्णो पढमसमयमादिं कादूण जाव आवलियउववण्णस्स तस्स उक्क०विहत्ती ।

§ ४१७ आहार० सव्वपयडीणमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो वेदय०दिट्ठी उक्कस्स-ट्ठिदिसत्तकम्मिओ पढमसमयपज्जत्तयदो तस्स उक्क०विहत्ती । एवमाहारमिस्स० । णवरि पढमसमयआहारमिस्सयस्स ।

§ ४१८. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चदुगदिओ उक्कस्सट्ठिदि वंधमाणो कालं गदो समयाविरोहेण तिरिक्ख-णेरइएसु पढमसमयकम्मइय-कायजोगी जादो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० ओरालियमिस्सभंगो । णवरि चदुसु गदीसु सम्मत्तं दादव्व । णवणोको० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चदुगदिओ उक्क०ट्ठिदि० वधमाणो कालं गदो जहासंभवं तिरिक्ख-णेरइएसु पढमविदयसमयउव-

§ ४१६ वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है । नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर एक आवलीप्रमाण कालके भीतर नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है ।

§ ४१७ आहारककाययोगियोंमें सद्य प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थिति-सत्कर्मजाला जो कोई वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारककाययोगी हुआ उसके पर्याप्त होनेके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाय-योगी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है ।

§ ४१८ कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई चार गतिका जीव मरा और यथानियम तिर्यंच और नारकियोंमें उत्पन्न होकर कर्मणकाययोगी हो गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वको चारों गतियोंमें देना चाहिये । अर्थात् उसकी उत्कृष्टस्थिति-विभक्ति चारों गतियोंमें कर्मणकाययोगियोंके होती है । नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई एक चारों गतियोंका जीव मरा और यथायोग्य तिर्यंच तथा नारकियोंमें पहले और दूसरे समयमें उत्पन्न

बण्णो तस्स उक्क०विहत्ती ।

§ ४१६. अपगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-मारसक०-णवणोक० उक्क० फस्स ? अण्ण० जो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयअवगदवेदो आदो तस्स उक्क० विहत्ती । एवमकसा०-मुहुम० जहापस्वादसंभदे चि ।

§ ४२० मदि-सुदमण्णा० मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक० ओपमंगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० फस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं वधिय अंतोमुहुचेण सम्मत्त पट्टिबण्णो । पुणो सम्मत्तेण सम्मत्तमुहुअर्मतोमुहुत्तद्धमच्छिय मिच्छत्तां गदो तस्स पढम समय उक्क०विहत्ती । एवं विहंग० ।

§ ४२१ आमिणि०-सुद० ओरि० सम्भयपीणमुक्क० फस्स ? अण्ण० जो मिच्छाईही देवो पेरउओ वा उक्क०ट्ठिदिं वधिदूण ट्ठिदिपादमकादूण अंतोमुहुचेण सम्मत्तां पट्टिबण्णो तस्स पढमसमयसम्मत्ताइहिसस उक्क० विहत्ती । एवमोहिदंस० सम्मादि०-अदय०-दिहि चि । मणपञ्चइ० सम्भयपट्टि उक्क० फस्स ? अण्ण० वेदय० णिही उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तस्स पढमसमयमणपञ्चवणाणिसस उक्कस्सट्ठिदि विहत्ती । एवं संभद०-सामाइय-वेदो०-परिहार०-संबदासंभदे चि ।

हुआ उसके उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि जाती है ।

४१६ अपगतवर्षमें मिथ्यात्व, सम्पत्त्व सम्पत्तिमिथ्यात्व बाह्य कृपाय और नौ नोकृपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मयत्ना को कोई भी अपगतवेदवाला हो गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बिमर्षि जाती है । इसी प्रकार अज्ञानी सुखसांपत्तिकसंयत और महासंयतसंबतके जानना चाहिये ।

४२० मत्तज्ञानी और नृत्तज्ञानी बीबोंमें मिथ्यात्व सोलह कृपाय और नौ नोकृपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि ओपके समान है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? जो कोई भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर अन्तमु हुँत कालके द्वारा सम्पत्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः सम्पत्त्वके साथ सबसे ज़रा अन्तमु हुँत काल तक रह कर मिथ्यात्वमें गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है । इसी प्रकार बिमंगलानिबोंके जानना चाहिये ।

§ ४२१ आमिनिबोधिकाज्ञानी नृत्तज्ञानी और अविज्ञानी बीबोंमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति बिमर्षि किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि देव या नारकी भी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और स्थितिपात न करके अन्तमु हुँत कालमें सम्पत्त्वका प्राप्त हुआ उस सम्पत्ति भीबके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है । इसी प्रकार अविज्ञानी, सम्पत्ति और वृत्तसम्पत्ति भीबोंके जानना चाहिये । मत्तपर्वज्ञानी बीबोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मयत्ना को कोई वेदक सम्पत्ति भीब है इसके मत्तपर्वज्ञानके प्राप्त होकरके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है । इसी प्रकार संबत स्मायिकसंयत ज्ञेयोपस्थापनासंयत, परिहारविद्विजिसंयत और संक्यासंयतके जानना चाहिये ।

संभवो तद्वा दंसणमोहणीयक्खवणाए तत्थ किं संभवो अत्थि णत्थि त्ति संदेहेण घुलंत-  
हियस्स सिस्ससंदेहविणासणट्ठं मणुस्सस्स मणुस्सस्सीए वा त्ति भणिदं । खविज्ज-  
माणयं ति वुत्ते मिच्छत्तस्स गहणं, अण्णस्सासंभवादो । आवलियं ति वुत्ते उदयावलि-  
याए गहणं; मिच्छत्तचरिमफालियाए परसरूवेण गदाए उदयावलियपविट्ठणिसेगे मोत्तूण  
अण्णेसिमवट्ठाणाभावादो । एत्थ जमावलियं पविट्ठं खविज्जमाणयं मिच्छत्त अधट्ठिदि-  
गलणाए गलिय जाधे तं दुसमयकालट्ठिदिगं सेस ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि  
त्ति संबंधो कायव्वो । कथं सुत्तम्मि असंताणं पदानमज्झाहारो कीरदे ? ण, सुत्त-  
स्सेव अवयवभूदानं सुगमत्तणेण तत्थ अणुच्चारिज्जमाणायं तत्थ अभावविरोहादो ।

इसी प्रकार अप्रशस्त वेदके उदयमें दर्शनमोहनीयकी क्षणका क्या संभव है या नहीं है इस प्रकार  
सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके सन्देहको दूर करनेके लिये सूत्रमें 'मणुस्सस्स  
मणुस्सस्सीए वा' यह पद कहा है । सूत्रमें 'खविज्जमाणय' ऐसा कहने पर उससे मिथ्यात्वका ग्रहण  
करना चाहिये, यहा अन्यका ग्रहण नहीं हो सकता है । सूत्रमें 'आवलिया' ऐसा कहने पर उससे  
उदयावलिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे संक्रमित हो  
जाने पर उदयावलिमें प्रविष्ट हुए निषेकोंको छोड़कर अन्य निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता है ।  
यहाँ पर जो उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होनेवाला मिथ्यात्व कर्म है वह अध स्थिति-  
गलना रूपसे गलित होकर जब दो समय काल स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति होती है ऐसा सम्बन्ध कर लेना चाहिये ।

**शंका**—जो पद सूत्रमें नहीं है उनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि जो सूत्रके ही अवयवभूत हैं पर सुगम होनेसे जिनका वहा  
उच्चारण नहीं किया है उनका अस्तित्व यदि वहाँ नहीं स्वीकार किया जाता है तो विरोध आता है ।

**विशेषार्थ**—यद्यपि ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदवाले और नपुंसकवेदवाले मनुष्यके मनः-  
पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसयम, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति नहीं  
होती फिर भी द्वायिकसम्यक्त्व और द्वायिकचारित्रकी प्राप्ति तीनों वेदोंके रहते हुए हो सकती  
है, इसी बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें मनुष्य और मनुष्यिनी इन दोनों पदोंका ग्रहण किया  
है । यहा मनुष्य पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये और मनुष्यिनी  
पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार जब इन तीन वेदवालोंमेंसे कोई एक  
वेदवाला मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षणका करता हुआ मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें स्थित उदयावलि-  
प्रमाण निषेकोंको गलाता हुआ अन्तमें दो समय स्थितिवाला एक निषेक शेष रखता है तब उसके  
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके प्रतिपादक उक्त चूर्णिसूत्रका  
समुदायार्थ कहते समय वीरसेन स्वामीने 'अधट्ठिदिगलणाए गलिय' इतना पद और जोड़ा है । इस  
पर शंकाकारका कहना है कि ये पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें तो पाये नहीं जाते, अतः यहा इनका अध्याहार  
कैसे किया जा सकता है, क्योंकि अध्याहार तो उन्हीं पदोंका होता है जो पूर्ववर्ती सूत्रोंमें  
आ चुके हैं । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि कोई  
पद यदि पूर्ववर्ती सूत्रोंमें न आया हो तो भी उसका अध्याहार करनेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि

⊗ सम्मत्तस्त जहण्णाद्विदिविहारी कस्त ?

§ ४२७ सुगममेद ।

⊗ चरिमसमयअक्खीणव सणामोहणीयस्स ।

§ ४२८ चरिमसमयअक्खीणवसम्मत्तस्स चि वत्तब्बं तेनेत्य अहियारादो ण चरिमसमयअक्खीणवसणामोहणीयस्से चि ? ण एस दोसो, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ते स्वइय पच्छा सम्पत्तां सुविज्जादि चि कम्माण वत्तवणकमजाणावणठ चरिमसमय अक्खीणवसणामोहणीयस्से चि छिहेसादो । मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेसु कं पुब्बं सुविज्जादि ? मिच्छत्तां । ह्वो, अच्चसुहत्तादो । असुहस्स कम्मस्स पुब्बं वेव स्ववर्ण होदि चि ह्वो गणवद ? सम्मत्तस्स छोहसंनखणस्स य पच्छा स्वपण्णहाणुवचीदो ।

येसा कोई निगम नहीं है कि जो पर पूर्ववर्ती सूत्रोंमें आये हों उन्हें का केवल अप्याहार किया जा सकता है । किन्तु सरल होनेसे आ पर सूत्रमें नहीं आये गये हों पर बिनके कर्म करनेसे अर्थ बोधमें सुगमता बाठी हो ऐसे पूर्ववर्ती अर्थोंमें भी जोड़ा जा सकता है क्योंकि अप्याहारका अर्थ भी यही है कि जिस वाक्यका अर्थ अस्पष्ट हो उसे द्रष्टान्तरकी कम्पना द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिये । अब यदि ऐसे पर पूर्ववर्ती सूत्रोंमें मिला बात है तो अच्छा ही है और यदि नहीं मिलते हैं तो कम्पनाद्वारा उन्हें अर्थोंमें भी जोड़ा जा सकता है ।

⊗ सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके होती है ?

§ ४२९ पर सू सुगम है ।

⊗ जिसने दर्शनमोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयके ज्ञय होनेके अनन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है ।

§ ४२८ शंका—सूत्रमें 'जिसने दर्शनमोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अनन्तिम समयमें' यह न कहकर 'जिसने सम्यक्त्वका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अनन्तिम समयमें' ऐसा करना चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्वका यहाँ अर्थिकार है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वको ज्ञय करके अनन्तर सम्यक्त्व का ज्ञय करता है इस प्रकार कर्मोंके ज्ञपणके क्रमका ज्ञान करनेके लिये 'जिसने ज्ञयन मोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अनन्तिम समयमें' यह कहा है ।

शंका—मिथ्यात्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वमें पहले किसका ज्ञय होता है ?

समाधान—पहले मिथ्यात्वका ज्ञय होता है ।

शंका—पहले मिथ्यात्वका ज्ञय किस कारणसे होता है ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्व अत्यन्त अशुभ प्रकृति है ।

शंका—अशुभ कर्मोंका पहले ही ज्ञय होता है वह किस प्रमाणासे जाना जाता है ?

समाधान—अन्यथा सम्यक्त्व और शीघ्र संव्यक्तत्व पश्चात् ज्ञय बन नहीं सकता है, इस प्रमाणासे जाना जाता है कि अशुभ कर्मोंका ज्ञय पहले होता है ।

§ ४२२. मुकले० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय द्विदिघादमकाऊण लेस्सापरावचिं गदो तस्स उक्क० विहत्ती । सम्मत्त० सम्मामि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी उक्क०ट्ठिदिं वंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तेण लेस्सापरावचिं गदो तस्स पढमसमए उक्क०विहत्ती ।

§ ४२३. अभविय० देवोधं । णवरि सम्म०-सम्मामि० णत्थि । ग्वड्य० वार-सक०-णवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमय-खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती । उवसम० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयउवमंतदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती । सासण० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० तस्सेव पढम-समयसासणं गदस्स तस्स उक्कस्स०विहत्ती । सम्मामि० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी उक्क०ट्ठिदिं वंधिदूण द्विदिघाद-मकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं वंधिदूण द्विदिघादमकाऊण

§ ४२२ शुक्ललेश्यामे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर और स्थितिघात न करके लेश्या-परावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाध कर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा लेश्यापरावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति हाती है ।

§ ४२३ अभव्योंके सामान्य देवोंके समान कथन जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्व कर्म नहीं होते हैं । चायिक सम्यग्दृष्टियोंमें वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव क्षीणदशनमोह हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव उपशान्तदशनमोहनीय हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई वही पूर्वोक्त जीव सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति हाती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर और स्थितिघात न करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर और स्थितिघात

सम्मत्तं पद्विपण्णो सम्मत्तेण सन्वल्लुभमद्दमच्छिद्य ढिदिधादमकाऊण सम्मामिच्छत्तं  
 गदो तस्स पद्दमसमपसम्मामिच्छादिहिस्स उक्क० विहारी । अछाहारीणं कम्मइयमंगो ।

एवमुक्कस्ससामिचं समत्तं ।

⊗ एतो जहण्णय ।

§ ४२४ अहण्णसामिचं मणामि चि सिस्ससमारुणं क्वमेवेण सुरोय । तस्स  
 दुनिहो पिरेतो—ओपेय अदेसेण य वेदि । तस्य ओपेण परुषणह कइमहाइरिभौ  
 उचरसुरां मणदि—

मिच्छत्तस्म जहण्णाद्विद्विहारी कस्स ?

§ ४२५ सुगममेदं

⊗ मणुसस्स वा मणुसिषीए वा अविज्जमाणपमावखिय पविहे जाये  
 दुसमपकासठिविग सेस ताये ।

§ ४२६ मणुस्सो चि बुत्ते पुरिसणु सपपेदीदइण्णाणं गहणं । मणुस्सिणि चि  
 बुरो इरियेदोदयमीषाणं गहणं । महा अप्पसत्पपेदोदपण मणुपस्ववखाणादीयं प

न करके सम्पत्त्वको प्राप्त हुआ है । पुनः सम्पत्त्वके साथ अठित्तपु कला तक रहकर और स्थिति-  
 पात न करके सम्पत्त्वको प्राप्त हुआ है तसके सम्पत्त्वको प्राप्त होनेके पहले समर्प  
 कइय स्थिति विमक्ति होती है । अनाहारको कर्मकरबयोगिके समान स्वामित्व प्राप्त  
 पाविये ।

इस प्रकार कइय स्वामित्व समस्त हुआ ।

⊗ इसके आगे जयन्य स्वामित्वको करते हैं ।

§ ४२७ अय अयन्य स्वामित्वको करते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा द्विप्योकी सम्पत्ति  
 की है । इस अयन्य स्वामित्वकी अपेक्षा निर्लेख दो प्रकारका है—ओपनिर्लेख और आदेशनिर्लेख ।  
 कस्सेओ ओपके कयन करनेके लिये यठिभुपम आत्माके आगेका सूत्र करते हैं—

⊗ मिप्यात्वकी जयन्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४२८ अ एत्त सुगम हे ।

⊗ मनुष्य या मनुष्यिनीके उदयावसिमें मविष्ट होकर कयको प्राप्त होता हुआ  
 जो मिप्यात्व कर्म है उसकी जब दो समय ममाख स्थिति शेष रहती है तब अयन्य  
 स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४२९ सूत्रमें मनुष्य पेसा करने पर कससे पुरुषनेह और नपुंसकनेहके अयन्यको मनुष्यो  
 का ग्रहण होता है । मनुष्यिनी पेसा करने पर कससे कीबेहके उदयावसे मनुष्य कीबोका ग्रहण  
 होता है । किंतु प्रकार अमकस्त वेहके अयन्यके साथ मनुष्येयानाविकका होना संभव नहीं है

संभवो तद्वा दंसणमोहणीयक्खवणाए तत्थ किं संभवो अत्थि णत्थि त्ति मंदेहेण घुलंत-  
हियस्स सिस्ससंदेहविणासणट्ठं मणुस्सस्स मणुस्सणीए वा त्ति भणिदं । खविज्ज-  
माणयं ति वुत्ते मिच्छत्तस्स गहण, अण्णस्सासंभवादो । आवलियं ति वुत्ते उदयावलि-  
याए गहरणं; मिच्छत्तचरिमफालियाए परसरूवेण गदाए उदयावलियपविट्ठणिसेगे मोत्तूण  
अण्णेसिमवट्ठाणाभावादो । एत्थ जमावलियं पविट्ठं खविज्जमाणयं मिच्छत्त अधट्ठिदि-  
गलणाए गलिय जाधे तं दुसमयकालट्ठिदिगं सेस ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि  
त्ति संबंधो कायन्वो । कथं सुत्तम्मि असंताणं पटाणमज्झाहारो कीरटे ? ण, सुत्त-  
स्सेव अवयवभूदानं सुगमत्तणेण तत्थ अणुच्चारिज्जमाणणं तत्थ अभावविरोहादो ।

इसी प्रकार अग्रशस्त वेदके उदयमें दर्शनमोहनायकी क्षण क्या संभव है या नहीं है इस प्रकार  
सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके सन्देहको दूर करनेके लिये सूत्रमें 'मणुस्सस्स  
मणुस्सणीए वा' यह पद कहा है । सूत्रमें 'खविज्जमाणय' ऐसा कहने पर उससे मिथात्वका ग्रहण  
करना चाहिये, यहा अन्यका ग्रहण नहीं हो सकता है । सूत्रमें 'आवलिय' ऐसा कहने पर उससे  
उदयावलिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे सक्रमित हो  
जाने पर उदयावलिमें प्रविष्ट हुए निपेकोंको छोडकर अन्य निपेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता है ।  
यहाँ पर जो उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होनेवाला मिथ्यात्व कर्म है वह अध स्थिति-  
गलना रूपसे गलित होकर जब दो समय काल स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति होती है ऐसा सम्बन्ध करनेना चाहिये ।

**शंका**—जो पद सूत्रमें नहीं है उनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि जो सूत्रके ही अवयवभूत हैं पर सुगम होनेसे जिनका वहा  
उच्चारण नहीं किया है उनका अस्तित्व यदि वहाँ नहीं स्वीकार किया जाता है तो विरोध आता है ।

**विशेषार्थ**—अद्यपि ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदवाले और नपुंसकवेदवाले मनुष्यके मनः-  
पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसयम, आहारकफाययोग और आहारकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति नहीं  
होती फिर भी त्थायिकसम्बन्ध और त्थायिकचारित्रकी प्राप्ति तीनों वेदोंके रहते हुए हो सकती  
है, इसी बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें मनुष्य और मनुष्यिनी इन दोनों पदोंका ग्रहण किया  
है । यहा मनुष्य पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये और मनुष्यिनी  
पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार जब इन तीन वेदवालोंमेंसे कोई एक  
वेदवाला मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षण करता हुआ मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें स्थित उदयावलि-  
प्रमाण निपेकोंको गलाता हुआ अन्तमें दो समय स्थितिवाला एक निषेक शेष रखता है तब उसके  
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके प्रतिपादक उक्त चूर्णिसूत्रका  
समुदायार्थ कहते समय वीरसेन स्वामीने 'अधट्ठिदिगलणाए गलिय' इतना पद और जोड़ा है । इस  
पर शंकाकारका कहना है कि ये पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें तो पाये नहीं जाते, अतः यहा इनका अध्याहार  
कैसे किया जा सकता है, क्योंकि अध्याहार तो उन्हीं पदोंका होता है जो पूर्ववर्ती सूत्रोंमें  
आ चुके हैं । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि कोई  
पद यदि पूर्ववर्ती सूत्रोंमें न आया हो तो भी उसका अध्याहार करनेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि

⊗ सम्मत्तस्स जहण्णद्विविहसी कस्स ?

§ ४२७ सुगममेदं ।

⊗ चरिमसमयअक्खीणद सणमोहणीयस्स ।

§ ४२८ चरिमसमयअक्खीणसम्मत्तस्स चि पचन्वं तणेत्थ अरियारादो ण चरिमसमयअक्खीणदसणमोहणीयस्स चि ? ण एस दोसो, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ते स्वइय पच्छा सम्मत्तां खविज्जदि चि कम्माण वत्तवणकमनाणावणह चरिमसमय अक्खीणदसणमोहणीयस्से चि णिहेसादो । मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तमु कं पुब्बं खविज्जदि ? मिच्छत्तां । कुदो अरूपसुहसादो । असुहस्स कम्मस्स पुब्बं पय खवर्णं होदि चि इदा पणवद ? सम्मत्तस्स सोहसंजसणस्स य पच्छा स्वयण्णाहाणुवचीदो ।

ऐसा कोई निष्पन्न नहीं है कि जो पर पूर्ववर्ती सूत्रों में भाव्यों केवल अभ्याहार किया जा सकता है । किन्तु सरल होनेसे जो पर सूत्रों में नहीं कह गये हैं पर जिनके ज्ञान करनेसे धर्म योग्यता सुगमता जाती है उसे परोंको रूपसे भी जाना जा सकता है, क्योंकि अभ्याहारका अर्थ भी यही है कि जिस वाक्यका अर्थ अस्पष्ट हो उसे ज्ञानान्तरकी कल्पना द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिये । अब यदि ऐसे पर पूर्ववर्ती सूत्रों में मिल जाते हैं तो अच्छा ही है और यदि नहीं मिलते हैं तो कल्पनाद्वारा उन्हें रूपसे भी जाना जा सकता है ।

⊗ सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४२९ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जिसन दर्शनमोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयके ज्ञय होकर अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४२८ शंका—सूत्रमें 'जिसन दर्शनमोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह न कहकर 'जिसने सम्यक्त्वका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' ऐसा करना चाहिये क्योंकि सम्यक्त्वका यहाँ अभिप्राय है ?

समाधान—यह कोई शंका नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्व और सम्बन्धिध्यातृत्वके ज्ञय करके अनन्तर सम्यक्त्व का ज्ञय करता है इस प्रकार क्योंकि ज्ञयणके क्रमका ज्ञान करनेके सिधे 'जिसने ज्ञान मोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह कहा है ।

शंका—मिथ्यात्व और सम्बन्धिध्यातृत्वमें पहले किसका ज्ञय होता है ?

समाधान—पहले मिथ्यात्वका ज्ञय होता है ।

शंका—पहले मिथ्यात्वका ज्ञय किस क्रमसे होता है ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्व अत्यन्त अज्ञान प्रकृति है ।

शंका—अज्ञान क्रमका पहले ही ज्ञय होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अज्ञान सम्यक्त्व और शोक संश्लेषणका परभाव ज्ञय नग नहीं सकता है, इस प्रमाणसे जाना जाता है कि अज्ञान क्रमका ज्ञय पहले होता है ।



\* सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२६. सुगममेदं ।

\* सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं वा उव्वेल्लिज्जमाणं वा जस्स दुसमय-  
कालट्टिदियं सेसं तस्स ।

§ ४३० खवेंतस्स वा उव्वेल्लतस्स वा जस्स दुसमयकालट्टिदियं सम्मामिच्छत्तं  
सेसं तस्सेव जीवस्स जहण्णसामित्तं होदि त्ति वयणेण सेससम्मामिच्छत्तसत्तकम्मियाणं  
पडिसेहो कदो । एवकारेण विणा कधमेसो णियमो अब्बगम्मटे ? ण एस दोसो,  
एवकाराभावे वि तदट्ठो तत्थ अत्थि त्ति सावहारणअवगमुप्पत्तीए विरोहाभावादो ।  
एगसमयकालट्टिदियमिदि किण्ण वुच्चदे ? ए, उदयाभावेण उदयणिसेयट्टिदी  
परसरूवेण गदाए विदियणिसेयस्स दुसमयकालट्टिदियस्स एगसमयावट्ठाणविरोहादो ।  
विदियणिसेओ सम्मामिच्छत्तसरूवेण एगसमय चेव अच्छदि उवरिमसमए मिच्छत्तस्स  
सम्मत्तस्स वा उदयणिसेयसरूवेण परिणामुवलंभादो । तदो एससमयकालट्टिदिसेसं

\* सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२६ यह सूत्र सुगम है ।

⊙ जिसके ज्ञयको प्राप्त होते हुए व उद्वेलनाको प्राप्त होते हुए सम्यग्मिध्यात्वकी  
दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष रहती है उसके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति होती है ।

§ ४३० ज्ञय करनेवाले या उद्वेलना करनेवाले जिस जीवके दो समय काल स्थिति प्रमाण  
सम्यग्मिध्यात्व शेष रहता है उसी जीवके जघन्य स्वामित्व होता है । इस वचनके द्वारा शेष  
सम्यग्मिध्यात्व सत्कर्मवाले जीवोंका प्रतिषेध कर दिया है ।

शंका—एवकारके बिना यह नियम कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि एवकारके नहीं रहने पर भी एवकार शब्दका अर्थ  
सूत्रमें अन्तर्निहित है इसलिये अवधारण सहित अर्थके ज्ञानके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति एक समय काल प्रमाण क्यों नहीं कही जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकृतिका उदय नहीं होता उसकी उदय निषेकस्थिति  
उपान्त्य समयमें पररूपसे संक्रमित हो जाती है अतः दो समय कालप्रमाण स्थितिवाले  
दूसरे निषेककी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण माननेमें विरोध आता है ।

शंका—सम्यग्मिध्यात्वका दूसरा निषेक सम्यग्मिध्यात्व रूपसे एक समय काल तक ही  
रहता है, क्योंकि अगले समयमें उसका मिध्यात्व या सम्यक्त्वके उदय निषेकरूपसे परिणामन  
पाया जाता है अतः सुत्रमें 'दुसमयकालट्टिदिसेसं' के स्थान पर 'एक समयकालट्टिदिसेसं' ऐसा  
कहना चाहिये ?

ति पच्यं ? हा, एगसमयकालद्विदिप गिसेग संते विदियसमए चेव तस्स णिसेगस्स भविण्णफलस्स भकम्मसरूपेण परिणामप्यसंगदो । ण च कम्मं सगसरूपेण परसरूपेण वा भदत्तफलसकम्मभावं गच्छदि, विरोहादो । एगसमयं सगसरूपेणच्छिय विदियसमए परपयडिसरूपेणच्छिय तदियसमए भकम्मभावं गच्छदि चि दुसमयकालद्विदिपिदेसो कदो।

⊗ अणुताणुबंधीणं अहण्णाद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३१ सुगममेदं ।

⊗ अ ताणुबंधी जेण विसजोइव आवलिय पविठ्ठ दुसमयकालद्विदिग सेवं तस्स ।

समाधान—नहीं क्योंकि इस निपकमे यदि एक समय कास प्रमाण स्थितिवाला मान लेते हैं तो दूसरे ही समयमें उसे फल न देकर अकर्मरूपसे परिणामन करनेका प्रसंग प्राप्त होता है। और कर्म स्वरूपसे या पररूपसे फल बिना दिने अकर्मभावको प्राप्त होते नहीं क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है। किन्तु अनुदय रूप प्रकृतियोंके प्रत्येक निपेक एक समय तक स्वरूपसे रहकर और दूसरे समयमें पर प्रकृतिरूपसे रहकर तीसरे समयमें अकर्मभावको प्राप्त होते हैं ऐसा नियम है अतः सुगमं दो समय कासप्रमाण स्थितिका निर्देश किया है।

विद्येपार्य—यहां यह शंका उत्पन्न हुई है कि विस कर्मका स्वोदयसे उभ नहीं होता उसका अन्तिम निपेक क्यास्य समयमें ही पर प्रकृतिरूप हो जाता है अतः अनुदयरूप प्रकृतिकी अपग्य स्थिति एक समय ही कर्तनी चाहिये। इस शंकाका बीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यद्यपि ऐसा नियम क्यास्य समयमें ही परप्रकृतिरूप हो जाता है पर यह कर्मरूपसे दो समय तक रहता है और तीसरे समयमें ही अकर्मभावको प्राप्त होता है अतः उस निपेककी अपग्य स्थिति दो समय कर्तनी ही युक्त है। यदि उसकी स्थिति एक समय मानी जाती है तो दूसरे समयमें बिना फल दिने उसे अकर्मरूप हो जाना चाहिये। पर ऐसा होता नहीं क्योंकि कोई भी कर्म फल दिने बिना अकर्मरूप होता नहीं और क्यास्य समय अस्तत्र अप्यकास नहीं है अतः क्यास्य समयमें यह फल दे नहीं सकता। इसलिये यही निश्चित होता है कि जो निपेक बितने कास तक कर्मरूपसे रहता है उसकी अन्तिम स्थिति होती है। स्थितिका विचार करते समय यह नहीं देना चाहता कि यह असुक्त समयमें अन्य प्रकृतिरूप होनेवाला है इसलिये इसकी स्थिति अन्य प्रकृतिरूप होनेसे पहले तक हो। किन्तु विस समय विस कर्मकी बितनी स्थिति कही जाती है उस समय उस कर्मरूप परणमे निपेकके सञ्चलकालको देकर ही यह स्थिति कही जाती है। अब यदि वे निपेक कही समय या अन्य समयमें अन्य प्रकृतिरूप होते हों तो हो जाने इससे विस कर्मकी स्थितिका कवन करनेमें कोई बाधा नहीं आती।

⊗ अनन्तानुबन्धीकी अपग्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४३१ यह सूत्र सुगम है।

⊗ विसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है और तदनन्तर उदयावलीमें मण्डित होकर अप उसकी दो समय कास प्रमाण स्थिति शेष रहती है तब उसकी अपग्य स्थितिविमक्ति होती है।

§ ४३२. अणंताणुवंगी जेण खविदं ति अभणिय जेण विमंजोइदं ति किमट्टं वुच्चदे ? ण, जस्स कम्मस्स परसरूवेण गयस्स पुणरूप्पत्ती णत्थि तस्स कम्मस्स विणासो खवणा णाम । ए च अणंताणुवंधीणमट्टरूसायाणं व पुणरूप्पत्ती णत्थि; पुणो वि परिणामवसेण सासणादिसु वधुवलभाटो । तम्हा अणताणुवंधी जेण विसंजोइदं ति सुहासियमेदं; तस्स पुणरूप्पत्तिजाणावणट्ट परुविदत्तादो । जदि अणंताणुवंधिचउक्कं विसजोइदं तो तेण जीवेण अणंताणुवंधिचउक्कं पडि णिस्संतकम्मेष होदव्वं ण तत्थ जहण्णसामित्तस्म संभवो; अभावे भावविरोहाटो ति ? ण एस दोसो, चरिमट्टिदिसंडय-चरिमफालियाए परसरूवेण गटाए समाणिट्ठअणियट्टिरुणस्स विसंजोइदत्ताविरोहाटो । अणंताणुवंधिकम्मवख्खधे सेसकसायसरूवेण परिणामंतओ विमंजोएंतओ णाम । ए च एवंविहा विसंजोयणा आवलियपविट्टणिसेयाणमत्थि; तेसि संकमाभावाटो । तम्हा अणंताणुवंधी जेण विमंजोइदं ति सुहासियमेद । जमुदयावलियपविट्टमणंताणुवंधिचउक्क-मंतकम्मं तं जाधे दुसमयकालट्टिदिगं सेसं ताधे तस्स जहण्णट्टिदिविहत्ती ।

§ ४३२ शंका—सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुवन्धीका क्षय कर दिया है' ऐसा न कह कर 'जिसने उसकी विसंयोजना कर दी है' ऐसा किसलिये कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पररूपसे प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुन. उत्पत्ति नहीं होती है उस कर्मके विनाशको क्षपणा कहते हैं । पर जिस प्रकार आठ कपायोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस प्रकार चार अनन्तानुवन्धीकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती यह बात तो है नहीं किन्तु परिणामोंके वशसे सासनादिकमें इसका पुनः वन्ध पाया जाता है अतः जिसने अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना कर दी है यह सूत्रमें उचित कहा है क्योंकि उसकी पुन. उत्पत्तिका ज्ञान करानेके लिये ऐसा कथन किया है ।

शंका—यदि अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना हो गई तो उस जीव को अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अपेक्षा कर्मरहित हो जाना चाहिये, अतः ऐसे जीवके जघन्य स्वामित्व संभव नहीं है, क्यों कि अभावमें भावके माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पर-रूपसे प्राप्त हो जानेपर अनिवृत्तिकरणको प्राप्त हुए जीवके अनन्तानुवन्धीको विसंयोजित माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । अनन्तानुवन्धीके कर्मस्कन्धोंको शेष कपायरूपसे परिमानेवाला जीव विसंयोजक कहलाता है । पर इस प्रकारकी विसंयोजना आवली प्रविष्ट कर्मोंकी तो होती नहीं, क्योंकि उनका सक्रमण नहीं होता है, अतः सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना कर दी है' यह योग्य कहा है । जो उदयावलिमें प्रविष्ट अनन्तानुवन्धी चतुष्क सत्कर्म है वह जिससमय दो समय स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य स्थितिभिक्ति होती है । -

विशेषार्थ—यहा विसंयोजना और क्षपणामें अन्तर बतलाते हुए यह लिखा है कि-पर प्रकृतिरूपसे संक्रमणको प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुन. उत्पत्ति नहीं होती उस कर्मके विनाशका-नाम क्षपणा है और जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति हो सकती है उस कर्मके विनाशका नाम विसंयोजना है

सो इसका यह तर्क है कि जो कम स्वादयसे लयको नहीं प्राप्त होते हैं उनके द्वितीय स्थितिमें स्थित कर्मपुत्रका उस समय बचनेवाली अपनी सशारीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और जो कर्मपुत्र उद्योगशक्तिमें स्थित है उसके प्रत्येक अन्तिम नियोजक स्तिरूप संक्रमणके द्वारा उपान्त्य समयमें उद्योगगत सशारीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और इस प्रकार उस कर्मकी लयणा होती है। लयणाका यह सचय परोक्षयसे जिन प्रकृतियोंका लय होता है उनके लयमें ही पतित होता है। अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी लयणा भी इस लयणमें आ जाती है फिर भी उसके लयको लयणा न करके विरस्योजना इसलिये कहा है क्योंकि अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी लयण इस प्रकारसे लयणा हो जाती है फिर भी परिणामोंके बलसे सासादन और मिथ्यात्व गुणस्वान्तमें लसन्दी पुनः उत्पत्ति देखी जाती है। अब यह बोधा इस बातका विचार कर लेना भी आवश्यक है कि जिस जीवने अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी विरस्योजना कर ली है ऐसा जीव क्या सासादन गुणस्वान्तकी भी प्राप्त हो सकता है? जिस जीवने अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी विरस्योजना नहीं की है किन्तु केवल दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी लयणमना की है ऐसा प्रथमोपशमसम्बन्धित जीव सासादन गुणस्वान्तको प्राप्त होता है इसमें किसीके विधान नहीं। हां जिस वेदकसम्बन्धित अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी विरस्योजना करके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी लयणमना की है ऐसा द्वितीयोपशमसम्बन्धित जीव लयणमनेकीसे प्युत होकर सासादन गुणस्वान्तको प्राप्त हो सकता है इसमें अवश्य विधान है। प्रथम लयणसामित विचक्षणत्वमें पतनाका है कि जिस जीवने अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी विरस्योजना की है ऐसा जीव यदि मिथ्यात्व में आता है तो उसके एक व्यावशिकता तक अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्ममेंसे किसी एक प्रकृतिका लय नहीं होता है। इसका यह अन्तिमार्थ है कि ऐसा जीव यदि मिथ्यात्वमें आता है तो उसके पहले समस्त ही लयण अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मका लय होने लगता है और अन्य प्रकृतियोंका अनन्तालुसम्बन्धी रूपसे संक्रमण होने लगता है किन्तु लयणशक्ति और संक्रमावलि करकेके लयण होती है इस नियमके अनुसार एक व्यावशिक कारणतक न तो लयें हुए कर्मोंका ही लयण हो सकता है और न लयके लय संक्रमणको प्राप्त हुए कर्मोंका ही एक व्यावशिक कारणतक लयण हो सकता है। अब मिथ्यात्व गुणस्वान्तकी यह स्थिति है तब ऐसा जीव सासादन गुणस्वान्तको कैसे प्राप्त कर सकता है क्योंकि सासादन गुणस्वान्त अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्ममेंसे किसी एक प्रकृतिकी लयणणा हुए बिना होता नहीं। पर अब अनन्तालुसम्बन्धीका लय ही नहीं और लयके बिना अन्य प्रकृतियों अनन्तालुसम्बन्धीरूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त हो सकती तथा अनन्तालुसम्बन्धी का लय मिथ्यात्व और सासादन प्राप्त किये बिना हो नहीं सकता। व्यापित् यह मान लिया जाय कि जिस समस्त ऐसा जीव सासादनको प्राप्त हो लसी समय अनन्तालुसम्बन्धीका लय होने लगे और लय कथय और मोक्षपाव अनन्तालुसम्बन्धीरूपसे संक्रमित होकर लयणणाको प्राप्त हो जाय तो ऐसे जीवके भी सासादन गुणस्वान्त बन जायगा सो भी बात नहीं है क्योंकि ऐसा कि हम पहले बतला जाये हैं कि इस नियमके अनुसार संक्रमित कर्मपुत्र भी एक व्यावशिकके पश्चात् ही लयणित हो सकता है। अब यह सिद्ध हुआ कि पदलक्षणतामके अन्तिमार्थानुसार ऐसा जीव सासादन गुणस्वान्तको नहीं प्राप्त होता है। स्वैतान्तरोंके पहां मस्तिर कर्म प्रकृतिमें कथसाया है कि ऐसा जीव सासादन गुणस्वान्तको भी प्राप्त होता है। पर इसकी टीकामें इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि जिन व्यावशिकके लयसे अनन्तालुसम्बन्धी लयुष्मकी लयणमना होती है उनके लयणुसार लयणमनेकीसे प्युत हुआ जीव सासादन गुणस्वान्तको भी प्राप्त होता है। टीकालयने मूलका इस प्रकार अबै विद्वान्ता है। किन्तु मूलकारका ली अन्तिमार्थ रहा होगा यह कहना बात कठिन है क्योंकि सो कमप्रकृतिके प्रकृतिस्वान्त संक्रम नामक प्रकृतिको देखनेसे मन्वम

❀ अट्टणहं कसायाणं जहणणट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३३, सुगममेदं ।

\* अट्टकसायक्खवयस्स दुसमयकालट्टिदियस्स तस्स ।

§ ४३४, ट्टिदी णिसेओ त्ति एयट्ठो, दुसमओ कालो जिस्से सा दुसमयकाला, दुसमयकालट्टिदी जस्स अट्टकसायक्खवयस्स सा दुसमयकालट्टिदियस्स अट्टकसायाणं जहणणट्टिदिविहत्ती । चारित्तमोहक्खवणाए अब्भुट्टिय अथापवत्तकरण-अप्पुव्वकरण-द्धाओ जहाविहिविसिट्ठाओ परिवाडीए गमिय अणियट्टिकरणं पविसिय ट्टिदिअणुभाग-पदेसाणं बहुवाणं घादं कादूण अणियट्टिअद्धाए संखे०भागे गदे अट्टकसायाणं खवण-माढविय आढत्तपढमसमयादो असंखेज्जगुणाए सेढीए कम्मपपदेसक्खंथे गालयंतेए

होता है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री विसयोजना की है ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। वहा वतलाया है कि इक्कीस प्रकृतिक सक्रमस्थानका इक्कीस प्रकृतिक पदद्रुहमें भी संक्रमण होता है। विचार करके देखनेसे यह स्थिति सासादन गुणस्थानमें ही प्राप्त होती है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि मोहनीयका इक्कीस प्रकृतिक बन्ध सासादनमें ही होता है, अतः यह निश्चित हुआ कि जिस जीवने अनन्ताबन्धी चतुष्क्री विसयोजना कर ली है ऐसा जीव जब सासादनको प्राप्त होता है तब उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री सक्रमण नहीं होता है। परन्तु जो बारह कपाय और नौ नोकपाय अनन्तानुबन्धीरूपसे सक्रमित होती हैं, उनकी पहले समयसे ही उदोहरणा होने लगती है। इस व्यवस्थाको मानलेनेपर सक्रमावलि सकल करणोंके अयोग्य है यह बात नहीं रहती है ? कर्मप्रकृतिका यह विवेचन कपायप्राभृतके विवेचनसे मिलता हुआ है। अतः चूर्णिसूत्रकारने भी अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना किये हुए जीवके दूसरे गुणस्थानमें जाने का विधान किया है।

\* आठ कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३३ यह सूत्र सुगम है।

❀ आठ कपायोंका क्षय करनेवाले जिस क्षपक जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति शेष रह गई है उसके उनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४३४ स्थिति और निपेक ये दोनों एकार्थवाची शब्द हैं। जिस स्थितिको दो समय काल है उसको दो समय कालवाली स्थिति कहते हैं। आठ कपायोंकी क्षय करनेवाले जिस जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति होती है वह दो समय काल प्रमाण स्थितिवाला कहलाता है। उसके आठ कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

कोई जीव जिसने चारित्रमोहनीयकी क्षयका प्रारम्भ किया अनन्तर जिसने जिसकी जैसी विशेषता वतलाई है उसके अनुसार अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके कालको क्रमसे व्यतीत करके अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश किया और वहा बहुतसी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका घात करके अनिवृत्तिकरणके सख्यातवें भाग कालके व्यतीत होने पर आठ कपायोंके क्षयका प्रारम्भ किया और इस प्रकार आठ कपायोंके क्षयका आरम्भ करनेके प्रथम समयसे लेकर

ससेञ्जद्विदि अणुभागकंठ्याणि पादिदाणि । एवं पादिय महकसापार्ण चरिम-  
द्विदिअणुभागकंठ्याणि घेच माहचाणि । तेसि चरमफालीसु खिबदिदासु चदया  
बसियर्मन्तरे समपूजावसियमेत्ता णिसया सस्यति; उदयामाण पढमगिसेयस्त परसस्वेण  
गदस्त अहकसापसस्वेण अभावादो । तेसु गिसंगसु अहाकमेण अपद्विदीप  
गलमाणेसु माप नस्त एया द्विदी दुसमयकासा संसा वाप तस्त अहण्णद्विदिबिहारी  
हीदि चि घेचम्भ । एसो णइस्यो ।

● कोषसंज्ञकस्य जहण्णद्विदिबिहारी कस्त ?

§ ४३५ सुगममेवं ।

● स्वयस्य चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंज्ञक्ये ।

§ ४३६ स्वयस्ये चि ण वचम्भं, पढिसेज्जमानादी । खोषसामय  
पढिसेहइ; तस्य कोहसंज्ञकस्य भिन्नेवचाभावादो । तस्मा चरिमसमयअणिल्लेविदे  
कोहसंज्ञक्ये चि एचिय चव वचम्भं ? ण एस दोसो, कोहसंज्ञकस्य भिन्नेवचो  
स्वयस्ये चैव ए उषसामयो चि जाणावणहं स्वयस्ये चि णिइसादो । ए च सुधमंतरेण

असंज्ञातगुणी भेषिके द्वारा कर्मप्रदेशस्वरूपोंका गलन करता हुआ हजारों स्थितिकाण्डक और  
अनुमाणाकाण्डकों का पतन किया । इस प्रकार हजारों काण्डकोंका पतन करके आठ कथायोंके  
अन्तिम स्थिति और अनुमाणा काण्डकोंके धात करन का प्रारम्भ किया और इस प्रकार उनकी  
अन्तिम स्थितियोंका पतन हो जान पर उपायबन्धिका मीनूर एक समय कम आबली ममाय निरुक्त  
प्राप्त होते हैं क्योंकि उद्यम न होनेके कारण प्रथम निरुक्त परवृत्तिरूप हो जाता है अतः उद्यम  
आठ कथायोंके अभाव हो जाता है । अन्ततः उन उपायबन्धोंमें प्रविष्ट निरुक्तोंका यथा क्रमसे  
अप्रस्थितिके द्वारा गलन होते हुए जिस समय एक स्थिति हो समय अज्ञानप्रमाण्य होय जाती है  
उस समय उसके अपन्य स्थितिबिम्बित होती है एसा यहाँ मध्य करना चाहिये । यह एक सूत्रका  
समुदायार्थ है ।

● श्लेषसंज्ञककी अपन्य स्थितिबिम्बित किसके होती है ?

§ ४३७ एह सूत्र सुगम है ।

● श्लेषसंज्ञककी सत्त्वव्युत्पत्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान रूपका जीवके  
श्लेषसंज्ञककी अपन्य स्थितिबिम्बित होती है ।

§ ४३६. शंका—श्रुतमें 'अपन्ये' यह नहीं कहना चाहिये क्योंकि प्रतिषेध करने योग्य  
कोई और वृत्त नहीं है । यदि कहा जाय कि उपशामकका प्रतिषेध करनेके लिये कुछ पद दिया  
है सो भी बात नहीं है क्योंकि उपशामकका श्लेषसंज्ञकका अभाव नहीं होता है । अतः  
'चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंज्ञक्ये' इतना ही कहना चाहिये ।

समाधान—एह कार्य शेष नहीं है क्योंकि श्लेषसंज्ञकका अभाव करनेवाला श्लेष ही  
जाता है उपशामक नहीं । इस बातका ज्ञान करनेके लिये सूत्रमें श्लेषरस पदका निर्देश किया

एसो अत्यो णव्वदे; तहाणुपलभादो । चरिमसमयअणिल्लेविदस्सेवे त्ति किमट्ठं वुच्चदे ? ण, दुचरिमादिसमएसु वंधदिदीणं गालणट्ठं तदुत्तीदो । कोहसंजलणं चरिमसमयअणिल्ले-विदे संते जो खवओ ताए अवत्थाए वट्टमाणो तस्स जहण्णाट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति सर्वधो कायव्वो । वे मासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति जहण्णाट्ठिदिपमाणमेत्थ किण्ण परूविदं ? ए ; जहण्णाट्ठिदअट्ठाच्छेदे परूविदस्स परूवणाए फलाभावादो ।

\* एवं माण-मायासंजलणाणं ।

§ ४३७ जहा कोहसजलणस्स जहण्णसामित्तं वुत्तं तहा माणमायासजलणाणं वत्तव्वं । चरिमसमयअणिल्लेविदे माणसंजलणे जो खवओ तस्स माणसंजलणजहण्ण-ट्ठिदिविहत्ती । चरिमसमयअणिल्लेविदे मायासंजलणे जो खवओ तस्स मायासजलण-जहण्णाट्ठिदिविहत्ति त्ति भण्णिदं होदि । अंतोमुहुत्तूणमासट्ठमासट्ठिदिपमाणपरूवणा एत्थ ण कायव्वा । कुदो ? अट्ठाच्छेदपरूवणाए तत्थ वावारादो ।

है । परन्तु सूत्रके बिना यह अर्थ जाना नहीं जाता है, क्योंकि सूत्रके बिना इस प्रकारके अर्थका ज्ञान होना शक्य नहीं ।

**शंका—सूत्रमें 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह किसलिये कहा है ?**

**समाधान—**नहीं, क्योंकि द्विचरम आदि समयोमे बन्धस्थितियोंके गालन करनेके लिये 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह पद कहा है ।

क्रोधसंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयके प्राप्त होनेपर जो क्षपक उस अवस्थामें विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है इस प्रकार उक्त सूत्रका सम्बन्ध करना चाहिये ।

**शंका—**यहाँ पर जघन्य स्थितिका प्रमाण अन्तमुहूर्त कम दो महीना है ऐसा क्यों नहीं कहा ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि जघन्य स्थितिके प्रमाणका जघन्य स्थिति अट्ठाच्छेद प्रकरणमें कथन कर आये हैं, अतः यहाँ उसका पुन कथन करनेसे कोई लाभ नहीं है ।

\* इसी प्रकार उस क्षपकके संज्वलन मान और संज्वलन मायाकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ?

§ ४३७ जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहा है उसी प्रकार मान और माया संज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । जो क्षपक मान संज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मान संज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है । तथा जो क्षपक मायासंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके माया संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है, यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

यहाँ पर मानसंज्वलनकी अन्तमुहूर्त कम एक महीना और मायासंज्वलनकी अन्तमुहूर्त कम आधा महीना प्रमाण स्थितिका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसे अट्ठाच्छेदकी प्ररूपण-में बतला आये हैं ।

• ओहसंजक्षणस्त जहण्णद्विदिविहसी कस्त ?

§ ४३८ सुगमवेदं ।

• अवयवस्त चरिमसमयसकसायस्त ।

§ ४३९ दुचरिमादिसमयपडिसेहहो चरिमसमयसकसायणिहेसो । किमद्वं वप्यडिसेहो कीरदे ? दोतिपिण्णमादिगिण्णसेसु द्विदेसु जहण्णद्विदिविहसी ण होदि सि आणावण्णद्वं । चरिमसमयसुहमसांपराइयस्त अन्नद्विदिविगल्लाए गाळिदुचरिमादि गिण्णसेयस्त द्विदिकंइयवत्तेण पादिदासेसवचरिमद्विदिगिण्णसेयस्त एगोदयगिण्णसेगे चट्टमाणस्त जहण्णद्विदिविहसि सि मणिदं होदि ।

• इत्थिबेदस्त जहण्णद्विदिविहसी कस्त ?

§ ४४० सुगमं० ।

• चरिमसमयइत्थिबेदोदयवयवस्त ।

§ ४४१ दुचरिमसमयसबेदो किण्ण जहण्णद्विदिसामिमो ? ण, पडमद्विहरीय

• शोमसंन्यसनी अपन्य स्थितिचिमक्ति किसके होती है ?

§ ४१८ यह सूत्र सुगम है ।

• कषायसहित क्षयक जीवके अन्तिम समयमें शोमसंन्यसनकी अपन्य स्थिति चिमक्ति होती है ।

§ ४१९ द्विचरमसमय आदिअ नियेच करनेके लिये सूत्रमें 'चरिमसमयसकषायस्त' पदका निर्देश किया है ।

शुद्धा—द्विचरमसमय आदिका नियेच किसलिय किया है ?

समाधान—सो, तीन आदि नियंत्रके स्थित रहनपर अपग्य स्थितिचिमक्ति मही जाती है इस बातका हान करनेके लिये द्विचरमसमय आदिका नियेच किया है ।

जिसने द्विचरम आ इ नियेचके अपास्थिति गलनाक द्वारा गलित कर दिया है, जिसन स्थितिअण्डरूपालके द्वारा अण्डरके समस्त स्थितिनियंत्रका पात कर दिया है और आ एक उदय रूप नियंत्रमें विद्यमान है इस सूत्रमसांपराधिकमयन जीवके अन्तिम समयमें अपग्य स्थिति चिमक्ति होती है यह कथ सूत्रका अभिप्राय है ।

• स्त्रीबेदकी अपन्य स्थितिचिमक्ति किसके होती है ?

§ ४२० यह सूत्र सुगम है ।

• क्षयक जीवके स्त्रीबेदक उदयके अन्तिम समयमें स्त्रीबेदकी अपन्य स्थिति चिमक्ति होती है ।

§ ४२१ शुद्धा—द्विचरम समयवाला सबर जीव अपग्य स्थितिका स्वामी क्यों मही हाता है ?



दोण्डमिस्थिवेदणिसेयाणं विदियद्विदीए वि पलिदोत्रमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-  
णिसेयाणं चरिमफालिसरूवेण अवट्टिदाणं तत्थुवलंभादो । अण्णवेदोदयक्खवयस्स  
जहण्णसामिच्चं किण्ण दिज्जदे ? ण, उदयाभावेण पढमद्विदिविरहियस्स विदियद्विदीए  
चेव अवट्टिदस्स पलिदो० असंखेज्जदिभागमेत्तणिसेगेसु इत्थिवेदस्स चरिमफालीए  
अवट्टाणुवलंभादो । एगाए णिसेगद्विदीए उदयगदाए सुद्धपुव्वुत्तरासेसण्णिसेगाए वट्ट-  
माणो जहण्णद्विदिसामि च्चि भणिद होदि ।

\* पुरिसवेदस्स जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४२. सुगमं० ।

\* पुरिसवेदखवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स ।

§ ४४३. जस्स पुव्वमेत्थेव भवे पुरिसवेदो उदयमागदो सो जीवो पुरिसवेदो;  
साहचज्जादो । तस्स पुरिसवेदक्खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स जहण्ण-  
सामिच्चं होदि; तत्थ अंतोमुहुत्तूणअट्टवस्समेत्तद्विदीए उवलंभादो । इत्थिवेदस्स भण्ण-

**समाधान**—नहीं, क्योंकि द्विचरम समयमें स्त्रीवेद सम्बन्धी प्रथम स्थितिके दो निषेक पाये जाते हैं और द्वितीय स्थितिके भी अन्तिम फालिरूपसे पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण निषेक पाये जाते हैं अतः द्विचरम समयवाला सवेद जीव जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं होता है ।

**शंका**—अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीवको स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि ऐसे जीवके स्त्रीवेदका उदय नहीं होता अतः उसकी प्रथम स्थिति नहीं पाई जाती किन्तु केवल द्वितीय स्थिति ही पाई जाती है पर उसकी अन्तिम फालिके निषेकों का प्रमाण पत्न्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है, अतः अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीव स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं हो सकता ।

जो स्त्रीवेदी क्षपक जीव स्त्रीवेदके पूर्वोत्तर सत्र निषेकोंसे रहित है और उदय प्राप्त एक निषेक स्थितिमें विद्यमान है वह स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

\* पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ?

§ ४४२ यह सुगम है ।

\* जिसके पुरुषवेदका अभाव नहीं हुआ है ऐसे पुरुषवेदी क्षपक जीवके अन्तिम समयमें पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

§ ४४३ जिसके पहले इसी भवमें पुरुषवेद उदयको प्राप्त हुआ है वह जीव पुरुषवेदके साहचर्यसे पुरुषवेदी कहलाता है । उस पुरुषवेदी क्षपक जीवके पुरुषवेदके सत्त्वके अन्तिम समयमें जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि वहाँ पर अन्तमुहूर्त कम आठवर्ष प्रमाण स्थिति पाई जाती है ।

मात्रे जहा इत्विनेदोदयत्ववगस्तो चि परुविर्दं तथा पुरिसवेदोदयत्ववगस्तो चि किञ्च परुविर्दं ? ए, अत्रगदवेदकास्त्रमस्तरे दुसमऊणदोभावस्त्रियमेचकालं गतूण द्विदसहृण्ण-द्विदिसामियस्स सवेदधविरोहादो ।

● गणुसयवेदस्स जहृण्णद्विदिविहारी कस्स ?

§ ४४४ सुगमं ।

● चरिमसमयणहुंसयवेदोदयत्ववयस्स

§ ४४५ कुदो ? चरिमसमयणहुंसयवेदस्स गास्सिदुचरिमादिसयस्त्रुणसवि

णिसेयस्स सवेदियदचरिमसमय इत्विनेदचरिमफास्सीए सह परसरुबेख संक्रामिदसमुंसय वेदविदियद्विदिसयस्त्रुणिसेयस्स परुदयगोबुष्णुवर्त्तभादो ।

● जणोकरसाधारणं जहृण्णद्विदिविहारी कस्स ?

§ ४४६ सुगमं० ।

● लवपस्स चरिमे द्विदिव जए वहुमाणस्स

**शुंका**—स्त्रीवेदका अथवा स्वामित्व करते समय जिस प्रकार स्त्रीवेदके लवको प्राप्त रूपको पसका स्वामी बतलाया है उसी प्रकार पुरुषवेदके लवको प्राप्त रूपको पुरुषवेदकी अथवा स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं क्योंकि अथगतवत् कालके भीतर जो समक कम वा आबसी प्रमाण कम बाहर जो पुरुषवेदकी अथवा स्थितिका स्वामी विद्यमान है उसे-सवेद करनेमें विरोध जाता है ।

● नपुंसकवेदकी अथवा स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४४४ पर सूत्र सुगम है ।

● अथक जीवके नपुंसकवेदके लवके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी अथवा स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४५ शुंका—अथक जीवके नपुंसकवेदके लवके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी अथवा स्थिति विभक्ति क्यों होती है ?

। **समाधान**—जसने नपुंसकवेद सम्बन्धी द्विचरम आदि सन्पूर्ण गुणश्रेणीके निरुक्तको गहा दिया है और जिसन सवेद भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदकी अन्तिम पक्षिके साथ द्वितीय स्थितिमें स्थित नपुंसकवेदके समस्त निरुक्त पररूपसे संक्राम्य कर दिया है उसके अन्तिम समयमें एक लवरूप गोपुष्प पाया जाता है अतः नपुंसकवेदके लवके अन्तिम समयमें उसकी अथवा स्थितिविभक्ति होती है ।

● अथ नोकरपायोंकी अथवा स्थितिविभक्ति किसके होती है ।

§ ४४६ पर सूत्र सुगम है ।

● अथ नोकरपायोंके अन्तिम स्थितिका अथकमें विद्यमान अथक जीवके उनकी अथवा स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४४७. कुदो ? तत्थ संखेज्जवाससहस्समेत्तचरिमफालिद्विदीए उवलंभादो ।

§ ४४८. एव मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-लोभकसाय०-चक्खु०-अचक्खु०-सुकले०-भवसि०-आहारए त्ति । एवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जण्णद्विदिविहत्ती खवगस्स चरिमद्विदिविहत्ती वट्टमाणस्स ।

\* गिरयगईए ऐरइएस्सु सम्मत्तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ।

§ ४४९. सुगमं० ।

\* चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४५०. कुदो ! मणुस्सभिच्छाइद्विस्स तिव्वारंभपरिणामोहि गिरयगईए सह

§ ४४५. शंका—अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ पर अन्तिम फालिकी संख्यात हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति पाई जाती है ।

§ ४४८. इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य और आहारकके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति स्त्रावेदके अन्तिम काण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके होती है ।

विशेषार्थ—मूलमें जितनी मार्गाणाँ गिनाई हैं उनमें ओघके समान प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु मनुष्यपर्याप्तके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं होती, क्योंकि जो जीव स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढता है वही जीव स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें एक सययवाली जघन्य स्थितिका स्वामी होता है । किन्तु जो पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढता है वह जीव जब स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी पुरुषवेदरूपसे सक्रमित करता है तब उसके स्त्रीवेदकी पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्थितिविभक्ति होती है इससे कम नहीं और इसलिये मनुष्य पर्याप्तको स्त्रीवेदकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिरूप जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामी कहा है ।

\* नरकगतियें नारकियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ।

§ ४४९ यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है उसके दर्शनमोहनीयके क्षय करनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४५० शंका—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

बद्धविरयाठभस्त पञ्चा तित्ययरपादमूलमुषणमिय सम्मचं घेत्तूण भंतोमुदुचापसेसे  
 भावए भवापवत्तापुञ्जाणियद्विहृत्तराणि कादूण मिच्छत्तसम्मामिच्छत्ताणि अणियद्वि  
 कम्ममंतरे त्वत्रिय अणियद्विहृत्तराण्यद्वाए परिमसमयम्मि सम्मत्तवरिमद्विदिसुदयचरिम-  
 फालिं घेत्तूण उदयादिगुणसदिसरूपेण घेत्तिय द्विदस्त कदकरणिग्गे पि सण्णा कया;  
 सेसदंसणमोहकस्त्वणाविसयकज्जधादो । तस्स काठलेस्स परिणमिय पडमपुडबीए  
 उप्पच्चिय अघद्विदिगसणाए परिमगोवुच्छं मोत्तूण गस्सिदासेसमोवुच्छस्स एगसमय  
 कासगद्विदिदंसणादो ।

❖ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाद्विदिविहृती कस्स ?

§ ४५१ सुगमं० ।

❖ चरिमसमयवच्चैहमाणस्स ।

§ ४५२ ह्रदो ? सम्मादिद्विखा मिच्छत्तं गतूण भंतोमुदुत्तमच्चिय सम्मत्त  
 सम्मामिच्छत्ताण्युच्च्येत्तसणमाद्विय पस्सिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेचद्विदिसुदयाणि  
 महाकमेण पाच्चिय उच्चस्सिदसम्मयेण पुणो सम्मामिच्छत्तस्स पत्थिवो० असंखे०भाग-  
 मेचद्विदिकंठए पादिय चरिममुच्च्यणकंठयस्स परिमफालीए पादिदाए समत्तणा

समाधान—जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य जीव तीव्र आरम्भरूप परिणामोंके द्वारा नरकगतिके  
 साथ नरकायुक्त बन्ध करनेके अनन्तर तीव्ररूपके पापमूलको प्राप्त होकर और सम्बन्धको प्रद्वय  
 करके व्यापुके अन्तमु हृत होय रहने पर अपव्यवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तकरणरूप  
 परिणामोंके करके तथा अनिवृत्तकरणके कासके भीतर मिथ्यात्व और सम्ममिथ्यात्वका उद्भव  
 करके अनिवृत्तकरणके कासके अन्तिम समयमें सम्बन्धकी अन्तिम स्थिति काण्डकी अन्तिम  
 कालिके प्रद्वय करके और ज्यसे लेकर गुणबन्धीरूपसे बसका निरूपेण करके स्थित है जसे  
 छतछत्र पर छंदा प्राप्त होती है क्योंकि इसका कार्य होय बधेनमोहनीयकी अपवा है। अनन्तर  
 जिसने कापोठलेषयासे परिणत होकर और पहली पृथिवीमें कल्पन होकर अथाःस्थिति गतनाके  
 द्वारा अन्तिम गोपुच्छको जोषकर बाकीके समस्त गोपुच्छको गला दिया है उसके एक समय  
 कालममात्र एक स्थिति देको जाती है। अथ मतीत होता है कि नारकीके बधनमोहनीयकी  
 रूपकाके अन्तिम समयमें सम्बन्धकी अवश्य स्थितिबिमक्ति हाती है।

❖ नारकियोंमें सम्ममिथ्यात्वकी जयम्य स्थितिबिमक्ति किसके होती है ?

§ ४५१ एव सुव सुगम है ।

❖ सम्ममिथ्यात्वकी उद्देखनाके अन्तिम समयमें सम्ममिथ्यात्वकी अपन्य  
 स्थितिबिमक्ति होती है ।

§ ४५२ शंका—छेदनाके अन्तिम समयमें अपन्य स्थितिबिमक्ति क्यों होती है ?

समाधान—कोई एक सम्मदृष्टि मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ अन्तमु हृत करके एक  
 पृच्छर बसने सम्बन्ध और सम्ममिथ्यात्वकी छेदनाका आरम्भ करके पस्यापमके असंख्यातर्त्त  
 ममा प्रमात्र स्थितिकण्डकोंका यथाक्रमसे पतन करके सम्बन्धकी छेदना कर ली । पुनः उसके  
 सम्ममिथ्यात्वके पस्यापमके असंख्यातर्त्त ममा प्रमात्र स्थिति काण्डकोंका पतन करके अन्तिम

वलयमेत्तगोवुञ्छात्रो चिद्व ति । पुणो तामु दुसमऊणाप्रत्ययमेत्तागु अधद्विदिगल-  
णाए गालिदासु दुसमयकालेगणितेयद्विद्विदं सखादो ।

\* अणताणुवधीणं जहण्णद्विद्विहत्ती कस्स ?

§ ४५३ सुगमं० ।

\* जरस विसजोइदे दुसमयकालद्विदियं सेस तरस ।

§ ४५४ सुगममेदं; औघम्मि परुविदत्तादो ।

\* सेस जहा उदीरणाए तथा कायव्व ।

§ ४५५ एदस्स अत्यो वुञ्छदे-मिच्छत्त-वारसरुसाय-भय-दुगुञ्छाणं जहण्णद्विदि-  
विहत्ती कस्स ? जो असण्णिपंचिदिओ सागरोवमसहस्समेत्तउक्कस्सद्विद्विद्वंधादो पल्लिओ-  
वमस्स संखेज्जदिभागेण जहाऊणं होदि उक्कस्मद्विद्विसंतकम्मं तथा यादिय जहण्णद्विदि-  
संत करिय पुणो जहण्णसंतादो हेत्वा अतोमुट्टत्तकालं संखे० भागहीणं पुव्वं वंधमाणो  
अच्छिदो जहण्णद्विद्विसंतकदसमए चेव जहण्णद्विद्विमत्तसमाणं वंधिय तदो से काले  
जहण्णद्विद्विसंतं बोलेदूण वंधिद्विद्वि चि तावणियरगदीएदुसमयविग्गहं काऊए णेरइ-  
एमुअवणो तत्थ दोसु वि विग्गहममएमु असण्णिपंचिद्विद्विद्वि चेव वंधदि असण्णि-

उद्वेलना काण्हककी अन्तिम फालिके पतन करने पर एक समय कम आत्रलिप्रमाण गापुच्छ शेष  
रहते हैं । पुन. उसके दो समय कम आत्रलिप्रमाण उन गोपुच्छोके अध.स्थितिगलनाके द्वारा  
गला देने पर एक निपेककी दो समय कालप्रमाण स्थिति देखी जाती है । इमसे प्रतीत होता  
है कि अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यगिभ्यात्तकी जघन्य स्थितिभिक्ति होती है ।

\* नारकियोंमें अनन्तानुवन्धिचतुष्ककी जघन्य स्थितिभिक्ति किसके  
होती है ?

§ ४५३ यह सूत्र सुगम है ।

\* विसंयोजना करने पर जिस नारकीके अनन्तानुवन्धीकी दो समय काल  
प्रमाण स्थिति शेष है उसके अनन्तानुवन्धीकी जघन्य स्थितिभिक्ति होती है ।

§ ४५४ यह सूत्र सरल है, क्योंकि इसका कथन औघप्ररूपणामें कर आये हैं ।

● नारकियोंके उपर्युक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिभिक्ति जिस प्रकार उदीरणामें होती है उस प्रकार कहनी चाहिये ।

§ ४५५ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य  
स्थितिभिक्ति किस नारकीके होती है ? जो असञ्ची पचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट  
स्थितिवन्धमें से पल्योपमका सख्यातर्वो भागप्रमाण कम जिस प्रकार होवे उस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति  
सत्कर्मका घात करके जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करता है । तथा जघन्य स्थिति सत्कर्मके  
नीचे पहले अन्तमुहूर्त कालतक पल्योपमके सख्यातर्वो भाग प्रमाण कम स्थितिको बाधता  
हुआ स्थित है पुनः जघन्य स्थितिसत्त्वके होनेके समय ही जघन्य स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको  
बाधकर उसके अनन्तर कालमें जब जघन्य स्थितिसत्त्वको उल्लघकर बाधेगा तब दो समयका  
विग्रह करके नरकगतियें नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । पर वहा विग्रहके दोनों ही समयोंमें असंखी

पंचिदियपञ्चायदस्स सण्णिपंचिदियपञ्चपसु उष्यञ्चिय अमाहिदसरीरस्स अंतोकोडा-  
कोडिद्विदिवंधणसत्तीए अमायदो । तस्य दोसु विम्भहसमपसु असण्णिपंचिदियनहण्ण  
द्विसतादो सरिसमहियमूणं पि बवदि । तस्य एसो जहण्णद्विसंतदो हेहा बंधा-  
वेदव्वो । एवं बंधिय विदियविग्गहे बहमाणस्स मिच्छच्च-बारसकसाय मय-दुग्गज्जणं जहण्ण  
द्विदिबिहत्ती । एवरि मिच्छच्चस्स सागरोबमसहम्सं पल्लिदो० संखे० भागेणुणं ।  
सेसाणं सागरोबमसहम्सस्स चचारि सचमागा पल्लिदो० संखे० भागेणुणा । सरीरे  
महिदे जहण्णसामिचं किण्ण दिज्जदि ? ए, तस्य अंतोकोडाकोडिसागरोबममेचद्विदि  
बंधुबंधमादी । सचणोकसायाण्णमेवं चेव । एवरि असण्णिपंचिदियपरिमसमए सागरो  
बमसहस्सस्स चचारि सचमागो पल्लिदो० संखेज्जदिभागेणुणो बंधावस्सियादिककंत-  
समए चेव कसायद्विसंतकम्मं असण्णिपंचिदियपामोग्गनहण्णे पडिच्छिय पुणो तस्येव  
बंधोच्छेत्तं करिय खिरपसुप्यण्णपडमसमयप्यहुदि पडिदकत्तपयडीओ बंधानिय पुणो  
अप्यप्यणो पडिवनत्तपयडिबंधगद्धानं परिमसमए जहण्णद्विदिबिहत्तिसामिचं होदि ।  
तिरिनत्तगद्दपडिदकत्तपयडिबंधगद्दामो तिरिकत्तेसु चेव मात्तिय नेरूपसुप्यण्णपडमसमए

पंचेन्द्रियकी स्थितिका ही बांधता है क्योंकि जो अस्थी पंचेन्द्रिय पर्यायसे आकर संधी  
पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके अंदर मध्य करनेके पूर्वसमय तक अन्तःकोडाकोडी स्थितिके  
बन्ध करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है । फिर भी वहाँ बिम्बके दो समयमें अस्थी पंचेन्द्रियके  
अपन्य स्थितिसत्त्वके समान या उससे हीन या अधिक स्थितिका भी बन्ध करता है पर इसके  
अपन्य स्थितिसत्त्वसे हीन स्थितिका बन्ध करना चाहिये । इस प्रकार बांधकर जो दूसरे बिम्बमें  
स्थित है उस नारकीके मिष्णात्त्व वाह्य कणाय, मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिबिम्बित होती  
है । इतनी विवेचता है कि मिष्णात्त्वकी अपन्य स्थितिबिम्बित पस्यके संख्यातर्षे मागसे म्यून  
इकार सागरप्रमाण होती है । तथा शेष कर्मोंकी इकार सागरके सात भागोंमेंसे पस्योपमक  
संख्यातर्षे मागसे म्यून चार भागप्रमाण होती है ।

शंका—बिस नारकीने शरीरको ग्रहण कर लिया है उसे अपन्य स्थितिके स्वामी क्यों  
करी क्या ?

समाधान—मरी क्योंकि नारकीयोंके शरीरके ग्रहण करने पर अन्तः कोडाकोडी सागर  
प्रमाण स्थितिके पाया जाता है ।

सात नोकरायोंकी अपन्य स्थितिबिम्बित इसी प्रकार होती है । किन्तु इतनी विवेचता है  
बिससे अस्थी पर्यायके रहते हुए एक इकारके सात भागोंमेंसे पस्योपमके संख्यातर्षे भागसे म्यून  
चार भाग प्रमाण कयावकी अपन्य स्थितिके बन्ध किया । पुनः बन्धावलिप्रमाण कसके व्यतीत  
होनेके पश्चात् उत्पन्न समयमें ही अस्थी पंचेन्द्रियके योग्य कणायके अपन्य स्थितिसत्त्वके  
विबद्धित नाकरायमें संक्रमण किया पुनः जो उस विबद्धित प्रकृतिकी वही अस्थी पंचेन्द्रिय  
पर्यायके अन्तिम समयमें बन्धव्युत्पत्ति करके नाभिक्योंमें उत्पन्न हुआ । वह यदि वहाँ उत्पन्न  
होनेके पहले समयसे सेर प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बांधता है तो इसके अपनी-अपनी प्रतिपक्ष  
प्रकृतियोंके बन्धकाजके अन्तिम समयमें अपन्य स्थितिबिम्बितका स्वामित्व प्राप्त होता है ।

शंका—तिर्यचगति सम्बन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बांधकाजको तिर्यचोंमें ही बिनाकर का

जहण्णट्टिदिसामिच्चं किण्ण दिज्जदि ? ए, तिरिक्खगइ पडिक्खवंगइइहिंतो एिरयगइपडि-  
क्खवंगइइहिंतो बहुवत्तादो । तेसि बहुअरं कुदो एण्वदे ? एदमहादो चेन जहण्ण-  
सामिच्चुच्चारणादो । एवं पढमपुढवि-देव०-भवण०-वाण०देवे त्ति । णचरि भवण०-  
वाण० सम्मत्तस्स सम्मामिच्चत्तभंगो ।

❀ एवं सेसासु गदीसु अणुमग्गिदच्चं ।

§ ४५६ एवं जइवसहाइरिएण सूचिदअत्थस्स उच्चारणाइरियक्खवाणं वत्त-  
इस्सामो । ओघो ण वुच्चदे चुण्णिमुत्तेण पखुविदत्तादो भेदाभावादो च ।

§ ४५७, विदियादि जाव छट्टि त्ति मिच्चत्त-वारसकसाय-एवणोक० ज०  
कस्स ? अण्णदरस्स जो उक्कस्साउट्टिदीए उवण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसम्मत्तं पडि-  
वज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अण्णताणुवधिचउक्कं विसंजोइय सम्मत्तेणव अण्णत्तेणो  
उक्कस्साउत्तमणुपालिय चरिमसमयणिप्पिदमाणसम्मादिट्ठी तस्स जहण्णट्टिदिविहत्ती ।  
सम्मामि०-अणंताणु०४ एिरओघ । सम्मत्तस्स सम्मामिच्चत्तभंगो ।

नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही विवक्षित प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका स्वामित्व क्यो नहीं प्राप्त होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि तिर्यचगति सम्बन्धी प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धनकालसे नरकगति सम्बन्धी प्रतिपन्न प्रकृतियोंका बन्धक काल बहुत है ।

**शंका**—नरकगति सम्बन्धी प्रतिपन्न प्रकृतियोंका बन्धकाल बहुत है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—इसी जघन्य स्वामित्वसम्बन्धी उच्चारणसे जाना जाता है ।

इसी प्रकार पद्मली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्-मिथ्यात्वके समान है । अर्थात् भवनवासी और व्यन्तर देवोंके सम्यक्त्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

❀ इसी प्रकार शेष गतियोंमें विचार कर समझना चाहिये ।

§ ४५६ इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्यान किया है, उसे बताते हैं फिर भी यहाँ पर उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये ओघका कथन नहीं करते हैं, क्योंकि उसका कथन चूर्णिसूत्रके द्वारा किया जा चुका है तथा उससे इसमें कोई भेद भी नहीं है ।

§ ४५७ दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवीतक मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायों की जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको लेकर द्वितीयादिक पृथिवियोंमें उत्पन्न हुआ है और अन्तमुर्हूर्त कालके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः अन्तमुर्हूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके सम्यक्त्वके साथ ही अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुका पालन करके नरकसे निकला है उस सम्यग्दृष्टिके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है । तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।





जो वट्टमाणो तस्स जहण्णद्विदिविहृत्ती । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं  
णिरओघं ।

§ ४६०. पंचिदियतिरिक्ख - पंचि०तिरिक्खपज्जत्ता - पंचि०तिरि०जोणिणीसु  
मिच्छत्ता-वारसक०-भय-दुगुंखाणं ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तिय-  
कम्मेण पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो तस्स पढमविदियविग्गहे वट्टमाणस्स जहण्ण-  
द्विदिविहृत्ती । सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्ता०-अणंताणु०चउक्काणं तिरिक्खोघं । सत्ताणोक०  
ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मेण पंचिदियतिरिक्खेसु उव-  
वण्णो एवमुववज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय से काले अप्पणो वंधमाढविहृदि चि तस्स  
जहण्णद्विदिविहृत्ती । एवरि पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्ता-  
भगो । पंचि०तिरि०अपज्ज० पंचि०तिरि०जोणिणीभंगो । एवरि अणंताणु०चउक्कस्स  
मिच्छत्ताभंगो । एव मणुसअपज्ज०-सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्जत्ते चि ।

§ ४६१ मणुसिणीसु अट्टणोक० ज० कस्स ? अण्ण० अणियद्विक्खवयस्स  
चरिमद्विद्विखंडए वट्टमाणस्स जहण्णद्विदिविहृत्ती । सेसमोघं ।

§ ४६२ जोइसि० विदियपुढविभगो । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जो रि  
मिच्छत्ता० ज० कस्स ? अण्ण० जो दो बारे कसाए उवसामेदूण चउवीससत्तकम्मिओ

के अन्तिम समयमें जो विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मि-  
थ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है ।

§ ४६०. पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें  
मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई  
एक वादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्ति कर्मके साथ पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ ।  
पहले और दूसरे विप्रहर्षमें विद्यमान उस जीवके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।  
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यंचोंके  
समान है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक वादर  
एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ इस  
प्रकार उत्पन्न होकर और अन्तमुँहूर्त कालतक वहाँ रहकर तदनन्तर कालमें अपने बन्धका  
आरम्भ करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय योनिमती  
तिर्यंचोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें  
पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी  
चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय  
अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ४६१. मनुष्यनिर्योमें आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अन्तिम  
स्थितिकाण्डकर्म विद्यमान किसी अनिवृत्तिकरण चपकके होती है । शेष कथन ओघके समान है ।

§ ४६२ ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम  
प्रैवेयक तकके जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? दो बार कषायोंको

सकससावद्विद्विहृतीर अप्यप्यणो विभाणेषु उच्यते चरिमसमयमपिष्पिद्दमाणो तस्त  
 महण्णद्विद्विहृती । सम्मत्-सम्मापि० अर्पताण० चत्तकाणं पिरभोपर्मणो । बारसक०  
 पयणो० अ० कस्त ? अण्ण० जो संजदो महासंमवेण चससमसेहिं चडिय हेहा  
 भोपरिब दसणमोहणीयं खुविय उक्कससाचपण अप्यप्यणी विभाणेषु उच्यते चरिमसमयमपिष्पिद्दमाणस्त  
 महण्णद्विद्विहृती । अणुहिसादि जाव सण्णहे धि पर्य  
 चेष । णवरि सम्मापि० मिच्छत्तर्मणो ।

§ ४६३ एइ दिपसु मिच्छत्त-बारसकसाय-भय-दुगु छा-सम्मापिच्छत्तार्णं  
 तिरिक्खोर्षं । अणुताणु चत्तक० गिच्छत्तर्मणो । सत्तणो० अ० कस्त ? सो  
 एइदिभो इदसमुत्पत्तियं कात्थ सपिठ्ठिं वंपिय अंतोमुहुचमच्छिय से काले अप्यप्यणो  
 वंपमाववेहदि चि तस्त महण्णद्विद्विहृती । सम्मत्० सम्मापिच्छत्तर्मणो । एव  
 सण्णएइ दिप-वंपकाप चि ।

§ ४६४ ओराशिपमिस्स० तिरिक्खोर्षं । णवरि अणुताणु० चत्तक० मिच्छत्त  
 र्मणो । वेरुच्चिय० सोहम्मर्मणो । णवरि सम्मत्तस्त सम्मापिच्छत्तर्मणो ।

§ ४६५ वेरुच्चियमिस्स० मिच्छत्त० अ० कस्त ? अण्ण० जो महासंमवेण

अप्यप्यणो कर जो कोई बीब बीबीस कर्मोंकी सत्तावासा होता हुआ उत्पन्न आयुक्त लकर अपम  
 अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके बाह्यसे निकलनेके अन्तिम समयमें अपम्य स्थितिबिम्बित  
 होती है । सम्यक्त्व सम्यग्मिध्यात्व और अन्ततानुबन्धी अनुष्णका मंग अपम्य स्थितिबिम्बित सामान्य  
 नायकियोंके समान है । बारह कयाव और नौ नोकयावोंकी अपम्य स्थितिबिम्बित किसके होती  
 है ? जो कोई संयत धरासंमव अणुमभेयी पर चक्कर और नीचे उतर कर तथा दर्शनमोहनीयका  
 रूप करके उत्पन्न आयुके साथ अपने अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके बाह्यसे निकलनेके  
 अन्तिम समयमें अपम्य स्थितिबिम्बित होती है । अनुष्णसे लेकर सर्वावसिद्धितक इसी प्रकार  
 कान करमा चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिध्यात्वका मंग मिध्यात्वके  
 समान है ।

§ ४६६ एकेन्द्रिबोमिं मिध्यात्व, बारह कयाव मय पुगुप्सा और सम्यग्मिध्यात्वकी अपम्य  
 स्थितिबिम्बित सामान्य त्रिषैषोंके समान है । अन्ततानुबन्धी अनुष्णका मंग मिध्यात्वके समान  
 है । सात नोकयावोंकी अपम्य स्थितिबिम्बित किसके होती है ? जो एकेन्द्रिब इतसमुत्पत्तिक  
 होकर, समान स्थितिको बांधकर और अन्तमु हूर्त काल तक रह कर तदनन्तर समयमें अपने अपने  
 पन्धके आरम्भ करेगा उसके अपम्य स्थिति बिम्बित होती है । सम्यक्त्वका मंग सम्यग्मिध्यात्वके  
 समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पांच स्वावरकाव बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ४६७ औद्वरिअमिअकमयोगी बीबोंके अपम्य स्थितिबिम्बित सामान्य त्रिषैषोंके समान  
 है । इतनी विशेषता है कि इनके अन्ततानुबन्धी अनुष्णका मंग मिध्यात्वके समान है । वैश्विक  
 अणुमभेयोंमें सोधमेंके समान मंग है । इतनी विशेषता है कि इसमें सम्यक्त्वका मंग सम्यग्मिध्यात्व  
 के समान है ।

§ ४६८ वैश्विक मिअकमयोगी बीबोंमें मिध्यात्वकी अपम्य स्थितिबिम्बित किसके होती

उवसमसेहिं चडिदूण देवेसु उववण्णो से काले सरीर पज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्ण-  
ट्टिदिविहती । अणंताणु० चउक्क० ज० कस्स ? अण्ण० जो अट्ठावीससंतकम्मिओ  
संजदो देवेसुववण्णो से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्णट्टिदिविहती ।  
वारसक०-भय-दुगुंळं० मिच्छत्तभंगो । एवरि खइयसम्माइठी देवेसु उप्पाएदव्वो ।  
सम्मत्त-सम्मामि०-सत्ताणोक० पढमपुढविभंगो ।

§ ४६६ आहार० मिच्छत्त-समत्त-सम्मामि० ज० कस्स ? अण्ण० जो चउवीस-  
संतकम्मिओ चरिमसमयआहारसरीरो तस्स जहण्णट्टिदिविहती । एवं वारसक०-एव-  
णोक० । एवरि खइयसम्मादिट्टिस्स वत्तव्वं । अणंताणु० ४ ज० कस्स ? अण्ण०  
अट्ठावीससंतकम्मियस्स । एवमाहारमिस्स० । एवरि से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति  
तस्स जहण्णट्टिदिविहती ।

§ ४६७ कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-एणणोक० ज० कस्स ? अण्ण०  
जो बादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मोण विदियं विग्गह गदो तस्स जहण्णट्टिदिविहती ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एवरि सम्मामि० उव्वेत्तलणाए कायव्वं ।

§ ४६८ वेदाणुवादेण इत्थिवेदे मणुस्सिणीभंगो । एवरि सत्ताणोक०-चत्तारि

है ? जो यथासभव उपशमश्रेणी पर चढ़कर देवोंमें उत्पन्न हुआ और तदन्तर कालमें शरीर पर्याप्ति  
को प्राप्त हागा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति  
विभक्ति किसके होती है ? अट्ठाईस सत्कर्मवाला जो कोई एक संयत जीव देवोंमें उत्पन्न होकर तदन्तर  
समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इनके वारह कषाय,  
भय और जुगुप्साका भग मिथ्यात्वके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति कहते समय ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीवको देवोंमें उत्पन्न कराना चाहिये । तथा  
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंका भग पहली पृथिवीके समान है ।

§ ४६६ आहारककाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो चौवीस सत्कर्मवाला जीव आहारकशरीरी हुआ उसके  
अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार वारह कषाय और नौ नोकषायोंका  
कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति ज्ञायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीवके कहनी चाहिये । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती  
है ? अट्ठाईस सत्कर्मवाले किसी एक जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति  
होती है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
जो तदन्तर कालमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४६७ कर्मण काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य  
स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक बाहर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ  
द्वितीय विग्रहको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्य-  
ग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति उद्वेलनामें कहनी चाहिये ।

§ ४६८ वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें मनुष्यतीके समान भंग है । किन्तु इतनी

संमलण० जह० कस्त ? अण्ण० अणियद्विखपयस्त सबदपरिमसमए बहमाणस्त  
 बहण्णद्विदिविहरी । एवं णसु स० । एवरि इत्यिबेद० परिमद्विद्विखंडए बहमाणस्त ।  
 पुरिस० वंषिदियमंगो । एवरि चचारिसमलण-पुरिस० ब० कस्त ? अण्ण० सवेद  
 परिमसमए बहमाणस्त जहण्णद्विदिविहरी । इत्थि-एसु स० ज० कस्त ? अण्ण०  
 अणियद्विखपयस्म परिमद्विद्विखंडए घट्टमाणस्त । अवगद० मिच्छ०-सम्म०-सम्माभि०  
 ज० कस्त ? अण्ण० ओ चचवीससंतकम्मिओ उवसमसद्विमारुहिय ओपरमाणो स  
 कन्हे सवेदी होइदि चि तस्त जहण्णद्विदिविहरी । एवमद्वकसाय इत्थि०-णसु स० ।  
 एवरि स्वइय० दिद्विस्त वचम्वं । सचणोक०-चचारिसंम० ओपं ।

§ ४६९ कसापाणुवादेय कोषक० ओपं । एवरि अणियद्विम्मि परिमसमय  
 कोषकसायम्मि चदुप्पं संमलणायं जहण्णद्विदिविहरी । एवं माण० । एवरि तिहं  
 संमलणायं परिमसमयमाणवेदयस्त जहण्णद्विदिविहरी । एवं माय० । एवरि दोणं  
 संमलणायं परिमसमयमायवेदयस्त जहण्णद्विदिविहरी । अकसा० मिच्छव-सम्मच  
 सम्मायिचवत्त० चह० क० ? अण्ण० चचवीससंतकम्मिओ ओ स काशे सकसाभी

विशेषता है कि सात नोकपाय और चार संवत्तनकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके होती है ? सवेद  
 भागके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अनित्पित्तरय्य रूपके अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है ।  
 इसी प्रकार नपुंसकवेदीके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तिम स्थितिकण्ठके  
 विद्यमान बीषके बीषेदकी अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । पुरुत्वकी पंचेन्द्रके समान मंग है ।  
 किन्तु इतनी विशेषता है कि चार संवत्तन और पुरुत्वकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके होती  
 है ? सषट् भागके अन्तिम समयमें विद्यमान किसी बीषके अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है ।  
 स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके होती है ? अन्तिम स्थितिकण्ठमें  
 विद्यमान अन्यतर अनित्पित्तरय्य रूपके अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । अपगतवर्गमें मिष्पत्त्व,  
 सम्यक्त्व और सम्मग्गिमप्पात्त्वकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके होती है ? चौबीस सत्कर्म  
 बाह्य जो कोई बीष उपज्जमावधी पर चक्कर और उतरता हुआ उदन्तर कक्षमें सवेदी होगा  
 कस्के अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । इसी प्रकार आठ कयाव बीषेद और गपुंसकवेदकी  
 अपन्य स्थितिबिमत्ति जाननी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी अपन्य स्थितिबिमत्ति  
 चायिकसम्पगद्विहके रहनी चाहिये । तथा सात नोकपाय और चार संवत्तनकी अपन्य स्थिति-  
 बिमत्ति ओपके समान है ।

§ ४७९ कयावमार्गवाके अनुवासे कोषकयायमें अपन्य स्थितिबिमत्ति ओपके समान  
 है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनित्पित्तरय्यमें कोष कयावके अन्तिम समयमें चार संवत्तनों  
 की अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । इसी प्रकार मानकयायमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि मानवेदके अन्तिम समयमें तीन संवत्तनोंकी अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है ।  
 इसी प्रकार भावा कयावमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मायावेदके अन्तिम  
 समयमें दो संवत्तनोंकी अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । अकयायी बीषमें मिष्पत्त्व सम्यक्त्व  
 और सम्मग्गिमप्पात्त्वकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके होती है ? जो कोई एक बीष चौबीस

होहदि त्ति तस्स जह० द्विदिविहत्ती । एव वारसक०-एवणोक० । एवरि खइय०दिटीसु वत्तव्वं । एवं जहाक्खाद० ।

§ ४७०. मदि-सुदअण्णाणीणं तिरिक्खोघ्र । एवरि सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० एइंदियभंगो । एवमसण्णि० । विहंगणाणीसु मिच्छत्त०-सोलसक०-एवणोरु० ज० कस्स ? अण्णद० जो उवरिमगेवज्जम्मि मिच्छत्तं गदो चरिमसमयणिप्पिटमाणओ तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सम्मत्त०-सम्माभि एइंदियभंगो ।

§ ४७१. आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघं । एवरि सम्माभि० जह० खवणाए दायव्वं । एवं संजद०-ओहिदंस०-सम्मादिद्वि त्ति । मएपज्जव० एव चेव । एवरि इत्थि०-एवुंस० पुरिस०भंगो ।

§ ४७२. सामाइय-छेदो० ओहिभंगो । एवरि लोहसजल० जह० कस्स ? अण्ण० चरिमसमयम्मि अण्णियट्टिक्खवयस्स । परिहार० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-अणंता-णु०चउक्क० ओहिभंगो । वारसक०-एवणोरु० जह० क० ? जो खइयसम्मादिटी जहासंभवेण उवसमसेहिं चट्ठिय ओयरिय परिणामपच्चएण परिहार० जादो से काले सत्कर्मवाला तदनन्तर कालमें सकपायी हागा उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके कहनी चाहिये । इसी प्रकार यथाख्यातसयतोंके जानना चाहिये ।

§ ४७० मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानीके सामान्य तिर्यचोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति एकेन्द्रियोंके समान होती है । इसी प्रकार असह्यी पचेन्द्रियके जानना चाहिये । विभगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक उपरिमगैवेयकमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके वहासे निकलनेके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

§ ४७१ आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति केवल क्षपकके कहनी चाहिये । इसी प्रकार सयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मन पर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेद और नपुसकवेदका भंग पुरुषवेदके समान है ।

§ ४७२ सामायिक और छेदोपस्थापना सयममें अवधिज्ञानके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसंवलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी अनिवृत्ति-करण क्षपक जीवके अन्तिम समयमें लोभ संवलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । परिहार विशुद्धिसयममें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति अवधिज्ञानियोंके समान होती है । तथा बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यथायोग्य उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उतरकर परिणामोंके अनुसार परिहारविशुद्धिसयत हो गया और तदनन्तर कालमें क्षपक

स्ववगसेद्विभ्रमिमुहो होइदि चि तस्स ब्रह्णाद्विद्विहरी । एवं संभ्रदामंजद० ।  
 गवरि से काले सत्रम पडिबज्जिदूण अंतोमुहुणेण सिज्भहदि चि तस्स ब्रह्णाद्विद्वि  
 विहरी । सुहुमसांपराइय० अकसाइमंगो । गवरि ओमसंजद० ओष । असजद०  
 तिरिभलोच । एवरि मिच्छत्त०-सम्मामि० औषं ।

§ ४७३ तिरिण्णत्त० तिरिक्खोषं । एवरि किण्ह-णील्लोस्सासु सम्पच०  
 सम्मामिच्छत्तमंगो । अयांताणु० चत्तक० ओषं । संसलोस्साणं परिहार० मंगो । अमव०  
 छम्भीसपयवीण मदिअण्णाभिभगो ।

§ ४७४ स्वइय० एकपत्रीस० ओहिमंगो । वेदयसम्मादि० मिच्छत्त सम्मामि०  
 मगताणु० चत्तकं ओषं । गवरि सम्मामि० चम्बेण्णणाए णत्थि । सम्मत्त-वारसक०  
 एवणोक० अ० कस्स ? अण्ण० चरिमसमयअक्खीणदंसणयोइणीयस्स ।

§ ४७५ उवसम० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-एवणोक० अइ०  
 क० ? अण्ण० जहासंमवेण उवसमसेदिं चदिय सम्बुक्कस्समंतीमुहुचत्तमिच्छय से  
 काले वेदगं पडिबज्जिहदि चि तस्स ब्रह्णाद्विद्विहरी । अयांताणु० चत्तक० अ०

मेथीके सन्मुख होगा इस परिहाएविद्युत्संभवके अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । इसी प्रकार  
 संयतासंयतके बानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो संयतासंयत तदनन्तर कालमें  
 संभ्रमके प्राप्त होकर अन्तमु हुर्त कालके द्वारा सिद्ध होगा उसके अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है ।  
 सूक्ष्मसांपरायिक संभव बीबीके कयायउहित बीबीके समान अपन्य स्थितिबिमत्ति होती है । किन्तु  
 इतनी विशेषता है कि इनके सामंस्वरानकी अपन्य स्थितिबिमत्ति आपके समान है ।  
 असंभवके सामान्य विषयोंके समान सब कर्मोंकी अपन्य स्थितिबिमत्ति बाननी चाहिये । किन्तु  
 इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिबिमत्ति आपके  
 समान है ।

§ ४७६ कृप्यादि तीन संयताओंमें सामान्य विषयोंके समान अपन्य स्थितिबिमत्ति होती  
 है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृप्य और नीलकण्ठवामें सम्यक्त्वअ भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान  
 है । तथा अमन्तलुक्खी अणुत्तकी अपन्य स्थिति ओषके समान है । शेष संयताओंमें  
 अपन्य स्थितिबिमत्ति परिहाएविद्युत्संभवके समान है । अदभ्योमें इच्छीस पट्टितियोंकी अपन्य  
 स्थितिबिमत्ति मत्त्वकागिपोंके समान है ।

§ ४७७ चायिकसम्भ्रणद्विषोमें श्रीम प्रद्विषोकी अपन्य स्थितिबिमत्ति अचधिदानियोंके  
 समान है । बरकसम्भ्रणद्विषोमें मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुक्खी अणुत्तकी अपन्य  
 स्थितिबिमत्ति आपके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी अपन्य  
 स्थितिबिमत्ति उल्लेखनामें नहीं होती, क्योंकि यहाँ बसकी उल्लेखना संभव नहीं है । सम्यक्त्व बाह्य  
 कयाय और नां मात्त्वियोंकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके हाथी है ? जिसन दण्डनमाइतोयका  
 चय नहीं किया है ऐसे किसी बीबीके दण्डनमाइतोयके चय हानक अन्तिम समयमें एक पट्टितियोंकी  
 अपन्य स्थितिबिमत्ति हाथी है ।

§ ४७८ उवसमसम्यक्त्वमें मिथ्यात्व सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व बाह्य कयाय और नी  
 लोकायोंकी अपन्य स्थितिबिमत्ति किसके हाथी है ? यथासंभव जो अइ बीबी उवसममेथी पर  
 अद्वर और सबसे उत्कृष्ट अन्तमुहुने अन्ततक वहाँ रहकर तदनन्तर समयमें बरक सम्यक्त्वको प्राप्त हागा

कस्स ? अण्ण० दसणमोहउवसामयस्स से काले वेदयं पडिवज्जहिदि त्ति तस्स ज० द्विदिविहती । अथवा विसजोएमाणस्स एयद्विदिदुसमयकालमेत्ते संसे ।

§ ४७६. सासण० सच्चपयडीणं जहण्ण कस्स ? अण्ण० जो चारित्तमोहउव-  
सामओ सासणं पडिवण्णो से काले मिच्छत्तं गाहदि त्ति तस्स ज० द्विदिविहती ।  
सम्मामिच्छा० मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक्क० ज० कस्स ? अण्ण० चउवीससंतकम्मियस्स  
सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स चरिमसमयसम्मामिच्छादिद्विस्स । सम्मत्त-सम्माभि० जह०  
कस्स ? अण्ण० सागरोवमपुधत्तसंतकम्मणे सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय जो चरिमसमय-  
सम्मामिच्छादिदी जादो तस्स० जह० विहती । अणंताणु० चउक्क० ज० कस्स ?  
अण्ण० अट्टावीससंतकम्मिओ चरिमसमयसम्मामिच्छादिदी तस्स ज० विहती ।  
मिच्छादि० एइ दियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

❀ [ कालो । ]

§ ४७७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्दो सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण—

उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? दर्शनमोहनीयका उपशमक जो कोई जीव तदनन्तर कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होगा उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अथवा विसं योजना करनेवाले जीवके एकस्थितिके दो समय कालप्रमाण शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४७६ सासादन सम्यक्त्वमे सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चारित्रमोहनीयकी उपशमना करनेवाला जो कोई जीव सासादनको प्राप्त हुआ है और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होगा उसके सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यग्-मिथ्यात्वमें मिथ्यात्व, चारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सागरपृथक्त्वप्रमाण सत्कर्मवाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जो अन्तिम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके सम्यग्मिथ्या वके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । मिथ्यादृष्टिके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । अनाहारकोंके कार्मणकाययोगियोंके समान भंग है ।

इस प्रकार स्वामित्वाणुगम समाप्त हुआ ।

❀ कालका अधिकार है ।

§ ४७७ कालाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा—

⊗ मिच्छत्तस्स उहस्सद्विदिसंतकम्मिभो केवपिरं काळावो होदि ?

§ ४७८ एस्य मिच्छत्तमाहणेण सेसपयद्विपदिसेहो कट्ठो । उहस्समाहणेण बहण्णद्विदिपदिसेहो कट्ठो । सेस सुगमं ।

⊗ जहण्णेण एगस्समभो ।

§ ४७७ इदो ? एगसमयमुहस्सद्विदिं वंधिय विदियसमए पद्विहगस्स उहस्स द्विदीए एगसमयकल्लुकलंमादो । विदियसमए द्विदिखंबयमादेख विखा कयमुहस्सच किट्ठदि ? ख अचद्विदिगल्लुआए एगसमए गस्सिदे उहस्सचामावादी । उहस्सद्विदि समयपबदस्स एयो वि खिसेगो ख गस्सिदो; सचवाससहस्समेवमावाहाए उवरि वस्स अषट्ठाणादो । गस्सिदणिसेगो वि धिराखसतकम्मस्स । सम्हा आप द्विदिखंबयमादेख ए पद्वि वाप उहस्सद्विदिसतकम्मेष होद्विअमिदि ? ए एस दोसो, बहण्णद्विदिअद्दाअद्दो खिसेगपहाणो । तं कथं गम्भदे ? कावसंभज्जणस्स बहण्णद्विदिअद्दाअद्दो वेमासा वंतोसुहुच्छा वि सुचपिदेसावो । उहस्सद्विदी पुज कालपहाणा तेण भिसेगेण विणा एगसमए गस्सिदे वि उहस्सच किट्ठदि । तवो बहण्णकालस्स सिद्धमेगसमयच ।

⊗ मिष्यात्वक्षी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवत्त्वे बीजका कितना काल है ?

§ ४७८ वहाँ सूत्रमें मिष्यात्व पहले प्रत्यक्ष करनेसे शेष उत्कृष्टियोंका निषेध कर दिया है । उत्कृष्ट पहले प्रत्यक्ष करनेसे अपन्य स्थितिका निषेध कर दिया है । शेष कथन सुगम है ।

⊗ अपन्य काल एक समय है ।

§ ४७९ शंका—अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि एक समयतक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संकल्पसे व्युत्पन्न प्राप्त हुए बीजके उत्कृष्ट स्थितिका एक समय प्रमाण प्राप्त पाया जाता है ।

शंका—दूसरे समयमें स्थितिका अक्षयकालके बिना स्थितिके उत्कृष्टत्वका मास कैसे हो जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि अजास्थितिगलमाके द्वारा एक समयके गल जाने पर स्थितिमें अक्षयत्व नहीं रहता है ।

शंका—उत्कृष्टस्थितिप्रमाण्य समयप्रवृत्त एक ही निषेध नहीं गलता है, क्योंकि सात हजार वर्षप्रमाण्य आशामाके बाद निषेध पाया जाता है और जो निषेध गलता ही है वह सत्तामें स्थित माधीन सत्कर्मका है अतः अक्षयक स्थितिका अक्षयकाल पतन नहीं होता है तबतक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई शेष नहीं है, क्योंकि अपन्य स्थितिअक्षयके निषेधप्रधान है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—शेष संवत्तनअ अपन्य स्थितिअक्षयके अन्तमु हर्तं कम्म हो माहीना प्रमाण है इस सूत्रके निर्देशसे जाना जाता है । किन्तु उत्कृष्ट स्थिति अक्षयप्रधान है, इसलिय निषेधके बिना एक समयके गल जाने पर भी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्टत्वका मास हा जाता है, अतः उत्कृष्ट स्थितिका अपन्यअक्षय एक समय है यह बात सिद्ध होजाती है ।



\* उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४८० कुदो ? दाहद्विदिं वंधमाणो उक्त्सेसदाहं गंतूण उक्त्सेसद्विदिं वंधदि; तिस्से वंधकालस्स उक्त्सेण अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो ।

\* एवं सोलसकसायाण ।

§ ४८१ मिच्छत्तस्सेव सोलसकसायाणमुक्त्सेसद्विदिकालो जहण्णेण एगसमओ,

**विशेषार्थ—**यहा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जपन्य रूपसे कितने काल तक पाई जाती है इसका विचार किया है। वात यह है कि जब कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिके वन्धके योग्य उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर विशुद्धि को प्राप्त होने लगता है तो उसके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व एक समय तक देखा जाता है, क्योंकि दूसरे समयमें उसमेंसे एक समय कम हो जाता है, इसलिये उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता है। इस विषयमें शंकाकारका कहना यह है कि एक तो स्थितिकाण्डकघातसे स्थिति कम होती है और दूसरे प्रथमादि निपेकोंके गल जानेसे स्थिति कम होती है। किन्तु मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्ध होनेके दूसरे समयमें न तो उसका स्थितिकाण्डकघात ही होता है, क्योंकि वन्धावल सकल कारणोंके अयोग्य होती है ऐसा नियम है और न प्रथमादि निपेक ही गलते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आवाधाकाल सात हजार वर्ष है और आवाधाकालमें निपेक रचना नहीं होती, अतः सात हजार वर्षके समयोंको छोड़ कर ही प्रथमादि निपेकों का सद्भाव पाया जाता है। यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय और वादमें निपेक गलते हैं पर वे नवीन स्थितिवन्धके न होकर प्राचीन सत्कर्म के होते हैं, अतः जिस समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है उस समय उसकी उत्कृष्ट स्थितिका न तो स्थितिकाण्डक घात ही हो रहा है और न प्रथमादि निपेक ही गलते हैं यह सच है, फिर भी उत्कृष्ट स्थिति निपेकप्रधान न होकर कालप्रधान होती है, अतः दूसरे समयमें सत्तर कोडाकोडी सागर में से एक समय कम होजानेके कारण उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता। हा जघन्य स्थिति अवश्य निपेकप्रधान होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो क्रोधसज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त कम दो महीना नहीं बन सकती है, क्योंकि यह क्रोधसज्वलनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी स्थिति है जो कि उसी समय मान सज्वलनरूपसे सक्रमित हो जाती है। अतः कालकी अपेक्षा वह क्रोधरूप एक ही समय रही पर उस समय उस अन्तिम फालिमें निपेक अवश्य अन्तमुहूर्त कम दो माहके समय प्रमाण होते हैं और इसलिये इस अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त कम दो माह कही जाती है। उक्त कथनका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थितिमें कालकी प्रधानता है और जघन्य स्थितिमें निपेकोंकी। अतः सत्तर कोडाकोडी सागरमें से एक समयके घट जाने पर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती।

\* उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है ।

§ ४८०. शंका—उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त क्यों है ?

**समाधान—**क्योंकि, दाहस्थितिको बंधनेवाला जीव उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है तब उस उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकालका उत्कृष्ट प्रमाण अन्तमुहूर्त है।

\* इसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये ।

§ ४८१ मिथ्यात्वके समान सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय

उक्तस्तेण अंतोमुद्रुत्तमेयो; परपयदीदो संकतद्विदीय चिन्ना सगुह्मस्सर्बं च अस्सिदूण उक्तस्सद्विदिगाणादो ।

✽ णयुत्तयवेद-अरवि-सोग भय-मुगुद्व्याणनेव शेय ।

§ ४२२. एगसमयमेत्तद्ग्रहणकालेण अंतोमद्रुत्तमचुक्कस्सकालेण च सोमस कसापरित्तो मेदाभावादो । कसापउक्तस्सद्विदीय रंभाबक्षियादिक्कंठाए अप्पण्णो बपरि संकंठाए उक्तस्सद्विदि पटिभजमाणार्ण णोक्कसायाणं कय कालेण समाण्णा १ ए, उक्तस्ससंभेण सह अभिक्कत्तंभाणं संजकमणेव पटिब्धिक्कत्तंउक्तस्सद्विदिसतक्कम्माण कालेण समाण्णाचिरोदादो ।

आर उक्तस्सकाल अन्तमुद्रुत्तममाय है, क्योंकि यहाँ पर प्रकृतिसे संक्रमण हुआ प्रत्यक्ष होनावासी स्थितिमें जोड़कर अपना उक्तस्स कल्पकी अपेक्षा ही उक्तस्स स्थितिका प्रत्यक्ष किया है ।

विशेषार्थ—पहले मिथ्यात्वकी वक्तृत्व स्थितिमें उक्तस्स कालका निर्देश करत समय जो टीकामें बाहू कल्प आभा है वह संकलपपर्य परिवर्तनमें आया है । बाहूका सुलभाय ताप या संताप होता है वा कि संसृष्टके होने पर होता है अतः यहाँ बाहूसे संकलपर्य परिवर्तनमें का प्रत्यक्ष किया है । वक्तृत्व स्थितिमें कल्पके प्रयात्तक पक्ष संकलपर्य परिवर्तन अभिकृते अधिक अन्तमुद्रुत्त कालक ही बात है अतः वक्तृत्व स्थितिका काल अन्तमुद्रुत्त क्या है । क्योंकि उक्तस्स संकलपर्य परिवर्तन कर्म से कर्म एक समय तक और अधिक में अधिक अन्तमुद्रुत्त पाल तक होते हैं, अतः सोलह कर्मायोंकी वक्तृत्व स्थितिमें अप्रत्यक्ष एक समय और उक्तस्सकाल अन्तमुद्रुत्त क्या है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि मिथ्यात्व और सातह कर्मायोंकी वक्तृत्व स्थिति कल्पसे ही प्राप्त होती है संक्रमणसे नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें संश्रित ज्ञानवाणी सम्पत्त्य और सम्पत्तिकल्पकी वक्तृत्व स्थिति यदि शरार कर्मायोंकी सागर हो और सोलह कर्मायोंमें संक्रमित ज्ञानवाली अन्य प्रकृतियोंकी स्थिति अज्ञान का कर्मायोंकी सागर हो तो संक्रमणसे मिथ्यात्वकी वक्तृत्व स्थिति शरार कर्मायोंकी सागर और सातह कर्मायोंकी वक्तृत्व स्थिति अज्ञान की कर्मायोंकी सागर प्राज्ञ या सञ्ज्ञी है पर अन्य प्रकृतियोंकी सागर और अज्ञानी कर्मायोंकी सागरसे कर्म ही स्थिति हाती है अतः इन मिथ्यात्व आदिक्की कल्पकी अपेक्षा ही वक्तृत्व स्थिति जाननी चाहिए ।

✽ नपुंसकवेद, अरति, शोक, मय आर उगुत्ताकी उक्तस्स स्थितिका काल इसी प्रकार होता है ।

§ ४२२. क्योंकि एक समय प्रमाण कल्प का और अन्तमुद्रुत्त प्रमाण उक्तस्स कालकी अपेक्षा सातह कर्मायोंसे इनके कालका यह भेद नहीं है ।

टीका—कर्मायोंकी वक्तृत्व स्थिति कर्मायोंकी स्वकीय करक जो नाकर्मायोंमें संक्रान्त हाती है और वह बाहू या नाकर्मायोंसे उक्तस्स स्थितिका प्रत्यक्ष हाती है अतः इनकी कालकी अपेक्षा कर्मायोंके माप समानता कर्म का सञ्ज्ञी है ।

समाधान—नहीं क्योंकि उक्तस्स कल्पका माप अज्ञान कल्प अधिक है तथा कल्पक्रममें ही अज्ञान उक्तस्स स्थिति संक्रमण प्राज्ञ पर किया है इनकी कालकी अपेक्षा कर्मायोंके माप समानता मानने का विचार नहीं आता है ।

\* उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४८० कुदो ? दाहद्विदिं वंधमाणो उक्त्सदाहं गंतूण उक्त्सद्विदिं वंधदि;  
तिस्से वंधकालस्स उक्त्सेण अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो ।

\* एवं सोलसकसायाणं ।

§ ४८१ मिच्छत्तस्सेव सोलसकसायाणमुक्त्सद्विदिकालो जहण्णेण एगसमओ,

**विशेषार्थ—**यहा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जघन्य रूपसे कितने काल तक पाई जाती है इसका विचार किया है। बात यह है कि जब कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके योग्य उत्कृष्ट सक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर विशुद्धि को प्राप्त होने लगता है तो उसके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व एक समय तक देखा जाता है, क्योंकि दूसरे समयमें उसमेंसे एक समय कम हो जाता है, इसलिये उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता है। इस विषयमें शंकाकारका कहना यह है कि एक तो स्थितिकाण्डकघातसे स्थिति कम होती है और दूसरे प्रथमादि निषेकोंके गल जानेसे स्थिति कम होती है। किन्तु मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होनेके दूसरे समयमें न तो उसका स्थितिकाण्डकघात ही होता है, क्योंकि बन्धावलि सकल कारणोंके अयोग्य होती है ऐसा नियम है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आवाधाकाल सात हजार वर्ष है और आवाधाकालमें निषेक रचना नहीं होती, अतः सात हजार वर्षके समयोंको छोड़ कर ही प्रथमादि निषेकों का सद्भाव पाया जाता है। यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय और वादमें निषेक गलते हैं पर वे नवीन स्थितिबन्धके न होकर प्राचीन सत्कर्म के होते हैं, अतः जिस समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है उस समय उसकी उत्कृष्ट स्थितिका न तो स्थितिकाण्डक घात ही हो रहा है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं यह सच है, फिर भी उत्कृष्ट स्थिति निषेकप्रधान न होकर कालप्रधान होती है, अतः दूसरे समयमें सत्कार कोड़ाकोड़ी सागर में से एक समय कम होजानेके कारण उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता। हा जघन्य स्थिति अवश्य निषेकप्रधान होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो क्रोधसज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना नहीं बन सकती है, क्योंकि यह क्रोधसज्वलनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी स्थिति है जो कि उसी समय मान सज्वलनरूपसे सक्रमित हो जाती है। अतः कालकी अपेक्षा वह क्रोधरूप एक ही समय रही पर उस समय उस अन्तिम फालिमें निषेक अवश्य अन्तर्मुहूर्त कम दो माहके समय प्रमाण होते हैं और इसलिये इस अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो माह कही जाती है। उक्त कथनका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थितिमें कालकी प्रधानता है और जघन्य स्थितिमें निषेकोंकी। अतः सत्कार कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक समयके घट जाने पर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती।

\* उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४८० शंका—उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान—**क्योंकि, दाहस्थितिको बंधनेवाला जीव उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तब उस उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालका उत्कृष्ट प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है।

\* इसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये ।

§ ४८१ मिथ्यात्वके समान सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय



\* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुकस्सट्टिदिविहत्तीओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४८३ सुगमं ।

\* जहणुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ४८४ कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिएण मिच्छादिट्ठिणा तिव्वसंक्खित्सेण

चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अतोकोडाकोडिमेत्तदाहट्ठिदिं वयमाणेण उकस्सट्टिदिं वंधिय अंतोमुहुत्तपडिभग्गेण वेदगसम्मत्ते गहिदे तग्गहणपढमममए चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुकस्सट्टिदिदसणादो ।

❀ इत्थिवेद-पुरिसवेद-हस्स-रदीणमुक्कस्सट्टिदिविहत्तीओ केवचिरं कालादो होदि ?

विशेषार्थ—भय और जुगुप्सा तो भ्रुवबन्धिनी प्रकृतियों हैं, अतः उनका बन्ध तो सर्वदा होता रहता है। किन्तु नपुसकवेद, अरति और शोक, इन नोकपायोंका बन्ध अन्य समयमें हाता भी है और नहीं भी होता है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय अवश्य होता है। अब किसी जीवने कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्ध किया और वह जीव कपायकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक इन पाच नोकपायोंका बन्ध करता रहा तो उसके एक आवलिके पश्चात् कपायोंकी वह उत्कृष्ट स्थिति पाच नोकपायोंमें संक्रमित हो जाती है और इस प्रकार उक्त पाँच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय काल तक पाई जाती है। तथा किसी अन्य जीवने अन्तर्मुहूर्त काल तक सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बंधी और वह जीव कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक उक्त पाँच नोकपायोंका बन्ध करता रहा तो उसके कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके प्रारम्भ होनेके एक आवलि कालसे लेकर बन्ध समाप्त होनेके एक आवलि काल तक सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाच नोकपायोंमें संक्रमित होती रहती है और इस प्रकार पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अवस्थानकाल कपायोंके समान अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति वालेका कितना काल है ?

§ ४८३ यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ४८४ शंका—इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जो अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला है और जो तीव्र सकलेशरूप परिणामोंके कारण चतुःस्थानिक यथमध्यके ऊपर अन्तः कोडाकोडी प्रमाण दाहस्थितिका बन्ध कर रहा है ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर और उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ जब वेदक सम्यक्त्वको स्वीकार करता है तब उसके वेदक सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है। अतः इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है।

\* स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालेका कितना काल है ?

§ ४८५ सुगमं ।

\* जहण्णेण एगसममो ।

§ ४८६ कुदो ? कसायाणमेगसमयमावसियमेसकालं वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पट्ठिहगपइमसमए पट्ठिहगावसियाए वा इच्छिदणोकसाय बंधाविय गत्तिदसेसकसा पुक्कस्सट्ठिदीए त्तय संकमिदाए एवासिं चहुण्ह पपदीणमुक्कस्सट्ठिदिक्कास्स एगसमय दंसणादो ।

\* उक्कस्सेण भावसिपा ।

§ ४८७ कुदो ? पट्ठिहगकाले चव एदासि चहुण्ह पपदीणं बंधणियमादो । उक्कस्सट्ठिदिबंधकाले एदाओ किण्ण वग्गंति ? अक्कसुह्वाभावादो साहावियादो वा । अरियो कालो किण्ण उग्गमदि ? ए, बंधगद्धावरिमावसियाए बद्धसमयपवद्धाणं वेव तत्पुक्कस्सचुबलमादो ।

§ ४८८ यह सूत्र सरल है ।

\* अपन्य काल एक समय है ।

§ ४८९ शंका—इतका अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि बिस्ने कगारोकी एक समय तक अथवा एक आबलीप्रमाण काल तक उच्छ्रित स्थितिको बांधा है उसके प्रतिमग्न होकर पहले समयमें अथवा प्रतिमग्न होकर आबली प्रमाण कालके भीतर इच्छित नोकरायका बन्ध करकर अनन्तर गलकर होय रही कगारकी उच्छ्रित स्थितिके इच्छित नोकरायमें संक्रमण करान पर इन बातों महृतियोंकी उच्छ्रित स्थितिका काल एक समय देखा जाता है ।

\* उच्छ्रित काल एक आबली है ।

§ ४९० शंका—उच्छ्रित काल एक आबली क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रतिमग्न कालके भीतर ही इन बार महृतियोंके बन्धका नियम है ।

शंका—उच्छ्रित स्थितिके बन्धकालमें ये बातें महृतियां क्यों नहीं बंधती हैं ?

समाधान—क्योंकि ये महृतियां अत्यन्त अष्टम नहीं हैं इसलिये उस कालमें इनका बन्ध नहीं होता । अथवा उस समय नहीं बंधनेका इनका स्वभाव है ।

शंका—उच्छ्रित काल अधिक क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—यही क्योंकि बन्धकालकी अन्तिम आबलीमें बंध हुए समप्रवृत्तियोंकी ही इन बातों महृतियोंमें संक्रमण होनेके कालमें उच्छ्रिता पाए जाता है, इसलिये इनकी उच्छ्रित स्थितिका उच्छ्रित काल एक आबलीसे अधिक नहीं हो सकता ।

बिज्ञापार्थ—स्वीडन पुण्यवद हाम्ब और रतिडी उच्छ्रित स्थिति एक आबलीक्रम बानीम कोडावाकी मत्तार है और इनका बन्ध कगारोकी उच्छ्रित स्थितिके एक समय हुआ नहीं किन्तु जिस समय उच्छ्रित संक्रमण परिणामोंमें बांध निरुक्त होने लगता है उसी समयमें होता है, अतः इनकी उच्छ्रित स्थितिका अपन्य अथवापान काल एक समय और उच्छ्रित

ॐ एवं सन्वासु गदीसु ।

§ ४८८ जहा ओघम्मि उक्कस्मट्टिदिक्कालपरवणा कदा तथा सन्वासिं गदीण-  
मोघम्मि परवणा कायन्ना ए आदेसम्मि, तत्थ ओघादो विसेमदंमणादो ।

§ ४८९, एवं चुण्णिमुत्तपरवणं काऊण मंपहि एदेण मृचिदत्थजाणावणद-  
मुच्चारणाइरियवक्खवाणमोघादो चेव भणिस्सामो ।

§ ४९०, कालाणुगमेण दुव्विहो णिदेमो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेष  
मिच्छत्त-सोलकसायाणमुक्कं जहं एगसमयो, उव्वं अंतोमुहुत्तं । पंचणोक्कसायाण-  
मुक्कं जहं एगममओ, उक्कं अंतोमु० । कुदो ? सोलसरुमायणवुंम०-अरदि-  
सोग-भय-दुगुंझाणं सरिसं मंक्किलेसं पूरेदूण उक्कस्मट्टिदिं वंमट्टि । ताधे कसायाण

अवस्थान काल एक आवलि प्राप्त होता है, क्योंकि जो एक समय तक कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर और दूसरे समयसे इन स्त्रीवेद आदिका बन्ध करने लगता है उसके एक आवलीके पश्चात् एक आवलिकम कपायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे मरुमित हो जाती है । तथा जो एक आवलि या एक आवलिसे अधिक काल तक कपायकी उत्कृष्ट स्थिति बाध कर पश्चात् स्त्रीवेद आदिका बन्ध करने लगता है उसके एक आवलिके पश्चात् एक आवलि काल तक ही एक आवलिकम कपायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे मरुमित होती है । इसके पश्चात् बाधी हुई कपायकी उत्कृष्ट स्थिति का स्त्रीवेद आदिमें संक्रमण होने पर भी उसमें एक एक समय उत्तरोत्तर कम होता जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति जवन्य रूपसे एक समय तक और उत्कृष्ट रूपसे एक आवली कालतक पाई जाती है ।

ॐ इसी प्रकार सभी गतियोंमें ज्ञानना चाहिये ।

§ ४८८ जिस प्रकार ओघमें उत्कृष्ट स्थितिके कालकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सभी गतियों की प्ररूपणा ओघमें ही करनी चाहिये आदेशमें नहीं, क्योंकि आदेशमें ओघकी अपेक्षा विशेषता देखी जाती है ।

विशेषार्थ—यहा चूर्णिसूत्रकारने सब गतियोंमें काल सम्वन्धी ओघप्ररूपणाको स्वीकार किया है । इसका यह तात्पर्य है कि कालसम्वन्धी उपर्युक्त ओघप्ररूपणा चारों गतियोंमें वन जाती है, अतः चारों गतियोंमें कालसम्वन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणा ही है । आदेशप्ररूपणा तो वह है जिसमें ओघसे कुछ विशेषता हो, किन्तु चारों गतियोंमें कालसम्वन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणासे कुछ भी विशेषता नहीं रखती, अतः चारों गतियोंमें कालसम्वन्धी प्ररूपणा भी ओघ प्ररूपणा ही है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

§ ४८९, इस प्रकार चूर्णिसूत्रोंका कथन करके अब इनके द्वारा सूचित अर्थका ज्ञान करानेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानका ओघकी अपेक्षा ही कथन करते हैं ।

§ ४९० कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि समान सक्लेशको प्राप्त होकर जीव सोलह कपायोंकी तथा नपुंसकवेद, अरति, शोक,

मुक्तस्सिद्धिदिविहरीर भादी होदि । गनु स०-अरदि-सोग-भय-दुगुंक्षणं पुण तपो  
 भावसिप्यमेचकाले गद् उक्तस्सिद्धिदिविहरी होदि; कसायाणमुक्तस्सिद्धीर अर्सकंताए  
 पदासिमुक्तस्सामत्वादो । तदो सम्भसिमुक्तस्सिद्धिदिविहरीर सरिसं गंतूण सोलस  
 कसायाणमुक्तस्सिद्धिदिविहरी यकदि । तदो तम्मि यनके वि आत्रसिप्यमेचकालं पंचणोकसा  
 याणमुक्तस्सिद्धिदिविहरी होदि । पुणो इमं पच्छिमावलिपं घेत्तूण पुम्बुचावलिउपवक्तस्स  
 द्विदिवकालमि पक्खिचे कसायाणमुक्तस्सिद्धिदिविहरीरमेचस्स पंचणोकसायाणमुक्तस्स  
 द्विदिवकालस्सुपत्तमादो । इत्थि-पुरिस-इस्स-रदीणं पुण चक० नह० एगस०, उक्त०  
 एगत्तिसिप्या ; पविहग्गावन्वियाए चैव पदासिमुक्तस्सिद्धिदिवंसणादो ।

§ ४६१ मिच्छद-सोसकसायाणमणुक्क० नह० अंतोमुक्कत्त णवणोक० अह०

मय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिको बॉयता है । उस समय कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
 प्रारम्भ होता है और नपुंसकत्वे अरति, शोक, मय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति  
 इससे एक आबलि कर्मके ज्ञान पर होती है क्योंकि जबतक कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
 इनमें संक्रमण नहीं होता तबतक इनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, अतः सभीकी उत्कृष्ट  
 स्थितिके बन्धकत्त समान ज्ञान और सोलह कर्मायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक जाता है और सातह  
 कर्मायोंके उत्कृष्ट स्थितिकर्मके एक ज्ञान पर भी एक आपत्ती कालतक पांच मोक्षार्थोंकी उत्कृष्ट  
 स्थिति बिभक्ति होती है अतः इस पीछेकी आबलीको मरण करके इन पाँच मोक्षार्थोंके पूर्वोक्त  
 एक आबलिकर्म उत्कृष्ट स्थितिकर्मकालमें मिला देन पर कर्मायोंके उत्कृष्ट स्थिति बन्धकत्त  
 प्रमाण पांच मोक्षार्थोंके उत्कृष्ट स्थितिकाल हो जाता है । स्त्रीत्व, पुरुषत्व, हास्य और रतिकी  
 उत्कृष्ट स्थिति बिभक्तिका बन्धक काल एक समय और उत्कृष्ट कर्म एक आबलि है, क्योंकि  
 प्रतिममाबलिकर्ममें ही इनकी उत्कृष्ट स्थिति देनी जाती है ।

विशुद्धार्थ-सोलह कर्मायोंके उत्कृष्ट स्थितिकर्मके साथ नपुंसकत्वे अरि पांच  
 मोक्षार्थोंके ही बन्ध होता है यह बात पहले ही कतना आये हैं । अब यदि किसी एक जीवने  
 सोलह कर्मायोंका उत्कृष्ट स्थितिकर्म अस्तमु हुवे कर्म तर्क किया तो इसके उत्कृष्ट स्थिति बन्धके  
 प्रारम्भ होनेके एक आपत्ती काससे लेकर सोलह कर्मायोंकी एक आपत्ति कर्म उत्कृष्ट स्थितिका पांच  
 मोक्षार्थोंमें संक्रमण होता रहेगा । और यदि यह जीव कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकर्मके बाद एक  
 आबलि कर्मतक एक पांच मोक्षार्थोंके और बन्ध करता रहे ता हम समय भी कर्मायोंकी उत्कृष्ट  
 स्थितिके इनमें संक्रमण हाता रहेगा क्योंकि कर्म हूइ महर्तिके निरोद्धोके एक आबलिके बाद  
 अन्य मर्तुतिके ( यदि अन्य मर्तुतिका बन्ध होता हो ता ) संक्रमण हाता है एसा निबन्ध है । इम  
 नियमके अनुसार जा अन्तिम आबलिके कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बंधी है वतक संक्रमण एक  
 आबलिके बाद पांच मोक्षार्थोंमें एक आबली तक उपरय हाता रहेगा, अतः जिन प्रारम्भकी  
 आबलीमें कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके पांच मोक्षार्थोंमें संक्रमण नहीं हुआ या उसे कर्मायोंकी  
 उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध कर्मसेसे परा देन पर और इम अन्तिम आबलिके जाइ देन पर पांच  
 मोक्षार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमण सोलह कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संस्व काशक  
 समान मार हो जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४६२ मिच्छद और सातह कर्मायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्धक कर्म अस्तमु हुत



एगसमओ, उक्क० सन्वासिमणंतकालमसखेज्ज। पोग्गलपरियट्ठा । सम्मत्त-सम्मामिच्छ-  
त्ताणमुक्क० जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अणुक्क० ज० अतोमुहुत्तं, उक्क० वेत्तावट्ठि-  
सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवं अचक्खु०-भवसि० ।

§ ४९२ आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलक०-एवणोक्क० उक्क० ज०  
एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । एवरि इत्थि-पुगिस-हस्स-रदीणमात्रलिया ।।

है तथा नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जिस का प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ वत्तीस सागर है । इस प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जो जीव उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट सक्त्वेश परिणामोंसे निवृत्त हो गया है उसे पुनः उन परिणामोंको प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तमुहूर्त काल लगता है और इस मध्यके कालमें इस जीवके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका ही बन्ध होगा, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । यदि कोई जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर परिभ्रमण करता रहे तो वह बड़ा अनन्त काल तक रह सकता है और एकेन्द्रियके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता, इसलिये इसके नौ नोकपायोंकी भी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जा सकती, अतः उक्त २६ प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा । जब कोई एक जीव एक एक समयके अन्तरसे क्रोधादिककी एक समय आदि कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है और उसका उसी प्रकारसे नौ नोकपायोंमें संक्रमण करता है तब नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तमुहूर्तमें उनकी क्षपणा कर देता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होता है । तथा जो जीव उद्वेलना कालके अन्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और ज्यामठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिथ्यात्वमें जा कर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करने लगता है तथा उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः एक आचलिक्रम ज्यामठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहता है तथा अन्तमें मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ वत्तीस सागर पाया जाता है । चूर्णिसूत्रोंमें चारों गतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी काल प्ररूपणा ओघके समान कही है और उच्चारणोंमें चारों गतियोंको आदेश प्ररूपणामें ले लिया है । इसका कारण यह है कि उच्चारणोंमें उत्कृष्ट स्थितिके कालके साथ अनुत्कृष्ट स्थितिका काल भी सम्मिलित है, अतः यहाँ चारों गतियोंमें ओघ प्ररूपणा नहीं बनती । यही कारण है कि उच्चारणोंमें चारों गतियोंको आदेश प्ररूपणामें परिगणित किया है । किन्तु उच्चारणोंकी ओघ प्ररूपणा अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणोंमें घटित हो जाती है, अतः उच्चारणोंमें इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है । यद्यपि इन दोनों मार्गणोंमें चूर्णिसूत्रोंकी ओघ प्ररूपणा भी बन जाती है फिर भी चूर्णिसूत्रका 'एव सन्वासु गदीसु' यह वचन देशामर्पक है, अतः बड़ा अन्य मार्गणाए नहीं गिनाई हैं ।

§ ४९२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंम मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । किन्तु इतनी

अणुचक्र० न०० एगसमओ, उचक्र० सगुचक्रस्सहिदी । कस्य वि देसूषा चि मणति;  
 तस्य पविसिय अणुचक्रस्सहिदीए आदिकरबादो । सम्मच-सम्मायि० उचक्र०  
 अणुचक्र० [ एगसमओ । अणुचक्र० ] न०० एगसमओ, उचक्र० समहिदी । पडमावि  
 साव सचमा चि एवं घेव । गत्ररि सगसगुचक्रस्सहिदी वचम्मा ।

विशेषता है कि स्त्रीवेद पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आशक्ति प्रमाण है। तथा एक सव प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिअ वचम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल नारकीकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। यहाँ पर कुछ आचार्य नारकीकी अनुकूल स्थितिअ उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे कुछ कम है ऐसा करते हैं सो यहाँ पर नरकमें प्रवेश करके अनुकूल स्थितिका प्रारम्भ किया है ऐसा जानना चाहिये। सम्भवतः और सम्बन्धित्वात्की उत्कृष्ट स्थितिअ वचम्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुकूल स्थितिका वचम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। पक्षी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार कवन करना चाहिये। किन्तु इसकी विशेषता है कि सब कर्मोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल करते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण करना चाहिये।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके वचम्य और उत्कृष्ट कालका मुलात्ता जिस प्रकार ओषमें कर जाने हैं उसी प्रकार नारकीके कर लेना चाहिये। तथा जिसने अपने सबके वचम्य समकमें मिथ्यात्व और सोलह कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वचम्य करके अन्तिम समयमें अनुकूल स्थितिअ कन्व किया उस नारकीके मिथ्यात्व और सोलह कर्मायों की अनुकूल स्थितिअ वचम्य काल एक समय पाया जाता है। तथा जो पूरी पर्यायमें अनुकूल स्थितिकी वचम्यता है उसके मिथ्यात्व और सोलह कर्मायोंकी अनुकूल स्थितिअ उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण पाया जाता है। तथा जिस नारकीने अपने वचम्य समयमें एक समयतक नौ नोकर्मायोंमें सोलह कर्मायोंकी एक आशक्तिकम उत्कृष्ट स्थितिअ र्कमल किया है उस नारकीके अपने अन्तिम समयमें नौ नोकर्मोंकी अनुकूल स्थितिअ वचम्य काल एक समय पाया जाता है। अथवा जिस प्रकार ओषमें नौ नोकर्मायोंका वचम्यकाल पठित किया है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। तथा जिसके पूरी पर्यायमें मिथ्यात्व और सोलह कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अ कन्व नहीं हुआ और न पूर्ण पर्यायमें मरते समय एक आशक्ति कालके भीतर एक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिअ हुआ उस नारकीके नौ नोकर्मायोंकी अनुकूल स्थितिअ उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण पाया जाता है। यहाँ मूलमें मिथ्यात्व सोलह कर्माय और नौ नोकर्मायोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण यहाँ है सो इसका कारण यह बताया है कि नरकमें प्रवेश करके अनुकूल स्थितिअ प्रारम्भ करना चाहिये। जो मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिअ कन्व करके अन्तमु हुँतमें वेदकसम्बन्धको प्राप्त करता है उसके वेदकसम्बन्धको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें सन्ध्या और सम्बन्धित्वात्की उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है, अतः यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ वचम्य और उत्कृष्ट काल एक समय यहाँ है। जो बीच नरकमें कल्प हाते ही सम्भवतः वा सम्बन्धित्वात्की छोड़ना कर लेता है उसके नरकमें सम्भवतः और सम्बन्धित्वात्की अनुकूल स्थितिअ वचम्यकाल एक समय पाया जाता है। तथा जो प्रारम्भके और अन्तके अन्तमु हुँत कर्मायोंको छोड़कर जीवन भर वेदक सम्बन्धके साथ रहा है। या जिसने सम्भवतः और सम्बन्धित्वात्की छोड़ना होनेके मध्य या अन्तमें पुनः पुनः वचम्य सम्बन्धको प्राप्त किया है उसके सन्ध्या और सम्बन्धित्वात्की अनुकूल स्थितिअ उत्कृष्ट काल नरककी

§ ४६३. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० जह० एग-समओ, उक्क० अंतोमुहुत्त' । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणतकालमसंखेज्जा पोगगलपरियट्ठा । णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० एगावलिया । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखे० पोगगलपरियट्ठा । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४९४. पंचिदियतिरिक्ख०-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोकसाय० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जहणु० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सम्पत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि । एवं मणुसतिय० ।

उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकार प्रथमादि पृथिवियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितियोंका काल कहना चाहिये । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

§ ४६३. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त प्रमाण है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और नपुंसकवेद आदि पाँचका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त और स्त्रीवेद आदि चारका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण है । तथा नौ नोषषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है ।

§ ४६४. पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यंच गतिमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । हाँ अनुकृष्ट स्थिति के उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । तिर्यंच पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है, अतः मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें रहनेका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है अतः उस कालमें पुनः पुनः सम्यक्त्वके होनेसे सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वका

१ ४६४ पंचि०तिरि०अपज० मिच्छत्-सोससक०-गवणोक० उकक० बहण्णकक०  
 एगसमओ । अणुक्क० व० सुरामवगाएण समऊण्ण; उक्क० अंतोवु० ।  
 सम्मच०-सम्मापि० उक्क० बहण्णकक० एगसमओ । अणुक्क० मह० एगस०, उक्क०  
 अंतामु० । एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज तसअपज्जचारणं ।

सक वना रहता है । अतः सम्बन्ध व सम्बन्धिप्यात्वकी अनुकूल स्वतिका उत्कृष्ट काळ पूर्ववत्  
 पूर्वकोटि अधिक तीन पद्य कहा है । पंचमियपयाप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यं योनिमती बीबोंके सव  
 कर्मोंकी अनुकूल स्थितिके उत्कृष्ट काळको ब्रह्मरूप शेष सब काळ पूर्ववत् है । किन्तु मिच्छात्व सोलह  
 कय्य और नौ नाक्यायोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काळ अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण  
 है । यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंकोकी पंचानते पूर्वकोटि अधिक तीन पद्य, पंचेन्द्रिय तिर्यं पयाप्तकी  
 सैतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पद्य और पंचेन्द्रिय तिर्यं योनिमतीकी पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक  
 तीन पद्य उत्कृष्ट अवस्थिति जाननी चाहिये । तथा सम्बन्ध और सम्बन्धिप्यात्वकी अनुकूल  
 स्थितिका उत्कृष्ट काळ साधिक तीन पद्य है जिसका अनुशासा पहले किया ही है । सामान्य  
 मनुष्य, मनुष्य पयाप्त और मनुष्यनीके इसी प्रकार कवन करना चाहिये । किन्तु इनके मिच्छात्व  
 भाषिकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काळ करते समय क्रमसे सैतालीस पन्द्रह और साठ पूर्वकोटि  
 अधिक तीन पद्य उत्कृष्ट काळ कहना चाहिये ।

१ ४६५ पंचेन्द्रिय तिर्यं अपयाप्तकर्म मिच्छात्, सोलह कय्य और नौ नोक्यायोंकी  
 उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय है तथा अनुरक्त स्थितिका अपन्य काळ  
 एक समयक्रम सुरामवगाएणमस्य और उत्कृष्ट काळ अन्तमु हुत है । सम्बन्ध और सम्बन्धिप्यात्व  
 की उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय है । अनुकूल स्थितिका अपन्य काळ  
 एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तमु हुत है । इसी प्रकार मनुष्य अपयाप्त पंचेन्द्रिय अपयाप्त और  
 त्रस अपयाप्त बीबोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—बो संखी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिच्छात् और सोलह कय्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
 ब्रह्मरूप और स्थितिपात न करके अन्तमु हुत काळके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यं लक्ष्यपर्याप्तकर्म  
 कल्प होता है इसके पहले समयमें लक्ष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है अतः पंचेन्द्रिय  
 तिर्यं लक्ष्यपर्याप्तकर्म लक्ष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय  
 कहा है । इसी प्रकार नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका लक्ष्य और उत्कृष्ट काळ एक समय  
 जानना चाहिये पर यह संक्रमणसे प्राप्त होता है । तथा इस एक समयको ब्रह्मरूप शेष सुरामवगाएण  
 प्रमाण काळ लक्ष प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका अपन्य काळ है और लक्ष्यपर्याप्त अवस्था-  
 में रहना उत्कृष्ट काळ अन्तमु हुत है । अब यदि कोई बीब उत्कृष्ट स्थितिके बिना ही पंचेन्द्रिय  
 तिर्यं लक्ष्यपर्याप्त हुआ और अपने उत्कृष्ट काळतक उसने वह पर्याप्त न बहती, पुनः पुनः पक्षीमें  
 कल्प होता रहा तो उसके लक्ष लक्ष प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काळ अन्तमु हुत  
 पाया जाता है । इसी प्रकार लक्षके प्रथम समयमें सम्बन्ध और सम्बन्धिप्यात्वकी उत्कृष्ट  
 स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काळ एक समय घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुकूल स्थितिका  
 अपन्य काळ एक समय उत्कृष्टकाकी अपेक्षा और उत्कृष्ट काळ अन्तमु हुत अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी  
 अपेक्षा जानना चाहिये । मूलमें और श्रितनी मार्ग्यापे गिनार्ह हैं उनमें ही इसी प्रकार लक्ष  
 प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकूल स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काळ जानना चाहिये ।

§ ४९६. देवेसु एणरओघं । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि  
अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-  
वारसक-एवणोक-उक्क-जहण्णुक-एगस- । अणुक्क-जह-सगसगजहण्णा-  
उअं समऊणं, उक्क-सगसगुक्कस्सट्ठिदी । अणंताणुवंधिचउक्क-उक्क-जह-  
एणुक्क-एगस- । अणुक्क-ज-अंतोमु-एयसमओ वा, उक्क-सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि-उक्क-जहण्णुक-एगसमओ । [ अणुक्क-जह-एगससओ ]  
उक्क-सगट्ठिदी । अणुदिसादि जाव सवट्ठे त्ति मिच्छत्त-सम्मामि-वारसक-एवणोक-  
उक्क-जहण्णुक-एगसमओ । अणुक्क-जह-जहण्णट्ठिदीए समयूणा, उक्क-  
उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-उक्क-जहण्णुक-एगस- । अणुक्क-जह-एगस-  
उक्क-सगट्ठि- । अणंताणु-चउक्क-उक्क-जहण्णुक-एगस- । अणुक्क-जह-  
अंतोमु, उक्क-सगट्ठिदी ।

§ ४९६ देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान कथन है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार  
स्वर्गतकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अनुकृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । आनत  
कल्पसे लेकर उवरिम प्रवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण  
है । अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण है । सम्यक्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी  
अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
स्थितिप्रमाण है । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ-सामान्य देव तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सब कर्मों-  
की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंके समान है,  
किन्तु अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपने-अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण  
कहना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें भवके पहले समयमें ही मिथ्यात्व,  
बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपने-अपने कल्पकी

§ ४९७ इदियाणुवादेण पद्विपसु मिच्छव-सोत्तसक० उक्क० बहण्णुक्क० एगसममो । अणुक्क० ब० सुहामवग्गहणं, उक्क० अणतकासमसत्तेज्जा पोमास परिपट्टा । गवणोक्क० उक्क० ब० एगसं, उक्क० आपत्तिपा । अणुक्क० ब० एयसं, उक्क० अणतकासमसुखे० पो०परियट्टा । सम्मत्त०—सम्मामि० उक्क० बहण्णुक्क० एगसममो । अणुक्क० ब० एयसं, उक्क० पत्तिदो० असत्ते भागो । एवं वादरेइदियाणं । एवमि अणुक्कसुक्कस्समंगुलस्स असत्तेज्जदि

अप्य स्थितिप्रमाण और अक्षर अक्षर स्थितिप्रमाण का है। सम्पत्त्व, सम्पत्तिप्रमाण और अनन्तानुबन्धी अनुकूल की अक्षर स्थिति भी उसके पहले समयमें हो सकती है अतः इनकी अक्षर स्थिति का अप्य और अक्षर अक्षर एक समय का है। तथा इन प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थिति का अक्षर काल अपनी अपनी अक्षर स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि जो अनुकूल स्थिति के साथ आनतादि क्रमोंमें अक्षर होता है। यह यदि सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्रमाणकी अक्षरना नहीं करता है और अनन्तानुबन्धी अनुकूल की विसंबोधना नहीं करता है तो उसके जीवन भर इनकी अनुकूल स्थिति वनी रहती है। तथा जो जीव आनतादि क्रमोंमें पैदा हुआ और पचास होकर अन्तमु हूँ अक्षरके भीतर जिसने अनन्तानुबन्धी विसंबोधना कर ली उसके अनन्तानुबन्धी अनुकूल अनुकूल स्थिति का अप्यकाल अन्तमु हूँ पया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धी विसंबोधना किया हुआ जो एक देव साक्षात्तमें आया और दूसरे समयमें मरकर अप्य गतिमें जाता गया तो उसके अनन्तानुबन्धी अनुकूल अनुकूल स्थिति का अप्य काल एक समय पाया जाता है। तथा सम्पत्तिप्रमाण और सम्पत्त्वकी अनुकूल स्थिति का अप्य काल एक समय क्रमसे अक्षरना और अक्षरव्यवस्था सम्पत्त्वकी अपेक्षा पठित कर लेना चाहिये। अनुकूलके लेकर सर्वाधिकारिक तर्कके देव सम्पत्ति ही होते हैं अतः इनमें अनन्तानुबन्धी और सम्पत्त्वके अनुकूल स्थिति के अप्य कालके क्रममें कुछ विशेषता है। देव काल पूर्ववत् ही जानना चाहिये। यह यह है कि यहाँ अनन्तानुबन्धी अनुकूल स्थिति का अप्यकाल एक समय नहीं बनता केवल जबके प्रारम्भमें जिसने अन्तमु हूँ अक्षरके भीतर अनन्तानुबन्धी विसंबोधना कर ली है उसके अनुकूल स्थिति का अप्यकाल अन्तमु हूँ ही पाया जाता है। तथा जो अक्षरव्यवस्था सम्पत्ति अनुकूलस्थितिमें अक्षर हुआ और एक समयतक सम्पत्त्व प्रकृतिके साथ रहकर दूसरे समयमें दार्शनिक सम्पत्ति हो गया उसके सम्पत्त्वकी अनुकूल स्थिति का अप्य काल एक समय पाया जाता है। तथा यहाँ सम्पत्तिप्रमाणके कालका क्रम सम्पत्त्व आधिके साथ करना चाहिये क्योंकि यहाँ इस प्रकृतिकी अक्षरना सम्भव नहीं है।

§ ४९८ इन्द्रियमार्गाणां अनुवादसे एकेन्द्रियमें सम्पत्त्व और सोदाह कर्मायोंकी अक्षर स्थिति का अप्य और अक्षर काल एक समय है और अनुकूल स्थिति का अप्य काल कुछ मरणावधिसमय और अक्षर काल अन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। नौ नोकर्मायोंकी अक्षर स्थिति का अप्य काल एक समय और अक्षर काल आधुनिक प्रमाण है। तथा अनुकूल स्थिति का अप्य काल एक समय और अक्षर अन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्रमाणकी अक्षर स्थिति का अप्य और अक्षर काल एक समय और अनुकूल स्थिति का अप्य काल एक समय और अक्षर काल पश्योपमक असंख्यातवत् माताप्रमाण है। इसी प्रकार बाहर एकेन्द्रियके आन्त चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनुकूल स्थिति का अक्षर काल अंगुलके असंख्यातवत् माताप्रमाण

§ ४९६. देवेसु णिरथोधं । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि  
अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वत्तवा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-  
वारसक०-एवणोक० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० सगसगजहण्णा-  
उअं समऊणं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । अणंताणुबंधिचउक्क० उक्क० जह-  
एणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । [ अणुक्क० जह० एगससओ ]  
उक्क० सगट्ठिदी । अणुदिसादि जाव सवट्ठे त्ति मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक-एवणोक०  
उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदीए समयूणा, उक्क०  
उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० एगस०,  
उक्क० सगट्ठि० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह०-  
अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ४९६ देवोमे सामान्य नारकियोंके समान कथन हे । भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार  
स्वर्गतकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अनुकृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । आनत  
कल्पसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण  
है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण है । सम्यक्च और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी  
अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
स्थितिप्रमाण है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सामान्य देव तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोंमें सब कर्मा-  
की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंके समान है,  
किन्तु अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपने-अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण  
कहना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें भवके पहले समयमें ही मिथ्यात्व,  
वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपने-अपने कल्पकी

§ ४६६ पंचिह्निय-पंचि०पञ्च०-तस-तसपञ्च० मिच्छ-सोखसक०-गपञ्चक०

पञ्चक० ज० एगस०, उकक० मंतोमु० एगावलिपा । अगुवद० ज० एगस० उकक०  
सगसगुकसद्विदी । सम्मच-सम्मामि० उकक० महण्युकक० एगस० । अगुवक०

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, अतः अगुल्लुष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाय्य कहा । जो देव सोलह कयायोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ एक समय तक बन्धकरके एक भावली कालके भीतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकयायोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ अपन्य काल एक समय पाया जाता है और जो देव एक भावली या इससे अधिक काल तक सोलह कयायोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ बन्ध करके अनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकयायोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट काल एक भावलि प्रमाय्य पाया जाता है । तथा जिस देवने सोलह कयायोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ बन्ध किया और एक भावलीमें एक समय छेप करने पर वह मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके मरके पहले समयमें नौ नोकयायोंकी अनुकृष्ट स्थिति और वृत्ते समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः नौ नोकयायोंकी अगुल्लुष्ट स्थितिअ अपन्य काल एक समय कहा । तथा नौ नोकयायोंकी अनुकृष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट काल मिष्यात्व आदिके समान जानना चाहिये । सम्मकत्व और सम्मामिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट काल मरके पहले समयमें होता है अतः एकेन्द्रियोंमें इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें जिसने सम्मकत्व और सम्मामिष्यात्वकी उद्वेजना कर ली है उसके सम्मकत्व और सम्मामिष्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिअ अपन्य काल एक समय कहा । तथा उद्वेजनाके कालकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्मकत्व और सम्मामिष्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट काल उसके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य कहा । पात्र एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिअ काल जानना । किन्तु एक बीबका निरन्तर पात्र एकेन्द्रिय पर्यायोंमें रहनेका उत्कृष्ट काल अंगुल्लुके असंख्यातवें भागप्रमाय्य है अतः इनके मिष्यात्व सोलह कयाय और नौ नोकयायोंकी अनुकृष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट काल अंगुल्लुके असंख्यातवें भागप्रमाय्य कहा । पात्र एकेन्द्रिय पर्यायोंके अपनी पर्यायमें रहनेअ अपन्य काल अगुल्लु हुत और उत्कृष्ट काल संख्यात इकार बयै है अतः इस अपेक्षासे इनके अनुकृष्ट स्थितिअके अपन्य और उत्कृष्ट कालमें एकेन्द्रियोंसे भिद्येयता या जाती है । छेप कवन एकेन्द्रियोंके समान जानना । पात्र एकेन्द्रिय उद्वेजपर्याय सूक्ष्म एकेन्द्रिय उद्वेजपर्याय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायोंके पंचेन्द्रिय अपर्यायोंके समान काल करना चाहिये । किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायोंके अपनी पर्यायमें रहनेअ अपन्य काल अगुल्लु हुत है अतः इनके अगुल्लुष्ट स्थितिअ अपन्य काल अगुल्लु हुतै कहा चाहिये । तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें पचास और अपर्याय दोनों प्रकारके बीब गर्मित है अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिअ अपन्य काल एक समय कम सुरा मन्धस प्रमाय्य करना चाहिये । छेप कवन मुगम है । इसी प्रकार विकसत्रयोंमें बचा सम्मक वनकी स्थितिअ विचार करके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिअ अपन्य और उत्कृष्ट काल पटित कर लेना चाहिये ।

§ ४६६, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याय तस और तसपर्याय बीबोंमें मिष्यात्व सोलह कयाय और नौ नोकयायोंकी उत्कृष्ट स्थितिअ अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल मिष्यात्व और सोलह कयायोंअ अगुल्लु हुत और नौ नोकयायोंअ एक भावलीप्रमाय्य है । तथा अगुल्लुष्ट स्थिति का अपन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाय्य है । तथा सम्मकत्व और सम्मामिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिअ अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृष्ट स्थितिअ अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आपके समान है । इसी प्रकार पुद्गलपर्याय,



भागो असंखेज्जाओ ओसप्पिण्णिउस्सप्पिणीओ । वादरेइदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-  
णवणोक० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० ज० अतोमु० णवणोकसायाणं एगसमओ,  
उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एग-  
समओ । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । वादरेइदियअपज्ज० सुहुमेइंदिय-  
पज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्तभंगो । णवरि सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं अणुक्क० ज०  
अंतोमुहुत्तं । सुहुम० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० ।  
अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-  
सम्मामि० एइंदियभंगो ।

§ ४६८. सव्वविगल्लिंदय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क०  
एयस० । अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु० समयूणं, उक्क० सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसम० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क०  
सगट्ठिदी ।

है जिसका प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी होता है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कालका भग एकेन्द्रियोंके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है पर नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

§ ४६८ सब चिक्केन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और एक समय अन्तमुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्व और सोलह कपायकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही होती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बड़ा । पर यह उत्कृष्ट स्थिति पर्याप्त एकेन्द्रियोंके ही प्राप्त होती है और इस अपेक्षासे लक्ष्यपर्याप्तकोंके उक्त कर्मोंकी सब स्थिति अनुत्कृष्ट कही जाती है, अतः सामान्य एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रिय पर्याप्तमं जीव असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक लगातार रह सकता है और ऐसे जीवके बीचमें उक्त

§ ४६६ पंचिद्विप-पंचि०पञ्च०-तस-ससपञ्च० मिच्छत्-सोससक०-गबणोक०  
 वनक० अ० एगस०, उक्क० अंतीमु० एगावलिया । अणुप६० न० एगस० उक्क०  
 सगसगुकस्सदिदी । सम्मच-सम्मामि० उक्क० जइणुक्क० एगस० । अणुक्क०

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, अतः अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुराल परिवर्तन प्रमाण कहा । जो रूप सोलह कथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्धकके एक भावली कालके मीतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य काल एक समय पाया जाता है और जो रूप एक भावली या इससे अधिक काल तक सोलह कथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कके अनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक भावलि प्रमाण पाया जाता है । तथा जिस रूपने सोलह कथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और एक भावलीमें एक समय घेप रहने पर वह मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके मरके पहले समयमें नौ नोकथायोंकी अनुकृत स्थिति और दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः नौ नोकथायोंकी अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कहा । तथा नौ नोकथायोंकी अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्व आदिके समान जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल मरके पहले समयमें होता है अतः एकेन्द्रियोंमें इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होमके पहले समयमें जिसन सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्भवा कर ही है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कहा । तथा उद्भवनाके कालकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट काल पस्यके असंख्यातमें भाग प्रमाण कहा । बाहर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृत स्थितिका काल जानना । किन्तु एक जीवका निरन्तर बाहर एकेन्द्रिय पयायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातमें भागप्रमाण है अतः इनके मिथ्यात्व सोलह कथा और नौ नोकथायोंकी अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातमें भागप्रमाण कहा । बाहर एकेन्द्रिय पयायमें रहनेका अपन्य काल अन्तमु हृत और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है अतः इस अपेक्षाके इनके अनुकृत स्थितिके अपन्य और उत्कृष्ट कालमें एकेन्द्रियोंसे विशेषता आ जाती है । शेष कथन एकेन्द्रियोंके समान जानना । बाहर एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त सूत्र एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त और सूत्रम एकेन्द्रिय पर्याप्तके एकेन्द्रिय अपर्याप्तके समान काल कहना चाहिये । किन्तु सूत्रम एकेन्द्रिय पर्याप्तके अपनी पर्याप्तमें रहनेका अपन्य काल अन्तमु हृत है अतः इनके अनुकृत स्थितिका अपन्य काल अन्तमु हृत कहना चाहिये । तथा सूत्रम एकेन्द्रियोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकारके जीव गमित है अतः इनके अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कम गुदा भयप्रमाण प्रमाण कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार विकृतियोंमें पञ्च सम्भव उचकी स्थितिका विचार करके उत्कृष्ट और अनुकृत स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल पठित कर लेना चाहिये ।

§ ४६६ एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय पर्याप्त अत्र और अत्रपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व सातह कथा और नौ नोकथायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्व और सोलह कथायोंका अन्तमु हृत और नौ नोकथायोंका एक भावलीप्रमाण है । तथा अनुकृत स्थिति का अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आपके समान है । इसी प्रकार पुराणवचन,

ज० एगस०, उक्क० ओघभंगो । एवं पुरिस०-चक्खु-सण्णि त्ति ।

§ ५००. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-वादरवणप्फदिपत्तेय० मिच्छत्त-सोलसक०-एवण्योको० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त-सम्माभि० एइंदियभंगो । वादरपुढवि०-वादरआउ० एवं चेव । णवरि अणुक्कस्सुक्कस्सं सगट्टिदी । वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज० वादरेइंदिय-पज्जत्तभंगो । एवं वादरवणप्फदिपत्तेयसररीरपज्जत्ताणं । वादरपुढविअपज्ज०-वादर-आउअपज्ज०-तेउ०-वादरतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फ-दिपत्तेयसररीरअपज्ज०-णिगोद०-वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सव्वसुहुमाण छवीसं पय-डीणं उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं समज्जणं,

चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५००. कायमार्गणके अनुवादेसे पृथिवीकायिक, जलकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पति-कायिक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भग एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अपेक्षा खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है । वादर पृथिवीकायिक और वादर जलकायिक जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय वन जाता है । भय जुगुप्सा, अरति शोक व नपुंसक वेदकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त भी जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है । ऊपर पुरुषवेदी आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये । तथा पृथिवीकायिक वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदिके अपनी-अपनी पर्यायमें निरन्तर रहनेके कालका विचार करके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है, क्योंकि इसका पहले अनेक बार खुलासा किया जा चुका है, अत यहाँ व आगे भी उसका विचार करके यथासम्भव कथन करना चाहिये ।

वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंका भग वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, निगोदजीव, वादरनिगोद, वादरनिगोद पर्याप्त जीव, वादर निगोद अपर्याप्तजीव और सब सूक्ष्म जीवोंमें छवीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है

उक्त० सगसगुक्तस्तद्धिदी । सम्मच-सम्मापि० उक्त० बह्णुक्त० एगस० । अणुक्त०  
 ब० एगसममो उक्त० पस्त्रिदो० असत्वेच्छदिमगो । खबरि पादरपुडविभादिमपञ्चपाणं  
 सुहृमपुडविभादिपञ्चपाणञ्चपाणं च सगद्धिदी वचन्वा ।

§ ५०१ पचमण० पंचवधि० मिच्छत्त-सोत्तसक्त०-णवणोक्तसाप० उक्त० पंधि  
 दियमंगो । अणुक्त० ज० एगसममो, उक्त० अंतोमुहुर्ण । सम्मच-सम्मापि० उक्त०  
 बह्णुक्त० एगसममो । अणुक्त० बह० एगसममो, उक्त० अंतोमु० । ओरास्मिय०  
 एवं येव खबरि सगद्धिदी वचन्वा ।

§ ५०२ कायजोगि० मिच्छत्त-सोत्तसक्त०-णवणोक्त० उक्त० ओपं । अणुक्त०  
 ज० एगस०, उक्त० पइदियमंगो । सम्मच-सम्मापि० पइदियमंगो । ओरास्मिय  
 मिस्त० मिच्छत्त-सोत्तसक्त०-णवणोक्त० उक्त० बह्णुक्त० पइदियमंगो । मिच्छत्त  
 सोत्तसक्त० अणुक्त० बह० सुभाभबगाहर्ण तिसमऊर्ण । खणोक्तसाप० जह० एय  
 सममो, उक्त० अंतोमुहुर्ण । सम्मच-सम्मापि० पंधिदियमपञ्चचमंगो । एवं येव  
 स्मिय० णवरि मिच्छत्त-सोत्तसक्त० अणुक्त० ज० एगसममो उक्त० अंतोमु० ।

तथा उक्तसकल अपनी अपनी उक्तस्व स्थितिप्रमाण है । तथा सम्बन्ध और सम्पत्तिप्रमाणको  
 उक्तस्व स्थितिक्रम अपन्य और उक्तस्व काल एक समय और अनुक्तस्व स्थितिका अपन्य काल एक  
 समय और उक्तस्व काल परस्परमके असम्बन्धित्वे मगप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बाहर  
 प्रविष्टीकायिक भादि व्यपर्णात बीषोंकी तथा सूक्ष्म प्रविष्टीकायिक भादि पर्याप्त और अपर्णात  
 बीषोंकी अनुक्तस्व स्थितिक्रम उक्तस्व काल अपनी स्थिति प्रमाण करना चाहिये ।

§ ५१ पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी बीषोंके मिच्छत्त, सासह कयाव और  
 नौ मोक्षयोगी उक्तस्व स्थितिका मंग पंचेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुक्तस्व स्थितिका अपन्य  
 काल एक समय और उक्तस्वकाल अन्तमु हुँते है । तथा सम्बन्ध और सम्पत्तिप्रमाणकी उक्तस्व  
 स्थितिका अपन्य और उक्तस्वकाल एक समय और अनुक्तस्व स्थितिका अपन्यकाल एक समय और  
 उक्तस्व काल अन्तमु हुँते है । औदारिककाययोगी बीषोंके इस प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतना  
 विशेषता है कि इनके अनुक्तस्व स्थितिका उक्तस्वकाल अपनी स्थिति प्रमाण करना चाहिये ।

विद्युत्पार्थ-पाँचों मनायाग और पाँचों वचनयोगीका उक्तस्व काल अन्तमु हुँते तथा  
 औदारिककाय योगीका उक्तस्व काल अन्तमु हुँते कम बाईस हजार वष है, अतः इनके अनुसार  
 अनुक्तस्व स्थितिका उक्तस्व काल करना चाहिये । सेर क्यन मुगम है ।

§ ५२ काययोगियोंमें मिच्छत्त, सासह कयाव और नौ मोक्षयोगी उक्तस्व स्थिति  
 विमर्शिका काल ओपके समान है । तथा अनुक्तस्व स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उक्तस्व  
 काल पंचेन्द्रियोंके समान है । तथा सम्बन्ध और सम्पत्तिप्रमाणका मंग पंचेन्द्रियोंके समान है ।

औदारिक मित्र काययोगियोंमें मिच्छत्त, सासह कयाव और नौ मोक्षयोगी उक्तस्व  
 स्थितिका अज्ञान और उक्तस्वकाल पंचेन्द्रियोंके समान है । तथा मिच्छत्त और सासह कयावोंकी  
 अनुक्तस्व स्थितिका अपन्यकाल तीन समयकम सुदामवर्षस्यप्रमाण है और नौ मोक्षयोगीका  
 अपन्यकाल एक समय है तथा सबकी अनुक्तस्व स्थितिका उक्तस्वकाल अन्तमु हुँते है । तथा  
 सम्बन्ध और सम्पत्तिप्रमाणका मंग पंचेन्द्रिय अपर्णातकोंके समान है । इस प्रकार वैदिकक  
 काययोगी बीषोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिच्छत्त और सासह

वेउन्वियमिस्स० मिच्छत्त० सोलसक० एवणोक० उक्क० एइदियभंगो । अणुक्क० जहणुक्क० अंतोमु० । एवरि णवणोकसाय० अणुक्क० जह० एयसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवरि अणुक्क० जह० एयसमओ ।

§ ५०३. आहार० सव्वपयडीणमुक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्त । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्त्वादसंजदेत्ति । आहारमिस्स० सव्वपयडीणमुक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जहणुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम०-सम्मामि० ।

§ ५०४. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । एवणोकसाय० उक्क० ज० एगस०, उक्क० वेसमया । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । एवमणाहार० ।

कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । वैक्रियक मिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भग एकेन्द्रियोंके समान है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

§ ५०३. आहारक काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेद वाले, अकपायी, सूद्रमसास्पराधिकसयत और यथाख्यात-सयत जीवोंके जानना चाहिये । आहारकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५०४. कार्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । तथा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चा ह्ये ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंके एक काययोग ही होता है, अतः काययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । औदारिक मिश्रका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कपाय की अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहा भी जानना । शेष कथन सुगम है । तथा जिस वैक्रियककाययोगीने वैक्रियककायोग के उपान्त समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और अन्त समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध

§ ५०५ वेदाद्युवादेण इत्यिवेदेसु मिच्छत्-सोमसक०-यावणोक० उक्त्वा० ओषं । अणुक्त्वा० ज० एगसमभौ उक्त्वा० सगद्विदी । सम्मत्-सम्मापि० उक्त्वा० महण्युक्त्वा० एगस० । अणुक्त्वा० म० एगसमभौ, उक्त्वा० पणयण्यपलिदो० सादिरेयाणि । एणु स० मिच्छत्-सोमसक० यावणोक० उक्त्वा० ओषं । अणुक्त्वा० ज० एगस०,

क्रिया उसके मिथ्यात्व और सोलह कार्योंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा वैकल्पिकरूपयोगका उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत है अतः यहाँ अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमु हुते पाया जाता है क्षेत्र कवन पूर्णत्व जानना । वैकल्पिकमिथ्यायोगका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कार्योंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल अन्तमु हुत तथा नौ नोक्याय मिथ्यात्व और सोलह कार्योंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत होता है । नौ नोक्यायोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल पूर्णत्व जानना । क्षेत्र कवन सुगम है । आहारक क्रययोगके पहले समयमें ही सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्या । जो जोष एक समय तक आहारक क्रययोगके साथ रहे और दूसरे समयमें मर गये या मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गये उनके सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा आहारक क्रययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत क्या । अपगतवेदी, अक्यापी, सूक्ष्मात्मपर्ययिक संयत और पयाव्यातसंयत जीवोंके आहारकक्रययोगियोंके समान क्या जानना । क्योंकि ब्रह्म भेदीकी अपेक्षा एक मागणाओंमें एक काल धन जाता है । आहारकमिथ्यायोगीका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकूल स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत धन जाता है । तथा ब्रह्मसम्पत्ति और सम्पत्तिप्राप्ति जाँचके मा इसी प्रकार कवन करना चाहिये । कर्मसुकाय योगका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । अतः इसमें नौ नोक्यायोंकी दोहर दोष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय धन जाता है । क्रियु नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विद्यता है । बात यह है कि नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्टस्थिति अपनात अवस्थामें एक भावलिङ्ग तक भी पाई जासकती है परन्तु जीव अधिकसे अधिक हो विद्यते ही उत्पन्न होता है, अतः इसके क्रमणक्रययोग वा समय पाया जाता है और इतिविहारे कर्मणक्रययोगमें नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल वा समय क्या है । नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य काल एक समय तो रह ही है । तथा अनाहारक जीवोंके इसी प्रकार जानना क्योंकि संसार अवस्थामें यहाँ परमणक्रययोग होता है यहाँ अनाहारक अवस्था पाई जाती है ।

§ ५१ वेदमन्त्रांशके अनुवादे स्त्रीपरियोंमें मिथ्यात्व, साहक्याय और नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका धन आपके समान है । तथा अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्पत्ति और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अधिक पचन पत्य है । अनुकूलपरियोंमें मिथ्यात्व साहक्याय और नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल आपके समान है । तथा अनुकूल स्थितिका जपन्य काल

उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगगलपरियट्टा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०, अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीस साग० सादिरेयाणि । असंजद० एवुंसयभंगो णवरि मिच्छ० सोलसक० अणुक्क० जह० अतोमु० ।

§ ५०६. चत्तारि कसाय० मणजोगिभंगो । मदिस्सुदअण्णा० ओघं । एवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० उक्क० एइंदियभंगो । एवं मिच्छादि० । अभव० एवं चेव एवरि सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेइंदियभंगो ।

एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। असंयत सम्यग्दृष्टियोंका भंग नपुसकोंके समान है। किन्तु विशेषता इतनी है कि इनमें मिध्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है।

**विशेषार्थ—**स्त्रीवेदका उत्कृष्ट काल सौ पल्यप्रथक्त्व है, अतः इसमें उपर्युक्त छन्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना चाहिये। जो अट्टाईस या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पूर्व पर्यायमें स्त्रीवेदी है और वहासे मरकर तथा अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिध्यादृष्टि होकर पचवन पल्यकी उत्कृष्ट आयुके साथ देवपर्यायमें स्त्रीवेदी हुआ उसके साधिक पचवन पल्य तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जासकती है, अतः स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पल्य कहा है। शेष कथन सुगम है। एक जीव निरन्तर नपुसकवेदके साथ अनन्त काल तक रह सकता है अतः नपुसकवेदमें मिध्यात्व आदि छन्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा। तथा जो पूर्व पर्यायमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला नपुसकवेदी है और वहा से च्युत होकर तेतीस सागरकी आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके साधिक तेतीस सागर काल तक सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ता पाई जा सकती है अतः इन दो प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है शेष कथन सुगम है। असंयतों का सब कथन नपुसकोंके समान है किन्तु मिध्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें उक्त प्रकृतियों को उत्कृष्ट स्थिति बाधी अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थिति बाधी उसके नपुसकवेदमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है पर ऐसा जीव मरकर भी असंयत ही रहता है, अतः असंयतके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा है।

§ ५०६ चार कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है। मत्यज्ञानी और श्रुतान्नानियोंके ओघके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान है। इसी प्रकार मिध्यादृष्टिजीवोंके जानना चाहिये। अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व नहीं हैं। विभगज्ञानियोंका भंग सातवीं पृथिवीके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

**विशेषार्थ—**एक समय और अन्तमुहूर्त सामान्यकी अपेक्षा चारों कषायों और मनोयोगका काल समान है, अतः चारों कषायोंमें मनोयोगके समान कथन करनेकी सूचना की। मत्यज्ञानी

१५०७ आभिषि०-सुद०-मोहि० मिच्छ०-सम्म०-सम्मापि०-अर्णताणु०  
 पउक्क०-वारसक०-एवणीक० उक्क० महण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० उ०  
 मंतोसु०, उक्क० आबडिसागरा० सादिरयाणि । अर्णताणु०-उउक्क० देसूणाणि वा ।  
 एवमोहिदंस०-सम्मादि० । पउय० एव० चेव । एवरि सम्म०-वारसक० [एवणोक्क०]  
 आबडिसाग० पडिमुग्गाणि । संसाणं दसूणाणि । मणपज्ज० सम्बपयदीणमुक्क०  
 महण्णुक्क० एवस० । अणुक्क० म० मंतोसुहुत्त, उक्क० पुम्बकोदी दण्णा । एव०  
 संमद०-परिहार०-संमदासमद० । सामाइयद्धेदो० एव० चेव । एवरि उउवीसप०  
 अणुक्क० मह० एगस० ।

और बुद्धाज्ञानी जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व पदके अस्वीकारके भागप्रमाण  
 काल तक ही पाया जाता है अतः इनके एक ही प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल  
 एकेन्द्रिकके समान रहा । शेष कथन सुगम है । अमर्षोमें भी द्वेषीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और  
 असुरकृत स्थितिका अपम्य और उत्कृष्ट काल ओपके समान बन जाता है । इनके सम्यक्त्व और  
 सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ता नहीं होती यह स्पष्ट ही है । विमंगलानमें सातवीं पृथिवीके समान  
 और सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकूल स्थितिका अपम्य और उत्कृष्ट काल ता बन जाता है  
 किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल नहीं बनता क्योंकि  
 विमंगलान मिध्यावृष्टिके हाता है और मिध्यावृष्टिके इन दो प्रकृतियोंकी सत्ता पम्यके अस्वीकारमें  
 भागप्रमाण काल तक ही पाई जाती है ।

१६०० आभिनिवाधिकृतानी मृतग्रामी और अश्वपिज्ञानी जीवोंमें मिध्यात्व सम्यक्त्व  
 सम्यग्मिध्यात्व अनन्तानुबन्धी अनुकूल बाह्य कृपाय और नो मोक्षप्राप्तिकी उत्कृष्ट स्थितिका  
 अपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुकूल स्थितिका अपम्य काल अन्तमु हुते और  
 उत्कृष्ट काल साधिक क्षयासत् सागर है अथवा अनन्तानुबन्धी अनुकूलता कुछ कम क्षयासत्  
 सागर है । इसी प्रकार अश्वपिज्ञानी और सम्यग्मिध्यात्व जीवोंके ज्ञानता चाहिये । वरुणमण्यवृष्टि  
 जीवोंके भी इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि इनमें सम्यक्त्व पाह  
 कृपाय और नो मोक्षप्राप्तिकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा क्षयासत् सागर है शेषका कुछ  
 कम क्षयासत् सागर है । मन्त्रायमज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपम्य और  
 उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकूल स्थितिका अपम्य काल अन्तमु हुत और उत्कृष्ट काल कुछ  
 कम पूर्वकाटि है । इसी प्रकार संयत परिहारविमुक्तिवृत्त और मंत्रयामयवर्गके ज्ञानता चाहिये ।  
 सामाधिकृतवृत्त और ज्ञेयवस्थापनामंत्रयाम जीवोंके इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी  
 विवेचना है कि इनमें बीबीस प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका अपम्य काल एक समय है ।

विद्युत्पायु-सम्यग्मिध्यात्व जीवके सम्यक्त्व प्रदण करके परस समयमें ही सब प्रकृतियोंकी  
 उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अतः मतिज्ञानी, बुद्धिज्ञानी और अश्वपिज्ञानी जीवके सब प्रकृतियोंकी  
 उत्कृष्ट स्थितिका अपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय रहा । तथा इन मार्ग्याओका अपम्य काल  
 अन्तमु हुत और उत्कृष्ट काल साधिक क्षयासत् सागर है, अतः सबकी अनुकूल स्थितिका अपम्य  
 काल अन्तमु हुते और उत्कृष्ट काल साधिक क्षयासत् सागर रहा । किन्तु अनन्तानुबन्धी अनुकूल  
 अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम क्षयासत् सागर भी प्राप्त हाता है क्योंकि वरुणमण्यवृष्टि  
 के समयमें से मिध्यात्व आदि तीन प्रकृतियोंके अथवा कारण परा इन पर और अनन्तानुबन्धी  
 अनुकूलके विमंगलान कालका मिला देन पर देवान क्षामत् समय प्राप्त हाता है । अब यदि



१ ५०८. किण्ह-णील-काउ० तेउपम्मलेस्सामु मिच्छत्त०-सोलसक०-एवणोक० उक्क० ओधं, अणुक्क० जह० एगस० । णवरि किण्हणीलकाउ० मिच्छ० सोलस० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सुक्कले० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमु० । अणुक्क० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी ।

इसमें प्रारम्भ में हुए उपशम सम्यक्त्वके कालको मिला दिया जाता है तो साधिक छ्यासठ सागर प्राप्त हो जाते हैं और यही सबव है कि अवधिज्ञानी आदि मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर भी स्वीकार किया है। अवधिदर्शन अवधिज्ञानका अविनाभावी है अतः अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानके समान व्यवस्था जानना। तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार जानना। वेदकसम्यक्त्वमें यद्यपि इसी प्रकार जानना पर इसके सम्यक्त्व और वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छ्यासठ सागर होता है क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व तक वेदक सम्यक्त्वका काल पूरा छ्यासठ सागर है और उक्त प्रकृतियोंका यहा तक सत्त्व पाया जाता है। इससे यह भी तात्पर्य निकल आया कि उक्त प्रकृतियोंको छोड़ कर वेदकसम्यक्त्वमें शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छ्यासठ सागर है। मन पर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है शेष कथन सुगम है। ऊपर संयत आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं इनमें भी इसी प्रकार जानना। यद्यपि सामायिक और छेदोपस्थापनामें काल सन्बन्धी उक्त व्यवस्था घन जाती है पर जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और नौवें गुणस्थानमें एक समय तक रह कर मर जाता है उसके सामायिक और छेदोपस्थापना समयमें चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है।

१ ५०८ कृष्ण, नील कापोत पीत और पद्म लेश्याओंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त है और उपर्युक्त सभी लेश्याओंमें उपर्युक्त सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। शुक्ल-लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है। तथा अनन्तानुबन्धीका एक समय भी है। और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—कृष्णादि पाच लेश्याओंके रहते हुए मिथ्यात्व और सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है तथा सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकपायोंमें संक्रमण हो

१५०६ तद्व्य० भासक०-णवणाक० [ उक्क० ] महण्णुक्क० एगस० ।  
अणुक्क० ज० अंतोसु०, उक्क० वेचोस सागरोवमाणि सादिरैयाणि । सासण०  
सव्वपयदी० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० आसि-  
याओ । असण्णी० एइ दिपर्मवो ।

सकृता इ अतः इत्तं मिप्यारयादि ब्रह्मस्य प्रकृतयोऽंशो रुद्रश्च स्थितश्च अपन्य और उत्कृष्ट  
काल भाषके समान कदा ह । जो पीठ और पद्यशेरयायाभा जाय मर कर तिर्यैबोमें उत्पन्न  
हाता हे यदि यह मरनेके पहले क्वात्स्य समर्थमें मि बाल्य भाषिकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके  
अन्तमें अनुकृत स्थितिका प्राप्त करता हे तो उनके पीठ और पद्य क्षर्यामें अनुकृत स्थितिका  
अपन्य काल एक समय पाया जाता हे । किन्तु कृष्णादि तीन अष्टम शेरयाए मरनेके पश्चात् भी  
एक अन्तमु हुते काल तक वनी रहती हैं, अतः इत्तं उक्त प्रकृतियोंको अनुकृत स्थितिका अपन्य  
काल अन्तमु हुते ही प्राप्त हाता हे । तथा पांचों शेरयाओंमें एक प्रकृतियोंकी अनुकृत स्थितिका  
उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमास्य हे यह सुगम ह । सम्यक्त्व और सम्यगिभ्या  
त्वकी उत्कृष्ट स्थिति बहक सम्यक्त्वके प्रस्य करनेके पहले समयमें ही हो सकती हे अतः पांचों  
शेरयाओंमें एक दानों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पदा हे ।  
तथा वृत्तनाके अन्तिम समयमें जो कृष्णादि शेरयाओंको प्राप्त हात हैं उनके कृष्णादि शेरयाओंमें  
सम्यगिभ्यात्वकी अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय पाया जाता हे । पर सम्यक्त्वकी  
अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कृष्ण और मांस क्षर्यामें वृत्तनाकी अपेक्षा और  
अधोत आदि तीन शेरयाओंमें कृतकत्वबेहक सम्यक्त्वकी अपेक्षा बानना चाहिये । तथा एक  
दोनों प्रकृतियोंकी अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमास्य हे यह स्पष्ट ही हे ।  
दुक्कशेरयामें मिप्यार्य आदि ब्रह्मीस प्रकृतियोंको उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही सम्भव हे,  
अत इसमें एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कदा हे । तथा  
दुक्क शेरयाका अपन्य काल अन्तमु हुते हे अतः इसमें एक उत्कृष्ट प्रकृतियोंकी अनुकृत  
स्थितिका अपन्य काल अन्तमु हुते कदा हे । तथा अन्तगतुत्कृष्टी अनुकृष्टी विरंथाजना किया  
हुआ जो दुक्कशेरयावाला जाय मिप्याटाये हा गया और दूसरे अनयम उसकी शर्या पदल गई  
उसके अनन्तगतुत्कृष्टी अनुकृष्टी अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय भी पाया जाता ह ।  
तथा अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थिति प्रमास्य हाता हे यह स्पष्ट ही हे । तथा सम्यक्त्व  
और सम्यगिभ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुकृत स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् पठित  
कर लेना चाहिये इससे इसमें कोई निश्चयता नहीं ह ।

१५०६. द्वायिक सम्यक्स्थितिमें वारु क्वाय और ना नाट्यपर्याका उत्कृष्ट स्थिति  
अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृत स्थिति अपन्य काल अन्तमु हुत और उत्कृष्ट  
काल साधिक वेतास सागरप्रमास्य ह । सासादन सम्यक्स्थितिमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय और  
उत्कृष्ट काल धर आसिमीप्रमास्य हे । अंतद्विषयमें एकद्विषयोंके समान भग हे ।

विशेषार्थ-द्वायिक सम्यक्स्थिति प्राम हानक पहले समयमें ही वारु क्वाय और ना  
मात्रपार्योंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव हे अतः इसमें एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य  
और उत्कृष्ट काल एक समय कदा हे । तथा द्वायिक सम्यक्त्वमें संसारमें अपन्य काल अन्तमु हुते  
और उत्कृष्ट काल साधिक वर्तिस सागर ह अतः इसमें अनुकृत स्थितिका अपन्य काल  
अन्तमु हुते और उत्कृष्ट काल साधिक वर्तास सागर पदा ह । सासादन सम्यक्त्वक पहले

§ ५१० आहारि० मिच्छत्त सोलसक०-गवणोक० उक्क० ओघ । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेळावट्टिसागरो० सादिग्गैयाणि ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

\* जहण्णाट्टिदिसंतकम्मियकालो ।

§ ५११, अहियारसंभालणवक्कमेदं सुगमं ।

\* मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-तिवेदाणं जहणुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ५१२, कुदो ? जहण्णाट्टिदिसत्तुप्पण्णविदियसमए चेत्त एदासिं पयडीणं जहण्णाट्टिदीए विणासुवलंभादो । सो वि ए अजहण्णाट्टिदिगमणेण विणासो; विदिय-समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा भासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि प्रमाण कहा है । अनङ्घियोंमें एनेन्द्रिय प्रधान हैं अतः असं-क्षियोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा है ।

§ ५१० आहारकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल माधिक दो बार छघासठ सागर है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि छठ्ठीस प्रकृतियोंकी ओघके सम न उत्कृष्ट स्थिति आहारक जीवोंके ही हो सकती है अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है । जो उपान्त्य समयमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करके अन्तसमयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे समयमें अनाहारक हो जाता है उस आहारकके उक्त छठ्ठीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब जघन्य स्थितिसत्कर्मका काल कहते हैं ।

§ ५११ अधिकारके सम्हालनेके लिए यह सूत्र वाक्य आया है । जो कि सरल है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति सत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ५१२, शका—इनका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जघन्य स्थितिसत्त्वके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका विनाश हो जाता है । यह विनाश भी अजघन्य स्थितिको प्राप्त करनेसे नहीं होता ।

समप गिस्संतमाडुवर्लमादो ।

० छण्णोकसायाण अहण्णद्विदिसतकम्मियकाओ अहण्णद्वस्सेण भतोमुहुत्तं ।

§ ५१३ अदाधेदो खिसेयपहाणो, तस्स वदि एसो कालो पेप्पदि तो अण्णो-  
कसायाणं अहण्णद्विदीए कालस्स भंतोमुहुत्तं जुज्जदे; विदियद्विदीए द्विदण्णोकसाय  
द्विदीए परिमकंइयसरूवेण मभदिदाए परिमद्विदिकंइयत्तवीरणदामेत्तकालम्मि  
सम्भखिसेयाणं गल्लेण पिणा अब्हाजुवर्लमादो । छ अहण्णद्विदीए भंतोमुहुत्त  
मुपल्लमदे; तस्य कालस्स पहायत्तुवर्लमादो पि ? ए एस दोसो, अहण्णद्विदि-अहण्ण  
द्विदिअहण्णद्वेदाणं अहणसहुचारणाइरिपहि खिसेयपहायाणं गहखादो । छकस्सद्विदी  
उक्कस्सद्विदिमदाधेदो च उक्कस्सद्विदिसमयपवदम्मिसगे मोत्तूण णाणासमयपवद  
गिसेयपहाणा तेण भंतोमुहुत्तकालावहाणं अण्णोकसायअहण्णद्विदीए जुज्जदि पि ।  
पुब्बिन्सवत्साणामेदेण सुत्तैण सह किप्प विरु-मदे ? सभमेदं विरुमदे चेव, किंतु  
उक्कस्सद्विदि-उक्क-द्विदिमदाधेद-अहण्णद्विदि-अ द्विदिमदाधेदाणं मेदपक्खयइ  
त वत्सायं क्य वत्साणाइरिपहि । सुण्णिगुत्तुचारणाइरियाणं जुण एसो णाहिप्पाओ;

किंतु दूसरे समयमें इनका निसत्त्वभाव पाया जाता है । अतः एक प्रकृतिबोधी अथवा स्विति का अथवा काल एक समय कहा ।

० अह नोक्कपायोके अथन्य स्थिति सत्कर्मका सपन्य और उत्कृष्ट काल भन्तमुहुत्तं है ।

§ ५१३ शंका-अज्ञाच्छेद निरेक्षयान है । उसका यदि यह काल लिया जाता है तो अह नोक्कपायोकी अथवा स्थिति का काल भन्तमु हुत्तं बन जाता है क्योंकि द्वितीय स्थितिमें स्थित अह नोक्कपायोकी स्थितिके अन्तिम क्षणरूपमें अवस्थित रहमपर अन्तिम स्थितिक्षणरूपके अन्तीरय काल प्रमाण काल एक सब नियोजको कालमेके बिना अवस्थान पाया जाता है । पर अथवा स्थिति का अवस्थान भन्तमु हुत्तं एक नहीं बन सकता है, क्योंकि उसमें कालकी प्रधानता स्वीकार की गई है ?

समाधान-यह कोई शेष नहीं है, क्योंकि अथवा स्थिति और अथवा स्थितिअज्ञा-  
च्छेदको बतियुक्त आचार्य और अज्ञाच्छेदार्थने निरेक्षयान स्वीकार किया है । तथा उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थितिअज्ञाच्छेद उत्कृष्ट स्थितिबलो समकालिकके निरेक्षोकी अपेक्षा न हो कर माना समकालिकके निरेक्षोकी प्रधानतासे होता है अतः अह नोक्कपायोकी अथवा स्थिति का भन्तमु हुत्तकाल एक अवस्थान बन जाता है ।

शंका-पूर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ विरोधको क्यों नहीं माना होता है ?

समाधान-यह सब है कि पूर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ विरोधका मात्र होता ही है किंतु उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति अज्ञाच्छेदमें तथा अथवा स्थिति और अथवा स्थिति अज्ञाच्छेदमें अदक कथन करनेके लिये व्याख्याताचार्यने अह व्याख्यान किया है । पर पूर्वोक्त-

द्वण्णोकसायजहण्णद्विदीए अंतोमृदुत्तकालुवदेमादो । पुत्रिज्जलवक्खाणं ण भद्दयं  
सुत्तविरुद्धतादो । ण, वग्खाणभेदमदरिग्गणहं तप्पवुत्तीदो पडिवक्खणयणिरायरण  
मृहेण पउत्तएओ ण भद्दयो । ए च एत्थ पडिवक्खणिरायरणमत्थि तम्हा वे वि  
णिरयज्जे त्ति घेतच्च । द्विदि-द्विदिअद्धच्छेदाणं वित्तिमुत्तकत्तारणमहिप्पाएण कथ  
भेदो ? बुच्चदे-सयलणिसेयगयकालपहाणो अद्वाछेदो, सयलणिसंगपहाणा द्विदि त्ति  
ण दोहं पुणरुत्ता । एवं चुणिसुत्तोघं परुविय संपट्ठि जहण्णाजहण्णद्विदीणं काल-  
परुवणहमुच्चारणाइरियवक्खाणं भणिरसामो ।

§ ५१४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेणादेसेण य । मिच्चत्त-वारसक-  
तिण्णिवेद० ज० के० ? जहण्णुकक० एगसमओ । अजहण्ण० केव० ? अणादि-  
अपज्ज० अणादिसपज्जवसिदा । सम्मत्त-सम्मामि० जह० अहण्णुकक० एगसमओ ।  
अज० ज० अंतोमृदुत्तं, उक्क० वे अणदिसागरो० सादिरियाणि । अणंताणु० चउक्क०  
[ जह० ] जहण्णुकक० एगसमओ । अजह० केव० ? अणादिअपज्जवसिदा अणादि-  
सपज्जवसिदा सादिसपज्जवसिदा । जो सो सादिसपज्जवसिदो भंगो तस्म इमो णिहेसो-  
कार और उच्चारणाचार्यका यह अभिप्राय नहीं है, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म नो कपायोंकी जघन्य  
स्थितिका काल अन्तमुर्त कहते हैं ।

शका—पूर्वोक्त व्याख्यान समीचीन नहीं है, क्योंकि वह सूत्रविरुद्ध है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि व्याख्यानभेदके दिखलानेके लिये पूर्वोक्त व्याख्यानकी प्रवृत्ति  
हुई है । जो नय प्रतिपन्ननयके निराकरणमे प्रवृत्ति करता है वह समीचीन नहीं होता है । परन्तु  
यहाँ पर प्रतिपन्न नयका निराकरण नहीं किया है, अतः दोनों उपदेश निर्दोष हैं ऐसा प्रकृतमे  
ग्रहण करना चाहिये ।

शंका—तो फिर वृत्तिसूत्रके कर्त्ताके अभिप्रायानुसार स्थिति और स्थितिअद्वाच्छेदमें भेद  
कैसे हो सकता है ?

समाधान—सर्वनिपेकगत कालप्रधान अद्वाच्छेद होता है और सर्वनिपेकप्रधान स्थिति  
होती है इसलिये दोनोंके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

इस प्रकार चूणिसूत्रकी अपेक्षा आघका कथन उसके अब जघन्य और अजघन्य स्थितियोंके  
कालका कथन करनेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानको कहते हैं—

§ ५१५ अब जघन्य स्थितिके कालका प्रकरण है । उमनी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमे से ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, चारह कपाय और तीन  
वेदोंकी जघन्य स्थितिका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य  
स्थितिका काल कितना है ? अनादि-अनन्त और अनादि सान्त काल है । सम्यक् और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थिति-  
का जघन्य काल अन्तमुर्त्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो ज्ज्यासठ सागर है । अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका काल  
कितना है ? अनन्तानुबन्धी की अजघन्य स्थितिके कालके अनादि अनन्त, अनादि-सान्त और  
सादि सान्त ये तीन विकल्प होते हैं । इनमे जो सादि-सान्त भग है उसकी अपेक्षा यह प्रकृतमे

जहणु० मंतोमु०, उद्ध० अद्रोगगलपरियट्ट वेसुणं । छण्णोक्कसायाणं अह०  
सहण्णुक्क० मंतोमु । ममह० क्व० ? अणादिअपज्जवसिदा अणादिसपञ्चवसिदा ।  
एर्यं मनसि० । गवरि अणादिअपज्जव० णत्थि ।

§ ५१५ भावसेण पेरुपसु मिञ्चत्त०-वारस० भय दुगुंक्षाणं न० जहण्णुक्क०  
एगस० । अत्र० न० एगस०, उद्ध० सगाहिदी । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क०

कथन किया जा रहा है । जबस्य काल अन्तमु हुते और उद्धृत काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-  
प्रमाण है । यह नाक्यायोकी अपम्य स्थितिका अपम्य और उद्धृत काल अन्तमु हुते है । तथा  
अजबम्य स्थितिका चिन्ता काल है ? अनादि-अनन्त और अनादि सन्त काल है । इसी प्रकार  
मर्त्योके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विक्षेपता है कि इनके किसी भी प्रकृतिका अनादि अनन्त  
काल नहीं है ।

विशेषार्थ-मिप्पाल, सम्ममिप्पाल, सम्मक्त्व, सोलह कयाय और तीन वेदोंकी अपम्य  
स्थितिका अपम्य और उद्धृत काल एक समय है इसका अनुशासना पहले किया ही है । तथा सम्मक्त्व  
और सम्ममिप्पालका जोड़कर इनकी अजबम्य स्थिति अनादि अनन्त और अनादि मास्य हाठी है  
क्योंकि अमर्त्योके उक्त प्रकृतियोंकी अजबम्य स्थिति अनादि-अनन्त काल तक पाई जाती है । तथा  
त्रिमूर्ति ब्रह्मणोद्गीय और चारित्रमोद्गीयकी कथना करत हुए उक्त प्रकृतियों की अपम्य स्थितिको  
प्राप्त कर लिया है उनके उक्त प्रकृतियोंकी अजबम्य स्थितिका काल अनादि-सन्त है । किन्तु  
अनन्तानुबन्धी यतुक्कका काल सादि-सन्त भी पाया जाता है । जिसमें सम्मक्त्व और सम्म-  
मिप्पालकी सत्ता प्राप्त करके अन्तमु हुते कालमें उनकी कथना कर ही है उसके सम्मक्त्व और  
सम्ममिप्पालकी अजबम्य स्थितिका अपम्य काल अन्तमु हुते पाया जाता है । तथा सम्मक्त्व  
और सम्ममिप्पालका उद्धृत सत्त्वकाल परसके तीन असेक्यातर्षे भागोंसे अधिक एकसौ बचोस  
समार है अतः इनकी अजबम्य स्थितिका उद्धृत काल उक्त प्रमाण समझना चाहिये । अनन्तानु-  
बन्धी यतुक्ककी अजबम्य स्थितिका काल अनादि अनन्त अनादि-सन्त और सादि-सन्त इस  
सर्व तीन प्रकारमें पहले बतलाया ही है । आ अनादि कालमें अनन्त पर्यतक मिप्पालमें पड़ा है  
इसके अनादि अनन्त काल पाया जाना है । त्रिमूर्ति अनन्तानुबन्धी की विसंयोगता करत हुए अपम्य  
स्थिति प्राप्त कर ही इसके अनादि-सन्त काल पाया जाता है । तथा जिसने विसंयोगता परचातु  
पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त कर लिया इसके सादि सन्त काल पाया जाता है । इनमें से  
सादि-सन्त कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकी अजबम्य स्थितिका अपम्य काल अन्तमु हुते है,  
क्योंकि अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त हान पर एक अन्तमु हुतेके मीतर विसंयोगता प्राप्त पुनः  
सत्त्वा रूप किया जा सकता है । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजबम्य स्थितिका उद्धृत काल कुछ  
कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है यह स्पष्ट है । यह नाक्यायोकी अपम्य स्थितिका अपम्य  
और उद्धृत काल अन्तमु हुते है यह पहले बतला ही थाय है । तथा मिप्पाल आदिक समान यह  
नाक्यायोकी अजबम्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि सन्त पण्ठि कर लेना चाहिये ।  
यह सब व्यवस्था मर्त्योके बन जाती है । इमलिय इनके कवनका आपके समान करा ।  
किन्तु इतनी विक्षेपता है कि मर्त्योके सब प्रकृतियोंकी अजबम्य स्थितिका अनादि अनन्त यह  
विकल्प नहीं पाया जाता ।

§ ५१६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिप्पाल आदि कयाय भय और अनुष्ठाकी  
अपम्य स्थितिका अपम्य और उद्धृत काल एक समय है । तथा अजबम्य स्थितिका अपम्य काल  
एक समय और उद्धृत काल अपनी उद्धृत स्थितिप्रमाण है । सम्मक्त्व और सम्ममिप्पालकी

एगस०, अज० ज० एगस० । उक्क० सगट्टिदी । सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एयस० ।  
अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि । अणंताणु० जह० जहण्णुक०  
एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमयो वा, उक्क० सगट्टिदी । एवं पढमाए । णवरि  
सगट्टिदी० ।

जघन्य स्थितिवा जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पहली पृथिवामे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जो असह्य अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ दो मोडे लेकर नरकमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे मोड़में मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पाई जा सकती है अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसके पहले मोड़में अजघन्य स्थिति पाई जाती है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा जो उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ नरकमें उत्पन्न होता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति नरकके कृतकृत-वेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः नरकियोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिसके कृतकृत्यवेदकके कालमें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा जिसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इन दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । नरकमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तमुहूर्त कालके पश्चात् एक समयके लिये प्राप्त हो सकती है, अतः सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसके पहले अन्तमुहूर्त काल तक अजघन्य स्थिति होती है, अतः सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा है । तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसयोजनाके अन्तिम समयमें होती है, अतः नरकमें इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिसने विसयोजनाके पश्चात् पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त कर ली है और अन्तमुहूर्त कालके भीतर पुनः उसकी विसयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त पाया जाता है । तथा विसयोजना किया हुआ जो जीव सासादनमें जाकर और दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । पहले नरकमें इसी प्रकार

§ ५१६ विद्यादि भाव इति चि मिच्छत धारसक०-गवणो० ज० ब्रह्णु०  
 एगस । अत्रहण्य० [ ब्रह्णु० ] नहण्यु०स्सद्विदी फापवा । सम्पत्त-सम्पामि० ज०  
 ब्रह्णु० एगस० । अत्र ज० एगम०, उक्क० सगद्विदी । अणताणु०घरक०  
 अह० नहण्यु० एगस० । अत्र० ज० मताणु० एगसमभा वा, उक्क० सगद्विदी ।  
 सत्तमाए मिच्छत-धारसक०-भय-दुग्धा० नह० ज० एगस० उक्क० अतोमु० । अत्र०  
 ज० अतोमु०, उक्क० सगद्विदी । [सम्पत्त ] सम्पामि० गिरअर्थ । अणताणु०-सत्त  
 णाक० अह० नहण्यु० एगस० । अत्र० नह० अतोमु०, उक्क० सगद्विदी ।

जानना चाहिये । किन्तु अत्रपण्य स्थितिका इत्यत्र कात् इत्त समय एसे पहले नरककी इत्यत्र  
 स्थितिप्रमाण करना चाहिये ।

§ ५१६ दूसरी से लेकर अठौ प्रथिरी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व बारह कथाय आर नौ  
 नाकपायोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और इत्यत्र कात् एक समय इ और अत्रपण्य स्थितिका  
 अपन्य और इत्यत्र कात् अपन्य और इत्यत्र स्थिति प्रमाण करना चाहिये । सम्पत्त आर मय  
 मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य आर इत्यत्र कात् एक समय इ । तथा अत्रपण्य स्थितिका  
 अपन्य कात् एक समय और इत्यत्र कात् अपनी अपनी इत्यत्र स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी  
 अनुबन्धी अपन्य स्थितिका अपन्य और इत्यत्र कात् एक समय है । तथा अत्रपण्य स्थितिका  
 अपन्य कात् अन्तमु हूत वा एक समय है और इत्यत्र कात् अपनी अपनी इत्यत्र स्थिति प्रमाण  
 है । सातवीं प्रथिरीमें मिथ्यात्व बारह कथाय, मय आर अनुबन्धाकी अपन्य स्थितिका अपन्य कात्  
 एक समय और इत्यत्र कात् अन्तमु हूत है । तथा अत्रपण्य स्थितिका अपन्य कात् अन्तमु हूत  
 और इत्यत्र कात् अपनी इत्यत्र स्थितिप्रमाण है । सम्पत्त और सम्पत्तमिथ्यात्वकी स्थितिका कात्  
 सामान्य नारकियोंके समान इ । अनन्तानुबन्धी अनुबन्धी आर सात नौकपायोंकी अपन्य स्थितिका  
 अपन्य और इत्यत्र कात् एक समय तथा अत्रपण्य स्थितिका अपन्य कात् अन्तमु हूत और  
 इत्यत्र कात् अपनी इत्यत्र स्थिति प्रमाण इ ।

विशुपार्थ-द्वितीयादि प्रथिवीयम मिथ्यात्व, बारह कथाय आर नौ नाकपायोंकी अपन्य  
 स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है अतः यहाँ उक्त प्रवृत्तियोंकी अपन्य स्थितिका  
 अपन्य और इत्यत्र कात् एक समय करा । पर यह अपन्य स्थिति इसा जीवक हाती है जिसने  
 इत्यत्र आयुके साथ नरकमें इत्यत्र होकर पहला अन्तमु हूत कामके भीतर उपशम सम्पत्त प्राप्त  
 कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयाजना करके वा जीवन भर ब्रह्म सम्पत्ति बना रहा  
 है । शय जीवोंके ता एक कर्माकी अत्रपण्य स्थिति ही हाती है, अतः द्वितीयादि नरकोंमें एक  
 कर्माकी अत्रपण्य स्थितिका अपन्य कात् अपनी अपनी अपन्य स्थितिप्रमाण और इत्यत्र कात्  
 अपनी अपनी इत्यत्र स्थितिप्रमाण करा । यहाँ सम्पत्त आर सम्पत्तमिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका  
 अपन्य और इत्यत्र कात् एक समय तथा अत्रपण्य स्थितिका अपन्य कात् एक समय इत्यत्राकी  
 अपना पटित कर लेना चाहिये । शय कपन सुगम इ क्योंकि इसमें पहले मुक्तासा कर पाप है  
 वही प्रकर बह भी कर लेना चाहिये । सातवीं प्रथिरीयम मिथ्यात्व बारह कथाय, मय आर  
 अनुबन्धाकी अपन्य स्थिति पयायक अन्तमें एक समय तक वा अन्तमु हूत कात् एक प्राप्त हो  
 सकती है अतः इसके इत्त प्रवृत्तियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य कात् एक समय और इत्यत्र कात्  
 अन्तमु हूत करा । अनन्तानुबन्धीकी अपन्य स्थिति विसंयाजनाके अन्तिम समयमें तथा सात  
 नाकपायोंकी अपन्य स्थिति अन्त अन्तिम अन्तमु हूतक मात्त प्रवृत्त प्रवृत्तियोंके अन्तकात्तक



§ ५१७. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुंझा जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अमखेज्जा लोगा । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोत्रमाणि सादिरैयाणि । अणताणु०चउक्क० [ ज० ] जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । सत्तणोक्क० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० खुदाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखे० पो०परियट्ठा ।

§ ५१८. पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त०-वारसकसाय-भय-दुगुंझ० जह० ज० एगस०, उक्क० वेममया । अज० ज० खुदाभवग्गहणं [ अंतोमुहुत्तं ] विसमऊणं एगसमओ वा, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुव्व-क्कोडिपुधत्तेण०भहियाणि । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं सत्तणोकसायाणं । णवरि अणताणु० अज० ज० एगसमओ वा ।

अन्तिम समयमें प्राप्त होती हैं अतः इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५१७ तिर्यचोमे मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सात नोक्पायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्गहण प्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५१८ पंचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतिर्योमे मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुदाभवग्गहण प्रमाण, दो समय कम अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । इसी प्रकार सात नोक्पायोंका जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी है ।

१५१६ पंचिदियतिरिखुमपञ्च० मिन्ध्यत्त०-सोत्सक० भय-दुर्गुषार्णं अह०  
 ङ० एगस०, उक्क० पे समय। अञ्च० ज० सुदामवग्गहर्णं दुसमऊर्णं एयसमओ  
 वा, उक्क० मंतोमु० । सम्मत्त-सम्मापि० अह० जहण्णुक्क० एगस० । अञ्च० ज०  
 एगस०, उक्क० मंतोमु० । उत्तपो० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अञ्च० जहण्णुक्क०  
 मंतोमु० । एव मणुसअपञ्च० पंचिदियमपञ्च०-उसमपञ्चत्तार्णं ।

१५१६ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तिकोर्मि मिध्यात्व मोलह क्वाय मय और न्युप्लाकी  
 अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अत्रम्य स्थितिका  
 अत्रम्य काल दो समय कम सुदामवग्गहर्णं प्रमाण या एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमु हूत है ।  
 सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा  
 अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । मात नोक्याबोधी  
 अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य और  
 उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त  
 बीषोके जानना चाहिये ।

त्रिषोपार्य—तिर्यचोर्मि मिध्यात्व चारह क्वाय मय और न्युप्लाकी अत्रम्य स्थिति बाहर  
 एकेन्द्रियोर्मि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमु हूत काल तक प्राप्त होती  
 है अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल  
 अन्तमु हूत कहा है । तथा जो तिर्यच अत्रम्य स्थितिके पदचान् एक समय तक एक प्रकृतियोंकी  
 अत्रम्य स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें सर कर अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया उसके एक  
 प्रकृतियोंकी अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य काल एक समय होता है । तिर्यचोर्मि एक प्रकृतियोंकी  
 अत्रम्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है, क्योंकि सूत्रम एकेन्द्रियोर्मि अत्रम्य  
 स्थिति नहीं होती और सूत्रम एकेन्द्रियोर्मि रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है, अतः एक  
 प्रकृतियोंको अत्रम्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मि  
 ध्यात्वकी अत्रम्य और अत्रम्य स्थितिका काल नास्तिकियोंके समान जानना । किन्तु अत्रम्य  
 स्थितिके उत्कृष्ट कालमें विद्येता है । बात यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके साथ कोई  
 बीष तिर्यचपर्याप्तोर्मि अधिकसे अधिक साधिक (पूर्वकोटि पूर्वस्व अधिक) तीस पद तक रह सकता है,  
 अतः इनमें एक दो प्रकृतियोंकी अत्रम्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पद कहा ।  
 तिर्यचपर्याप्तोर्मि अमन्तलुब्धकीकी अत्रम्य स्थितिके साथ निरन्तर रहनेका काल असंख्यात  
 पुरुगत्त परिवर्तन है अतः इनमें अमन्तलुब्धकीकी अत्रम्य स्थितिका उत्कृष्ट काल एक प्रमाण  
 कहा । अमन्तलुब्धकीकी अपेक्षा शेर काल सामान्य नास्तिकियोंके समान जानना । वा क्वायोकी  
 अत्रम्य स्थितिका काल करके पदचान् प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका तिर्यचकाल एक काल करता है उसके  
 प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके कालके अन्तिम समयमें सात नोक्याबोधी अत्रम्य स्थिति होती है, अतः सात  
 नोक्याबोधी अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा तिर्यच पर्याप्तोर्मि  
 रहनेका अत्रम्य काल सुदामवग्गहर्णं प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुरुगत्त परिवर्तन प्रमाण  
 है अतः मात नोक्याबोधी अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य काल सुदामवग्गहर्णं प्रमाण और उत्कृष्ट  
 काल असंख्यात पुरुगत्त परिवर्तन प्रमाण कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिके पहले और दूसरे  
 विश्वके समय अत्रम्य स्थिति हो सकती है अतः इनके मिध्यात्व बाह्य क्वाय मय और  
 न्युप्लाकी अत्रम्य स्थितिका अत्रम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । तथा

§ ५२०. मणुस-मणुपपज्जत्त-मणुस्सिणीसु मिच्छत्त-वारमरु०-णवणोरु० जह० ओघं० । अज० ज० खुद्दाभवग्रहणं अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० छण्णोकसायभगो । मणुसिणीसु अट्ठणोक० जह० जहणुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ५२१ देवाणं णेरइयभंगो । भरण०-वाणवेंतराणमेत्तं चेत्र । एवरि सगट्ठिदी ।

इन दो समयोंको घटा देने पर पंचेन्द्रिय तिर्यचोके दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यचोंके दो समय कम अन्तमुहूर्त अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जिस पंचेन्द्रियतिर्यच त्रिकके भवके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति हुई उसके पहले समयमें अजघन्य स्थिति होता है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी सम्भव है । शेष कथन सुगम है । इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल उद्देलनाकी अपेक्षा ही घटित करना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त अवस्थामें रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पूर्वमें कहे हुए कालको ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिये । मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंकी स्थिति और पर्याय पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ५२०. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें खुदाभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्तकोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भग छह नोकपायोंके समान है और मनुष्यनियोंमें आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण तथा पर्याप्त और मनुष्यनियोंका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, अतः सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व आदि बाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और पर्याप्त तथा मनुष्यनियोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । तथा मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डके शेष रहने पर जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल छह नोकपायोंके समान अन्तमुहूर्त कहा । इसी प्रकार मनुष्यनियोंके आठ कपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२१. देवोंमें नारकियोंके समान जानना चाहिये । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी

मोदिसियादि श्राव उबरिमगोवञ्जो चि मिच्छत्त-वारसक० एवणोक्क० अह० जहण्णुक्क० एगस० । अज्ज० ज० जहण्णुहिदी, उक्क० उक्कस्सहिदी । सम्मत्त-सम्मापि०-अर्णताणु० षठ्ठकाणं देवोपमंगो । एवरि अव्यप्यणो उक्कस्सहिदी वतम्भा । मणुविसादि श्राव अवरारिद्ध० मिच्छत्त-सम्मापि०-वारसक०-एवणोक्क० अ० जहण्णुक्क० एगस० । अज्ज० अह० ज० हिदी, उक्क० उक्कस्सहिदी कायम्भा । सम्मत्त-अर्णताणु० षउक्क० देवोपं । एवरि अर्णताणु० अज्ज० एयसमयो एत्थि । सम्भट्ठ० मिच्छत्त०-सम्मापि०-वारसक० एवणोक्क० अह० जहण्णुक्क० एयसमयो । अज्ज० अह० तेचीसं सागरोव० समकखाणि, उक्क० तेचीसं सागरोवमाणि सपुण्णाणि । सम्मत्त० अर्णताणु० अह० जहण्णुक्क० एयस० । अज्ज० अह० एयसमयो अंतोसु०, उक्क० तेचीसं सागरो० ।

इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिलेपता है कि इनके अपनी स्थिति करने चाहिये । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम प्रेयेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व बारा कयाव और नौ नोक्यायोंकी ब्रह्म स्थितिका ब्रह्म और उक्त काल एक समय तथा अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म काल सपय स्थितिप्रमाण और उक्त काल उक्त स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तालुब्धी अतुच्छ मंग सामान्य देवोंके समान है । किन्तु इतनी बिलेपता है कि अपनी अपनी उक्त स्थिति करने चाहिये । अमुविधिसे लेकर अपराधित तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व बारा कयाव और नौ नोक्यायोंकी ब्रह्म स्थितिका ब्रह्म और उक्त काल एक समय है । तथा अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म काल ब्रह्म स्थितिप्रमाण और उक्त काल उक्त स्थितिप्रमाण करना चाहिये । सम्यक्त्व और अनन्तालुब्धी अतुच्छ काल सामान्य देवोंके समान है । किन्तु इतनी बिलेपता है कि इनके अनन्तालुब्धी अतुच्छकी अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म काल एक समय नहीं है । सर्वाधिष्ठितमें मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व बारा कयाव और नौ नोक्यायोंकी ब्रह्म स्थितिका ब्रह्म और उक्त काल एक समय है तथा अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म काल एक समय कम तेचीस सागर और उक्त काल पूरा तेचीस सागर है । सम्यक्त्व और अनन्तालुब्धी अतुच्छकी ब्रह्म स्थितिका ब्रह्म और उक्त काल एक समय तथा अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म काल सम्यक्त्वाका एक समय और अनन्तालुब्धी अतुच्छका अन्तमु हृत और उक्त काल दोनोंका तेचीस सागर है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सामान्य नाटकियों सब प्रकृतियोंकी ब्रह्म और अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म और उक्त काल बतला भाये हैं वही प्रकार सामान्य देवोंके जानना । तथा सबनवासी और स्पष्टर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि इनके अजब्रह्म स्थितिका उक्त काल अपनी-अपनी उक्त स्थितिप्रमाण जानना चाहिये । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम प्रेयेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व बारा कयाव और नौ नोक्यायोंका ब्रह्म स्थिति मन्के अन्तिम समझों सम्यक् है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी ब्रह्म स्थितिका ब्रह्म और उक्त काल एक समय कला । पर यह ब्रह्म स्थिति उक्त स्थितिबतले सम्बन्धित देवोंके सम्यक् है, अतः उक्त कर्मोंकी अजब्रह्म स्थितिका ब्रह्म काल अपनी अपनी ब्रह्म स्थितिप्रमाण और उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण कला । शेष काल सुगम है । अमुविध आधिक्यमें इसी प्रकार जानना चाहिये । पर इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी ब्रह्म स्थितिका काल मिथ्यात्वके समान पठित करके कहना चाहिये क्योंकि अमुविधिसे इकर उपरके सब देव सम्बन्धित ही होते हैं,

§ ५२२. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० भय-दुगुंछाणं [जह०] जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-सम्मामि० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्ज० भागो । सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमेइंदियाणं । वादरेइंदियाणमेवं चैव । णवरि सगट्ठिदी । वादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०; उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्सभंगो । सत्तणोक० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । वादरेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० ज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एगमगओ । अज० ज०

अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना सम्भव नहीं । तथा जो उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाला जीव भवके अन्तमें सासादनमें जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । पर यहाँ कोई भी जीव सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता अतः यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय सम्भव नहीं । सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयुका भेद नहीं ! तथा वहाँ भवके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व आदि वेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वहाँ जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देने पर अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२२. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपजके असख्यातवें भागप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । वादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिये । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सालह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वष हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । सात नाकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष हैं । वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट

एगसमघो, उक्त० अंतोमु० ।

१५२३ सन्धविगतिद्विय० मिष्यस-सौससक मय-दुगु छ० न० न० एगसमघो, उक्त० बसमया । अज० न० सुहामवगहणं अंतोमुहुत्तं भिसमऊणं एयसमया वा, उक्त० अपप्यजो उक्तस्सहिदी । सन्धत्त-सम्नामि० मह जहण्युक्त० एगस० । अज० न० एगस०, उक्त० सगहिदी । सत्तणोक्त० न० जहण्युक्त० एगस० । अज० अ० अंतोमु०, उक्त० सगहिदी ।

१५२४ पचिद्विय-पचि०पञ्ज०-तस-तसपञ्ज० मिष्यत्त-भारसक०-खदणोक्त०

फल एक समय तथा अज्ञपम्ब स्वातन्त्र्य अथम्ब काज्ञ एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं है ।

विशुपार्थ-एकेन्द्रिय, भावर एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अजपर्याप्त, सुखम एकेन्द्रिय और सुखम एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अजपर्याप्त बीबीके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिका विचार करके सब प्रकृतियों की अज्ञपम्ब स्थितिका उत्कृष्ट फल करना चाहिये । परन्तु एकेन्द्रियोंमें अथम्ब स्थिति केवल भावर पर्याप्तके ही होती है सुखके अथम्ब नहीं होती और सुखमोक्त उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है अतः एकेन्द्रियोंमें अज्ञपम्बका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा है । वयपि एकेन्द्रियोंमें अज्ञपम्बकी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है, फिर भी इनके सम्बन्ध और सम्बन्धिण्यात्वकी अज्ञपम्ब स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्नके असंख्यातके भगप्रमाण ही प्राप्त होता है क्योंकि मिष्याद्वि बीबके इससे अधिक फल तक इनकी सत्ता नहीं पाई जाती । तथा इन पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि बीबीमें जो अथम्ब स्थितिके पहचान एक समय तक अज्ञपम्ब स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर गया उसके सम्बन्ध और सम्बन्धिण्यात्वके बिना शेष सब प्रकृतियोंका अज्ञपम्ब स्थितिका अथम्ब फल एक समय प्राप्त होता है । तथा इनके सम्बन्ध और सम्बन्धिण्यात्वकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब और उत्कृष्ट काल तथा अज्ञपम्ब स्थितिका अथम्ब फल एक समय उद्वेगनाही अपेक्षा कहा है । तथा मिष्यात्व, साहाय कयाव, मय और जुगुप्साकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब फल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्तं तथा सात नाक्यावाकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब और उत्कृष्ट काल एक समय सामान्य विचाराके समान अपनी अपनी पर्यायमें पठित करके जानना चाहिये ।

१५२३ सब विषमोन्द्रियोंमें मिष्यात्व साहाय कयाव मय और जुगुप्साकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब फल एक समय और उत्कृष्ट काल वा समय है तथा अज्ञपम्ब स्थितिका अथम्ब फल पर्याप्तकोका जाण कर शेषमें वा समय कम सुहामवगहणप्रमाण और पर्याप्तकोमें वा समय कम अन्तमुहुत्तं अथवा एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्बन्ध और सम्बन्धिण्यात्वकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अज्ञपम्ब स्थितिका अथम्ब फल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सात नोक्यावाकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अज्ञपम्ब स्थितिका अथम्ब फल अन्तमुहुत्तं और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशुपार्थ-विषमोन्द्रियोंमें मिष्यात्व साहाय कयाव, मय और जुगुप्साकी अथम्ब स्थितिका अथम्ब फल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा अज्ञपम्ब स्थितिका अथम्ब फल दो समय कम सुहामवगहण प्रमाण और वा समय कम अन्तमुहुत्तं या एक समय एकेन्द्रिय तिर्यक त्रिकके समान पठित कर लेना चाहिये । तथा अज्ञपम्ब स्थितिका उत्कृष्ट फल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

१५२४ एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपर्याप्त अस और अस पर्याप्त बीबीमें मिष्यात्व साहाय कयाव

ज० ओघं । अज० ज० खुदाभवगहणं अंतोमु०, उक्क० मगट्टिदी । मम्मत्त-मम्मापि०  
ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० वे छाणट्टिसागरो० सादिरेयाणि ।  
अणताणु० चउक्क० ज० जहण्णुक्क० एगम० । अज० ज० अंतोमु० [ एगममओ वा ],  
उक्क० मगट्टिदी । एवं चक्खु०-सण्णि त्ति ।

§ ५२५. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-गउ०-वणप्फदि०-णिगोद०

और ना नोकपायोकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल पर्याप्तकोंके विना ओघमें खुदाभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तकोंमें अन्तमुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्त ओर सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार चतुदशनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मिध्यात्व, बारह कपाय और नौ नोरुपायोकी जघन्य स्थितिका काल जो ओघमें कहा है वह पचेन्द्रियादिकी प्रधानतासे कहा है, अतः इन चारोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान जानना । तथा पचेन्द्रिय और त्रसोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और पचेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस पर्याप्तकोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त हागा । तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होगा । इनमें पचेन्द्रियोंका कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक हजार सागर, पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ पृथक्त्व सागर, त्रसकायिकोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रस पर्याप्तकोंकी कायस्थिति दो हजार सागर है । अतः इतने काल तक उक्त जीवोंको उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिके साथ रहनेमें कोई बाधा नहीं है । सम्यक्त्तकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कृतकृत्य वेदकके अन्तिम समयमें हागा । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट एक समय काल उद्वेलना और कृतकृत्यवेदक इन दानोंकी अपेक्षा हो सकता है । तथा इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व साधिक एक सौ बत्तीस सागर तक रह सकता है अत उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर कहा । विसयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और उक्त चारों प्रकारके जीवोंके अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना हो सकती है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसा जीव यदि मिध्यात्वमें जाय और वहा अतिलघु काल तक रह कर और पुन वेदक सम्यक्त्वकी प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर ले ता उसे ऐसा करनेमें अन्तमुहूर्त काल लगता है अतः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । परन्तु आयुके अन्तिम समयमें एक समय कालवाला सासदन हुआ और मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले किसी भी चौबीसती सत्तावाले पचेन्द्रिय या त्रसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२६. कायमार्गणके अनुवाटसे सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अग्नि-

प्रदिव्यमंगो । एवरि सगसगुक्कस्सहिदी वचम्व्वा ।

१ ५२६ पंसमण०-पचवधि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मापि० सोलसक०-उपणोक्क०  
 व्वह० ओर्षं । एवरि व्वण्णोक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्भसिमम०  
 ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । ओगपि० एवं चव । एवरि सगहिदी । एव  
 वेवभिय० । एवरि व्वण्णोक्क० म० व्वहण्णुक्क० एयस० । व्वयमोगि० मिच्छत्त-  
 सोलसक०-एपणोक्क० व्व० मणजोगिमंगो । व्वम० व्व० एगस०, उक्क०  
 व्वज्जतकालो । सम्मत्त-सम्मापि० प्रदिव्यमंगो । ओराखियमिस्स० वादरेइ दिय  
 व्वपव्वत्तमंगो । एवरि सत्तणोक्क० व्वज्ज० नह० अंतोमु० । वेवभियमिस्स०  
 मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मापि०-सोलसक०-गणणोक्क० व्व० व्वहण्णुक्क० एगस० । व्वज्ज०  
 व्वहण्णुक्क० अंतोमु० । एवरि सम्मत्त-सम्मापि० व्वज्ज० व्व० एगसमओ । एवमाहार  
 मिस्स० । एवरि सम्मत्त सम्मापि व्वव० व्वहण्णुक्क० अंतोमु० । आहार० वेवभियमंगो ।  
 एवमकसाय-सुत्तुम०-जहाक्खादसव्वे पि । कम्मव्य० मिच्छत्त-सोलसक०-मय-दुग्गु व्व्वा०

काविक सभी वासुकाविक और सभी निगाह जीवोंमें पकेन्द्रियोंके समान मंग है । इतनी  
 विशेषता है कि इनके अज्ञपम्य स्थितिका व्वत्त काल अपनी अपनी व्वत्त स्थिति प्रमाय व्वना  
 चाहिये । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार पकेन्द्रियोंके सब प्रकृतियोंकी अज्ञपम्य और अज्ञपम्य  
 स्थितिका काल बतला जाने हैं व्वसी प्रकार इनके अज्ञपम्य व्वान लेना चाहिये ।

५५६ पौर्षों मनोयोगी और पौर्षों वचनयोगी जीवोंमें मिष्यात्व सम्बन्ध, सम्बन्धि-  
 प्यात्व सोलह कयाव और नौ नोकयायोंकी अज्ञपम्य स्थितिका काल ओषके समान है । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि व्वह नोकयायोंकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य काल एक समय और व्वत्त काल  
 अन्तमु व्वत है तथा सभी प्रकृतियोंकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य काल एक समय और व्वत्त  
 काल अन्तमु व्वत है । औदारिककाययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि व्वह अपनी स्थिति व्वनी चाहिये । इसी प्रकार वैश्विककाययोगी जीवोंके जानना  
 चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि व्वह नाकयायोंकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य और व्वत्त काल  
 एक समय है । काययोगियोंमें मिष्यात्व सोलह कयाव और नौ नोकयायोंकी अज्ञपम्य स्थितिका  
 मंग मनोयोगियोंके समान है । तथा अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य काल एक समय और व्वत्त  
 अन्त काल है । सम्बन्ध और सम्बन्धिप्यात्वके पकेन्द्रियोंके समान मंग है । औदारिकमिमकाय-  
 यागियोंमें वादर पकेन्द्रिक अज्ञपम्यके समान मंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात  
 नोकयायोंकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य काल अन्तमु व्वत है । वैश्विकमिमकाययोगियोंमें  
 मिष्यात्व सम्बन्ध सम्बन्धिप्यात्व सोलह कयाव और नौ नोकयायोंकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य  
 और व्वत्त काल एक समय तथा अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य और व्वत्त काल अन्तमु व्वत है ।  
 किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्बन्ध और सम्बन्धिप्यात्वकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य काल  
 एक समय है । इसी प्रकार आहारकमिमकाययोगियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है  
 कि इनके सम्बन्ध और सम्बन्धिप्यात्वकी अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य और व्वत्त काल अन्तमु व्वत  
 है । आहारकमिमयोगियोंमें वैश्विककाययोगियोंके समान मंग है । इसी प्रकार अज्ञपम्य  
 सूक्ष्मसांप्रदायिकसंप्रदाय और यथावत्संप्रदाय जीवोंके जानना चाहिए । कर्मसंकाययोगियोंमें  
 मिष्यात्व, सोलह कयाव मय और सुगुप्ताकी अज्ञपम्य स्थिति और अज्ञपम्य स्थितिका अज्ञपम्य



जहण्णाट्टिदि० अजहण्णाट्टिदि० च जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समयया । सम्मत्त-  
सम्माभि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगसमओ, उक्क०  
तिण्णि समयया । एवमणाहारि० ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना ।

**विशेषार्थ**—पाचों मनोयोग और पाचों वचनयोगोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय तथा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय योग परिवर्तनकी अपेक्षा कहा है । शेष कथन सुगम है । औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम चाईस हजार वर्ष है । अतः औदारिक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कथन मनोयोगके समान जानना । जो देव दो वार उपशम श्रेणी पर चढकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले भवके अन्तिम समयमें वैक्रियिककाययोगी होता है उसीके वैक्रियिक काययोगमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वैक्रियिककाययोगमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इसके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति उद्वेजनासे ही प्राप्त होगी क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देव या नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वैक्रियिक मिश्रकाययोगके कालमें ही कृतकृत्यवेदकका काल समाप्त हो जाता है । काययोगका उत्कृष्ट काल असख्यात पुगदल परिवर्तन प्रमाण है अत इसमें मिध्यात्व आदि छत्रवीस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । काययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है उसी प्रकार काययोगमें भी जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय न कहकर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है उसका कारण यह है कि यह जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो कोई वादर एकेन्द्रिय जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त काल तक अपने अपने प्रतिपन्न बन्धक कालमें रहकर प्रतिपन्न बन्धक कालके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके औदारिकमिश्रमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति होती है । औदारिकमिश्रका काल प्रतिपन्न प्रकृतिके बन्ध कालसे बहुत अधिक है । जघन्य स्थितिसे पूर्व व पश्चात् काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति वैक्रियिक मिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें सर्वार्थसिद्धिमें सम्भव है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अपनी प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धकालक अन्तिम समयमें प्रथम नरकमें सम्भव है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति किसी भी समय सम्भव है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिस वैक्रियिकमिश्रकाययोगीक दूमरे समयमें सम्यक्त्व या सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । शेष कथन सुगम है । आहारकमिश्रकाययोगमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी न तो उद्वेजना होती है और न क्षणा, अतः

॥ ५२७ वेदाणुवादेण इत्यिवेदपसु मिञ्जत्त-अहकसाय अहणोकसाय चत्तारि

संभलण० सह० अहण्युकक० एयस० । अम० अ० एगस०, उक्क० सगट्टिवी ।  
 एनं पवु स० । गवरि सह० अहण्युकक० अंतोसु० । सम्मत्त० सम्मामि०  
 अह० अहण्युकक० एगस० । अम० अ० एयस०, उक्क० पणवण्णपस्सिदोवमाणि  
 सादिरेयाणि । अपताणु० वरक्क० न० अहण्युकक० एगस० । अज० अ० अंतोसु०  
 एयसमयो वा, उक्क० सगट्टिवी ।

इन्के लक्ष दो प्रकृतियोंकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्ते क्या है ।  
 तथा इनकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल एक समय पर्याप्त योग होनेके पूर्वैवर्ती  
 समयमें होगा । आहारकालयोगमें वैश्विक कालयोगके समान सब प्रकृतियोंकी स्थितिका  
 अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । मूलमें अज्ञाप्य आदि और बितनी मार्गार्थ गितार्थ  
 हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । कर्मण्य अज्ञाप्यकाल अज्ञाप्य काल एक समय और उत्कृष्ट  
 काल तीन समय है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि ज्ञानीस प्रकृतियोंका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल  
 एक प्रमाण बन जाता है । जो कृतकृत्यवेदके सम्मन्वष्टि जीव कर्मण्यकालयोगके रूढे रूप वाकित-  
 सम्मन्वष्टि हो जाता है उसके कालयोगयोगमें सम्मन्वष्टिकी अज्ञाप्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट  
 काल एक समय पत्ता जाता है । तथा जिसमें कर्मण्यकालयोगमें सम्मन्वष्ट्यात्वकी श्रेयज्ञता की  
 है उसके लक्ष प्रकृतिकी अज्ञाप्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है ।  
 सात नोक्यायोंकी अज्ञाप्य स्थिति कर्मण्यकालयोगके दूसरे समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी  
 अज्ञाप्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्या । तथा कर्मण्य अज्ञाप्यमें लक्ष नौ  
 प्रकृतियोंकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कर्मण्यकाल  
 योगके अज्ञाप्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा बन जाता है । साहनीवकी सत्ताबाले जो जीव  
 कर्मण्यकालयोगी होते हैं वे ही अनाहारक होत हैं अतः अनाहारकमें सब प्रकृतियोंकी अज्ञाप्य और  
 अज्ञापन्य स्थितिका काल कर्मण्यकालयोगिकी समान क्या ।

॥ ५२८ अज्ञापन्यकाले अनुवादसे शीवेदवाक्योंमें मिथ्यात्व, आठ कपाल आठ  
 नोक्याय और चार संवत्तनकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अज्ञापन्य  
 स्थितिका अज्ञाप्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार गुरुसक-  
 वरकाल जानना । किन्तु इतनी विवेकता है कि इसकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल  
 अन्तमुहूर्त है । तथा सम्मन्वष्टि और सम्मन्वष्ट्यात्वकी अज्ञाप्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल  
 एक समय तथा अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्त  
 है । अन्तमुहूर्तकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अज्ञापन्य  
 स्थितिका अज्ञाप्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विश्लेषार्थ—शीवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी अज्ञाप्य स्थिति मिथ्यात्वकी उपपत्तिका अन्तिम  
 समयमें और आठ कपालोंकी अज्ञाप्य स्थिति आठ कपालोंकी उपपत्तिका अन्तिम समयमें तथा आठ  
 नोक्याय और चार संवत्तनकी अज्ञाप्य स्थिति श्वेदनागके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः  
 इनकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्या । शीवेदी जीव जब नृसक वेदके  
 अन्तिम कालकाल पतन करता है तब उसके नृसकवेदकी अज्ञाप्य स्थिति जाती है पर इसका  
 कालकाल अन्तमुहूर्त है अतः इसके नृसकवेदकी अज्ञापन्य स्थितिका अज्ञाप्य और उत्कृष्ट काल  
 अन्तमुहूर्त क्या । जो जीव उपपत्तिकासे उत्तर कर एक समय तक शीवके रूपके साथ रहा और

§ ५२८. पुरिस० मिच्छत्त-वारसक०-पुरिस० ज० जहणुक्क० एयस० ।  
अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त०-सम्मापि० जह० जहणुक्क०  
एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरैयाणि । अट्ठणोक्क०  
ज० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । अणताणु०  
जह० जहणु० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्टिदी ।

दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल सौ पत्यप्रयत्नत्व प्रमाण है। अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसे यही काल लेना चाहिये। जो स्त्रीवेदी जीव दर्शनमोहनीय की क्षणका कर रहा है उसके अपनी अपनी क्षणकाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। इसी प्रकार विसयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना। जो द्वितीयोपगम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक स्त्रीवेदके साथ रहा और दूसरे समयमें देव हो गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। एक जीव स्त्रीवेदके रहते हुए निरन्तर वेदकसम्यक्त्वके साथ कुछ कम पचवन पत्य काल तक रह सकता है। अब यदि कोई जीव पचवन पत्यकी आयुके साथ देवी हो गया और वहाँ उसने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य पाया जाता है। जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुवन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्यवेदी हो जाता है उसके अनन्तानुवन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा अनन्तानुवन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५२८ पुरुषवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है। आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी क्षणकाके अन्तिम समयमें, आठ कपायोंकी जघन्य स्थिति आठ कपायोंकी क्षणकाके अन्तिम समयमें तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियों-



§ ५२८. पुरिस० मिच्छत्त-वारसक०-पुरिस० ज० जहण्णुक्क० एयस० ।  
 अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क०  
 एगसमञ्चो । अज० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । अट्ठणोक्क०  
 ज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु०  
 जह० जहण्णु० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमञ्चो वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल सौ पत्युप्रथक्त्व प्रमाण है। अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसे यही काल लेना चाहिये। जो स्त्रीवेदी जीव दर्शनमोहनीय की क्षण कर रहा है उसके अपनी अपनी क्षणके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। इसी प्रकार विसयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना। जो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक स्त्रीवेदके साथ रहा और दूसरे समयमें देव हो गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। एक जीव स्त्रीवेदके रहते हुए निरन्तर वेदकसम्यक्त्वके साथ कुछ कम पचवन पत्यु काल तक रह सकता है। अब यदि कोई जीव पचवन पत्युकी आयुके साथ देवी हो गया और वहाँ उसने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्यु पाया जाता है। जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्यवेदी हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५२८ पुरुषवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है। आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी क्षणके अन्तिम समयमें, आठ कपायोंकी जघन्य स्थिति आठ कपायोंकी क्षणके अन्तिम समयमें तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियों-

§ ५३१ वाणाजुबद्धेण यदि-मुद्वङ्गणा० मिच्छत्-सोत्सक० मय-दुर्गुञ्जा० ज० नह० एयसमगो, उक्त० अंतोमु० । अज० अह० अंतोमु०, उक्त० असलेज्जा सोगा । सचणोक्त० अह० अहण्युक्त० एगस० । अज० अह० अंतोमु० उक्त० अणंतकालमसं० पो० परि० । सम्मच-सम्मामि० नह० अहण्युक्त० एगस० । अज० अ० अंतोमु०, उक्त० पस्त्रि० असंसे०-मागो । विहंग० मिच्छत्-सोत्सक० णवणोक्त० अह० अहण्युक्त० एगस० । अज० अ० एगस०, उक्त० तेत्तीस सागरो० वेसुणाणि । सम्मच-सम्मामि० एदियमगो ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार मनोयोगी बीबके मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंकी अपन्य और अज्ञापन्य स्थितिका फल पटित करने के बराबर आने हैं उसी प्रकार चारों कथायवासे बीबके पटित कर लेना चाहिये । वा अभादि कथायवासे बीब आठ कथाय और नौ नोकथायोंकी अपन्य कर रहे हैं उनके एक प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति होती है अतः इनके एक प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र फल अपन्यके समान रहा । नोकथायोंके कोषवेदक फलके अन्तिम समयमें चार संवत्सनोंकी, मानकथायोंके मानवेदक फलके अन्तिम समयमें तीन संवत्सनोंकी, मायाकथायवासेके मायावेदक फलके अन्तिम समयमें दो संवत्सनोंकी और लोभकथायवासे बीबके लोभकथायवेदक फलके अन्तिम समयमें लोभसंवत्सनोंकी अपन्य स्थिति होती है । तथा मानादि कथायवासे बीबके श्रेय कथायोंकी अपन्य स्थिति अपनी-अपनी कथायके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके चार संवत्सनोंकी अपन्य स्थितिपर अपन्य और एकत्र फल अपन्यके समान एक समय रहा । तथा अभादि कथायवासे बीबके अपन्य और एकत्र फल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके एक सब प्रकृतियोंकी अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र फल अन्तर्मुहूर्त रहा ।

§ ५३१ ज्ञान मार्गोणाके अनुवासे मत्सजानी और भुताजानी बीबमें मिथ्यात्व सोलह कथाय मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका अपन्य फल एक समय और एकत्र फल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य फल अन्तर्मुहूर्त और एकत्र फल असंख्यात लोकप्रमास्य है । सात नोकथायोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र फल एक समय तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य फल अन्तर्मुहूर्त और एकत्र फल अन्तर्मुहूर्त है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमास्य है । सम्मत्त्व और सम्मगिमिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र फल एक समय तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य फल अन्तर्मुहूर्त और एकत्र फल पञ्चोपमके असंख्यातमें प्रमाप्रमास्य है । विमर्गज्ञानिधर्मोंमें मिथ्यात्व, सात्त्विक कथाय और नौ नौ पायोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र फल एक समय तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य फल एक समय और एकत्र फल एकत्र फल तृतीय सागर है । सम्मत्त्व और सम्मगिमिथ्यात्वके मय एकेन्द्रियोंके समान है ।

विशेषार्थ—मत्सजान और भुताजान एकेन्द्रियोंके लोकर संघी एकेन्द्रिय एकत्र सब मिथ्यादृष्टि और सात्त्विकसम्पत्ति बीबके होत हैं । किन्तु यहाँ अपन्य स्थितिका प्रकृत्या है अतः मुख्यतः एकेन्द्रियोंकी स्थितिका मध्य किवा है । एकेन्द्रियोंमें भी सबके कम बादर एकेन्द्रियोंकी अपन्य स्थिति होती है । जिसका अपन्य फल एक समय और एकत्र फल अन्तर्मुहूर्त है, अतः मत्सजानी और भुताजानी बीबके मिथ्यात्व सोलह कथाय मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका अपन्य फल एक समय और एकत्र फल अन्तर्मुहूर्त रहा । मिथ्यात्व गुणस्वानका अपन्य फल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके एक प्रकृतियोंकी अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य फल

एगसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पो०परियट्टा । इत्थि० जह० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अणंत०कालमसं०पो०परि० । अवगदवेद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-वारसक०-णवणोक० जह० ओघ । अज० जह० [ एगसं०, ] उक्क० अंतोमु० ।

§ ५३०. कसायाणुवादेण सव्वकसाईसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउक्क० मणजोगिभंगो । वारसक०-णवणोक० ज० ओघं । अज० जहणुक्क० अंतोमु० ।

अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अपगत-वेदवालोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें जीव सम्यग्दर्शनके साथ कुछ कम तेतीस सागर काल तक रह सकता है । अब यदि कोई अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तापाला नपुसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दर्शनके साथ रहा तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साविक तेतीस सागर पाया जाता है । तथा इनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि नपुसकवेदका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण है । यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्य आदि स्थितियोंका शेष काल स्त्रीवेदियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । उतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका काल कहते समय वह नपुसकवेदीके स्त्रीवेदके अन्तिम काण्ड-कथातेके समय प्राप्त होता है जिसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । जो अपगतवेदी जीव उपशमश्रेणी से उतर कर अवेदभागके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसके उक्त तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । जो अपगतवेदी क्षाधिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर अपगतवेदके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके स्त्रीवेद, नपुसकवेद और आठ कपायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । तथा जो अपगतवेदी जीव छह नोकपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें तथा पुरुषवेद और चार सज्वलन की क्षपणाके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान पाया जाता है । अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः अपगतवेदमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।

§ ५३० कपाय मार्गणके अनुवादसे सब कपायवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मनोयोगियोंके समान है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

५५३१ गाणाणुत्रादेण मदि-मुद्वद्वणा० मिच्छत्त-सोम्भत्तक० मय-दुगुंझा० ख०  
 मह० एयसममो, उक्क० अतोसु० । अज० मह० अतोसु०, उक्क० असत्तेज्जा सोगा ।  
 सत्तणोक्क० मह० जइएणुक्क० एगस० । अज० जह० अतोसु०, उक्क० अणंतकासमसं० पो०  
 परि० । सम्मत्त-सम्मामि० मह० जइएणुक्क० एगस० । अज० ज० अतोसु०, उक्क०  
 पस्सिदो० असत्त०भागो । पिरंग० मिच्छत्त-सोसत्तक० पवणोक्क० मह० जइएणुक्क०  
 एगस० । अज० ख० एगस०, उक्क० तेचीसं सागरो० देसुणाणि । सम्मत्त-सम्मामि०  
 एणंदियमंगो ।

**विशेषार्थ—**त्रिस प्रकार मनोबोगी बीबके सिध्वात्वादि साठ प्रकृतियोंकी बचप्य और  
 अजबप्य स्थितिका फल पठित करके बतला जाये हैं वसी प्रकार चारों कयाबवासे बीबके  
 पठित कर लेना चाहिये । जो आवादि कयाबवासे बीब आठ कयाय और नौ नोकयायोंकी  
 बचप्य कर रहे हैं उनके उक्त प्रकृतियोंकी बचप्य स्थिति होती है अतः इनके उक्त  
 प्रकृतियोंकी सबन्य स्थितिका बचप्य और उत्कृष्ट फल भीषके समान कहा । क्रोधकयाबीके  
 क्रोधवेदक फलके अन्तिम समयमें चार संखलनोंकी, मानकयायीके मानवेदक फलके अन्तिम  
 समयमें तीन संखलनोंकी, मायाकयायवासेके मायावेदकफलके अन्तिम समयमें दो संखलनोंकी  
 और लोभकयायवासे बीबके लोभकयायवेदकफलके अन्तिम समयमें लोभसंखलनकी बचप्य स्थिति  
 होती है । तथा मानादि कयाबवासे बीबके शेष कयायोंकी बचप्य स्थिति अपनी-प्रपनी रूपकाके  
 अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके चार संखलनोंकी बचप्य स्थितिका बचप्य और उत्कृष्ट  
 फल भीषके समान एक समय कहा । तथा क्रोधादि कयाबवासे बीबके बचप्य और उत्कृष्ट  
 फल अन्तमुहूर्त है अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजबप्य स्थितिका बचप्य और उत्कृष्ट  
 फल अन्तमुहूर्त कहा ।

५५३१ ज्ञान मार्गणाके अनुवाहसे मत्स्यजानी और भुताजानी बीबमें सिध्वात्त्व सोसह  
 कयाय मय और सुगुप्ताकी बचप्य स्थितिका बचप्य फल एक समय और उत्कृष्ट फल अन्त-  
 मुहूर्त है । तथा अजबप्य स्थितिका बचप्य फल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट फल असंख्यात लोक-  
 प्रमाय है । साठ नोकयायोंकी बचप्य स्थितिका बचप्य और उत्कृष्ट फल एक समय तथा अजबप्य  
 स्थितिका बचप्य फल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन  
 प्रमाय है । सम्पत्त्व और सम्मग्मिध्वात्त्वकी बचप्य स्थितिका बचप्य और उत्कृष्ट फल एक समय  
 तथा अजबप्य स्थितिका बचप्य फल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट फल पस्वोपमके असंख्यातवे  
 मागप्रमाय है । विमंगजानिबोमें सिध्वात्त्व सासह कयाय और नौ नौ कयायोंकी बचप्य स्थितिका  
 बचप्य और उत्कृष्ट फल एक समय तथा अजबप्य स्थितिका बचप्य फल एक समय और उत्कृष्ट  
 फल कुछ कम वेतीस सागर है । सम्पत्त्व और सम्मग्मिध्वात्त्वका मंग एकेत्रियके समान है ।

**विशेषार्थ—**मत्स्यजान और भुताजान एकेत्रियोंसं क्षेत्र संघी एकेत्रिय उक्क सब  
 सिध्वात्त्व और सासत्तनसम्पत्त्व बीबके होठ हैं । किन्तु यहाँ बचप्य स्थितिका प्रकर है  
 अतः मुख्यतः एकेत्रियोंकी स्थितिका प्रष्ट किया है । एकेत्रियोंमें भी सक्ते कम बाहर एकेत्रियों  
 की बचप्य स्थिति होती है । त्रिसफ बचप्य फल एक समय और उत्कृष्ट फल अन्तमुहूर्त है,  
 अतः मत्स्यजानी और भुताजानी बीबके सिध्वात्त्व सोसह कयाय, मय और सुगुप्ताकी बचप्य  
 स्थितिका बचप्य फल एक समय और उत्कृष्ट फल अन्तमुहूर्त कहा । सिध्वात्त्व सुगुप्ताका  
 बचप्य फल अन्तमुहूर्त है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजबप्य स्थितिका बचप्य फल



६५३२. आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्सभंगो । एवरि छण्णोरु० जह०  
जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं मंजट० सामाडय-द्धेदो०-परिहार०-संजदासजद०-ओहिदंस०-  
सम्मादि०-खड्य०-वेदय० । एवरि खवगसेहिम्मि छण्णोरु० ज० ओवं ।  
मणपज्ज० अट्टणोक० पुरिस०भंगो । सेम० उक्कस्सभंगो ।

अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा सूक्ष्म एगान्द्रय पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति होती है अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । जो वादर एकेन्द्रिय जीव जघन्य स्थितिके वन्धकालमें मरकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके अपनी प्रतिपत्त प्रकृतिके वन्धकालके अन्तिम समयमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अब कोई जीव इतने कालतक निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहा और अन्तमें वादर एकेन्द्रिय हुआ तथा वहाँ सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध व सत्त्व करके पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ अपनी प्रतिपत्त प्रकृतिके वन्धकालके अन्तमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिकी प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस जीवके उक्त काल तक सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवके सात नोकपायों की अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्देलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा मिथ्यात्वमें उक्त दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही पाया जाता है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो उपरिम प्रवेयकका जीव अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त हो जाता है उसके विभंगज्ञानके रहते हुए मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः विभंगज्ञानीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उपरिम प्रवेयकके देवको छोड़ कर अन्य देव तथा नारकी जीवके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होने पर विभंगज्ञानमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । विभंग ज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५३१ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें जघन्य स्थितिका भंग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सयत, सामायिकसयत, धेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, संयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि और वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपकश्रेणीमें छह नोकपायोंका जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंमें आठ नोकपायोंका भंग पुरुषवेदके समान है । शेष प्रकृतियोंका भग अपनी उत्कृष्ट स्थितिके समान है ।

१५३३ असंघट० मिथ्यात्व० जह० जहण्युक्त० एगसमभो । अज०  
 केवचिरं ? अणादिमपञ्जवसिदो, अणादिसपञ्जवसिदो सादिसपञ्जव । जो सो  
 सादिसपञ्जवसिदो तस्त इमो णिहेसो—जह० अतोमु०, उक्क० उक्कण्युक्तस्यपरियट्ट ।  
 सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्युक्त० एगसमभो । अज० ज० एगस० अतोमु०,  
 उक्क० संघीसं साग० सादिरयाणि । अणत्ताणु० पत्तक० मोषं । वारसक०  
 पनण्येक० मदि० यंगो । अचकसु० मोषं ।

विशेषार्थ—उपक्रमेणामिं जब जह मोक्षपार्थोका अन्तिम कल्पक प्राप्त होता है तब इनकी  
 जपन्य स्थिति होती है और इसका काल अन्तमुहूर्त है, अतः आग्निनिवोपिक्रमानी पुत्रशानी और  
 अग्निशानी बीजके जह मोक्षपार्थोकी अजपन्य स्थितिका उपन्य और उक्कृत काल अन्तमुहूर्त कहा ।  
 शेष काल सुगम है । इसी प्रकार संघट आवि मार्ग्याभोमिं जानना । इसका यह तात्पर्य है कि  
 इन मार्ग्याभोमिं जिस प्रकार उक्कृत और अनुक्कृत स्थितिका काल कइ जाये है वही प्रकार यहाँ  
 जपन्य और अजपन्य स्थितिका काल कइना चाहिये, क्योंकि इनमें परस्पर कालकी अपेक्षा  
 समानता देखी जाती है । किन्तु इनमेंसे जिन मार्ग्याभोमिं उपक्रमेणो सम्भव हो जन्मिं जह  
 मोक्षपार्थोकी अजपन्य स्थितिका अजपन्य और उक्कृत काल ओषके समान जानना चाहिये शेषमें  
 नहीं । मनाःपर्येयज्ञान पुरुषोबी बीजक ही होता है अतः इनके आठ मोक्षपार्थोका अजपन्य और  
 अजपन्य स्थितिका अजपन्य और उक्कृत काल पुरुषविकोके समान कहा । शेष सुगम है ।

१५३३ असंघटोमिं मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिका उपन्य और उक्कृत काल एक समय  
 है । तथा अजपन्य स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त, अनादि-साम्त और सादि-साम्त  
 इस प्रकार तीन तरहका काल है । उनमें वा सादि-साम्त काल है उसका यह कथन है । वह  
 अजपन्यसे अन्तमुहूर्त और उक्कृतसे अजाये पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सम्बन्ध और सम्य-  
 मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिका अजपन्य और उक्कृत काल एक समय तथा अजपन्य स्थितिका  
 अजपन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तमुहूर्त है और उक्कृत काल साधिक वतीस सागर है ।  
 अन्तमुहूर्तकी पहचानका काल ओषके समान है । वारह कथाय और नौ मोक्षपार्थोका काल  
 मत्स्यज्ञानिकोके समान है । अचकसुजन्मो ओषके समान है ।

विशेषार्थ—जो असंघट मिथ्यात्वकी उपन्या कर रहा है उसके मिथ्यात्वकी उपन्याके  
 अन्तिम समयमें जपन्य स्थिति होती है अतः असंघटके मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिका अजपन्य  
 और उक्कृत काल एक समय कहा । मूलमें असंघटके मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिके अनादि  
 अन्त अनादिसाम्त और सादिसाम्त प तीन भेग कइ हैं सा वास्तवमें व असंघटत्वके साथ  
 मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिके तीन भेग हैं अतः इसके सम्बन्धसे मिथ्यात्वकी अजपन्य  
 स्थितिके तीन भागोंमें बँट दिया है क्योंकि ऐसा कि जिन असंघटके मिथ्यात्वकी  
 अजपन्य स्थितिका अजपन्य और उक्कृत काल पहचाना कठिन था । इनमेंसे सादि-साम्त  
 असंघटका अजपन्य काल अन्तमुहूर्त है और उक्कृत काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है,  
 अतः असंघटके मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिका अजपन्य और उक्कृत काल एक समय कहा ।  
 असंघटके अपनी अपनी उपन्याके अन्तिम समयमें सम्बन्ध और सम्यमिथ्यात्वकी अजपन्य  
 स्थिति होती है तथा सम्यमिथ्यात्वकी पहचानके अन्तिम समयमें भी अजपन्य स्थिति होती है,  
 अतः इसके एक वानों प्रकृतियोंकी अजपन्य स्थितिका अजपन्य और उक्कृत काल एक समय कहा ।  
 वह कई संघट हुनहृत्पयवेदके कालमें वा समय दोन खन पर असंघट हा जाता है तब

§ ५३४ लेसाणुमादेण किण्ह-णील-काउ० मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । सत्तणोको जह० जहएणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी ।

§ ५३५ तेउ-पम्म० मिच्छत्त सोलसक०-एवणोको जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु० अणंताणु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्टिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी । सुक्क०

उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा असयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । कोई जीव असयतभावके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक ही रह सकता है अतः असयतके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । जो असयत अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर रहा है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है अतः असंयतके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । इसी प्रकार ओघमें वताये अनुसार असयतके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका काल भी घटित कर लेना चाहिये । तथा असयत जीवके वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान वन जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मत्यज्ञानियोंके समान कहा । उद्ग्रस्थ जीवोंके अचक्षुदर्शन निरन्तर रहता है अतः अचक्षुदर्शनमे सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान कहा ।

§ ५३४ लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

§ ५३५ पीत और पद्म लेश्यामें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । शुक्ल-



§ ५३६. उवसम० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणुक्क० जह० जहणुक्क० एगस० ।  
 अज० जहणुक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज०  
 जहणुक्क० अंतोमु० । एवं सम्मामि० । सासण० सव्वपयदीणं जह० जहणुक्क०  
 एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० छावलियाओ । मिच्छादिट्ठी० मदि० भगो ।  
 असण्णि० तिरिक्खोषं । एवरि अणताणु० चउक्क०-सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो ।

तथा इन दोनों लेश्यावाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति इनकी क्षणिके अन्तिम समयमें और अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति अनन्तानुबन्धीकी विसयोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । यहा इतना विशेष जानना कि उक्त लेश्याओंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाकी अपेक्षा भी प्राप्त होती है । तथा उक्त लेश्याओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इनमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा । किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पीत और पद्मलेश्याके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो सकता है अतः इनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । जो जीव कृतकृत्यवेदकके उपान्त्य समयमें और उद्वेलनाके उपान्त्य समयमें पीत और पद्मलेश्याको प्राप्त होते हैं उनके क्रमसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः उक्त लेश्याओंमें उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । शुक्ल लेश्यामें छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय उनकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जो अन्तमुद्दूत काल तक रहती है, अतः इसके छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्दूत कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५३६ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्दूत है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्दूत है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह श्रावलीप्रमाण है । मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यज्ञानियोंके समान भग है । असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—जो उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीसे उतर कर अनन्तर वेदकसम्यग्दृष्टि होनेवाला है उसके अन्तिम समयमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः उपशम सम्यग्दृष्टिके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उपशमसम्यक्त्वके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्दूत कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशमश्रेणीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः जो प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि जीव तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति होती है । या जिन आचार्योंके मतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानु-



❀ अंतरं । मिच्छत्-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिगं अंतरं जहरणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५३८, कुदो ? भण्णिकम्ममाणमुक्कस्सट्ठिदिं वंधमाणो जीवो अणुक्कस्सवधओ होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो एदेसिं कम्ममाणमुक्कस्सट्ठिदिवंधुवलंभादो । दोण्हमुक्कस्सट्ठिदाणं विच्चालिमअणुक्कस्सट्ठिदिवंधकालो तासिमंतरं ति भण्णिदं होदि । एगसमओ जहण्णंतरं क्किण्ण होदि ? ण, उक्कस्सट्ठिदिं वधिय पट्ठिहग्गस्स पुणो अंतोमुहुत्तेण विणा उक्कस्सट्ठिदिवंधामंभवादो ।

जघन्य स्थिति आहारकोंके ही सम्भव है, अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओषके समान कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति अनाहारकोंके भी होती है यहाँ इतना विशेष जानना । आहारकोंका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभयप्रदण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातासख्यात अवसर्पणी उत्सर्पणी कान प्रमाण है, अतः इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर उक्त मत्र प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभयप्रदण प्रमाण आर उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातासख्यात अवसर्पणी प्रमाण कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार पंचेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार आहारकोंके जानना, क्योंकि उसमे इसमें कोई विशेषता नहीं है । आहारक अवस्थामें ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हाती है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । अनन्तानुबन्धीका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादन हुआ और दूमरे समयमें मरकर अनाहारक हा गया ता उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति एक समय भी पाई जायगी, अतः आहारक के अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आहारकके उत्कृष्ट काल प्रमाण होता है यह स्पष्ट है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब अन्तरका प्रकरण है । उसमें मिध्यात्व और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५३८ शंका—उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि चूर्णिसूत्रमें कहे हुए कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जो जीव अनुत्कृष्ट स्थितिका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः पूर्वोक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध पाया जाता है । इस कथनका यह तात्पर्य है कि दानों उत्कृष्ट स्थितियोंके मध्यमें जो अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है वह उन दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंका अन्तरकाल है ।

शंका—जघन्य अन्तर एक समय क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर उससे च्युत हुए जीवके पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके विना उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता, अतः जघन्य अन्तर एक समय नहीं होता ।

⊙ उक्तस्समसंखेजा पोग्गलपरियट्टा ।

§ ५३९ इदो ? उक्तस्सद्विदि बंधिय पबिहग्गा होदूण अणुक्कस्सद्विदि बंधमाणा ताव अण्णदि जाव अणुक्कस्सद्विदिबपगद्दाए उक्तस्सियाए परिमसमआ षि । तदो एइ दिएसुबधच्चिय असल्लजाणि पागगल्लरियट्टाणि तस्य परिममिय पुणो वंधिदिय तसाज्जाएमु उण्णजिय पच्चयदो होदूण उक्तस्सदाई गंतूण उक्तस्सद्विदीए पवद्दाए भावलिपाए अमुंस्सच्चदिमागपमापयोग्गल्लरियट्टाणमंतरणुवल्लभादो ।

⊙ एवं सुबधोक्कसायाणं । एवमि जइयणेण पगसमओ ।

§ ५४० एवणोक्कमायाणमुक्कस्सद्विदीए अंतरकासो मिच्छतादीणमुक्कस्सद्विदि अतरकालण सरिसा किंहु महण्णंतरकासो एगसमओ । इदो ? कसाएमु अण्णदरकसायस्स उक्तस्सद्विदिपगसमय बंधिदूण पुणो विदियसमए सन्नेसिं कसाया णमणुक्कस्स द्विदि बंधिय तदियसमए उक्तस्सद्विदि बंधिय एवमग्गदो अग्गदा य उक्तस्स द्विदिमंतमग्गे अणुक्कस्सद्विदिमंत कादूण बंधावन्धियादिवकंतकसायद्विदीए णोक्क साएमु मकताए उक्तस्सद्विदीए मादी भादा । उदो विदियसमए अणुक्कस्सद्विदीए

⊙ उक्तए अन्तर अमुंस्सयाव पुट्टगल्लपि र्धनममाणे हे ।

§ ५४१ इदं—उक्तए अन्तर अमुंस्सयाव पुट्टगल्ल पारवतनममाणे कयो हे ।

समाधान—इसी एक जीवन उक्तए स्थितिका बन्ध क्रिया अनन्तर उक्तए स्थितिक बन्धक आरम्भून उक्तए संकल्लरूप परिणामोसे निवृत्त हाकर जमन अनुवृत्त स्थितिक बन्ध क्रिया आर यह बन्ध अनुवृत्त स्थितिक उक्तए बन्धकसक अन्तिम समय तक करता रहा । तदनन्तर यह जीव एकेश्वरियोमे वरत्त हुमा और बर्हा अर्कत्याग पुट्टगल्ल परिवर्तन काय तक परिभ्रमण करके पुनः एकेश्वरिय जस पयातयोमे वरत्त हुमा आर पयात हाकर उक्तए संकल्लरूप परिणामोका प्राप्त हुमा तब हाकर इसके उक्तए स्थितिक बन्ध हागा हे आर इमनिप उक्तए स्थितिक उक्तए अन्तर आबन्धीके अर्कत्यागवे मागक विवतन समय हो उनन पुट्टगल्ल परिवर्तनममाणे पया ज्ञाना हे ।

⊙ इसी प्रकार मा नाकपायोका अन्तर हे । किन्तु इतनी विद्यता हे कि इनकी उक्तए स्थितिका जपन्व अन्तर एक समय हे ।

§ ५४० नी नाकपायोकी उक्तए स्थितिका अन्तरमात्र मिध्यागारिकरी उक्तए स्थितिक अन्तरमात्रके समान हे । किन्तु जपन्व अन्तरमात्र एक समय हे ।

शंका—ये नाकपायोकी उक्तए स्थितिक जपन्व अन्तर काय एक समय कयो हे ?

समाधान—इस जीवन मातर कयायोमस इसी एक कयायोकी उक्तए स्थितिका एक समय तक र्ध्या पुनः दूसर समयमें सब कयायोकी अनुवृत्त स्थितिका र्ध्या और तमनर समयमें अन्य कयायोकी उक्तए स्थितिको र्ध्या इस प्रकार का जीव आगे जाग कयायोकी उक्तए स्थितिकबद्ध मायमें कयायोकी अनुवृत्त स्थितिकबद्ध करता हे । तदनन्तर जिसके कयायवृत्तिक पारचाय कयायोकी उक्तए स्थितिक मोकययोमें र्धयन हान कर नाकपायोकी उक्तए स्थितिका



अंतरिय पुणो तदियसमए णोकसाएसु बंधावलियाइक्कंतकसायुक्कस्सट्टिदीए संकंताए एगसयमेचंतरुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणमुक्कस्सट्टिदिसंतकम्मियंतरं जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५४१. कुदो ? मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढम-समए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदिसंतकम्मं कादूण विदियसमए अणुक्कस्स-ट्टिदिं गंतूणतरिय सव्वजहण्णसम्मत्तकालमच्छिय मिच्छत्तेण परिणमिय पुणो उक्कस्स-ट्टिदिं वधिय अंतोमुहुत्त पडिहग्गो होदूणच्छिय वेदगसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तुक्कस्स-ट्टिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदिसंतकम्म-मुवगयस्स उक्कस्सट्टिदीए अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतरुवलंभादो ।

❀ उक्कस्समुवड्डुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ५४२. तं जहा- एगो अणादियमिच्छाइट्ठी छव्वीससतकम्मियो उवसम-सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गतूण उक्कस्स-ट्टिदिं वधिय पडिहग्गो होदूण ट्टिदिघादमकरिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण सम्मत्त-

प्रारम्भ हुआ । तथा जो दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको अन्तरित करके पुनः तीसरे समयमें बन्धावलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकषायोंमें संक्रान्त करता है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्रमाण पाया जाता है ।

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५४१ शंका—जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कैसे है ?

समाधान—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले किसी एक जीवने वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म किया । तदनन्तर वह दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हुआ और इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका अन्तर करके सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ पुनः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और सकलेश परिणामोंसे च्युत हो विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला वह जीव जब वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब पुनः उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है और इस प्रकार उस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

\* उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५४२. वह इस प्रकार है—छव्वोस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वह उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर मिथ्यात्वमें गया और वहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और सकलेश परिणामोंसे च्युत होकर स्थितिघात न करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वहाँ सम्यक्त्व और सम्य-

सम्भामिच्छत्तान्मुक्कस्सद्धिदिसंतकम्मं कादूण सम्मयेण अंतोमुहुत्तमच्चिद्वय मिच्छत्त  
 गत्तुण वेदूणदपोमासपरियट्टं परिममिय पुणो तिग्णि वि करणाणि करिय पढमसम्मत्त  
 पदिबज्जिय मिच्छत्त गंतुण्णुक्कस्सद्धिदिं वपिय अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तमुवगयपढम-  
 ससप मिच्छत्तुक्कस्सद्धिदीए सम्मत्तसम्भामिच्छत्तेसु सकताए लद्धमंतंरं होदि । एवं  
 पुम्मिच्छत्तिवस्सअंतोमुहुत्तेणमद्धपोगलपरियट्टमुक्कस्सतंरं । उणमद्धपोगलपरियट्ट  
 ववहुपोमासपरियट्ट ति पत्तव्वं ।

§ ५४३ संपदि पुण्णिमुत्तपरुक्खणं काऊण विसेमावलद्धि पट्टव्व पुणरुत्तमयं  
 व्वदिय सोपमुत्तारणं मण्णिसागो । अंतंरं दुबिह—अहण्णुक्कस्सं व । उक्कस्स पयदं ।  
 दुबिहो खिइवेसो—ओयेण मावेसण य । तएव ओयेण मिच्छत्त-वारसकं उक्कं  
 ज० अंतोमु०, उक्क अणंतकाल० । अणुक्कं ज० एगसमओ, उक्कं अंतोमु० ।  
 सम्मत्त-सम्भामि० उक्कं ज० अंतोमु०, उक्कं उवहुपोमासपरियट्टं । अणुक्क  
 ज० एगस०, उक्कं उवहुपो०परियट्टं । अणंतानु० उक्कं उक्कं अंतंरं क्वनिरं ?  
 ज० अंतोमु०, उक्कं अणंतकाल० । अणुक्कं ज० एगस०, उक्कं अणंतकालसागरा  
 यमाणि वेदूणाणि । पंचणोक्कं उक्कं ज० एगस०, उक्कं अणंतकाल० । अणुक्कं

मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वार्थका करके तथा सम्प्रत्यक्षके साम अन्तमु हुत कालतक रहकर  
 मिध्यात्वमें गया । पुनः वह मिध्यात्वक साथ कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कालतक परिभ्रमण  
 करके पुनः तीनों करण करके प्रथम सम्प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ । तदनन्तर रहने मिध्यात्वमें जाकर  
 और वहाँ मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बाँधकर अन्तमु हुते कालके द्वारा वेदकसम्प्रत्यक्षके प्राप्त  
 करके प्रथम समयमें मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्प्रत्यक्ष और सम्प्रतिमिध्यात्वमें संक्रमण  
 किया । तब जाकर उसके सम्प्रत्यक्ष और सम्प्रतिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिअ उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त  
 होता है । इस प्रकार सम्प्रत्यक्ष और सम्प्रतिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर पहलेके  
 और अन्तके अन्तमु हुतेसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमात्र प्राप्त होता है । यहाँ सूत्रमें जो उपार्थ  
 पुद्गल परिवर्तन पक्ष प्रकृत किया है सो वससे कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप कालका  
 प्रकृत करना चाहिये ।

§ ५४३ इस प्रकार सूत्रका अर्थन करके अब विशेष ज्ञान करमके क्रिय पुनरुक्त शब्द-  
 के मयके जोकर ओपसहित उचरणायाअ अर्थन करते हैं—अन्तर वा प्रकारक इ—अपन्य  
 अन्तर और उत्कृष्ट अन्तर । इनमेंसे उत्कृष्ट अन्तरका प्रकारक है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो  
 प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे आषकी अपेक्षा मिध्यात्व और बाह्य  
 कयापोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमु हुते और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल इ । अनु-  
 रूढ स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुते है । सम्प्रत्यक्ष और  
 सम्प्रतिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमु हुते और उत्कृष्ट अन्तर उपार्थ पुद्गल  
 परिवर्तन काल है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्थ  
 पुद्गल परिवर्तनकाल है । अनन्तामुक्कयो वत्तुक्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर क्तिना है ? अपन्य  
 अन्तर अन्तमु हुते और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर  
 एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकही वतीस सागरप्रमात्र है । पाँच नोकयापोंकी

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । चत्तारिणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अणंत-  
काल० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एगावलिया । एसो चुण्णिमुत्तवएसो ।  
उच्चारणाए पुण वे उवएसो— एगावलिया आवलियाए असंखेज्जदिभागो चेदि । पडि-  
हग्गसमए चेष जे आइरिया चदुणोकसायाणं वधो होदि त्ति भणति तेसिमहिप्पाएण  
एगावलियमेत्तो चदुणोकसायाणमणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरकालो । पडिहग्गपढम-  
समयप्पहुडि आवलियाए असंखेज्जेसु भागेषु गदेषु अमंखे० भागावसेसे चदुणोकमाया  
वज्झंति त्ति जे आइरिया भणंति तेसिमहिप्पाएण अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरं  
आवलियाए असंखे० भागो । एवमचक्खु०-भवसिद्धि० ।

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आवली काल है । चार नोकपायोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आवलीप्रमाण है यह उपदेश चूर्णिसूत्रके अनुसार है ।  
उच्चारणाकी अपेक्षा तो दो उपदेश पाये जाते हैं । एक उपदेश एक आवली कालका ह और  
दूसरा उ.देश आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका ह । जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-  
बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट सक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर तदनन्तर समयमें ही चार  
नोकपायोंका बन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । तथा जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-  
बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट सक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर पहले समयसे एक आवलिके  
असंख्यात बहुभाग कालको वित्ताकर असंख्यातवें भागप्रमाण कालके शेष रहन पर चार नोकपायोंका  
बन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट  
अन्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसी प्रकार चतुर्दशनवाले और भव्य  
जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्टा  
अन्तरका खुलासा मूलमे किया ही है, अत यहा अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और, उत्कृष्ट अन्तरक  
खुलासा किया जाता है । जब किसी जीवके एक समय तक मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक  
समय पाया जाता है । तथा जब किसीके मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
अन्तर्मुहूर्तकाल तक होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु-  
हूर्त पाया जाता है । जो जीव सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके तीसरे समयमे उपशम  
सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य  
अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा जो जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशम  
सम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता है । पुनः अर्धपुद्गल परिवर्तन कालमें अन्तर्मु-  
हूर्त शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उर्ध्वपुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है । जिसने अनन्ता-

१५४४ आदेशेण गेरुपसु मिच्छन्न-वारसक० उक्त० जह० मंतोमु०, उक्त०  
 वेचीसं सागरो० देवणाणि । अणुक० ओपं । सम्मन्न-सम्मामि० उक्त० जह० मंतोमु०,  
 उक्त० वेचीसं सागरो० देवणाणि । अणुक० एपं पेप । पवरि जह० एगस० । मर्णं  
 तानु० उक्त० उक्त० ज० मंतोमु०, उक्त० सगहिदी देवणा । अणुक० जह० एगस०,  
 उक्त० सगहिदी देवणा । पंचशोक० उक्त० जह० एगस०, उक्त० सगहिदी देवणा ।  
 अणुक० जह० एगस०, उक्त० मंतोमु० । चचारिणोक० उक्त० जह० एगस०, उक्त०  
 सगहिदी देवणा । अणुक० जह० एगस०, उक्त० आचरियाए असंखे० मागो एगा-

मुष्णवीची विसंवाचना की है एसा वीच यदि पुनः मिष्यात्वमें आवे तो उसे मिष्यात्वमें आनेके  
 लिये कमसे कम अन्तमुहुर्त कास और अधिकसे अधिक कुछ कम एकसौ पत्तीस सागर कास  
 लगता है अतः अमन्तानुष्णवीची अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम एकसौ पत्तीस  
 सागर प्राप्त होता है । ननुसकवेद, अरुति शोक, मय और सुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् कास  
 एक समय और उत्कृष्ट कास अन्तमुहुर्त है, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् अन्तर एक  
 समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहुर्त प्राप्त होता है । तथा शेष चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
 अल्पम् कास एक समय और उत्कृष्ट कास एक आबली है अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अल्पम्  
 अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आबलि है । यहाँ चार नोक्यायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका  
 एक आबलिप्रमाण्य जो उत्कृष्ट अन्तर कछाया है वह श्रुत्सिद्धके उपदेशानुसार बतलाया है ।  
 परन्तु इस विषयमें उचारणमें वा उपदेश पाये जाते हैं । पहले उपदेशका सार यह है कि सोलह  
 कयायोंके उत्कृष्ट स्थितिकयके हो चुकनेके दूसरे समयसे ही चार नोक्यायोंका बन्ध होने लगता  
 है । तथा दूसरे उपदेशका सार यह है कि सोलह कयायोंके उत्कृष्ट स्थितिकयके हो चुकनेके पश्चात्  
 दूसरे समयसे चार नोक्यायोंका बन्ध नहीं होता किन्तु जब आबलिका असंख्यातवां प्राप्त कछ  
 शेष रह जाता है तब बहासे बन्ध होता है । इनमेंसे पहले उपदेशके अनुसार चार नोक्यायोंकी अनु-  
 त्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर एक आबलि प्राप्त होता है और दूसरे उपदेशके अनुसार आबलीका  
 असंख्यातवां मागप्रमाण्य उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अथचतुश्चक्र और मन्मसायुद्धादिस्य  
 बीचके सर्वदा पाई जाती हैं अतः इनमें बीचके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट  
 स्थितिका अल्पम् और उत्कृष्ट अन्तर बन जाता है ।

१५४५ आदेशा निर्देशकी अपेक्षा मातृकियोंमें मिष्यात्व और बाह्य कयायोंकी उत्कृष्ट  
 स्थितिका अल्पम् अन्तर कास अन्तमुहुर्त और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम वेचीस सागर है ।  
 तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर कास ओपके समान है । सम्पत्त्व और सम्भिमिष्यात्वकी  
 उत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् अन्तर कास अन्तमुहुर्त और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम वेचीस सागर  
 है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर कास भी इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका  
 अल्पम् अन्तर कास एक समय है । अमन्तानुष्णवीची ननुष्णकी उत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् अन्तर कास  
 अन्तमुहुर्त और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण्य है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका  
 अल्पम् अन्तर कास एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण्य है । पाँच  
 नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् अन्तर कास एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम  
 अपनी स्थितिप्रमाण्य है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् अन्तर कास एक समय और उत्कृष्ट  
 अन्तर कास अन्तमुहुर्त है । चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अल्पम् अन्तर कास एक समय  
 और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण्य है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अल्पम्

वलिा वा । एत्थ उवएसं लद्धूण एगयरणिण्णओ कायवओ । पढमादि जाव सत्तमि  
त्ति एवं चेव । एवरि सगसगुक्कस्सट्टिदी देसूणा त्ति वत्तवं ।

§ ५४५ तिरिक्ख० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०  
उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूण । अणुक्क० एवं चेव ।  
णवरि जह० एगस० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० ओघं । अणुक्क० अंतरं ज०  
एगस०, उक्क० तिण्ण पलिदो० देसूणाणि । पंचिदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण अथवा ए- आवली है ।  
यहाँ पर उपदेशको प्राप्त करके किसी एकका निर्णय करना चाहिये । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं  
पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम  
अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जिसने नरकमें उत्पन्न होकर और पर्याप्त होकर मिथ्यात्व और वारह  
कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया । अनन्तर जो अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहा किन्तु  
नरकसे निकलनेके पहले जिसने पुन उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उसके उक्त  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है । अनन्तानु-  
बन्धा चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । जिसने  
नरकमें उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानु-  
बन्धीकी विसयोजना कर दी वह यदि नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वको  
प्राप्त होता है तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस  
सागर पाया जाता है । जिसने पर्याप्त होकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मु-  
हूर्त कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके समय सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । अनन्तर जो नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष  
रह जाने पर पुनः इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है  
उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर  
पाया जाता है । जिस नारकीने नरकमें उत्पन्न हाकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलना  
करके अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर किया । अनन्तर नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर  
जिसने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिको  
प्राप्त किया उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर  
पाया जाता है । तथा वारह कषायोंके समान नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ  
कम तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिये । सब प्रकृतियोंकी शेष स्थितियोंका उत्कृष्ट और  
जघन्य अन्तर जो ओघमें बतला आये हैं उसी प्रकार जानना चाहिये । तथा प्रथमादि नरकोंमें  
अपने अपने नरककी विशेष स्थितिका ख्याल करके इसी प्रकार कथन करना चाहिये ।

§ ५४६ तिर्यच्चोमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
का अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्त-  
र्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर  
भी इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । पचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त



§ ५४६ पंचि०तिरि०अपज्ज० मि०ञ्जत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णव-  
 पोक० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज० अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ०-  
 सव्वएइ०दिय-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स-  
 वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-  
 सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-  
 संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-  
 [ असण्णि- ] अणाहारि त्ति । णवरि एइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-आउ० तेसि वादर  
 पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय०-तप्पज्जत्त-ओरालिधमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-असण्णि०

कुछ कम तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है । भोगभूमिमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती किन्तु पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका जो उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य बतलाया है उसमें भोगभूमिका काल भी सम्मिलित है अतः इसमेंसे तीन पल्य कम कर देने पर जो पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण काल शेष बचता है वह उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व आदि अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये । यहा किस तिर्यंचके पूर्वकोटि पृथक्त्वसे कितनी पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये इसका कथन अन्यत्र किया है, इसलिये वहासे जान लेना चाहिये । उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें जिस तिर्यंचने अपनी पर्यायके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की अनन्तर वह अपनी अपनी कायस्थितिके उत्कृष्ट कालतक मिथ्यादृष्टि रहा पर अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुकृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरका कथन जिस प्रकार सामान्य तिर्यंचोंके कर आये हैं उसी प्रकार इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंके कर लेना चाहिये । इसका प्रमाण कुछ कम तीन पल्य है । शेष कथन ओषके समान जानना चाहिए । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके भी उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंके समान अन्तर काल जानना चाहिये । किन्तु पूर्वकोटिया जिसकी जितनी हों उतनी कहनी चाहिये ।

§ ५४६ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका अन्तर काल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाचों स्थावर काय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, आभिनि-  
 बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्य-  
 ग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी और

पञ्चोक्त० उक्त० अ० एगसमग्रो, उक्त० आबखिया दुसमयूणा । अष्टु० अह०  
एगस०, उक्त० आबखिया समयूणा ।

§ ५४७ देवगदि० मिच्छत्त-वारसक्त० उक्त० अ० अंतोमु०, उक्त० अट्टारस  
सागरो० सादिरियाणि । अणुक्त० अ० एगस०, उक्त० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि०  
उक्त० अ० अंतोमु०, उक्त० अट्टारस साग० सादिरियाणि । अणुक्त० अ० एगस०,  
उक्त० एककवीस सागरो० देसूणाणि । अगंतामु० अउक्त० उक्त० मिच्छत्तयंगो ।  
अणुक्त० अ० एगस०, उक्त० एककवीस सागरो० देसूणाणि । पञ्चोक्त० उक्त० अ०  
एगस०, उक्त० अट्टारस सागरो० सादिरियाणि । अणुक्त० अ० अह० । भवणादि दाब  
सहस्सार ति एवं पेव । गवरि सगहिदी देसूणा । आणदादि नात्त उवरिममवग्गो ति  
मिच्छत्त-वारसक्त०-पञ्चोक्त० उक्त०-साणुक्त० एतिय अंतरं गिरंतरं । सम्मत्त

असंखी बीबोमि नो नोकर्यायोकी उक्तुत्त स्थितिका अपम्य अन्तर काल एक समय और उक्तुत्त  
अन्तर काल दो समय कम आबखिममाख है । तथा अनुक्तुत्त स्थितिका अपम्य अन्तर काल एक  
समय और उक्तुत्त अन्तर काल एक समय कम आबखिममाख है ।

विशेषार्थ—पकेन्द्रिय तिर्यंज कल्प्यपर्याप्त और अनुप्य कल्प्यपर्याप्तसे लेकर मूलमें और  
बिचनी मार्गद्वारे गिनार्ह हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उक्तुत्त और अनुक्तुत्त स्थितिका अन्तर नहीं  
पाया जाता । इतना करण यह है कि इनके प्रथम मममें उक्तुत्त स्थिति होती है अतः इस  
उक्तुत्त पर्याप्तके रहते हुए दो बार उक्तुत्त स्थिति नहीं प्राप्त होती । किन्तु पकेन्द्रिय आदि मूलमें गिनार्ह  
हुए हुए वेही मार्गद्वार हैं जिनमें नो नोकर्यायोकी उक्तुत्त और अनुक्तुत्त स्थितिका अन्तर सम्भव  
है । क्यपि उक्तुत्त स्थितिकाम्यके विषयमें सामान्य नियम तो यह है कि जिस कर्मका उक्तुत्त  
स्थितिकाम्य एक जाता है उसका यदि पुनः उक्तुत्त स्थितिकाम्य हो तो अन्तर्मुहूर्त कालके परंपत्त  
ही हो सकता है परन्तु कयायोके बरत बरत कर इनका एक या एकसमयसे अधिक कालके  
अन्तरसे भी उक्तुत्त स्थितिकाम्य हो सकता है । अब यदि किसी बीबोमि इस प्रकार कयायोकी  
उक्तुत्त स्थिति बांधी और वह पकेन्द्रियादिक एक मार्गद्वारोंमेंसे किसी एक मार्गद्वारों द्वारा हुआ  
तो इसके नो नोकर्यायोकी उक्तुत्त स्थितिका अपम्य अन्तर एक समय और उक्तुत्त अन्तर दो समय  
कम एक आबखिममाख प्रमाख बन जाता है । और इसके विपरीत अनुक्तुत्त स्थितिका अपम्य अन्तर  
एक समय और उक्तुत्त अन्तर एक समय कम आबखिममाख भी बन जाता है ।

§ ५४८ देवगदिमें मिच्छात्त और बात्त कयायोकी उक्तुत्त स्थितिका अपम्य अन्तर  
अन्तर्मुहूर्त और उक्तुत्त अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुक्तुत्त स्थितिका अपम्य अन्तर  
एक समय और उक्तुत्त अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्भवत्त और सम्मगिमिच्छात्तकी उक्तुत्त स्थितिका  
अपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उक्तुत्त अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुक्तुत्त स्थितिका  
अपम्य अन्तर एक समय और उक्तुत्त अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अन्तर्मुहूर्तयो  
अनुक्तुत्तकी उक्तुत्त स्थितिके अन्तरका मंग मिच्छात्तक समान है । तथा अनुक्तुत्त स्थितिका अपम्य  
अन्तर एक समय और उक्तुत्त अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । नो नोकर्यायोकी उक्तुत्त  
स्थितिका अपम्य अन्तर एक समय और उक्तुत्त अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुक्तुत्त  
स्थितिका अन्तर अपोके समान है । मन्वत्तसिबोसे लेकर सहस्वार कर तकके एवंचे इसी  
प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति करनी चाहिये ।



सम्मामि० उक्क० एत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा ।

§ ५४८ पंचि०-पंचि०पञ्ज०-तस-तमपञ्ज० मिच्छत्त०-वारसक० उक्क० अंतरं ज० अतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ज० अतोमु० । उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एगस० । अणताणु०चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेद्धावट्टिसागरो० देसूणाणि । एवयोक्क० उक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघ । एवं पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है किन्तु पूर्वोक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल निरन्तर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**देवोंमें सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके ही मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और सक्रमण सम्भव है, अतः सामान्यसे देवोंमें मिथ्यात्व आदि अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा । तथा नौ ग्रैवेयक तकके देव मिथ्यात्वमें जा सकते हैं और सम्यग्दृष्टि भी हो सकते हैं अतः सामान्य देवोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा । शेष कथन ओघके समान है । तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें अपनी अपनी स्थितिका विचार करके इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल तो होता ही नहीं, क्योंकि इनके पर्यायके प्रथम समयमें ही उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । हाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका विसयोजनाकी अपेक्षा अन्तरकाल सम्भव है जो मूलमें वतलाया ही है ।

§ ५४८ पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व और बारह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण

§ ५४९ पंचमण -पंचवचि० उचक० गत्यि अंतरं । णवरि पंचणोक० [ ज० ]

एयसमअ, उचक० अंतोमुहुर्यं । चतुणोक० [ उचक० ] ज० एगस०, उचक० आवसिया  
दुसमअजा । अणुचक० ज० एगस०, उचक० अंतोमु० आवसि० असंखे० भागो  
एगापमिया वा । एवं क्यमोमि०-मोरासिय०-वेउम्विय० चत्तारिकसाए चि ।

ह । तथा अनुकृत्य स्थितिका अन्तर आपके समान है । इसी प्रकार पुरुषवृक्षाल चतुर्दशेनत्राले  
और संघी बीबोंके जानना चाहिए ।

विशुपार्थ—कोई भी जीव पंचग्निय पंचेन्द्रिय पयात त्रस और त्रसपर्याप्त बीबोंकी  
क्यस्थिति प्रमाण काल तक मिथ्यात्व सोलह क्यम्य और मौ नोक्ययोकी अनुकृत्य स्थितिके  
साथ रह सकता है पर यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल बतजाना है, अतः इनके प्रारम्भ  
और अन्तमें एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त कराने और तम प्रकार एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ले आने को एक बीबोंकी कुछ कम क्यस्थितिप्रमाण होता है ।  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
किन्तु इतने काल तक लगातार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व सम्पत्त्य प्राप्तिकी अपेक्षा बन  
सकता है, अथवा मध्यमें इनकी वृद्धेगना भी हो जायगी । जिसन अनन्तलुब्धकी चतुष्टकी  
विस्तृतबना की है ऐसा जीव यदि पुनः अनन्तलुब्धकी सत्त्व प्राप्त करे ता वह अनन्तलुब्धकी  
चतुष्टके बिना अधिकसे अधिक कुछ कम एकदूसी बत्तीस सागर तक रह सकता है अतः एक बीबोंके  
अनन्तलुब्धकी चतुष्टकी अनुकृत्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पठसौ बत्तीस सागर क्य ।  
छेन कवन ओपके समान है । पुरुषवृक्ष और संघी बीबोंकी उत्कृष्ट क्यस्थिति क्रमशः  
सो सागर पूयक्त्व, दो हजार सागर और सा सागर पूयक्त्व है, अतः इनमें भी उक्त क्रमसे अन्तर  
काल बन जाता है ।

§ ५४६ पाँचों मनायोगी और पाँचों बचनयोगी बीबोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है ।  
किन्तु इतनी विवेकता है कि इनमें पाँच नोक्ययोकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । चार नोक्ययोकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर वा समय कम एक आवसि है । तथा सब प्रकृतियोंकी अनुकृत्य स्थितिका  
अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार नोक्ययोके सिवा धारम अन्तमुहूर्त तथा  
चार नोक्ययोका आवसिक अस्तित्वात्तयें मगप्रमाण अथवा एक आवसिप्रमाण है । इसी प्रकार  
कावयागी, औरादिककावयागी, वैदिकिककावयागी और चारों क्यमवाज बीबोंके जानना चाहिए ।

विशुपार्थ—पाँचों मनायोग और पाँचों बचनयोगोंमें भी नोक्ययोका उत्कृष्ट धार सब  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । इसका कारण यह है कि इन योगोंका  
काल थाहा है अतः इनमें वा चार उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होगा समय नहीं है । किन्तु सातह  
क्ययोका बहुत बहुत कर अन्तरमें भी उत्कृष्ट स्थितिका हाता है अतः उनके सम्भ्रमकी  
अपेक्षासे भी नोक्ययोमें उत्कृष्ट और अनुकृत्य स्थितिका उत्कृष्ट और अपन्य अन्तर बन जाता  
है जो मूलमें बतलावा ही है । इसी प्रकार यहां धार प्रकृतियोंकी अनुकृत्य स्थितिका भी  
अन्तर पठित कर लेना चाहिए । मूलमें कावयागी यदि जितनी माग्यता बनसा है उनमें भी  
यथाव्य जानना चाहिए । यद्यपि कावयागका उत्कृष्ट काल अस्तित्वात्त पुद्गल परिवचन प्रमाण  
है और औरादिक कावयागका काल कुछ कम बादम हजार वर्ष प्रमाण है पर यह काल पंचेन्द्रिय  
और धृषिबीकाविक बीबोंके ही मान हाता है, अतः इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल

§ ५५० इत्थि० पंचिदियभंगो । णवरि मगट्टिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पणवण्ण पल्लिदोवमाणि देसूणाणि । णवु सओघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० अणुक्क० [ उक्क० ] तेत्तीस सागरो० देसूणाणि ।

§ ५५१ मदि० सुदअण्णा० ओघं । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० वारसकसायभंगो । विहंग० सत्तामपुढविभंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० वारसकसायभंगो । असंजद० णवुंस० भंगो ।

सम्भव नहीं ।

§ ५५० स्त्रीवेदवालों में पंचेन्द्रियों के समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है । नपुसकवेदमें ओघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदीकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पत्य पृथक्त्व प्रमाण है, अत इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम सौ पत्य पृथक्त्वप्रमाण प्राप्त होता है । तथा स्त्रीवेदी जीव सम्यक्त्वके साथ कुछकम पचवन पत्य तक रह सकता है और कुछकम इतने कालतक उसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसयोजना पाई जा सकती है, अत इसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य प्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । नपुसकवेदमें अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तर कालको छोड़ कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है । किन्तु नपुसकवेदी लगातार कुछ कम तेतीस सागर तक ही सम्यग्दर्शनके साथ रह सकता है अत इसके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

§ ५५१ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भग वारह कषायोंके समान है । विभगज्ञानियों में सातवीं पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग वारह कषायोंके समान है । असयतोंमें नपुसकों के समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेगना ही होती जाती है । अत इनके इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार विभगज्ञानी जीवोंके भी उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं पाया जायगा । असंयतोंमें नपुसकवेद प्रधान है, अत असंयतोंका कथन नपुसकोंके समान कहा ।



§ ५५३ अथ० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० ओघं । एवरि अणंताणु०-चउक० मिच्छत्तभंगो । मिच्छादि० मदि०भंगो । आहार० मिच्छत्त-वारसक० उक० जह० अंतोमु०, उक० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सम्मत्त०-सम्मापि० पंचिदियभंगो । अणंताणु० चउक० उक्क० मिच्छत्तभंगो । अणुक्क० पंचिदियभंगो । णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं ।  
एवमुक्कस्सतराणुगमो समत्तो ।

❀ एत्तो जहणण्यंतरं ।

§ ५५४. सुगमं ।

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल विसंयोजनाकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है । शुक्ल लेश्यामें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर नौवें प्रवेयकके समान घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५३. अभव्योंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग मिथ्यात्वके समान है । मिथ्यादृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तर का भंग मत्यहान्तियोंके समान है । आहारक जीवों में मिथ्यात्व और वारह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग मिथ्यात्वके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर पंचेन्द्रियोंके समान है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—अभव्योंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल मिथ्यात्वके समान बन जाता है । आहारकका उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातवें भाग असख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रमाण है, अतः इनमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम उक्त काल प्रमाण बन जाता है । यहाँ जो लगातार आहारक होनेका उत्कृष्ट काल बतलाया है सो वह पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियके पश्चात् चौइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पश्चात् तेइन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय जीव जितने काल तक लगातार आहारक होते रहते हैं उन सब आहारक कालोंको जोड़ कर बतलाया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल पंचेन्द्रियोंमें ही प्राप्त हो सकता है अन्यत्र नहीं, अतः आहारकके इनके अन्तर कालको पंचेन्द्रियोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

❀ इसके आगे जघन्य अन्तरका प्रकरण है ।

§ ५५४ यह सूत्र सरल है ।

⊗ मिच्छन्त-सम्मत-वारसकसाय-स्यषणोक्तसायायं जह्यप्यद्विदिविहितियस्त षत्वि अंतरं ।

§ ५५५ कृदो ? खदिदकम्मार्णं पुनरुपचीए अमावादा ।

⊗ सम्मामिच्छन्त-अपंतारणुपंचीयं जह्यप्यद्विदिविहितियस्त अंतरं जह्येष्येण अंतोमुहुत्तां ।

§ ५५६ तं महा—उप्येत्तुणाए सम्मामिच्छन्तस्य महण्णद्विसंतकम्मं कृप-  
माणो सम्मत्तादिदुहो होदूर्णतरवरिमफासीए सह सव्येत्तणवरिमफास्मिभणिय ततो  
प्यहुदि मिच्छन्तपडमद्विदीए समयूणावस्त्रियमेत्तमशुप्पविसिय तत्व पयदमहण्णद्विदि  
संतकम्मस्तादिं कादणतरिय कयेण मिच्छन्तपडमद्विदिं गास्मिय पडमसम्मत्तं पडिबज्जिय  
अंतोमुहुत्तयच्छिय वेदगसम्मत्त पडिबज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अर्पंताणुपंचीयन्नकं  
विसंभोइय पुणो अभावत्तमपुम्भकरणाणि करिय अणियदिमद्वाए संत्तेज्जंत्तु मागेत्तु  
गवेत्तु मिच्छन्तं खविय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छन्तवरिमफास्मिं परसस्सेण संका  
मिय अहाकमेण अषद्विदिगस्सणाए उदयावस्मियणित्सेगेत्तु गस्समागेत्तु एगणिसंगाद्विदीए  
दुत्तमपकाहाए सेसाए अंतोमुहुत्तपमाणं सम्मामिच्छन्तस्य महण्णतरं होदि । एव-

⊗ मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोकी अपन्य स्थिति-  
विमर्शिका अन्तर नहीं है ।

§ ५५५ श्रुति — उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता ।

समाधान—क्योंकि जबको प्राप्त हुए कर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है और इन प्रकृतियोंकी अवश्य स्थिति अपन्यके अन्तमें ही प्राप्त होती है, अतः इनकी अपन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता ।

⊗ सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपन्य स्थिति-विमर्शिका अपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५५६ यह इस प्रकार है—उद्येज्जनाके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका अवश्य स्थितिसत्कर्म करनेवाला कोई एक हीव सम्यक्त्वके समुत्त हुआ और इसने अन्तरकरणकी अन्तिम प्राप्तिके साथ उद्येज्जनाकी अन्तिम प्राप्तिके अन्त प्रकृतियें किया। फिर वहाँसे लेकर मिथ्यात्वकी स्थितियें एक समय कम आशक्तिप्रमाण अवकाशके विनाकर सम्यग्मिथ्यात्वके अवश्य स्थितिसत्कर्मका प्राप्ति किया और इस प्रकार अन्तका अन्तर कर दिया । फिर अन्तमें मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको गन्ताकर प्रथमोत्थम सम्यक्त्वका प्राप्त किया और वहाँ अन्तमुहूर्त २६ कर वेवक सम्यक्त्वके प्राप्त किया । पुनः अन्तमुहूर्तकाकालके द्वारा अनन्तानुबन्धीकी किरकोजना की । पुनः अन्तमुहूर्त और अपूर्वकालको करके अन्तिगणिकालके कालके संख्यात बहुभाग अन्तर्गत हो जाने पर मिथ्यात्वका कर किया । पुनः अन्तमुहूर्त करके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम प्राप्ति परकरके संक्रमण करके अन्तकालसे अन्तस्थितिसत्कर्मके द्वारा अन्तस्थितिके किरकोजने गतावे हुए अब एक निपेक्षकी स्थिति हो समय कालप्रमाण सेय रह जाती है तब इस बीचके सम्यग्मिथ्यात्वकी अवश्य

मर्गताणुबंधिचउक्कस्स वि । णवरि अंतोमुहुत्तभंभंतरे दो वारं तेसिं विसंयोजणं काउण जहण्णांतरं वत्तव्व ।

❀ उक्कस्सेण उवड्डुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ५५७. सुगममेदं । एवं चुण्णिमुत्तमस्सिदूण ओघंतरपरुवणं करिय सपहि तेण सूचिदसेसमग्गणाओ अस्सिदूण अंतरपरुवणाए कीरमाणाए उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ ५५८ जहण्णए पयदं । दुविहो णिदोसो—ओघेण ओदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० जह० अजह० णत्थि अंतरं । सम्मत० जह० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्रुपोग्ग० देसूणं । अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० ज० अतोमु०, उक्क० अद्रुपोग्ग० देसूण । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० वेद्धावट्टिसागरो० देसूणाणि । एवमचक्खु०-भवसि० ।

स्थितिका जघन्य अन्तर प्राप्त होता है जिसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी चतुष्कका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दोषार अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना कराके जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

\* तथा उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है ।

§ ५५७. यह सूत्र सरल है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर ओघ अन्तरका कथन करके अब सभी मार्गणाओंमें इसके द्वारा सूचित होनेवाले अन्तरका कथन उच्चारणके आश्रयसे करते हैं—

§ ५५८. जघन्य अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शन-वाले और भव्योंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सब प्रकृतियों की जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख चूर्णिसूत्रों की व्याख्या करते समय किया ही है अतः यहा अजघन्य स्थिति के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख किया जाता है—उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त हो जानेके बाद उससे न्यून जितनी स्थितिया प्राप्त होती हैं उन सबको अनुत्कृष्ट स्थिति कहते हैं तथा जघन्य स्थितिके अतिरिक्त जितनी स्थितियाँ होती हैं उन्हें अजघन्य स्थिति कहते हैं । इसके अनुसार ओघसे मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितियोंका अन्तर नहीं प्राप्त

§ ५५९ आवेसप्य गेरहपसु मिच्छत्-वारसक० णवणोक० जह० गत्वि अंतरं । अम० जहण्णुक० एगस० । सम्मत्त० जह० गत्वि अंतरं । अम० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० जह० जह० पत्तिदो० असत्ते० मागो । अज० जह० एगस०, उक्क० दोणं पि तेचीस० देसूणाणि । अर्णत्ताणु० चउक्क० ज० अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तेचीसं सामरो० देसूणाणि । पदमाए मिच्छत्-वारसक० णवणोक० जह० गत्वि अंतरं । अम० जहण्णुक० एगस० । सम्मत्त० ज० पत्वि अंतरं । अम० जह० एगस०, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । सम्मामि० जह० जह० पत्तिदो० बमस्स असं० मागो । अज० जह० एगस०, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । अर्णत्ताणु० चउक्क० जह० अजह० जह० भंवा०, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । विदियादि जाव छट्ठि पि मिच्छत्-वारसक -णवणोक० जह० अम० गत्वि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पत्तिदो० असत्ते०

होता, क्योंकि ओषसे पन प्रकृतियोंकी अणुपणु स्थितियों अणुपणुके अन्तमें ही प्राप्त होती हैं और रूप होनेके पश्चात् पुनः इनका सत्त्व नहीं पाया जाता । किन्तु सम्पत्त्व और सम्यग्मिच्छात्वका अन्तनामके पश्चात् सम्यक्त्वके होने पर निश्चयसे सत्त्व हो जाता है और अनन्तलोककी अणुपणुका विसंबोधनाके पश्चात् पुनः सत्त्व हो सकता है अतः इन प्रकृतियोंकी ओषसे अणुपणु स्थितियों का भी अन्तर पाया जाता है । अन्तमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिच्छात्वकी अणुपणु स्थितिके अन्तरका अनुमान इनके अनुकूल स्थितिके अन्तरके समान जानना चाहिये । तथा अनन्तलोककी अणुपणुकी अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर अन्तर्गृह्यते है, क्योंकि अनन्तलोककी अणुपणुकी विसंबोधनाके बाद पुनः अणुपणु सत्त्व प्राप्त करनेमें कर्मसे कम अन्तर्गृह्यते कम लगता है । तथा अणुपणु अन्तर अणुपणु एकपत्ती वतीस सागर है क्योंकि जिसने अनन्तलोककी अणुपणुकी विसंबोधना कर ही है वह यदि मिच्छात्वमें आकर पुनः अणुपणु सत्त्व प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें सबसे अधिक कम अणुपणु एकपत्ती वतीस सागर लगता है ।

§ ५६० आदेशकी अपेक्षा नारिकेलमें मिच्छात्व बारह कणाय और नौ नोकरायोंकी अणुपणु स्थितिका अन्तर नहीं है । अणुपणु स्थितिका अणुपणु और अणुपणु अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अणुपणु स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अणुपणुका मग अणुपणुके समान है । सम्यग्मिच्छात्वकी अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर एकपत्तीवतीस सागर प्रमाण्य है । तथा अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर एक समय है और दोनों स्थितियोंका अणुपणु अन्तर अणुपणु वतीस सागर है । अनन्तलोककी अणुपणुकी अणुपणु और अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर अन्तर्गृह्यते और अणुपणु अन्तर अणुपणु वतीस सागर है । पहली पृथिवीमें मिच्छात्व बारह कणाय और नौ नोकरायोंकी अणुपणु स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अणुपणु स्थितिका अणुपणु और अणुपणु अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी अणुपणु स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर एक समय और अणुपणु अन्तर अणुपणु वतीस सागर है । सम्यग्मिच्छात्वकी अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर एकपत्तीवतीस सागर प्रमाण्य है । तथा अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर एक समय है और दोनोंका अणुपणु अन्तर अणुपणु वतीस सागर है । अनन्तलोककी अणुपणुकी अणुपणु और अणुपणु स्थितिका अणुपणु अन्तर अन्तर्गृह्यते और अणुपणु अन्तर अणुपणु वतीस सागर है । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारिकेलमें मिच्छात्व बारह कणाय और नौ नोकरायोंकी अणुपणु और अणुपणु



भागो । अज० ज० एगस०, उक्क०, सगट्टिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० जह०  
 अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । सत्तमाए मिच्छत्त-वारसक०-भय-  
 दुगुंछ० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोक०  
 जह० णत्थि अंतरं । अज० जहणुक्क० एगस० । सम्मामि०-अणंताणु० णिरओघं ।  
 सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो ।

स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और दोनों जघन्य अजघन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य नारकियोंके समान है । तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—नरक में मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति दूसरे विग्रहके समय एक वार ही प्राप्त हो सकती है, अतः यहाँ जघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं कहा । किन्तु इस जीवके पहले विग्रहमें और तृतीयादि समयों में अजघन्य स्थिति रहेगी अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहा है । नरकमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके ही सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इसकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं । तथा इसकी अजघन्य स्थितिका अन्तर काल अनुत्कृष्ट स्थितिके समान घटित कर लेना चाहिये । जिस नारकीने उद्वेलना करके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्ति की है वह उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें आकर पुनः उद्वेलना करके यदि पुनः उसकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें पत्यका असंख्यातवा भागप्रमाण काल लगता है, अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । जिस नारकीने सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके बाद जघन्य स्थितिको प्राप्त किया और तीसरे समयमें उपशमसम्यक्त्वी होकर पुनः अजघन्य स्थितिको प्राप्त कर लिया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । जो नारकी नरक में उत्पन्न होनेके पहले समयमें और अपनी आयुके अन्तिम समय में उद्वेलनाद्वारा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । तथा जिस नारकीने उत्पन्न होनेके बाद दूसरे समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी और अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । तथा नरकमें सम्भव विसंयोजनाके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण प्राप्त होता है । प्रथम नरकके कथनमें सामान्य नारकियोंके कथनसे कोई विशेषता नहीं है । किन्तु जहा सामान्य नारकियोंके कथनमें कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति कही हो वहा प्रथम नरककी कुछ कम उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये । दूसरेसे लेकर छठे नरक

१५६० विरिक्तेषु मिच्छत-वारसक० भय-दुग्धा० अह० ब० अंतोम०,  
 उकक० असंसेजा लोगा । अम० अह० एगस०, उकक० अंतोमु० । सम्मच० अह०  
 पत्थि अंतरं । अम० अणुक्कस्समंगो । सम्मामि० अह० अ० पत्थिदो० असंसे० मागो ।  
 मम० अ० एगस०, उकक० ओपं । अणुंताणु० उउक० अह० ओपं । अम० अह०  
 अंतोमु०, उकक० तिप्पि पत्थिदो० देसूजाणि । सचजोक्क० अ० अ० पत्थिदो० असंसे०  
 मागो, उकक० अणुंताणुसमसंसेजा पोग्गलपरियहा । अम० अहणुक्क० एगस० ।

उकके मात्थियोके मिच्छात्व वारह क्वाय और नौ नोक्कपायोकी अपन्य स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । द्वितीयादि षुभिषियोमें कृतकृत्यवेषक सम्बन्धिति नहीं उत्पन्न होता है अतः यहाँ सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिच्छात्वकी अपन्य स्थितिके अन्तरका काल समान है । यह सामान्य मात्थियोके समान यहाँ भी पटित कर लेता चाहिये । शेष काल सुगम है । सातवें नरकमें मिच्छात्व वारह क्वाय मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थिति अन्तके अन्तमुद्धृतमें कम से कम एक समय उक्त और अधिक से अधिक अन्तमुद्धृत काल तक प्राप्त हो सकती है । अब जिसने इस अन्तमुद्धृतके मध्यमें एक समयके लिये अपन्य स्थिति प्राप्त की उसके अत्रापन्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा जिसने अन्तमुद्धृत तक अपन्य स्थिति प्राप्त करके अन्तमें अत्रापन्य स्थिति प्राप्त की उसके अत्रापन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्धृत पाया जाता है । तथा सात नोक्कपायोकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्त एक समय बतलाया है, अतः इनकी अत्रापन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्राप्त होता है । शेष काल ओपके समान है । किन्तु यहाँ भी कृतकृत्यवेषक सम्बन्धिति उत्पन्न नहीं होता अतः यहाँ सम्पत्त्वका काल सम्पत्तिमिच्छात्वके समान जानना ।

१५६१ तिर्येचोमि मिच्छात्व वारह क्वाय मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमुद्धृत है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात शोकप्रमाण है । तथा अत्रापन्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्धृत है । सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अत्रापन्य स्थितिका मंग अमुक्क स्थितिके समान है । सम्पत्तिमिच्छात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर पत्थोपमके असंख्यातमें मागप्रमाण और अत्रापन्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय तथा दोनोकर उत्कृष्ट अन्तर ओपके समान है । अनन्ताणुक्की वणुक्की अपन्य स्थितिका अन्तर ओपके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमुद्धृत और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीस पक्ष है । सात नोक्कपायोकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर पत्थोपमके असंख्यातमें मागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अत्रापन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समान है ।

विशेषार्थ—पहले तिर्येचोके मिच्छात्व वारह क्वाय, मय और जुगुप्साकी अत्रापन्य स्थितिका अपन्य काल अन्तमुद्धृत और उत्कृष्टकाल असंख्यात शोकप्रमाण बतला चाले है अतः यहाँ यहाँ इनके उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तथा पहले इनके उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुद्धृत बतला चाले है अतः यहाँ यहाँ इनके उक्त प्रकृतियोंकी अत्रापन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्येचोके सम्पत्त्वकी अपन्य स्थिति कृतकृत्यवेषक सम्बन्धितिके प्राप्त होती है अतः इनके सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिके अन्तरकालका नियम दिया है । तिर्येचोके

§ ५६१. पंचिदियतिरिक्त्व-पंचि०तिरि०पञ्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-  
वारसक०-भय-दुग्धं० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एयस० । सम्म० जह०  
णत्थि अंतरं । अज० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुञ्चकोटिपुधत्तेण-

सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण वतला आये हैं उसी प्रकार यहा उसकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये । किसी एक तिर्यचने उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया । पुनः वह दूसरे समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया तो उसे मिध्यात्वमें जाकर उद्वेलनाके द्वारा पुनः सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पत्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण काल लगता है, अत तिर्यचके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर-काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो तिर्यच सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके साथ एक समय तक रहा और दूसरे समयमें वह उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान जानना, क्योंकि ओघमें कहा गया उत्कृष्ट अन्तरकाल तिर्यचोंके ही घटित होता है । एक अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना दो बार प्राप्त हो सकती है और ओघसे विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है जो तिर्यचोंके भी सम्भव है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर-काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त कहा । तिर्यचोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका उत्कृष्ट अन्तर-काल अर्ध पुद्गलपरिवर्तन है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ओघके समान कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन कहा । तथा तिर्यचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा तिर्यचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका सत्त्वकाल कुछ कम तीन पत्य है, अत इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पत्य कहा । जो एकेन्द्रिय जीव सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रतिपत् प्रकृतियोंके बन्ध कालके अन्तिम समयमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है । अब यदि दूसरी बार यह जीव इसी स्थितिको प्राप्त करना चाहे तो उसे कमसे कम पत्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण काल लगेगा, क्यों कि किसी एकेन्द्रियको पचेन्द्रियके योग्य स्थितिका घात करके एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पत्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यचोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । अब यदि किसी एकेन्द्रियने उक्त कालके प्रारम्भ और अन्तमें पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया तो उसके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका उक्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है । तिर्यचोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति एक समयके लिये प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६१. पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमत्तियोंमें मिध्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे

अहियाणि । सम्मामि० अह० अ० पखिदो० असंसे० भागी । अज० अ० एगसमओ,  
 उक० तिष्णि पखिदो० पुम्बकोडिपुपचेपम्भहियाणि । अणंतापु० पउक० अ० ज०  
 अंतोमुहुचं, उक० सगठिदी देसूपा । अज० अह० अंतोमु०, उक० तिष्णि पखिदोव  
 माणि देसूपाणि । सत्तणो० अह० अंतिय अंतरं । अज० अहण्णु० एगस० । गवरि  
 पविदियतिरिक्खजोगिणीसु सम्भत्त० सम्मामिच्छत्तमगो ।

अधिक तीन पस्यप्रमाण है । सम्मामिध्यात्वकी अथवा स्थितिका अथवा अन्तर पस्योपमके  
 असंख्यातर्षे भागप्रमाण है । तथा अत्रापस्य स्थितिका अथवा अन्तर एक समय और दोनोंका  
 एक अन्तर पूर्वकोटि पूर्ववत्तसे अधिक तीन पस्य है । अन्तस्तानुवन्धी क्तुच्छकी अथवा  
 स्थितिका अथवा अन्तर अन्तमु हुते और एक अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा  
 अत्रापस्य स्थितिका अथवा अन्तर अन्तमु हुते और एक अन्तर कुछ कम तीन पस्य है । सात  
 माक्यायोकी अथवा स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अत्रापस्य स्थितिका अथवा और एक अन्तर  
 एक समय है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक योनिमतिर्योमें सम्भक्तका मंग  
 सम्मामिध्यात्वके समान है ।

विशेषार्थ—एक तीन प्रकारके तिर्यकोके सिध्यात्व, बाह्य कयाप, मय और जुगुप्ताकी  
 अथवा स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रिय तिर्यक, पंचेन्द्रिय तिर्यक पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यक  
 योनिमती पयायके रहते हुए नहीं प्राप्त होता क्योंकि वा बाहर पंचेन्द्रिय इत समुत्पच्छिमसे एक  
 तीन प्रकारके तिर्यकोमें उत्पन्न होता है उसीके इनकी अथवा स्थिति पर्ये जाती है अतः इनके  
 एक प्रकृतियोंका अथवा अन्तर काल नहीं कहा । इनके सात माक्यायोकी अथवा स्थितिके अन्तरके  
 नहीं होमेका भी यही कारण जानना चाहिये । तथा इनके एक प्रकृतियोंकी अथवा स्थिति एक समयके  
 लिय होती है, अतः अत्रापस्य स्थितिका अथवा और एक अन्तरकाल एक समय कहा । तिर्यकोमें  
 सम्भक्तकी अथवा स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्भक्तिके होती है और ऐसे बीचके पुन सम्भक्तका उत्प  
 नहीं पाया जाता अतः अन्तिम भेदके जोड़कर एक दो प्रकारके तिर्यकोके सम्भक्तकी अथवा स्थितिका  
 अन्तरकाल नहीं कहा । जिस तिर्यकने सम्भक्तकी छोड़ना करके एक समयके अन्तरकालसे उपयम  
 सम्भक्तके प्राप्त किया है उसके सम्भक्तका अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः विशिष्ट  
 तिर्यकोके सम्भक्तकी अत्रापस्य स्थितिका अथवा अन्तर एक समय कहा । एक तीन प्रकारके  
 तिर्यकोका एक अन्तर पूर्वकोटि पूर्ववत्तसे अधिक तीन पस्य है । अथ यदि किसीने अपने कालके  
 मारम्भमें सम्भक्तकी छोड़ना की और अन्तमें अन्तिम सम्भक्तको प्राप्त करके सम्भक्तकी अत्रापस्य  
 स्थितिके प्राप्त किया तो इसके एक काल एक सम्भक्तका अन्तर पाया जाता है अतः एक  
 तीन प्रकारके तिर्यकोके सम्भक्तकी अत्रापस्य स्थितिका एक अन्तर काल एक प्रमाण कहा । तथा  
 सम्मामिध्यात्वकी अत्रापस्य स्थितिका अथवा और एक अन्तरकाल सम्भक्तके समान बटित  
 कर लेना चाहिये और सामान्य तिर्यकोके सम्मामिध्यात्वकी अथवा स्थितिका अन्तरकाल जिस  
 प्रकार बटित करके लिख गये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये, इसलिये इसका अलगसे  
 कुतासा नहीं किया । किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यकके सम्भक्तकी अथवा  
 स्थितिका अन्तरकाल सम्मामिध्यात्वके समान ही प्राप्त होता है, क्योंकि इतने कृतकृत्यवेदक  
 सम्भक्तिके बीच नहीं उत्पन्न होता । एक तीनों प्रकारके तिर्यकोके अन्तस्तानुवन्धीकी अथवा स्थिति  
 बिसंबोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है और जिसने अन्तस्तानुवन्धीकी बिसंबोजना की  
 है वेसा जोब सिध्यात्वमें आकर और सम्भक्तको प्राप्त करके पुनः बिसंबोजना करने तो कमसे कम

§ ५६२. पचि०तिरि० [ अ ] पज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० पचि०-तिरिक्खभंगो । अणंताणु०चउक० मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णा-जहण्ण० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिट्ठिय-पंचिंदियअपज्ज०-तस-अपज्जत्ते ति ।

§ ५६३. मणुसतिय० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि सम्मामि० जह० ओघं ।

अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंका जो उत्कृष्ट काज पूर्वमोदृष्यवत्त्वसे अधिक तीन पत्य वतला आये हैं सो इसके आदि और अन्तमें अनन्तानुबन्धीकी घिसयोजना करावे और इम प्रकार उभयत्र अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति ले आवे, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा । किसीने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके अन्त समयमें अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तके वाद मिथ्यात्व में जाकर उसने पुनः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति प्राप्त करली तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है इसीलिये उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है यह स्पष्ट ही है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६२ पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकरायोंका भग पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और व्रस अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है और यह सब व्यवस्था पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है, अतः इस कथनको पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान करनेकी सूचना की । पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरके सम्बन्धमें यही व्यवस्था जाननी चाहिये, अतः इसके कथनको मिथ्यात्वके समान कहा । पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेगना तो होती है पर इसी पर्यायके रहते हुए पुनः इनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता । मूलमें मनुष्य लब्धपर्याप्त आदि और जितनी मार्गाणाए गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ५६३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका भग पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—मनुष्य त्रिकके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षणके समय

§ ५६४ देव० मिच्छत्त-वारसक०-गणणोक्त० अह० णत्थि अतरं । अज० अहण्णक० एयस० । सम्मत्त० अह० णत्थि अतरं । अज० अह० एगस०, उक० एकत्तीसं सागरोबमाणि देसूणाणि । सम्मामि० अह० अह० पस्सिदो० असंखे० भागो । उक० एकत्तीससागरो० देसूणाणि । अमाह० अह० [ एगसममो, ] उक० एकत्तीस सागरोबमाणि देसूणाणि । अगंताणु० ज० अम० अ० मंतोसु०, उक० एकत्तीस० देसूणा० ।

तथा वारह कयाय और नौ नोकपायोंकी अथव्य स्थिति धारित्रमोहनीयकी सपण्याके समब प्राय ही होती है तथा इसके बाद इनका पुनः सत्त्व सम्मब नहीं अतः इनकी अथव्य और अजअथव्य स्थितिका अन्तरकात्त नहीं कहा । अब शेष आ छह प्रकृतियों बचती हैं सो इनकी अथव्य और अजअथव्य स्थितिके अन्तरके विषयमें जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यक्के कृत्वासा कर भाय हैं वही प्रकार यहाँ भी कृत्वासा कर लेना चाहिये । किन्तु इनके सम्मगिमध्यात्वकी अथव्य स्थितिका अथव्य अन्तरकात्त ओपके मन्नाम वन जाता है, क्योंकि इनके सम्मगिमध्यात्वकी अथव्यसन्तके समान सपण्या भी पाई जाती है ।

§ ५६४ देवोमि मिच्छात्व वारह कयाय और नौ नोकपायोंकी अथव्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजअथव्य स्थितिका अथव्य और अहृत्त अन्तर एक समय है । सम्मत्त्वकी अथव्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजअथव्य स्थितिका अथव्य अन्तर एक समय और अहृत्त अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । सम्मगिमध्यात्वकी अथव्य स्थितिका अथव्य अन्तर पस्योपमके असंख्यातमें भागप्रमाण है और अहृत्त अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । तथा अजअथव्य स्थितिका अथव्य अन्तर कात्त एक समय और अहृत्त अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । अनन्तानुबन्धी अतुच्छकी अथव्य और अजअथव्य स्थितिका अथव्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अहृत्त अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है ।

विशुपार्थ—शो अस्ती शो मोडा लेकर देवोमि अल्प होता है इसके दूसरे बिम्बके समय ही मिच्छात्व, वारह कयाय, मम और जुगुप्साकी अथव्य स्थिति सम्मब है । तथा इसी बीजके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके सपण्यात्तके अन्तमें सात नोकपायोंकी अथव्य स्थिति सम्मब है, अतः सामान्य देवोमि अहृत्त प्रकृतियोंकी अथव्य स्थितिका अन्तर कात्त नहीं कहा । तथा इनके अहृत्त प्रकृतियोंकी अथव्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है अतः इनके अहृत्त प्रकृतियोंकी अजअथव्य स्थितिका अथव्य और अहृत्त अन्तरकात्त एक समय कहा । देवोमि अहृत्तप्रकृतिके सम्मत्तवि शीब उत्पन्न होत हैं अतः इनके सम्मत्त्वकी अथव्य स्थितिका अन्तरकात्त सम्मब नहीं है । कारण स्पष्ट है । जिस देवके अथव्यसन्तके एक समयके अन्तरकात्त अथव्य सम्मत्त्वकी प्राप्ति होती है उसके सम्मत्त्वकी अजअथव्य स्थितिका अन्तर एक समय पाया जाता है अतः सामान्य देवोमि सम्मत्त्वकी अजअथव्य स्थितिका अथव्य अन्तरकात्त एक समय कहा । देवोमि अथव्य मेषक तकके देव ही मिच्छात्तवि होते हैं । अब जिस देवबन यहाँ उत्पन्न होकरके पहले समयमें सम्मत्त्वकी अथव्यसन्त करके अजअथव्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तकालके शेष एव काल पर अथव्य सम्मत्त्वका प्राप्त करके सम्मत्त्वकी अजअथव्य स्थितिके प्राप्त किया इसके सम्मत्त्वकी अजअथव्य स्थितिका अन्तरकात्त कुछकम इच्छीस सागर पाया जाता है, अतः सामान्य देवोमि अहृत्त प्रकृतिकी अजअथव्य स्थितिका अहृत्त अन्तरकात्त अहृत्त प्रमाण कहा । इसी प्रकार सम्मगिमध्यात्वकी अथव्य और अजअथव्य स्थितिका अहृत्त अन्तरकात्त पठित कर लेना चाहिये । किन्तु इतमी विवेचना है कि

§ ५६५ भवण०वाण० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० जह० अज० देवोर्ध० ।  
 सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगट्टिदी देसूणा ।  
 अज० ज० एयस०, उक्क० सग० देसूणा । अणंताणु०चउक्क० जह० अज० ज०  
 अंतोमृ०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । जोइसियादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-  
 वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त ज० णत्थि अंतरं । अज०  
 अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगसगु-  
 क्कस्सट्टिदी देसूणा । अज० अणुक्कस्सभंगो । अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज०

जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त करते समय जीवनमें पत्यके असंख्यातर्वे भाग कालके शेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करावे और वहासे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति प्राप्त करावे । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पत्यके असंख्यातर्वे भाग प्रमाण जिस प्रकार तिर्यचके घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये । तथा जिस देवने सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके पहले समयमें सम्यक्त्वकी प्राप्त कर लिया है उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः देवोंके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय कहा । अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकालको जिस प्रकार तिर्यचोंके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये । एक देव है जिसने जीवनके प्रारम्भमें विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया अनन्तर वह मिध्यात्वको प्राप्त हो गया और जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब वह पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर वन जाता है, अतः सामान्य देवोंके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा जिस देवने प्रारम्भमें विसंयोजना द्वारा विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और जीवन भर वह सम्यक्त्वके साथ रहा । पुनः जीवनके अन्तिम समयमें वह मिध्यात्वको प्राप्त हुआ तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर पाया जाता है, अतः इसका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा ।

§ ५६५. भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातर्वे भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । ज्योतिपियोसे लेकर उपरिमत्रैवेयक तकके देवोंमें मिध्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अजघन्यका भंग अनुकृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातर्वे भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुकृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

मंतो०, उक्क० सगडिदी देसूखा । गवरि जोइसिपसु सम्मत्त० सम्मामिच्छचर्मगो । मणुरिसादि भाव सुव्यह० सव्यपयदीर्ग म० अन्न० गरिय अंतर । फम्मइय आहार० आहारयिस्स०-अक्कद० अकसा० आमिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-विहंग०-संबद० सामाइय-खेदो० परिहार०-सुहुम०-बहाक्त्वाद० संमदासज्जद०-ओहिदस०-सम्मादि० लइय० वेदय०-ज्वसम०-सासण०-सम्मामि०-अणाहारए ति गतिय अंतरं ।

§ ५६६ परंदिपसु यिच्छत्त-साससक० मय-दुगुंढ० अह० न० मंतोमु०, उक्क० मसंसेज्जा सोगा । अज० ब० एगस०, उक्क० मंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि० न० मन० पत्थि० अंतरं । सुत्तणोक्क० ब० न० मंतोमु०, उक्क० असंस्सज्जा सोगा । अज० नइप्पुक्क० एगस० । एवं सुहुम० । बादराणमेव भेव । गवरि सगडिदी देसूखा । एवं बादरपज्जचा

बपनी स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विक्षेपता है कि ज्योतिषियोंमें सम्बन्धवत्त्व मंग सम्बन्धि ध्वस्तके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वापसिद्धितक पूर्वोंमें सब प्रकृतियोंकी बपन्य और अन्नपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार कर्मसंश्लेषयोगी आहारकप्रयोगी आहारकमित्र कस्ययोगी, अपगतवेदी, अकवायी, आमिनिवाधिकज्ञानी, कुतस्थानी, अन्नधिकानी मन्त्रपययज्ञानी, विमंगज्ञानी, संबत, सामायिकसंयत खेदोपस्थापनासंयत, परिहारविद्युदिसंयत, सूक्ष्मसांपराधिक-संबत, यथाक्यातसंयत संयतासंयत, अन्नभिरन्नैनास्ते, सम्पत्ति, आयिकसम्पत्ति, वेदकसम्पत्ति, उपक्रमसम्पत्ति, सासावनसम्पत्ति, सम्पत्तिध्यातृति और जनाहारक जीर्णके सब प्रकृतियोंकी बपन्य और अन्नपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—मन्त्रवासी और अन्तरदेवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्पत्ति जीव नहीं उत्पन्न होते अतः इनके वहाँ सम्भव सम्बन्धकी बपन्य स्थितिका अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि एक बार सम्बन्धकी बपन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः इसी स्थितिको प्राप्त करनेमें पस्वके अर्सेक्यातमें भागप्रमाण काल लगता है । शेष काल सुगम है । ज्योतिषियोंसे लेकर अपरिम प्रियेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व, बाह्य कृपाय और नौ नोकपायोंकी बपन्य स्थितिका प्राप्त होना जीवनके अन्तिम समयमें सम्भव है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी बपन्य और अन्नपन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं पाया जाता । ज्योतिषियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्पत्ति जीव नहीं उत्पन्न होता, अतः इनके सम्बन्धकी बपन्य स्थितिका अन्तरकाल मन्त्रवासियोंके समान बन जाता है, शेषके नहीं । अनुदिशाधिकमें सम्पत्ति जीव ही उत्पन्न होते हैं, अतः वहाँ किसी भी प्रकृतिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है । इसी प्रकार आहारकप्रयोगसे लेकर सम्पत्तिध्यातृति तकके जीवोंमें अपन अपन कालके अन्तिम समयमें बपन्य स्थिति होनेके कारण अन्तर संभव नहीं है । कर्मसंश्लेषयोग और अन्तहारक ऐसी मार्गद्वारे हैं जिनमें सम्भव सब प्रकृतियोंकी बपन्य और अन्नपन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ अन्तरकालके साथ दो बार बपन्य या अन्नपन्य स्थिति नहीं पाई जाती ।

§ ५६६ परंदिपसु यिच्छत्त-साससक० मय-दुगुंढ० अह० न० मंतोमु०, उक्क० मसंसेज्जा सोगा । अज० ब० एगस०, उक्क० मंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि० न० मन० पत्थि० अंतरं । सुत्तणोक्क० ब० न० मंतोमु०, उक्क० असंस्सज्जा सोगा । अज० नइप्पुक्क० एगस० । एवं सुहुम० । बादराणमेव भेव । गवरि सगडिदी देसूखा । एवं बादरपज्जचा



पज्जत्ताणं । सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताप्सु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० जहण्णुक्क० अतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोकसाय० ज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० जण्णुक्क० एगसमग्रो । [सम्मत्त-सम्मा० ज० अज० णत्थि अंतरं ।]

§ ५६७ पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मिच्छत्त-पारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क०भंगो । सम्मा-मि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देमूणा । अणंताणु०-

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय हैं । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । वादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार वादर पर्याप्तक और वादर अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त हैं । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—जो वादर एकेन्द्रिय मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः उसे प्राप्त करना चाहता है उसे वैसा करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है अतः एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा यदि ऐसा जीव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अपने उत्कृष्ट काल तक परिभ्रमण करे और फिर वादर एकेन्द्रिय हो कर जघन्य स्थिति प्राप्त करे तो असंख्यात लोकप्रमाण काल लगता है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वोक्त रीतिसे ही घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही होता है, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्रमाण ही प्राप्त होगा । एकेन्द्रियोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, यह स्पष्ट ही है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्वादिकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है । शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है । शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है ।

§ ५६७ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, व्रस और व्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है ।

चक्र० ज० ज० अंतोमु०, चक्र० सगदिदी देव्या । अम० अ० अंतोमु०, चक्र० बे  
 दाबदिसागरो० देव्याणि । एवं पुरिस०-अक्षु०-सपिणि चि ।

१५६८ कायापुवादेण पंचकाय० एद्वियमंगो । णवरि सगसगुक्कस्सठिदी  
 देव्या । पंचमण०-पचबधि० मिच्छत्त-सोत्तसक०-अन्नपोक० ज० अम० णत्थि अंतरं ।  
 सम्मच्च० सम्मामि० ज० णत्थि अंतरं । अम० अ० एगस०, चक्र० अंतोमु० । काय  
 भोगि० भोरासि०-वेदधिय० मणसोगिमंगो । भोरासियमिस्स० सुहुमेद्वियअपज्जत्त  
 मंगो । णवरि सत्तपोक० अह० णत्थि अंतरं । अम० अहण्णुक्क० एगसममो । वेद  
 धियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोत्तसक० मय-दुगुध० म० अन्न० णत्थि  
 अंतरं । सत्तपोक० ज० णत्थि अंतरं । अन्न० अहण्णुक्क० एगस० ।

तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी वगुच्छकी अपन्य  
 स्थितिका अचम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा  
 अचम्य स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो ब्यासठ सागर  
 है । इसी प्रकार पुरुषवेदवासो अक्षुदण्डेवासो और संघी वी बोकें जानना चाहिये ।

विशुपार्थ—पंचेन्द्रिय आदि चार मार्गोवाभोंमें वृद्धेन्माहनीय और चारिबमोहनीयकी  
 अपवाके समय मिच्छात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोकी अपन्य स्थिति पाई जाती है, अतः  
 इनके एक प्रकृतिबोकी अपन्य और अचम्य स्थितिका अन्तरकात्त नहीं पड़ा । तथा इनके  
 उत्कृष्टपदेकके अन्तिम समय में सम्पत्त्वकी अपन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसकी अपन्य  
 स्थितिका अन्तरकात्त भी सम्भव नहीं । जिसन सम्ममिच्छात्वकी ठहरेसना की और सम्पदृष्टि होकर  
 अन्तमुहूर्त में तसकी अपवा की इसके सम्ममिच्छात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तरकात्त  
 अन्तमुहूर्त पाया जाता है, अतः इसका अपन्य अन्तरकात्त अन्तमुहूर्त पड़ा । शेष कवन सुगम है ।

१५६८ काय मार्गोवाके अनुवासे पांच स्वावर कायोमें पंचेन्द्रियोके समान मंग है ।  
 किन्तु इतनी विसेयता है कि कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति पवनी चाहिये । पांचों  
 मनोयोगी और पांचों मनोयोगी बीबोंमें मिच्छात्व सोलह कपाय और नौ नाकपायोकी  
 अपन्य और अचम्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्पत्त्व और सम्पमिच्छात्वकी अपन्य  
 स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अचम्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट  
 अन्तर अन्तमुहूर्त है । अचम्योगी औरारकपाययोगी और वैश्रियकपाययोगी बीबोंमें मना  
 योगियोके समान मंग है । औदारिक मित्रकाययोगियोमें सूक्ष्म पंचेन्द्रिय अपवर्षिकोके समान मंग  
 है । किन्तु इतनी विसेयता है कि इनके सात नाकपायोकी अपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा  
 अचम्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । वैश्रियकमित्रकाययोगियोमें  
 मिच्छात्व सम्पत्त्व सम्ममिच्छात्व सातह कपाय मय और सुगुप्ताकी अपन्य और अचम्य  
 स्थितिका अन्तर नहीं है । सात नोकपायोकी अपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अचम्य  
 स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विसेयार्थ—पांचों मनायोगों और पांचों वचनयोगोंमें मिच्छात्व बारह कपाय और नौ  
 नोकपायोकी अपन्य और अचम्य स्थितिका तथा सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिका अन्तरकात्त नहीं है  
 सो इसका सुवासा पंचेन्द्रिय मार्गोवामें जिस प्रकार कर आब है वही प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये ।  
 तथा एक योगोंमेंसे एक योगके छठे हुए अनन्तानुबन्धीकी वा बार विसंबाजना सम्भव नहीं, अतः

§ ५६९. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० अज० एत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क०भंगो । सम्मामि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुताणु०चउक्क० ज० सम्मामिच्छत्त-भंगो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पणवणणपल्लिदो० देसूणाणि ।

§ ५७०. एवुंस० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसयोधं । णवरि अणताणु०चउक्क० अज० ज० अतोमु०, उक्क० तेत्तीमं सागरो० देसूणाणि । एवमसंजद० । णवरि वारसक०-णवणोक० तिरिक्खभंगो । चत्तारिक० मणजोगिभंगो ।

§ ५७१. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोयं । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० एत्थि अंतरं । अणताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवमभव०-मिच्छा० ।

इनमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । इसी प्रकार उक्त योगोंमेंसे किसी एक योग के रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका दो वार प्राप्त होना सम्भव नहीं, अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलनाके अनन्तर समयमें या अन्तर्मुहूर्तके बाद विवक्षित योगके रहते हुए उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । औदारिकमिश्रकाययोग में सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियके एक वार ही प्राप्त होती है, अतः उसका अन्तरकाल नहीं है । किन्तु इस जघन्य स्थितिके कारण अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार चैत्रियकमिश्रकाययोगमें सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६६ स्त्रीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्यस्थितिके अन्तरका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है ।

§ ५७० नपुसकवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर ओषके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसी प्रकार असंयतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकपायोंका भंग तिर्यचोंके समान है । चारों कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है ।

§ ५७१ मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका भग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अभ्रव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ५७२ द्विष्-शील-काठ० मिच्छत्-वारसक०-मय-दुग्ध० ज० ज० पत्थि अंतरं ।  
 मज० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोक्क० जह० णत्थि अंतरं । मज० जह  
 ण्णुक्क० एगसमओ । सम्मत्त-सम्माभि० ज० जह० पात्थिओ० अस्सत्थे० मागो । अज० ज०  
 एगस०, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । अणताणु० चत्तक्क० अ० अज० ज० अंतोमु०,  
 उक्क० सगद्धिदी देसूणा । गवरि काठ० सम्मत्त० जह० पत्थि अंतरं । सेठ० सोहम्म  
 मंगो । पम्म० सहस्सारमंगो । सुक्कत्थे० मिच्छत्त०-वारसक०-जणणोक्क० ज० मज०  
 पत्थि अंतरं । सेसमुच्चरिमगेक्कमंगो । असण्णि० मिच्छाद्धिमंगो । आहार० मोषं ।  
 पवरि सगुक्कत्तद्धिदी देसूणा ।

एवमंतराणुगमो समचो ।

⊗ बाणाजीवेहि मंगविचओ ।

§ ५७३ एवमहियारसंमाकणसुत्तं सुममं ।

⊗ तस्य अहपर्वं । तं जाहा—ओ उक्कसियाए द्विदीए विहत्तिओ सो  
 अणुक्कत्तिसियाए द्विदीए या होपि विहत्तिओ ।

§ ५७४ कुदो ? उक्कत्तद्धिदीए समउक्कत्तद्धिदियादिकाअभिसेसाणममापादो ।

§ ५७५ कस्य नील और कापोठ सेदयाबाओमें मिष्प्यात्त बारह कवाब मय और  
 कुमुप्ताकी बपम्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अन्नपन्न स्थितिका बपम्य अन्तर एक समय  
 और उक्कत्त अन्तर अन्तमु हुते है । सात नोक्यायोकी बपम्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा  
 अन्नपन्न स्थितिका बपम्य और उक्कत्त अन्तर एक समय है । सम्मत्त और सम्मत्तिष्प्यात्तकी  
 बपम्य स्थितिका बपम्य अन्तर पन्नोपमकं अस्सत्थेत्तवे मंगममात्त और अन्नपन्न स्थितिका  
 बपम्य अन्तर एक समय है । तथा होनोंक उक्कत्त अन्तर कुज कम अपनी स्थिति प्रमात्त है ।  
 अन्तस्तुक्ककी कुच्छकी बपम्य और अन्नपन्न स्थितिका बपम्य अन्तर अन्तमु हुते और उक्कत्त  
 अन्तर कुज कम अपनी स्थितिप्रमात्त है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोठल्लपामें सम्मत्तकी  
 बपम्य स्थितिका अन्तर नहीं है । पीठलेपत्त मंग सौभर्मकं समात्त है । पण्डस्याका मंग  
 सहस्सारके समात्त है । कुक्कत्तल्लप्याबाओमें मिष्प्यात्त बारह कवाप और नौ नोक्यायोकी बपम्य  
 और अन्नपन्न स्थितिका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतिपौच मंग अपरिमपेयके समात्त है ।  
 असेविओमें मिष्प्यात्तके समात्त मंग है । आहारकेमें ओपके समात्त है । किन्तु इतनी विशेषता  
 है कि कुज कम अपनी उक्कत्त स्थिति होती है ।

इस प्रकार अन्तरणुगम समात्त हुआ ।

⊗ अब नाना बीबोंकी अपेक्षा मंगविचयका अधिकार है ।

§ ५०३ यह सूत्र अधिकारके सम्हालनेके लिये व्याप्य है जो सुगम है ।

⊗ इस विषयमें यह अर्थपद है । यथा—ओ उक्कत्त स्थितिबिमक्तिवासा है  
 यह अनुक्कत्त स्थितिबिमक्तिवासा नहीं होता ।

§ ५०४ हुंक्क—उक्कत्त स्थितिबिमक्तिवासा अनुक्कत्त स्थितिबिमक्तिवासा क्यों नहीं होता है ?  
 समाधान—क्योंकि उक्कत्त स्थितिमें एक समय कम उक्कत्त स्थिति इत्थारि कात्त विशेष

§ ५६९. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० अज० एत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुताणु० चउक्क० ज० सम्मामिच्छत्त-भंगो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पणवणणपल्लिदो० देसूणाणि ।

§ ५७०. एवुंस० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसघोर्घं । णवरि अणताणु० चउक्क० अज० ज० अतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवमसंजद० । णवरि वारसक०-णवणोक० तिरिक्खभंगो । चत्तारिक० मणजोगिभंगो ।

§ ५७१. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोर्घं । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० एत्थि अंतरं । अणताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवमभव०-मिच्छा० ।

इनमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । इसी प्रकार उक्त योगोंमेंसे किसी एक योग के रहते हुए सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका दो बार प्राप्त होना सम्भव नहीं, अतः इनमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके अनन्तर समयमें या अन्तर्मुहूर्तके बाद विवक्षित योगके रहते हुए उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । औदारिकमिश्रकाययोग में सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियके एक बार ही प्राप्त होती है, अतः उसका अन्तरकाल नहीं है । किन्तु इस जघन्य स्थितिके कारण अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार वैक्रियकमिश्रकाययोगमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६६ ऋषिदेवालोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्यस्थितिके अन्तरका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है ।

§ ५७० नपुसकवेदवालोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा शेष प्रकृतिर्योंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर ओचके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसी प्रकार असंयतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग तिर्यचोंके समान है । चारों कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है ।

§ ५७१ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका भंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार अमन्य और मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

⊙ सिया अबिहसिया च बिहसिओ च ।

§ ५७० कुदो ? कम्हि बि काले तिहुअणासेसभीवेसु अणुअस्सद्विदिविहसिएसु संवेसु वत्थ एगवीवस्स उअस्सद्विदिविहसिएसणादो ।

⊙ सिया अबिहसिया च बिहसिया च ।

§ ५७१ कुदो ? अगतेसु अबिहसिएसु संवेसु वत्थ सस्सेअणमसंस्सेअणं वा उअस्सद्विदिविहसिअणं संमणुपराभादो ।

⊙ ३ ।

§ ५८० एत्थ तिअमंको किं कारणं इविदो ? एवमेवे एत्थ तिअिण चेव मंगा होति पि माणाअणइ ।

⊙ अणुअस्सियाए द्विदीए सिया सन्ने जीवा बिहसिया ।

§ ५८१ कुदो, उअस्सद्विदिविहसिएदि बिणा तिहुअणासेसभीवाणमणुअस्सद्विदीए चेव अअद्विदार्णं कम्हि बि काले उअअंमादो ।

⊙ सिया बिहसिया च अबिहसिओ च ।

⊙ कदाचित् बहुत बीब मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अभिमन्त्रितवाले होते हैं और एक बीब मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता है ।

§ ५७८ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी अक्षरमें तीन श्लोकके सब बीबोंके अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले रहते हुए अन्तमें एक बीब उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता जाता है ।

⊙ कदाचित् बहुत बीब मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं और बहुत बीब मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५७९ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थिति भिमन्त्रितवाले अक्षरमें बीबोंके रहते हुए अन्तमें कदाचित् संख्यात वा असंख्यात बीब उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले पाये जाते हैं ।

⊙ ३ ।

§ ५८० शंका—यहां पर तीसका अंक किससिधे रखा है ?

समाधान—इस प्रकार यहाँ पर ये तीन हां मंगा होते हैं इस बातका ज्ञान अक्षरके लिये यहाँ पर तीसका अंक रखा है ।

⊙ कदाचित् सब बीब मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५८१ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी अक्षरमें उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले बीबोंके बिना तीन श्लोकके सब बीब अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही विद्यमान पाये जाते हैं ।

⊙ कदाचित् बहुत बीब मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं और एक बीब मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति भिमन्त्रितवाला होता है ।

उक्कस्सट्ठिदिपडिसेहमुहेण अणुक्कस्सट्ठिदिपउत्तीदो वा ।

✽ जो अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए विहत्तिओ सो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए ण होदि विहत्तिओ ।

५७५. कुदो ? परोप्परपरिहारसरूवेण उक्कस्साणुक्कस्सट्ठिदीणमवट्ठाणादो । एवमेदमेगमट्ठपदं । किमट्ठपदं णाम ? भणिस्समाणअहियारस्स जोणिभावेण अवट्ठिदअत्थो अत्थपदं णाम ।

✽ जस्स मोहणीयपयडी अत्थि तम्मि पयदं । अकम्मो ववहारो एत्थि ।

§ ५७६. सुगममेदं ।

✽ एदेण अट्ठपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५७७. एत्थ सियासदो कदाचिदित्यस्यार्थे द्रष्टव्यः, तेण कम्मिह वि काले सव्वे जीवा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिया हांति त्ति सिद्धं । किमट्ठमुक्कस्सट्ठिदीए सव्वे जीवा अक्कमेण अविहत्तिया ? ण, तिव्वसंकिलेसाणं जीवाणं पाएण संभवाभावादो ।

नहीं पाये जाते । अथवा उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिषेध करके अनुत्कृष्ट स्थितिकी प्रवृत्ति होती है, अतः जो उत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला है वह उसी समय अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला नहीं हो सकता ।

✽ जो अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला नहीं होता ।

§ ५७५. शंका—अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला उत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि एक दूसरेका परिहार करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियों रहती हैं,

अतः जो अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिभिक्त्तिवाला हो सकता ।

इस प्रकार यह एक अर्थपद है ।

शंका—अर्थपद किसे कहते हैं ?

समाधान—कहे जानेवाले अधिकारके योनिरूपसे अवस्थित अर्थको अर्थपद कहते हैं ।

✽ जिसके मोहनीय प्रकृति है उसका यहाँ प्रकरण है, क्योंकि मोहनीय कर्मसे रहित जीवमें यह व्यवहार नहीं होता ।

§ ५७६ यह सूत्र सुगम है ।

✽ इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सव जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अविभक्त्तिवाले हैं ।

§ ५७७ यहाँ सूत्रमें आया हुआ 'स्यात्' शब्द 'कदाचित्' इस अर्थमें जानना चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कालमें सव जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्त्तिवाले होते हैं ।

शंका—सव जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति के अविभक्त्तिवाले क्यों होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीव्र मक्लेशवाले जीव प्रायः करके नहीं पाये जाते हैं, अतः सव जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्त्तिवाले होते हैं ।

⊗ सिया अभिहसिया च विहसिओ च ।

§ ५७८ कुदो ? कम्दि वि काले विहुअणासेसनीपेसु अणुअस्सद्विदिविहसिपसु संवेसु तस्य एगजीवस्स उअस्सद्विदिविहसिअसणादो ।

⊗ सिया अभिहसिया च विहसिया च ।

§ ५७९ कुदो ? अणवेसु अभिहसिपसु संवेसु तस्य सखअणमसंसेअ्वाअं वा उअस्सद्विदिविहसिअीवाअं संमअुअलंमादो ।

⊗ ३ ।

§ ५८० एत्थ तिण्णमंको किं कारणं इविदो ? एवमेदे एत्थ तिण्णि चेव मंगा होंति सि जाणामणह ।

⊗ अणुअस्सियाए द्विपीए सिया सअ्खे जीवा विहसिया ।

§ ५८१ कुदो, उअस्सद्विदिविहसिपदि विणा विहुअणासेसनीवाणमणुअस्स द्विपीए चेव अअद्विदाअं कम्दि वि काले उअलंमादा ।

⊗ सिया विहसिया च अभिहसिओ च ।

⊗ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अभिमन्त्रितवाले होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता है ।

§ ५७८ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें तीन लोकके सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिविमन्त्रितवाला रहते हुए इनमेंसे एक जीव उत्कृष्ट स्थितिविमन्त्रितवाला बनेला जाता है ।

⊗ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होते हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५७९ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाले अमल जीवोंके रहते हुए इनमें कदाचित् संख्यात या असंख्यात जीव उत्कृष्ट स्थितिविमन्त्रितवाले पाये जाते हैं ।

⊗ ३ ।

§ ५८० शंका—यहाँ पर तीनका अंक किसलिय रखा है ?

समाधान—इस प्रकार यहाँ पर व तीन हो मंग होते हैं इस बातका ज्ञान अरानके लिय यहाँ पर तीनका अंक रखा है ।

⊗ कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविमन्त्रितवाला रात हैं ।

§ ५८१ शंका—येसा क्यों जाता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें उत्कृष्ट स्थितिविमन्त्रितवाले जीवोंके पिना तीन साकक सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही विद्यमान पाये जाते हैं ।

⊗ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाला होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाला जाता है ।



§ ५८२, कुदो ? एक्केण अणुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिएण सह सयलजीवाण-  
मणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो ।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ।

§ ५८३, कुदो ? अणंतेहि अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जासंखेज्जाण-  
मुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो ।

❀ एवं सेसाणं पि पयडीणं कायव्वो ।

§ ५८४, जहा मिच्छत्तस्स णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा कदा तहा सेसपय-  
डीणं हि कायव्वा ।

§ ५८५, एवं जइवसहाइरियसूचिदत्थस्स उच्चारणाइरिएण वालजणाणुगहट्ट-  
कयपरूवणं भणिस्सामो । णाणाजीवेहि भगविचओ दुविहो—जहणओ अक्कस्सओ  
चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण  
अट्टावीसणं पयडीणं उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया  
च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । अणुक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे  
जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया

§ ५८२. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि अनुत्कृष्ट स्थिति आविभक्तिवाले एक जीवके साथ सब जीव अनुत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले पाये जाते हैं ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और  
बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले होते हैं ।

§ ५८३ शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि कदाचित् अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले अनन्त जीवोंके साथ संख्यात  
या असंख्यात उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं ।

\* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये ।

§ ५८४ जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भंगविचयपरूवणा की है उसी  
प्रकार शेष प्रकृतियोंकी भी करनी चाहिये ।

§ ५८५, इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी उच्चारणाचार्यने  
वालजनोंके अनुग्रहके लिये जो परूवणा की है उसे कहते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय  
दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले  
और एक जीव विभक्तिवाला होता है । कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले और बहुत जीव  
विभक्तिवाले होते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले होते हैं ।  
कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला होता है । कदाचित् बहुत जीव  
विभक्तिवाले और बहुत जीव अविभक्तिवाले होते हैं । इसी प्रकार अनाहारकमागंणातक

ष । एवं वेदस्य बाव अपाहारए सि । णवरि मयुसअपज्ज • उक्कस्सट्ठिदीए सिया सम्भे जीवा अविहृषिया, सिया सम्भे जीवा विहृषिया, सिया एगो जीवो अविहृषिओ, सिया एगो जीवो विहृषिओ । एवमेदे चत्तारि एगसंभोगमंगा । दुसंभोगमंगा सि एषिया वेव । सम्भमंगसमासो अह ८ । अयुक्कस्सस्स वि एवं वेव पक्कवेदस्य । एवं वेठअियमिस्स • आहार • आहारमिस्स • अयगद • अकसा • सुहुम • जहाक्खाद • उवसम • सासग • सम्माधि • ।

एवमुक्कस्समो गाणामीवेहि मंगविचयाणुगमो समचो ।

### ✽ जहय्यए मंगविचए पयद ।

सेवाना चाहिये । किन्तु इतनी क्लेशता है कि मनुष्य अपयाप्तकर्मों उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा कदाचित् सब जीव अभिमन्त्रितवाले, कदाचित् सब जीव विमन्त्रितवाले, कदाचित् एक जीव अभिमन्त्रितवाला, कदाचित् एक जीव विमन्त्रितवाला इस प्रकार ये एक संयागी चार मंग होते हैं । तथा त्रिसंयोगी मंग भी इतने ही होते हैं । इस प्रकार सब मंगोंका बाढ़ भाठ होता है ८ । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इसी प्रकार वैश्विकमित्र अययोगी, आहारकफाययोगी, आहारकमित्रकफाययोगी अपगतवेदवाले, अकपायी, सुखसंयत्तायिकसंयत्त, यथास्मात्संयत्त, उपसमसन्मगदधि, सासावनसम्बगदधि और सम्भगिम्प्यादधि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा मंग विचयाणुगममें दो बातें ज्ञातव्य हैं । प्रथम यह कि एक जीवमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति एक साथ नहीं पायी जाती । और दूसरी यह कि अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नाना जीव तो सबैदा रहते हैं किन्तु उत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाला कदाचित् एक भी जीव नहीं होता कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं । इस प्रकार इन दो विशेषताओंको ध्यात्तमें रखकर यदि एक बार उत्कृष्ट स्थिति की मुफ्ततासे और दूसरी बार अनुत्कृष्ट स्थिति की मुफ्ततासे मंग प्राप्त किये जाते हैं तो वे दृढ़ होते हैं । पचा—कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाले नहीं हैं कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाले और एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाला है कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाले और बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाले हैं कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाला है तथा कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विमन्त्रितवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाले हैं । यह ऋम मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि सब प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा बन जाता है । आदेशकी अपेक्षा सब मार्गशास्त्रोंमें भी यही ऋम जानना चाहिये । किन्तु मनुष्य सच्छयपयस, वैश्विकमित्रकफाययोगी आहारकफाययोगी आहारकमित्रकफाययोगी सुखसंयत्तायिकसंयत्त, उपसमसन्मगदधि, सासावन सम्मगदधि और सम्भगिम्प्यादधि इन भाठ सांख्य मार्गशास्त्रोंमें तथा मोहनीयके सत्त्वकी अपेक्षा अन्तरको प्राप्त हुई अपगतवेदी, अकपायी और यथास्मात्संयत्त इन तीन मार्गशास्त्रोंमें एक और अनेक जीवोंके सत्त्वासत्त्वका आश्रय लेकर उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा भाठ भाठ मंग होते हैं । जो मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट मंगविचयाणुगम मन्मात्र हुआ ।

✽ अब जपन्य मंगविचयका मकरण है ।

§ ५८६. एदमहियारसंभालणसुत्तं सुगमं ।

\* तं चेव अट्टपदं ।

§ ५८७ जमट्टपदमुक्कस्सम्मि परुविदं तं चेव एत्थ परुवेयव्वं विसेसाभावादो ।  
णवरि जहण्णमजहण्णं ति वत्तव्वं एत्तियो चेव विसेसो ।

❀ एदेण अट्टपदेण मिच्छत्तास्स सव्वे जीवा जहण्णियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५८८. मिच्छत्तकववएहि दुसमयकालेगणिसेयधारएहि विणा मिच्छत्तअजहण्णट्ठिदीए चेव अवट्ठिदाणं सव्वेसिं जीवाणं कयाइ दसणादो ।

\* सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च ।

§ ५८९ कुदो ? मिच्छत्तअजहण्णट्ठिदिधारएहि सह कम्मि वि काले एकस्स जीवस्स जहण्णट्ठिदिधारयस्सुवलंभादो ।

\* सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ५९०. कुदो ? कम्मि वि काले अजहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो । एवमेत्थ तिण्णि भंगा ।

§ ८६ अधिकारके सम्हालनेके लिये यह सूत्र आया है जो सुगम है ।

\* यहां भी वही अर्थपद है ।

§ ५८७ जो अर्थपद उत्कृष्टमें कहा है वही यहा कहना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट के स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिये ।

❀ इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५८८ क्योंकि एक निषेककी दो समय काल प्रमाण स्थितिको धारण करनेवाले मिथ्यात्वके क्षपक जीवोंके बिना मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिमें अवस्थित सब जीव कभी भी पाये जाते हैं ।

❀ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाला है ।

§ ५८९ शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिको धारण करनेवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिको धारण करनेवाला एक जीव पाया जाता है ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वको जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं ।

§ ५९० शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिविभक्तिवाले संख्यात जीव पाये जाते हैं । इस प्रकार यहा तीन भंग होते हैं ।

⊛ अजहृत्पियाए द्विद्विहृत् सिया सम्बे जीवा विहृत्पिया । सिया विहृत्पिया च अविहृत्पिचो च । सिया विहृत्पिया च अविहृत्पिया च ।

§ ५६१ एममेदाणि तिष्णि वि मुचाणि मुगसाणि ।

⊛ एषं तिषिष्य भंगा ।

§ ५९२ एदं पि मुगमं ।

⊛ एषं सेसायं पयडीणं कायम्बो ।

§ ५९३ जहा मिष्यचस्त नाणाजीवभंगविचयपरुपणा कदा तथा ससपयडीणं पि भंगविचमो कायम्बो ।

§ ५९४ एषं अइवसहाइरिएष्य सुचिदत्थाणमुष्पारणाइरिएण मंदपुदिमणा पुग्महं कपकत्वाणं मणिस्तामो ।

§ ५६५ अहण्णए पयदं । कुबिहो एिदेसो—ओपेण आदेसेण य । आपेण अहावीसणं पयडीणं अहण्णियाए द्विद्विहृत् सिया सम्ब जीवा अविहृत्पिया, सिया अविहृत्पिया च विहृत्पिचो च, सिया अविहृत्पिया च विहृत्पिया च । अजहृत्पिद्विद्विहृत् सिया सम्ब जीवा विहृत्पिया, सिया विहृत्पिया च अविहृत्पिचो च, सिया विहृत्पिया च अविहृत्पिया च । एषं सचसु पुइवीसु पंधिदियतिरिक्त्त्व-वंधि०तिनि०प-ज०-वंधि०

⊛ मिथ्यात्वकीअजपन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विमक्तिवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव विमक्तिवाले हैं और एक जीव अविमक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव विमक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविमक्तिवाले हैं ।

§ ५६१ इस प्रकार ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

⊛ इस प्रकार तीन भंग हाव हैं ।

§ ५६२ यह सूत्र भी सुगम है ।

○ इसी प्रकार शेष महत्तियोंकी प्ररूपणा करनी चाहिये ।

§ ५६३ जिस प्रकार नाना जीवोंका अपका मिथ्यात्वकी भंगविचयपरुपणा की है वही प्रकार शेष महत्तियोंका भी भंगविचय करना चाहिये ।

§ ५६४ इस प्रकार पठित्वपर आत्मायेंक द्वारा सूचित किए गए अर्थोंका उपायवाच्यने पण्डित्ति जनोंके अनुग्रहके लिये जो व्याख्यान किया है अब हमें करते हैं —

§ ५६५ अब अबन्ध स्थितिक्र प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकाश है— आपनिर्देश आर आरैअनिर्देश । ओपसे अद्वारम महत्तियोंकी अजप्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविमक्तिवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव अविमक्तिवाले हैं और एक जीव विमक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव अविमक्तिवाले हैं और बहुत जीव विमक्तिवाले हैं । अजप्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विमक्तिवाले हैं । कदाचित् पणत जीव विमक्तिवाले हैं और एक जीव अविमक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव विमक्तिवाले हैं आर पणत जीव अविमक्तिवाले हैं । इसी प्रकार सार्वो वृत्तिविधियोंमें धर्मवाये नारथी पण्डित्त्व नियम पण्डित्त्व नियम पण्डित्त्व, पण्डित्त्व

तिरिक्खजोणिणि - पंचि० तिरि० अपज्ज० - मणुसतिय-सव्वदेव - सव्वविगल्लिदिय० - सव्व-  
पंचिदिय-वादरपुहविपज्ज० - वादरआउपज्ज० - वादरतेउपज्ज० - वादरवाउपज्ज० - वादरवण-  
प्फदिपत्तेयपज्ज० - सव्वतस - पंचमण० - पचविच० - कायजोगि० - ओरालि० - वेउच्चिय० -  
इत्थि० - पुरिस० - एवुंस० - चत्तारिक० - विहंग० - आभिणि० - सुद० - ओहि० - मणपज्ज० -  
संजद० - सामाइय-छेदो० - परिहार० - संजदासंजद० - चक्खु० - अचक्खु० - ओहिदंस० - तेउ० -  
पम्म० - सुक्क० - भवसिद्धि० - सम्मादि० - खइय० - वेदय० - सण्णि० - आहारए त्ति ।

§ ५६६ तिरिक्खवर्गए तिरिक्ख० मिच्छत्त० - वारसक० - भय-दुग्ंधा० ज०  
अज० णियमा अत्थि । सेसपयडीणमोघं । मणुसअपज्ज० उक्क० भंगो सव्वपयडीणं ।  
एवं वेउच्चियमिस्स० - आहार० - आहारमिस्स० - अवगद० - अकसा० - सुहुम० - जहाक्खाद० -  
उवसम० - सासण० - सम्मामि० दिट्ठि त्ति ।

§ ५६७ एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० - णवणोक्क० जह० अजह० णियमा अत्थि ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ओघं० । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-  
सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-पुहवि० - वादरपुहवि० - वादरपुहविअपज्ज० - सुहुमपुहवि० - सुहम-  
पुहविपज्जत्तापज्जत्त-आउ० - वादरआउ० - वादरआउअपज्ज० - सुहुमआउ० - सुहुमआउपज्जत्ता-

तिर्यंच योनिमती, पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी, सव देव, सव  
विकलेन्द्रिय, सव पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सव त्रस,  
पाचो मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्री-  
वेदवाले, पुरुषवेदवाले, नपुसकवेदवाले, चारो कपायवाले, विभंगहानी, आभिनिवाधिकहानी,  
श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार-  
विशुद्धिसंयत, सयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले,  
पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, सही और  
आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५६६. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और  
अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष प्रकृतियोंका कथन ओषके समान है ।  
मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सव प्रकृतियोंका भग उच्छुके समान है । इसी प्रकार वैकियिकमिभ्रकायोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिभ्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसापरायिकसंयत,  
यथाख्यातसयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना  
चाहिये ।

§ ५६७. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य  
स्थिति विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओषके समान  
है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादर  
पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक अपर्याप्त,  
जलकायिक, वादरजलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मजलकायिकपर्याप्त,

पञ्च-तेज०-बादरतेज० बादरतेज०-मपञ्ज०-सुहुमतेज०-सुहुमतेजपञ्चचापञ्ज-बाठ०  
 बादरबाठ०-बादरबाठमपञ्ज०-सुहुमबाठ०-सुहुमबाठपञ्चचापञ्ज-बादरबणपञ्चदि०  
 पिगोद-बादर सुहुमपञ्चचापञ्च बादरबणपञ्चदिपचेयसरीरमपञ्ज० ओरास्त्रियमिस्त  
 मदि-सुहुमपञ्चा०-मिच्छादि०-मसृग्नि चि । गबरि पुढमि-आठ०-तेज०-बाठ०-बादर  
 बणपञ्चदिकाइयपचेयसरीराराणं सगसगबादरपञ्चमंगो । ओरास्त्रियमिस्तादिसु सत्तपो  
 कसायार्णं तिरिकलोपं । अमव० एवं केव । गबरि सम्मत्त०-सम्माभिच्छर्त्तं गत्यि ।

§ ५६८ कम्मइय० सम्म०-सम्माभि० मट्ट मंग । सेस० अइण्य० पियमा  
 अत्थि । एवमप्याहारीणं । असंबद० तिरिकलोपं । पबरि मिच्छत्तमोपं । किण्-पीत्त-  
 क्कठ० तिरिकलोपं ।

एवं अइण्यप्रो जाणाभीवमंगविबयापुगमो समत्तो ।

एवं पाणाभीवेहि मंगविबप्रो समत्तो ।

सूक्ष्मबलप्रयिकअपर्याप्त, अग्निप्रयिक, बादरअग्निप्रयिक, बादरअग्निप्रयिकअपर्याप्त, सूक्ष्म-  
 अग्निप्रयिक, सूक्ष्मअग्निप्रयिकअपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निप्रयिकअपर्याप्त, वायुप्रयिक बादरवायुप्रयिक,  
 बादरवायुप्रयिकअपर्याप्त सूक्ष्मवायुप्रयिक, सूक्ष्मवायुप्रयिकअपर्याप्त सूक्ष्मवायुप्रयिकअपर्याप्त, बादर  
 बनस्पति प्रयिकअपर्याप्तरीर, निगोद बादरनिगोद, बादरनिगोदपर्याप्त, बादरनिगोदअपर्याप्त, सूक्ष्म  
 निगोद सूक्ष्मनिगोदपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोदअपर्याप्त, बादरबनस्पतिप्रयिकअपर्याप्तरीर अपर्याप्त, औदारिक  
 मित्रकामयोगी मत्पञ्चानी, भुताञ्चानी, मिष्पाट्टि और असंकी कीर्त्तिके जानना चाहिये । किन्तु  
 इतनी विशेषता है कि पृथिवीप्रयिक, बलप्रयिक, अग्निप्रयिक, वायुप्रयिक और बादरबनस्पति-  
 प्रयिकअपर्याप्तरीर कीर्त्तिके अपने अपने बादर पर्याप्तके समान मंग है । तथा औदारिकमिस्त्रकाम-  
 योगी आदिमें छह नोकप्रार्थोका मंग सामान्य तिर्यैकोके समान है । अस्मन्में भी इसी प्रकार  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्पात्त्व नहीं हैं ।

§ ५६८ कामेखप्रययोगिर्त्तमिं सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्पात्त्वकी अपेक्षा आठ मंग होते हैं ।  
 तथा छेप प्रकृतियोंकी अपेक्षा अरुण्य और अरुण्य स्थितिप्रयिकप्रत्येकी अपेक्षा छह मंग जानने चाहिये । इसी  
 प्रकार अनकारकेके जानना चाहिये । असंवेतोंमें सामान्य तिर्यैकोके समान जानना चाहिये । किन्तु  
 इतनी विशेषता है कि इनके मिष्पात्त्वका मंग जोषके समान है । ह्य्य नील और अयोतसेवा  
 प्रार्थोंमें सामान्य तिर्यैकोके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहसे जोषसे अरुण्य और अरुण्य स्थितिकी अपेक्षा छह मंग जानने चाहिये । तथा  
 यह आष प्ररुण्यका सामान्य नाटिकीकेके लेकर आहारक तक मूलमें जितनी मार्गोपादे गिनार्थ हैं  
 इनमें अपना अपनी अरुण्य और अरुण्य स्थितिकी अपेक्षा परित हो जाती है अतः इनकी  
 प्ररुण्यप्रत्येकी अपेक्षा समान है । तिर्यैकोमें मिष्पात्त्व बाह्य कयाय, मय और अयुष्पाकी  
 आदेशसे जो अरुण्य और अरुण्य स्थिति बतलाई है उसकी अपेक्षा इनमें एक प्रकृतियोंकी अरुण्य  
 और अरुण्य स्थितिप्रत्येकी नामा जीव निबमसे हैं अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी अरुण्य स्थिति  
 प्रत्येकीप्रत्येकी और आषप्रत्येकीप्रत्येकी नामा जीव निबमसे हैं । तथा अरुण्य प्रकृतियोंकी अरुण्य स्थिति-  
 प्रत्येकीप्रत्येकी और अरुण्यप्रत्येकीप्रत्येकी नामा जीव निबमसे हैं ये दो मंग ही बन्त हैं । हाँ इनके अतिरिक्त छेप

§ ५६६. भागाभागाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्से पयदं ।  
दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणमुक्कस्स-  
द्विदिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुक्क० सव्वजी० के० ?  
अणंता भागा । णवरि सम्मत्त-सम्माभि० उक्क० सव्वजी० असंखेज्जदिभागो । अणुक्क०  
सव्वजीवाणं असंखेज्जा भागा । एवं तिरिक्ख-सव्वएण्हदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि०-  
ओरालिय०-ओरालिय०मिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-वत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असं-  
जद०-अचक्खु०-किण्ह०-णील०-काए०-भवसिद्धि०-मिच्छादिद्वि-असण्णि-आहारि-  
अणाहारि त्ति । अभव० एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणि णत्थि ।

§ ६००. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणमुक्क० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदि-  
भागो । अणुक्क० असंखेज्जा भागा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस-मणुस-

प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघके समान छहों भंग बन जाते हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंसे लेकर सम्यग्मिध्या-  
दृष्टि तक जितनी भी मार्गणाए मूलमें गिनाई हैं उनमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी  
अपेक्षा आठ आठ भग वतला आये हैं उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा आठ  
आठ भग जानने चाहिये । एकेन्द्रियोंमें आदेशकी अपेक्षा जो उनकी जघन्य और अजघन्य स्थिति  
वतलाई है उसकी अपेक्षा मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंके सामान्य तिर्यचोंके समान  
दो भंग प्राप्त होते हैं । वे दो भंग पहले वतलाये ही हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी  
अपेक्षा तो यहा भी ओघके समान छह भग ही प्राप्त होते हैं । बादर एकेन्द्रियोंसे लेकर असङ्गी तक  
मूलमें जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमेंसे सामान्य पृथिवी आदि पाच मार्गणाओंको छोडकर  
शेषमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इसी प्रकार आगे भी जिन मार्गणाओंमें जिन प्रकृतियोंकी स्थिति  
सम्बन्धी जो विशेषता वतलाई है उसको ध्यानमें रखकर भंगविचयकी प्ररूपणा करनी चाहिये ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य विचयानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय समाप्त हुआ ।

§ ५६६ भागाभागाणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहा उत्कृष्टका प्रकरण  
है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा  
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तर्वे भाग  
हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीव सब जीवोंके  
असंख्यातर्वेभाग हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जाव सब जीवोंके असंख्यात बहुभाग हैं । इसी  
प्रकार तिर्यच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक-  
मिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, नपु सकवेदी, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत,  
अचन्दुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, मिध्यादृष्टि, असंङ्गी,  
आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व ये दो प्रकृतिया नहीं हैं ।

§ ६०० आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीव सब  
जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातर्वे भाग हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिभिक्तवाले जीव असंख्यात  
बहुभाग हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव,

अपञ्च०-देव०-भवणादि षाच अवराइद०-सम्बन्धिगलिंदिय० सम्बन्धिदिय-षचारिकाय  
 बादरवणफद्विपचेयसरीर-सम्बतस-पंचमप०-पंचवधि०-वेठञ्चि०-वेउ०-मिस्स०-इत्वि०  
 पुरिस०-विईग०-आमिणि०-सुद० ओहि०-सन्नदासंनद० चक्सु० ओहि०-वेउ०-यम्प०  
 सुक०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि चि । मणुसपञ्च०  
 मजुसिणीसु सम्बपयहीणसुक्क० सम्बमी० के० ? संखेज्जदिमागो । अणुक्क० सम्बमी०  
 के० ? संखेज्जा भागा । एवं सव्वइ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-  
 मणपञ्च०-संनद०-सामाइय वेदो०-परिहार०-सुहुम०-अहावखाद० ।

एवमुक्त्स्समो भामाभागाणुगमो समसो ।

मन्त्रवासियोसे लेकर अपराचित तकके देव सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय चारों स्वाबरकस्य, समी  
 चार बनस्पतिकामिक प्रत्येकसरीर, सब ब्रह्म, पांचों मनोवागी पांचों बचसयोगी, वैद्विकिकायबोगी,  
 वैद्विकिमिन्नकायवागी, स्वोवेववाले, पुरुषवेववाले, निर्मगदानी भामिनिवाधिकदानी, मृतदानी  
 अचविद्यामी, संयतासंयत, चक्रुदस्यवाले अचविदस्यवाले, पीतलेस्यावाले पद्मलेस्यावाले, हुक्क  
 लेस्यावाले सम्यग्दृष्टि, द्वाविकसम्यग्दृष्टि बद्दकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि,  
 सम्मिमिप्यादृष्टि और संकी बीबोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब  
 प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले बीब सब बीबोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं ।  
 तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवाले बीब सब बीबोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी  
 प्रकार सर्वावैसिदिके देव आहारककस्यबोगी, आहारकमिन्नकस्यवागी, अपगतवेववाले, अकस्यपी,  
 मन्त्रपर्ययदानी, संवत् सामायिकसंयत, जेहापस्थापनासंयत परिहस्यविद्विदसंयत, सूक्ष्मसांप  
 राविकसंयत और यथाकथासंयत बीबोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—घोषसे ब्रह्मीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले बीब अनन्त हैं तथा सम्यक्त्व और  
 सम्मिमिप्यात्वकी सत्तावाले बीब असंख्यात हैं । यह तो प्रकृतियोंके सत्त्वकी अपेक्षा संख्या हुई ।  
 किन्तु उत्कृष्ट स्थिति और अनुकृष्ट स्थितिकी अपेक्षा विचार करने पर ब्रह्मीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
 स्थितिवाले बीब असंख्यात प्राप्त होते हैं और अनुकृष्ट स्थितिवाले अनन्त, इसलिये भागामागकी  
 अपेक्षा यह बतलाया है कि ब्रह्मीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंसे उत्कृष्ट स्थितिवाले बीब  
 अनन्तवें भाग प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्मिमिप्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले  
 बीब प्रत्येक असंख्यात हैं फिर भी अनुकृष्ट स्थितिवालोंसे उत्कृष्ट स्थितिवाले बीब असंख्यातवें  
 भागप्रमाण हैं, इसलिये भागामागकी अपेक्षा यह बतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्मिमिप्यात्वकी  
 सत्तावाले कितने बीब हैं इनमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और असंख्यात  
 बहुभाग प्रमाण अनुकृष्ट स्थितिवाले हैं । मार्गणाओंकी अपेक्षा सब बीब तीन भागोंमें बँट जाते हैं  
 कुछ भागवाले बीब अनन्त हैं, कुछ भागवाले बीब असंख्यात और कुछ भागवाले बीब  
 संख्यात । इनमेंसे अनन्त संख्यावाली जिनकी भी मार्गणार्थ हैं इनमें यह आप प्ररूपवा बन  
 जाती है इसलिये इनकी प्ररूपणाका औषके समान कदा । वे मार्गणार्थ मूत्रमें गिराए ही हैं ।  
 किन्तु अमर्षोंके सम्यक्त्व और सम्मिमिप्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः इनमें कुछ  
 प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागामाग नहीं बहना चाहिये । अब रहीं असंख्यात संख्यावाली और  
 संख्यात संख्यावाली भागणार्थ सो असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट  
 स्थितिवाले बीब असंख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले बीब असंख्यातवें भाग प्रमाण



§ ६०१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० सव्वजी० के० ? अणंतिमभागे । अज० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । सम्मत्त०-सम्मापि० उक्क०भंगो । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवु स०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ६०२. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणं जह० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वपंचि० तिरिक्खव-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-चत्तारिकाय-वादरवणप्फदिपत्तेय०-सव्वतस०-पचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अव्वगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खवाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मापि०-सण्णि त्ति ।

§ ६०३ तिरिक्खव० णारयभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क०-सत्तणोक० ओघं ।

जानने चाहिये । तथा सख्यात सख्यावाली मार्गणाओमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सख्यात एक भागप्रमाण होते हैं । असख्यात संख्यावाली और सख्यात संख्यावाली मार्गणाओके नाम मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०१ अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग उत्कृष्टक समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसक-वेदवाले, चारों कपायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंके जानना चाहिये ।

§ ६०२. आदेशकी अपेक्षा सब नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-बिभक्तिकी अपेक्षा भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब चार स्थावरकाय, सब वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सब त्रस, पाचों मनायोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियायककाययोगी, वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवदवाले, पुरुषवेदवाले, अपगतवेदवाले, अकपायी, विभगज्ञानी, आभिनिवाधिकज्ञाना, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यात संयत, सयतासयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिक-सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्याग्मिथ्यादृष्टि और सही जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०३. तिर्यचोंमें नारकियोंके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें अनन्ता-नुबन्धी घटुष्क और सात नोकपायोंकी अपेक्षा भंग ओघके समान है । इसी प्रकार कृष्ण, नील

एवं क्रिह०-शील-शारलेस्त चि । एहृदिय० गारयमगा । एन बणप्फदि०-णिगोद  
 क्म्याह्य० अणहारि चि । आरानियमिस्त० तिरिकलोप । एवरि मर्णताणु० मिच्छस  
 पंगो । मदि-मुदअण्णा०-मिच्छादि० असण्णि चि । असंमद् तिरिकलोप । एवरि  
 मिच्छस० मोप । ममव० लम्पीसपपदीणं मोरानियमिस्तभगा ।

एवं मागाभागानुगमो समसो ।

और अपोतलेरबाबाले बीबोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें नारकियोंके समान मंग है । इसी  
 प्रकार सब बनस्पतिक्रमिक, सब निगोद जीव, कामण्णकाम्योगी और अन्तहारकोंके जानना  
 चाहिये । औदारिक्रमिकप्रकारयोगियोंमें सामान्य तिर्यकोंके समान मंग है । किन्तु इतनी बिसेपता  
 है कि अन्तस्तुल्यबी बनुष्कका मंग मिष्यात्वके समान है । इसी प्रकार मत्पक्षानी, बुधपक्षानी  
 मिष्यादि और असंतियोंके जानना चाहिये । असंतियोंमें सामान्य तिर्यकोंके समान जानना  
 चाहिये । किन्तु इतनी बिसेपता है कि इनमें मिष्यात्वका मंग ओषके समान है । अमर्ष्योंमें  
 लम्पीस प्रकृतियोंका मंग औदारिक्रमिकप्रकारयोगियोंके समान है ।

विशुपाय—मिष्यात्व, बरह कराय और नो नोकुरायबाले बीब अनन्त हैं । किन्तु इनमें  
 आपसे अपन्य स्थितिबाले जीव संख्यात हैं और अज्ञपन्य स्थितिबाले जीव अनन्त हैं, अतः  
 भगाभागकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिबाले जीव अनन्तमें भाग प्राप्त होत हैं और  
 अज्ञपन्य स्थितिबाले जीव अनन्त बहुभाग प्राप्त होते हैं । अनन्तस्तुल्यबी बनुष्ककी अपन्य  
 स्थितिबाले जीव असंख्यात हैं और अज्ञपन्य स्थितिबाले जीव अनन्त । फिर भी मागाभागकी  
 अपेक्षा इनका भी बही कम बन जाता है वा पूर्वमें मिष्यात्व आदिकी अपेक्षा बतलाया है । तथा  
 सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वकी अभावसे जीव असंख्यात हैं किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी अपन्य  
 स्थितिबाले जीव संख्यात और सम्बन्धित्वकी अपन्य स्थितिबाले असंख्यात हैं तथा शान्तीकी  
 अज्ञपन्य स्थितिबाले जीव असंख्यात हैं । अतः यहां उक्त क समान यह मागाभाग बन जाता  
 है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिबाले जीव असंख्यातमें भाग प्रमाय और अज्ञपन्य  
 स्थितिबाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाय हैं । मूलमें अपन्ययोग आदि जितनी मागासाय  
 गिनाह हैं उनमें यह ओष प्रकृष्या पठित हा जाती है, अतः उनके कमनका आपक समान पदा ।  
 आपेक्षकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपन्य और अज्ञपन्य स्थितिबालोंके भागाभागका  
 वा उक्तके समान पदा उसका यह तत्पय है कि जिस प्रकार सब प्रकृतियोंकी अनुकृत स्थिति-  
 बाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाय हैं और उक्त स्थितिबाले जीव असंख्यातमें भागप्रमाय हैं इसी  
 प्रकार यहां भी जानना चाहिये । तथा सब पंचन्द्रियोंसे लेकर संकी तक और जितनी मागासाय गिनाह  
 हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना यह वा पदा है सा इनका यह तत्पय बही कि इनमें नारकियोंके  
 समान भागाभाग हाता है किन्तु इसका यह तत्पय है कि इन मागासायोंमें जिस प्रकार उक्त  
 और अनुकृत स्थितिकी अपेक्षा भागाभाग पदा है इसी प्रकार अपन्य और अज्ञपन्य स्थितिकी  
 अपेक्षा भी भागाभाग पदना चाहिये क्योंकि इन मागासायोंमें बहुतसी मागासाय अनन्त  
 संख्यावाली हैं, बहुतसी असंख्यात संख्यावाली हैं तथा बहुतसी संख्यात संख्यातवाली हैं  
 अतः इन सबमें नारकियोंके समान भागाभाग बन मो पदी सकना । तथा इन मागासायोंन  
 अपन्य और अज्ञपन्य स्थितिबालोंकी संख्याका देखनसे भी बही अनिर्नय पठित हाता है  
 वा हमन दिया है । तिर्यकगतिमें अनन्तस्तुल्यबी बनुष्क और मान शकरायोंका दोहर  
 एव सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नारकियोंके समान है सा इसका यह अभिप्राय है कि जिस

§ ६०४ परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो-  
ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीसपयडीणमुक्क० केत्तिया ? असखेज्जा । अणुक्क०  
केत्तिया ? अणता । सम्पत्त०-सम्माभि० उक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? असखेज्जा । एवं  
तिरिक्ख-सच्चएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-णायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-कम्म-  
इय०-णवुस० चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भग्गसि०-  
मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति । एवमभवसि० । णवरि सम्म०-सम्माभि०  
णत्थि ।

प्रकार नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा अजघन्य स्थितिवाले असख्यात बहुभागप्रमाण और  
जघन्य स्थितिवाले असख्यात एक भागप्रमाण हैं उसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । यद्यपि  
तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, चारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी  
स्थितिवाले जीव अनन्त हैं फिर भी जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले जीव असख्यात-  
गुणे होनेसे उक्त व्यवस्था बन जाती है । तथा तिर्यचोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात  
नोकपायवाले जीवोंसे जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले अनन्तगुणे हैं, अतः इनके  
कथनको ओघके समान कहा । कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें तिर्यचोंके समान व्यवस्था बन  
जाती है, अतः इनके भागाभागको तिर्यचोंके समान कहा । एकेन्द्रियोंमें भागाभाग संबन्धी कुल  
व्यवस्था नारकियोंके भागाभागके समान बनती है, अतः इनके भागाभागको नारकियोंके भागा-  
भागके समान कहा । वनस्पति आदि और जितनी मार्गणाए मूलमे गिनाई हैं उनमें भी नारकियोंके  
समान भागाभाग जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें यद्यपि भागाभाग सामान्य तिर्यचोंके समान  
है पर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग मिथ्यात्वकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिके भागाभागके समान है । अथात् तिर्यचोंमें जिस प्रकार मिथ्यात्वकी  
अपेक्षा भागाभाग कहा है उसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा जानना ।  
मूलमें जो मत्यज्ञानी आदि मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी औदारिकमिश्रकाययोगके समान  
भागाभाग जानना चाहिए । असंयतोके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना । किन्तु इनके मिथ्यात्वकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग ओघके समान कहना चाहिये । अभव्योंके छ्वीस  
प्रकृतियोंका सत्त्व है, अतः इनके छ्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग आदारिकमिश्रकाययोगके  
समान जानना चाहिए ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०४ परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा छ्वीस  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-  
वाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक,  
निगोद, काययोगी, औदारिककायोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपु सकवेदी,  
चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य,  
मिथ्यादृष्टि, असह्यो, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । इसी प्रकार अभव्योंके  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं ।

१ ६०५ आत्मेसेण गेरहृपसु सव्वपयडि० उक्क० अणुक्क० केचि० ? असत्तेज्जा । एवं सव्वणेरहृय०-सव्वपंचिदियतिरिक्खल्ल-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि भाव सहस्सार०-सन्न विगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेठम्बिय०-वेठम्बियमिस्स-इदि० पुरिस०-विहग०-आमिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-घवसु० ओहिदंस० तिण्णिले०-सम्मादि०-वेदय० उवसम०-सासण०-सम्मापि०-सण्णि पि ।

१ ६०६ मणुसगईए मणुस० उक्क० केचि० ? संसंज्जा । अणुक्क० केचि० ? असंसेज्जा । एवमाणदादि भाव मवराहद०-स्वहियदिदि पि । मणुसपज्ज०-मणुसिणी०-सव्वपयडीणमुक्क०-अणुक्क० केचि० ? संसंज्जा । एवं सव्वद०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सापाहप-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-नहावत्ताद० । एवमुक्कस्सद्ये परिमाणाणुगमो समचो ।

१ ६०१ आदेशकी अपेक्षा नापक्योंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्ति-वासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचमित्रियतिर्यंच, मनुष्यपर्याप्त, सामान्य देव, भवमहासिधोंसे लेकर स्रक्षारस्वर्गतकने, देव सप विक्कान्त्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सभी पार म्यावरकस्य, सब ब्रह्म पांचों मनायागी, पांचों बचनयोगी, वैदिकियिकावयागी, वैदिकियिमिभ कस्ययागी, श्रीबहवाले, पुरुबेववाले, विमंगकानी, आभिर्नवाधिकरानी, सुतकानी, अरधिकानी, संयतासंयत, बकुवज्जन्वाले, अवधिदंष्ट्रनवाले, तीन कस्ययाहले, सम्यगट्टि, वेदकसम्यगट्टि, अणुसमसम्यगट्टि, सासात्नसम्यगट्टि, सम्यगिमप्याट्टि और सभी जीवोंके जानना चाहिये ।

१ ६१ मनुष्यगतियों मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार आनतकस्यसे लेकर अपराहित तकने देव और प्रायिकसम्यगट्टि जीवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्य-मिषोंमें सप प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वासंसिद्धिके देव आहारककाययागी, आहारभिमकाययागी, अणुगतवेदवाले, अकयाबी, मनापर्ययकानी, संयत सामायिकसंयत, छेदोपस्वापनासंयत, परिहारविदुदिसंयत, सुहमसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—गुणस्वान अमतिपम सभी संसारी जीव इच्छीस प्रकृतियोंकी सत्तावात हैं । किन्तु इनमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति करणभूत परिष्कामवात जीव योइ हात हैं, अतः आपसे उच्छीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात और अनुकृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त बह । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यात्वाकी सत्ता अणुसमसम्यगट्टि या वेदकसम्यगट्टि जीवोंके प्राप्त जाती है या जो इनसे क्युत हुए हैं उनके प्राप्त जाती है । अतः भी मिप्यात्वामें इनका संययसत पस्यके असंख्यातवें मागप्रमाण है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यात्वाकी सत्तावात जीवोंकी सामान्यसे संख्या असंख्यात ही होगी । और इनकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवालोंमें भी प्रत्येककी संख्या असंख्यात बन जाती है । मार्गशास्त्राओंमें राक्षिणं तीन भलोंमें क्पी हुए हैं बुद्ध मार्गशास्त्र असंख्यातवाली बुद्ध-मार्गशास्त्र असंख्यात संख्यावाली और बुद्ध मार्गशास्त्र संख्यात संख्या-वाली हैं । इनमें जो अनन्त संख्यावाली मार्गशास्त्र हैं उनमें आपक समान व्यवस्था बन जाती है । जो असंख्यात संख्यावाली मार्गशास्त्र हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात ही प्राप्त होता है । किन्तु इनमें मनुष्यगति आदि बुद्ध

§ ६०७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-  
वारसक०-णवणोक० जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? अणंता । सम्मत्त०  
जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० जह० अजह० के० ?  
असंखेज्जा । अणंताणु० चउक्क० जह० के० ? असंखेज्जा । अजह० के० ? अणंता ।  
एव कायजोगि०-आरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ।

§ ६०८. आदेसेस णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० जह०  
अजह० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० के० ?  
असंखेज्जा । एवं पढमाए । विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक०  
जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत-सम्मामि०-अणंताणु०

मार्गणाए अपवाद हैं । इसका कारण यह है कि मनुष्योंमें पर्याप्त मनुष्योंके ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । और उनकी संख्या संख्यात है, अतः सामान्यसे मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात ही होंगे और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात । आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें और चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी यही व्यवस्था जानना चाहिये, क्यों कि इनके अपनी अपनी पर्यायके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है पर इनमें मनुष्यगतिसे ही जीव उत्पन्न होते हैं परन्तु अच्युत स्वर्गतक सम्यग्दृष्टि तिर्यच भी उत्पन्न होते हैं और ऐसे जीवोंकी संख्या संख्यात है, अतः उक्त मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है । अब रहीं संख्यात संख्यावाली मार्गणाए सो उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात होगा यह स्पष्ट ही है । अनन्त, असंख्यात और संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंका मूलमें उल्लेख किया ही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०७. अब जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव  
कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।  
अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और  
अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य  
स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने  
हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, चारों कषायवाले,  
अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०८ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ  
नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्व-  
की जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले  
जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे  
लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

चउक्क० अ० अन्न० के० ? असंखेजा । सचमाप उक्क०भंगो ।

१६०६ तिरिक्त्तगइ० मिच्छत्त वारसक०-मय-दुगुअ० न० अन्न० के० ? अर्णता । सम्मत्त० अ० के० ? संखेजा । अन्न० के० ? असंखेजा । सम्मामि० म० अन्न० के० ? असंखेजा । मर्णतायु०चउक्क०-सचणोक्क० अ० के० ? असंखेजा । अन्न० के० ? अर्णता । एव किण्ह०-णीस०-काठ० । णवरि किण्ह-णीस० सम्म० सम्मामि०भंगो । पंचिदियतिरिक्त्त-पंचि०तिरि०पञ्च०-पंचि०तिरि०ओणिणी० पइम पुइविमंगो । णवरि पंचिदियतिरिक्त्तओणिणीमु सम्मत्त० सम्मामि०भंगो । पंचि०तिरि० मपञ्च० एवं चेव । एव मणुसअपञ्च०-सम्भविगळिंदिय-पंचिदियअपञ्च०-वचारि काप-[ सम्भवपपफदिपचेय० ] तसअपञ्च० ।

१६१० मणुस० सम्भपयडीमं अ० के० ? संखेजा । अन्न० के० ? मसं खेजा । णवरि सम्मामि० अइ० असंखे० । मणुसपञ्च०-मणुसिणी० सम्भप० अइ० अन्न० संखेजा ।

१६११ देव० णारयभंगो । भवण०-जाण० एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुइविमंगो । साइम्मादि चाप अचाराइइ० मिच्छत्त० वारसक०

असंख्यात हैं । सम्भक्त्त सम्भमिप्यात्त्व और अनन्तलुहन्वीचतुष्ककी अण्य और अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तन हैं ? असंख्यात हैं । सातथो प्रथिबीमें छत्तसके समान भंग है ।

१६०६ तिर्यचोमें मिच्छत्त वार सचाय, मय और मणुप्याकी अण्य और अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तन हैं ? अनन्त हैं । सम्भक्त्तकी अण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तने हैं ? संख्यात हैं । तथा अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तने हैं ? असंख्यात हैं । सम्भमिप्यात्त्वकी अण्य और अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तन हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तलुहन्वीचतुष्क और सात नौक्याबोकी अण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तने हैं ? असंख्यात हैं । तथा अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार कृष्ण नीस और कापोतलेखात्त्वकी बीचोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीसलेखात्त्वकी सम्भक्त्तका भंग सम्भमिप्यात्त्वके समान है । पंचेन्द्र तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच आनिमती बीचोंमें पहली प्रथिबीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यच आनिमती बीचोंमें सम्भक्त्तका भंग सम्भमिप्यात्त्वके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकीमें जानना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विष्णोन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी चार स्वावरकाय, सभी वनस्पतिकायिक प्रत्यक्षररीर और प्रस अपर्याप्तकी बीचोंमें जानना चाहिये ।

१६१० मनुष्योमें सब प्रकृतिथोकी अण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तने हैं ? संख्यात हैं । तथा अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच फित्तन हैं ? असंख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्भमिप्यात्त्वकी अपेक्षा अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्णोमें सब प्रकृतिथोकी अण्य और अन्नपण्य स्थितिविमच्छिवासे बीच संख्यात हैं ।

१६११ देवोंमें वायुकोके समान भंग है । सबजवासी और व्यन्तर देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्भक्त्तका भंग सम्भमिप्यात्त्वके समान है । ज्योतिषियोंमें इसी प्रथिबीके समान भंग है । सौरभं कस्यचे लोक अपर्याप्त तकके देवोंमें

णवणोक० जह० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० एवं चैव । सम्मामि०-अणंताणु०चउक० ज० अज० के० ? असंखे० । णवरि अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति सम्मामि० जह० संखेज्जा । सव्वह्ठे० सव्वपयहि० ज० अज० के० ? संखेज्जा । एवमाहार-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाडय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ६१२. एइंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० के० ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० के० ? असंखेज्जा । एवं वणप्फदि-णिगोद० ।

§ ६१३. ओरालिय०मिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक० ज० अज० के० ? अणंता । वेउव्वियमिस्स० सोहम्मभंगो । णवरि अणंताणु०४ जह० संखेज्जा । कम्मइ० एइंदियभंगो । णवरि सम्मत्त० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा ।

§ ६१४. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय० इत्थि०-पुरि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-विहंग०सजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सम्मा०-वेदय० मणुसगइभंगो । णवरि विहंग०वज्जेसु अणंताणु०चउक०

मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । सम्यक्त्वकी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर अपराजित कल्प तकके देवोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार आहारकक्राययोगी, आहारकमिश्रक्राययोगी, अपरागतवेदवाले, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१२. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१३. औदारिकमिश्रक्राययोगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । वैक्रियिकमिश्रक्राययोगियोंमें सौधर्मके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । कार्मणकाययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं ।

§ ६१४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्तक, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियकक्राययोगी स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, विभगज्ञानी, संयतासयत, चक्षुदर्शनवाले, श्रवणदर्शनवाले, पीतलेस्यावाले, पद्मलेस्यावाले, शुक्लेस्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यगतिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंग-

बह० असंस्लेज्जा । सम्म० बह० अस्मि त्वयणा णरिष तस्मि असंस्लेज्जा । सम्मामि० सम्माइद्विपद्येसु संस्लेज्जा । मदि-सुदअण्णा० सम्मत्त-अणंताणु० चरक० परंदियमगो । सेस० तिरिक्त्तोषं । एवं मिच्छादिद्वि-असण्णि चि । असण्णद० तिरिक्त्तोष । णवरि मिच्छत्त० ओषं ।

१६१५ अमव० इन्वीसपयढि० तिरिक्त्तोषं । णवरि अणंताणु० परंदियमगो । खइय० एक्खीसपयढीणं ज० के० ? संस्लेज्जा । अज० के० ? असंस्लेज्जा । उवसम० चरवीसपयढी० ज० के० ? संस्लेज्जा । अज० के० ? असंस्लेज्जा । अणंताणु० चरक० ज० अज० के० ? असंस्लेज्जा । एवं सम्मामिच्छादिद्वि० णवरि अणंताणु० बह० संस्लेज्जा । सम्म०-सम्मामि० बह० अज० असंस्लेज्जा । सासण० अट्ठावीस० ख० के० ? संस्लेज्जा । अज० के० ? असंस्लेज्जा । सण्णि० पंचिदियमगो । अणाहारि० कम्मइपमगो । एवं परिमाणाणुगमो समधो ।

आनिषोका जोइकर होयमें अनन्तालुक्खीचतुष्पकी अपन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव असंख्यात हैं । तथा जिस मार्गोद्यास्थानमें दर्शनमोइनीयकी कृपया नहीं है उस मार्गोद्यास्थानमें सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव असंख्यात हैं और सम्यग्दृष्टि मार्गोद्यास्थानमें सम्यग्मिप्यात्वकी अपन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं । मत्स्यामी और जटाइानी जीवोंमें सम्यक्त्व और अनन्तालुक्खीचतुष्पकी मंग पकेन्द्रियोंके समान है । श्रेय प्रकृतियोंका सामान्य तिर्यंचोके समान है । इसी प्रकार मिप्यादृष्टि और अरंठी जीवोंमें जानना चाहिये । असंपत्तोंमें सामान्य तिर्यंचोके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिप्यात्वका मंग ओषके समान है ।

१६१६ अमम्बोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका मंग सामान्य तिर्यंचोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तालुक्खीचतुष्पकी मंग पकेन्द्रियोंके समान है । चायिक्कम्मगदृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अत्रापन्य स्थिति विमत्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । उपरमसम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अत्रापन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तालुक्खीचतुष्पकी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिप्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तालुक्खीचतुष्पकी अपन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव संख्यात हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यात्वकी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव असंख्यात हैं । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अत्रापन्य स्थितिविमत्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । दृष्टियोंमें पंचेन्द्रियोंके समान मंग है । अन्तारालोंमें कर्मव्यवहारयोगियोंके समान मंग है

विशेषार्थ—ओषस मिप्यात्व, बाह्य कृपय और नौ नाकपायोंकी अपन्य स्थिति अणुकोशोंमें और सम्यक्त्वकी अपन्य स्थिति कृतदृश्यवर्क सम्यक्त्वके अन्ततम समयमें प्राप्त हाती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण संख्यात है, अतः एक प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात है । मिप्यात्व बाह्य कृपय और नौ नाकपायोंकी अपन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं यह स्पष्ट हो है । सम्यग्मिप्यात्वकी अपन्य स्थिति इद्रेतनाक अन्ततम समयमें और कृतदृश्यवर्क सम्यक्त्वके अन्ततम समयमें प्राप्त हाती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण असंख्यात है,



§ ६१६. खेत्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयद । दुविहो णिद्देसो—

ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलमक०-णवणोक० उक्क० केण्डि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । अणुक्क० के० खेत्ते ? सव्वलोए । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० के० ? लोग० असंखेज्जदिभागे । एवमएतगसीएणं णेयव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ६१७ पुढिवि०-वाटरपुढवि०-वाटरपुढत्रिअपज्ज०-आउ०-वाटरआउ०-वाटर-आउअपज्ज०-तेउ०-वाटरतेउ०-वाटरतेउअपज्ज०-वाउ० वाटरवाउ०-वाटरवाउअपज्ज०-वाटरवणफदिकाइयपत्तेय०-तेसिमपज्ज०-सव्वमुहुम-तेमिं पज्जत्तापज्जत्ताणमेडंदिगभंगो । सेसमंखेज्ज-असंखेज्जराणीणमुक्क० अणुक्क० केवडि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । एवरि वाटरवाउपज्ज० अणु० लोग० संखे०भागे ।

एवमुक्कस्सखेत्ताणुगमो समत्तो ।

अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार आगे भी जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामीका विचार करके जहा जो सख्या सम्भव हो उसका कथन करना चाहिये ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१६ क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य क्षेत्र और उत्कृष्ट क्षेत्र । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवेंभाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवेंभाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक अनन्त राशियोंका क्षेत्र जानना चाहिये ।

§ ६१७ पृथिवीकायिक, वाटर पृथिवीकायिक, वाटर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, जलकायिक, वाटर जलकायिक, वाटर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, वाटर अग्निकायिक, वाटर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, वाटर वायुकायिक, वाटर वायुकायिकअपर्याप्त, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, तथा सब सूक्ष्म और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीवोंका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । शेष सख्यात और असख्यात राशिवालोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि वाटर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव लोकके सख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ—ओष और आदेशसे जिसका जो क्षेत्र है, सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा यहा उसका वही क्षेत्र ले लिया गया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्रमें विशेषता है । यात यह है कि ऐसे जीव कहीं असख्यात और कहीं सख्यात हाते हैं । तथा जहा असख्यात हैं भी वहा वे अतिस्वल्प हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकका असख्यातत्रा भाग ही सर्वत्र प्राप्त होता है यह उक्त कथनका सार है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१८. महष्णप पयदं । दुर्बिर्ह—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त सोल्लसकं-णवण्णाकं महं केषदि खेचे ? सागं असल्ले-मागे । अज्जं के-स्वेचे ? सम्बल्लोप । सम्मत्त-सम्मामि-ज्जं अज्जं के-स्वेचे ? भोगं मसस्सेज्जदिमागे । एवं कायमीणि-ओरासि-अणु स-अचारिक-अववसु-भवसि-आहारए पि ।

§ ६१९ आदेसेण गोरइएसु अट्ठावीसण्ण पयडीणसुक्कं-भगो । एवं सत्तसु पुढ पीसु सम्बपचिंदियतिरिक्ख-सम्भमणस-सम्बदेव-सम्भविपत्तिंदिय-सत्त्रपंचिंदिय-बादर पुढविपज्ज-बादरआवपज्ज-बादरतेव-पज्ज-बादरवाउ-पज्ज-बादरवणपकदि-पणेय पज्ज-सत्त्रवस-पंचमण-पंचवपि-वेवम्बिय-वेउ-मिस्स-आहार-आहारमिस्स-इत्थि-पुरिस-अवगद-अक्खसा-बिहंग-आमिण्णि-सुद-ओहि-मणपज्ज-संमद-सामाण्य-केवो-परिहार-सुहुम-ज्जावत्ताद-संजदासंजद-अवसु-ओहिदंस-विण्णित्तेस्ता-सम्मदि-सवइ-वेइय-उवसम-सासण-सम्मामि-सण्णि पि । णवरि बादरवाउपज्ज-अट्ठावीसपयडीणं ज्ज-अज्ज-भोगस्त संस्सेज्जदिमागे ।

§ ६२० तिरिक्ख-मिच्छत्त-वारसक-मय-दुगुह-ज-अज्ज-के-स्वेचे ? सम्बल्लोप । संस-उक्खससंगो । एवं सम्बपुट्टिय-णवरि अणंताणु-उ-सत्तजो-क-

§ ६१८ अथ अज्जम्य क्षेत्रका प्रकरण्य है । अतस्मी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आपनिर्देश और आदेशनिर्देश । अनर्तसे ओषधी अपेक्षा मिच्छत्त, सासह क्वाय और नो नोक्यात्तोकी अज्जम्य स्थितिभिर्मच्छत्तले बीज कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोफके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अज्जम्य स्थितिभिर्मच्छत्तले बीज कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोफमें रहते हैं । सम्बन्ध और सम्पगिमच्छत्तकी अज्जम्य और अज्जम्य स्थितिभिर्मच्छत्तले बीज कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोफके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार काययोगी औरारिककाययोगी मरुसकण्ण वस्से, चारों क्वायवले अथवुरसैन्तासे, मय्य और अज्जम्य बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ६१९ आदेशकी अपेक्षा नारुक्खिमें अट्ठावीस म्हुत्तिबोका मंग अक्खके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें रहनेवाले नारुकी, सब पंचेन्द्रियतियैव सब मनुष्य सब देव, सब विकराम्भिय, सब पंचेन्द्रिय, वावर पृथिवीकाविकरपर्याप्त वावर अलकाविकरपर्याप्त वावर अरिन्काविकरपर्याप्त, वावर वायुकाविकरपर्याप्त, वावर वनस्पतिकामिक प्रत्येकद्वीपर पर्याप्त सब वस, पाणों मनोयोगी पाणों वनबोगी वैद्विकिककाययोगी वैद्विकिकिमकाययोगी, आहारककाययोगी आहारकमिमकाय योगी, अविदेवत्ते, पुरुअेवत्ते, अणतवेवत्ते, अक्यावी विमंग्गान्ताले आमिनिबोधिक्खानी बुत्तानी अचचिदानी, मनत्पयैक्खानी, संयत्त, सामाविकसंयत्त देवोपस्वाननासंयत्त परिहार वद्वि संयत्त, सूस्मसापयविकसंयत्त यवाक्यातसंयत्त संयत्तासंयत्त, अणुवसन्ताले, अचचिदसैन्ताले, तीम केवत्ताले, सम्मत्तदि, चाविकसम्मत्तदि, वेदकसम्मत्तदि, अणमसम्मत्तदि, सासत्तसम्मत्तदि, सम्पगिमच्छत्तदि और उंठीबीजोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी चितोपत्ता है कि वावर वायुकाविक पर्याप्त ओषधोंमें अट्ठावीस म्हुत्तिबोकी अज्जम्य और अज्जम्य स्थितिभिर्मच्छत्तले बीज लोफके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ६२० तिर्यैबोमें मिच्छत्त वारह क्वाय मय आर पुणुप्ताकी अज्जम्य और अज्जम्य स्थितिभिर्मच्छत्तले बीज कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोफमें रहते हैं । तथा दोष म्हुत्तिबोका मंग अक्खके समान है । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रियोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी चितोपत्ता है कि

जह० अज० सव्वलोए । एवं पुढवि० वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-आउ०-वादर  
 आउ०-वादरआउअपज्ज० तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-वाउ०-वादरवाउ०-वादर-  
 वाउअपज्ज०-सव्वेसिं सुहुम०-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय-वादरवणप्फदि-  
 पत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-  
 मदि-सुदअण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारिं त्ति । णवरि ओरालियमिस्स०-मदि-  
 सुदअण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि० सत्तणोकसाय० तिरिक्खोघ ।

§ ६२१. एत्थ मूलुच्चारणाहिप्पाएण तिरिक्ख० मिच्छ०-वारमक०भय-दुगुंछ०  
 जह० लोग० संखे०भागे, अज० सव्वलोए, सत्याणविसुद्धवादरेइंदियपज्जत्तएसु जहण-  
 सामित्तात्तलंवगादो । एवमोरालियमिस्स०-मदि-सुदअण्णाण०-मिच्छादि-असण्णिं त्ति ।  
 एइंदिय०-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-तदपज्जत्तएसु छव्वीसपयडि०-  
 एवं चेव । एदम्मि अहिप्पाए चत्तारिकाय-तेसिं वादर-तदपज्जत्ताणं छव्वीसपय० जह०  
 लोग० असंखे०भागे । अज० सव्वलोगे । एतदणुसारेण च पोसणं णेदव्वमिदि ।  
 असंजद० तिण्णिलेस्सा० तिरिक्खोघं । णवरि असजद० मिच्छ० ओघं । अभव०

इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिकअपर्याप्त, इन सबके सूक्ष्म, तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव तथा इनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, और असंज्ञी जीवोंमें सात नोकपायोंका क्षेत्र सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

§ ६२१. यहा पर मूलोच्चारणाका ऐसा अभिप्राय है कि तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके सख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले सब लोकमें रहते हैं । सो यह कथन स्वस्थान विशुद्ध वादर-एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिके स्वामित्त्वको स्वीकार करके किया गया है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रियपर्याप्त, वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक और वादर वायुकायिकअपर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र है । इसके अभिप्रायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्यावरकाय, इनके वादर तथा इनके अपर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । तथा इसीके अनुसार स्पर्शनका कथन करना चाहिये । असयत और कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें सामान्य-तिर्यचोंके समान क्षेत्र है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असयतोंमें मिथ्यात्वका क्षेत्र ओघके समान

द्वितीयसपयडि० सिरिस्त्वोर्भ । अपरि अर्जताण० चक्षु० पद्वियमंगो ।

एवं क्षेत्राणामो समचो ।

है । अन्तर्गामी द्वितीयसपयडि मंग सामान्य तिर्यचोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अन्तर्गामी द्वितीयसपयडि मंग एकेन्द्रियके समान है ।

**विशेषार्थ—**ओपसे मिष्यात्त्व सोहाइ कयाप और नौ नोक्याबोंकी बचन्य स्थितिबाले बीच बचन्येणमें ही होते हैं, अतः इनका क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे माग प्रमाण्य कहा । तथा ओपसे एक प्रकृतियोंकी अक्षय्य स्थितिबाले बीच अन्तर्गामी अतः इनका क्षेत्र सब लोक कहा । जब सामान्यसे सम्बन्ध और सन्धिगिष्यात्वकी सत्ताबाले बीचोका क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे मागप्रमाण्य है तब इनकी बचन्य और अक्षय्य स्थितिबाले बीचोका क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे मागप्रमाण्य ही होगा, इसमें कोई अपवाद नहीं । यह ओप प्ररूपका मूलमें गिनार्हें हुई कन्ययोगी आदि कुछ मार्गोपार्थमें अचिच्छ वन जाती है, इसलिये इनके कन्यको ओपके समान कहा । सामान्य मारुक्तियोंका क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे मागप्रमाण्य है, क्योंकि मारुक्तियोंकी संख्याको मारुक्तियोंकी अक्षय्यतासे गुणित करने पर लोके अस्तंस्यातर्भे माग ही प्राप्त होता है, अतः इनके अक्षय्य और अनुकूल स्थितिके समान बचन्य और अक्षय्य स्थितिकी अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे माग ही कहा । इसी प्रकार मूलमें सातों प्रकृतियोंके मारुक्तियोंसे लेकर स्थिति-एक और अक्षय्य मार्गोपार्थ गिनार्हें हैं उनमें भी जानना चाहिये, क्यों कि सामान्यसे इनका वर्तमान क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे मागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । इनकेवल अनुकूल्यक पत्रों बीच इसके अपवाद हैं सो इनके क्षेत्रका अनेक वगैरे सुतासा किया ही है । सामान्यसे तिर्यचोका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है । तथा इनमें मिष्यात्त्व, बाह्य कयाप, मय और अनुकूल्यकी बचन्य और अक्षय्य स्थितिबाले बीचोका तथा अन्तर्गामीद्वितीयसपयडि और सात नोक्याबोंकी अक्षय्य स्थितिबाले बीचोका प्रमाण्य अन्तर्गामी वतता आये हैं अतः तिर्यचोके एक प्रकृतियोंकी बचन्य और अक्षय्य स्थितिकी अपेक्षा सब लोक क्षेत्र वन जाता है । किन्तु क्षेत्र प्रकृतियोंकी बचन्य और अक्षय्य स्थितिकी अपेक्षा तथा अन्तर्गामीद्वितीयसपयडि और सात नोक्याबोंकी बचन्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे ही होता है । इसका कारण इनकी संख्याकी मूलता है । यद्यपि एकेन्द्रियमें सामान्य तिर्यचोके समान व्यवस्था वन जाती है किन्तु अन्तर्गामीद्वितीयसपयडि और सात नोक्याबोंकी बचन्य स्थितिकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात यह है कि सामान्य तिर्यचोके एकेन्द्रियमें अन्तर्गामीद्वितीयसपयडि और सात नोक्याबोंकी बचन्य स्थिति मिला वतता है । अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी बचन्य स्थितिबाले बीचोका प्रमाण्य अन्तर्गामी प्राप्त होता है और इसलिये इनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक वन जाता है । प्रकृतियोंके लेकर अन्तर्गामी एक मूलमें और अक्षय्य मार्गोपार्थ गिनार्हें हैं उनमें भी एकेन्द्रियके समान व्यवस्था जानना चाहिये । किन्तु औद्योगिक मिश्रकययोगी, मत्पजानी, अक्षय्य मिष्यात्त्व और अक्षय्यमें सात नोक्याबोंकी बचन्य स्थितिकी अपेक्षा अपवाद है । वात यह है कि इनमें सात नोक्याबोंकी बचन्य स्थिति एकेन्द्रियके अपवाद अक्षय्यमें होती है । अतः बचन्य स्थितिबाले बीचोकी संख्या एकेन्द्रियके समान न प्राप्त होकर सामान्य तिर्यचोके समान प्राप्त होती है अतः इस कारण इनके सात नोक्याबोंकी बचन्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र सामान्य तिर्यचोके समान होता है । यद्यपि पहले यह वतताया है कि तिर्यचोमें मिष्यात्त्व बाह्य कयाप, मय और अनुकूल्यकी बचन्य स्थितिबाले बीचोका बचन्य क्षेत्र सब लोक है फिर भी मूल अक्षय्यताका यह अतिप्राम्य है कि येस बीचोका क्षेत्र लोके अस्तंस्यातर्भे मागप्रमाण्य है । सो इसका यह अर्थ है कि तिर्यचोमें एक प्रकृतियोंकी बचन्य स्थिति बाह्य

§ ६२२. पौमणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो—  
ओघेण आदेसेण० । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-मोलमक-णवणोक्क० उक्क० के० खे०  
पोसिदं ? लो० असंखेभागो अट्ट-तेरह चोदसभागा वा देसूणा । अथवा इत्थि-  
पुरिसवेद० उक्क० अट्ट चोदसभागा वा देसूणा । अण्णेणाहिप्पाएण वारह चोदसभागा वा  
देसूणा । अणु० सच्चल्लो० । सम्म०-सम्मामि० उक्क० लो० अमंखे०भागो अट्ट  
चोद् देसूणा । अणुक्क० [लो० असंखे०भागो] अट्ट चोद् देसूणा सच्चल्लो० वा । एवं  
[कायजोगि-] चत्तारि कसाय-मदि-मुद अण्णा०-असंजद०-अचकरु०-भवसि०-मिच्छादि०-  
आहारि ति । अभव० एवं चैव । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्ज० ।

एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी ही प्राप्त होती है और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र  
लोकके संख्यातवें भागप्रमाण ही है अत इम अपेक्षासे तिर्यचोमे उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके मर्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है । और पहले जो सप्त  
लोक क्षेत्र बतलाया है सो इसका कारण यह है कि मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा वादर एकेन्द्रिय  
पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र सप्त लोक है अत उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले तिर्यचोंका क्षेत्र भी  
सप्त लोक बन जाता है । यही क्रम आंतरिकमिश्रकायोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि  
और असज्ञी जीवोंके भी घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके इस प्रकार घटित करनेमें कोई  
बाधा नहीं आती है । तथा इसी प्रकार एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त  
तथा वायुकायिक, वादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीवोंमें भी घटित कर लेना चाहिये ।  
किन्तु इस मूल उच्चारणके अनुसार पृथिवी आदि चार म्यायकरकाय, इनके वादर और वादर  
अपर्याप्तकोंमें छद्मोस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंने वर्तमान कालमें  
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको ही स्पश किया है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार चैवानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६२० स्पशन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहा उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा  
मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोरुपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका  
स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम  
आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अपेक्षा  
उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । तथा अन्य अभिप्रायानुसार त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम वारह भाग  
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थिति बिभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका  
स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श  
किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके  
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार  
काययोगी, चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि  
और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर कहना चाहिये ।

१ ६२३ आदेशेण गेरुसु छम्बीसपयदि० उच्च० मणुक्क० सोग० मसुखे० मागो

विशेषार्थे—पहल मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्वर्ग लोकके अर्सेव्यातवें भागप्रमाण बतलाया जाये है । तदनुसार मोहनीय कर्मके अन्तर्गत भेदोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग भी लोकके अर्सेव्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है इससे अधिक नहीं । इसी बातको ध्यानमें रखकर यहां सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्वर्ग लोकके अर्सेव्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा असनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण स्वर्ग अतीत कालकी अपेक्षा बतलाया है क्योंकि विहारवस्त्वन्वान, बेचना, कपाय और बैक्यिक पक्षसे परिखत हुए उक्त बीबोंमें असनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम आठ भाग स्वर्ग किया है और मारुणातिक समुदाहसे परिखत हुए उक्त बीबोंमें असनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम तेरह भागका स्वर्ग किया है । यहां आठ भागसे नीचे वा और ऊपर दह उक्त क्षेत्रका प्रमाण करना चाहिये । तथा तेरह भागमें नीचेका एक रातु छाड़ देना चाहिये । एक ऐसा नियम है कि जो बीब जिस बेववालेमें उत्पन्न होता है मरखक समय अन्तर्मुहूर्त पहलेसे इसके पसी बेवका कल्प होता है । अब अब उस निष्पत्तेके अनुसार स्त्रीबेव और पुरुषबवकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्वर्गका विचार किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग नहीं प्राप्त होता क्योंकि मनुसकबेवकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जो बीब मनुसकबदियोंमें उत्पन्न होते हैं इनकी यह स्वर्ग सम्भव है इसलिये निष्पत्तयस्तर रूपसे स्त्रीबेव और पुरुषबवकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है । किन्तु कुछ आचार्योंका मत है कि वह स्वर्ग कुछ कम बाह्य बने चौदह भागप्रमाण प्राप्त होता है । इनके इस मतका वह कारण प्रतीत होता है कि नीचे सातवें मरक तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है और ऊपर विहारादिककी अपेक्षा अशुभ कल्प तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है । अब यदि इस क्षेत्रका संकलन किया जाता है तो वह कुछ कम बाह्य बने चौदह भाग प्राप्त होता है । अतुल्य स्थितिवाले बीब सब लोकमें पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है अतः यहां अतुल्य स्थितिवालोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्वर्ग सब लोक बतलाया है । अब यहां सम्भवत्त्व और सम्मिध्यात्व प्रकृतियां सो इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्वर्ग लोकके अर्सेव्यातवें भाग प्रमाण अन्य प्रकृतियोंके समान जान लेना चाहिये । तथा सम्भवत्त्व और सम्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग जो कुछ कम आठबटे चौदह भागप्रमाण बतलाया है । बतला करण यह है कि सम्भवत्त्व और सम्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बेवकसम्पत्तियोंके पहले सम्भवे होती है और बेवक सम्पत्तियोंका अतीत कालीन स्वर्ग कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है अतः सम्भवत्त्व और सम्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका भी स्वर्ग उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । तथा इनकी अतुल्य स्थितिवालोंका स्वर्ग जो तीन प्रकारका बतलाया है सो धर्मसे लोकके अर्सेव्यातवें भाग प्रमाण स्वर्ग वर्तमान कालकी अपेक्षा प्राप्त होता है । कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण स्वर्ग अतीत कालीन विहारादिककी अपेक्षा प्राप्त होता है और सब लोक प्रमाण स्वर्ग मारुणातिक तथा उपवाह पक्षकी अपेक्षा प्राप्त होता है । इस प्रकार यह सब प्रकृतियोंका सामान्यसे स्वर्ग हुआ । कुछ मार्गणार् मी पंती हैं जिनमें यह धोष प्रकृत्या बन जाती है, अतः इनके कल्पनाओंके समान कथा है । जैसे चारों कपाय आदि । अन्तर्धर्मोंमें सम्भवत्त्व और सम्मिध्यात्वकी सत्ता नहीं होती । हेतु सब स्वर्ग धोषके समान बन जाता है, अतः इनके भी सम्भवत्त्व और सम्मिध्यात्वको बाह्यकर क्षेत्रका स्वर्ग धोषके समान बतलाया है ।

१ ६२३ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें छम्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अतुल्य स्थिति-  
वस्थितवाले बीबोंने लोकके अर्सेव्यातवें भाग कल्पका और असनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम

छ चोद० देसूणा । अथवा इत्थि-पुरिस० उक्क० लोग० असंखे०भागो चेव । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० छ चोदस० देसूणा । पढमाए खेत्तभंगो । विदि-यादि जाव सत्तमाए सगपोसणं कायच्चं ।

§ ६२४. तिरिक्ख० मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक० उक्क० लोग असंखे०-भागो छ चोद० देसूणा, अणुक्क० सच्चलोगो । चत्तारिणोकसाय० उक्क० लोग० असंखे०भागो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह चोदस० । अणुक्क० सच्चलोगो । सम्पत्त-सम्मामि० उक्क० लोग० असंखे०भागो, अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सच्च-लोगो वा ।

छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शनका भग क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक अपने अपने स्पर्शके समान स्पर्शन कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नरकगतिमें सामान्यसे और प्रत्येक नरकका जो स्पर्श बतलाया है वही यहा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये तदनुसार उसका यहाँ विचार कर लेना चाहिये । किन्तु इसके दो अपवाद हैं । पहला तो यह कि विकल्प रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इसके कारणका निर्देश पहले कर ही आये हैं । और दूसरा यह कि सम्ययत्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है । कारण यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक सम्यक्त्वके पहले समयमें उन्हीं जीवोंके सम्भव है जिन्होंने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके अति लघुकालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है । अब यदि ऐसे नारकी जीवोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श देखा जाता है तो वह लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः यहा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-वालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान बतलाया है ।

§ ६२४ तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और ये ही मिथ्यात्व, सोलह कपाय और पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट

६२५ पंचिदियतिरिक्त्वं०-पंचि०तिरि०पञ्च०-पंचि०तिरि०द्वोपिणी० मिच्छत्  
 सोससक०-पचपोक०-उचक० सोग० असंस्ते०भागो ष चोइस० देखणा । अणुचक०  
 खेग० असंस्ते०भागो सम्बलोगो वा । चत्वारिणोक्क० उचक० सोग० असंस्ते०भागो ।  
 अथवा णवणोक्क० उचक० बारस चोइस० देखणा । अणुचक० खेग० असंस्ते०भागो  
 [ सम्बलोगो वा । सम्मच-सम्मामि० ] तिरिक्त्वोप ।

स्वितिको प्राप्त होते हैं अतः तिरिचोमं इतकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमानकालीन स्पर्श उक्त प्रमाय्य बतलाया है । तथा इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सातवें मरक तक मारयाण्टिक समुदाय करते हैं अतएव इनका अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम बह बटे और राजुपमाय्य बतलाया है । तथा उक्त कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सब लोकमें पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है क्योंकि उक्त कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थिति स्पेन्ट्रियादि सब तिरिचोके सम्भव है, अतएव उक्त कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोका स्पष्ट सब लोक बतलाया है । हास्य, रति, स्त्रीवेद और पुङ्गवेद इन चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य बतलाया है असा झुहासा जिस प्रकार मिथ्यात्व आदिके वर्तमान कालीन स्पर्शका कर भाये हैं, वसी प्रकार कर होना चाहिये । किन्तु उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जो देव पकेन्ट्रियोमें उत्पन्न होते हैं उन तिरिचोके मी नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पारं जाती है और नारकिचोमें मारयाण्टिक समुदायत करनेवाले तिरिचोके मी नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पार जाती है । अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह कुछ कम उछ बट और मग प्रमाय्य प्राप्त होता है । यही कारण है कि मूलमें अबका कर कर नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम उछ बटे और मग प्रमाय्य बतलाया है । तथा चार नोक्यायोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिरिचोका स्पर्श सब लोक स्पष्ट ही है । अतएव उक्त पदले कर ही भाये हैं । सम्पत्त्व और सम्मिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति उन तिर्यचोके सम्भव है जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अतिशीघ्र वेदक सम्पत्त्वके प्राप्त होते हैं पर ऐसे तिर्यचोका स्पर्श लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाय्य ही है, अतः यहां उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य बतलाया है । तथा उक्त प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोका वर्तमान स्पर्श तो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य ही है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी सत्तावालोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । परन्तु इनकी सब लोकमें गति और आगति सम्भव है, इसलिये इनका अतीत कालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है ।

५ ६१५ पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच बोधिमितियोंमें मिथ्यात्व सोइह कयाय और पांच नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियालोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और ब्रह्मतालीके और मारगोमिसे कुछ कम बह मग प्रमाय्य क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाले बीबोने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले बीबोने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अबका नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाले बीबोने ब्रह्मतालीके और मारगोमिसे कुछ कम बह मग प्रमाय्य क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाले बीबोने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्श किया है । सम्पत्त्व व सम्मिमिथ्यात्वका स्पर्श प्रमाय्य तिर्यचोके समान बामना चाहिये ।

विशेषार्थ—इत तीन प्रकारके तिर्यचोमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श वा कुछ कम बह बटे और मग बतलाया है अतएव झुहासा प्रमाय्य तिर्यचोके समान कर लगा



छ चोद० देसूणा । अथवा इत्थि-पुरिस० उक्क० लोग० असंखे० भागो चेव । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० खेतभंगो । अणुक० छ चोदस० देसूणा । पढमाए खेतभंगो । पिदि-यादि जाव सत्तमाए सगपोसणं कायव्वं ।

§ ६२४. तिखिख० मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक० उक्क० लोग असंखे०-भागो छ चोद० देसूणा, अणुक० सव्वलोगो । चत्तारिणोकसाय० उक्क० लोग असंखे० भागो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह चोदस० । अणुक० सव्वलोगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० लोग असंखे० भागो, अणुक० लोग असंखे० भागो सव्व-लोगो वा ।

छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तियाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शनका भग क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक अपने अपने स्पर्शके समान स्पर्शन कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नरकगतिमें सामान्यसे और प्रत्येक नरकका जो स्पर्श बतलाया है वही यहा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये तदनुसार उसका यहां विचार कर लेना चाहिये । किन्तु इसके दो अपवाद हैं । पहला तो यह कि विकल्प रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इसके कारणका निर्देश पहले कर ही आये हैं । और दूसरा यह कि सम्ययत्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है । कारण यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक सम्यक्त्वके पहले समयमें उन्हीं जीवोंके सम्भव है जिन्होंने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके अति लघुकालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है । अब यदि ऐसे नारकी जीवोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श देखा जाता है तो वह लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः यहा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-वालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान बतलाया है ।

§ ६२४ तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें सद्दी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है और ये ही मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाच नोकषायोंकी उत्कृष्ट

६२५ पंचिदियतिरिक्त्व०-पंचि०तिरि०पञ्च०-पंचि०तिरि०त्राणिष्ठी० मिच्छत्त  
 सोक्तक०-पंचणोक्त०-उक्त० सोग० असत्त्वं०भागो ह्य षोडस० देष्टव्या । अणुक्त०  
 सोग० असत्त्वे०भागो सम्बन्धोमो वा । षण्णारिणोक्त० उक्त० लोग० असत्त्वे०भागो ।  
 अथवा णवणोक्त० उक्त० बारस षोडस० देष्टव्या । अणुक्त० लोग० असत्त्वे०भागो  
 [ सम्बन्धोमो वा । सम्मत्त-सम्माभि० ] तिरिक्त्वोप ।

स्वित्तिको प्राप्त होते हैं अतः तिर्यचोंमें इन्की उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमानकालीन स्वयं उक्त प्रमाण वतलाया है । तथा इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सातवें नरक तक मारणप्रतिक समुद्रात करते हैं अतएव इनका अतीतकालीन स्वयं कुछ कम दूर घटे चौदह रात्रुप्रमाण वतलाया है । तथा उक्त कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सब लोकमें पाव जाते हैं यह स्पष्ट ही है, क्योंकि उक्त कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थिति पंचेन्द्रियादि सब तिर्यचोंके सम्भव है, अतएव उक्त कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका स्वयं सब लोक वतलाया है । हास्य, रति, स्त्रीषट् आर पुत्रयवेद इन चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वयं जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण वतलाया है उसका मुक्तासा बिस प्रकार मिष्यात्व आदिके वर्तमान कालीन स्वयं कर भाये हैं, वही प्रकार कर सेना चाहिये । किन्तु उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जो बेश पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उन तिर्यचोंके भी नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाव जाती है और नारकियोंमें मारणप्रतिक समुद्रात करमेवास तिर्यचोंके भी नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाव जाती है । अथ यदि इनके स्वयंका विचार किया जाता है ता वह कुछ कम दूर दूरे चौदह भय प्रमाण प्राप्त होता है । यही कारण है कि मूलमें अथवा यह कर नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वयं कुछ कम दूर दूरे चौदह भाग प्रमाण वतलाया है । तथा चार नोक्यायोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका स्वयं सब लोक स्पष्ट ही है । कारणका बल्लेख पहले कर ही भाये हैं । सम्पत्त्व और सम्पगिमिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति उन तिर्यचोंके सम्भव है जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अतिशीघ्र वेदक सम्पत्त्वका प्राप्त होते हैं पर ऐसे तिर्यचोंका स्वयं लोकका असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है, अतः वहां उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वयं लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण वतलाया है । तथा उक्त प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका वर्तमान स्वयं तो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी सत्तावालोंका वर्तमान स्वयं लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक मही प्राप्त होता । परन्तु इनकी सब लोकमें गति और आगति सम्भव है इसलिये इनका अतीत कालीन स्वयं सब लोक वतलाया है ।

§ ६२६ पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पयात और पंचेन्द्रिय तिर्यच यानिमित्तियोंमें मिष्यात्व साह्र कथन और पांच नाक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवालोंन लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रक और असंख्यकी चौदह भागोंमेंसे कुछ कम दूर भाग प्रमाण क्षेत्रक स्वयं किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जोबने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रक स्वयं किया है । चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जोबने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रक स्वयं किया है । अथवा नौ नाक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जोबने असंख्यकी चौदह भागोंमेंसे कुछ कम दूर भागप्रमाण क्षेत्रक स्वयं किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जोबने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रक और सब लोक स्वयं किया है । सम्पत्त्व व सम्पगिमिष्यात्वका स्वयं सामान्य तिर्यचोंके समान ज्ञानता चाहिये ।

विशुद्धार्थ—उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें मिष्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वयं वा कुछ कम दूर दूरे चौदह भाग वतलाया है अथवा मुक्तासा सामान्य तिर्यचोंके समान कर सेना

§ ६२६ पंचिं०तिरि०अपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० लोग० असंखे०भागो, अणुक्क० लो० असं०भागो सव्वलोगो वा । एव सव्वमणुस-सव्वविगलित्तिदिय-पंचिं-दियअपज्ज०-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्जत्त-वादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति । णवरि वादरपुढवि०-आउ०-वणप्फदि-पत्तेय०पज्ज० उक्क० णव चोद्दसभागा वा देसूणा ।

§ ६२७ देव० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० अट्ट-णव चो० देसूणा ।

चाहिये । तथा 'अथवा' कह कर नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिवालौका स्पर्श जो कुछ कम वारह बटे चौदह भाग प्रमाण वतलाया है वह नीचे छह राजु और ऊपर छह राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । नीचेके छह राजु तो स्पष्ट है परन्तु ऊपरके छह राजु उपपाद पदकी अपेक्षा जानना चाहिये । वात यह है वारहवें कल्पतकके देव मर कर तिर्यंच होते हैं । अथ नीचेके जो देव सोलहवें कल्पतक विहार करके गये और वहासे मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए उनकी अपेक्षा ऊपर छह राजु प्राप्त हो जाते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ ६२६ पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रज्ञा स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सब मनुष्य, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकपर्याप्त, वादरअग्निकायिक, वादर अग्निकायिकपर्याप्त, वादर वायु-कायिक, वादर वायुकायिकपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, वादर जलकायिकपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—जो तिर्यंच या मनुष्य मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हो कर और स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अथ यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये यहा उत्कृष्ट स्थितिवालौका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति-वालौका वर्तमान कालीन स्पर्श तो लाकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें ही है । पर अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बन जाता है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके द्वारा इन्होंने सब लोकका स्पर्श किया है । कुछ मार्गणाए और हैं जिनमें पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, अतः उनके कथनको इसी प्रकार कहा है । जैसे सब मनुष्य आदि । किन्तु इनमेंसे वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त इन तीन मार्गणाओंमें कुछ अपवाद है । वात यह है कि इनमें देव मर कर भी उत्पन्न होते हैं, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति-वालौका स्पर्श कुछकम नौ बटे चौदह भाग प्राप्त होता है । यहाँ नौ भागसे नीचेके दो राजु और ऊपरके सात राजु लेना चाहिये ।

§ ६२७ देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और सात नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले



णवरि कम्मइय०-अणाहार० उक्क० तेरह चो० भागा वा देसूणा ।

§ ६२६, वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुम-  
पुढविपज्जत्तापज्जत्त-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-वादरतेउअपज्ज०-सुहुम-  
तेउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-  
सुहुमवणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त० उक्क० लोग० असंखे० भागो सव्व-  
लोगो वा । णवरि वादरपुढवि-तेउ-वणप्फदिअपज्ज० सव्वलोगो णत्थि । कुदो ? उक्कस्स-  
ट्टिदिसंतकम्मेण पडिणियदखेत्ते चेव एदेसिमुपत्तीदो । अणुक्क० सव्वलोगो । [ ओरा-  
लिय० तिरिक्खोधं । ] ओरालियमिस्स० खेत्तभंगो ।

कायिकपर्याप्त, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके पायी जाती है जो देव पर्यायसे च्युत होकर एकेन्द्रिय हुए हैं, अतः एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम नौ बटे चौदह राजु वतलाया है जो उपपादपदकी प्रधानतासे प्राप्त होता है । तथा एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतएव अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक वतलाया है । आगे जो वादर एकेन्द्रिय आदि मार्गणाएं गिनार्ह हैं उनमें भी यह व्यवस्था घन जाती है, अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है । किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जो देव तद्योग्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है तथा जो तियच और मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ नारकियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है । अत्र यदि इन दोनोंके स्पर्शका सकलन किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे, चौदह राजु प्राप्त होता है । यही कारण है कि कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उक्तप्रमाण वतलाया है ।

§ ६२६ वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त, सुक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त, वादरजलकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिकअपर्याप्त, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिकअपर्याप्त, वादर वायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिकअपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व निगोद तथा इनके वादर, वादर पर्याप्त, वादर अपर्याप्त, सूक्ष्म, सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवी-  
कार्मणपर्याप्त, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिकअपर्याप्तकोंमें सब स्पर्श नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मके साथ इन जीवोंकी प्रतिनियत क्षेत्रमें ही पायी जाती है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । औदारिक-  
पर्याप्तोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके

१६३० पंचिदिय-पंचि०पञ्ज०-तस-तसपञ्च० मिष्यत्-सोससक०-सत्तगोक०  
 उक्त० अोप । अणुक्त० अह बो० देसूणा सम्बसोगो वा । इत्थि० पुरिस० उक्त०  
 अह-वारह बोहसमागा वा देसूणा । अणुक्त० अह वोहस० सम्बसोगो वा । सम्मत्  
 सम्मामि० उक्त० अह चोह० देसूणा । अणुक्त० सोग० असंखे०भागो सम्बसोगो  
 वा । एवं अणुक्त०-सण्णि-संघमण०-संघवचि० ।

**विशेषार्थ—**जो तिर्यक या मगुष्य मिष्यात् अथवा कर्मोकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त करके  
 और स्थितिपाठ किये बिना बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि मार्गवाभोमिं फलप्र हाते हैं ऊन्हीके  
 उक्त कर्मोकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अब यदि इनके वर्तमान क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह  
 शोकके अंतर्भ्यातर्षे भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । यही कारण है कि इन बाहर एकेन्द्रिय  
 अपर्याप्त आदि मार्गवाभोमिं उत्कृष्ट स्थितिपाठोका स्वयं शोकके अंतर्भ्यातर्षे भागप्रमाण बतलाया  
 है । तथा ऐसे हीच सब शाकर्म उत्पन्न होते हैं, अतः अतीतकालीन स्वयं सब शोक बतलाया है ।  
 हां अह इतनी विशेष बात है कि बाहर पृथिवीकाधिक अपर्याप्त, बाहर अतिक्रमिक अपर्याप्त  
 और बाहर पतस्थितिकाधिक अपर्याप्त इनमें उत्कृष्ट स्थितिवात्तोका अतीत कालीन स्वयं मो सब-  
 शोक नहीं प्राप्त होता कबो किसे भीबोकी उत्पत्ति नियत क्षेत्रमें ही होती है, अतः इन्होमे  
 सब शोकके अतीत कालमें ही स्वयं नहीं किया है । विशेष कुलासाके लिये निम्न वा बातें  
 ध्यानमें रखनी चाहिये । पहली यह कि उक्त मार्गवाभाले हीच पृथिवीबोके आत्मसे रहते है और  
 दूसरी यह कि जो संघी पंचेन्द्रिय पयाप्त तिर्यक या मगुष्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और  
 स्थितिपाठ किये बिना इनमें उत्पन्न होते हैं ऊन्हीके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
 प्राप्त होती है । अब ऐसे हीबोके पृथिवीबोकी और गमन क्रम पर सब शाक नहीं प्राप्त होता,  
 अतः यहां सब शाक स्वयंका निवेध किया है । तथा उक्त सब मार्गवाभोमिं अनुकृष्ट स्थिति-  
 वात्तोका जो सब शोक स्वयं बतलाया है वह स्पष्ट ही है । औदारिकमिष्ययोगवात्तोका स्वयं  
 तिर्यकके समान है, वह स्पष्ट ही है । औदारिकमिष्ययोगमें मिष्यात् अथवा कर्मोकी उत्कृष्ट स्थिति  
 ऊन्ही हीबोके प्राप्त होती है जो देह और नरक पर्यायसे अन्तर औदारिकमिष्ययोगी होते हैं,  
 अतः इनके स्वयंमें क्षेत्रसे अन्तर नहीं पड़ता इसीलिये इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट  
 स्थितिवात्तोका स्वयं क्षेत्रके समान बतलाया है ।

१६३० पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रियपयाप्त त्रस और त्रस पयाप्त हीबोमिं मिष्यात्, सोसह कण्य  
 और साठ नाकवाभवात्तोमिं उत्कृष्ट स्थितिविमर्दितासे हीबोका स्वयं भीपके समान है तथा  
 अनुकृष्ट स्थितिविमर्दितासे हीबोने त्रस मालीके औरह भागोमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाण क्षेत्रका  
 और सब शोक क्षेत्रका स्वयं किया है । हीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्दितासे हीबोने  
 त्रस मालीके औरह भागोमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह मग प्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया  
 है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविमर्दितासे हीबोने त्रस मालीके औरह भागोमेंसे कुछ कम आठ  
 मागप्रमाण क्षेत्रका और सब शाक क्षेत्रका स्वयं किया है । सम्बन्ध और सम्बन्धिमिष्यात्की उत्कृष्ट  
 स्थितिविमर्दितासे हीबोने त्रसमालीके औरह भागोमेंसे कुछ कम आठ माग क्षेत्रका स्वयं किया  
 है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविमर्दितासे हीबोने शोकके अंतर्भ्यातर्षे मग और सब शोक क्षेत्रका  
 स्वयं किया है । इसी प्रकार अणुसंज्ञनवाले संघी, पांचो मनोयोगी और पांचो बचनयोगी हीबोके  
 बतलाया चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मिष्यात् अथवा २५ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवात्तोका जो भीपसे स्वयं

छ चोदस देसूणा । एवं सुक्क० ।

§ ६३४ तिण्णि ले० मिञ्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० छ चोद० चत्तारि चोद० वे चोद० देसूणा । अणुक्क० सञ्चलोगो । इत्थि०-पुरिस० खेत्तभंगो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह-एकारस-णव चोदसभागा वा देसूणा, उववादविवक्खाए तदुव-लंभादो । सम्पत्त०सम्मामि० तिरिक्खोघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणवकुमार-भंगो । खह्य० एकवीस० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० अट्ट चो० देसूणा । सासण० उक्क० अणुक्क० अट्ट-वारह चोद० देसूणा । असण्णि० एंडंठियभंगो ।

एवमुक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके स्पर्श जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अन्यत्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंका जो स्पर्श वतलाया है वही यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका प्राप्त होता है । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । मिथ्यात्वके रहते हुए जहा जहा मनोयोग सम्भव है वहां वहा विभंगज्ञान भी सम्भव है, अत विभंगज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श मनोयोगियोंके समान वतलाया है । जो उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासयमको प्राप्त होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति होनी है, अतः सयतासंयतोंके सव प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सयतसयतोंने इतने क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ल-लेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३४ कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने सव लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके ममान है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम तेरह, कुछ कम ग्यारह और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि उपपादकी विवक्षांमें इस प्रकारका स्पर्श पाया जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । पीतलेश्यावालोंमें सौधर्म कल्पके समान भंग है । पद्मलेश्यावालोंमें सनत्कुमार कल्पके समान भंग है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असक्षियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायवालोंके जो क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श है वह नारकियोंकी मुख्यतासे वतलाया है । तथा ये तीनों

१ ६३५ जङ्गणाय पर्यय । तुबिहो० पिहोसो—ओषेण आदेसेय य । ओषेण मिध्वत्त-भारसक०-शवणोक० जह० अग्रह० सेचमंगो । सम्पत्त दह० सेच मंगो । अज० मणुकक० मंगो । सम्मामि० जह० मज० मणुकक० मंगो । मणतापु० चरकक० ज० सो० मसंखे० भागो अह पो० देसूणा । अज० सम्मल्लोगो । पर्य क्वाययोगि-वचारिक०-अचकस्तु० यवसि० आहारि पि ।

लेखबाबले जीव सब लोकमें पाये जाते हैं अतः इनमें एक पद्धतियोंकी अनुकूल स्थितिवालोंका स्पष्ट सच लोक बतलाया है । स्त्रीवेष और पुरुषवेषकी उक्त स्थितिवाले जीव लोकके अर्सेक्यातर्ष भागमें पाये जाते हैं, जेव भी इतना ही है अतः इनका स्पष्ट क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा विकल्परूपसे कृष्यादि तीन लेख्याओंमें वपपाव परकी अपेक्षा नो नोक्यायोंका स्पष्ट जो कुछ कम वेरू बटे बीरह रासु कुछ कम ग्यारू बटे बीरह रासु और कुछ कम नो बटे बीरह रासु बतसाया है वह क्रमसे नीचे बह चार और दो रासु तथा ऊपर साठ रासुकी अपेक्षा जानना चाहिये । कृष्यादि तीन लेखबाबलोंमें तिर्यचोंकी बहुता है, अतः इनमें सम्पत्त और सम्मिध्यात्वका स्पष्ट तिर्यचोंके समान बतलाया है । जेव मार्गेश्योंका स्पष्ट सुगम है ।

इस प्रकार उक्त स्पष्टानुगम समाप्त हुआ ।

१ ६३६ अत्र अचपम्य स्पष्टत्वा प्रकरय है । वचकी अपेक्षा निर्णय दो प्रकारका है—ओपनिर्णय और आदेखनिर्णय । ओपकी अपेक्षा मिध्यात्व बाह्य क्वाय और नो नोक्यायोंकी अचपम्य और अचपम्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । सम्पत्तकी अचपम्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अचपम्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है । सम्मिध्यात्वकी अचपम्य और अचपम्य स्थितिवाले जीवोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है । अन्तःसुबन्धी वचपम्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंके लोकके अर्सेक्यातर्ष भाग और वचनान्तिके बीरह भागमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया है । तथा अचपम्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंम सब लोकका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार अचपयोगी, चारों क्वायवाले, अचपुदरुतवाले, मम्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मिध्यात्व बाह्य क्वाय और नो नोक्यायोंकी अचपम्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके अर्सेक्यातर्ष भागप्रमाय और अचपम्य स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक है । स्पष्ट भी इतना ही है, अतः इनके स्पष्टोंके क्षेत्रके समान बतलाया है । सम्पत्तकी अचपम्य स्थिति वचपि चारों गतिके जीवोंके पर्य जाती है फिर भी ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं अतः इनका स्पष्ट भी क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । परी करय है कि सम्पत्तकी अचपम्य स्थितिवालोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है वह स्पष्ट ही है । सम्मिध्यात्वकी अचपम्य और अचपम्य स्थितिवाले स्पष्ट क्षेत्रके समान बतलाया है । अचपम्य स्थितिवालोंका स्पष्ट अनुकूलके समान सब लोक है । अन्तःसुबन्धी वचपम्य स्थिति बिस्पोबनानके समय प्राप्त होती है । अब यदि ऐसे जीवोंके बतनाय स्पष्टका विचार किया जाता है तो वह लोकके अर्सेक्यातर्ष भागप्रमाय ही प्राप्त होता है । यही करय है कि वहाँ अचपम्य स्थितिवालोंका स्पष्ट एक प्रमाय क्या है । तथा ऐसे जीवोंका विहार अपदि कुछ कम आठ बटे बीरह रासु प्रमाय क्षेत्रमें पाया जाता है अतः अतीत कालीय स्पष्ट एक प्रमाय क्या है । तथा अन्तःसुबन्धी वचपम्य स्थितिवाले जीव सब लोकमें हैं इसलिये इनका सब लोक स्पष्ट बतलाना स्पष्ट ही है । कुछ मार्गेश्यों भी देखी हैं किन्तमें पर्य ओष मरुपया अचिक्र पटित हो जाती है अतः इनके अन्तको ओषके समान क्या है ।



§ ६३१. वेडन्विय० मिच्छ०-सोलसक०-पचणोक० उक्क० अणुक्क० अट्ट-  
 तेरह चोइस० देसूणा । एवं हस्स-रदि०। इत्थि०-पुरिस० उक्क० अट्ट-वारह० देसूणा ।  
 अथवा वारह चोइस० णत्थि । अणुक्क० अट्ट-तेरह चो० देसूणा । सम्मत्त-सम्माभि०  
 उक्क० अट्ट चो०, अणुक्क० अट्ट-तेरह चो० । वेडन्वियमिस्स० खेत्तभंगो । एवमाहार०-  
 आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-खेदो०-परिहार०-सुहुम०-  
 जहाक्खादसजदे त्ति ।

वतलाया है वह पंचेन्द्रिय आदि पूर्वोक्त चार मार्गणाओंकी प्रमुखतासे ही वतलाया है, इसलिये  
 यहा उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श ओघके समान कहा ।  
 उक्त मार्गणाओंका विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा  
 मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा स्पर्श सब लोक है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति-  
 वालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका विहार आदिकी  
 अपेक्षा कुछकम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम  
 वारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका उक्त  
 प्रमाण स्पर्श वतलाया है । तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका कुछ कम आठ  
 बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श विहारादिककी अपेक्षा वतलाया है और सब लोक स्पर्श मारणान्तिक  
 तथा उपपाद पदकी अपेक्षा वतलाया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-  
 वालोंका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहार आदिकी अपेक्षा वतलाया है  
 और इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श  
 वर्तमान काल आदिकी अपेक्षा तथा सब लोक स्पर्श मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी  
 अपेक्षा वतलाया है । चक्षुदर्शन आदि कुछ और मार्गणाए हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है,  
 अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।

§ ६३१ वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाच नोकषायोंकी उत्कृष्ट  
 और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ  
 कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार हास्य और रति नोकषायकी अपेक्षा  
 जानना चाहिये । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह  
 भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम वारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा त्रस  
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम वारह भागप्रमाण स्पर्श नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति  
 वाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण  
 क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस  
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट  
 स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह  
 भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी  
 प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी,  
 सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूदमसापरायिकसंयत और  
 यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम  
 तेरह बटे चौदह भाग है । वही यहा मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके प्राप्त

§ ६३२ षष्ठु स० शीर्ष । पञ्चरि मष्ट पाह० जतिव । मिच्छस-सोत्तक०  
उत्क० इ घोद० । इरिय०-पुरिस० पंषिदियमंगो ।

§ ६३३ आभिणि० सुद०-भोहि० सम्पपयदी० उत्क० अणुक० लोग०  
असंखे०-भागो अठ चो० देसूपा । एषमोहिर्दस०-सम्मादि०-वेदय०-उबसप० सम्मा  
मिच्छादिदि वि । विहंग० मणमोगिमंगो । संजरासमद० ज्यक० खेचपंगो, अणुक०

हावा इ इसलिये इते तत्प्रमाय क्वा । किन्तु पुरुखेव और स्त्रीखेवकी क्वाय स्थितिवालोका  
कुलकम वेरह बटे चौदह रज्जु स्पश न प्राप्त होकर कुलकम बाय्य बटे बावह रज्जु प्राप्त होता है ।  
कारणका स्वरीकरस भोपमें कर आवे हैं । अथ विकल्परूपसे जो बावह बटे चौदह रज्जुका  
नियेय किया है । उसका मुख्य कारण यह है कि नीचे सात नरके नरका स्त्रीखेव और पुरुखेवकी  
क्वाय स्थितिके रहते हुए क्यपि तियेय और मनुष्योंमें मारखान्तिक समुपचात करते हैं फिर भी  
उनका प्रमाय स्वस्य होता है अतः कुलकम बावह बटे चौदह भाग प्रमाय स्पश नहीं बनता है ।  
अनुकृतका कुलासा क्वायके समान ही इ । सम्पकल और सम्पगिमप्यात्वकी क्वाय स्थिति  
वेदकसम्पगट्टियोंके पहले सममें होती है और बहकसम्पगट्टियोंका स्पशे कुलकम आठ बटे  
चौदह रज्जु होता है अथ सम्पकल और सम्पगिमप्यात्वकी क्वाय स्थितिवालोका स्पशे भी एक  
प्रमाय ही बतलाया है । तथा अनुकृत स्थितिवालोके स्पशेय कुलासा मिध्यात्व आदि की  
अनुकृत स्थितिवालोके समान है । ऐक्यिकमिजकाययोग और आहारकमययोग आदि ऐसी  
मार्गबापे हैं जिनके स्पशेमें क्षेत्रसे अन्तर नहीं पड़ता, अतः उनका स्पशेन क्षेत्रके समान क्वा है ।

§ ६३२ नृपुसकवेवसे बीबोंमें आपके समान मंग है । किन्तु इतनी विसेयता है कि इसमें  
त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुलकम आठ भागप्रमाय स्पशे नहीं है । मिध्यात्व और सोलह  
क्यायोकी क्वाय स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुलकम बह भागप्रमाय  
क्षेत्रका स्पशे किया है । खीवेवबाल और पुरुखेवबाल बीबोंमें पंचेन्द्रियतियेयोंके समान मंग है ।

विशोपार्ष—नृपुसकवेवमें जो बीबके समान स्पशे बतलाया है वह अनुकृत स्थितिकी  
अपेक्षा बतलाया है । क्वाय स्थितिकी अपेक्षा ता विसेयता है । बाठ यह है कि भोपसे मिध्यात्व  
आदिकी क्वाय स्थितिवालोका विहार आदिकी अपेक्षा जो कुलकम आठ बटे चौदह रज्जु स्पशे  
बतलाया है वह नृपुसकवेविकी नहीं प्राप्त होता, क्योंकि वह वेबोंकी मुख्यतासे बतलाया है  
और वेबोंमें नृपुसकवेवी बीब होते नहीं । हा मिध्यात्व और सोलह क्यायोकी क्वाय स्थितिवासे  
नृपुसकवेवियोंने भीकेके बह रज्जु क्षेत्रका स्पशे किया है अथ इसमें एक प्रकृतियोंकी क्वाय  
स्थितिवालोका यह स्पशे बन जाता है । तथा स्त्रीखेव और पुरुखेवकी क्वाय स्थितिवालोका स्पशे  
पंचेन्द्रियोंके समान है । इसका यह अमिप्रत्व है कि पंचेन्द्रियोंमें जिस प्रकार स्त्रीखेव और पुरुखेवकी  
क्वाय स्थितिवालोका स्पशे पठित करके बतला आवे हैं उसी प्रकार यहाँ भी पठित  
कर सेना चाहिये ।

§ ६३३ आभिनिषोषिकज्ञानी, मृत्ज्ञानी और अथविज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी क्वाय  
और अनुकृत स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने जोकेके असंख्यातमें मंग क्षेत्रका और त्रसनालीके  
चौदह भागोंमेंसे कुलकम आठ भागप्रमाय क्षेत्रका स्पशे किया है । इसी प्रकार अथविज्ञानवासे,  
सम्पगट्टि वेदकसम्पगट्टि क्वायसम्पगट्टि और सम्पगिमप्याट्टि बीबोंके जानना चाहिये ।  
बिम्बगज्ञानियोंमें मनोयोगियोंके समान मंग है । संवतासंभवोंमें क्वाय स्थितिबिम्बितवासे बीबोंका  
स्पशे क्षेत्रके समान है तथा अनुकृत स्थितिबिम्बितवासे बीबोंमें त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे

छ चोद्दस देसूणा । एवं सुक्क० ।

§ ६३४ तिण्णि ले० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० छ चोद्द० चत्तारि चोद्द० वे चोद्द० देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । इत्थि०-पुरिस० खेत्तभंगो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह-एकारस-णव चोद्दसभागा वा देसूणा, उववादविक्खाए तदुव-लंभादो । सम्मत्त०सम्मामि० तिरिक्खोव० । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमार-भंगो । खड्दय० एकवीस० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० अद्द चो० देसूणा । सासण० उक्क० अणुक्क० अद्द-वारह चोद्द० देसूणा । असण्णि० एद्ददियभंगो ।

एवमुक्कस्तपोसणाणुगमो समत्तो ।

कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके स्पर्श जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अन्यत्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंका जो स्पर्श वतलाया है वही यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोका प्राप्त होता है । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । मिथ्यात्वके रहते हुए जहा जहा मनोयोग सम्भव है वहा वहा विभंगज्ञान भी सम्भव है, अतः विभंगज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श मनोयोगियोंके समान वतलाया है । जो उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासयमको प्राप्त होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः संयतासयतोंके सब प्रवृत्तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु है, क्योंकि कारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा सयतसयतोंने इतने क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ल-लेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३४ कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । स्त्रीधेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम तेरह, कुछ कम ग्यारह और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि उपपादकी विषक्षांमें इस प्रकारका स्पर्श पाया जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । पीतलेश्यावालोंमें सौधर्म कल्पके समान भंग है । पद्मलेश्यावालोंमें सनत्कुमार कल्पके समान भंग है । ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायवालोंके जो क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श है वह नारकियोंकी मरुत्यतासे बतलाया है । तथा ये तीनों

१ ६३५ जहयणए पयद । बुधिहो० गिरेसो—ओघेण आवेसेष य ।  
 ओघेण मिष्यत्त-वारसक०-अवणो० जह० अजह० स्वधर्मगो । सम्पत्त जह० खेत  
 र्मगो । अज० अणुक्क०र्मगो । सम्मामि० जह० अम० अणुक्क०र्मगो । अणंताणु०  
 वतक्क० ज० सो० अस्तंखे०मागो अट्ट घो० देसूणा । अन्न० सम्भस्सेमो । एर्य  
 क्कयपोमि चचारिक०-अवक्कसु० मवसि० आहारि चि ।

केत्यापले वीष सब लोकमें पाये जाते हैं अतः इनमें एक पक्षितियोंकी अमुक्त स्थितिवालोंका स्वर्ग सब लोक बतलाया है । स्त्रीदेव और पुरुषदेवकी एक स्थितिवाले वीष लोकके अस्तंख्यातमें मागमें पाये जाते हैं, येन मी इतना ही है अतः इनका स्वर्ग क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा मिष्यत्तपसे कृष्णादि तीन केत्यापलोंमें जपणए पदकी अपेक्षा नौ नाक्यायोंका स्वर्ग जो कुछ कम वेद बटे चौदह राजु कुछ कम ग्याए बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है वह क्रमसे मीचे जह चार और दो राजु तथा ऊपर साठ राजुकी अपेक्षा बानना चाहिये । कृष्णादि तीन केत्यापलोंमें तिर्यंकोकी श्रुतता है, अतः इनमें सम्पत्त और सम्भिमिष्यात्वका स्वर्ग तिर्यंकोके समान बतलाया है । शेष मार्गेशार्थोंका स्वर्ग मुगम है ।

इस प्रकार एक स्थानानुगम समाप्त हुआ ।

१ ६३६ अज अण्य स्वर्गका प्रकरण है । उत्तरी अपेक्षा निर्लेख हो प्रकारका है—  
 ओपनिर्लेख और आरेखनिर्लेख । ओषकी अपेक्षा मिष्यात्व बाए कयाय और नौ नोक्यायोंकी अण्य और अजअण्य स्थितिबिभक्तिवाले वीषोंका स्वर्ग क्षेत्रके समान है । सम्पत्तकी अण्य स्थितिबिभक्तिवाले वीषोंका स्वर्ग क्षेत्रके समान है । तथा अजअण्य स्थितिबिभक्तिवाले वीषोंका स्वर्ग अमुक्तके समान है । अन्तस्तुवन्धी अण्यकी अण्य स्थितिबिभक्तिवाले वीषोंके लोकके अस्तंख्यातमें माग और अस्तंख्यातके चौदह मार्गोंमेंसे कुछ कम आठ अण्यमात्र क्षेत्रका स्वर्ग किया है । तथा अजअण्य स्थितिबिभक्तिवाले वीषोंन सब लोकका स्वर्ग किया है । इसी प्रकार अण्ययोगी चारों कयायवाले, अण्यपुरस्तेनवाले, अण्य और आहारक वीषोंके बानना चाहिये ।

विशुपार्थ—मिष्यात्व बाए कयाय और नौ नोक्यायोंकी अण्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके अस्तंख्यातमें मागमात्र और अजअण्य स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक है । स्वर्ग मी इतना ही है, अतः इनके स्वर्गको क्षेत्रके समान बतलाया है । सम्पत्तकी अण्य स्थिति अथवा चारों गतिके वीषोंके पाई जाती है फिर मी ऐसे वीष संख्यात ही होते हैं अतः इनका स्वर्ग मी क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि सम्पत्तकी अजअण्य स्थितिवालोंका स्वर्ग अमुक्तके समान है वह स्वर्ग ही है । सम्भिमिष्यात्वकी अण्य और अजअण्य स्थितिका स्वर्ग क्षेत्रके समान बतलाया है । अजअण्य स्थितिवालोंका स्वर्ग अमुक्तके समान सब लोक है । अन्तस्तुवन्धी अण्यकी अण्य स्थिति बिभक्तिवाले समय प्राप्त होती है । अब यदि ऐसे वीषोंके वर्तमान स्वर्गका विचार किया जाता है तो वह लोकके अस्तंख्यातमें मागमात्र ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहां अण्य स्थितिवालोंका स्वर्ग एक प्रमाण कहा है । तथा ऐसे वीषोंका विचार अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रमें पाया जाता है अतः अर्थात् अज्ञान स्वर्ग एक प्रमाण कहा है । तथा अन्तस्तुवन्धी अण्यकी अजअण्य स्थितिवाले वीष सब लोकमें हैं इसलिये उनका सब लोक स्वर्ग बतलाया स्वर्ग ही है । कुछ मार्गेशार्थ मी ऐसी हैं जिनमें यह ओष प्रकृष्या अविभक्त पटित हो जाती है अतः इनके कयनको ओषके समान कहा है ।



मिच्छत् • बह० सम्मत्तमंगो । किण्व-धीस • तिरिक्त्वमंगो । णवरि सम्मत्त • सम्मा  
 मिच्छत्तमंगो । एवमोरास्त्रिमिस्स०-मन्त्रि-सुदम्प्याण अमथ • मिच्छादि० असम्पि णि ।  
 णवरि अणंताणु० षत्तक० मिच्छत्तमंगो । अमथ० सम्मत्त०-सम्मामि० णस्यि । ओरा  
 स्त्रिमिस्स • सम्म० तिरिक्त्वोष ।

अज्ञपस्य स्थितिविमर्शनात्ते जीवोश्च स्वयो अनुकृष्टके समान है । इसी प्रकार कपोतलेखावाले  
 जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार असंयतोंके भी जानना चाहिये । किन्तु इनके इतनी  
 विशेषता है कि मिच्छात्वकी जपस्य स्थितिविमर्शनात्ते जीवोंके स्वयंके मंग सम्पत्त्वके समान  
 है । कृष्ण और नीलाक्षरेखावालोंमें तिर्यैचोंके समान मंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें  
 सम्पत्त्वका मंग सम्पत्तिमिच्छात्वके समान है । इसी प्रकार औदारिकमिच्छात्वकी, मत्स्यजानी,  
 भूताहानी, अमस्य मिच्छात्तु और असंयती जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है  
 कि इनमें अनन्तानुसन्धीकृतमंग मिच्छात्वके समान है । अमस्योमें सम्पत्त्व और सम्प  
 त्तिमिच्छात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं । तथा औदारिकमिच्छात्वकीयोमें सम्पत्त्वका मंग सामान्य  
 तिर्यैचोंके समान है ।

विशेषार्थ—तिर्यैचोंमें मिच्छात्व, बाह्य कषाय, मय और सुगुप्ताकी अज्ञप स्थिति बाहर  
 पकेन्द्रियोंके होती है । जैसे तो बाहर पकेन्द्रियोंका निवास सोरुके संस्थातमें माग प्रमाण क्षेत्रमें ही  
 है किन्तु मारणात्मिक समुद्रपातकी अपेक्षा इनका स्वयं सब लोकमें पाया जाता है इसलिये इनका  
 सब लोक स्वयं बतलाया है । तथा इनकी अज्ञपस्य स्थितिबाह्योका स्वयं सब लोक है यह स्पष्ट है।  
 है । बीरसेम स्वामीने यहाँ एक ऐसे पाठका उल्लेख किया है जिसके अनुसार तिर्यैचोंमें एक  
 प्रकृतियोंकी अज्ञपस्य स्थितिबाह्योका क्षेत्र और स्वयं लोकके संस्थातमें माग प्रमाण प्राप्त होता है ।  
 अब यदि इस पाठके अनुसार विचार करते हैं तो पता प्रतीत होता है कि मारणात्मिक समुद्रपातके  
 समान अज्ञपस्य स्थिति नहीं होती होगी । साथ नाकषाय, अनन्तानुसन्धी कृतक और सम्पत्त्वकी  
 जपस्य स्थिति पकेन्द्रिय तिर्यैचोंके होती है । यद्यपि पकेन्द्रिय तिर्यैचोंका मारणात्मिक समुद्रपात  
 और जपपाद परकी अपेक्षा स्वयं सब लोक है तो भी एक प्रकृतियोंकी अज्ञपस्य स्थितिके समय वे पर  
 सम्मत्त नहीं इसलिये इनका स्वयं क्षेत्रके समान बन जाता है । यद्यपि सम्पत्त्व प्रकृतियोंकी अज्ञपस्य  
 स्थितिके समय जपपाद पर सम्मत्त है तो भी इससे स्वयं अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि ऐसे जीव  
 संस्थात ही होते हैं । तथा इनकी अज्ञपस्य स्थितिबाह्योका स्वयं क्षेत्रके समान है इसका यह  
 अभिप्राय है कि जिस प्रकार इनका क्षेत्र सब लोक है वही प्रकार स्वयं भी सब लोक है । किन्तु  
 सम्पत्त्वकी अज्ञपस्य स्थितिबाह्योका स्वयं लोकके असंस्थातमें माग और सब लोक बानों प्रकारका  
 प्राप्त होता है । इसकी अनुकृष्ट स्थितिबाह्योका स्वयं भी ऐसा ही है । अतः सम्पत्त्वकी अज्ञपस्य  
 स्थितिबाह्योका स्वयं अनुकृष्टके समान कहा है । इसी प्रकार सम्पत्तिमिच्छात्वकी अज्ञपस्य और अज्ञपस्य  
 स्थितिबाह्योका स्वयं अनुकृष्टके समान बटित कर शून्य चाहिये । कपोतलेखापातके और  
 असंयतसम्पत्तिवर्णोंके यह व्यवस्था बन जाती है अतः इनका अन्तको एक प्रमाण कहा है । किन्तु  
 असंयतोंके द्वायिकसम्पत्तिवर्णकी प्राप्ति समय मिच्छात्वकी भी करणा होती है और इत्यन्त यहाँ  
 मिच्छात्वकी ओपरूप अज्ञपस्य स्थिति बन जाती है । अब यदि ऐसे जीवोंके स्वयंका विचार किया  
 जाता है तो यह सम्पत्त्वकी अज्ञपस्य स्थितिबाह्योके समान लोकके असंस्थातमें माग प्रमाण ही प्राप्त  
 होता है, इसलिये असंयतोंमें मिच्छात्वकी अज्ञपस्य स्थितिबाह्योका स्वयं सम्पत्त्वके समान बतलाया  
 है । कृष्ण और नीला क्षेत्रवाले भी सब प्रकृतियोंकी अज्ञपस्य और अज्ञपस्य स्थितिबाह्योका स्वयं  
 तिर्यैचोंके समान बन जाता है । किन्तु इन बानों कृतियोंमें कृतकृत्यवत्क सम्पत्तिवर्णोंकी स्थिति न



सोग० असंस्वे० मागो अह-णव चोह० । सम्मामि० जह० अज० सोग० असंस्वे०-  
 मागो अह-णव चोह० । अर्णतायु० अज० अह० सोग० असंस्वे० मागो अह चोह० ।  
 अज० सोग० असंस्वे० मागो अह-णव चोह० । एवं सोहमीसाण० ।

§ ६४० भवण०-वाणवैतर०-मोदिसि० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० जह०  
 सोग० असंस्वे० मागो । सम्बेसिमज्ज० सम्म०-सम्मामि० अ० अज० सोगस्त  
 असंस्वे० मागो अह-णव चोह० । अर्णतायु० अह० अह-णव चोह० ।  
 सणककुमारादि जाव सहस्सार चि मिच्छ०-सम्म० वारसक०-णवणोक० अह० सोग०  
 असंस्वे० मागो । सम्बेसिमज्ज० सम्मामि०-अर्णतायु० अह० अज० सोग० असंस्वे० मागो  
 अह चोहस० । माणदादि अणुदा चि मिच्छ०-सम्म०-वारसक०-णवणोक० अह०  
 सोग० असंस्वे० मागो । सम्बेसिमज्ज० सम्मामि०-अर्णतायु० अह० अज० सोग०  
 असंस्वे० मागो अह चोह० । उवरि सेचर्मगो । एव वेतभियमित्स०-आहार-आहारमि०

विमच्छिवाले बीबोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके  
 असंख्यातर्षे माग और वसनालीके चौरह मागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ माग क्षेत्र  
 स्पष्ट किया है । सम्बन्धिमिच्छात्की अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके  
 असंख्यातर्षे माग और वसनालीके चौरह मागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ माग प्रमाय  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है । अनन्तालुबन्धी वतुच्छकी अपन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके  
 असंख्यातर्षे माग और वसनालीके चौरह मागोंमेंसे कुछ कम आठ माग प्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया  
 है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके असंख्यातर्षे माग और वसनालीके चौरह  
 मागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ माग प्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार  
 सौवर्म और ऐश्राम कल्पके देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ६४० मन्त्रवासी अन्तर और व्योतिपी देवोंमें मिध्यात्व बाह्य कयाव और नौ  
 नोक्यायोंकी अपन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके असंख्यातर्षे माग क्षेत्रका स्पष्ट किया है ।  
 तथा सभी प्रकृतियोंकी अत्रापन्य तथा सम्बन्धत्त्व और सम्बन्धिमिच्छात्की अपन्य और अत्रापन्य  
 स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके असंख्यातर्षे माग, वसनालीके चौरह मागोंमेंसे कुछ कम साढ़े  
 तीन कुछ कम आठ और कुछ कम नौ माग प्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया है । अनन्तालुबन्धी  
 वतुच्छकी अपन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने वसनालीके चौरह मागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन  
 और कुछ कम आठ माग प्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया है । सान्त्वयित्वात्के लेखर घटकार कल्प तकके  
 देवोंमें मिध्यात्व सम्बन्धत्त्व, बाह्य कयाव और नौ नोक्यायोंकी अपन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने  
 साकके असंख्यातर्षे माग क्षेत्रका स्पष्ट किया है । तथा सभी प्रकृतियोंकी अत्रापन्य और सम्बन्धिमि  
 ध्यात्व तथा अनन्तालुबन्धी वतुच्छकी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके  
 असंख्यातर्षे माग और वसनालीके चौरह मागोंमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट  
 किया है । आन्तर्षे लेखर अत्रुत्त कल्पतकके देवोंमें मिध्यात्व, सम्बन्धत्त्व, बाह्य कयाव और नौ  
 नोक्यायोंकी अपन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके असंख्यातर्षे मागप्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया  
 है । तथा एक एक प्रकृतियोंकी अत्रापन्य और सम्बन्धिमिध्यात्व तथा अनन्तालुबन्धी वतुच्छकी  
 अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने साकके असंख्यातर्षे माग और वसनालीके  
 चौरह मागोंमेंसे कुछ कम अह मागप्रमाय क्षेत्रका स्पष्ट किया है । इसका आगेके देवोंमें स्पष्ट



§ ६३८. पंचिदियतिरिक्खतिए सत्तावीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे० भागो । अज० लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । णवरि जोणिणीसु सम्म० सम्मामि० भंगो । पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज० जोणिणीभंगो । मणुसतिए पंचि० तिरिक्खभंगो ।

§ ६३९. देवेषु मिच्छ०-सम्म०-वारसक०-णवणोक० जह० खेत्तं, अज०

होनेसे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण नहीं प्राप्त होती और इसलिये सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो स्पर्श पूर्वमें बतलाया है वही यहा सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका प्राप्त होता है । यही कारण है कि उक्त दोनों लेश्याओंमें सम्यक्त्वके भगको सम्यग्मिध्यात्वके समान बतलाया है । औदारिकमिश्र आदि कुछ और मार्गणाए हैं जिनमें उक्त व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है । किन्तु इन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना नहीं होती, अतः इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श मिध्यात्वके समान बतलाया है । अभव्य मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृति नहीं होती, अतः इनका निषेध किया है । औदारिकमिश्रमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति सम्भव है अतः इसमें सम्यक्त्वका भग सामान्य तिर्यचोंके समान बतलाया है ।

§ ६३८ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यचोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तिर्यच योनिमती जीवोंके समान भग है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जो स्वामी बतलाये हैं उन्हें देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है । अन्यत्र पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकका स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है । अब यदि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शका विचार करते हैं तो वह उतना बन जाता है, इसलिये यहा इनके स्पर्शको उक्त प्रमाण बतलाया है । किन्तु उक्त तिर्यचोंमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थिति सब अवस्थाओंमें सम्भव है और इसलिये उक्त तिर्यचोंका जो स्पर्श बतलाया है वह सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी बन जाता है यही कारण है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है । किन्तु योनिमती तिर्यचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी जो जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामी बतलाये हैं उसे देखते हुए इनका स्पर्श योनिमतियोंके समान बन जाता है, इसलिये इनके भंगको योनिमतियोंके समान कहा है । मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान कहनेका भी यही तात्पर्य है ।

§ ६३९. देवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-

सोग० असंखे० भागो अद्-णव घो० । सम्मामि० छह० अम० सोग० असंखे०  
भागो अद्-णव घो० । अर्णताणु० चरक० अह० सोग० असंखे० भागो अद् घो० ।  
अम० सोग० असंखे० भागो अद्-णव घो० । एवं सोहम्मीसाण० ।

१ ६४० मषण० माणवेंतर०-भोदिसि० मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० अह०  
सोग० असंखे० भागो । सम्भेसिमअ० सम्म०-सम्मामि० अ० अम० सोगस्त  
असंखे० भागो अद्घुद्ध-अद्-णव घो० । अर्णताणु० ४ अह० अद्घुद्ध-अद् घो० ।  
सणककुमारदि जाव सहस्सार सि मिच्छ०-सम्म० बारसक०-णवणोक० अह० सोग०  
असंखे० भागो । सम्भेसिमअ० सम्मामि० अर्णताणु० अह० अज० सोग० असंखे० भागो  
अद् घो० । माणदादि अद्घुद्धा सि मिच्छ०-सम्म०-बारसक०-णवणोक० अह०  
सोग० असंखे० भागो । सम्भेसिमअ० सम्मामि० अर्णताणु० ४ अह० अम० सोग०  
असंखे० भागो अ घो० । उपरि खेचर्मगो । एव वेठधियमिस्त० आहार-आहारमि०

विमच्छिवाले बीबोका स्वय क्षेत्रके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके  
असंख्यातबे भाग और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । सम्मामिच्छात्वकी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके  
असंख्यातबे भाग और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाय  
क्षेत्रका स्वयं किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके  
असंख्यातबे भाग और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाय क्षेत्रका स्वयं किया  
है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके असंख्यातबे भाग और प्रसनालीके चौदह  
भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाय क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार  
सौधम और येशान कस्के देबोमें जानना चाहिये ।

१ ६४० मषनवासी म्पन्तर और ज्योतिषी देबोमें मिच्छात्व बाह्य कयाय और नौ  
नोक्यायोकी अपन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके असंख्यातबे भाग क्षेत्रका स्वयं किया है ।  
तथा समी प्रहृतियोकी अत्रापन्य तथा सम्मक्त्व और सम्मामिच्छात्वकी अपन्य और अत्रापन्य  
स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके असंख्यातबे भाग, प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े  
तीन कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाय क्षेत्रका स्वयं किया है । अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी अपन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन  
और कुछ कम आठ भाग प्रमाय क्षेत्रका स्वयं किया है । सानकुमारसे लेकर सहस्वार कन्य तकके  
देबोमें मिच्छात्व सम्मक्त्व, बाह्य कयाय और नौ नोक्यायोकी अपन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने  
लोके असंख्यातबे भाग क्षेत्रका स्वयं किया है । तथा समी प्रहृतियोकी अत्रापन्य और सम्मामि-  
च्छात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके  
असंख्यातबे भाग और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाय क्षेत्रका स्वयं  
किया है । आमतपे सेइ अत्रापन्य कन्यतकके देबोमें मिच्छात्व, सम्मक्त्व, बाह्य कयाय और नौ  
नोक्यायोकी अपन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके असंख्यातबे भागप्रमाय क्षेत्रका स्वयं किया  
है । तथा एक सब प्रहृतियोकी अत्रापन्य और सम्मामिच्छात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिम्बिवाले बीबोने लोके असंख्यातबे भाग और प्रसनालीके  
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम अह भागप्रमाय क्षेत्रका स्वयं किया है । इसके आगेके देबोमें एक

अवगद०-अकसाय०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्त्वाद-  
सजदे त्ति ।

§ ६४१, एहंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोऊ० ज० अज० मव्वलोगो ।  
सम्मत्त-सग्गामि० ज० अज० अणुककस्सभगो । एव पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि-  
अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्त।पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-  
सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ-  
पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-वादरवणप्फदि०-

समान भग हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
अपगतवेदवाले, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय, नौ नोकपाय और सम्यक्त्वकी जघन्य  
स्थिति किसी खास अवस्थामें ही प्राप्त होती है और सबके सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य  
स्थितिवालोंने का स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है और इसलिये इसे क्षेत्रके समान बतलाया है ।  
परन्तु अजघन्य स्थितिके लिये ऐसा कोई प्रतिघन्य नहीं है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य  
स्थितिवालोंने वही स्पर्श प्राप्त हो जाता है जो सामान्य देवोंका बतलाया है । यही बात सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंने लिये समझ लेना चाहिये । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
जघन्य स्थिति विसयोजनके समय होती है पर ऐसे समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्रघात  
सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य स्थितिवालोंने का स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण और कुछ  
कम आठ बटे चौदह राजु बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंने का स्पर्श लोकके असख्यातवें  
भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है । यह  
सामान्य देवोंमें स्पर्श हुआ । इसी प्रकार देवोंके प्रत्येक भेदमें अपनी अपनी विशेषताको जान कर  
स्पर्श जान लेना चाहिये । कहा कितना स्पर्श है इसका निर्देश मूलमें किया ही है । कोई विशेषता  
न होनेसे उसका खुलासा नहीं किया है । हा भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं  
उत्पन्न होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंने का स्पर्श सम्यग्मिथ्यात्वके  
समान बतलाया है । यहा 'एवं' कह कर जो वैक्रियिकमिश्र आदिमें स्पर्शका निर्देश किया है सो  
उसका यह मतलब है कि जिस प्रकार नौ प्रवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है उसी प्रकार इन  
वैक्रियिकमिश्र आदि मागोणाओंमें अपने अपने क्षेत्रके समान स्पर्श जानना चाहिये ।

§ ६४१ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य  
स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शका भंग अनुकृष्टके समान है । इसी प्रकार  
पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म-  
पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजल-  
कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-  
कायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक-  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पति-

बादरवणप्फदिपञ्चत्तापञ्चत्त—सुहुमधणप्फदि—सुहुमधणप्फदिपञ्चत्तापञ्चत्त—कम्मइय०—  
 मजाहारि सि । खवरि कम्मइय० मजाहारीसु सम्मत्तस्स तिरिक्खीर्षं । सम्भविगर्लिय  
 प्पिंदियअपञ्च ० तसअपञ्च ० पच्चिदियतिरिक्खअपञ्चत्तमंगो । बादरपुड्ढपिपञ्च०  
 बादरआठपञ्च०—बादरतेजपञ्च०—बादरपाठपञ्च०—बादरवणप्फदिपञ्चत्तयसरीरपञ्च०—  
 तसअपञ्चत्तमंगो । गवरि बादरपाठपञ्च० इत्थीसपय० व० मज० सोग० संस० भागो  
 सम्भसोगो वा ।

‡ ६४२ पंचिंदिय-पंचि०पञ्च० ठेवीसपयवी० न० स्तेत्तं, अज० अणुत्त० मंगो ।  
 सम्मामि० आर्षं । अर्णताणु० चउत्त० न० देपोर्षं । अज० अणुत्त० मंगो । एवं तस

आयिक प्रत्येक क्षरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर अपर्याप्त वनस्पतिकायिक, सभी  
 निगोह, बादर वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,  
 सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, काम्य  
 काययोगी और अनशरक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विद्येता है कि काम्यकाययोगी  
 और अनशरकोंमें सम्यक्त्वका मंग सामान्य तिर्यक्के समान है । सब विक्लेश्मिय पंचेन्द्रिय  
 अपर्याप्त और व्रस अपर्याप्त जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोंके समान मंग है । बादर पृथिवी-  
 कायिक पर्याप्त, बादर अक्षकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त बादर वायुकायिक पर्याप्त  
 और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर पर्याप्त जीवोंमें व्रस अपर्याप्त जीवोंके समान मंग है ।  
 किन्तु इतनी विद्येता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें इच्छीस प्रकृतियोंकी अचन्य और  
 अज्ञान्य स्वित्तिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके संख्यातर्षे भाग और सब लोक प्रमाय केवला  
 स्पष्ट किया है ।

विद्येपार्श्व—पंचेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह क्वाय और नौ मोक्षपार्श्वकी अचन्य और  
 अज्ञान्य स्वित्तिवाले जीव सबैत्र पाये जाते हैं इसलिये इतना स्पष्ट सब लोक बतलाया है ।  
 सम्यक्त्व और सम्भमिध्यात्वकी लक्ष्य और अज्ञान्य स्वित्तिवालोंका स्पष्ट अनुकूलके समान  
 है सो इतना फुलासा जिस प्रकार पहले कर भाये हैं उसी प्रकार वहाँ भी कर लेना चाहिये ।  
 पृथिवीकायिक आदि मागेलालोंमें पंचेन्द्रियोंके समान स्पष्ट वन जाता है, इसलिये उनके क्वत्तके  
 पंचेन्द्रियोंके समान कहा है । किन्तु काम्यकाययोगी और अनशरकोंमें क्लेश्मकेरक सम्भट्टि जीव  
 भी लक्ष्य जाते हैं अतः इनमें सम्यक्त्वका स्पष्ट सामान्य तिर्यक्के समान वन जाता है । पंचेन्द्रिय  
 तिर्यक् सम्भपार्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी अचन्य और अज्ञान्य स्वित्तिवालोंके कारण स्पष्टमें जो  
 विद्येता प्राप्त होती है वही विद्येता सब विक्लेश्मिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और व्रस अपर्याप्त  
 जीवोंमें भी प्राप्त होती है इसलिये वहाँ इनके स्पष्टके पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोंके समान  
 बतलाया है । इसी प्रकार बादर पृथिवी पर्याप्त आदिमें सब प्रकृतियोंके अचन्य और अज्ञान्य  
 स्वित्तिवालोंके स्पष्टके व्रस अपर्याप्तकोंके समान बतलायेका अचन्य वन लेना चाहिये । किन्तु बादर  
 वायुकायिक पर्याप्तकोंका स्पष्ट लोकके संख्यातर्षे भागप्रमाय व सब लोक होमसे इनमें इच्छीस  
 प्रकृतियोंकी अचन्य और अज्ञान्य स्वित्तिवालोंका स्पष्ट लक्ष प्रमाय बतलाया है ।

‡ ६४२ पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंमें व्रस प्रकृतियोंकी अचन्य (स्वित्तिविभक्तिवाले  
 जीवोंका स्पष्ट केवले समान है । तथा अज्ञान्य स्वित्तिविभक्तिवाले मंग अनुकूलके समान है ।  
 सम्भमिध्यात्वका मंग जीवोंके समान है । अन्तर्गामुक्तीवत्तुत्तवी अचन्य स्वित्तिविभक्तिवाले  
 जीवोंका स्पष्ट सामान्य केवले समान है । तथा अज्ञान्य स्वित्तिवाले मंग अनुकूलके समान है ।

तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि ति ।

§ ६४३ वेउन्विय० वात्रीमपयडी० ज० खेत्तं, अज० अणुक्क० भंगो । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० अणुक्क० भंगो । अणंताणु० चउक्क० ज० अट्ट चो०, अज० अणुक्क० भंगो । ओरालिय०-णवुंस० ओघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० ज० तिरिक्खोयं ।

§ ६४४ विहंग० छ्वीसं पयडी० ज० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क० भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० भंगो । आभिणि०-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदय० सव्वपय० जह० पच्चिदियभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । अज० अणुक्क० भंगो । सजदासंजद० सव्वपयडी० जह० खेत्तभंगो । अजह० अणुक्क० भंगो ।

इसी प्रकार ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, खाँधेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और सद्गी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोमे तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति क्षणिकके समय प्राप्त होती है, इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्रके समान प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहा स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा है । अजघन्य स्थिति सर्वत्र सम्भव है अतः इनका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो ओष स्पर्श बतलाया है वह उक्त मार्गणाओंमें भी सम्भव है, अतः इनके स्पर्शको ओषके समान कहा है । उक्त मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिवालोंमें देवोंकी प्रमुखता है अतः इनके स्पर्शको सामान्य देवोंके समान बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बन जाता है, अतः इसे अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । ब्रह्मकारिक आदि मार्गणाओंमें उक्त व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है ।

§ ६४३ वैक्रियककाययोगियोंमें बाईस प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका भग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंने ब्रह्मनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । औदारिककाययोगी और नपु सकवेदवालोंमें ओषके समान है । किन्तु इतना विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

§ ६४४ विभंगज्ञानियोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग अनुत्कृष्टके समान है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, श्रवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्ट और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । सयतासंयतोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है ।



अणुकस्सट्टिदिसंतं सव्वजीवेसु उवगएसु तिहुवणासेसजीवाणमेगसमयं चेव उक्कस्सट्टिदिदं सणादो । उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एकस्स जीवस्स जदि उक्कस्सट्टिदिकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदि तो आवलियाए असंखे० भागमेत्तजीवाणं किं लभामो त्ति फल-गुणिदिच्छाए पमाणेणोवट्टिदाए असंखेज्जावलियमेत्तुक्कस्सट्टिदिसंतकालुवलंभादो । अणुकस्सट्टिदिसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा । कुदो ? तिसु वि कालेसु अणुकस्सट्टिदिसंतकम्मियजीवाणं संभवादो ।

❀ एवचरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदी जहणणेण एगसमअओ ।

§ ६४८. कुदो ? उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मियमिच्छादिट्टिणा मोहट्ठावीससंतकम्मिएण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु संकामिदाए एगसमयं चेव उक्कस्सट्टिदिकालुवलंभादो । उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मिय-मिच्छादिट्टी सम्मामिच्छत्तं किण्ण णीदो ? ण, तत्थ दंसणमोहणीयस्स संकमाभावेण सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदीए करणुवायाभावादो ।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

प्राप्त होने पर तीन लोकके सब जीवोंके एक समय तक ही उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । तथा उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि एक जीवके उत्कृष्ट स्थितिका काल यदि अन्तमुहूर्त है तो आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके कितना काल प्राप्त होगा इस प्रकार त्रैाशिक करके इच्छाराशिको फलराशिसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणराशिका भाग देने पर असंख्यात आवलिप्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व पाया जाता है । अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है, क्योंकि तीनों ही कालोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका पाया जाना सभव है ।

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

§ ६४८. शंका—इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—जिसके मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसा कोई एक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि-जीव वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वमें सक्रमण कर देता है, अतः उसके एक समय काल तक उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अतः इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्मिध्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयका सक्रमण नहीं होनेसे वहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है ।

\* तथा उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६४६ कदो ? उक्कस्सद्विदिसुतकम्मियमिच्छाईदीण गिरतरं वेदयसम्मत्तं पडियज्जतागमावसियाए असन्नेज्जदिभागमेत्तुपक्कमणकाहुपत्तंमदंसणादो । एवं भाइसहा इरियसुत्तपरुषणं करिय पदेण च व सुत्तणं देसामासिएण सुचिदत्यागमुत्तारणाइरिय परुषिदवक्कणं मणिस्सामो ।

§ ६५० कालो दुषिहो—जहण्णओ उक्कस्सओ पेदि । तत्त उक्कस्सए पयदं । दुषिहा णिदेसा—आपेण भादंसण य । तत्त ओयण इन्नीसपयडी० उक्क० कव० ? अ० एगसमओ, उक्क० पस्सिओ० मसंस० भागो । मणुक्क० सम्बद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० के० ? नइ० एगसमओ, उक्क० आसि० असस० भागा । मणुक्क० फ० ? सम्बद्धा । एवं सम्बणिरय तिरिक्क पंचि० तिरि० तिय-देव० मणणादि मान सहस्सार० पंचिदिय-पंचि० पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचवधि० कापमोगि०-भोरासि०-वउ म्भि० तिण्णिपद-अचारिकसाय-मदि०-सुदअण्णाण-विहंग-मसंसद० चक्खु०-मववसु० पचले० मससि०-ममससि०-मिच्छादिहि०-मणि० आहारि चि । गपरि ममव० सम्म०-सम्मामि० णत्थि ।

§ ६४८ शौक्का—उत्त वानो प्रहृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अत्र आश्लीका अमेक्यातर्था भाग क्यौ है ?

समाधान—यदि उत्कृष्ट स्थितिसरङ्गमात्र मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर वरकसम्बन्धको प्राप्त हो तो वेदक सम्बन्धको प्राप्त होनका अत्र आश्लिके अमेक्यातर्पे भागप्रमाण ही देया जाता है । अतः उक्त शौक्के प्रहृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ही आश्लीका अमेक्यातर्था भाग प्राप्त होता है । इस प्रकार यतिक्रम आचार्यक सूत्रत्र कथन करके हम वेदात्मक रूपमें इसी सूत्रके द्वारा सूचित द्रुप अर्थका उच्चारणार्थने का व्याख्यान किया है उसे कहते हैं—

§ ६४० काल शो प्रकरत्र ह—इपम्य आर वत्तु । प्रहृतमें उत्कृष्टमे प्रयाजन है । इसकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकरत्र है—आपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे आपकी अपक्षा दृष्टीस प्रहृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिपाल जीवोंका अंत क्रिया है ? अपम्य एक समय और उत्कृष्ट पस्यापमक असमयातर्पे भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिपाले जीवोंका काल सक्ता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिपाल जीवोंका काल क्षितना है ? अपम्य एक समय और उत्कृष्ट आश्लिक असेन्यातर्पे भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिपाल जीवोंका काल क्रिया है ? सक्ता है । इसी प्रकार सब नारकी, ममान्य नियेच पंचन्द्रिय तियथ, पंचन्द्रिय तियेच पयात्र पंचन्द्रिय तियेच यानिमठी, सामान्य इव भवनवामियेम इकर मरुत्तार कल्प तर्क इव पंचन्द्रिय पंचन्द्रिय पयात्र, अस्त, अस्त पयात्र, पाया मनायागी पौषो वपनयागी काययागी औदारिकप्रयायागी, वैश्विकप्रयायागी तीनों वरवान, पाये कयापधान मस्यजानी धुगजानी, विमंगजानी, अमंशन वसुदेनवान अचसुरानपासे वृष्णादि पांच सरयावान, मय्य अमम्य मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चारिय । किन्तु इनती विजना है कि अमन्त्रोंमें सग्वहत्त्व आर सम्यग्मिथ्यात्व य श प्रहृतियां नही है ।

विशुपाय—आपसं मान्य जीवोंकी अपक्षा सब प्रहृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट



§ ६५१. पंचि०तिरिक्ख०अपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क० के० ? जह० एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं सव्वेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्सकाय-जोगि त्ति । णवरि जत्थ देवाणमुववादो तत्थ णवणोकसाय० उक्क० ओघभंगो ।

स्थितियोंके कालका खुलासा चूणिसूत्रोंकी टीका करते हुए स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है अतः यहा उसे पुनः नहीं दुहराया गया है । इसी प्रकार सब नारकी आदि असख्यात और अनन्त सख्यावाली कुछ ऐसी मार्गाणाए हैं जिनमें ओघके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल बन जाता है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः उनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन नहीं करना चाहिये ।

§ ६५१ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सवदा है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाचों स्थावर काय तथा उनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहा देवोंका उपपाद है वहा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल आघके समान है ।

**विशेषार्थ**—पहले ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बतला आये हैं । अब यदि आघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले ये जीव पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे उत्पन्न हों तो उनके भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय ही पाया जायगा, क्योंकि द्वितीयादि समयोंमें ओघ उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका अभाव हो जानेसे पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सम्भव नहीं, अतः पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है जो इस प्रकारसे प्राप्त होता है—ओघसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालका कथन करते हुए बतलाया है कि नाना जीव निरन्तर यदि उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करते रहें तो आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होंगे तथा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अब यदि जीवोंकी सख्यासे कालके प्रमाणको गुणित कर दिया जाता है तो उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । किन्तु ऐसे जीवोंको यदि पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें क्रमसे उत्पन्न कराया जाय तो उनमें एक एक अन्तर्मुहूर्तके बाद ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होगी, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त तक उत्कृष्ट स्थितिको वाधकर जो जीव पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकालके अन्तिम समयमे वधी हुई स्थिति ही उत्कृष्ट हो सकती है इसके अतिरिक्त और सब स्थितिया अनुत्कृष्ट ही जायगी, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके अन्तिम समयमे वधी हुई स्थितिके कालसे उनका काल एक समय, दो समय आदि रूपसे और कम हो जाता है, अतः पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें निरन्तर ऐसे आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये जिन्होंने क्रमसे एक एक समय तक निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया हो । इस प्रकार

§ ६५२ मणुसतिय० ऋषीसपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।  
 अणुक्क० सञ्जदा । सम्म०-सम्माभि० उक्क० ज० [एगस०], उक्क० ससेजा समया ।  
 अणुक्क० सम्बदा । मणुसअपझ० सञ्जपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क०  
 आबसि० असंसे० मागो । मणुक्क० ज० सुहामवगइणं समयुणं, उक्क० पत्तिदो०  
 असंसे० मागो । णपरि समत्त-सम्माभि० मणुक्क० ज० एगस । एवं ववञ्चियमिस्स० ।  
 णपरि ऋषीसपयडी० मणुक्क० ज० अंतोमु० । णवणोक्क० उक्क० ओपं । एवमव

पक्षेन्द्रिय तिर्यप लक्ष्म्यपयातकोमं उच्छ्रय स्थितिका काल आबलीक असंख्यातबे भागप्रमाण ही  
 प्राप्त होता है अतः इनके उच्छ्रय स्थितिका उच्छ्रय काल आबलीके असंख्यातबे भागप्रमाण क्या ।  
 तथा इनमें अनुच्छ्रय स्थितिका फल सर्वथा है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि यह निरन्तर मार्गवा ह  
 अतः इसमें सर्वथा अनुच्छ्रय स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । सब पक्षेन्द्रिय आदि और जितनी  
 मार्गकार्य गिनती है उनमें भी यह व्यवस्था वन जाती है अतः इनके सब प्रकृतियोंके उच्छ्रय और  
 अनुच्छ्रय स्थितिके लक्ष्य और उच्छ्रय कालका पक्षेन्द्रिय तिर्यप लक्ष्म्यपर्याप्तकोमं समान क्या ।  
 किन्तु जिन मार्गवाओंमें देव उत्पन्न हो सछते हैं उनमें नौ नाकपायोंकी उच्छ्रय स्थितिक उच्छ्रय  
 कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि उच्छ्रय स्थितिका बन्ध करमक दूसरे समयमें ही मर कर  
 देव पक्षेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सछते हैं और नौ नाकपायोंकी उच्छ्रय स्थिति संक्रमणसे प्राप्त होती ह  
 जो बन्धाकालीके बाद ही होता है । अब यदि एक एक आबलीके अन्तरालसे एक एक क्रमसे  
 आबलीक असंख्यातबे भागप्रमाण देव सोलह कपायोंकी उच्छ्रय स्थितिका एक एक आबलि तक  
 निरन्तर बन्ध करे और उच्छ्रय स्थिति बन्धके दूसरे समयमें वे मर कर उसी क्रमसे पक्षेन्द्रियोंमें  
 उत्पन्न होते जायें ता पक्षेन्द्रियोंमें नौ नाकपायोंका उच्छ्रय काल पश्यक असंख्यातबे भागप्रमाण  
 प्राप्त होता है, क्योंकि वसं वनोंमें प्रत्येक एक एक आबलितक नौ नाकपायोंका उच्छ्रय स्थिति  
 पाई जायगी । जिन मार्गवाओंमें नौ नाकपायोंकी उच्छ्रय स्थितिका यह काल सम्भव है वे  
 मातकार्य ये हैं—पक्षेन्द्रिय, वाटर पक्षेन्द्रिय, वाटर पक्षेन्द्रिय पर्याप्त, पृथ्वीवायुयिक, वाटर  
 पृथ्वीवायुयिक, वाटर पृथ्वीवायुयिक पयात, अन्नवायुयिक वाटर अन्नवायुयिक, वाटर अन्नवायुयिक  
 पर्याप्त, प्रत्येक वनस्पतिक्रायिक, प्रत्येक वनस्पतिक्रायिक पर्याप्त । किन्तु इतना विशय जानना चाहिये  
 कि ओपमें अन्तमुहुतेका आबलीक असंख्यातबे भागसे गुणा करके पश्यक असंख्यातबे भाग  
 फल प्राप्त किया गया था पर वहाँ आबलीका आबलीक असंख्यातबे भागसे गुणा करके पश्यक  
 असंख्यातबे भाग काल प्राप्त करना चाहिये ।

§ ६५३ सामान्य पर्याप्त और मनुष्यिनी इन तीन प्रकारक मनुष्योंमें इन्हींस प्रकृतियोंकी  
 उच्छ्रय स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका लक्ष्य अत एक समय और उच्छ्रय काल अन्तमुहुते ह । तथा  
 अनुच्छ्रय स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका काल मरदा ह । सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्की उच्छ्रयस्थिति  
 बिम्बित्वाले जीवोंका लक्ष्यकाल एक समय और उच्छ्रय काल मंत्र्यान समय ह । तथा अनुच्छ्रय स्थिति  
 बिम्बित्वाले जीवोंका काल मरदा ह । मनुष्य अपयप्रार्थोमें सब प्रकृतियोंकी उच्छ्रय स्थितिबिम्बित्वाले  
 जीवोंका लक्ष्य काल एक समय और उच्छ्रय काल आबलीक असंख्यातबे भागप्रमाण है । तथा  
 अनुच्छ्रय स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका लक्ष्य काल एक समय कम सुरामवपयय प्रमाण और उच्छ्रय  
 काल पस्यापमक असंख्यातबे भागप्रमाण ह । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्की  
 अनुच्छ्रय स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका लक्ष्य काल एक समय ह । इन्हीं प्रकार वैदिक-  
 मिथकप्रयोगी जीवोंके ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी विचारना है कि इन्हींस प्रकृतियोंकी अनुच्छ्रय

सम०-सामण०-मम्पामि० । णवरि णणोऊ० उरऊ० ओयं णत्थि । मम्म०-मम्पामि०  
अणऊ० जह० अंतोमु० । सामण० मव्वपय० थणु० जह० एयम०, उरऊ० तं चेव ।

स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा नौ नोकपायोका उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिकाले जीवोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सामादनसम्यग्दृष्टि  
और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नौ नोकपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका काल ओघके समान नहीं है । सम्यात्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सामादनसम्यग्दृष्टियोंमें  
सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल  
वही पूर्वोक्त है ।

**विशेषार्थ**—जब कि ओघमें छद्मीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
है तो मनुष्यत्रिकमें इसमें अधिक कैसे हो सकता है । पर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि ओघ  
उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होनेवाले सामान्य मनुष्योंका प्रमाण मख्यात है तथा मनुष्य पर्याप्त और  
मनुष्यनियोंका प्रमाण तो सख्यात है ही । अब यदि एक समयमें प्राप्त होनेवाली मनुष्योंके उत्कृष्ट  
स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त मान लें और एक के बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तररूपमें संख्यात  
मनुष्योंके उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त कराई जाय तो भी उस सब कालका जो अन्तर्मुहूर्त ही होगा । यही  
कारण है कि मनुष्यत्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा एक जीवकी अपेक्षा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बनना प्राये  
है । अब यदि सख्यात जीव लगातार उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हों तो उनके कालका  
जोड़ सख्यात समय ही होगा, अतः मनुष्यत्रिकके उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
सख्यात समय कहा । इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय स्पष्ट ही है ।  
तथा इनके सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल मर्दा है यह भी स्पष्ट है, क्योंकि ये  
निरन्तर मार्गणाएँ हैं इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव मर्दा पावे  
जाते हैं । लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात है और उनमें आदेश उत्कृष्ट  
स्थिति होनी है, अतः उनके पचेन्द्रिय त्रिबंध लक्ष्यपर्याप्तकोंके समान सब प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आपलिके असख्यातवें भागप्रमाण बन  
जाता है । तथा यह मार्गणा सान्तर है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम  
खुदाभवप्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है । जघन्य  
कालमेंसे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षासे किया है । तथा उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । वैक्यिकमिश्रकाययोग  
मार्गणा सान्तर है, अतः इसमें भी लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंके समान सब कर्मोंकी जघन्य और उत्कृष्ट  
स्थितिका काल जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इस मार्गणाका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त  
है अतः इसमें छद्मीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होगा । तथा  
इसमें प्रत्येक जीवके नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त हो  
सकता है, अतः नाना जीवों की अपेक्षा यहाँ भी नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
ओघके समान पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । इसका विशेष खुलासा इसी  
प्रकरणमें एकेन्द्रियोंकी प्ररूपणाके समय कर आये हैं अतः वहाँसे जान लेना चाहिये । उपशम-  
सम्यग्दृष्टि, सामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये तीन मार्गणाएँ भी सान्तर हैं, अतः इनमें  
भी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल वैक्यिकमिश्रकाययोगके समान कहा ।

१ ६५३ भाणदादि जाव उचरिभगवज्जो चि सम्बपयडी० उह० ज० एगस०,  
 उह० संलेखा समय। अणुह० सम्बद्धा। एममणुदिसादि जाव सम्बद्धसिद्धि चि।  
 एव स्वइयसम्मादिहीणं। आहार० सम्बपय० उह० ज० एगसमभो, उह० संलेखा  
 समय। अणुह० ज० एगसमभो, उह० अंतोसु०। एवमवगद०-भकसा०-सुहुम  
 सांपराय०-महाकत्वादसंखे चि। एवमाहारमिस्त०। जवरि अणुह० ज० अंतोसु०।  
 कम्मइय० पूरुदियभंगो। जवरि सम्मच०सम्मामि० अणुह० सचणोक० उह० ज०  
 एमसमभो, उह० आयसि० असंख०मागो। एवमणाहारीणं। आभिणि०-मुद०  
 भोहि० सम्बपयडी० उह० ज० एगसमभो, उह० आयसि० असंख०भागो।  
 मणुह० सम्बद्धा। एवं संनदासंमद० भोहिदंस०-सुह०-सम्मादिहि०-पेइय०दिदि  
 चि। मणपक० सम्बपयडी० सम्बद्धमंगो। एवं संजद०-सामाइय-हेदो०-परिहार

किन्तु इसका कुछ अपवाद है। बात यह है कि इन तीनों मार्गों में एक बीबीके अपेक्षा बहुत  
 स्थितिका जपम्य और बहुत कम एक समय है, अतः यहाँ इनके बहुत स्थितिका बहुत कम  
 बीबीके समान न प्राप्त होकर आबलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्ता होगा। और इन  
 मार्गों में सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी वृत्ताना नहीं होती है अतः यहाँ इन दोनों  
 प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपम्य काल एक समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्रात होगी।  
 किन्तु साक्षात् नुसस्वानुस जपम्य काल एक समय है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल  
 स्थितिका जपम्य काल एक समय ही प्राप्त होगा।

१ ६५३ आमत कल्पसे लेकर उपरिभगवज्जो तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी बहुत स्थिति  
 विभक्तिकाले बीबीका जपम्य काल एक समय और बहुत काल संख्यात समय है। तथा  
 अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले बीबीका काल सर्वथा है। इसी प्रकार अनुकूलसे लेकर सर्वार्थसिद्धि  
 तकके देवोंके ज्ञानना चाहिये। तथा इसी प्रकार साविकसम्बन्धि बीबीके ज्ञानना चाहिये।  
 अज्ञानकालयगियोंमें सब प्रकृतियोंकी बहुत स्थिति विभक्तिकाले बीबीका जपम्य काल एक समय  
 और बहुत कम संख्यात समय है। तथा अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले बीबीका जपम्य काल एक  
 समय और बहुत कम अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अज्ञानकाले, अज्ञानी, सूक्ष्मसांपरायिक  
 संयत और अज्ञानकाले बीबीके ज्ञानना चाहिये। तथा इसी प्रकार अज्ञानकाले अज्ञानियोंके  
 ज्ञानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले  
 बीबीका जपम्य काल अन्तर्मुहूर्त है। कर्मण्युपाययोगियोंमें एकत्रिके समान भंग है। किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले बीबीका  
 और सात नोकयोंकी बहुत स्थिति विभक्तिकाले बीबीका जपम्य काल एक समय और बहुत  
 कम आबलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अज्ञानकाले बीबीके ज्ञानना चाहिये। आभिनि-  
 बोधिज्ञानी, बुद्धिज्ञानी और अविज्ञानी बीबीमें सब प्रकृतियोंकी बहुत स्थिति विभक्तिकाले  
 बीबीका जपम्य काल एक समय और बहुत कम आबलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा  
 अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले बीबीका काल सर्वथा है। इसी प्रकार संयत अविज्ञानकाले  
 अज्ञानकाले, सम्यक्त्व और अज्ञानकाले बीबीके ज्ञानना चाहिये। अज्ञानकाले अज्ञानियोंमें सब  
 प्रकृतियोंकी अपेक्षा सर्वार्थसिद्धिके समान भंग है। इसी प्रकार संयत सामाजिकसंयत, ज्ञान-  
 स्थापनासंयत और परिहायिगुणिसंयत बीबीके ज्ञानना चाहिये। असंक्रियोंमें अज्ञानियोंके समान

संजदे त्ति । [ असण्णि० एइंदियभंगो । ]

एवमुक्कस्सओ कालाणुगमो समत्तो ।

❀ जहण्णए पयदं । मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसकसाय-तिवेदाणं जहण्ण-  
द्विदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६५४ णाणाजीवेहि जहण्णद्विदिविहत्तिएहि' छट्ठीए अत्थे तइया दइव्वा ।  
अहवा कत्तारम्मि तइया घेत्तव्वा ; जहण्णद्विदिविहत्तिएहि' केवडिओ कालो लद्धो त्ति  
पदसंबंधादो । सेस सुगमं ।

❀ जहण्णएण एगसमओ ।

जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—आनतादि चार कर्मोंमें यद्यपि तिर्यंच भी मर कर उत्पन्न होते हैं किन्तु उनके उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जाती, अतः जो द्रव्यलिंगी मनुष्य मर कर आनतादिकमें उत्पन्न होते हैं चन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, पर लगातार उत्पन्न होनेवाले इन जीवोंका प्रमाण संख्यात ही होगा, क्योंकि ऐसे मनुष्य ही संख्यात हैं, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । तथा अनुदिशादिकमें और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होता है यह स्पष्ट ही है । यदि एक साथ अनेक जीवोंने आहारक-काययोग किया और उनके उत्कृष्ट स्थिति हुई तो आहारक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है और यदि नाना मनुष्य प्रत्येक समयमें उत्कृष्ट स्थितिके साथ आहारक काययोगको प्राप्त होते रहे तो आहारककाययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय पाया जाता है । तथा आहारककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसयत, यथाख्यातसंयत और आहारक मिश्रकाययोगी इनकी कथनीमें आहारककाययोगकी कथनीसे कोई विशेषता नहीं है अत इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल आहारककाययोगके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होगा । इसी प्रकार शेष मार्गशास्त्रोंमें भी कालका विचार कर सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल ले आना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नाना जीवोंका काल कितना है ।

§ ६५५. 'णाणाजावेहि जहण्णद्विदिविहत्तिएहि' इन दोनों पदोंमें जो तृतीया विभक्ति है वह षष्ठी विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये । अथवा कर्ता अर्थमें तृतीया विभक्ति ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि 'जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नाना जीवोंने कितना काल प्राप्त किया है' इस प्रकारका पदसम्बन्ध यहा विवक्षित है । शेष कथन सुगम है ।

\* जघन्य काल एक समय है ।

§ ६५५. कुदो ? एवेसि नहण्णणिसेयद्विदीए दुसमयकासाए एगसमयकासाए वा पयदाए विदियसमए चेत्र णिम्मूलविणासुबलभादो ।

⊗ उचस्सेष संस्सेखा समया ।

§ ६५६ कुदो ? पाणाभीवाणमणुसमयं नहण्णद्विदि पडिपज्जंतार्ण संस्सेखा मणुसपम्परहितो आगमुबलभादो ।

⊗ सम्मामिच्छुत्त • अणत्ताणुबधीणं अठक्कस्त जहयण्णद्विदिविहृत्विपदि पायाजीवेहि काको केवडिओ ?

§ ६५७ सुगममेदं पुष्पासुत्तं ।

⊗ जहयणेण एगसमओ ।

§ ६५८ कुदो ? एगणिसेगद्विदीए दुसमयकासाए विदिसमए परसरूपेण गमकुबलभादो । अयमणे न सा नहण्णद्विदी; दुवादिणिसेयार्ण नहण्णत्तविरोहादो ।

⊗ उचस्सेण आबखियाए असंस्सेखादिभागो ।

६५९ कुदो ? सम्मामिच्छत्तमुष्मेत्ताणमणत्ताणुबधिषट्ठकं विसंभोएतार्ण न

§ ६५५ शंका—एक प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिवालोंका अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इन प्रकृतियोंके अपन्य निम्नकी स्थिति आदे दो समय कालवाली हो या आदे एक समय कालवाली हो तथापि दूसरे समयमें ही एतक निमूल बिनाए पाया जाता है, अतः इनका अपन्य काल एक समय कहा है ।

⊗ उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ६५६ शंका—एक काल संख्यात समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रत्येक समयमें अपन्य स्थितिको प्राप्त होनेवाले नानाबीबोंका पयस मणुष्मसे आगमन पाया जाता है जिनकी संख्या संख्यात है ।

⊗ सम्यग्मिध्यात्वात् और अनन्तानुबधी चतुष्ककी अपन्य स्थितिभिमक्तिवाले नाना बीबोंका काल कितना है ?

§ ६५७ अह पुष्पासुत्त सरत है ।

⊗ अपन्य काल एक समय है ।

§ ६५८ शंका—अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इनकी दो समय काल प्रमाण एक निपेकस्थितिके दूसरे समयमें पररूपसे संक्रमण पाया जाता है । जब तक पररूपसे संक्रमण नहीं होता है तब तक वह अपन्य स्थिति नहीं है क्योंकि दो आदि निपेकोंको अपन्य मानन्में विरोध आता है ।

⊗ उत्कृष्ट काल आबसीके असंख्यातवै भागप्रमाण है ।

§ ६५९ शंका—उत्कृष्ट काल आबसीके असंख्यातवै भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यग्मिध्यात्वात्की वद्वेसना करनवाले आर अनन्तानुबधी चतुष्ककी

पलिदो० असंखे०भागमेत्तजीवाणमावलियाए अमंखे०भागमेत्तुवकमणकंडएसु तत्थ एगुक्कस्सकंडयकालग्गहणादो ।

❀ छरण्णोकसायाणं जहण्णद्विदिविहृत्तिएहि एण्णाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६६०. सुगममेदं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुरां ।

§ ६६१ कुदो ? चरिमद्विदिकंडयउवकीरणकालग्गहणादो । एत्थ णिसेया चेय पहाणा कया ण कालो, एगसमयं मोत्तूण अंतोमुहुरत्तकालपरुवणणहाणुववत्तीदो ।

§ ६६२. एवं जइवसहाइरियमृत्ताणं देसामासियाणं परुवणं काऊण संपहि एदेहि सूचिदत्याणं लिहिदुच्चारणमणुवत्तइस्सामो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-तिण्णिवेट० जहण्णद्विदिवि०कालो ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० ज० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा । द्दण्णोक० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० सव्वद्धा । एवं सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचि-

विसयोजना करनेवाले पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके आवलीके असख्यातवें भाग-प्रमाण उपक्रमण काण्डक होते हैं । उनमेंसे यहा एक उत्कृष्ट काण्डकका काल लिया गया है ।

\* छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले नाना जीवोंका कितना काल है ।

§ ६६० यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६६१ शंका—जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि यहा अन्तम स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालका ग्रहण किया है । यहा पर निपेकोंकी धानता है कालकी नहीं, अन्यथा एक समयको छोड़कर अन्तर्मुहूर्त कालका कथन नहीं बन सकता था ।

§ ६६२ इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके देशामर्पक सूत्रोंका कथन करके अब इनसे सूचित होनेवाले अर्थों पर जो उच्चारणा लिरपी गई है उसका अनुसरण करते हैं—जघन्य कालका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आवानिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघ की अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कपाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवों का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्ति वाले जीवोंका काल सर्वदा है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिबि-भक्तिवाल जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सौधमें कल्पसे लेकर उपरिमगेवयक तकके

दिय-पंथि०पञ्च०-तस-तसपञ्च०-पंचमण०-पंचवधि०-कापजोगि०-ओरासि०-तिण्णि  
 वेद०-वचारिकसा०-वक्खु-अचक्खु० तिण्णिल्ले०-भवसि०-सण्णि० आहारत्ति । जवरि  
 सोइम्मीसाण्णादिदेवेसु इत्थि-णवु स० धेठपम्मलेस्सामु च ङ्गोक्कसाय० नहण्णाद्विदिकालो  
 जह० एगसमओ, उक्क० संस्सेजा समया । इत्थि० जवु स० ओषं ङ्गोक्क०मंगो ।  
 पुरिस० इत्थि०-णवु स० ङ्गोक्क०मंगो । णवु स० इत्थिपेद० ओषं ङ्गोक्क०मंगो ।

§ ६६३ आदेशेण गेरइएसु सत्तापीसपयडो० ज० जह० एगस०, उक्क०  
 भावसि० असंसे०मागो । अन० सम्भन्दा । सम्मघं ओषं । एवं पढमपुडवि० पंथि०-  
 विरिक्ख-पंथि०तिरि०पञ्च० । पंथि०तिरिक्खजोगिणीसु एवं चेय । जवरि सम्मघस्स

देव पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, स त्रसपभात, पांशों मनोयागी, पांशों बचनयोगी,  
 कम्बयोगी, औचारिककामयागी तीनों वेदवाले चारों कयाववाले, चतुर्दशनवाले, अचतुर्दशनवाले  
 तीन केवयावाले, सम्भ, संघी और आहारक बीबोंके जानना चाहिए । किन्तु इतनी  
 बिद्येपता है कि सौधर्म और प्रेक्षान आदि कल्पक देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवर्गमें तथा  
 पीत और पद्यतेरवावालोंमें जह नोकयायोंकी अपम्य स्थितिबिमच्छिपासे बीबोंअ अपम्य  
 काल एक समय और उच्छ्र काल संख्यात समय है । स्त्रीवेदवालोंमें नपुंसकवर्गकी अपम्य और  
 अत्रापम्य स्थितिबिमच्छिपासोंका काल ओपसे समान है किन्तु इतनी बिद्येपता है कि अपम्य  
 स्थितिका काल ओपसे जह नोकयायोंके समान है । पुरुस्वर्वालोंमें स्त्र वेद आर नपु स्त्रवेदका  
 मंग जह नोकयायोंके समान है । नपु स्त्रवर्वालोंमें स्त्रीवर्गकी अपम्य और अत्रापम्य स्थितिका काल  
 ओपके समान है । किन्तु इतनी बिद्येपता है कि अपम्य स्थितिका काल ओपसे जह नोकयायोंके  
 समान है ।

त्रिद्वेपार्थ—यहां त्रिन मार्गेषाओंमें सब प्रहृतियोंकी अपम्य स्थितिका काल ओपके  
 समान बतलाया है इनमें सौधर्मसे लेकर ऊपरिम प्रैवक तक देव पीत और पद्यतेरवावालों तथा  
 तीनों वेदवाले बीब भी सम्मिलित हैं परन्तु इन मार्गेषाओंमें कुछ प्रहृतियोंकी अपम्य स्थितिके  
 कालमें कुछ बिद्येपता बतलाई है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जात यह है कि पुरुस्वर्गकी  
 जोड़ कर इन पुरोक्त मार्गेषाओंमें एक बीबकी अपेक्षा जह नोकयायोंकी अपम्य स्थितिका अपम्य  
 काल अन्तर्मुदूर्त न होकर एक समय है अतः यहां नाना बीबोंकी अपेक्षा जह नोकयायोंकी अपम्य  
 स्थितिका अपम्य काल एक समय और उच्छ्र काल संख्यात समय ही प्राप्त होगा । तथा  
 स्त्रीबिदियोंके नपुंसकवर्गकी अपम्य स्थिति पुरुस्वर्गियोंके स्त्री और नपुंसकवर्गकी अपम्य स्थिति  
 तथा नपुंसकवर्गियोंके स्त्री वेदकी अपम्य स्थिति अन्तिम स्थिति कल्पकके पतनके समय हाती है  
 अतः इन तीनों बर्गवाले बीबोंके एक प्रहृतियोंकी अपम्य स्थितिका अपम्य और उच्छ्र काल ओपसे  
 जह नोकयायोंके समान करा है । तथा अत्रापम्य स्थितिका काल सर्वथा है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६६३ आदेशाद्गी अपेक्षा नार्थिकोंमें सत्तास प्रहृतियोंकी अपम्य स्थितिबिमच्छिपासे  
 बीबोंका अपम्य काल एक समय और उच्छ्र काल चावलीके अस्तम्यतर्पे भागप्रमाण है । तथा  
 अत्रापम्य स्थितिबिमच्छिपास बीबोंका काल सर्वथा है । सम्यक्वर्गकी अपेक्षा आचके समान  
 काल है । इसी प्रकार पदसी शुबिबी, पंचेन्द्रियतियच और पंचन्द्रियतियच पर्याप्तोंमें जानना चाहिए ।  
 पंचेन्द्रियतियच यानिमथियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी बिद्येपता है कि इनमें



सम्माभिच्छत्तभंगो ।

§ ६६४. विद्यादि जाव छट्टि त्ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोरु० ओघं । ओघम्मि छण्णोकसायाण जहण्णट्टिदिक्कालो जहण्णुक्कस्सेण चुण्णिसुत्तम्मि वप्पदेवा-इरियलिहिदुच्चारणाए च अतोमुहुत्तमिदि भणिदो । अम्हेहि लिहिदुच्चारणाए पुण जह० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया त्ति परूविदो, कालपहाणत्ते विवक्खिए तहोव-लंभादो । तेण छण्णोकसायाणमोघत्तं ण विरुज्जभदे । सम्मत्त-सम्मापि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । अज० सव्वद्धा । एवं जोइसि०-वेउच्चि०-विहंगणाणि त्ति । णवरि विहग० अणंताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो ।

सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहा सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है। येप कथन सुगम है। पहली पृथिवीके नारकी आदि मूलमें और जितनी मार्गाणाए गिनाई है उनमें सामान्य नारकियोंके समान काल सम्यन्धी व्यवस्था बन जाती है अत उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा। किन्तु योनिमती तिर्यचोमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः वहा सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान जानना चाहिये, क्योंकि योनिमती तिर्यचोके सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति ही प्राप्त होगी जो कि सम्यग्मिथ्यात्वके समान होती है।

§ ६६४ दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा ओघके समान काल है। चूणिसूत्रमें और वगदेव आचार्यके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें ओघका कथन करते समय छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। परन्तु हमारे द्वारा लिखी गई उच्चारणामें जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा है, क्योंकि प्रधानरूपसे कालकी विवक्षा होने पर जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय बन जाता है, अतः छह नोकपायोंके कालको ओघके समान कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिभिक्तवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिभिक्तवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार ज्योतिषीदेव, वैक्रियिककाययोगी और विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंगज्ञानियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है।

**विशेषार्थ**—ओघसे मिथ्यात्व, वारह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा है वह दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंके भी बन जाता है, क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि जीव इन नरकोंसे निकलकर मनुष्य पर्यायमें आते हैं उन्हींके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है किन्तु इन नरकोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नहीं बनता। फिर इन नरकोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके कालको भी ओघके समान क्यों कहा? यह शंका है जिसे मनमें रखकर वीरसेन स्वामीने 'ओघम्मि छण्णोक-सायाणा' इत्यादि वाक्यों द्वारा उसका समाधान किया है। उनके इस समाधानका भाव यह है कि

§ ६६५ सप्तमाय पुद्वीय मिच्छत्त०-वारसक० मय-दुगुद्ध० उक्क०मंगो ।  
सम्यत्त०-सम्मापि०-मर्णाता०घत्तक०-सत्तणोक्क० ज० ज० एगत्त०, उक्क० आवसि०  
असंत्ते०मायो । अज्जह० सम्बद्धा ।

§ ६६६ तिरिक्ख० मिच्छत्त०-वारसक० मय-दुगुद्ध ज० अस० सम्बद्धा ।

चूयिसूत्र, वप्यदेवकी लिखी हुई ज्वारखा और बीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई ज्वारखा इनमेंसे प्रारम्भकी दो पोषियोंमें ओपसे ज्वह नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थितिका अल्पस्य और उच्छ्रस अस्त अन्तमु हुत निपट है किन्तु बीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई ज्वारखामें ओपसे ज्वह नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थितिका अल्पस्य अस्त एक समय और उच्छ्रस अस्त संख्यात समय निपट है और यहाँ ओपके अनुसार कवन किया जा रहा है, अतएव द्वितीयादि नरकोंमें ज्वह नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थितिके अस्तको ओपके समान करनेमें कोई बाधा नहीं आती है। अब प्रश्न यह हाता है कि आशिर इस मठमेवका कारण क्या है ? इसका यह समाधान है कि चूयिसूत्र और वप्यदेवके द्वारा लिखी गई ज्वारखामें ज्वह नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थितिका अस्त नियेकोंकी प्रधानतासे कहा है और बीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई ज्वारखामें ज्वह नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थितिका अस्त कालकी प्रधानतासे कहा है अतः इस कवनमें मठमेव न जानकर विवक्षामेव जानना चाहिये जिसका विस्तृत झुझासा पहले कर आये हैं। विभंगज्ञानमें अनन्तलुक्कम्पी अतुप्क मंग जो मिप्यात्वके समान कहा है सो इसका कारण यह है कि विभंगज्ञानमें अनन्तलुक्कम्पीकी विसंबोबना नहीं होती अतः जो उपरिम प्रैवकका देव मिप्यात्वका प्राप्त होकर वहाँसे न्युत होता है उसके अन्तिम समयमें मिप्यात्व, सोलह कयाय और नौ नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थिति होती है। पर ऐसे बीच संख्यात ही होंगे और यदि सगातार हों तो संख्यात समय तक ही होंगे क्योंकि पक्षात् मनुष्य संख्यात हैं। अतः विभंगज्ञानमें मिप्यात्वके समान अनन्तलुक्कम्पी अतुप्कम्पी अल्पस्य स्थितिका अल्पस्य अस्त एक समय और उच्छ्रस अस्त संख्यात समय जानना चाहिये। शेष कवन सुगम है।

§ ६६७ सातवीं पृथिवीमें मिप्यात्व वारह कयाय मय और सुगुप्ताका मंग उच्छ्रसके समान हैं। सम्यक्त्त, सम्यमिप्यात्व, अनन्तलुक्कम्पी अतुप्क और सात नोक्यापोंकी अल्पस्य स्थितिबिम्बितासे बीषोंका अल्पस्य अस्त एक समय और उच्छ्रस अस्त आबलीके अस्तंख्यातमें मागप्रमाण है। तथा अल्पस्य स्थितिबिम्बितासोंका काल सर्वथा है।

विशेषार्थ—सातवें नरकों १क बीषकी अपेक्षा मिप्यात्व वारह कयाय मय और सुगुप्ताकी अल्पस्य स्थितिका उच्छ्रस काल अन्तमुहुत है। अब यदि आबलिके अस्तंख्यातमें मागप्रमाण नामा बीष क्रमशः इन प्रकृतियोंकी अल्पस्य स्थितिको प्राप्त हों तो उस सब अस्तका जोड़ अस्तंख्यात आबलिप्रमाण होता है वा अस्तंख्यात आबलिके पक्षके अस्तंख्यातमें मागप्रमाण प्राप्त होती हैं। सातवें नरकों उच्छ्रस प्रकृतियोंकी उच्छ्रस स्थितिका उच्छ्रस वारह मी इतना ही है अतः यहाँ उच्छ्रस प्रकृतियोंकी अल्पस्य स्थितिके अस्तको इनको उच्छ्रस स्थितिके अस्तके समान कहा। किन्तु सम्यक्त्त सम्यमिप्यात्व और अनन्तलुक्कम्पी अतुप्ककी अल्पस्य स्थितिका अल्पस्य और उच्छ्रस काल एक समय है। अब यदि आबलिके अस्तंख्यातमें मागप्रमाण नामा बीष क्रमशः इनकी अल्पस्य स्थितिको प्राप्त हों तो उस सब अस्तका जोड़ आबलिके अस्तंख्यातमें मागप्रमाण ही हागा अतः यहाँ उच्छ्रस ज्वह प्रकृतियोंकी अल्पस्य स्थितिका उच्छ्रस अस्त आबलिके अस्तंख्यातमें मागप्रमाण कहा। शेष कवन सुगम है।

§ ६६६ तिर्येचोंमें मिप्यात्व, वारह कयाय, मय और सुगुप्ताकी अल्पस्य और अल्पस्य

सेसपयडीणं ज० अज० पंचि०तिरिक्खभंगो । एवं काउ० । किण्हणील्लेस्माणमेवं  
 चैव । णवरि मम्मत्तस्स मम्मामिच्छत्तभंगो । असंजद० तिरिक्खभंगो । णवरि मिच्छ-  
 त्तस्स सम्मत्तभंगो । ओरान्णियमिस्स० तिरिक्खोत्रं । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज०  
 अज० सव्वद्धा । पंचि०तिरि०अपज० मिच्छत्त-मोळमऊ०-णवणोऊ० ज० ज०  
 एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । अज० मव्वद्धा । मम्मत्त-सम्मामि० ज०  
 एगम०, उक्क० आवलि० अमंखे०भागो । अज० मव्वद्धा । एवं मव्वणिल्लिंठिय-  
 पंचिदियअपज्ज०-वाटरपुद्धपिपज्ज०-वाटरआउपज्ज०-वाटरतेउपज्ज०-वाटरवाउपज्ज०-  
 वाटरवणण्णदिपत्तेयपज्ज०-तमअपज्जत्ते ति । णवरि पंचकाय-वाटरपज्ज० मिच्छ०  
 मोलसक०-मय-दुगुंठ० जह० ज० एगस०, उक्क० पलिढो० अमंखे०भागो ।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जयन्य और अजयन्य स्थिति-  
 विभक्तिवाले जीवोंका भग पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । इन्हीं प्रकार कापोतलेदरावाले जीवोंके  
 जानना चाहिए । कृष्ण और नीललेदरावाले जीवोंके भी इन्हीं प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि इनमें मन्थक्त्वका भग मन्थग्मिथ्यात्वके समान है । असंयतोंमें तिर्यचोंके समान भग  
 है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भग मन्थक्त्वके समान है । आंतरिकमिश्रकाय-  
 योगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुवन्धी  
 चतुष्ककी जयन्य और अजयन्य स्थितिविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है । पचेन्द्रियतिर्यच अपर्या-  
 प्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जयन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जयन्य काल  
 एक समय और उच्छृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजयन्य स्थितिविभक्ति-  
 वालोंका काल सर्वदा है । मन्थक्त्व और मन्थग्मिथ्यात्वकी जयन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जयन्य  
 काल एक समय और उच्छृष्ट काल आवलीके अनन्त्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजयन्य  
 स्थितिविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है । इन्हीं प्रकार सब विकचेन्द्रिय पचेन्द्रियअपर्याप्त, वाटर  
 पृथिवीकायिकपर्याप्त, वाटर जलकायिकपर्याप्त, वाटर अग्निकायिकपर्याप्त, वाटर वायुकायिकपर्याप्त,  
 वाटर वनस्पतिकार्यिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि पाचों स्थावरकाय वाटर पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, मोलहकषाय, मय और  
 जुगुप्साकी जयन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जयन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल पस्योपमके  
 असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः उनमें कोई न कोई जीव निरन्तर  
 मिथ्यात्व, बारह कषाय, मय और जुगुप्साकी जयन्य और अजयन्य स्थितिको प्राप्त होते रहते हैं,  
 अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जयन्य और अजयन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा । अब शेष रहीं  
 सात नोकषाय, मन्थक्त्व, मन्थग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्क ये तेरह प्रकृतियां, सो  
 सामान्य तिर्यचोंकी अपेक्षा मन्थग्मिथ्यात्वको छोड़कर इनकी जयन्य स्थिति पचेन्द्रिय तिर्यचोंके ही  
 प्राप्त होती है और इन सबको अजयन्य स्थिति पचेन्द्रिय तिर्यचोंके सर्वदा पाई जाती है, अतः  
 इनकी जयन्य और अजयन्य स्थितिके कथनको पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान कहा । किन्तु मन्थग्मि-  
 मथ्यात्वकी जयन्य स्थितिका उच्छृष्ट काल सामान्यकी अपेक्षा भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण  
 है और पचेन्द्रिय तिर्यचोंके भी इतना ही है अतः सामान्य तिर्यचोंके इमसे अधिक नहीं प्राप्त हो  
 सकता है, क्योंकि मन्थग्मिथ्यात्वकी ओर जयन्य स्थिति सर्वत्र वनजाती है, अतः सामान्य

१ ६६७ मणुस० मिष्य० सम्म० सोमसक० तिष्णिभेद० बह० ज० पगस० ।  
 उक्क० संलज्जा समया भज० सम्बद्धा । सम्मामि० छण्णोक० भोयं । मणुसपज्ज०  
 एषं चेव, जत्ररि सम्मामि० सम्मचर्मगो । इत्यिभेद० छण्णोक० मंगो । मणुसिणी०

तियर्थोके सम्मग्मिप्यात्वकी अपन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यर्थोके समान कहा । कापोत  
 सेर्यामिं उक्त सब अर्थस्वा बन जाती है अतः कापातलेर्याके कथनको सामान्य तिर्यर्थोके समान  
 कहा । यही बात कृष्ण और नीललेर्याकी है । किन्तु कृष्ण और नील लेर्याबालोमिं कृत्स्नस्वरूप  
 सम्मगष्टि बीज नहीं उत्पन्न होते हैं अत इनमें सम्मक्त्वकी भोय अपन्य स्थिति न प्राप्त होकर  
 आदेश अपन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये इन दोनों लेर्याभूमिं सम्मक्त्वकी अपन्य और  
 अज्ञापन्य स्थितिके कालको सम्मग्मिप्यात्वके समान कहा । असंयतोंके भी सय प्रकृतियोंकी अपन्य  
 और अज्ञापन्य स्थितिके काल सामान्य तिर्यर्थोके समान बन जाता है, क्योंकि इनका प्रमाण भी  
 अतन्त है । किन्तु मिष्यात्वकी अपन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि असंयत  
 मनुष्य भी होते हैं और इस प्रकार असंयतोंके मिष्यात्वकी भोय अपन्य स्थिति भी बन जाती है  
 अतः असंयतोंके मिष्यात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य काल एक समय और कृत्स्न काल संख्यात  
 समय कहा जाकि सम्मक्त्वकी भोय अपन्य स्थितिके अपन्य और कृत्स्न कालके समान है ।  
 औदारिक्रमिभकाययोगियोंके भी सय प्रकृतियोंकी अपन्य और अज्ञापन्य स्थितिके काल सामान्य  
 तिर्यर्थोके समान बन जाता है क्योंकि इनका प्रमाण अतन्त है । परन्तु औदारिक्रमिभकाययोगी  
 बीज अनन्तानुबन्धी जगुप्सकी विद्योयना नहीं करत अतः इनके अनन्तानुबन्धी जगुप्सकी भ्राप  
 अपन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश अपन्य स्थिति ही प्राप्त होती है और इसलिये इनमें  
 इसका काल सर्वदा बन जाता है यही सब है कि औदारिक्रमिभकाययोगमें अनन्तानुबन्धी जगुप्सकी  
 अपन्य और अज्ञापन्य स्थितिके काल सर्वदा कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यर्थ लक्ष्यपचात्रकोंमें जो एक  
 बीजकी अपेक्षा मिष्यात्व, सातह कण्य मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका कृत्स्न काल हो  
 समय तथा सय प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिके कृत्स्न काल एक समय बनलाया है माना बीजोंकी  
 अपेक्षा निरन्तर हानबाले उस कालको बरि बाड़ा जाय तो यह आबलिके असंख्यातमें भागसे  
 अधिक्त नहीं होता है अतः यहाँ सय प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका कृत्स्न काल आबलिके  
 असंख्यातमें भाग प्रमाण्य कहा । सय कथन सुगम है । इसी प्रकार जो सय विकृतप्रब आदि  
 मार्गणार्थ वतलार्थ है उनमें पण्डित कर लेना चाहिये । किन्तु पाँचों स्वावर काय वाहर पचात्र  
 बीजोंमें एक बीजकी अपेक्षा मिष्यात्व सातह कण्य मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका  
 कृत्स्न काल अन्तमुहूर्त है । अब यदि इस आबलिके असंख्यातमें भागसे गुणित कर दिया जाय  
 तो पस्यके असंख्यातमें भागप्रमाण काल प्राप्त होता है अतः पाँचों स्वावर काय वाहर पचात्र  
 बीजोंके उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका कृत्स्न काल पस्यके असंख्यातमें भाग प्रमाण्य कहा ।  
 सय कथन सुगम है ।

१ ६६८ मनुष्योंमें मिष्यात्व सम्मक्त्व, सोलह कण्य और तीन वरकी अपन्य स्थिति  
 विमत्तिका लोकोका अपन्य काल एक समय और कृत्स्न काल संख्यात समय है । तथा अज्ञापन्य  
 स्थिति विमत्तिका लोकोका काल सबदा है । सम्मग्मिप्यात्व और द्वादश नोकरायोंकी अपन्य और  
 अज्ञापन्य स्थिति विमत्तिका लोकोका काल आपक समान है । मनुष्य पचात्रकोंमें इसी प्रकार  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विद्योयना है कि सम्मग्मिप्यात्वका मंग सम्मक्त्वक समान है । तथा  
 स्त्रीवदका मंग द्वादशकार्योंके समान है । मनुष्यनिर्भोमिं सामान्य मनुष्योंके समान मंग है । किन्तु

मणुसभंगो । एवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । पुरिस० णवुंस० इण्णोकसायभंगो । मणुसत्तपज्ज० मिच्छ० सम्म० सम्मामि० सोलसक० भयदुगुंइ० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सत्तणोक० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० अंतोपु० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । तथा पुरुषवेद और नपुसक वेदका भग इह नोकपायोंके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिभिक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिभिक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिभिक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिभिक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**सामान्य मनुष्योंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति कहते समय पर्याप्त मनुष्योंकी मुख्यता है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा । इह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी यही बात है, अतः इनके कालको ओघके समान कहा क्योंकि ओघमें जो इह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको घतलाया है वह पर्याप्त मनुष्योंके ही सम्भव है । किन्तु सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल लघुपर्याप्तक मनुष्योंकी प्रधानतासे कहा है, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा लघुपर्याप्तक मनुष्योंके भी सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सम्भव है और इसलिये सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है । उपर्युक्त सब कथन मनुष्य पर्याप्त जीवोंके भी बन जाता है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके कथनमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त जीवोंका प्रमाण सख्यात ही है अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वके समान संख्यात समय ही होगा । तथा इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी कुछ विशेषता है, क्योंकि इनके स्त्रीवेदका स्वोदयसे क्षय नहीं होता अतः जिस प्रकार यहाँ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसी प्रकार यहाँ स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये । सामान्य मनुष्योंके समान ही मनुष्यनियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व, पुरुषवेद और नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्यनियोंकी संख्या भी संख्यात है, अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान सख्यात समय ही होगा । तथा पुरुषवेद और नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल इह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान होगा, क्योंकि मनुष्यनियोंके इन दोनों वेदोंका स्वोदयसे क्षय नहीं होता है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका

§ ६६८ द्वाणं गारगर्मो । एवं भवण०-वाण०, गयरि सम्म० सम्पामि  
 ष्यधर्मो । अनुविसादि जाव अत्राद्द प्ति पचबीस-पयबीणं न० न० एगसमधो ।  
 उक्क० संस्वेजा समय । अम० सम्बद्धा । अर्णताणु० मोर्ष । सव्वह० सम्बपय० अह०  
 द्विदि० नह० एगस० उक्क० संस्वेजा समय । अम० सम्बद्धा एवं परिहार० ।  
 एवं संत्रद-सामाहयद्धेदो०-सह्यसम्मादिद्वि प्ति । गयरि अण्णोकसाय० मोर्ष ।

उक्त काल मी एक समय ही प्राप्त होता है अतः इनके माना जीवोंकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी  
 जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और उक्त काल आबलिके असंख्यातवें भागप्रमाण  
 कहा । तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और सात्तर  
 मार्ग्या होनेके कारण उक्त काल पचक असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । तथा इनके एक  
 बीबीकी अपेक्षा सात नोक्याओंकी अजपन्य स्थिति कमसे कम अर्धमुहूर्त काल तक पाई जाती है  
 इसलिये सात नोक्याओंकी अजपन्य स्थितिका जपन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । तथा शेष काल  
 पूर्वोक्त प्रकृतियोंके समान ही है ।

§ ६६८ देवोंके नारिकोंके समान मंग है । इसी प्रकार मन्त्रवासी और अन्तर देवोंके  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्बन्धका मंग सम्मिष्यात्वेके समान है ।  
 अनुविससे लेकर अपराधित तकके देवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिभिन्निहारे जीवोंका  
 जपन्य काल एक समय और उक्त काल संख्यात समान है । तथा अजपन्य स्थितिभिन्निहारे  
 जीवोंका काल सर्वथा है । अन्तस्तुअन्तही अनुविसकी स्थितिभिन्निहारे जीवोंका काल अजपन्य  
 समान है । सर्वांसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिभिन्निहारे जीवोंका जपन्य  
 काल एक समय और उक्तकाल संख्यात समान है । तथा अजपन्य स्थितिभिन्निहारे जीवोंका  
 काल सर्वथा है । इसी प्रकार परिहार विद्युदिसंयतोंके जानना । तथा इसी प्रकार संवत्, सामायिक-  
 संवत् ज्योतिष्वापना संवत् और चापिकसन्मगद्वि देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि इनमें बह नोक्याओंकी अपेक्षा काल अजपन्यके समान ।

विशेषार्थ—देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय उक्त  
 काल आबलिके असंख्यातवें भागप्रमाण अजपन्य स्थितिका काल सर्वथा तथा सम्बन्धकी जपन्य  
 और अजपन्य स्थितिका काल अजपन्यके समान बन जाता है इसलिये इनके जपन्यके नारिकोंके  
 समान कहा । मन्त्रवासी और अन्तरोंमें कृत्स्नकालके सम्बन्धि जीव अन्त महीं होते इसलिये  
 इनमें सम्बन्धकी जपन्य और अजपन्य स्थितिका काल काल सम्मिष्यात्वेके समान है । उक्त  
 दोनों प्रकारके देवोंमें इस विशेषताको छोड़कर शेष सब काल सामान्य देवोंके समान है । अनुविस  
 आदिमें प्रकृतियोंकी जपन्य स्थिति अन्तके अन्तिम समयमें होती है और वे जीव मरकर अन्त्य  
 पर्वतमें ही उक्त होते हैं अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक  
 समय और उक्त काल संख्यात समय कहा । तथा यहाँ सम्बन्ध प्रकृतिका जपन्य स्थिति उक्त  
 कालके सम्बन्धियोंके प्राप्त होती है अतः इसकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और  
 उक्त काल संख्यात समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्तकालके सम्बन्धि संख्यात ही होते हैं ।  
 पर यहाँ अन्तस्तुअन्तकी अन्तः विसपोजना कालकासे जीव असंख्यात हैं अतः इसकी जपन्य  
 और अजपन्य स्थितिका काल अजपन्यके समान बन जाता है । सर्वांसिद्धिके देवोंका प्रमाण  
 संख्यात ही है अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और उक्त  
 काल संख्यात समय ही प्राप्त होगा । शेष काल सुगम है । सर्वांसिद्धिके समान परिहार विद्युदिसंयतोंके  
 सब प्रकृतियोंकी जपन्य और अजपन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है क्योंकि इनके

६ ६६६, एंडिएरु मिच्छत्त-सोलसक०-णचणो० ज० अज० सव्वदा ।  
 मम्मत्त-मम्मामि० पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि०-  
 अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-  
 सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
 सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-आउ०वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्ज-  
 त्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपयो०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्ता-  
 त्ति । मटिसुदअण्णा०-अभज०-मिच्छादि०-असण्णीसु एवं चेत्त, णवरि सत्तणो० जह०  
 तिरिक्खोत्त ।

प्रमाण भा संख्यात है । तथा संयत, सामाधिकृतसंयत, छेदापस्थापनासंयत और चार्थिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी सर्वान्मिन्द्रिके देवोंके समान सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है, क्योंकि इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षणआदिके समय होती है और ये जीव संख्यात ही हाते हैं । किन्तु इन संयत आदिके छह नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल आवक समान है क्योंकि इनके क्षणक्षेत्रांगे छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।

§ ६६६, एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सालह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिचिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिये । मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असझी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिचिभक्तिवालेका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंका प्रमाण अनन्त है इसलिये इनमें मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा वन जाता है । तथा सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव स्वरूप हैं अतः एकेन्द्रियोंमें भी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान कहा । आगे जो पृथिवी आदिक मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें कईका प्रमाण तो अनन्त है और कईका प्रमाण असंख्यात होते हुए भी बहुत अधिक है अतः इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल वन जाता है । यही बात मत्यज्ञानी आदि मार्गणाओंकी है किन्तु इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा इनकी जघन्य स्थितिका काल

§ ६७०. वेदव्ययमित्सु० मिच्छत-सम्मत्त-सोत्तसक० भयदुगु ६० म० ख० एगसु० । उक्क० संसेज्जा समया । अज्ज० ज० अतोमु० । उक्क० पस्सिदो० असले० मागो । णवरि सम्म० अज्ज० न० एयस० । सम्मामि० सत्तणोक० जह० पडमपु वडिमंगो । अज्ज० अणुक्कसमंगो ।

§ ६७१ आहार०—आहारमित्सु०—अवगद०—सुहुम०—अहावत्तादसज्जदेति उक्क-  
स्समंगो । णवरि अवगद० छण्णीक० जह० ओषं । कम्मइय० पईदियमंगो,  
णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० ज० ओष । अज्ज० अणुक्क० मंगो । एवमणाहारीणं ।

एक समय इ भव यदि इसे आबलिके असंख्यातवें मागसे गुया किया अत्य तो आबलिके असंख्यातवें मागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः इन मार्गसाधनोंमें सात नोकपार्योंकी अवन्य स्थितिके फलको सामान्य तिर्यचोक समान कहा क्योंकि तिर्यचोक भी इतना ही फल प्राप्त होता है ।

§ ६७० वैक्रियिक मिमन्त्रणयोगियोंमें, मिध्यात्व, सम्पत्त्व, सोलह कयाप, मय और अनुप्याकी अवन्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका अवन्य फल एक समय और उत्कृष्ट फल संख्यात समय है । तथा अन्नपन्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका अवन्य फल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट फल पन्योपमके असंख्यातवें मागप्रमाण है । किन्तु इतनी विज्ञेयता है कि सम्पत्त्वकी अन्नपन्य स्थितिबिम्बित्वाले अवन्य फल एक समय है । सम्पत्त्वमिध्यात्व और सात नोकपार्योंकी अवन्य स्थितिबिम्बित्वाले अवन्य फल पहली पृथिवीके समान है तथा अन्नपन्य स्थितिबिम्बित्वाले अवन्य फल अन्तमुहूर्तके समान है ।

विज्ञेयपार्य—अब यथायोग्य मनुष्य संबत बीब मरकर वैक्रियिकमिमन्त्रणयोगी होते हैं तब उनके मिध्यात्व सोलह कयाप, मय और अनुप्याकी अवन्य स्थिति पार्य जाती है पर येसे बीबोंका प्रमाण संख्यातसे अधिक नहीं हो सकता अतः वैक्रियिकमिमन्त्रणयोगीमें उक्त प्रकृतियोंकी अवन्य स्थितिका अवन्य फल एक समय और उत्कृष्ट फल संख्यात समय कहा । पर यह अवन्य स्थिति अन्तिम समयमें होती है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अन्नपन्य स्थितिका अवन्य फल अन्तमुहूर्त कहा क्योंकि वैक्रियिकमिमन्त्रणयोगका अवन्य फल अन्तमुहूर्त है । तथा माना बीबोंकी अपेक्षा वैक्रियिकमिमन्त्रणयोगका उत्कृष्ट फल पन्यके असंख्यातवें मागप्रमाण है इसलिय इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अन्नपन्य स्थितिका उत्कृष्ट फल उक्त प्रमाण कहा । परी बात सम्पत्त्व प्रकृतिकी अवन्य और अन्नपन्य स्थितिके संबन्धमें भी जानना चाहिये । किन्तु जिस कृतकृत्यवेदक सम्पत्त्ववि बीबोंके सम्पत्त्वकी दो समय फलप्रमाण स्थिति सेप खनपर वैक्रियिकमिमन्त्रणयोगकी प्राप्ति हुई है उसके सम्पत्त्वकी अन्नपन्य स्थितिका अवन्य फल एक समय भी बन जाता है । पहली पृथिवीमें सम्पत्त्वमिध्यात्व और सात नोकपार्योंकी अवन्य स्थितिका अवन्य फल एक समय और उत्कृष्ट फल आबलिके असंख्यातवें मागप्रमाण बतलाया है वा वैक्रियिकमिमन्त्रणयोगमें भी पठित हो जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी अवन्य स्थितिके फलको पहली पृथिवीके समान कहा । तथा इन आठ प्रकृतियोंकी अन्नपन्य स्थितिका फल अनुकृत स्थितिके समान है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६७१ आहारकयापयोगी, आहारकमिमन्त्रणयोगी, अपगत वेपी, सूक्ष्म सांपरायिकसंबत और महाकयाप संबतोंमें उत्कृष्टके समान मंग है । किन्तु इतनी विज्ञेयता है कि अपगत वर्णमें छह नोकपार्योंकी अवन्य स्थितिबिम्बित्वाले अवन्य फल ओषके समान है । कर्मण्यकयापयोगियोंमें एकेत्रिबोंके समान मंग है । किन्तु इतनी विज्ञेयता है कि सम्पत्त्व और सम्पत्त्वमिध्यात्वकी अवन्य स्थितिबिम्बित्वाले अवन्य फल ओषके समान है । तथा अन्नपन्यस्थितिबिम्बित्वाले अवन्य फल अन्तमुहूर्त



§ ६६६, एहंदिणसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० सन्वद्वा ।  
 म्मत्त-सम्मामि० पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि०-  
 प्रपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-  
 सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
 सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-आउ०वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्ज-  
 तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्ता-  
 त्ते । मदिमुदअण्णा०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णीसु एवं चेव, णवरि, सत्तणोक० जह०  
 तिरिक्खोघ ।

प्रमाण भी सख्यात है । तथा संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी सर्वाथसिद्धिके देवोंके समान सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है, क्योंकि इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षणएादिके समय होती है और ये जीव सख्यात ही होते हैं । किन्तु इन सयत आदिके छह नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान है क्योंकि इनके क्षणक्षेत्रीमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।

§ ६६६, एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोको जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिये । मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी, अभन्य, मिथ्यादृष्टि और असज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालेका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंका प्रमाण अनन्त है इसलिये इनमें मिथ्यात्व आदि छन्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा वन जाता है । तथा सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव स्वरूप हैं अतः एकेन्द्रियोंमें भी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान कहा । आगे जो पृथिवी आदिक मार्गणार्थ गिनाई हैं उनमें कईका प्रमाण तो अनन्त है और कईका प्रमाण असख्यात होते हुए भी बहुत अधिक है अत इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल वन जाता है । यही बात मत्यज्ञानी आदि मार्गणाओंकी है किन्तु इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा इनकी जघन्य स्थितिका काल

१ ६७४ कुदो ? उक्कस्सद्विदिसंतकम्मणेणच्छिदसव्वजीयेसु मणुक्कस्सद्विदिसंत-  
कम्मणेण एगसमयमच्छिय तदियसमयमिद्द उक्कस्सद्विदिषंवेण परिणदेसु उक्कस्सद्विदीए  
एगसमयंतस्वसामादो ।

❀ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेसुवि भागो ।

१७५ कुदो ? एकस्से द्विदीए उक्कस्सद्विदिषंकाळो जदि अंतोमुहुत्तपेत्तो  
कम्मदि तो सत्तेज्जासारोपमकोडाकोडीमेत्तद्विदीणं किं छमामो पि पपाणेण फल्लु  
यिदिच्छाप ओषद्विवाए अगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तरकालुक्कंभादो । एषं  
अइसइपकविदुष्णिगुत्त देसामासियं पकविय संपहि तेण सच्चिदत्तस्सुचारणाहरिय  
पकविदवक्खाणं मणिस्सामो ।

१ ६७६ अंतरं दुविहं अरण्यमुक्कस्स च । तत्प उक्कस्सए पयदं । दुविही णिह  
देसो ओषेण आदेसेण य । तत्प ओषेण सव्वपयडीणमुक्कस्संतरं के० ? जह० एगस० ।  
उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । अणुक्क० पुरिय अंतरं । एषं सत्तमु पुडपीसु, सव्व  
तिरिक्क०-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपरिधिय-उक्काय०-पंच  
मण०-पंचषडि०-कायजोगि० ओरासियमिस्स०-अठठिय०-सिण्णिबेद अचारि क०-म

१ ६७४ श्लोक—इषम्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि अक्षय स्थितिस्वप्नरूपसे स्थित सब जीवोंके अनुकूल स्थितिस्वप्न  
रूपसे एक समय तक रह कर तीसरे समयमें अक्षय स्थितिस्वप्नरूपसे परिणत होने पर अक्षय  
स्थितिका एक समय प्रमाय अन्तरकाल पाया जाता है ।

❀ उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

१ ६७६ श्लोक—अक्षय अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाय क्यों है ?

समाधान—एक स्थितिका अक्षय स्थितिस्वप्नकाल यदि अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तो  
संख्यात अङ्गकोडी सागर प्रमाय स्थितियोंका कितना प्राप्त होगा, इस प्रकार अक्षय स्थितिसे अक्षय  
स्थितिसे गुणित करके जो अक्षय आगे अक्षय प्रमायस्थितिका भाग देनेपर अंगुलके असंख्यातवें  
भागप्रमाय अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार अक्षयपत्र आत्मात्किं प्राय अक्षय गये वेधमपेक  
वृद्धिस्वप्नकाल काल करके अब अक्षय द्वारा स्थित होने वाले अक्षयको अक्षयपत्रात्माने व्याख्यान  
किया है उसे कहते हैं—

१ ६७६ अन्तर हो प्रकारका है—अक्षय और अक्षय । अक्षयसे पहले अक्षयका प्रकार है ।  
अक्षय अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेस । अक्षयसे ओषकी अपेक्षा सब प्रकृतिबोधकी  
अक्षय स्थितिबिम्बिकाश्लोक अन्तर कितना है ? अक्षय एक समय और अक्षय अंगुलके  
असंख्यातवें भागप्रमाय है । तथा अनुकूल स्थितिबिम्बिकाश्लोक अन्तरकाल यही है । इसी प्रकार  
सातों प्रकृतिबोधकी नारकी, सब तिर्यक सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य मनुष्यकी, सब देव, सब  
एकत्रिय सब विष्णुत्रिय सब पंचेन्द्रिय, अक्षय स्वावरकाल पाँचों मनोयोगी पाँचों कथनयोगी,  
अक्षययोगी, औदारिकमित्रकथयोगी, वैश्विककथयोगी, तीनों वेदवाले, चारों कथावासे,

§ ६७२. आभिणि०सुद०ओहि० ओघ, णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । एव-  
मोहिदंसण-सम्माइट्टि त्ति । मणपज्ज० संजदभंगो । णवरि इत्थि० एवुंसं० ङ्णो-  
कसायभंगो । संजदासंजद०-वेदय० अणुदिसभंगो । उवसम० चउवीसपयडी० ज०  
ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया । अज० अणुक्क०भंगो । अणताणु०चउक्क०  
उक्क०भंगो । सम्मामि० सव्वपय० जह० ज० एगस० । उक्क० संखेज्जा समया । अज०  
अणुक्क०भंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० ज० ज० एगस० । उक्क० आवलि०  
असंखे०भागो । सासण० सव्वपयडी० ज० ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया ।  
अज० ज० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

✽ णाणाजीवेहि अंतरं । सव्वपयडीणमुक्कस्स द्विदिविहत्तियाणमंतरं केव-  
चिरं कालादो होदि ।

§ ६७३. सुगममेदं ।

✽ जहणणेण एगसमओ ।

के समान है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६७२. आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधि ज्ञानियोंमें ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । इसी प्रकार अवधि दर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःस्वर्यज्ञानियोंमें संयतोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुसकवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है । सयतासयत और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अनुदिशके समान भंग है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुवन्धी चतुष्कका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

✽ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमका अधिकार है । सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ६७३. यह सूत्र सुगम है ।

✽ जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ ६७४ कुदो ? उकस्सद्विदिसंतकम्मणेणच्छिदसम्बजीवेसु अणुक्कस्सद्विदिसंत-  
कम्मणेण एगसमयमच्छिय तदियसमयमिह उकस्सद्विदिबभेण परिणदेसु उकस्सद्विदीए  
एगसमयंतस्सलंभादी ।

⊗ उक्कस्सेय अंगुलस्स असंखेत्तुवि भागो ।

६७५ कुदो ? एकिकस्से द्विदीए उकस्सद्विदिबभकासो जदि अंतोमुहुत्तमेसो  
उक्कदि तो सखेज्जासागरोषमकोडाकोडीमेत्तद्विदीण किं उभामो चि पमाणण फल्लु  
खिदिन्नाए ओषद्विदाए अंगुलस्स अंतखेज्जदिभागमेत्तठरकालुवलीभादो । एषं  
अणुसहपकविदुण्णिमुत्त वेसामासियं पकविय संपहि तेण अणुदत्तवस्सुचारणाहरिय  
पकविदवक्खाणं मणिससामो ।

§ ६७६ अंतरं दुविहं ब्रह्मणमुक्कस्स च । तस्य उकस्सए पपदं । दुषिहो णिद्द  
देसो ओषेय्य आदेसेण य । तस्य ओषेण सम्बपयडीणमुक्कस्संतरं क० ? जह० एगस० ।  
उक्क० अंगुलस्स अंतखेज्जदिभागो । अणुक्क० णत्थि अंतरं । एषं सधसु पुडबीसु, सम्ब  
तिरिक्कल०-मणुसतिय-सम्बदेव-सम्बएइदिय-सम्बविगखिदिय-सम्बपथिदिय-क्काय०-यंच  
मण०-यंचवचि०-कायजोगि० भोरासियमिस्स०-वेठविय०-तिग्गिबेद चचारि क०-म

§ ६७४ शंका—ब्रह्मण अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ब्रह्मण स्थितिसत्कर्मरूपसे स्थित सब जीवोंके अणुक्कण स्थितिसत्कर्म  
रूपसे एक समय तक रह कर तीसरे समयमें ब्रह्मण स्थितिकर्मरूपसे परिचलत होने पर ब्रह्मण  
स्थितिका एक समय प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

⊗ उक्कण अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६७५ शंका—उक्कण अन्तरकाल अणुक्कके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—एक स्थितिका ब्रह्मण स्थितिकर्मकाल यदि अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है तो  
संख्यात कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितिकर्मकाल कितना प्राप्त होगा, इस प्रकार फल राशिये इच्छा  
राशिको गुणित करने का लक्षण आवे उसमें प्रमाणराशिके मग देनेपर अंगुलके असंख्यातवें  
भागप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार मतिवृत्तम आचार्यके द्वारा कहे गये वेदामर्षक  
वृत्तिसूत्रक बचन करके अब इसके द्वारा सूचित होन वाले अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्यान  
किया है उसे करते हैं—

§ ६७६ अन्तर दो प्रकारका है—ब्रह्मण और उक्कण । उनमेंसे पहले उक्कण प्रकार है ।

उसकी अपेक्षा निर्वेद्य दो प्रकारका है—ओष और आदेस । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा सब प्रवृत्तियोंकी  
ब्रह्मण स्थितिकर्मकालको अन्तर कितना है ? ब्रह्मण एक समय और उक्कण अंगुलके  
असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अणुक्कण स्थितिकर्मकालको अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार  
सप्तों वृत्तियोंके नारकी, सब तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पयात मनुष्य मनुष्यनी सब देव, सब  
एकत्रिय सब विष्णोत्रिय, सब पंचेन्द्रिय स्रष्टों स्वाधरकाय पार्थों मनायोगी पार्थों बचनयोगी,  
अपयोगी, औरारिकमिहअपयोगी, वैश्विकमिहअपयोगी, तीनों वेदवत्से, चारों कणपयातो,

दिसुदअण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-मुद०-ओहि०-मणपज्ज०-मंजद-सामाडय-छेटो-  
परिहार०-संजटासंजद०-असंजद०-चमसु०-अचमसु०-ओदिटंम०-उल्लेस्स०-भवसि०-  
अभवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि०-आहारए त्ति ।

९ ६७७, मणुसअपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० ज० एगम० । उक्क० अंगुलस्स  
असखेज्जदि० भागो । अणुक्क० ज० एगस० । उक्क० पल्लिदो० अमंखे०भागो । एवं  
सासण० सम्माभि०दिट्ठि त्ति । वेउव्वियमिस्स० सव्वपयडी० उक्क० ओवं । अणुक्क०  
ज० एगस० । उक्क० वारस० मुहुत्ता । आहार०-आहारमिस्स० उक्क० ओवं ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । कम्मइय० सम्म० सम्माभि० उक्क० ओवं ।

मत्त्वज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मतिज्ञानी, ध्रुतज्ञानी, अत्रपिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, मंयत,  
सामायिन्सयत, छेदोपस्थापनामयत, परिहारनिशुद्धिसयत, मंयतासयत, अमंयत, घत्तुदर्शनवाले,  
अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेद्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
चायिरुमस्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मंती, अमती और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—यहा पर सत्र प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जो जघन्य अन्तरकाल एक समय  
वतलाया है सो स्पष्ट ही है, किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण वतलाते  
हुए उमका वीरसेन स्वामीने जो लुनासा किया है उसका भाव यह है कि प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट  
वन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः उस हिसाबसे सख्यात कोडाकोडी सागरप्रमाण सब स्थितियोंका  
वन्धकाल जोडा जाय तो कुल कालका जोड़ अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण होता है, क्योंकि  
अन्तर्मुहूर्तसे मख्यात कोडाकोडी सागरोंके समयोंको गुणित करनेपर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह  
एक अगुलप्रमाण या अगुलके मख्यातवें भागप्रमाण न होकर अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण  
ही होता है । अब यदि कुछ जीवोंने मोहनीयकी सत्र प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया,  
अनन्तर वे अन्यस्थितिविकल्पके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहें और इतने कालके भीतर  
अन्य कोई भी जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त न हो तो सत्र प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर  
काल उक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है । परन्तु मोहनीयकी सत्र प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका  
अन्तरकाल नहीं पाया जाता, क्योंकि अनुकृष्ट स्थितिवाले जीवोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है ।  
ऊपर सातों पृथिवियोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था  
वन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ ६७७ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सत्र प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योप-  
मके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यगिमध्यादृष्टि जीवोंके  
जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सत्र प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका  
अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वारहमुहूर्त है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवालों  
का जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । कर्मणकाययोगियोंमें  
सम्यक्त्व और सम्यगिमध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है ।  
तथा अनुकृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल

ब० एगस०, उक्क० अंतोष्ट० । सेसं ओषं । एषमगाहारीणं ।

१ ६७= अश्वगद० अश्वीसपयडी० उक्क० ओषं । अशुकक० ब० एगस०,  
उक्क० अम्मासा । गवरि रसणतिय०-अदकसा० अदणोक० वासपुपचं ।

अन्तमुहूर्त है । शेष कवन ओषके समान है । इसी प्रकार अनन्तरकालके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**सम्पपर्षात् मनुष्य सान्तर मानौषा है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर परस्परके असंख्यातर्षे मागप्रमाण्य कदा, क्योंकि इस मानौषाका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर परस्परके असंख्यातर्षे मागप्रमाण्य है । तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल जिस प्रकार ओषमें पठित कर आये है उसी प्रकार कदा भी पठित कर लेना चाहिये । सासादनसम्पपर्षात् और सम्पगिमप्याट्टि बीतोंका अन्तरकाल ज्ञापन्यपर्षात् मनुष्योके समान है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकूल स्थितिका अन्तरकाल ज्ञापन्यपर्षात् मनुष्योके समान कदा । वैश्विकमिभकाययोगका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कदा । अन्तरकालयोग और अन्तरकालमिभकाययोगका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व कदा । शेष सब कवन मुगम है । काम्यकाययोगमें सम्पकत्व और सम्पगिमप्यात्की अनुकूल स्थितिके ज्ञापन्य और उत्कृष्ट अन्तरमें कुछ विशेषता है । शेष कवन आपके समान है । बात यह है कि काम्यकाययोगमें सम्पकत्व और सम्पगिमप्यात्की ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त होता है अतः इसमें इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका अन्तर भी कुछ प्रमाण्य ही प्राप्त होता है । परी बात अन्तरकाल मार्ग्यमें जानना चाहिये क्योंकि मोहनीयकी सत्ता रखे हुए काम्यकाययोगी बीच ही अन्तरकाल होता है ।

१ ६०= अपगतवेदकालमें चौबीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितालोका अन्तर काल ओषके समान है । तथा अनुकूल स्थितिबिम्बितालोका ज्ञापन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल बारह महीना है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीनों दर्शनमोहनीय, आठ कयाय और आठ नोकर्याओंकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपूबकत्व है ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी सत्ता रखे हुए अपगतवेदका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह महीना प्रमाण्य है अतः इसमें अन्तस्तुक्तकी कृष्णके बिना शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका ज्ञापन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह महीना प्रमाण्य कदा । किन्तु वन्यमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व है अतः अपगतवेदके तीन दर्शनमोहनीय और आठ कयायोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व प्रमाण्य प्राप्त होगा । तथा जो मनुष्यवेद और स्त्रीवेदके ज्ञापसे वन्यमश्रेणी या वन्यमश्रेणी पर चढ़ता है उसीके अपगतवेद अथवा अथवा आठ नाकर्याओंका सत्त्व पाया जाता है पर इतका भी उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व है अतः अपगतवेदमें आठ नाकर्याओंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व प्रमाण्य प्राप्त होगा । तात्पर्य यह है कि अपगतवेदमें पुस्तक और बार संवत्तनोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर बारह महीनाप्रमाण्य और शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थिति उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूबकत्व प्रमाण्य प्राप्त होता है । शेष कवन मुगम है ।

§ ६७९. अकसा० आहारभंगो । एवं जहाक्खादसंजदाणं । सुहूम० एवं चैव ।  
णवरि लोसजल० अणुक्क० उक्क० छम्मासा । उवसम० सव्वपयडी० उक्क० ओर्घं ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

एवमुक्कस्सओ अतराणुगमो समत्तो ।

\* एत्तो जह्णयंतरं ।

६८०. सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्ता-सम्मत्ता-अट्ठकसाय-छरण्णोकसायाणं जह्णणट्ठिदिविहत्ति-  
अंतरं जह्णणेण एगसमत्तो ।

§ ६८१ कुदो ? पुव्विन्नलसमए जह्णणट्ठिदिं कादूण तदणंतरविदियसमए अंतरिय  
पुणो तदियसमए अण्णोसु जीवेषु जह्णणट्ठिदिमुवगएसु एगसमयंतरुवलंभादो ।

§ ६७९ अकषायियोंमें आहारककाययोगियोंके समान भग है । इसी प्रकार यथाख्यात संयतोंके जानना । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है किलोभसज्वलनकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है ।

विशेषार्थ—अकषाय अवस्थाके रहते हुए मोहनीयकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थानमें पाई जाती है और इसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है तथा आहारककाययोगका अन्तरकाल भी इतना ही है, अतः अकषायी जीवोंके कथनको आहारककाययोगियोंके समान कहा । यही बात यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्प-रायिक संयतोंके भी यही बात घटित हो जाती है, पर क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक संयतका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है अतः इसमें लोभकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण जानना चाहिये । उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब इसके आगे जघन्य अन्तरानुगमका अधिकार है ।

§ ६८० यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८१ शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कुछ जीवोंने पहले समयमें जघन्य स्थिति की । तदनन्तर दूसरे समयमें अन्तराल देकर पुनः तीसरे समयमें अन्य जीव जघन्य स्थितिको प्राप्त हुए इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है ।

⊗ उक्कस्सेण छुम्मासा ।

§ ६८२ कुदो ? खवगाणं छम्मासं मोचूण उवरि उक्कस्संतराणुवर्लमादो ।

⊗ सम्माभिच्छ्रुत-अर्थात्तण्णुधंधीणं जहयण्णठिदिविहृषिभरं जहयणे पणसमघो ।

§ ६८३ सुगममेदं ।

⊗ उक्कस्सेण चठवीसमहोररो सादिरेगे ।

§ ६८४ कुदो ? कारणाणुसुवकज्जुवर्लमादो । तं महा-सम्मणं पटियज्जंता सुक्कस्संतरं सादिरेगचठवीसमहोरराणि महा जादाणि तथा पदेसि मिच्छं च गज्जमाणं पि उक्कस्संतरं सादिरेगचठवीसमहोररमेच । मिच्छं च गंतूणं सम्मघ-सम्माभि-चाणि उम्भेज्जंताणं पि एवं चेष उक्कस्संतरं; अण्णाहामावस्स कारणाभावादो । ए मर्णताणुधंधिचसकं विसंबोएताणं संजुज्जमाणं च सादिरेयचठवीसमहोररं उक्कस्सस्स कारणं वचम्वं । सम्मणं पटियज्जंताणं चठवीसमहोररमेचुक्कस्संतरणिय कुदो ? सामाविपादो ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाळ बह महीना है ।

§ ६८२ शृङ्गा-उत्कृष्ट अन्तरकाळ बह महीना क्यों है ?

समाधान-क्योंकि वनकोंके बह महीना अन्तर काळको छोड़कर आगे उत्कृष्ट अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है ।

⊗ सम्पग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपन्य स्थितिविमक्तिबाणों अपन्य अन्तरकाळ एक समय है ।

§ ६८३ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाळ साधिक चौबीस दिन रात है ।

§ ६८४ शृङ्गा-उत्कृष्ट अन्तरकाळ साधिक चौबीस दिन रात क्यों है ?

समाधान-क्योंकि कारणके अनुरूप कर्म होता है । इसका फलसा इस प्रकार है—जि प्रकार सम्पत्त्वको प्राप्त होनेवाले चौबीस उत्कृष्ट अन्तरकाळ साधिक चौबीस दिनरात है व प्रकार मिध्यात्वको प्राप्त होनेवाले चौबीस मी उत्कृष्ट अन्तरकाळ साधिक चौबीस दिनरात है मिध्यात्वको प्राप्त होकर सम्पत्त्व और सम्पग्मिध्यात्वकी व्येक्तता करनेवाले चौबीस मी इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाळ होता है, क्योंकि इससे अन्व प्रकार हानेका और कोई कर्म नहीं पाया जाता । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंबोज्जा करनेवाले और अनन्तानुबन्धीचतुष्क संयुक्त होने वाले चौबीस साधिक चौबीस दिनरात प्रमास उत्कृष्ट अन्तरकाळ के कारणका कर्म करना चाहिये ।

शृङ्गा-सम्पत्त्वको प्राप्त होनेवाले चौबीस उत्कृष्ट अन्तरकाळ चौबीस दिन-रात प्रमास होता है यह विषय किस कारणसे है ?

समाधान-स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।



§ ६७९, अकसा० आहारभंगो । एवं जहाक्वादसंजदाणं । सुहुम० एवं चेव ।  
णवरि लोसंजल० अणुक्क० उक्क० छम्मासा । उवसम० सच्चपयडी० उक्क० ओर्धं ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

एवमुक्कस्सओ अतराणुगमो समत्तो ।

\* एत्तो जहण्णयंतरं ।

६८०. सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्ता-सम्मत्ता-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ति-  
अंतरं जहण्णेण एगसमत्तो ।

§ ६८१ कुदो ? पुब्बिल्लसमए जहण्णट्ठिदिं कादूण तदणंतरविदियसमए अंतरिय  
पुणो तदियसमए अण्णेसु जीवेसु जहण्णट्ठिदिमुवगएसु एगसमयंतरुवलंभादो ।

§ ६७९ अकषायियोंमें आहारककाययोगियोंके समान भग है । इसी प्रकार यथाख्यात संयतोंके जानना । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है किलोभसज्वलनकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है ।

विशेषार्थ—अकषाय अवस्थाके रहते हुए मोहनीयकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थानमें पाई जाती है और इसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है तथा आहारककाययोगका अन्तरकाल भी इतना ही है, अतः अकषायी जीवोंके कथनको आहारककाययोगियोंके समान कहा । यही बात यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्प-रायिक संयतोंके भी यही बात घटित हो जाती है, पर तृपक सूक्ष्मसाम्परायिक संयतका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है अतः इसमें लोभकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण जानना चाहिये । उपगमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब इसके आगे जघन्य अन्तरानुगमका अधिकार है ।

§ ६८०. यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८१ शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कुछ जीवोंने पहले समयमें जघन्य स्थिति की । तदनन्तर दूसरे समयमें अन्तराल देकर पुनः तीसरे समयमें अन्य जीव जघन्य स्थितिको प्राप्त हुए इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है ।

स्वयगसेदिवहणवारसहस्सेहि कोचसंगणस्स संखेज्जसहस्सध्यासंतरकासो किण्ण सम्पदे ?  
 ण, संसंज्जसहस्संतरकासेसु मेस्सिरेसु पि सादिरयबद्धमासमेचपमाणत्तादो । त कुदो  
 णम्पदे ? एवम्हादो चेव सुत्तादो ।

⊗ सोमसंजक्षणस्स जहय्यद्विदिविहृषिवर्तं जहय्येण एगसमयो ।

‡ ६८७ सुगममेदं ।

⊗ उहस्सेष धम्मासा ।

‡ ६८८ कुदो ? जस्स कस्स वि क्सायस्स उदएण स्वयगसंदिं षडिदनीषाणं  
 सोमस्स जहण्णद्विदिसंतकम्मुप्पत्तीदो । ज ससाणमेसो कमा, सोदएणेन स्वयगसंदिं  
 षडिदणं जहण्णद्विदिसंतकम्मुप्पत्तीदो ।

⊗ इत्थि षडुंसयवेवार्यं जहय्यद्विदिवि [ जिहत्ति ] वर्तं जहय्येण  
 एगसमयो ।

‡ ६८९ सुगममेदं ।

⊗ उहस्सेष संखेज्जापि बस्सापि ।

शुंका—यदि ऐसा है तो कमी मान, कमी मान माया और कमी मान माया सोमक  
 अयसे बीबोंकी हवारों बार उपक्रमेयीपर बढते रहनेसे कायसंज्जतनके संख्यात एबार बह महीना-  
 प्रमाण अन्तरकास क्यों नहीं प्राप्त जाता है ?

समाधान—यही संख्यात हवार अन्तरकासके मिला देने पर भी अयसंज्जतनके अत्यंत  
 अन्तरकासक प्रमाण सापेक्ष एक वर्ष ही होता है ।

शुंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है

⊗ सोमसंज्जतनकी अपन्य स्थितिविभक्तिनाल बीबोंका अपन्य अन्तरकास  
 एक समय है ।

‡ ६९० यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तर बह महीना है ।

‡ ६९१ शुंका—उत्कृष्ट अन्तर बह महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिस किसी भी कृपाके अयस उपक्रमेयी पर बढे हुए बीबोंके  
 नामके अपन्य स्थिति उत्कृष्टकी उत्पत्त हो जाती है । परन्तु सब कृपाओंका यह क्रम नहीं है,  
 क्योंकि, उक्त कृपाओंकी अपन्य स्वोदयसे ही उपक्रमेयीपर बढे हुए बीबोंके अपन्य स्थिति उत्कृष्टकी  
 उत्पत्ति होती है ।

⊗ स्त्रीवेद और नपुंसकवृत्की अपन्य स्थितिविभक्तिनाल बीबोंका अपन्य  
 अन्तरकास एक समय है ।

‡ ६९२ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तरकास संख्यात वर्ष है ।

❀ तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं जहणणट्टिदिविहृत्तिअंतरं जहणणेण एगसमओ ।

§ ६८५. सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं ।

§ ६८६ कोधजहणणट्टिदीए उक्कस्सतरकालो चत्तारि छम्मासा २४ माणस्स तिण्णि छम्मासा १८ मायाए दो छम्मासा १२ जेण होदि तेण तिण्हं संजलणाणमुक्कस्संतरकालो वासं सादिरेयमिदि ण घडदे, किंतु पुरिसवेद-माणसंजलणाणमेदमंतरं जुज्जदे; तत्थट्टारसमासमेत्तुक्कस्संतरखलंभादो त्ति ? होदि एसो दोसो जदि सच्चकालमुक्कस्संतराणं चेव संभवो होदि, ण पुण एवं संभवो उक्कस्संतराणमणुवद्धाणं जदि संभवो होदि तो दोण्हं चेय ण तिण्हं चदुण्हं वा । एवं कुदो णव्वदे ? तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं वासं सादिरेयमुक्कस्संतरं भण्णमाणसुत्तादो । तेणेदेसिं चदुण्हं कम्माणं दोण्हं छम्मासाणमुवरि को वि जिणदिट्ठभावो कालो अहिओ त्ति वत्तव्वं । मायासंजलणाए सपुण्णवेद्धमासा चेव उक्कस्संतरं, तत्थ कथं वास सादिरेयमेत्तंतरं जुज्जदे ? ण, तत्थ वि लोभोदएण दो-तिण्णिआदिवारं खवगसेट्ठिं चडाविदे सादिरेयवेद्धमासमेत्तुक्कस्संतरखलंभादो । जदि एवं तो माण-माया-लोभाणमेग-दो-तिसंयोगाणं

❀ तीन सज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाल्लोका जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ ६८५. यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

§ ६८६. शंका—चू कि क्रोधकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल चौबीस महीना, मानका अठारह महीना और मायाका वारह महीना होता है इसलिये तीन संज्वलनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष नहीं बनता, किन्तु पुरुषवेद और मान सज्वलनका साधिक एक वर्ष अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंका अठारह महीना प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ?

समाधान—यदि सर्वथा उत्कृष्ट अन्तरकालोंका ही संभव होता तो यह दोष होता परन्तु ऐसा संभव नहीं है । क्योंकि अनुवद्ध रूपसे उत्कृष्ट अन्तरकालोंकी यदि संभावना है तो दोकी ही है, तीन और चार की नहीं ।

शंका—ऐसा किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—तीन सज्वलन और पुरुषवेदके साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर कालको कहनेवाले उक्त सूत्रसे ही यह जाना जाता है । अतः इन चार कर्मोंका एक वर्ष और इसके ऊपर जितना अधिक जिन भगवान्ने देखा हो उतना उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

शंका—मायासंज्वलनका पूरा एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तर काल है, अतः उसका साधिक एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तरकाल कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोभके उदयसे दो, तीन आदि वार जीवोंको क्षपकश्रेणीपर चढ़ाने पर मायाका भी साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है ।

स्ववगसेद्विचदणवारसहस्सेहि कोभसंमन्वणस्स संखेज्जसहस्सद्वमासंतरकालो विष्णु लम्भदे ?  
ण, संलम्भसहस्सेवरकालसु पेत्तिदेसु वि सादिरयनद्वमासमत्तपमाणणादो । सं कुदो  
णम्भद ! एदम्भादो चेव सुघादा ।

⊗ सोमसंजलाणस्स जहणणद्विदिविहरीरभंतरं जहणणेण एगसमयो ।

§ ६८७ सुगममेद ।

⊗ उफस्सेण छम्मासा ।

§ ६८८ कुदो ? जस्स फस्स वि कसापस्स उदएण स्ववगसद्वि चद्विद्वीवणा  
सोमस्स जहणणद्विदिसंठकम्मुप्पचीदा । ण ससाणमेसो फमा, सादएणेव स्ववगसद्वि  
चद्विदाणं जहणणद्विदिसंठकम्मुप्पचीदा ।

⊗ इत्थि षण्णुसपवेदाणं जहणणद्विदिवि [ विद्वत्ति ] भंतरं जहणणेण  
एगसमयो ।

§ ६८९ सुगममेदं ।

⊗ उफस्सेण संखेज्जाणि यस्साणि ।

शुक्रा—यदि एसा है ता कमी मान, कमी मान माया और कमी मान माया सामक  
उदयसे जीवोंके हस्तों पर उपक्रमणीपर बहुत रहनेसे कायसंश्लसनके संगत ६ बार ६६ महीना-  
प्रमाण अन्तरकास क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—मही, संख्याएँ हजार अन्तरकालोंके मिला इन पर भी कायसंश्लसनके उत्कृष्ट  
अन्तरकालका प्रमाण साधिक एक वर्ष ही होता है ।

शुक्रा—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है

⊗ सोमसन्वत्तनफी नपन्य स्थितिनिमत्तिवात्त जीवोंका नपन्य अन्तरकास  
एक समय है ।

§ ६९० यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तर इह महीना है ।

§ ६९१ शुक्रा—उत्कृष्ट अन्तर इह महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिस किसी भी कयायके उदयसे उपक्रमणी पर वह हुए जीवोंके  
सामके नपन्य स्थिति सत्कमही उत्पन्न हो जाती है । परन्तु वार कयायोंका यह क्रम नहीं है,  
क्योंकि, वा कयायोंकी अपक्षा स्वाहयसे ही उपक्रमणीपर वह हुए जीवोंके नपन्य स्थिति सरस्यकी  
व्यति होती है ।

⊗ स्त्रीयद् और नपुंसपचदधी नपन्य स्थितिनिमत्तिवात्त जीवोंका नपन्य  
अन्तरकास एक समय है ।

§ ६९२ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तरकास सत्पान वप है ।

§ ६९०. कुदो, अप्पसत्थवेदाणमुदएण खवगसेहिं चडमाणजीवाणं पाएण संभवा-  
भावादो ।

§ ६९०. शका—उत्कृष्ट अन्तरकाल सख्यात वर्ष क्यो ह ?

समाधान—क्योंकि अप्रशस्त वेदोंके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढनेवाले जीव प्रायः नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी, तथा चारित्र मोहनीयकी क्षपणाके समय आठ कपाय और छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति नियमसे होती है और दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण कहा । यद्यपि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी भी जघन्य स्थिति होती है पर यह उद्वेलना प्रकृति है, अतः उद्वेलनाके समय भी इसकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका अन्तरकाल अलगसे कहा है । ऐसा नियम है कि कोई भी जीव यदि सम्यक्त्वको प्राप्त न हो तो साधक चौबीस दिनरात तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होगा । तत्पश्चात् कोई न कोई जीव सम्यक्त्वको अवश्य ही प्राप्त होगा । इस परसे निम्न चार बातें फलित होती हैं ( १ ) सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वको न प्राप्त हों तो साधक चौबीस दिन तक नहीं प्राप्त होंगे । इसके बाद कोई न कोई सम्यग्दृष्टि जीव अवश्य ही मिथ्यादृष्टि हो जायगा । ( २ ) यदि कोई भी जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ न करे तो साधक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ करेंगे । ( ३ ) यदि कोई भी जीव अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना न करे तो साधक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना करेगा । ( ४ ) जिन जीवोंने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है वे यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उससे संयुक्त न हों तो अधिकसे अधिक साधक चौबीस दिनरात तक नहीं होंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करेगा । इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधक चौबीस दिनरात होता है तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है यह तो स्पष्ट ही है । तथा सञ्चलन क्रोध, सञ्चलन मान, सञ्चलन माया और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधक एक वर्ष बतलाया है सो उसका खुलासा इस प्रकार है—जो भी जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके लोभका उदय तो अवश्य ही होता है, शेष तीनका उदय हो और न भी हो । जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु शेष दोका उदय नहीं होता । जो जीव मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढता है उसके मान, माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु क्रोधका उदय नहीं होता । तथा जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढता है उसके क्रोधादि चारोंका उदय अवश्य होता है । अब यदि पहले छह महीनामें केवल लोभके उदय वाले जीवोंको, दूसरे छह महीनामें माया और लोभके उदयवाले जीवोंको, तीसरे छह महीनामें मान, माया और लोभके उदयवाले जीवोंको और चौथे छह महीनामें चारों कषायोंके उदयवाले जीवों को क्षपकश्रेणी पर चढ़ाया जाय तो क्रमसे लोभकी जघन्य स्थितिका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर मायाकी जघन्य स्थितिका एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर, मानकी जघन्य स्थितिका षेडू वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर और क्रोधकी जघन्य स्थितिका दो वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अतएव

⊙ पिरयगईप सम्मामिच्छुत्त-अर्थात्प्रायधीर्णं जहण्यदिवि [ विहसि ]

अतर जहण्येण एगसमभो ।

§ ६६१ सुगममेदं ।

⊙ ठहस्स चउधीसमहोरणे साविरेणे ।

§ ६६२ एदं पि सुगमं; ओपम्मि परुबिदत्तादो । गपरि ओपम्मि उचंतरादो एदेणतरेण सभित्सेसेण होदम्भं; एगगइमस्सिदण्ण दिदस्स चउगगइमच्छीर्णतरेण सह समाणचविरोहादो ।

⊙ सेसाणि जहा उवीरया तथा येदम्भाणि ।

§ ६९३ सेसाणि पयद्विअंतराणि अहा उवीरणाए एदांसि पयधीर्णं परुबिदाणि तथा परुबेदम्भं । संपहि जइवसहसुइविणिमायजुग्गिसुचस्स दसामासियस्स अत्यपरुवणं क्कण्ण तेण सुबिदत्यस्स परुवणइं स्मिइदुआरणं मणिस्तामो ।

§ ६९४ अहण्णतराजुग्गमेण इपिहो जिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्य

ओष मान और मापा संकलनकी अपेक्ष्य स्थितिका ओ उच्छ्र अन्तर साधिक एक वप कहा है गह नहीं बन सकता है यह एक धंका है जिसका बीरसेन स्वामीन प्रारम्भमें कल्पेक करके उसका इस प्रकारसे समाधान किया है । बीरसेन स्वामीका कहना है कि इस प्रकार छह छह महीनाके अन्तरकाल लगातार नहीं प्राप्त होत हैं । क्कचित् यदि प्राप्त भी हुए तो वा ही अन्तरकाल प्राप्त हो सकते हैं । दो अन्तरकालोंके पाव तीसरे और चौथे अन्तरकालका प्राप्त होना तो किसी भी हासतमें सम्भव नहीं है । यदि ऐसा न माना जाव तो जूयिस्तुक्कारने ओ तीन संकलनोंका साधिक एक वर्षमात्र उच्छ्र अन्तरकाल कहा है वह नहीं बन सकता है ।

⊙ नरकजातिमें सम्यग्मिध्यास और अनन्तानुषधीचतुष्ककी अपन्य स्थिति विमक्तिवासोंका अपन्य अन्तर एक समय है ।

§ ६६१ यह सूत्र सुगम है ।

⊙ तथा उच्छ्र अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है ।

§ ६६२ यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि इसका ओष परुवणके समय कवन कर आये हैं । किन्तु इतना विज्ञेय है कि वा अन्तर ओषमें कहा है उससे यह अन्तर कुछ अधिक होना चाहिये क्योंकि एक गतिक आश्रयसे वा अन्तर स्थित है उसकी चार गतिसे संकल्प रखनबाले अन्तरके साथ समानता माननेमें विरोध आता है ।

⊙ शप प्रकृतियोंका अन्तरकाल, जिस प्रकार जदीरणामें अन्तर कहा है उस प्रकार जानना चाहिये ।

§ ६६३ पहले ओ पाँच प्रकृतियों गिना आये हैं उन्हें छोड़कर शप प्रकृतियोंका जिस प्रकार जदीरणामें अन्तरकाल कहा है उस प्रकार उनका अन्तरकाल जानना चाहिये । इस प्रकार पतिवृत्तम आचार्यके मुखसे निकसे हुए वेदामयक जूयिस्तुक्के अर्थका कवन करके अब उससे सूचित होमबाले अर्थका कवन करनेके लिये उसके ऊपर सिली गई उचारणाका करते हैं ।

§ ६६४ अपन्य अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्वेश वा प्रकारका है—आपनिर्वेश और

§ ६९०. कुदो, अप्सत्थवेदाणमुदएण खवगसेहि चडमाणजीवाणं पाएण संभावावादो ।

§ ६९०. शका—उत्कृष्ट अन्तरकाल सख्यात वर्ष क्यो है ?

समाधान—क्योंकि अग्रशस्त वेदोंके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव प्रायः नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी, तथा चारित्र मोहनीयकी क्षपणाके समय आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति नियमसे होती है और दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण कहा । यद्यपि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी भी जघन्य स्थिति होती है पर यह उद्वेलना प्रकृति है, अतः उद्वेलनाके समय भी इसकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका अन्तरकाल अलगसे कहा है । ऐसा नियम है कि कोई भी जीव यदि सम्यक्त्वको प्राप्त न हो तो साधिक चौबीस दिनरात तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होगा । तत्पश्चात् कोई न कोई जीव सम्यक्त्वको अवश्य ही प्राप्त होगा । इस परसे निम्न चार बातें फलित होती हैं ( १ ) सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वको न प्राप्त हों तो साधिक चौबीस दिन तक नहीं प्राप्त होंगे । इसके बाद कोई न कोई सम्यग्दृष्टि जीव अवश्य ही मिथ्यादृष्टि हो जायगा । ( २ ) यदि कोई भी जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ करेंगे । ( ३ ) यदि कोई भी जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करेगा । ( ४ ) जिन जीवोंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है वे यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उससे सयुक्त न हों तो अधिकसे अधिक साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं होंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करेगा । इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है यह तो स्पष्ट ही है । तथा सञ्चलन क्रोध, संञ्चलन मान, संञ्चलन माया और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष बतलाया है सो उसका खुलासा इस प्रकार है—जो भी जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके लोभका उदय तो अवश्य ही होता है, शेष तीनका उदय हो और न भी हो । जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु शेष दोका उदय नहीं होता । जो जीव मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मान, माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु क्रोधका उदय नहीं होता । तथा जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके क्रोधादि चारोंका उदय अवश्य होता है । अब यदि पहले छह महीनाके केवल लोभके उदय वाले जीवोंको, दूसरे छह महीनाके माया और लोभके उदयवाले जीवोंको, तीसरे छह महीनाके मान, माया और लोभके उदयवाले जीवोंको और चौथे छह महीनाके चारों कषायोंके उदयवाले जीवोंको क्षपकश्रेणी पर चढ़ाया जाय तो क्रमसे लोभकी जघन्य स्थितिका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर मायाकी जघन्य स्थितिका एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर, मानकी जघन्य स्थितिका डेढ़ वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर और क्रोधकी जघन्य स्थितिका दो वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अतएव





ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्टकसायट-उण्णोक्क०-६-लोभसंज० ज० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणताणु०चउक्क० ज० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । इत्थि०-णवुंसं ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधचं । अज० णत्थि अंतरं । तिण्णिसज०-पुरिसं जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचिं०-पंचिं०-पज्ज०-तस-तमपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-ओरा-लि०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० उक्क० छम्मासा ।

§ ६९५. आदे० णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० उक्क० भंगो । सम्मत्त० ज० जह० एगस०, उक्क० वासपुधचं । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणताणु०-चउक्क० ज० जह० एगस० । उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज० । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचिं०तिरि०

आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय, छह नोकषाय और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुकललेश्यावाले, भव्य, सद्गी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

§ ६९५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जावोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान



ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्टकसायत्त-उण्णोक्क०६-लोभसंज० ज० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । इत्थि०-णवुंसं ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । तिण्णिसज०-पुरिसं जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचि०-पंचि०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-ओरा-लि०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेदं जह० उक्क० छम्मासा ।

§ ६९५. आदे० णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० उक्क०भंगो । सम्मत्त० ज० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० जह० एगस० । उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचि०तिरि०

आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कपाय, छह नोकपाय और लोभसञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । स्त्रीवेद और नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । तीन संञ्चलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पंचो मनोयोगी, पंचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुकललेख्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

§ ६९५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान

एगस०, बह० वासपुवच पछिदो० संस्ते० मागो ।

§ ६६६ एहिंदिपसु मिष्पत्त-सोखसक०-जबणोक० ज० अम० एतिय अतर । सम्मच०-सम्मापि० पधि०तिरि०अपज्जचमंगो । एधं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादर पुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०पज्जचापज्जच-आठ०-बादरआठ०-बादरआठ अपज्ज०-सुहुमआठ०-सुहुमआठ०पज्जचापज्जच-तेठ०-बादरतेठ०-बादरतेठअपज्ज०-सुहुम-तेठ०-सुहुमतेठ०पज्जचापज्जच-बाठ०-बादरबाठ०-बादरबाठअपज्ज०-सुहुमबाठ०-सुहुम-बाठ०पज्जचापज्जच-बादरवणप्फदिपचेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोदबादरसुहुमपज्जचा-पज्जच-कम्मइय० अणाहारि चि । णवरि पञ्चिमदोपदेसु सम्मच० जह० तिरिकलोपं । सम्म० सम्मापि० मज० अणुक्कस्सर्मगो । पधकाय०बादरपज्ज० पधि०तिरि०अपज्जचमंगो ।

बान्ता बाहिये । किन्तु इतनी विसेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तगुणस्वीकृत्यकी जयन्त्य स्थितिबिभक्तिबालोंका जयन्त्य अन्तर काल एक समय और छहछ अन्तर काल कम्मअवर्षपुत्रवत्त्व और पस्वापमके संख्यातर्षे मागप्रमाण है ।

विसेषार्थ—अनुविश आरिमें अधिकसे अधिक बधपुत्रवत्त्व काल तक छुटछुटपरेवक सम्पत्ति जीव अव्यक्त नहीं होता है और अनन्तगुणस्वीकी विसंबोजना नहीं होती है अतः इनमें सम्यक्त्व और अनन्तगुणस्वीकृत्यकी जयन्त्य स्थितिका जयन्त्य अन्तर एक समय और छहछ अन्तर बधपुत्रवत्त्वप्रमाण कदा । इसी प्रकार सर्वावसिद्धिमें अधिकसे अधिक पदपके संख्यातर्षे मागप्रमाण कस तक छुटछुटपरेवक सम्पत्ति जीव नहीं अव्यक्त हाता है और अनन्तगुणस्वीकी विसंबोजना नहीं होती है इसलिये इनमें एक प्रकृतिपार्थी जयन्त्य स्थितिका जयन्त्य अन्तर एक समय और छहछ अन्तर पस्वक संख्यातर्षे मागप्रमाण कदा । छेप केवत जुगम है ।

§ ६६६. परमिन्त्रयामे मिष्पत्त, सालह कपाम और ना नोऽप्यापकी जयन्त्य और अजयन्त्य स्थितिबिभक्तिबालोंका अन्तर काल नहीं है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्पत्तस्वीकी जयन्त्य पंचेन्द्रिय तर्षेक अपवर्षात्कोके समान भग है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बाहर पृथिवीकायिक, बाहर पृथिवीकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पयात्, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपवर्षात्, बलकायिक, बाहर बलकायिक बाहर बलकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म बलकायिक, सूक्ष्म बलकायिक पर्यात् सूक्ष्म बलकायिक अपवर्षात्, अग्निकायिक, बाहर अग्निकायिक, बाहर अग्निकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पयात्, सूक्ष्म अग्निकायिक अपवर्षात्, वायुकायिक, बाहर वायुकायिक, बाहर वायुकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पयात्, सूक्ष्म वायुकायिक अपवर्षात्, बाहर वनस्पतिकायिक प्रत्येक छरीर, बाहर वनस्पतिकायिक प्रत्येक छरीर अपवर्षात्, वनस्पतिकायिक, निगोद, बाहर वनस्पतिकायिक, बाहर वनस्पतिकायिक पयात् बाहर वनस्पतिकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पयात्, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपवर्षात्, बाहर निगाह बाहर निगोद पयात्, बाहर निगोद अपवर्षात्, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगाह पयात्, सूक्ष्म निगाह अपवर्षात् कम्मअपवर्षागी और अन्तहारक जीवके जानता बाहिये । किन्तु अन्तिम वा पदोंमें इतना विसेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी जयन्त्य स्थितिबिभक्तिबालोंका अन्तर काल सामान्य तर्षेकोके समान है और सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्पत्तस्वीकृत्यकी जयन्त्य स्थितिबिभक्तिबालोंका भग अनुरहृके समान है । पार्थो स्थावरकाव बाहर पर्यात् जीवोंमें पंचेन्द्रिय तर्षेक अपवर्षात्कोके समान भग है ।

§ ६६७ मणुसिणीसु सम्मामि०-अणंताणु०चउक० ओघं । सेस० ज० ज० एगस०, उक० वासपुधत् । अज० गत्थि अंतं । मणुसअपज्ज० छ्वीसपयडीणं उक्कस्सभगो । सम्म०-सम्मामि० जह० अज० जह० एयसमओ, उक० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ६९८, देवाणं णारगभंगो । एवं सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । अणुहिसादि जाव स्वप्पा त्ति एवं चेव । णवरि सम्म०-अणंताणु०चउक० जह० ज०

स्थिति उद्वेलनाके समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसयोजनाके समय पाई जाती है जिनका अन्तरकाल पहले नरकके समान यहा भी बन जाता है, अत इनके भगको पहली पृथिवीके समान कहा तथा सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति, जो एकेन्द्रिय स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको वाधवर पचेन्द्रियोंम उत्पन्न हुए हैं उनके, प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धकालके अन्तिम समयमें होती है । अब यदि नानाजीवोंकी अपेक्षा इसका अन्तरकाल देखा जाय तो पहली पृथिवीके नारकियोंके समान यहा भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है इसलिये तिर्यचोंमें सात नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका भंग पहले नरकके समान कहा । पचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंके पहले सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर दूसरी पृथिवीके समान कर आये हैं उसी प्रकार यहा पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके कर लेना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, इसलिये यहा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये यहा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है जो कि इनके अनन्तानुबन्धीकी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है । यही कारण है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिके अन्तरको अपने ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । मूलमें जो सब विकलेन्द्रिय आदि मार्गणए गिनाई हैं उनमें भी यही व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको पचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ६९७ मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थिति बिभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—मनुष्यनियोंके दर्शनमोहनीय और चारिःमोहनीयकी क्षणका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण पाया जाता है, अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । मनुष्यअपर्याप्तकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ६९८ देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । इसी प्रकार सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तक्षके देवोंके जानना चाहिये । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तषके देवोंके भी इसी प्रकार

एगस०, सक० वासपुषच पकिदो० संखे० भागो ।

१ ६६६ एद्विपसु मिच्छच-सोखसक०-अपणोक० अ० अज० एस्य अतर ।  
सम्मच०-सम्मामि० पंविं०तिरि०अपज्जचर्मगो । एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादर  
पुढविमपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०पज्जचापज्जच-आठ०-बादरमाठ०-बादरमाठ  
अपज्ज०-सुहुममाठ०-सुहुममाठ०पज्जचापज्जच-तेठ०-बादरतेठ०-बादरतेठअपज्ज०-सुहुम  
तेठ०-सुहुमतेठ०पज्जचापज्जच-आठ०-बादरमाठ०-बादरमाठअपज्ज० सुहुममाठ०-सुहुम  
माठ०पज्जचापज्जच-बादरबणप्फदिपयेअपज्ज०-बणप्फदि-णिगोदबादरसुहुमपज्जचा-  
पज्जच-कम्मइय० अणाहारि वि । जवरि पच्चिमदोपदेसु सम्मच० नइ० तिरिक्खोर्प । सम्म०  
सम्मामि० अम० अणुककस्सर्मगो । पक्काय०बादरपज्ज० पंविं०तिरि०अपज्जचर्मगो ।

जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्पत्तय और अनन्तलुब्धीबन्धुपक्षकी  
अपम्य स्थितिविभक्तिवास्तोका अपम्य अन्तर काल एक समय और एकसु अन्तर काल कम्मस्य  
वर्षपूयस्त्व और पस्यापमके संस्कारतर्षे भागप्रमास्य है ।

विशेषार्थ—अनुविद्य आदिमें अधिकसे अधिक वर्षपूयस्त्व काल तक कृतकृत्यवेदक  
सम्पत्तये जीव इत्यन्त नहीं होता है और अनन्तलुब्धीको विसंबोजना नहीं होती है अतः इनमें  
सम्पत्तय और अनन्तलुब्धी बन्धुपक्षकी अपम्य स्थितिका अपम्य अन्तर एक समय और एकसु  
अन्तर वर्षपूयस्त्वप्रमास्य कदा । इसी प्रकार सप्तविंशतिमें अधिकसे अधिक पक्षके संस्कारतर्षे  
भागप्रमास्य कस्य तक कृतकृत्यवेदक सम्पत्तये जीव नहीं उत्पन्न होता है और अनन्तलुब्धीकी  
विसंबोजना नहीं होती है इसलिये इनमें ३३ प्रकृतिवर्षकी अपम्य स्थितिका अपम्य अन्तर एक  
समय और एकसु अन्तर पक्षके संस्कारतर्षे भागप्रमास्य कदा । शेष कथन सुगम है ।

१ ६६६ एकत्रियामे मिध्यात्त, सालह कपय और ना नोऽप्यायाकी अरम्य और अत्रयन्य  
स्थितिविभक्तिवास्तोका अन्तर काल नहीं है । तथा सम्पत्तय और सम्पत्तिमप्यात्तकी अपेक्ष  
पंचत्रिय तर्षे अपवर्षिकके समान भग है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वायु पृथिवीकायिक,  
वायु पृथिवीकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पयात्, सूक्ष्म पृथिवी-  
कायिक अपवर्षात् जलकायिक, वायु जलकायिक, वायु जलकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म जलकायिक,  
सूक्ष्म जलकायिक पयात्, सूक्ष्म जलकायिक अपवर्षात्, अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक, वायु  
अग्निकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पयात्, सूक्ष्म अग्निकायिक  
अपवर्षात्, वायुकायिक, वायु वायुकायिक, वायु वायुकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
वायुकायिक पयात्, सूक्ष्म वायुकायिक अपवर्षात्, वायु वनस्पातकायिक मत्स्यक शरीर, वायु  
वनस्पातकायिक मत्स्यक शरीर अपवर्षात्, वनस्पातकायिक, निर्गोह, वायु वनस्पातकायिक, वायु  
वनस्पातकायिक पयात् वायु वनस्पातकायिक अपवर्षात्, सूक्ष्म वनस्पातकायिक, सूक्ष्म वनस्पाति-  
कायिक पयात्, सूक्ष्म वनस्पातकायिक अपवर्षात्, वायु निर्गोह वायु निर्गोह पयात्, वायु निर्गोह  
अपवर्षात्, सूक्ष्म निर्गोह, सूक्ष्म निर्गोह पयात्, सूक्ष्म निर्गोह अपवर्षात् कामण्यअपयागी और  
अनाहारक जीवके जानना चाहिये । किन्तु अन्तिम दो वर्षोंमें इतनी विशेषता है कि इनमें  
सम्पत्तयकी अपम्य स्थितिविभक्तिवास्तोका अन्तर काल सामान्य तर्षेको समान है और  
सम्पत्तय और सम्पत्तिमप्यात्तकी अपम्य स्थितिविभक्तिवास्तोका भग अनुरूपक समान है ।  
पंचो स्थावरकाय वायु पयात् जीवोंमें पंचत्रिय तर्षे अपवर्षात्कोके समान भग है ।

§ ७००. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० एइंदिय-  
भंगो । वेउन्वियमिस्स० सम्मत्त-सम्पामि० ज० देवोघं । सेस० उक्क०भंगो ।

§ ७०१. आहार०-आहारमिस्स० उक्क०भंगो० । एवमकसा०-जहाक्खाद-  
सजदे त्ति । इत्थि० सम्पामि०-अणंताणु०चउक्क० ओघं । मिच्छत्त-सम्मत्त-

**विशेषार्थ—**पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है तथा अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है यह पहले वतला आये हैं उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये, इसलिये एकेन्द्रियोंके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है । मूलमें सामान्य पृथिवी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि इनमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओष जघन्य स्थिति बन जाती है । तदनुसार यहाँ इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है जो सामान्य तिर्यंचोंके इस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके अन्तरके समान है । अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरको सामान्य तिर्यंचोंके समान कहा । तथा इन दोनों मार्गणाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है और यही यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट या अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल है, इसलिये यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके अन्तरको अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । पौर्वो स्थावरकाय वादर पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, अतः इनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ७००. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान भंग है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिवालोंका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियों का अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ—**औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना नहीं होती है इसलिये इनके उक्त प्रकृतियोंकी ओष जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर भादेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जिसका यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता । यही बात एकेन्द्रियोंके है । अतः औदारिक-मिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । सामान्य देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी सम्भव है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भंगको सामान्य देवोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये । स्त्रीवेदवालोंमें सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओषके समान है । मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ

वासक०-भवणोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वासपुपच । अज० गत्यि अंतर । एवं पनु सपवदार्य । पुरिस० मिच्छच०-सम्मच-सम्मामि०-अर्णतापु०-चरक० भोर्ष । वासक०-भवणोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वास सादिरेय । अज० गत्यि अंतर । भवणद० मिच्छच०-सम्मच-सम्मामि० अहक०-अहणोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वासपुपच । अज० एव पेव, बिसेसाभानादो । सेसाणं अह० भोर्ष । अज० अणु क्क०-मंगो ।

१ ७०२ कोच० भोर्ष । पवरि वावक०-अण्मोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वास सादिरेय । अज० गत्यि अंतर । एवं माप्प-माय० । एवं सोम० । पवरि सोमसंअल० भोर्ष ।

मोक्षायोकी जपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षे पूषकत्व प्रमाप्य है । तथा अजपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक अन्तर नहीं है । इसी प्रकार नपुंसक-वेषवालोक ज्ञानता चाहिये । पुरुषवेषवालोक मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्ममिथ्यात्व और अनन्ता गुणधी नपुंसकी अपेक्षा अन्तर काह्न ओपके समान है । तथा वाह्य कणाय और नौ मोक्षायोकी जपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्षे है । तथा अजपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक अन्तर नहीं है । अपगतवेषवालोक मिथ्यात्व सम्यक्त्व सम्ममिथ्यात्व आठ कणाय और आठ मोक्षायोकी जपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेपूषकत्व है । तथा अजपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक अन्तर मा इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये क्योंकि इससे इसमें कोई बिद्योपता नहीं है । तथा शेष प्रकृतिबोकी जपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक अन्तर ओपके समान है और अजपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक मंग अनुकृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—इक्षेमोहनीयकी जपया और वारिजमोहनीयकी जपयामे बीवेद और नपुंसकवर्षके लक्षक जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेपूषकत्व वतलाया है, अतः बीवेदी और नपुंसकवेषी बीबोके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वाह्य कणाय और नौ मोक्षायोकी जपम्य स्थितिज जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेपूषकत्व प्रमाप्य क्हा । पुरुषवेषमें ज्ञनकमेखीका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्षे है, इसलिय इसमें वाह्य कणाय और नौ मोक्षायोकी जपम्य स्थितिज जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्षे क्हा । अगतवेषमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्ममिथ्यात्व और आठ कणायोकी जपम्य और अजपम्य स्थिति उपशमनेखीकी अपेक्षा पार्थ जाती है । तथा जो बीष सावेद और नपुंसकवर्षके लक्षके साव जपकम्यपरि वद्वर्ष है उनके आठ मोक्षायोकी जपम्य और अजपम्य स्थिति पार्थ जाती है । आठ मोक्षायोकी अजपम्य स्थिति अगतवषी उपशमनेखीवालोक बीबोके मी सम्भव है पर इनका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेपूषकत्व है अतः अपगतवषमें लक्ष प्रकृतिबोकी जपम्य और अजपम्य स्थितिज जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेपूषकत्व क्हा । शेष कवन सुगम है ।

१ ७ २ शेषकणायवालोक अन्तर ओपके समान है । किन्तु इतनी बिद्योपता है कि नौ कणाय और आठ मोक्षायोकी जपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्षे है । तथा अजपम्य स्थितिबिमत्तिवालोक अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मान और मायाकणायवालोक बीबोके ज्ञानता चाहिये । ज्ञानकणायवालोक बीबोके मी इसी प्रकार



§ ७००. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० एंडंदि-  
भंगो । वेउन्वियमिस्स० सम्मत्त-सम्माभि० ज० देवोघं । सेस० उक्क० भंगो ।

§ ७०१. आहार०-आहारमिस्स० उक्क० भंगो० । एवमकसा०-जहाक्खाद-  
सजदे त्ति । इत्थि० सम्माभि०-अणंताणु० चउक्क० ओघं । मिच्छत्त-सम्मत्त-

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है तथा अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है यह पहले बतला आये हैं उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये, इसलिये एकेन्द्रियोंके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है । मूलमें सामान्य पृथिवी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु कर्मणकाययोग और अनाहारकोमे कुछ विशेषता है । वात यह है कि इनमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति बन जाती है । तदनुसार यहाँ इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है जो सामान्य तिर्यंचोंके इस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके अन्तरके समान है । अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरको सामान्य तिर्यंचोंके समान कहा । तथा इन दोनों मार्ग-णाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है और यही यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट या अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल है, इसलिये यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके अन्तरको अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । पाँचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, अतः इनके कथनको पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ७००. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान भंग है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिकालोंका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियों का अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ**—औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना नहीं होती है इसलिये इनके उक्त प्रकृतियोंकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जिसका यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता । यही बात एकेन्द्रियोंके है । अतः औदारिक-मिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । सामान्य देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी सम्भव है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भंगको सामान्य देवोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये । स्त्रीवेदकालोंमें सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है । मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ

§ ७०५ परिहार० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-सम्मामि० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुपत्त । अत्त० णत्थि मंतर् । अणंताणु० चउक्क० ओर्ध । सेसपपटि० उक्क० मंगो । सुहुम० तेवीसपपट्टी० ज० अत्त० ज० एगसममो, उक्क० वासपुपत्त । ओभसंजस० अन्नगद० मंगो । संजदासंमद० मिच्छत्त-सम्मत्त अणंताणु० चउक्क० ओर्ध । सम्मामि० सम्मत्तमंगो । सेसपपटि० उक्क० मंगो । अंसंजद० तिरिक्त्वोप । अत्ररि मिच्छत्त०-सम्मत्त० श्रीममंगो ।

§ ७०६ काउ० तिरिक्त्वोप' । किण्ण०-णील० एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तमंगो । तेउ०-यम्म० सम्मामिच्छत्तमोय । सेसपपटि० संमदासमदमंगो । अमवसि० अक्खीसपपट्टी० ओरास्मियमित्समंगो । खइय० एक्कवीसपपट्टी० ओर्ध ।

हे पर चपक श्रेणीमें इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व हे अतः ओषधे त्रिनकी अपत्य स्थितिका चपकश्रेणीमें वर्षपूषकत्वसे कम अन्तर सम्भव हे छत्ती अपत्य स्थितिका यहाँ अपत्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्वप्रमाण जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार पटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम हे ।

§ ७०७ परिहारविद्युदिसंपत्तौमि मिध्यात्व, सम्भक्त्य और सम्मिमिध्यात्वकी अपत्य स्थिति-विमत्तिसालोका अपत्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व हे । तथा अत्रापत्य स्थिति-विमत्तिसालोका अन्तर नहीं हे । अन्तःसुखशीलपुष्पकी अपेक्षा अन्तर ओषधे समान हे । तथा शेष प्रकृतियोंका मंग उत्कृष्टके समान हे । सूक्ष्मसंपत्तियोंमें त्रैस प्रकृतियोंकी अपत्य और अत्रापत्य स्थिति-विमत्तिसालोका अपत्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व हे । तथा ओभसंजसलका मंग अत्रगतवेदवासोके समान हे । संवत्तासंपत्तौमि मिध्यात्व, सम्भक्त्य और अन्तःसुखशीलपुष्पकी स्थिति-विमत्तिसालोका अन्तर आपके समान हे । सम्मिमिध्यात्वका मंग सम्भक्त्यके समान हे । तथा शेष प्रकृतियोंका मंग उत्कृष्टके समान हे । असंपत्तौमि सामान्य त्रियुक्तोंके समान मंग जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिद्योपता हे कि इनमें मिध्यात्व और सम्भक्त्यका मंग ओषधे समान हे ।

विशेषार्थ—परिहारविद्युदिसंपत्तौमि चादिकसम्भक्त्यसंज्ञकी प्रसिका अपत्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व हे, अतः यहाँ मिध्यात्व, सम्भक्त्य और सम्मिमिध्यात्वकी अपत्य स्थितिका अत्रापत्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व कदा । सूक्ष्मसंपत्तौमि मिध्यात्व चादि त्रैस प्रकृतियोंकी सम्भावना अपत्यममणीकी अपेक्षा हे और अपत्यममणीका अत्रापत्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व हे, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अपत्य और अत्रापत्य स्थितिका अत्रापत्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषकत्व कदा । संवत्तासंपत्तौके सम्मिमिध्यात्वकी वदतना नहीं होती, अतः यहाँ सम्मिमिध्यात्वका मंग सम्भक्त्यके समान कदा । असंपत्तौके दर्शनमाहनीयकी चपत्ता होती हे, अतः यहाँ मिध्यात्व और सम्भक्त्यका मंग आपक समान कदा ।

§ ७०८ कावोतसेहवात्तौमि सामान्य त्रियुक्तोंके समान मंग जानना चाहिये । कृष्य और नील सेहवात्तौमि भी इसीप्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिद्योपता हे कि इनमें सम्भक्त्यका मंग सम्मिमिध्यात्वके समान हे । पीत और पद्मसेहवात्तौमि सम्मिमिध्यात्वका अन्तर ओषधे समान हे तथा शेष प्रकृतियोंका मंग संवत्तासंपत्तौके समान हे । अमप्योव द्रव्यीष प्रकृतियोंका मंग

§ ७०३. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त-अणंताणु० एइंदिय-  
भंगो । एव मिच्छादि०-असण्णि त्ति । विहग० सम्मामिच्छत्तमोघं । सेसपयडीण-  
मुक्क०भंगो । णवरि सम्म० सम्मामि०भंगो ।

§ ७०४. आभिणि०-सुद० ओघं । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । एवं संजद०-  
सामाइय-छेदो०-सम्मादिट्ठि त्ति । ओहिणाणि०-ओहिदंसणी० एवं चेव । णवरि ज०  
ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । एवं मणपज्ज० ।

जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि लोभसज्वलनकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—यद्यपि क्रोध कषायमें सब प्रकृतियोंका कथन ओघके समान कहा है पर ओघमें अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, लोभसज्वलन और छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बतलाया है जो क्रोधमें किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है, क्योंकि क्षणभंगुरीमें क्रोधका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है अतः यहा उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा । मान, माया और लोभमें भी यह व्यवस्था बन जाती है । किन्तु क्षणभंगुरीमें लोभका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः लोभमें लोभसज्वलनका अन्तर ओघके समान ही जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०३ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा भंग एकेन्द्रियोंके समान है इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असही जीवोंके जानना चाहिए । विभगज्ञानियोंमें सम्याग्मध्यात्वकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें न तो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होता है और न अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसयोजना ही होती है अतः इनमें इन प्रकृतियोंके भगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । विभगज्ञानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इसमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान और सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०४. आभिनिवाधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानियोंमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिक-सयत, छेदोपस्थापनासयत और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जघन्य स्थितिबिभक्ति वालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती, अतः यहा सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान कहा । मूलमें सयत आदि और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें उक्तप्रमाण व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको आभिनिबोधिक-ज्ञानी आदिके समान कहा । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें यह व्यवस्था बन तो जाती

घेसम्भो ण पुच्छिन्सत्सो, उवपारमबर्द्धयिष्य अपट्टिदत्तादो । एवं जेद्वच्च वाप  
अणाहारए षि ।

एवं भावाणुगमा समत्तो ।

✽ सखिष्यासो ।

§ ७०९ उच्चदि षि एत्स पदज्झाहारो कायत्थो, मण्णाहा सुसद्दापगमाणुब  
वतीदो । कः सन्निकर्ष ? सन्निकृष्यन्ते प्रकृतयो यस्मिन् स सन्निकर्षो नामाधिकारः ।  
एदमहिपारसंभारण्यसुत्त' ।

✽ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियाए द्विदीए जो विहृत्तिओ सो सम्मत्त  
सम्मामिच्छत्ताण सिया कम्मसिओ सिया अकम्मसिओ ।

§ ७१० कुदो ? जदि अणादियमिच्छाइही सादियमिच्छाइही वा उप्पेन्सिद्  
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मिओ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियं द्विदिं बंपदि तो सम्मत्त  
सम्मामिच्छत्ताणमकम्मसिमा होदि । जदि पुण सादियमिच्छाइही अणुम्बन्निदसम्मत्त  
सम्मामिच्छत्तसंतकम्मो उक्कस्सियं द्विदि बंपदि तो संतकम्मसिओ षि दद्वयो ।  
संपदि असत्तकम्मियम्मि णरिय सण्णिकासो; भावस्स अभावेण सह संसंधविरोहादो ।

यह अर्थ यहाँ पर प्रधान है ऐसा प्रत्यक्ष करना चाहिये पहलेका अर्थ नहीं क्योंकि वह उपचारका  
अन्वय लेकर अर्थात् है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गसा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भाषाणुगम समग्र हुआ ।

✽ अब सभिकर्षको कहते हैं ।

§ ७११ 'सखिष्यासो' इह सूत्रमें 'उच्चदि' इस क्रियापर अन्वय करना चाहिये  
अन्वया सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं होसकता है ।

शंका—सभिकय किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें प्रकृतियों सन्निहृत की जाती हैं अर्थात् जिसमें प्रकृतियोंका उत्कृष्ट  
स्थिति आदिकी अपेक्षा संयोग कलजाया जाता है वह सन्निकय नामका अधिकार है ।

यह सूत्र अधिकारके सम्हालनेके लिये भाषा है ।

✽ जो मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिनासा है वह कदाचित् सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिष्यात्वके सत्कर्मवाला होता है और कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्वके  
सत्कर्मवाला नहीं होता है ।

§ ७१२ शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—यदि अर्थात् मिष्यात्तद्वि बीष वा जिसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्वसत्कर्म  
की उत्प्रेरणा कर दी है ऐसा सादि मिष्यात्तद्वि बीष मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बांधता है तो वह  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्वके सत्कर्मवाला नहीं होता है । और जिसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मि  
ष्यात्व सत्कर्मकी उत्प्रेरणा नहीं की है ऐसा सादि मिष्यात्तद्वि बीष यदि मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बांधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्वके सत्कर्मवाला होता है ऐसा जानना चाहिये । जिस  
बीषके कर्मकी सत्ता नहीं होती उसके सन्निकर्ष नहीं होता है, क्योंकि भाषा अभावेके

वेदय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०—अणताणु० चउक्क० आभिणि० भंगो । सेसपयडी० उक्क० भंगो । उवसम० अणंताणु० चउक्क० ज० अज० ज० एगस०, उक्क० चउवीस-महोरत्ताणि सादिरैयाणि । सेसपयडी० उक्क० भंगो । सासाण०-सम्मामि० उक्क० भंगो ।  
एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ ७०७. भावाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्साणुक्कस्सपदाणं सव्वेसिं को भावो ? ओदइओ; मोहोदएण विणा तेसिमसंभवादो । ण उवसंतकसाएण वियहिचारो, तत्थ सतस्स मोहणीयस्स उदओ णत्थि चेवे त्ति णियमाभावादो । भाविम्मि भूदोवयारेण तत्थ वि ओदइयभावुवलभादो । एवं णेद्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ७०८. जहण्णए पयद । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वपयडि० ज० अज० को भावो ? ओदइओ । कुदो ? सरीरणामकम्मोदएण कम्म-इयवगणक्त्वंधाणं कम्मभावेण परिणामुवलभादो । एसो अत्थो एत्थ पहाणो त्ति

औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है । ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका अन्तर ओघके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग आभिनिवोधिकज्ञानियोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है ।

विशेषार्थ—कृष्ण और नीललेश्यामें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता है अतः इनमें सम्यक्त्वके भंगको सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । पीत और पद्य लेश्यामें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ७०७ भावानुगम दो प्रकार है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट पदोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । क्योंकि मोहनीय कर्मके उदयके विना कोई पद नहीं होता है इसलिये सब पदोंमें औदायिक भाव है । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर उपशान्तकपायके साथ व्यभिचार प्राप्त होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि वहा पर विद्यमान मोहनीयका उदय नहीं ही होता है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि भाविकार्यमें भूत कार्यका उपचार कर देनेसे वहा भी औदायिक भाव पाया जाता है । इसी प्रकार अनाहारके मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ७०८ अब जघन्य भावानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । औदायिक भाव क्यों है ? क्योंकि शरीर नामकर्मके उदयसे कर्मण वर्णास्कर्णोंका कर्मरूपसे परिणमन पाया जाता है ।

येसम्बो ण पुञ्चिन्स्तयो, उवपारमवलीषिय अवट्टिदत्तादो । एषं नेदम्ब आब मजाहारए सि ।

एषं भावाणुगमा समचो ।

✽ सयिणयासो ।

§ ७०९ उच्चदि सि एत्य पदजम्भाहारो कायव्वो, मग्गहा सुचट्ठावगमाणुम षचीदो । कः सन्निकर्यः ? सन्निकृष्यन्ते प्रकृतयो यस्मिन् स सन्निकर्यो नामाधिकारः । एदमहियारसंमासम्भुत्त ।

✽ मिच्छत्तस्स उच्चस्सियाए द्विदीए जो विहसिओ सो सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणं सिया कम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ ।

§ ७१० कुदो ? अदि अणादियमिच्छाईही सादियमिच्छाईही वा उच्चम्लिद्द सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मिओ मिच्छत्तस्स उच्चस्सियं द्विदिं षंघदि तो सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणयकम्मंसिओ होदि । अदि पुण सादियमिच्छाईही अणुव्वेम्मिदसम्मत्त सम्मामिच्छत्तसंतकम्मो उच्चस्सियं द्विदिं षंघदि तो संतकम्मंसिओ सि दहम्मो । संघदि असंतकम्मियम्मि णरिय सण्णिकासो; भावस्स अभावेण सह संबंघिरोहादो ।

पर अर्थ परा पर प्रधान हे ऐसा प्रत्यक्ष करना चाहिये, परलक्षणा अर्थ नहीं क्योंकि वह उपलक्षणा आशय लेकर अवस्थित है । इसी प्रकार अनाहारक मगौया तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भाषणुगम समग्र हुआ ।

✽ अथ सन्निकर्यको कहते हैं ।

§ ७०६. 'सणियासो' इह सूत्रमें उच्चदि' इस क्रियापदका अभ्याहार करना चाहिये, अन्वया सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं होसकता है ।

शंका—सन्निकर्य' किसे करते हैं ?

समाधान—जिसमें प्रकृतियों सन्निकृत की जाती हैं अर्थात् जिसमें प्रकृतियोंका कृत्य स्थिति आदिकी अपेक्षा संयोग वतलाया जाता है वह सन्निकर्य नामका अधिकार है ।

यह सूत्र अधिकारके संग्रहणके लिये आया है ।

✽ जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिवामा है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवासा होता है और कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवासा नहीं हाता है ।

§ ७१० शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—यदि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव या जिसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसत्कर्म की वृत्तिसना कर ही है एसा सद्ये मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी वृत्त्य मिथितया बोधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवासा नहीं हाता है । और जिसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सत्कर्मकी वृत्तिसना नहीं की है एसा सद्ये मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वकी वृत्त्य मिथितया बोधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवासा होता है एसा जानना चाहिये । जिस जीवके कर्मकी सत्ता नहीं हाती वसते सन्निकर्य नहीं हाता है, क्योंकि मावज्ज अभावके

तत्थ संतकम्मियस्स सण्णियासपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि--

❀ जदि कम्मंसिओ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७११ कुदो ? मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदीए धद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-  
मुक्कस्सट्टिदीए वेदयसम्मादिट्ठिपढमसमए चेव समुप्पज्जमाणाए उप्पत्तिविरोहादो । ण  
च पढमसमए वेदगसम्माइट्ठिपडिवद्धं कज्जं मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिसतकम्मियमिच्छा-  
इट्ठिपडिवद्धं होदि; कज्ज-कारणणियमाभावप्पसगादो । तदो णियमा अणुक्कस्सा त्ति  
सद्दहेयन्वं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्टिदि सि ।

§ ७१२ एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिवंधकाले  
सम्मत्तट्टिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा दुसमयूणा तिसमयूणा वा ण होदि; सम्मत्तु-  
क्कस्सट्टिदिधारयवेदगसम्मादिट्ठिविदियसमए तदियसमए वा मिच्छत्तकम्मस्स वधा-  
भावादो । ण च मिच्छत्तपच्चएण वज्जमाणाणं पयडीणं तेण विणा वंधो अत्थि; अतक्क-  
ज्जत्तप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिवंधकाले सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्टिदीए  
सगसगुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणियाए होदव्वं । केत्तिएणूणा ? समयूण-

साथ सम्बन्धका विरोध है, अतः सत्कर्मवालोंके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं

❀ यदि वह जीव सत्कर्मवाला होता है तो नियमसे उसके इन दोनोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ७११ क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम  
समयमें ही होती है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय उभकी उत्पत्ति माननेमें विरोध  
आता है । और वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयसे सम्बन्ध रखनेवाला कार्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके साथ सम्बद्ध नहीं होसकता, अन्यथा कार्यकारण नियमके अभावका  
प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवालोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर दो समय-  
वाली एक स्थिति पर्यन्त होती है ।

§ ७१२ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम, दो समय  
कम या तीन समय कम नहीं होती है, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक वेदकसम्यग्दृष्टिके  
दूसरे या तीसरे समयमें मिथ्यात्व कर्मका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि मिथ्यात्वके  
निमित्तसे बधनेवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बिना भी बन्ध होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि  
ऐसा मानने पर वह मिथ्यात्वका कार्य नहीं होगा । अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त  
कम अवश्य होनी चाहिये ।

वेदगसम्पत्त जहण्णकालेण मिच्छत्त गंतुक्कस्ससत्तकिल्लेसावरुणवहण्णकालेण च । एककेण सम्पत्तसत्तकम्मिपण मिच्छाद्दिग्गा उक्कस्ससत्तकिल्लेसमापरिय पद्धमिच्छत्तुक्कस्सद्विदिग्गा सम्पजहण्णपदिग्गदग्गदग्गिक्कय वेदगसम्पत्तं मेत्तूण कयसम्पत्तुक्कस्सद्विदिग्गा अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमक्कोडाकोविमेत्तसम्पत्तुक्कस्सद्विदिग्गे कमेण अपद्विदिग्गसणाए जहण्णवेदगसम्पत्तद्विदिग्गेण कणियं करिय मिच्छत्तं गंतूण सम्पजहण्णकालेणानूरिदुक्कस्ससत्तकिल्लेसेण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवदाए एणियमेत्तेमेव कालेणुणत्तु वत्तमात्तो ।

५ ७१३ पुनो मिच्छत्तस्स समयुप्पुक्कस्सद्विदिग्गे वंधिय अबद्विद्विहृत्परद्विहृत्तकालेण अपद्विदिग्गसणाए कर्ण करिय वेदगसम्पत्तं मेत्तूण सम्पत्तुक्कस्सद्विदिग्गे समयुप्पुप्पाहय अबद्विद्विहृत्सम्पत्तमिच्छत्तदाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवदाए सम्पत्तद्विदी सत्तुक्कस्सद्विदिग्गे पेक्खिद्वण समयाहियअंतोमुहुत्तूण कणा होदि । एवं दुसमयूणमिच्छत्तुक्कस्सद्विदिग्गे वंधिय अबद्विद्विहृत्परद्विहृत्तसम्पत्तमिच्छत्तदाओ जहण्णियाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवदाए सम्पत्तद्विदीए सत्तुक्कस्सद्विदिग्गे पेक्खिद्वण दुसमयाहिय

**शुद्धा-कमळा प्रमाथ कित्ता है ?**

समाधान-एक समय कम वेदक सम्पत्त्वका बंधन्य कमल और मिष्यात्वको प्राप्त होकर उत्कृष्ट संकलेशके पूर्व करमेवात्ता बंधन्य कमल पे होनों कमल यहां कम का प्रमाथ है । जिसने उत्कृष्ट संकलेशके करके मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बांधा है ऐसे किसी एक सम्पत्त्व सत्त्वमेवासे मिष्याद्विधि बीबने मिष्यात्वसे अनुत्त होनेमें जगमेवासे सबसे बंधन्य काल तक मिष्यात्वमें रह कर वेदक सम्पत्त्वको प्राप्त किया और यहां सम्पत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके किया । अनन्तर वह बीब सम्पत्त्वकी अस्तगुहूर्त कम सत्तर कोडाकोडी सागध्रमाथ उत्कृष्ट स्थितिके कमसे अपास्थितिगतताके द्वारा वेदक सम्पत्त्वके बंधन्य कमल प्रमाथ कम करके मिष्यात्वमें गया और यहां उसने सबसे बंधन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलेशको पूरा करके मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बांधा इस प्रकार वेदक सम्पत्त्वके पहले समयसे लेकर यहां तकका काल ही यहां कम का प्रमाथ जामना चाहिये । अर्थात् इतम कालको सम्पत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे पटा देने पर जो स्थिति शेष रहे अधिकसे अधिक उतनी अनुत्कृष्ट स्थिति मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय समक है इससे और अधिक नहीं ।

५ ७१३ पुनो मिष्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके बांधकर और अपस्थित प्रतिमन्त कालके अपास्थितिगतताके द्वारा कम करके अनन्तर वेदक सम्पत्त्वको प्राप्त करके और वेदक सम्पत्त्वके पहले समयमें सम्पत्त्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट करके तथा सम्पत्त्व और मिष्यात्वके अपस्थित कालोंको कमसे व्यतीत करके जो मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बांधता है उसके मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्पत्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिके वैकल्ये हुए एक समय अधिक अस्तगुहूर्त कमल प्रमाथ कम जाती है । इसी प्रकार मिष्यात्व की जो समय कम उत्कृष्ट स्थितिके बांधकर अनन्तर प्रतिमन्तकाल, सम्पत्त्वकाल और मिष्यात्वकाल इन तीनों अपस्थित बंधन्य कालोंका कमसे बिता कर जो मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बांधता है उसके मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्पत्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट



तत्थ संतकम्मियस्स सण्णियामपरुवणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि--

❀ जदि कम्मसिओ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७११ कुदो ? मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदीए वद्धाए सम्मत-सम्माभिच्छत्ताण-  
मुक्कस्सद्विदीए वेदयसम्मादिद्विपढमसमए चेव समुप्पज्जमाणाए उप्पत्तिविरोहादो । ण  
च पढमसमए वेदगसम्माइद्विपडिवद्धं कज्ज मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिमतकम्मियमिच्छा-  
इद्विपडिवद्धं होदि; कज्ज-कारणणियमाभावप्पसगादो । तदो णियमा अणुक्कस्सा ति  
सद्दहेयव्वं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्त एमार्दि कादूए जाव एगा द्विदि स्ति ।

§ ७१२ एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधकाले  
सम्मत्तद्विदी सणुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा दुसमयूणा तिसमयूणा वा ण होदि; सम्मतु-  
क्कस्सद्विदिधारयवेदगसम्मादिद्विविदियसमए तदियसमए वा मिच्छत्तकम्मस्स वधा-  
भावादो । ण च मिच्छत्तपच्चएण वज्जमाणाणं पयढीणं तेण विणा बंधो अत्थि; अतक्क-  
ज्जत्तप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधकाले सम्मत-सम्माभिच्छत्तद्विदीए  
सगसणुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्त णिययाए होद्वं । केत्तिएणूणा ? समयूण-

साथ सम्बन्धका विरोध है, अतः सत्कर्मवालोके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं

❀ यदि वह जीव सत्कर्मवाला होता है तो नियमसे उसके इन दोनोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ७११, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम  
समयमें ही होती है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध  
आता है । और वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयसे सम्बन्ध रखनेवाला कार्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके साथ सम्बद्ध नहीं होसकता, अन्यथा कार्यकारण नियमके अभावका  
प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर दो समय-  
वाली एक स्थिति पर्यन्त होती है ।

§ ७१२ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम, दो समय  
कम या तीन समय कम नहीं होती है, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक वेदकसम्यग्दृष्टिके  
दूसरे या तीसरे समयमें मिथ्यात्व कर्मका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि मिथ्यात्वके  
निमित्तसे बधनेवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके विना भी बन्ध होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि  
ऐसा मानने पर वह मिथ्यात्वका कार्य नहीं होगा । अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त  
कम अवश्य होनी चाहिये ।

सकृत्सद्विद्विमि ऊणाभि करिय पंचिदूण ओदारेदम्बं । संपदि मिच्छत्तमस्सिदूण  
हेहा ओदारेदु ण सकृदे सम्भविमुद्धेण मिच्छाइदिणा पाविदसअइष्णाद्विदिसंत  
तिदि अइद्विदमइष्णादाहि यूणं सम्भत्तदिदी पत्ता पि ।

§ ७१६ संपदि सम्भत्तसंतकम्मियमिच्छाइदिमीये पेत्तु गुम्भष्णाए मिच्छत्तु  
कृत्सद्विदीए सह सम्भत्तहेदिमदिदीण सणियासो पुब्बदे । तं महा—तत्तय समया  
हियउम्भेष्णाकट्टयमेत्तमीवे भस्सिदूण सणियासपक्खणं कस्सामो । एत्तय ताव समयाहिय  
कट्टयमेत्तमीवाणं सम्भत्तदिदीए दीइत्तं पुब्बदे—पडममीवो मिच्छत्ताधुवदिदीवो समुष्णा  
सम्भत्तधुवदिदीए उवरि समययूष्णीरणादाहियसयलेगुम्भेष्णाकट्टयघारओ विदियमीवो सम  
युष्णीरणादाहियसमयूष्णेष्णाकट्टयण अहियसम्भत्तधुवदिदिघारओ उवियमीवा समयूष्  
णीरणादाहियदूमकगुम्भेष्णाकट्टयणमहियसम्भत्तधुवदिदिघारओ उवत्तयमीवो समयूष्  
णीरणादाहियतिसमयूष्णेष्णाकट्टयणमहियसम्भत्तधुवदिदिघारओ पंचममीवा समयूष्  
णीरणादाहियचदुसमयूष्णेष्णाकट्टयणमहियसम्भत्तधुवदिदिघारओ एणं गेदुम्बं मावसमया  
हियउम्भेष्णाकट्टयमेत्तमीवा पि । तए एदेसु मीयेसु ओ पडममीवो तेगुम्भेष्णाएगकट्टय

शेष धे उतना कम मिष्वात्तकी उच्छ्रित् स्थितिका एव्य करके सम्भत्तकी स्थितिओ पटाठ जाना  
बाहिरे । इसके बागे मिष्वात्तकी उच्छ्रित् स्थितिकी अपेसा सम्भत्तकी स्थितिकी जन्तकोवाकोबी  
सगरसे और नीचे उठारना शक्य नहीं है क्योंकि पाठ करने पर जिसके ( संक्षी पंचेन्द्रिय पर्यायके  
पोम्ब ) मिष्वात्तकी सबसे ज्यम्य स्थितिका सत्त्व है ऐसे सर्वविद्युत् मिष्वात्तके मिष्वात्तके ज्यम्य  
स्थितिसत्त्वकी अपेसा तीन अवस्थित ज्यम्य कर्तोंसे म्यून सम्भत्तकी स्थिति प्राप्त कर ली है ।

§ ७१६ अथ सम्भत्त सत्त्वमैवास्ते मिष्वात्तदि बीबका आशय लेकर उच्छ्रित्तमि मिष्वात्तकी  
उच्छ्रित् स्थितिके साथ सम्भत्तकी प्रवृत्तितसे नीचेकी स्थितियोंका सम्भिकपै करते हैं । जो इस  
प्रकार है—इस कथनमें पहले एक समय अधिक उच्छ्रित्तनाकाण्डकप्रमाण बीबोंका आशय लेकर  
सम्भिकपैका प्ररूपण करेगे । अतः पहा पर पहले एक समय अधिक आवावाकाण्डकप्रमाण बीबोंके  
सम्भत्तकी स्थितिका हीर्षत्व करते हैं—मिष्वात्तकी प्रवृत्तितसे जो सम्भत्तका प्रवृत्तित  
उत्पन्न होती है उसके ऊपर एक समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकसे अधिक पूरे उच्छ्रित्तनाकाण्डकका  
पारक प्रथम शोष है । एक समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकको एक समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकमें  
मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्भत्तकी प्रवृत्तितिका पारक दूसरा  
जीव है । एक समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकसे वा समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो  
प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्भत्तकी प्रवृत्तितिका पारक तीसरा जीव है । एक समय  
कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकको तीन समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे  
अधिक सम्भत्तकी प्रवृत्तितिका पारक चौथा जीव है । एक समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकको चार  
समय कम उच्छ्रित्तनाकाण्डकमें मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्भत्तकी प्रवृत्तितिका  
पारक पांचवां जीव है । इस प्रकार समवाधिक उच्छ्रित्तनाकाण्डकप्रमाण जीव प्राप्त होने  
तक इसीप्रकार कथन करते जाना बाहिरे । अब इन बीबोंमें जो पहला जीव है उसके द्वारा एक  
उच्छ्रित्तनाकाण्डकके पाठ करने पर सम्भत्तकी प्रवृत्तितसे एक समय कम सम्भत्तकी स्थिति

अतोमुहुत्तूणा होदि । एवं ति-चदुसमयादि जावावलियमुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिमूणं करिय णेदव्व ।

§ ७१४. संपहि आवाधाकंडएणसम्मत्तट्टिदीए इच्छिज्जमाणाए सव्वजहण्ण-सम्मत्तद्धाए सव्वजहण्णमिच्छत्तद्धाए च ऊणेण आवाहाकंडएण ऊणियं मिच्छत्तट्टिदिं वंधाविय पुणो पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए सम्मत्तुक्कस्सट्टिदिमतोमहुत्तूणसत्तरिमेत्तं पेक्खिदूण वट्टमाणसम्मत्तट्टिदी एगावाहा-कंडएणूणा होदि ।

§ ७१५. संपहि आवाहाकंडयस्स हेट्ठा इच्छिज्जमाणे दोहि अवट्टिदअंतोमुहुत्तेहि ऊणावाहाकंडएण समयाहिएण ऊणियं मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं वंधिय अवट्टिदजहण्ण-द्धाओ तिण्णि वि अधट्टिदिगलणाए कमेण गालिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए सम्मत्तट्टिदी सगुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण समयाहियआवाहाकंडएण ऊणा होदि । एव-मेदमत्थपदं चित्तेणावहारिय ओदारेदव्वं जाव णिव्वियप्पा अतोकोडाकोडिमेत्ता सम्मत्तट्टिदी जादा त्ति । णवरि जत्तिय-जत्तियआवाहाकंडएहि ऊणं सम्मत्तट्टिदि-मिच्छदि तत्तिय-तत्तियमेत्तावाहाकंडयाणि दोहि अवट्टिदजहण्णाद्धाहि परिहीणाणि

स्थितिको देखते हुए दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण कम होती है । इसी प्रकार तीन और चार समयसे लेकर एक आवली, एक मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष, एक महीना, एक ऋतु, एक अयन, एक वर्ष आदिको कम करके सम्यक्त्व और सम्यमिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति ले आना चाहिये ।

§ ७१४. अब मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी एक आवाधा काण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः सबसे कम सम्यक्त्वके कालको और सबसे कम मिध्यात्वके कालको आवाधाकाण्डकमेंसे कम करके जो शेष रहे उतने आवाधाकाण्डकसे कम मिध्यात्वकी स्थितिको बधा कर पुनः मिध्यात्वसे निवृत्त होकर और सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अनन्तर जो मिध्यात्वमें जा कर मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधता है उसके मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बधके समय सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोडाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वर्तमान सम्यक्त्वकी स्थिति एक आवाधाकाण्डक कम होती है ।

§ ७१५. अब मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय एक आवाधाकाण्डकसे नीचे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः समयाधिक आवाधाकाण्डकमेंसे दो अवस्थित अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालको कम करने पर समयाधिक आवाधाकाण्डकका जितना काल शेष रहे उतना कम मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बधा कर तदनन्तर तीनों ही अवस्थित जघन्य कालोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा क्रमसे गला कर जा मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधता है उसके मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक एक आवाधाकाण्डक काल प्रमाण कम होती है । इस प्रकार इस अर्थपदको अपने चित्तमें धारण करके सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक कम करते जाना चाहिये जब तक निर्विकल्प अन्तः कोडाकोड़ी प्रमाण सम्यक्त्वकी स्थिति प्राप्त हो । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय जहा जितने जितने आवाधाकाण्डकोंसे कम सम्यक्त्वकी स्थिति इच्छित हो वहा दो अवस्थित जघन्य कालोंको उतने उतने आवाधाकाण्डकोंमेंसे कम करने पर जो काल

अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । इत्थमयुत्तुदपावस्सियमेत्तसम्मचडिदिधारएण मिच्छसु-  
 ककस्सट्ठिदीए पवद्धाप अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । एवं गंतूण इत्थमयकालेण  
 सम्मराणिसेयट्ठिदिधारएण मिच्छसु ककस्सट्ठिदीए पवद्धाप चरिमो सण्णियासवियप्पो  
 होदि । एदस्स सुत्तस्स एसा संदिही ।

० ० ०	०२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००

⊗ एषरि चरिसुब्बेस्सणकंडयचरिमफालीए ऊया ।

§ ७१८ अहा सेसुब्बेस्सणकंडयसु पाणाधीव अस्सिदूण गिरंतरहाणाणि  
 क्खदाभि तथा चरिसुब्बेस्सणकंडयम्मि गिरंतरहाणाणि किण्ण सभम्वि ? ण, चरिम  
 अहण्युब्बेस्सणकंडयादो कम्मि वि नीये समयूणादिकमेण्णचरिसुब्बेस्सणकंडयासुवर्त्तमादा ।  
 उब्बेस्सणकण्डयफालीयो सव्वनीवेसु सरिसामो किण्ण होति ? ख, तासिं सरिसचे संते  
 सुवट्ठिदीए हेहा सांतरहाजुप्पचिप्पसंगादो । ण च एव; चरिमकंडयचरिमफालिं मोक्षूण  
 मण्णत्थ गिरंतरकमेण सण्णियासपरुक्कययमुक्केत्तेण सह विरोहादो । एवं पडमपरुक्कणा  
 समत्ता ।

विकल्प प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्वकी हो समय कम लब्धबलप्रमाण स्थितिको धारण करने-  
 वाले बीबके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके कल्प करने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त  
 होता है । इसी प्रकार आगे आकर सम्यक्त्वके एक निरपेक्षकी हो समय कालप्रमाण स्थितिका  
 धारण करनेवाले बीबके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके कल्प करने पर अन्तिम सन्निकल्प-  
 विकल्प प्राप्त होता है । इस सूत्रकी यह संदष्टि है । ( संदष्टि मूलमें देखिये । )

किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सन्निकर्षविकल्प अन्तिम उद्देशनाकाण्डककी  
 अन्तिम फालिसे रहित हैं ।

§ ७१८ शृङ्गा—त्रिस प्रकार श्रेय च्छेत्तना काण्डकमें मात्रा बीबोंकी अपेक्षा सन्निकर्षके निरन्तर  
 स्वान प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अन्तिम च्छेत्तनाकाण्डकमें निरन्तर स्वान कयी नहीं प्राप्त हात हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि किसी भी बीबके अन्तिम रूपमय च्छेत्तनाकाण्डकसे एक समय  
 कम आदि क्रमसे मूल अन्य अन्तिम च्छेत्तना काण्डक नहीं उपलब्ध होता है ।

शृङ्गा—च्छेत्तना काण्डककी फालिका सब बीबोंमें समाप्त क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं क्योंकि यदि इनके समान माना जाता है तो भ्रुचस्थितिके नीचे साम्तर  
 स्वानों की अपेक्षा प्रसंग प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि ऐसा मानने पर अन्तिम  
 काण्डककी अन्तिम फालिको छोड़ कर अन्य सब स्वानोंमें निरन्तर क्रमसे सन्निकर्ष कल्पन करने-  
 वाले इसी सूत्रके साथ विरोध आता है । इस प्रकार प्रथम प्ररूपणा समाप्त हुई।

पादिदे सम्मत्तधुवट्टिदीदो समयूणा सम्मत्तट्टिदी होदि । ताधे चेव मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए अवरो सणियासवियप्पो होदि । पुणो तदणंतरविदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए पादिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो दुसमयूणा होदि । ताधे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो होदि । पुणो तदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो तिसमयूणा । तत्थ तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो होदि । पुणो चउत्थजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो चदुसमयूणा । ताधे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो होदि । पंचमजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो पंचहि समएहि ऊणा । एदेण कमेण चरिमजीवेणुव्वेल्लकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो समयाहियउव्वेल्लणकंडएरूणा । ताधे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो लभदि । एवं पढमवारपरूवणा गदा ।

§ ७१७. एदं परूवणमवहारिय विदिय-तदिय-चउत्थादि जाव पलिदोवमस्स असंखे० भागमेत्तवारेसु उव्वेल्लणकंडए पादिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदि बंधावि यसणियासवियप्पा उप्पाएदव्वा । तत्थ चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए पादिदाए सम्मत्तट्टिदी सेसा समयूणुदयावलयमेत्ता होदि । ताधे मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए

प्राप्त होती है । और उसी समय मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-विकल्प प्राप्त होता है । पुनः तदनन्तर दूसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके घात करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे दो समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः तीसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे तीन समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः चौथे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे चार समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः पाचवें जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे पाच समय कम होती है । इसी क्रमसे अन्तिम जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर वहा सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे समयाधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण कम होती है । तथा उसी समय उसके मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । इस प्रकार प्रथमवार प्ररूयणा समाप्त हुई ।

§ ७१७. इस प्रकार इस पररूयणाको समप्त कर आगे दूसरी, तीसरी और चौथी बारसे लेकर पत्योपमके असख्यातवें भागवार उद्वेलनाकाण्डकोंका घात कराके और मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न कर लेने चाहिये । उसमें भी अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके घात करनेपर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति एक समय कम उदयावलिप्रमाण प्राप्त होती है । तथा उसी समय मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-

अण्यो सण्णियासत्रियण्यो हादि । दुसमयुणुदयावसियमेससम्मचद्विदिधारण मिय्चसु-  
ककस्तद्विदीए पवदाए अण्यो सण्णियासत्रियण्यो होदि । एवं गंतूय दुसमयफालेग  
सम्मचणिसेवद्विदिधारण मिय्चसु ककस्तद्विदीए पवदाए चरिमा सण्णियासत्रियण्यो  
होदि । एदस्स सुचस्स एसा संदिही ।

० ० ०	०२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००

⊗ पावरि चरिसुब्बेस्लणकडयचरिमफालीए ऊया ।

१७१८ दहा सेसुब्बेस्लणकडयसु णाणाभीम अस्सिदूण गिरंतरहाणाणि  
सदाणि तथा चरिसुब्बेस्लणकडयमि गिरंतरहाणाणि किण्ण सम्मति १ ण, चरिम  
अहण्णुब्बेस्लणकडयादो फमिह वि भीये समयूणादिकमेण्णुचरिसुब्बेस्लणकडयाशुवर्लमादो ।  
उब्बेस्लणकडयफालीमो सम्मभीवेसु सरिसामो किण्ण होंति १ ए, तासि सरिसचे संत  
धुवद्विदीए दहा सांतरहाणुप्पचिप्पसंगादो । ण च एव; चरिमकडयचरिमफालिं मात्तूण  
अण्यस्य गिरंतरकमेण सण्णियासपसुचयसुणैरेण सह विरोहादो । एवं पडमपण्णया  
समघा ।

विकल्प प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्वकी दो समय कम उद्भवशक्तिप्रमाण स्थितिके धारण करमे-  
वाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी वस्तुस्थितिके बन्ध करन पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर सम्यक्त्वके एक निकेकी दो समय अल्पप्रमाण स्थितिका  
धारण करनवाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी वस्तुस्थितिके बन्ध करन पर अन्तिम सन्निकर्ष-  
विकल्प प्राप्त होता है । इस सूत्रकी यह संदृष्टि है । ( संदृष्टि मूलमें हैतिय । )

किन्तु इतनी विद्योपता है कि ये सन्निकर्षविकल्प अन्तिम उद्देशनाकाण्डकी  
अन्तिम फालिसे रहित हैं ।

१७१८ सूत्रा—द्विस प्रकार सेव वदलना कडडकमें माना जीवोंकी अपवा सन्निकर्षके निरन्तर  
न्यान प्राप्त हावे हैं उसी प्रकार अन्तिम वदलनाकाण्डकमें निरन्तर स्वान कयी नहीं प्राप्त हात हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि किमी भी जीवके अन्तिम रूपमें वदलनाकाण्डकसे एक समय  
कम आदि क्रमसे मूल अन्य अन्तिम वदलना काण्डक नहीं उपलब्ध होगा है ।

सूत्रा—वदलना काण्डककी कसियां सब जीवोंमें समान क्यों नहीं हाती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि उनका समान माना जाता है तो धुवस्थितिके नीचे साम्प्र-  
स्वानों की उत्पत्तिके प्रमंग प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि एका मानन पर अन्तिम  
काण्डककी अन्तिम फालिको दाह कर अन्य सब स्वानोंमें निरन्तर क्रमसे सन्निकर्षका कथन करन-  
वाले इसी सूत्रके साथ विद्योप जाता है । इस प्रकार प्रथम प्रत्युपना समाप्त हुई ।

**विशेषार्थ**—सन्निकर्ष दो या दो से अधिक वस्तुओंके सम्वन्धको कहते हैं। प्रकृतमें मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंका प्रकरण है, जिनके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद हैं। तदनुसार यहाँ मोहनीयकी किस प्रकृतिकी कौन-सी स्थितिके रहते हुए उससे अन्य किस प्रकृतिके कितने स्थिति विकल्प सम्भव हैं इसका विचार किया गया है। उसमें भी पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कितने स्थिति विकल्प किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह बतलाया है। यद्यपि यह सम्भव है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता न हो, क्योंकि जो अनादि मिथ्या दृष्टि है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो सकता है पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की सत्ता नहीं पाई जाती। इसी प्रकार जिसने सम्यक्त्वसे च्युत होनेके बाद सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके होने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। पर यहाँ सन्निकर्षका प्रकरण है इसलिये ऐसे जीवका ही ग्रहण करना चाहिये जिसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता हो। अब देखना यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वके कितने स्थिति विकल्प सम्भव हैं। वात यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अपने बन्धके समय मिथ्यादृष्टिके होती है और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक-सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें प्राप्त होती है जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि जिस मिथ्यादृष्टि जीवने वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त हो जाय तो उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे सक्रमित हो जाती है जो सम्यक्त्वप्रकृतिकी अपेक्षा उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। पर इस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर्मुहूर्त कम हो गया है। और हमें सर्वप्रथम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अधिकसे अधिक कौनसा स्थिति विकल्प सम्भव है यह लाना है, अतः पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवको अतिलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक वेदकसम्यक्त्वमें रख कर मिथ्यात्वमें ले जाय और वहाँ अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे। इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा नियमसे पूर्वोक्त दो अन्तर्मुहूर्त कम है। इससे सिद्ध हुआ कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है। फिर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका केवल यही विकल्प सम्भव नहीं है किन्तु इसके नीचे सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके दो समयवाली अनुत्कृष्ट स्थिति तक जितने भी विकल्प हो सकते हैं वे सब सम्भव हैं किन्तु कुछ अपवाद हैं जिसका उल्लेख हम यथास्थान करेंगे। इन सब स्थिति विकल्पोंको लानेके लिये आगे कही जानेवाली चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये। (१) मिथ्यात्वका स्थितिवन्ध (२) प्रतिभग्नकाल अर्थात् उत्कृष्ट सकलेशसे निवृत्त होकर सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिको प्राप्त होनेका काल (३) वेदकसम्यक्त्वका काल और (४) मिथ्यात्वमें जाकर उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त होनेका काल। अब पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम, दो समय कम आदि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे अनन्तर नम्बर २ के प्रतिभग्नकालके भीतर उसे वेदकसम्यक्त्वके योग्य विशुद्धि प्राप्त करावे। इसके बाद नम्बर ३ के वेदकसम्यक्त्वके कालके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम पूर्ववद्ध स्थितिका सम्यक्त्वमें सक्रमण करावे। परचात् वेदक सम्यक्त्वमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस जीवको रखकर मिथ्यात्वमें

लेजाय और वहाँ नम्बर चारके काल द्वारा उत्कृष्ट संस्कारको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराये और इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर एक एक समय कम स्थितिका सन्निकर्ष प्राप्त करता जाय । यहाँ नम्बर २, ३ और ४ के काल तो अचरस्वित रहते हैं वन्में पटा-बकी नहीं होती किन्तु नम्बर एकमें जो मिथ्यात्वकी स्थिति बनी है उसमें एक एक समय पटता जाता है और इसीप्रिये सन्निकर्षके समय सम्यक्त्वकी स्थितिके भी एक एक समय पटता जाता है । इस प्रकार यह कम सम्यक्त्वकी नम्बर २, ३ और ४ के कालसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक बजता रहता है क्योंकि संघी पंचेन्द्रिय पर्यायके मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम स्थितिका बन्ध नहीं होता । अब सम्मर्सेसे जो नम्बर २, ३ और ४ के कालको कम किया है सो सन्निकर्षके समय तक इतना काल और कम हो जाता है अर्थात् उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति इन तीन कालोंसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण रहती है । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थितिके इतने सन्निकर्ष विकल्प तो पूर्वोक्त क्रमसे प्राप्त होत हैं किन्तु आगेके सन्निकर्ष विकल्प छोड़नाकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि संघी पंचेन्द्रिय पर्याय बीजके मिथ्यात्वका स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम न होनेके कारण संकल्पकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे कम स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है । फिर भी सम्यक्त्वके आगेके स्थितिबिकल्प माना बीजोंकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये क्योंकि एक-एक स्थितिबिकल्पके उत्तरोत्तरकाल यद्यपि अन्तमुत्तमप्रमाण होता है फिर भी स्थितिकाण्डकाल प्राप्त अन्तिम फलिके पतनके समय ही होता है इससे पहलेके उत्तरोत्तरा कालके समर्थमें तो स्थितिबिकल्पके पूरे निकेकोड़ा पतन न होकर उनके नियमित संख्या-बन्धे परमाणुओंका ही पतन होता है अतः एक बीजकी अपेक्षा छोड़नामें सम्यक्त्वकी स्थितिके सब सन्निकर्ष विकल्प नहीं प्राप्त हो सकते हैं और इसीप्रिये बीरसेन स्वामीने आगेके सन्निकर्ष विकल्पोंको प्राप्त करनेके लिये नाना बीजोंकी अपेक्षा कल्प किया है । उसमें भी यहाँ सब प्रथम सम्यक्त्वकी प्रवृत्तिसे एक समय कम हो समय कम आदि स्थितिबिकल्प प्राप्त करना है, क्योंकि तभी तो सम्यक्त्वके इन स्थितिबिकल्पोंके साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये जा सकेंगे, अतः छोड़नाके लिये यही स्थितियोंका प्रवृत्त करना चाहिये जिससे छोड़नाके होनेपर सम्यक्त्वकी प्रवृत्तिसे एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितिबिकल्प प्राप्त किये जा सकें । इसी प्रकार अन्तिम स्थितिबिकल्पकी अन्तिम फलिके पतन तक उत्तरोत्तर एक-एक समय कमके क्रमसे स्थितियोंको पटाये जाना चाहिये पर इतनी बिलेपता है अन्तिम स्थिति बिकल्पके प्रमाण सबैक एक समान है, अतः सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिबिकल्पके प्रमाण स्थिति-बिकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि माना बीजोंकी अपेक्षा भी यह सबके एकसी ही होगी । तत्परचात् सम्यक्त्वकी स्थितिके एक समय कम एक आशक्तिप्रमाण स्थिति बिकल्पके लेव रहन पर उनकी अपेक्षा भी तत्प्रमाण सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त कर लेना चाहिये । आगे अंक-संज्ञिकसे पूर्वोक्त क्रमके कुछासा करनका प्रकल किया जाता है—यहाँ चितने भी अंक दिने जा रहे हैं वे सब कास्यनिक हैं । इनसे केवल पूर्वोक्त क्रमके समझनेमें सहायता मिलती है अतः उनकी योजना की गई है ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति

१०००

वेदकसम्यक्त्व अथवा काल

१६

मिथ्यात्वकी प्रवृत्ति

२००

उत्कृष्ट संस्कार पूर्ण काल

१६

प्रतिभन्तकाल

१६



मिथ्यात्वकी बन्ध- स्थिति	प्र० भ० काल	सक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थिति	वे० स० काल	स० पू० काल	मि० की उ०स्थि० व० न स० सम्यक्त्वकी स्थि०
१०००	१६	६८४	१६	१६	६५२
६६६	"	६८३	"	"	६५१
६६८	"	६८२	"	"	६५०
६६७	"	६८१	"	"	६४९
६६६	"	६८०	"	"	६४८
६६५	"	६७९	"	"	६४७
६६४	"	६७८	"	"	६४६
३०२	"	२८६	"	"	२५४
३०१	"	२८५	"	"	२५३
३००	"	२८४	"	"	२५२
					स० की ध्रुवस्थिति

इतने सन्निकर्ष विकल्प सक्रमणसे प्राप्त हुए हैं। ये कुल सन्निकर्ष विकल्प ७०१ हुए। अब आगे अंकसदृष्टिसे उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्पोंके खुलासा करनेका प्रयत्न किया जाता है—

नाना जीव न, स्थितिकाण्डक १६, उत्कीरणकाल ४

नाना जीव	सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थिति	१ समय कम उ० का०	उत्तरोत्तर एक एक समय कम उ० काण्डक	सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति	उत्कीरणकाल और उद्वेलना काण्डकका याग	सम्यक्त्वकी उद्वेलनासे प्राप्त स्थिति
१ ला	२५२	३	१६	२७१	२०	२५१
२ रा	२५२	३	१५	२७०	२०	२५०
३ रा	२५२	३	१४	२६९	२०	२४९
४ था	२५२	३	१३	२६८	२०	२४८
५ वॉ	२५२	३	१२	२६७	२०	२४७
६ ठा	२५२	३	११	२६६	२०	२४६
७ वॉ	२५२	३	१०	२६५	२०	२४५
८ वॉ	२५२	३	९	२६४	२०	२४४

यहाँ जो उत्कीरणकालमें एक समय कम करके और उद्वेलनाकाण्डकमें उत्तरोत्तर एक एक समय कम करके अनन्तर इनके योगको सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिमें जोड़ा है सो नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति उत्तरोत्तर एक-एक समय कम बतलानेके लिये किया गया है। यहाँ उत्कीरणकालप्रमाण स्थिति तो अधःस्थिति गलनासे गल जाती है और उद्वेलना काण्डक-प्रमाण स्थितिका उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय घात हो जाता है। यही कारण है कि सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थितिमेंसे सर्वत्र उत्कीरणकाल और उद्वेलनाकाण्डक प्रमाण स्थितियों घटाकर बतलाई गई हैं। इसी प्रकार आगे भी उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्प ले

5 ७१६ संपदि विदियपयारेण सखियासपरुवणा कीरदे । तं ब्रह्मा—वेदग  
पाभोग्यमिच्छादिदिणा ब्रह्मिच्छतुकस्सहिदिणा सम्ब्रह्मणपदिहमाकासमन्त्रिय  
सम्मत घेतून मिच्छतदिदिसंक्रमे सम्मतस्सुकस्सहिदिं कादूष सम्ब्रह्मणसम्मत  
कासमन्त्रियेण मिच्छतं गंतून सम्ब्रह्मणमिच्छतकालेषुकस्ससंक्रियेसं पूरेतून  
मिच्छतुकस्सहिदीए पवदाए सम्मतुकस्सहिदी भंतोमुहुतूणा होदि । तदो अण्णेज

माने चाहिये । किन्तु अन्तिम अज्ञानाकाण्डके पात होनेपर अन्तः स्थितिबिहस्य नहीं प्राप्त होते क्योंकि अल्पम अज्ञानाकाण्डका प्रमाण सब बीबोंके समान है, अतः इसका पात होनेपर सबके एक ही स्थिति प्राप्त होती है । यथा—

नाना बीब	सम्बन्धकी सर्व स्थिति	उत्कीरणाकाल	अज्ञानाकाण्डक	अज्ञानासे प्राप्त सम्बन्धकी स्थिति
१ सा	२७	४	१६	७
२ रा	२७	४	१६	७
३ य	२७	४	१६	७
४ वा	२७	४	१६	७
५ वीं	२७	४	१६	७
६ ठा	२७	४	१६	७
७ डीं	२७	४	१६	७
८ बीं	२७	४	१६	७
				एक समय कम अज्ञानासिद्धि

यहाँ उत्कीरणा कासप्रमाण स्थितियों को अज्ञानस्थिति गहनताके द्वारा गहरी गई है, अतः इनकी अपेक्षा सन्निकर्ष बिहस्य बन जाते हैं पर अज्ञानाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका पात एक साथ हुआ है और सम्बन्धकी सर्व स्थितियोंमें विभिन्नता न होनेसे अज्ञानाकाण्डकपातसे नाना बीबोंके स्थितियों भी एकही ही प्राप्त हुई, अतः अज्ञानाकाण्डक १६ प्रमाण स्थितियों सन्निकर्षसे परे हैं । तथा अन्तमें प्रत्येक बीबके जो एक कम अज्ञानासिद्धिप्रमाण निकल बने हैं वे अज्ञानस्थितिगहनताके द्वारा गहरे जाते हैं और इस प्रकार उठने सन्निकर्षबिहस्य और प्राप्त हो जाते हैं । इस प्रकार अज्ञानासे कुल सन्निकर्षबिहस्य २३१ - १६ = २१५ प्राप्त हुए ।

5 ७१६ अब दूसरे प्रकारसे सन्निकर्षकी प्ररूपणा करते हैं, यथा इस प्रकार है—जिसने मिष्प्यात्वकी अज्ञान स्थितिका वन्ध किया है ऐसा कोई एक वेदकसम्बन्धके योग्य मिष्प्यात्वकी बीब मिष्प्यात्वसे अज्ञान होनेके सबसे अल्पम काल तक मिष्प्यात्वमें रहा पुनः वेदकसम्बन्धको प्ररूप करके पहले समझमें उसने मिष्प्यात्वकी अज्ञान स्थितिका संक्रम करके अज्ञानकी अज्ञान स्थिति की और ब्रह्म सम्बन्धके सबसे अल्पम काल तक रह कर मिष्प्यात्वमें प्राप्त हुआ । तदनंतर मिष्प्यात्वके सबसे अल्पम कालके द्वारा अज्ञान संक्रियेकी पूर्ति करके उसके मिष्प्यात्वकी अज्ञान स्थितिके वन्ध होन पर इस समय अज्ञानकी अज्ञान स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम हावी है ।

जीवेण वेदगसम्मत्तपाश्रोग्गेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिणा समयाहियसच्चजहण्णपडिहग्गाद्धमच्छिय सम्मत्त घेत्तूण सच्चजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय उक्कस्समकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए मम्मत्तोघुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्तट्टिदी समयाहियअतोमुहुत्तेण्णा होदि । पुणो अण्णेण जीवेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिणा दुसमयाहियपडिहग्गाद्धमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवण्णेण सच्चजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्टिदीओ संपहियसम्मत्तट्टिदी दुसमयाहियअतोमुहुत्तेण्णा होदि । एवं पडिहग्गकालं तिसमयाहिय-चदुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय सेससम्मत्त-मिच्छत्तजहण्णकाले अवट्टिदे कादूण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं वंधाविय पेदव्वं जाव जहण्णपडिहग्गकालादो उक्कस्सेण संखेज्जगुणं पावेदित्ति । तं परो मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं वंधाविय पेण्हदव्वं । पुणो उक्कस्सपडिहग्गकालम्मि जहण्णपडिहग्गकालं सोहिय सुद्धसेसमेत्तकालेण्णामिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्त गंतूणवट्टिटतिण्णिकाले अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्तट्टिदी अंतोमुहुत्तेण पडिहग्ग-

तदनन्तर जिसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ है ऐसा वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके समयाधिक सबसे जघन्य प्रतिभग्न कालतक मिथ्यात्वमें रह कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत करके उसने उत्कृष्ट सक्लेशकी पूर्ति की तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी सामान्य उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए इस समयकी सम्यक्त्वकी स्थिति एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कम होती है । तदनन्तर जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके दो समय अधिक जघन्य प्रतिभग्न काल तक मिथ्यात्वमें रहकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत किया और इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा इस समयकी सम्यक्त्वकी स्थिति दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कम होती है । इसी प्रकार मिथ्यात्वसे च्युत होनेके कालको तीन समय अधिक, चार समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाते हुए तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके शेष दो जघन्य कालोंको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराते हुए तब तक कथन करते जाना चाहिये जब जाकर मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल सख्यात गुणा प्राप्त होवे । इस प्रकार इसके प्राप्त होने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थिति ग्रहण करना चाहिये । पुनः मिथ्यात्वसे च्युत होनेके उत्कृष्ट प्रतिभग्न कालमेंसे मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य प्रतिभग्न कालको घटाकर जो शेष रहे उतने कालसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करके तथा प्रतिभग्न होकर और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तर जो मिथ्यात्वमें गया है और इस प्रकार तीन अवस्थित कालों तक तीनों स्थानोंमें रहा है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए इस समय सर्वधी सम्यक्त्वकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त और प्रतिभग्नकालविशेष प्रमाण कम होती है । यह सन्निकर्षविकल्प पुनरुक्त है । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक अन्य मिथ्यादृष्टि

काष्ठविसेसण च ऊणा होदि । एस वियप्पो पुणरुत्तो । तदो मण्णो बीत्तो वेदगपाभोग्ग  
 मिच्छादिदी पडिहमाकाष्ठविसेसेणुक्कस्सट्ठिदिं वंभिय समयाहिपसम्भनहण्ण  
 पडिहमाकाष्ठमिच्छय सम्मत्त पडिपजिमय मिच्छत्त गंतूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए  
 पवदाए पुम्भुत्तसम्मत्तट्ठिदी समयुणा इदि । एसो वियप्पो अपुणरुत्तो । एव  
 पुम्भं व दुसमयाहिय विसमयाहिपादिकमेण पडिहग्गकासो वद्वामयप्यो भाव जहण्णादो  
 उक्कस्समो संखेज्जगुणो धि । एयं वद्वामिय पुणो पुम्भविहाणेण नहण्णपडिहग्गद  
 मुक्कस्सपडिहमादादो सोहिय सुदससंख दुग्गेणुणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंभाभिय  
 भवट्ठिद्वद्वामा नहण्णामो तिण्णि वि गभिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवदाए पुणरुत्तो  
 सण्णियात्तवियप्पा होदि । एदेण कपेण मोदारेदुण णेदम्भं भाव णिम्भियत्तपुवट्ठिदी  
 पत्ता धि । पुणो पुम्भं व उम्भमण्णमस्सिदुण णेदम्भं भाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी  
 दुसमयकाष्ठपमाणा वेडिदा धि । एवमोदारिदे विदियपरुक्कणा समथा ।

§ ७२० संपदि उदियपरुक्कणा बुबद । तं जहा—वद्वगपाभोग्गमिच्छादिदिणा  
 वंभुक्कस्सट्ठिदिणा सम्भनहण्णपडिहमा-सम्मत्त-मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवदाए पुण  
 रगभियप्पो होदि, तिण्णं पि अदाणं जहण्णमात्तुपलंमादो । अपुणरुक्कवियप्पे इच्छिज्ज

बीज प्रतिमन्त्रकाष्ठविसेसे कम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वापकर भार मिच्छात्वसे च्युत हानके  
 एक समय अधिक सबसे अपन्य प्रतिमन्त्र काष्ठ तक मिच्छात्वमें रह कर सम्भक्तको प्राप्त हुआ ।  
 तथा पुनः मिच्छात्वको प्राप्त करके उस बीजके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध हान पर पूर्वोक्त  
 सम्भक्तकी स्थिति एक समय कम जाती है । यह ध्वनिरूपविकल्प अपुनरुत्त है । इसी प्रकार  
 पहलके समान दो समय अधिक और तीन समय अधिक इत्यादि क्रमसे मिच्छात्वसे निवृत्त हानका  
 काष्ठ तब तक पकाने जाना चाहिये जब तक अपन्य काष्ठसे उत्कृष्ट काम संख्यातगुणा प्राप्त होवे ।  
 इस प्रकार पुनः मिच्छात्वसे निवृत्त होनेके कालमें वदाकर पुनः पूर्वविधानानुसार मिच्छात्वसे  
 निवृत्त होनेके अपन्य काष्ठको मिच्छात्वसे निवृत्त हानके उत्कृष्ट कालमें पटाकर वा काष्ठ श्रेय  
 रहे इसके वृत्त कालसे कम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वाच कराक भार तीनों ही अपन्य  
 अवस्थित काष्ठोंका विना कर मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध हान पर समिन्तर्पण पुनरुत्त  
 विकल्प प्राप्त होता है । आगे इसी क्रमसे निर्बिकल्प भूवस्थितिके प्राप्त हान तक सम्भक्तकी  
 स्थितिके घटते हुए स्र जाना चाहिये । तदनन्तर पहलके समान उद्दतनाका भावय कर  
 सम्भक्तकी वा समय काष्ठपमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटते जाना  
 चाहिये । इस प्रकार सम्भक्तकी स्थिति घटान पर दूसरी मरुपसा समाप्त हुए ।

§ ७२० अब तीसरी मरुपयाकर करत है जो इस प्रकार है—दिसन मिच्छात्वकी उत्कृष्ट  
 स्थितिके बांधा है ऐसा वेदकसन्धक्तके योग्य मिच्छाट्टि बीज पुनः मिच्छात्वसे च्युत हानके  
 सबसे अपन्य प्रतिमन्त्र काष्ठके साथ तथा सम्भक्त और मिच्छात्वसे सबसे अपन्य काष्ठके साथ  
 जब मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करता है तब इसके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके  
 समय समिन्तर्पण पुनरुत्त विकल्प होता है क्योंकि यहां पर तीनों ही काष्ठ अपन्य पावे जाते हैं ।  
 अब अपुनरुत्त विकल्प इच्छित होने पर उसे इस विधिसे जाना चाहिये जो हम पकर है—



१७२२ संपदि दुसंभोगेण पंचमपक्षवर्णं वत्तइस्सामो । तं जहा—एक्केण पुब्बुप्पाइदसम्मत्तेण अविणहवेदगापाओग्गेण समयूणं मिच्छच्च कुस्सट्ठिदिं वंधिय पदि इग्गद समयाहियमच्छिय सम्मत्त मिच्छत्तइपामा अवट्ठिदामो मच्छिय मिच्छत्त कुस्सट्ठिदीए पबदाए अपुणरुत्तवियप्यो होदि । पुब्बुत्तसम्मत्तट्ठिदिं पेक्खिदण एसा वट्ठिदी दुसमयूणा होदि, दोषं णिसेगाणमेगवारेण वासिदत्तादो । पुणो अण्णेण बीवेण दुसमऊणमिच्छत्त कुस्सट्ठिदिं वंधिय समयाहियपदि इग्गदमवट्ठिदसम्मत्त मिच्छत्तदाओ मच्छिय मिच्छत्त कुस्सट्ठिदीए पबदाए सम्मत्तट्ठिदी विसमयूणा होदि । पुणो अवरेण बीवेण वट्ठिसमऊणमिच्छत्त कुस्सट्ठिदिणा समयाहियअहण्णपदि इग्गदमच्छिवेण सम्मत्त मिच्छत्तदाओ अवट्ठिदामो मच्छिय मिच्छत्त कुस्सट्ठिदीए पबदाए सम्मत्तट्ठिदी च दुसमयूणा हादि । एधं मिच्छत्तट्ठिदी च दुसमयूणादिक्रमेण ओदारेयत्वा ज्ञाव मिच्छत्त

सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम क्रिया गवा है और इस प्रकार सम्यक्त्वकी प्रवृत्ति प्राप्त होनेतक सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त किये गये हैं । भागे जिस प्रकार उद्वेगनासे प्रथम प्ररूपणमें सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त किये गये हैं वसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त कर लेना चाहिये । इस प्रकार दूसरी प्ररूपणा समाप्त हुई । तीसरी प्ररूपणमें प्रतिभक्त कासके समान सम्यक्त्वके कालमें एक-एक समय वद्वत्कर सम्यक्त्व प्रवृत्तिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । बिदेय विधि दूसरी प्ररूपणाके समान जानना चाहिये । चौथी प्ररूपणमें मिथ्यात्वके कालमें एक एक समय वद्वत्कर सम्यक्त्व प्रवृत्तिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । यहाँ भी बिदेय विधि दूसरी प्ररूपणाके समान जानना चाहिये । इस प्रकार एक संयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई क्योंकि इससे और अधिक बार एकसंयोगी प्ररूपणा संभव नहीं है ।

इस प्रकार एकसंयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

१७२२ अब दो संयोगसे पाँचवीं प्ररूपणाको बतलाते हैं जो इस प्रकार है—जिसने पहले सम्यक्त्व उत्पन्न किया था और जिसका बेवक सम्यक्त्वके प्रथम मिथ्यात्वका काल नष्ट नहीं हुआ है ऐसा कोई एक जीव एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित कालको व्यतीत करके उद्वेगतर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्द्य करता है तो उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके कल्पके समय सन्निकर्षका अपुनरुत्त विकल्प होता है । पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति वा समय कम है, क्योंकि यहाँ उसके दो निष्क एक ही धारमें गना दिये गये हैं । पुनः अन्य कोई जीव दो समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित काल तक तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालों तक क्रमसे मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्द्य करता है तो उसके इस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिको देखते हुए तीन समय कम होती है । पुनः जिसने तीन समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्द्य किया है ऐसा कोई एक जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक उपम्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा । पुनः सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंका व्यतीत करके यदि उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्द्य किया है तो इसके इस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिको देखते हुए चार समय कम होती है । इस प्रकार बेवकसम्यक्त्वके प्रथम करमके

माणे एदाए किरियाए आणेयचो । तं जहा—मिच्छत्तु कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-  
कालमवट्ठिदमच्छिय सम्मत्तकाल समयाहियं मिच्छत्तकालमवट्ठिदमच्छिय सफिलेसं  
पूरेदूणुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । पुणो जहा पडिहग्गकालं वड्ढाविय  
सम्मत्तट्ठिदी ओदारिदा तथा सम्मत्तकालं वड्ढाविय ओदारेद्व्या जाव णिव्वियप्प-  
धुवट्ठिदि त्ति । पुणो उव्वेल्लणमस्सिदूण ओदारेद्व्यं जाव सम्मत्तस्स एया ट्ठिदी  
दुसमयकालपमाणा चेट्ठिदा त्ति । एव एहीदे तदियपरूवणा समत्ता होदि ३ ।

६ ७२१ चउत्थपरूवणा संपहि वुच्चदे । तं जहा—पुणरुत्तवियपं पुव्वविहाणेण  
भणिदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय  
समयाहियमिच्छत्तद्धमच्छिदेण आऊरिदूक्कस्सफिलेसेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए  
अपुणरुत्तवियप्पो होदि । एवं मिच्छत्तद्धाए दुसमउत्तरादिकमेण वड्ढाविय ओदारिदे  
चउत्थपरूवणा समप्पदि ४ । एवमेगसंजोगपरूवणा गदा ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके मिथ्यात्वसे च्युत होनेके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें  
रह कर फिर सम्यक्त्वके एक समय अधिक अवस्थित कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर  
मिथ्यात्वके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें रह कर और उसी समय उत्कृष्ट सक्लेशकी पूर्ति करके  
जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । तदनन्तर पहले जिस प्रकार मिथ्यात्वसे पुनः च्युत होनेके  
कालको बढाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाया था उसी प्रकार यहा पर वेदकसम्यक्त्वके कालको  
बढाकर निर्विकल्प भ्रुवस्थितिके प्राप्त होने तथा सम्यक्त्वको स्थितिको घटाना चाहिये । पुनः  
उद्वेलनाका आश्रय लेकर सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होनेतक उसकी  
स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थिति घटाते हुए ले जाने पर तीसरी  
प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२१ अथ चौथी प्ररूपणाको कहते हैं जो इस प्रकार है—पहले पूर्वोक्त विधिसे पुनरुक्त  
विकल्पको कह ले । फिर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके फिर मिथ्यात्वसे पुनः च्युत  
होनेके अवस्थित कालतक और सम्यक्त्वके अवस्थित काल तक मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें रहकर  
फिर जो मिथ्यात्वके एक समय अधिक अवस्थित काल तक मिथ्यात्वमें रह कर और उत्कृष्ट  
सक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । इस प्रकार मिथ्यात्वके कालको दो  
समय अधिक आदि क्रमसे बढाकर सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौथी प्ररूपणा  
समाप्त होती है ।

विशेषार्थ—दूसरी प्ररूपणामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और प्रतिभम-  
कालमें एक-एक समय बढाकर सक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम किया  
गया है । तथा वेदक सम्यक्त्व काल और सक्लेश पूरण कालको अवस्थित रखा है । पर जब  
प्रतिभमकालमें एक-एक समय बढाते हुए उत्कृष्ट प्रतिभमकाल प्राप्त हो गया तब उत्कृष्ट प्रतिभम  
कालमेंसे जघन्य प्रतिभम कालको घटाकर जो शेष बचा उससे न्यून मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध कराया गया और पुनः जघन्य प्रतिभम कालमें एक-एक समय बढाते हुए सक्रमणसे प्राप्त





एवं छट्टपरूवणा गदा ।

§ ७२६, संपहि सत्तमभंगे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिट्ठिं समयूणादिकमेणो-  
दारिय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ करिय मिच्छत्तद्धं ममयादिकमेण  
वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिट्ठिं वंधाविय पुब्बं व जाणिट्ठण ओदारैद्वं जाव सम्मत्त-  
चरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे सत्तमपरूवणा समत्ता होदि ।

§ ७२७, संपहि अट्ठमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिट्ठिं वंधाविय पडिहग्ग-  
कालं सम्मत्तकालं च समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं  
कादूण ओदारैद्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे  
अट्ठमभंगपरूवणा गदा ८ ।

§ ७२८ संपहि णवमभंगपरूवणे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिट्ठिं वंधाविय  
पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय सम्मत्त-  
द्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिट्ठिं वंधाविय ओदारैद्वं जाव सम्मत्तस्स एया  
ट्ठिदी दुसमयकाला ट्ठिदा त्ति । एव णीदे णवमभंगपरूवणा समत्ता ९ ।

§ ७२९ संपहि दसमपरूवणे भण्णमाणे सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ समउत्तरादि-  
कमेण परिवाडीए वड्ढाविय पडिहग्गकालमवट्ठिदं करिय उभयत्थमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिट्ठिं

छठी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२६ अव सातवें भगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय कम  
इत्यादि क्रमसे घटाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित  
करके और मिथ्यात्वके कालको एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध करावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिका अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक पहलेके समान  
जानकर उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर  
सातवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२७ अब आठवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको और सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक और दो समय  
अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके सम्यक्त्वकी दो समय  
कालप्रमाण एक स्थिति प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी  
स्थितिके घटाने पर आठवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२८ जब नौवें भगकी प्ररूपणा करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक और दो  
समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी  
स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार विधिके करने पर नौवें भगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२९ अब दसवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर  
एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा



ध्रुवद्विदिं सम्मत्तग्गहणपाओग्गं पत्ता त्ति । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धमिच्छत्तध्रुव-  
द्विदिणा दुसमउत्तरपडिहग्गद्धमच्छिदेण सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्टिदाओ अच्छिय  
मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो अपुणरूत्तवियप्पो होदि । एवं सण्णियास-  
पाओग्गध्रुवद्विदिमवट्टिदेण कमेण वधाविय पडिहग्गद्धा तिसमयुत्तरादिकमेण वट्टा-  
वेयव्वा जाव सगजहण्णद्धादो संखेज्जगुणत्तं पत्ता त्ति । एवं वट्टाविदे पंचमवियप्पो  
समत्तो होदि ।

§ ७२३, अथवा पंचमवियप्पो एवमुप्पाएयव्वो । तं जहा—समयूणमिच्छत्तु-  
क्कस्सट्टिदिं वधाविय पडिहग्गद्धं चैव समयुत्तरादिकमेण जहण्णद्धादो संखेज्जगुणं चि  
वट्टाविय पुणो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमेगवारेण मिच्छत्तद्विदिमोदारिय पुणो तमवट्टिदं  
कादूण समयुत्तरादिकमेण पडिहग्गद्धं चैव संखेज्जगुणं चि वट्टाविय पुणो मिच्छत्तद्विदी  
अप्पिदद्विदीदो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमोदारेदव्वा । एव गेयव्वं जाव तप्पाओग्गमिच्छत्त-  
ध्रुवद्विदि त्ति । एवं णीदे विदियपयारेण पंचमवियप्पो परूविदो होदि ।

§ ७२४, संपहि तदियपयारेण पंचमवियप्पस्स परूवणा कीरदे । तं जहा—  
समयूणक्कस्सट्टिदिपवद्धमिच्छादिद्विणा समयाहियपडिहग्गद्धमच्छिदेण सव्वजहण्ण-

योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुव स्थितिके प्राप्त होने तक चार समय कम आदिके क्रमसे मिथ्यात्वकी  
स्थितिको घटाते जाना चाहिये । पुनः जिसने मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई  
एक अन्य जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक अवस्थित मिथ्यात्वमें रहा । पुनः सम्य  
क्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंतक सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर यदि उसने मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है तो उसके उस समय सन्निकर्षका एक अन्य अपुनरूक्त विकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगेके विकल्प लानेके लिये जो सन्निकर्ष के योग्य ध्रुवस्थितिको अवस्थित  
करके उसका बन्ध करता है और जब तक अपने जघन्यसे उत्कृष्ट विकल्प संख्यातगुणा नहीं प्राप्त  
होता है तब तक मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तीन समय अधिक आदिके क्रमसे  
बढ़ाता जाता है उसके इस प्रकार उक्त कालके बढ़ाने पर पाचवा विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७२३ अथवा पाचवा विकल्प इस प्रकार उत्पन्न करना चाहिये, जो इस प्रकार है—पहले  
एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो  
जघन्य काल है उसे पहली बार एक समय और दूसरी बार दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे  
संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त होने तक बढ़ाता जावे । तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट  
कालमेंसे जघन्य कालको घटा कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको एक साथ घटा  
कर उसे अवस्थित करदे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो जघन्य काल है उसे पहली बारमें  
एक समय, दूसरी बारमें दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त  
होने तक बढ़ाता जावे । तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको घटा  
कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको दूसरी बार घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वके  
योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक यह विधि करते जाना चाहिये । इस प्रकार इस  
विधिके करने पर दूसरे प्रकारसे पाचवें विकल्पकी प्ररूपणा होती है ।

§ ७२४, अब तीसरे प्रकारसे पाचवें विकल्पकी प्ररूपणा करते हैं, जो इस प्रकार है—एक  
समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला एक मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे

बंधाविय ओदारदेव्यं जाव सम्मत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकालपमाणा वेहिदा चि । एवमोदारिदे दसममंगपरुवणा गदा होदि १० ।

५७३० संपदि अत्तारि एगसंभोग मंगे च दुसंभोगमंगे च परुविय विसंभोग मंगपरुवणा कीरदे । ताए कीरमाणाए मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं समयूणादिकमेण बंधाविय पडिहंग-सम्मत्तदामो परिवाणीए समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण बंधाविय मिच्छत्तद मवहिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं बंधाविय णेदव्यं जाव सम्मत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकाला सेसा चि । एवं णीदे एवकारसमपरुवणा विसंभोगभगम्मि पडमा परुविदा होदि ११ ।

दोनो जगह मिध्यात्वकी एकद्वय स्थितिअ बन्ध करके सम्मत्त्वकी हा समय कालप्रमाण एक स्थितिक प्राप्त होने तक बसकी स्थितिको पढाये जाना चाहिये । इस प्रकार सम्मत्त्वकी स्थितिके पढाने पर दूसरे मंगकी प्रकृष्या समाप्त होती है ।

विशेषार्थ—यहाँ दो संयोगकी अपेक्षा पाँचवीं प्रकृष्या तीन प्रकारसे की है । पहले प्रकारमें बतलाया है कि मिध्यात्वकी एक एक समय स्थिति कम करता जाय और प्रतिभन्न कालमें सबैत्र एक समय बढ़ाने तथा छेप दो कालोंको अवस्थित रखे । दूसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि सबैत्र एक समय कम मिध्यात्वकी एकद्वय स्थितिक बन्ध करने और प्रतिभन्न कालमें एकसंभोगी दूसरी प्रकृष्यामें बतलाई विधिके अनुसार एक एक समय बढ़ाता जाय तथा छेप दो कालोंको अवस्थित रखे । तीसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि एक बार मिध्यात्वकी स्थिति पढाये और दूसरी बार प्रतिभन्न कालमें एक समय बढ़ाने तथा छेप कालोंको अवस्थित रखे । इस प्रकार इन तीनों प्रकारोंसे सम्मत्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त की जा सकती है । द्विसंयोगी ब्रूठी प्रकृष्यामें प्रतिभन्न कालके स्थानमें सम्मत्त्वके कालमें एक एक समय बढ़ाना चाहिये । छेप सब काल पाँचवीं प्रकृष्याके समान है । सतवीं प्रकृष्यामें प्रतिभन्न कालके स्थानमें मिध्यात्वके कालमें एक एक समय बढ़ाने । छेप सब काल पाँचवीं प्रकृष्याके समान है । द्विसंयोगी आठवीं प्रकृष्यामें सबैत्र मिध्यात्वकी एकद्वय स्थितिक बन्ध करके किन्तु प्रतिभन्नकाल और सम्मत्त्वकालमें एक-एक समय बढ़ाता जाय । नौवीं प्रकृष्यामें प्रतिभन्नकाल और मिध्यात्वकालको एक समय बढ़ाना चाहिये । तथा बसकी प्रकृष्यामें सम्मत्त्व और मिध्यात्वके कालको एक-एक समय बढ़ाने । इस प्रकार करनेसे सबैत्र सम्मत्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त हो जाती है । चारके द्विसंयोगी मंग कुल बह ही होते हैं, अतः यहाँ द्विसंयोगी प्रकृष्या बह प्रकारसे की गई है ।

५७३ इससे पहले बार एकसंयोगी मंग और द्विसंयोगी मंगोंकी प्रकृष्या करके अब तीनसंयोगी मंगोंकी प्रकृष्या करते हैं । इस तीन संयोगी मंगोंकी प्रकृष्याके करने पर मिध्यात्वकी एकद्वय स्थितिक एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करने और मिध्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तथा सम्मत्त्वके अवस्थित कालको उत्तरोत्तर एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाता जाये और मिध्यात्वके कालको अवस्थित करके मिध्यात्वकी एकद्वय स्थितिक बन्ध करके सम्मत्त्वकी दो समय प्रमाण एक स्थितिक छेप रखने तक सम्मत्त्वकी स्थितिको पढाये हुए होजाना चाहिये । इस प्रकार लेखने पर ग्याह्यकी प्रकृष्या और तीन संयोगी मंगमें पहली प्रकृष्याका काल समाप्त होता है ।

एवं छट्टपरूवणा गदा ।

§ ७२६. संपहि सत्तमभंगे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेणो-  
दारिय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ करिय मिच्छत्तद्धं' समयादिकमेण  
वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पुच्चं व जाणिदूण थोदारेदच्चं जाव सम्मत्त-  
चरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे सत्तमपरूवणा समत्ता होदि ।

§ ७२७. संपहि अट्टमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-  
कालं सम्मत्तकालं च समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं  
कादूण ओदारेदच्चं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे  
अट्टमभंगपरूवणा गदा = ।

§ ७२८ संपहि णवमभंगपरूवणे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय  
पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय सम्मत्त-  
द्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय थोदारेदच्चं जाव सम्मत्तस्स एया  
ट्ठिदी दुसमयकाला ट्ठिदा त्ति । एव णीदे णवमभंगपरूवणा समत्ता ६ ।

§ ७२९. संपहि दसमपरूवणे भण्णमाणे सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ समउत्तरादि-  
कमेण परिवाडीए वड्ढाविय पडिहग्गकालमवट्ठिदं करिय उभयत्थमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं

छठी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२६. अब सातवें भगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय क्रम  
इत्यादि क्रमसे घटाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित  
करके और मिथ्यात्वके कालको एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध करावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिका अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक पहलेके समान  
जानकर उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर  
सातवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२७. अब आठवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको और सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक और दो समय  
अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके सम्यक्त्वकी दो समय  
कालप्रमाण एक स्थिति प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी  
स्थितिके घटाने पर आठवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२८. जब नौवें भगकी प्ररूपणा करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक और दो  
समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी  
स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार विधिके करने पर नौवें भंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२९. अब दसवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर  
एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा

§ ७३४ संपदि पण्णारसमभियप्ये मण्णामाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदि समयूणादि कमेण वंधाविय पदिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तदाओ समपुघरादिकमेण पट्टाविय पुणो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदि वंधाविय ओदारोद्व्व खाव सम्मत्तदुसमयकालेगा हिदि पि । एवमोदारोदे पण्णारसमपरूबणा समत्ता होदि १५ ।

§ ७३५ अहया पण्णारसमपरूबणा एव वत्तम्भा । तं न्हा—पुमट्ठिदीए समयूणाए ऊचुक्कस्सट्ठिदिसमपरयणं काऊण पुणो पदिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्ताणं व्हण्ण दाम्मो समसगुक्कस्सट्ठामु जहण्णदाहिंत्तो सखेज्जगुणासु सोहिय रुपाहियं काड्ण पुप पुप एवेसिं पि समयाणं पतियागारेण रयणं काऊण पुणो अचारि अक्खे वहुसु पंतीसु इविय तत्थ अतिमअक्खो ताव संचारेयम्भो वावप्पणो समयपंतीए अंतं पत्तो चि । पुणो ठमक्खं तत्थेव इविय तदियवत्तो कमेण संचारेयम्भो वावप्पणो समय पतिपञ्चवसाणं पत्तो चि । पुणो तं पि तत्थेव इविय विदियक्खं कमेण संचारिय अप्पणो समयपतिरयणाए अंतम्मि जोजये । तदो तिण्हमद्धानं समयपतिरयणसंक्राणाए अतिया समया तथियमेत्तासमए एगवारेण पढमक्खो ओयारेयम्भो । पुणो सेस-ठिण्णि वि अक्खे तिण्हं पंतीणं पढमसयएसु ठविय पुणं व अक्खसंचार काऊण तदो तथियमेत्तं वेवद्धानं पुणो वि पढमक्खो पढमसमयपंतीए ओयारेयम्भो । एवं पुणो पुणो ताव कायम्भं वाव पढमक्खो पढमपंतीए अंतं पत्ता चि । पुणो सुसतिण्णि

§ ७३४ अब पन्द्रहवें विहृत्यक कवन करन पर मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिक एक समब क्त, दो समय क्त इत्यादि क्रमसे क्त्य करतं तथा मिष्यात्वसे निवृत्त होनेके काळको तथा सम्बन्ध और मिष्यात्वके काळको एक समय दो समय इत्यादि क्रमसे उत्तरोत्तर बढ़ाता जाव । पुनः मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका क्त्य करके सम्बन्धकी दो समय क्तप्रमाण एक स्थितिके शेष रहने तक क्तकी स्थितिके घटाता जावे । इस प्रकार सम्बन्धकी स्थितिके घटाने परपन्द्रहवीं प्ररूपया समाप्त होती है ।

§ ७३५ अबवा पन्द्रहवीं प्ररूपयाका इस प्रकार कवन करना चाहिये । आगे वरीको ताते हैं—उत्कृष्ट स्थितिमें एक समब क्त प्रवृत्तियिके क्त करके जो शेष रहे उसके समयको रचना करे । पुनः मिष्यात्वसे निवृत्त होनेके क्त्य काळको तथा सम्बन्ध और मिष्यात्वके क्त्य काळको क्त्य काळको संख्यातगुणे अपने अपने उत्कृष्ट काळमें ही घटाकर और एक अधिक करके अलग अलग इनके भी समयको पतिरूपसे रचना करे । पुनः चारों पतिरूपोंमें चार अक्षोंकी स्थापना करके उनमेंसे अन्तिम अक्षका अपनी समयपतिके अन्तका प्राप्त होने तक संचार करते रहना चाहिये । पुनः क्त अक्षको वही पर स्थापित करके तृतीय अक्षका अपनी समयपतिके अन्तको प्राप्त होने तक क्रमसे संचार करते रहना चाहिये । पुनः इस अक्षको भी वही पर स्थापित करके दूसरे अक्षके क्रमसे संचार करके अपनी समयपतिरचनाके अन्तको प्राप्त करवे । तदनन्तर तीनों अक्षोंकी समयपतिरचनाके जोड़ करन पर अन्तिम समय हो प्रथमाक्षको उतने समयप्रमाण एक बारमें उतारे । पुनः शेष तीनों ही अक्षोंको तीनों पतिरूपोंके पहले समयमें स्थापित करके और पहलेके समान अक्षसंचार करके तदनन्तर प्रथम अक्षको उतने समय प्रमाण प्रथम पतिरूपमें उतारे । इस प्रकार अब तक पन्द्रहा अक्ष पढ़ली पतिरूपों अन्तको प्राप्त होने तक एक पुनः पुनः इसी प्रकार

§ ७३१, वारसमभंगे तिसंजोगम्मि विदिण भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेण वंधाविय पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय सम्मत्तकालमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं पुव्वं व जाणिदूण ओदारदेदव्वं जाव सम्मत्तचरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे वारसमपरूवणा समत्ता होदि १२ ।

§ ७३२, संपहि तेरसमपरूवणे भण्णमाणे एक्को वेदगसम्मादिट्ठी मिच्छत्त-ट्ठिदिं समयूण-दुसमयूणादिकमेण वंधाविय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ परिवाडीए समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय पडिहग्गद्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय ओदारदेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे तेरसम-वियप्पो समत्तो होदि १३ ।

§ ७३३, संपहि चौदसमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्त मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तरादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय ओदारदेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एव-मोदारिदे चौदसवियप्पो समत्तो होदि १४ ।

§ ७३१, अब वारहवें भगके और तीन संयोगीमें दूसरे भगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे, और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ावे तथा सम्यक्त्वके कालको अबस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थितिके अन्तिम विकल्पके उत्पन्न होने तक पहलेके समान जानकर उसकी स्थितिको घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर वारहवें प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३२ अब तेरहवें प्ररूपणाके कथन करने पर एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करे और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अबस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करे । इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर तेरहवा विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७३३ अब चौदहवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ता जावे तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थितिको घटाता जावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौदहवें विकल्प समाप्त होता है ।

**विशेषार्थ**—चारके तीन संयोगी भग कुल चार होते, हैं । ग्यारहवें, वारहवें, तेरहवें और चौदहवें प्ररूपणामें ये ही चार भंग बतला कर सम्यक्त्वकी स्थिति उत्तरोत्तर न्यून प्राप्त की गई है । कहीं कितने संयोगसे स्थिति क्रम प्राप्त की गई है इसका खुलासा मूलमें किया ही है, अतः यहाँ उसे पुन. नहीं दुहराया गया है ।

केव कायम्बा, ण विदियादिपरुवणाओ वि ? ण एस दोसी, सणियासविपप्याज्हुप्पति-  
वियप्यपरुवणाइ' तप्यरुवणाओ । एवं सम्मामिच्छयस्स वि वत्थं, विससामावाओ ।

❁ सोलसकसायाणं किमुकस्ता अणुकस्ता ?

‡ ७३७ सुगममेद ?

❁ उद्धस्ता वा अणुद्धस्ता वा ।

‡ ७३८ यदि मिच्छयुक्तास्सिद्धीए वग्गमाणाए सोलसकसायाणमुक्तास्सिद्धि-  
वंधो होव्व तो उद्धस्ता । अह ण होव्व तो अणुद्धस्ता । उद्धस्तासिद्धसे संते किमुद्ध

गव सन्निकर्षविकस्योक्ते ही आगेकी प्ररूपण्याभोमें छपन्न करके बताया गया है अतः पक्षी प्ररूपणा ही करनी चाहिये द्वितीयादि प्ररूपणार्थे नहीं ?

समाधान—यह कोई शंका नहीं है क्योंकि सन्निकर्षविकस्य कितने प्रकारसे छपन्न करने का सफेद है इसका कवन करनेके लिये धन द्वितीयादि प्ररूपण्याभोका कवन किया है ।

इसो प्रकार सम्बन्धितविकस्यकी अपेक्षा ही सन्निकर्षविकस्य कहना चाहिये क्योंकि सम्बन्धितकी प्ररूपण्यासे सम्बन्धितविकस्यकी प्ररूपण्यामें कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—पञ्चदशी प्ररूपणा बार संयोगी है जो दो प्रकारसे बतलाई है । पहला प्रकार तो स्पष्ट है किन्तु दूसरे प्रकारमें कुछ विशेषता है जिसका बड़ा गुनासा किया जाता है । एक समय कम प्रवृत्तितसे म्युम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे कितने समय हों उनकी एक एक करके पक्षिणसे स्थापना करे । अन्तर अपन-अपने उत्कृष्ट कर्मोंसे अपन फालोके घटाने पर जो प्रतिभनकाल, सम्बन्धितकाल और मिच्छात्वकालके समयोंका प्रमाण आये उनकी ही प्रवृत्त-प्रवृत्त तीन पक्षियों करे । तदनन्तर अन्तिम पक्षिके समयोंकी गिनती कर ले । तदनन्तर सूचीब पक्षिके समयोंकी गिनती करे । तदनन्तर दूसरी पक्षिके समयोंकी गिनती करे । इस प्रकार गिनती करनेसे इन तीनों पक्षिकोंके समयोंकी बितनी संख्या हो कतना प्रथम पक्षिके समयोंमेंसे पटा है । तदनन्तर दूसरी और तीसरी आदि बार भी यही क्रम चालू रखे । इस प्रकार इस क्रमके करनेसे प्रवृत्तित पर्यन्त कितने सन्निकर्ष विकस्य होते है उनका प्रमाण आ जाता है । तथा इसके आगेके शेष विकस्य नाना बीजोंकी उद्गमनाकी अपेक्षा प्राप्त होत हैं । इस प्रकार इस प्ररूपणाके द्वारा कुछ सन्निकर्ष विकस्य प्राप्त हो जाते हैं । सोलहवीं प्ररूपण्यामें सम्बन्धितकी दो समय कालप्रमाण अपन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त प्रतिभोम क्रमसे सन्निकर्ष विकस्य छपन्न करके बतलाये गये हैं । इस प्रकार क्यपि पूर्वमें सोलह प्ररूपणाए बतलाई हैं पर उनसे सन्निकर्ष विकस्योमें म्युनाधिकता नहीं आती । वे प्ररूपणार्थे तो केवल सन्निकर्षविकस्य कितने प्रकारसे छपन्न किये जा सकते हैं इसमें चरितार्थ हैं । इनके कवन करनेका अन्य कोई प्रमाण नहीं है । इसी प्रकार सम्बन्धितविकस्यकी स्थितिकी अपेक्षासे ही सन्निकर्ष विकस्य कवन चाहिये ।

❁ मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे समय सोलह कपायोंको क्या उत्कृष्ट स्थिति होती है या अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ?

‡ ७३९ यह सुव सुगम है ।

❁ उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है ।

‡ ७४० यदि मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य होये समय सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य होता है ता उत्कृष्ट स्थिति होती है । और यदि नहीं होता है तो अनुत्कृष्ट



वि अक्वा पुञ्चं व संचारिय सगसगपंतीए अतम्मि कायञ्चा । एवं कदे द्विदिवधो-  
सरणेणुप्पणसञ्चसण्णियासवियप्पा लद्धा होंति । पुणो सेसवियप्पे णागाजीवाणमुञ्चे-  
ल्लणमस्सिदूण उप्पाएज्जो । एवमुप्पाइदे पण्णारसमपरूवणा समत्त होदि १५ ।

§ ७३६ सोलसमपरूवणे भण्णमाणे दुममयकालेगट्टिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सट्टिदीए पवद्धाए एगो सण्णियासवियप्पो । दोद्विदितिसमयसंतकम्मिएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सट्टिदीए पवद्धाए विदियो सण्णियासवियप्पो । तिण्णिट्टिदिचट्टुसमयसम्मत्तसंत-  
कम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए तदिञ्चो मण्णियासवियप्पो । एवं गंतूण  
समयूणावलियमेत्तद्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए समयूणावलियमेत्ता  
सण्णियासवियप्पा लब्भंति । पुणो आवलियञ्चभहियचरिमुञ्चेल्लणकंडयचरिमफालिमेत्त-  
द्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए आवलियमेत्ता सण्णियासवियप्पो  
होंति । इदो, पलिदोवमस्स असंग्वेज्जदिभागमंतरिदूण संपहियसण्णियासवियप्पु-  
प्पत्तीदो । एत्तो उवरिमसण्णियासवियप्पट्टाणाणि पडिलोमेण णिरतरमुप्पाइय घेत्तञ्चाणि  
जाव मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदि वंधिय सञ्चजहण्णपडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय मिच्छ-  
त्तुक्कस्सट्टिदि वंधिय द्विदो त्ति । एवं णीटे सोलसमपरूपणा समत्ता होदि । एदे सण्णि-  
यासवियप्पा सञ्चे वि पुणरुत्ता पढमपरूवणाए उप्पण्णाणं चेषुप्पत्तीदो । तदो पढमरूवणा

करना चाहिये । पुनः शेष तीनों ही अर्त्तोंका पहलेके समान सचार करके उन्हें अपनी अपनी पक्तिमें  
अन्तको प्राप्त कराना चाहिये । इस प्रकार करने पर स्थितिबन्धापसरणासे उत्पन्न हुए सभी  
सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । पुनः शेष विकल्प नाना जीवोंके उद्वेलनाका आश्रय लेकर  
उत्पन्न करना चाहिये । इस प्रकार उत्पन्न करने पर पन्द्रहवों प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३६, अब सोलहवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक  
स्थितिनिषेकसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक सन्निकर्षविकल्प  
होता है । सम्यक्त्वकी तीन समय कालप्रमाण दो निषेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्ध होने पर दूसरा सन्निकर्षविकल्प होता है । सम्यक्त्वकी चार समयप्रमाण तीन  
निषेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर तीसरा सन्निकर्षविकल्प  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर एक समय कम आवलीप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक समय कम आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं । पुनः  
एक आवली अधिक अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं, क्योंकि  
पत्योपमके असंख्यातवें भागको अन्तरित करके वर्तमानकालीन सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न हुए हैं ।  
इसी प्रकार आगे भी उपरिम सन्निकर्ष विकल्पस्थानोंको प्रतिलोमपद्धतिसे निरन्तर उत्पन्न करके  
तब तक ग्रहण करना चाहिये जब तक मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर  
मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके सबसे जघन्य कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य  
कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बन्ध करनेवाला प्राप्त होवे । इस प्रकार  
सन्निकर्षविकल्पोंके ले जाने पर सोलहवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

शुका—ये सभी सन्निकर्षविकल्प पुनरुक्त हैं, क्योंकि पहली प्ररूपणामें उत्पन्न करके बतलाये

बोध कायम्बा, न विदियादिपरुषणाओ ति ? न एस दोसो, सणियासदियप्याजप्यपि-  
नियप्यपरुषणाह तप्यरुषणादो । एषं सम्मामिच्छनस्त वि बन्धुं, बिसंसामाबादो ।

⊗ सोखसकसायाणं किन्नुकस्सा अणुक्कस्सा ?

‡ ७३७ सुगममद ?

⊗ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

‡ ७३८ यदि मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए बन्धुमाणाए साससकसायाणणुक्कस्सद्विदि  
बंधो होख तो उक्कस्सा । अइ ण होख तो अणुक्कस्सा । उक्कस्ससंकिखसे सते किमद्दु

गवे सन्निकर्षविकल्पोंको ही आगेकी प्ररूपणाओंमें उरपन्न करके पठाया गया है अतः पक्षी  
प्ररूपणा ही करनी चाहिये, द्वितीयादि प्ररूपणार्थ नहीं ?

समाधान—यह कोई शेष नहीं है क्योंकि सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उरपन्न किये  
जा सकत हैं इसका ज्ञान करनेके लिये न द्वितीयादि प्ररूपणाओंका ज्ञान किया है ।

इसो प्रकार सम्मिष्यात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्षविकल्प करना चाहिये क्योंकि सम्मत्त्वकी  
प्ररूपणासे सम्मिष्यात्वकी प्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—पन्द्रहवीं प्ररूपणा बार संयोगी है जो दो प्रकारसे बतलाई है । पहला प्रकार  
तो स्पष्ट है किन्तु दूसरे प्रकारमें कुछ बिशेषता है जिसका यहाँ ज़ुल्मासा किया जाता है । एक समय  
कम प्रुबस्थितिसे न्यून मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे जितने समय हों उनकी एक एक करके  
पेक्षितरूपसे स्थापना करे । अन्तर अपने-अपने उत्कृष्ट कालोंमेंसे अपम्य कालोंके पठाने पर जो  
प्रतिमन्काल सम्मत्त्वकाल और मिष्यात्वकालके समबोका प्रमाय आते उनकी भी प्रुब-प्रुबक  
तीन पेक्षित्य करे । तदनन्तर अन्तिम पेक्षितके समयोंकी गिनती कर से । तदनन्तर तृतीय पेक्षितके  
समबोकी गिनती करे । तदनन्तर दूसरी पेक्षितके समयोंकी गिनती करे । इस प्रकार गिनती करनेसे  
इम तीनों पेक्षितोंके समयोंकी जितनी संख्या हो उतना प्रथम पेक्षितके समयोंमेंसे पटा है । तद्  
नन्तर दूसरी और तीसरी आदि बार भी यही क्रम चालू रखे । इस प्रकार इस क्रमके करनेसे  
प्रुबस्थिति पर्यन्त कितने सन्निकर्ष विकल्प होते हैं उनका प्रमाय आ जाता है । तथा इसका ज्ञानके  
क्षेप विकल्प नाना बीबोंकी उत्पत्तिका अपेक्षा प्राप्त होय है । इस प्रकार इस प्ररूपणाके द्वारा कुछ  
सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । सोइहवीं प्ररूपणामें सम्मत्त्वकी दो समय कालप्रमाय  
अपम्य स्थितिसे केवल उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त प्रतिशोभ क्रमसे सन्निकर्ष विकल्प उरपन्न करके बतसाव  
गय हैं । इस प्रकार यद्यपि पूर्वमें सोइह प्ररूपणार्थ बतसाव हैं पर उनसे सन्निकर्ष विकल्पोंमें  
न्यूनताप्रिकृता नहीं आती । ये प्ररूपणार्थ तो केवल सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उरपन्न किये  
जा सकते हैं इसमें चरितार्थ हैं । इनके ज्ञान करनेका अन्य कोई प्रयाजन नहीं है । इसी  
प्रकार सम्मिष्यात्वकी स्थितिकी अपेक्षासे भी सन्निकर्ष विकल्प ज्ञान चाहिये ।

⊗ मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोइह कपायोंकी क्या उत्कृष्ट स्थिति  
होती है या अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ?

‡ ७३० यह सूत्र सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है ।

‡ ७३१ यदि मिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिज बन्धु होयें समय साध्य कालोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिज बन्धु होता है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है । और यदि नहीं होता है तो अनुत्कृष्ट

ऊणा संकमदि 'बंधे संक्रमदि' त्ति सुत्तेण सह विरोहादो । ण च कसायट्टिदिं सगुववि संकतं मोत्तण सगबंधेणेदासिं चदुण्हं पयडीणमुक्कस्सट्टिदिसत होदि; दस-पण्णारस-सागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्टिदीणमावलिपूणचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तविरोहादो ।

❁ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तणमार्दिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ।

§ ७४२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पडिहगसमए चेव इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलिआदिककतं कसायट्टिदि उक्कस्समित्थिवेदम्मि संकामिदे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छत्तं णियमा अणुक्कस्सं, तत्थ तस्सुक्कस्सट्टिदिबंधाभावादो । तदो अंतोमुहुत्तमच्छिय संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए तक्काले इत्थिवेदट्टिदी अण्णो उक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा

उनमें बन्धावलिसे कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण हो जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'बंधे सकामदि' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । यदि कहा जाय कि कषायकी स्थितिका इनमें संक्रमण होकर जो इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है उसे छोड़कर अपने बन्धसे इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व हो जायगा सो भी बात नहीं है; क्योंकि दस और पन्द्रह कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंके एक आवलीकम चालीस कोडाकोड़ी सागरप्रमाण होनेमें विरोध आता है ।

**विशेषार्थ—**संक्रमणके पाँच भेद हैं । इनमेंसे अधःप्रवृत्त सक्रम जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें ही अन्य सजातीय प्रकृतिका होता है । किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः सोलह कषायोंका पहले उत्कृष्टस्थिति बन्ध करावे और एक आवलि बाद स्त्रीवेद आदिका बन्ध कराते हुए उनमें एक आवलि कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण करावे । पुनः अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट संकलेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । इस प्रकार यह सब व्यवस्था देखनेसे विदित होता है कि जिस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उस समय स्त्रीवेद आदिकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहाँ बन्धकी अपेक्षा इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होनेका प्रश्न इसलिए नहीं उठता है, क्योंकि बन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व न प्राप्त होकर संक्रमणसे ही उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व प्राप्त होता है । इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कितना होता है यह स्पष्ट ही है ।

❁ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी तक होती है ।

§ ७४२ उसका खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके समयमें ही जो स्त्रीवेदका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदमे सक्रमण करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । और उस समय मिथ्यात्व नियमसे अनुत्कृष्ट होता है, क्योंकि ब्रह्मा पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और संकलेशकी पूति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको



सव्वकम्माणमकमेणुक्कस्सट्टिदिवंधो ण होदि ? ण, सगसगविसेसपच्चएहि विणा उक्कस्स-  
संकिलेसमेत्तेण चेत्र सव्वपयडीणमुक्कस्सट्टिदिवंधाभावादो । सव्वकम्माणं जे विसेसपच्चया  
तेसिमकमेण संभवो किण्ण होदि ? को एवं भणदि ण होदि त्ति, किं तु कयाइ होदि,  
सव्वकम्माणमकमेण कम्मिह वि फाले उक्कस्सट्टिदिवंधुवलंभादो । कयाइ ण होदि, कम्मिह  
वि फाले तदणुवलंभादो । के विसेसपच्चया ? जिणपडिमालयसंघाइरियपवयणपडिउल-  
दादत्रो असंखेज्जलोगमेत्ता ।

§ ७३९, अणुक्कस्सवियप्पपदुप्पायणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि ।

\* उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण पल्लिदोवमस्स असंखे-  
ज्जदिभागेपूणा त्ति ।

§ ७४०, तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं वंधंतो सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्स-  
ट्टिदिं वंधदि । एवं गंतूण समयूणावाहाकंडएणुक्कस्सट्टिदिं पि वंधदि । किमा-  
वाहाकंडयं णाम ? उक्कस्सावाहं विरलेज्जण उक्कस्सट्टिदिं समखंडं करिय विरलणस्सं

स्थिति होती है ।

**शंका**—उत्कृष्ट सक्लेशके रहते हुए एक साथ सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अपने अपने स्थितिबन्धके विशेष कारणोंको छोड़कर केवल उत्कृष्ट सक्लेशमात्रसे सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है ।

**शंका**—सब कर्मोंके जो विशेष प्रत्यय हैं उनका एक साथ पाया जाना क्यों संभव नहीं है ?

**समाधान**—ऐसा कौन कहता है कि उनका एक साथ पाया जाना संभव नहीं है । किन्तु यदि सब प्रत्यय एक साथ होते हैं तो कदाचित् होते हैं, क्योंकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसी कालमें पाया भी जाता है । और कदाचित् सब प्रत्यय नहीं भी होते हैं, क्योंकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसी कालमें नहीं भी पाया जाता है ।

**शंका**—वे विशेष प्रत्यय कौन हैं ?

**समाधान**—जिन प्रतिमा, जिनायल, संघ, आचार्य और प्रवचनके प्रतिकूल चलना आदि असंख्यात लोकप्रमाण विशेष प्रत्यय हैं ।

§ ७३६ अब अनुत्कृष्ट विकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पन्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७४० उसका खुलासा इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बाँधनेवाला जीव सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकी बाँधता है । इस प्रकार आगे जाकर वह जीव एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिकी भी बाँधता है ।

**शंका**—आवाधाकाण्डक किसे कहते हैं ?



ऊणा संकमदि 'बंधे संकमदि' त्ति सुचेण सह विरोहादो । ण च कसायट्टिदिं सगुवरि संकंतं मोत्त ण सगबंधेणेदासिं चटुण्हं पयडीणमुक्कस्सट्टिदिसत होदि; दस-पण्णारस-सागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्टिदीणमावलिगुणचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तविरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तण्णमार्दि कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ।

§ ७४२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलिआदिक्कंतं कसायट्टिदि उक्कस्समित्थिवेदम्मि संकामिदे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छच्चं णियमा अणुक्कस्सं, तत्थ तस्सुक्कस्सट्टिदिबंधाभावादो । तदो अंतोमुहुत्तमच्छिय संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पबद्धाए तक्काले इत्थिवेदट्टिदी अप्पणो उक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तणा

उनमें बन्धावलिसे कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण हा जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'बंधे संकामदि' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । यदि कहा जाय कि कषायकी स्थितिका इनमें संक्रमण होकर जो इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है उसे छोड़कर अपने बन्धसे इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि दस और पन्द्रह कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंके एक आवलीकम चालीस कोडाकोड़ी सागरप्रमाण होनेमें विरोध आता है ।

**विशेषार्थ—**संक्रमणके पाँच भेद हैं । इनमेंसे अधःप्रवृत्त सक्रम जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें ही अन्य सजातीय प्रकृतिका होता है । किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः सोलह कषायोंका पहले उत्कृष्टस्थिति बन्ध करावे और एक आवलि बाद स्त्रीवेद आदिका बन्ध करावे हुए उनमें एक आवलि कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण करावे । पुन अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । इस प्रकार यह सब व्यवस्था देखनेसे विदित होता है कि जिस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उस समय स्त्रीवेद आदिकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होता है । यहाँ बन्धकी अपेक्षा इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होनेका प्रश्न इसलिए नहीं उठता है, क्योंकि बन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व न प्राप्त होकर संक्रमणसे ही उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व प्राप्त होता है । इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कितना होता है यह स्पष्ट ही है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी तक होती है ।

§ ७४२ उसका खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके समयमें ही जो स्त्रीवेदका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदमें सक्रमण करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बि होती है । और उस समय मिथ्यात्व नियमसे अनुत्कृष्ट होता है, क्योंकि वहा पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और संक्लेशकी पूति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको

होदि । एस बियण्यो सोससकसायाणमुककस्सट्ठिदिं बधिदृणितियवेदम्मि संकामिदे  
 खदो । पुणो अण्णेगेण जीवेण सोमसकसायाणं बद्धसमयूणुककस्सट्ठिदिणा पटिहग्ग  
 समए पेव इत्थियवेदं बंधमाणेण तस्सुवरि संकामिदबबावसियादिककंतकसायट्ठिदिणा  
 तेण इत्थियवेदस्स समयूणुककस्सट्ठिदिधारएण तघो उवरि अबद्धिदमतोमुहुचमच्छिय  
 उककस्ससंकिल्लेमं पूरेदृण मिच्छच्चुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाप एसो इत्थियवेदस्स विदियबियण्यो  
 होदि, पुण्युत्तट्ठिदिं पेक्खिनदृण समयूणत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण सोससकसायाणं  
 बद्धसमयूणुककस्सट्ठिदिणा पटिहग्गसमए इत्थियवेदं बंधमाणेण तदुवरि संकामिदबबा  
 वसियादिककंतकसायट्ठिदिणा अबद्धिदमतोमुहुचमच्छिय उककस्ससंकिल्लेस गतूण मिच्छ  
 च्चुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाप इत्थियवेदस्स अण्णो बियण्यो होदि; पुण्युत्तट्ठिदिं पेक्खिनदृण  
 दुसमयूणत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धतिसमयूणसोससकसायुककस्सट्ठिदिणा  
 पटिहग्गसमए इत्थियवेदं बंधतण तदुवरि संकामिदबबानसियादिककंतकसायट्ठिदिणा  
 अबद्धिदमतोमुहुचमच्छिय उककस्ससंकिल्लेसं पूरेदृण मिच्छच्चुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाप  
 इत्थियवेदस्स अण्णो बियण्यो होदि; पुण्युत्तट्ठिदिं पेक्खिनदृण तिसमयूणत्तादो । एवं चदु  
 समयूण-बंधसमयूणादिकमेण सोससकसायाणमुककस्सट्ठिदिं बबाविय पटिहग्गसमए इत्थियवेदं  
 बबाविय बंधावसियादिककंतकसायट्ठिदिमित्थियवेदसरूपेण संकामिय मिच्छच्चुक्कस्सट्ठिदिं

बेलाये हुए अन्तर्मुहूर्त कम हाती है । यह विष्णु सोलह कपार्योंकी छत्तृष्ट (स्वतंत्र) बांधकर उसका  
 स्त्रीवर्गमें संक्रमण करने पर प्राप्त होता है । पुनः जिसने सोलह कपार्योंकी एक समय कम छत्तृष्ट  
 स्वतंत्रता बन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव जब प्रतिभन्न होनेके समयमें ही स्त्रीवर्गका  
 बन्ध करते वसमें बन्धावसिसे रहित कपायकी स्वतंत्र संक्रमण करता है तब वह जीवकी एक  
 समय कम छत्तृष्ट स्वतंत्रता धारक हाता हुआ इसके आगे अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक उतर कर  
 और छत्तृष्ट संकलेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी छत्तृष्ट स्वतंत्रता बन्ध करता है । इस समय उसके  
 जीववर्गका यह वृत्त विकल्प होता है, क्योंकि पहलेशकी स्वतंत्रता बलते हुए यह स्वतंत्र एक समय  
 कम है । पुनः जिसने सोलह कपार्योंकी दो समय कम छत्तृष्ट स्वतंत्रता बन्ध किया है और प्रतिभन्न  
 होनेके समयमें स्त्रीवर्गका बन्ध करते हुए वसमें बन्धावसिसे रहित कपायकी स्वतंत्रता  
 संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य जीव अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक उतर कर और छत्तृष्ट  
 संकलेशको प्राप्त हीकर यदि मिथ्यात्वकी छत्तृष्ट स्वतंत्रता बन्ध करता है ता इस समय इसके  
 स्त्रीवर्गका अन्य विकल्प प्राप्त हाता है, क्योंकि पहलेशकी स्वतंत्रता देवत हुए यह स्वतंत्र दो  
 समय कम है । पुनः जिसने सोलह कपार्योंकी तीन समय कम छत्तृष्ट स्वतंत्रता बन्ध किया है और  
 प्रतिभन्न होनेके समयमें स्त्रीवर्गका बन्ध करते हुए वसमें बन्धावसिसे रहित कपायकी स्वतंत्रता  
 संक्रमण किया है एसा कोई एक अन्य जीव अवस्थित अन्तर्मुहूर्त उतर कर और छत्तृष्ट संकलेशकी  
 पूर्ति करके यदि मिथ्यात्वकी छत्तृष्ट स्वतंत्रता बन्ध करता है ता इस समय इसके स्त्रीवर्गका  
 एक अन्य विकल्प प्राप्त होता है क्योंकि पहलेशकी स्वतंत्रता देवते हुए यह स्वतंत्र तीन  
 समय कम है । इसी प्रकार चार समय कम पांच समय कम इत्यादि क्रमसे पहल सातह  
 कपार्योंकी छत्तृष्ट स्वतंत्रता बन्ध करके तदनन्तर प्रतिभन्न समयमें स्त्रीवर्गका बन्ध करके और  
 बन्धावसिसे रहित कपायकी स्वतंत्रता स्त्रीवर्गरूपसे संक्रमण करने तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त



बंधाविय ओदारेदव्व जाव आवाधाकडएणूणं ति ।

§ ७४३. संपहि आवाहाकंडएणूणित्थिवेदट्टिदीए इच्छिज्जमाणाए सोलसकसायाणमंतोमुहुत्तेणूणेण आवाहाकंडएणूणुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पट्टिहज्जिदूणित्थिवेदे वज्जमाणा वंधावलियादीदकसायट्टिदिमित्थिवेदसरूवेण सकामिय अवट्टिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए तक्काले इत्थिवेदमप्पणो ओघुक्कस्सट्टिदि पेक्खिदूण एगावाहाकंडएणूण होदि । संपहि एदस्सावाहाकडयस्स हेट्ठा जट्टिदिमिच्छदि तिस्से ट्टिदीए उवरि सोलसकसायट्टिदिमंतोमुहुत्तन्महियं वधाविय पुच्चिल्लविहाणं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव इत्थिवेदपाओगसव्वजहण्णमंतोकोटाकोटि ति । एवं पुरिसवेद-इस्स-रदीणं पि परूवेदव्वं, विसेसाभावादो ।

❀ एवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमुक्कस्सा ?

§ ७४४ सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७४५. मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए वज्जमाणाए जदि सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिवंधो णत्थि तो णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि णत्थि उक्कस्सट्टिदिसंतकम्मं, कसाएहिंतो एदासिं पयडीणमुक्कस्सट्टिदिसंतुप्पत्तीदो । मिच्छत्त-सोलसकसायाणकालके वाद उत्कृष्ट सक्लेशके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके एक आवाधाकाण्डकसे न्यून स्थितिके प्राप्त होने तक घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४३ अब आवाधाकाण्डकसे कम स्त्रीवेदकी स्थितिके इच्छित होनेपर सोलह कपायोंकी अन्तर्मुहूर्त कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और प्रतिभन्न होकर स्त्रीवेदका बन्ध करते समय बन्धावल्लिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे सक्रमण करके तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर और उत्कृष्ट सक्लेशकी पूर्ति करके जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक आवाधाकाण्डक कम होती है । अब इस आवाधाकाण्डकके नीचे स्त्रीवेदकी जो स्थिति इच्छित हो उस स्थितिसे सोलह कपायोंकी स्थितिका अन्तर्मुहूर्त अधिक बन्ध कराके पूर्वोक्त विधिको जानकर उसके योग्य स्त्रीवेदकी सबसे जघन्य अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिके प्राप्त होने तक स्थिति घटाता जावे । इसी प्रकार पुरुषवेद, हास्य और रतिका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि उसमें इनमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अन्तुत्कृष्ट ?

§ ७४४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट भी होती है और अन्तुत्कृष्ट भी ।

§ ७४५. मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय यदि सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है तो नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म नहीं होता है, क्योंकि कपायोंसे इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होती है । मिथ्यात्व और



बंधाविय ओदारेदव्वं जाव णवुंसयवेदस्स ओणुकस्सट्टिदी एगेणावाधाकंडएण्णा जादा त्ति ।

§ ७४७. एदिस्से ट्टिदीए उप्पत्तिविहाणं वुचदे । तजहा—मिच्छत्त-सोलसकसा-याणमावाहाकंडएण्णउकस्सट्टिदिमावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उकस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए तक्काले आवाधाकंडएण्णावलियादीदकसायट्टिदि णवुंसयवेदस्सुवरि संकामिय मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए णवुंसयवेदस्स अणुकस्सट्टिदिबिहत्ती होदि । कुदा ? आवलियव्भहियआवाहाकंडएण्णचत्तालीससागरोवम-कोडाकोडिमेत्तट्टिदित्तादो । एवं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव वीसं सागरोवमकोडाकोडि-मेत्तट्टिदि त्ति ।

§ ७४८. संपहि वीसंसागरोवमकोडाकोडिपमाणे इच्छिज्जमाणे सोलसकसायाण-मावलियव्भहियवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्टिदिमावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उकस्स-संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुकस्सट्टिदिवज्जमाणसमए पुव्वुत्तावलियादीदकसायट्टिदीए णवुंसयवेदस्सुरुवेण संकंताए णव सयवेदट्टिदी अणुकस्सा होदि; वीससागरोवम-कोडाकोडिपमाणत्तादो । पुणो समयूणावाहाकंडयमेत्तट्टिदिमप्पणो बंधमस्सिदूणोटाारिय गेण्हदव्वं । एवमरदि-सोग-भय-दुगुछाण पि वत्तव्व, वीससागरोवमकोडाकोडिट्टिदिवंधा-दीहि तत्तो विसेसाभावादो । एवं मिच्छत्तेण सह सव्वपयडीणं सण्णियासो गदो ।

नपुसकवेदरूपसे सक्रमण कराके तथा सक्रमणके समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके नपुसकवेदकी ओच उत्कृष्ट स्थिति एक आवाधाकाण्डक कम होने तक घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४९. अब इस स्थितिके उत्पन्न होनेकी विधि कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी एक आवाधाकाण्डक न्यून उत्कृष्ट स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट सकलेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके उसी समय एक आवाधाकाण्डक कम और एक आवलि रहित कपायकी स्थितिका नपुसकवेदमे सक्रमण कराने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर नपुसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि यह स्थिति एक आवलि अधिक आवाधाकाण्डक कम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण है । इसी प्रकार जानकर वीस कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक नपुसकवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये ।

§ ७५० अब वीस कोडाकोडी सागर स्थितिके इच्छित होने पर सोलह कपायोंकी एक आवलि अधिक वीस कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट सकलेशकी पूर्ति करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय पूर्वोक्त एक आवलिसे रहित कपायकी स्थितिका नपुसकवेदरूपसे सक्रमण होने पर नपुसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि यह स्थिति वीस कोडाकोडी सागर है । पुनः अपने बन्धकी अपेक्षा एक समय कम आवाधाकाण्डक प्रमाण स्थितिको घटाकर प्रदण करना चाहिये । इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि वीस कोडाकोडी सागर-प्रमाण स्थितिवन्ध आदिकी अपेक्षा नपुसकवेदसे इनमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।



❀ सम्मामिच्छत्तद्विदिविहती किमुक्त्वा किमणुक्त्वा ?

§ ७५३. सुगममेदं ।

❀ णियमा उक्त्वा ।

§ ७५४. कुदो ? अंतोमुहुत्तूणमत्तरिमागरोवमकोडाकोडिमेत्तमिच्छत्तद्विदीए पढम-समयवेदगसम्मादिट्टिमि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमरूवेण जुगवं संकंतिदमणादो । सम्मामिच्छत्तसुदयणिसेगो सगमरूवेण णत्थि; थिवुक्कमंकमेण सम्मत्तुदयणिसेगसरूवेण परिणदत्तादो । तम्हा सम्मत्तुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण सम्मामिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए एगणिसेगेण्णाए होदव्व । ण च उदयणिसेगस्स सगसरूवेण धरणट्टमट्टावीससंत-कम्मियमिच्छाइट्टी तप्पाओग्गुक्कस्समिच्छत्तद्विदिमंतकम्मिओ सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेदुं सविकज्जइ, सम्मामिच्छाइट्टिमि दराणत्थियस्स संकमाभावेण दोण्हं पि अणुक्कस्सट्टिदि-प्पसंगादो त्ति ? ण, उक्कस्सट्टिदीए पक्कंताए काल मोत्तूण णिसेयाणं पहाणत्ता-भावादो । कत्थ पुण णिसेयाणं पहाणत्तं ? जहण्णट्टिदीए । तं कुदो णव्वदे ? छण्णो-कसायजहण्णट्टिदीए अंतोमुहुत्तावट्टाणपरूवणमुत्तादो । ण कोहसंजलणेण वियहिचारो,

अन्यथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्टस्थिति एक प्रकारकी नहीं बन सकती है ।

\* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७५३ यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७५४ क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोडी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिका वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे एक साथ सक्रमण देखा जाता है ।

शंका—सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका उदयनिपेक अपने रूपसे उदयमें नहीं आता है, क्योंकि स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उसका सम्यक्त्वके उदयनिपेकरूपसे परिमाण हो जाता है । अतः सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक निपेक कम होनी चाहिये । यदि कहा जाय कि जिससे सम्यग्मिथ्यात्वका उदयनिपेक अपने रूपसे प्राप्त हो जाय इसलिये अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवकी तत्प्रायोग्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त करा दिया जाय सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, अतः वहा दोनोंकी ही अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिमें कालको छोड़कर निपेकोंकी प्रधानता नहीं है ।

शंका—तो फिर निपेकोंकी प्रधानता कहाँ पर है ?

समाधान—जघन्य स्थितिमें ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—छद्म नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त है इस बातका कथन करने-

एतसमयपबद्धस्त गितेगगाहणं समयूणदोभानक्रियमेतद्वाणमुचरि गंतूप जहण्णसामिच प्पभाणादो । तदो सम्मामिच्छत्तं पियमा उक्कस्त ति सिद्धं ।

● सोलसकस्ताय-गवण्योकसायार्थं द्विविदिविहृत्पीठ किमुक्कस्ता अणुक्कस्ता ?

§ ७५५ सुगममेदं ।

● पियमा अणुक्कस्ता ।

§ ७५६ कुदो ! सम्मत्तुक्कस्ताद्विविदिविहृत्पियजीवे पढसमयवेदयसम्माद्विद्विम्मि सोलसकसाय-गवण्योकसायाणमुक्कस्ताद्विविदिविहृत्पियभावादादो । सो त्ति कुदो ! सगविसेस कारमुक्कस्तासकित्तेसायुविद्विमिच्छत्तु दयामावादादो । ज स कारणेण विणा कज्जं संभवइ, मइप्पसगादो ।

● उक्कस्तावो अणुक्कस्ता अतोमुहुत्तुप्पमाविं कानूण जाव पत्तिवोवमस्त असत्तेज्जविभागेणूष्वा ति ।

§ ७५७ तं भइ-अहापीसंततकम्मिएण वदमिच्छत्त-सोलसकसायुक्कस्ता

वासे सूत्रसे जाना जाता है ।

परि करा जाय कि उक्त कथनका कोषसंमलनसे व्यभिचार हो जायगा सो मी बात नहीं है क्योंकि वहाँ एक समयकालके नियमोंके अणु करनेके लिये एक समय कम हो आबलिप्रमाण्य कात कम आकर कथन स्वामित्वकी प्रमानता है ।

अतः सम्पत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिके समय सम्पत्तिव्यवस्था नियमसे उत्कृष्ट स्थिति-वाला होता है यह बात सिद्ध हुई ।

● सम्पत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कपायोंकी और नौ नोकपायों की स्थितिविमक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७५८. यह सूत्र सुगम है ।

● नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७५९ क्योंकि सम्पत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिवाले प्रथम समयवर्ती बेरकसम्यन्तद्धि बीबके सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है ।

शुद्धा-इस बीबके सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान-क्योंकि सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धको विशेष करके उत्कृष्ट संज्ञेयसे सम्बन्ध रखनाआ मिष्मात्वका अर्थ है वह वहाँ पर नहीं पाया जाता है । परि करा जाय कि कार्यके विना मी कार्य हो जायगा सो मी बात नहीं है क्योंकि पसा मत्तने पर अतिप्रसंग होय जाता है ।

● यह अनुत्कृष्ट स्थितिविमक्ति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पर्युक्ता असंख्यातवाँ माग कम तक होती है ।

§ ७६० कुलासा इस प्रकार है-विस्म मिष्मात्व और धामह कपायों की उत्कृष्ट स्थिति ५८

द्विदिणा वंधावल्याइक्कंतकसायद्विदिसंकमेणुक्कस्सीकयणवणोकसाएण जहण्णपडि-  
हग्गद्धमच्छिय सम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तुक्कस्सद्विदिविहृती हांदि । तवक्काले सोलस-  
कसाय-णवणोकसायाणुक्कस्सद्विदी अंतोमुट्टुत्तूणा; जहण्णपडिहग्गद्धाए अथद्विदिगलणाए  
गल्लिदत्तादो । मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधकाले सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्सद्विदीए  
पवद्धाए अण्णा सोलसकसाय-णवणोकसायाणमणुक्कस्सद्विदी होदि; पुत्रद्विदिं पेक्खि-  
दूण समयूणत्तादो । एवं दुममयूण-तिसमयूणादिकमेण ओदाररेदन्य जाव समयूणावाहा-  
कंडएणुक्कस्सद्विदिं ति । तत्थ सव्वपच्छिमवियप्पो बुच्चदे । तजहा— मिच्छत्तुक्कस्स-  
द्विदिवंधेण मह कसायाणं समयूणावाहाकंडएणुक्कस्सद्विदिं वंधिय अवद्विट-  
पडिहग्गद्धमधद्विदिगलणाए गालिय सम्मत्ते पडिवण्णे सोलसकसाय-णवणोकसायाणं  
द्विदी समुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयूणावाहाकंडएण जहण्णपडिहग्गद्धाए च ऊणा ।  
एत्तो हेट्ठा णोदाररेदुं सक्किज्जइ, ओदाररेदे सम्मत्तुक्कस्सद्विदिविणासादो ।

❀ एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि ।

§ ७५८. जहा सम्मत्तुक्कस्सद्विदिणिरोहं काऊण अवसेसकम्मद्विदीणं सण्णियासो  
कदो तहा सम्मामिच्छत्तुक्कस्सद्विदिणिरोहं काऊण सेसकम्मद्विदीणं सण्णियासो कायव्वो,

वाधी है और बन्धावलिके बाद जिसने कपायकी स्थितिका सक्रमण करके नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थिति की है ऐसा अट्टाईस प्रकृतियोंका सत्कर्मवाला जीव यदि जघन्य प्रतिभनकाल तक  
मिथ्यात्वमे रहकर सम्यक्त्वकी प्राप्त हुआ तो उस समय उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति  
होती है और उसी समय उसके सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त  
कम होती है, क्योंकि इसके जघन्य प्रतिभन काल अध स्थितिगलनाके द्वारा गल चुका है । तथा  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सोलह कपायों की एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अन्य  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति एक समय कम है ।  
इसी प्रकार दो समय कम, तीन समय कम आदि क्रमसे एक समय कम आवाधा काण्डकसे न्यून  
उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थितिको घटाते जाना  
चाहिये । वहाँ अब सधसे अन्तिम विकल्प कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थिति  
बन्धके साथ कपायोंकी एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको बंध कर  
उदनन्तर अवस्थित प्रतिभनकालको अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलाकर इस जीवके सम्यक्त्वके  
प्राप्त होने पर सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक  
समय कम आवाधाकाण्डक और जघन्य प्रतिभन काल प्रमाण कम होती है । यहा सोलह कपाय  
और नौ नोकपायोंकी स्थितिको इससे और कम नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इनकी स्थितिको  
इससे और कम करने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका विनाश हो जाता है ।

❀ इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियों  
की स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये ।

§ ७५८ जिस प्रकार सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर अर्थात् सम्यक्त्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहा उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी

विसत्ताभावादो ।

⊙ जहा मिच्छत्तस्स तहा सोलसकसायाणं ।

§ ७५६ जहा मिच्छत्तुक्कस्सदिदिणिह मणं काऊण ससामममोहपपदिदिदीण सणियासो कदो वहा सोलसकसाएमु एगगक्यापस्स उवकस्सदिदिणिह मणं काऊण ससकम्मदिदीणं सणियामा कायप्पो; मरिमेसादा ।

⊙ इत्थियेदस्स उफस्सदिदियिहृत्तियस्स मिच्छत्तस्स दिदियिहृषी किमुफत्ता अणुफत्ता ?

§ ७६० सुगममेदं ।

⊙ थियमा अणुफत्ता ।

§ ७६१ बुदा ? इत्थिवदंभफाल मिच्छत्तुक्कस्सदिदिषभाभावादा । ए प इत्थिवदस्स संवेण विणा दिदीए उफस्सत्तं संभवइ, अपदिगगरस्सित्थिवदंभुवरि संपाय मियाइककत्तमायुक्कस्सदिदीए संकमाभावादा । तन्हा थियमा अणुफत्ता ति सुणं सुमासिदं ।

⊙ उफत्तादो अणुफत्ता समयूणमादिं कानूण जाय पक्षिदोपमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा ति ।

उत्तु स्थितिका विवक्षित कर एव कर्मोकी स्थितियोंका सन्निरूप कहना चाहिये, क्योंकि हमसे हममें कार्य विचारता नहीं है ।

⊙ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्तु स्थितिका विवक्षित कर उप प्रकृतियों की स्थितियोंका सन्निरूप कहा जसी प्रकार सायह कर्मायोंकी उत्तु स्थितिका विवक्षित कर उप प्रकृतियोंकी स्थितियोंका भी सन्निरूप कहना चाहिये ।

§ ७६६ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्तु स्थितिका राक कर एव सप माइ प्रकृतियोंका स्थितियोंका सन्निरूपे किया है वसी प्रकार सायह कर्मायोंमें एक एक कर्मायकी उत्तु स्थितिका राककर एव कर्मोकी स्थितियोंका सन्निरूप करना चाहिये क्योंकि इनके रूपमें कार्य विचारता नहीं है ।

स्वीयकी उत्तु स्थितिबिभक्तिक समय मिथ्यात्वकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्तु होती है या अनुत्तु ?

§ ७६० एद मूय सुगम दे ।

⊙ नियमम अनुत्तु होती है ।

§ ७६१ क्योंकि स्वीयके रूपके समय मिथ्यात्वकी उत्तु स्थितिबिभक्तिका रूप नहीं होता है । और स्वीयके रूप हुए बिना हमकी स्थिति उत्तु है वसी गहनी क्योंकि अरनरूपकर स्वीयके कर्मायोंके बाद कर्मायका उत्तु स्थितिका संकल्प नहीं होता है । इत्थिय स्वीयकी उत्तु स्थितिक समय मिथ्यात्वकी स्थिति नियमम अनुत्तु होती है ए मूय स्थिति ही क्या है ।

⊙ यह अनुत्तु स्थिति भयनी उत्तु स्थितिका अरुण एक समय हमसे लहर पयापमक कर्मव्यापनरे भाग कम स्थिति गह होती है ।



§ ७६२. तं जहा—मिच्छत्-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदवधावलियादिक्कंतकसायट्टिदीए इत्थिवेदसरूवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तक्काले मिच्छत्तं समयूणं होदि; उक्कस्सट्टिदीदी अधट्टिदिगलणाए गलिदेगसमयत्तादो । मंपहि सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिबंधकाले मिच्छत्तस्ससमयूणक्कस्सट्टिदिं वंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदं वधतेण कसायट्टिदीए तस्सरूवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छत्तस्स अणुक्कस्सट्टिदिविहत्ती; सगुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिवदूण दुसमयूणत्तादो । एवं तिसमयूणादिकमेण मिच्छत्तमोदारयेव्वं जाव आवाहाकंडएण्णट्टिदिं परं ति । पुणो वि आवाहाकंडयस्स हेट्ठा मिच्छत्तं समजणावलियमेत्तमोदरदि । त जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिमंतो-सुहुत्तमेत्तमावलियमेत्तं वा काल वंधतेण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदी वि समयूणावाहाकंडएण्णा वद्धा । पुणो पडिहग्गसमए इत्थिवेदं वंधतेण वधावलियादीदकसायट्टिदी तस्सरूवेण संकामिदा ताधे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । एवं पडिहग्गावलियमेत्तकाल-मित्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती चेव; वधगद्धाए चरिमावलियमेत्तक्कस्सट्टिदीण तत्थ संकंतिदसणादो । मिच्छत्तं पुण पडिहग्गपढमसमए आवाहाकंडएण्ण विदिसमए तेण समयाहिण तदियसमए तेण दुसमयाहिण एवं णेदव्वं जाव पडिहग्गावलियचरिम-

§ ७६२. उसका खुलासा इस प्रकार है—जो मिथ्यात्व और सालह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके प्रतिभग्नकालके भीतर ही स्त्रीवेदका वन्ध करता हुआ वन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे सक्रमण करता है उसके स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तथा उस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि इसकी उत्कृष्ट स्थितिसे अध.स्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । अब सोलह कपायों की उत्कृष्ट स्थितिके वन्धके समय मिथ्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको वाधकर प्रतिभग्न कालके भीतर स्त्रीवेदको वाधते हुए किसी जीवके कपायकी स्थितिके स्त्रीवेदरूपसे संकामित होने पर जिससमय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है उस समय मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए यह दो समय कम होती है । इसी प्रकार तीन समय कम इत्यादि क्रम से आवाधाकाण्डक प्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक मिथ्यात्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । तथा इसके बाद भी आवाधाकाण्डकके नीचे मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय कम आवलिप्रमाण और कम करना चाहिये । खुलासा इस प्रकार है—सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक या एक आवलि कालतक वाधते हुए किसी जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी एक समयकम आवाधाकाण्डकप्रमाण न्यून वाधी । पुन प्रतिभग्नकालके भीतर स्त्रीवेदका वंध करते हुए उस जीवने वन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे सक्रमण किया तब उस जीवके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । इस प्रकार प्रतिभग्नकालके एक आवलि काल तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति ही होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके वन्धककालमें अन्तिम आवलिप्रमाण कपायकी उत्कृष्ट स्थितियोंका स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है । तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रतिभग्नकालके पहले समयमें तो एक आवाधाकाण्डकप्रमाण कम होती है, दूसरे समयमें एक समय अधिक एक आवाधाकाण्डकप्रमाण



वा उक्कस्मट्टिदि वंधिय पडिहग्गपढमसमए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तक्काले सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कस्मट्टिदी; सगुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तू-एत्तादो । सेमं जहा मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए णिरुद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण सण्णियासो कदो तहा इत्थिवेदुक्कस्सट्टिदीए णिरुद्धाए वि तासिं पयडीण ट्टिदीए सण्णियासो कायव्वो; विसेसाभावादो ।

❀ एचरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति ।

§ ७६६, अतोमुहुत्तूणुक्कस्सट्टिदिप्पहुडि जावेगा ट्टिदि त्ति सव्वट्टिदीहि सह सण्णियासे पुव्वसुत्तेण सपत्ते तस्सापवादट्टमेदं सुत्तमागद । चरिमुव्वेल्लणकंडयम्मि उक्कीरणद्धामेत्ताओ फालीओ होंति । एत्तियमेत्ताओ फालीओ होंति त्ति कुदो णव्वदे ? चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति एदम्हादो सुत्तादो । ण च एगसमएण ट्टिदिखंडए पदंते संते 'चरिमफालीए ऊणा' त्ति णिद्देशो जुज्जदे; एक्कम्मि चारिमा-चरिमव्वहाराभावादो । होदु णाम फालीणं बहुत्तसिद्धी, ताओ उक्कीरणद्धामेत्ताओ त्ति कथं णव्वदे ? ट्टिदिकडयणिवदणकालस्म उक्कीरणद्धाववएसण्णहारुणुव्वत्तीदो । ण च

की एक समय तक या एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके प्रतिभग्न होनेके प्रथम समयमें स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तथा उस समय सम्यक्त्व और सम्य-गिमिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति हांती है, क्योंकि वह अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । आगे जिस प्रकार मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका रोक कर सम्यक्त्व और सम्यगिमिध्यात्वकी शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष किया है उसी प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको रोक कर भी उन प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये, क्योंकि दानोमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति अन्तिम उद्वेलना काण्डककी अन्तिम फालिसे न्यून होती है ।

§ ७६६ अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थितितक अनुत्कृष्ट स्थिति बिभक्ति होती है । इस प्रकार पूर्वं सूत्र वचनसे सब स्थितियोंके साथ सन्निकर्षके प्राप्त होने पर उसके अपवादके लिये यह सूत्र आया है । अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकमें उत्कीरणा काल प्रमाण फालिया होती हैं ।

शंका—इतनी फालिया होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—'चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा' इस सूत्र वचनसे जाना जाता है । यदि एक समयके द्वारा स्थितिकाण्डकका पतन स्वीकार किया जाय तो 'चरिमफालीए ऊणा' यह निर्देश नहीं बन सकता है, क्योंकि एकमें अन्तिम और अनन्तिम इस प्रकारका व्यवहार नहीं बन सकता है ।

शंका—फालिया बहुत होती हैं यह भले ही सिद्ध हो जाओ परन्तु वे उत्कीरणकाल प्रमाण होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—यदि फालिया उत्कीरण काल प्रमाण न मानी जाय तो स्थितिकाण्डकके पतन होनेके कालकी उत्कीरण काल यह संज्ञा नहीं बन सकती है । इससे जाना जाता है कि फालिया



भाव यह है कि नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राप्त होती है और उक्त दोनों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्भव है, अतः मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति तो हो नहीं सकती । हों अनुत्कृष्ट स्थिति अवश्य सम्भव है सो भी यह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक जानना चाहिये । किन्तु इसका एक अपवाद है । वात यह है कि सब प्रकृतियोंके प्रथमादि स्थितिकाण्डक सम और विषम दोनों प्रकारके होते हैं । इसलिये उन स्थितिकाण्डकोंमें प्राप्त स्थितिविकल्पोंके साथ नाना जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष बन जाता है । किन्तु अन्तिम जघन्य स्थितिकाण्डक एक समान होता है । अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सम्यन्धी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिमें जितने निपेक सम्भव हैं उतने स्थितिविकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त होते, क्योंकि उनका पतन क्रमसे न होकर एक समयमें हो जाता है । इस पर एक स्थितिकाण्डकमें प्राप्त होनेवाली फालियों उत्कीरणकालकी सार्थकता और समुद्घातको प्राप्त हुए केवलीके स्थितिकाण्डके साथ आनेवाला व्यभिचारका निराकरण इनका विचार किया गया है । पहली और दूसरी वातका विचार करते हुए बतलाया है कि एक स्थितिकाण्डकमें एक फालि न होकर अनेक फालियों होती हैं । प्रमाण रूपमें 'एण्वरि चरिमुब्बेत्तलणकडयचरिमफालीए उणा' यही सूत्र उपस्थित किया गया है । इस सूत्रमें फालिके साथ चरम विशेषण आया है इसमें प्रतीत होता है कि एक स्थितिकाण्डकमें अनेक फालियों होती हैं । अन्यथा फालिको चरम विशेषण देनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एकमें चरम और अचरम यह व्यवहार नहीं बन सकता है । तो फिर वे कितनी होती हैं । इस शकके होने पर बतलाया है कि स्थितिकाण्डकका जितना उत्कीरण काल होता है उतनी फालियों होती हैं । इसका यह तात्पर्य है कि उत्कीरण कालके एक-एक समयमें एक-एक फालिकः पतन होता है । यहाँ फालि शब्द फॉक इस अर्थमें आया है । जैसे लडकीके चीरने पर उसमें अनेक फलक या स्तर निकलते हैं उसी प्रकार स्थितिकाण्डकका पतन होते समय विवक्षित स्थितिकाण्डकके अनेक स्तर या फलक हो जाते हैं । उनमेंसे एक-एक फलकका एक-एक समयमें पतन होता है । इस प्रकार इन फालियों के पतनमें कितना समय लगता है उस सब कालको उत्कीरणकाल कहते हैं । उत्कीरणका अर्थ टकीरना है और इसमें जो काल लगता है उसे उत्कीरणकाल कहते हैं । भावार्थ यह है कि एक स्थितिकाण्डकके पतनका काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । इसलिये उत्कीरण कालका प्रमाण भी इतना ही होता है । और एक स्थितिकाण्डकमें फालियों भी उक्तप्रमाण ही होती हैं । परन्तु प्रत्येक फालि स्थितिकाण्डकके आयामप्रमाण होती है । और तभी उसकी फालि यह सद्भा सार्थक है । तीसरी वातका विचार करते हुए बतलाया है कि अकेवलियोंके साथ केवलियोंकी समानता करना ठीक नहीं । मतलब यह है कि ससारी जनोंको एक-एक स्थितिकाण्डकके पतनमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और समुद्घातगत केवलीको एक-एक समय ही लगता है । अब जब कि सब स्थितिकाण्डकोंका काल अन्तर्मुहूर्त मान लिया जाय तो यह बात केवलियोंके स्थितिकाण्डकमें घटित नहीं होती, इसलिये व्यभिचार दोष आता है । वस इसी शकका समाधान करते हुए यह बतलाया है कि केवलियोंकी छद्मस्थ जनोंके साथ समानता नहीं है । अर्थात् एक-एक स्थितिकाण्डकका काल जो अन्तर्मुहूर्त बतलाया है वह छद्मस्थ जनोंकी अपेक्षा बतलाया है समुद्घातगत केवलियोंकी अपेक्षा नहीं, इसलिये कोई दोष नहीं प्राप्त होता । समुद्घातगत केवलियोंके तो परिणामोंकी विशुद्धिके कारण एक-एक समयमें एक-एक स्थिति काण्डकका पतन हो जाता है । इस प्रकार इतने कथनका यह तात्पर्य है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके निपेकोंका एक साथ पतन होता है इसलिये उतने निपेक सन्निकर्षको नहीं प्राप्त होते ।

⊗ सोलसकसायाणं द्विविदिहृषी किमुक्तस्ता अणुक्तस्ता ?

‡ ७६८ सुगमवेदं ।

⊗ पियमा अणुक्तस्ता ।

‡ ७६९ कुदो ? कसायाणमुक्तस्तद्विदिवंषकाशे इतिवेदस्त बंधाभावाद्दो ।  
बंधमायेण अपदिहृमास्तिस्तिषदस्म सोलसकसायाणमुक्तस्तद्विदिषषकाश उक्तस्त-  
द्विदीए समवामावाद्दो ।

⊗ उक्तस्तादो अणुक्तस्ता समऊणमार्दि कावृण जाव आबलियुष्ठा स्ति ।

‡ ७७० तं ब्रह्मा—पदिहृगपडमसमए बंधानक्षिपादिककवकमायद्विदीए इत्य  
वेदमि संकंताए इतिषदस्त उक्तस्तद्विदिशिहृषी होदि । तद्वद्वे कसायद्विदी  
सणुक्तस्तं पेक्स्विहृण समयूणा; चरिमसमयमि बधुक्तस्तद्विदीए गक्षिदेगसमयचादो ।  
एवं विदियसमए दुसमयू णा तदियसमए तिसमयूणा एवमावसियमेचसमएसु कसायुक्तस्त  
द्विदी आबलियूणा होदि । इतिषवेदद्विदी पुण उक्तस्ता चेर, चरिमसमयमि  
बद्वकसायुक्तस्तद्विदीए बंधानक्षिपादिककंताए इतिषवेदस्तुपरि संकंतिदंसजादो ।  
माबलियादो चरि कसायुक्तस्तद्विदी ऊणा किण्ण कीरइ ? ण, चरि इतिषबंधुक्तस्त

⊗ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कपार्योकी स्थितिविमक्ति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

‡ ७६८ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ नियमस अनुत्कृष्ट होती है ।

७६९, क्योंकि कपार्योकी उत्कृष्ट स्थितिकल्पके समय स्त्रीवेदका यन्त्र नहीं होता है । तथा  
यन्त्ररूपसे पठनप्रणयनेको नहीं प्राप्त हुए स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सातह पदार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिके  
कल्पके समय संभव नहीं है ।

⊗ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम से  
लेकर एक मानसिकरूप उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

‡ ७७० इसका अन्वयानुसार इस प्रकार है—मतिमत्प्रकाशके प्रथम समये कपार्योके दृष्टि  
कपार्योकी स्थितिके स्त्रीवेदमें संक्रमण होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति होती है । उस  
समय कपार्योकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है क्योंकि यहाँ  
पर अन्तिम समयमें बंधी हुई कपार्योकी उत्कृष्ट स्थितिके एक समय गल गया है । इसी प्रकार  
दूसरे समयमें जो समय कम तीसरे समयमें तीन समय कम तथा इसी प्रकार जाबलियुष्ठा  
समयोंके व्यतीत होने पर कपार्योकी उत्कृष्ट स्थिति एक मानसिकरूप होती है परन्तु यहाँतक  
स्त्रीवेदकी स्थिति उत्कृष्ट ही रहती है, क्योंकि अन्तिम समयमें बंधी हुई कपार्योकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धावसिके व्यतीत होने पर स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है ।

शुद्धा—कपार्योकी उत्कृष्ट स्थिति एक मानसिकरूप तक ही कम क्यों होती है इसके और

द्विदीए असंभवादो ।

❀ पुरिसवेदस्स द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७७१ सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७७२, कुदो ? इत्थिवेदबंधकाले सेसवेदाणं बंधाभावादो । किमिदि णत्थि बंधो ! साहावियादो । ण च सहावो पडियवोयणाजोगो, अव्वत्थावत्तीदो । ण च बंधेण विणा पुरिसवेदो कसायद्विदिं पडिच्चदि, अपडिग्गहत्तादो ।

\* उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तण्णमादिं कादूण जाव अतो-कोडाकोडि ति ।

§ ७७३ तं जहा—कसायाणमुक्कस्सद्विदिं पडिवंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणपुरिसवेदस्सुवरि वधावलियादीदकसायद्विदीए संकंताए पुरिसवेदस्सुक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि । पुणो सब्वजहण्णेणंतोमुहुत्तोणुक्कस्ससंकित्तेसं गतूण कसायुक्कस्सद्विदिं

अधिक कम क्यों नहीं की जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि आत्रलिसे अधिक कपायकी स्थितिके कम होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका पाया जाना संभव नहीं है ।

\* स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेदकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७१ यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७७२, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध नहीं होता है ।

शंका—स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है कि स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध नहीं होता है और स्वभावमें शंका नहीं की जा सकती, अन्यथा अव्यवस्थाकी आपत्ति प्राप्त होती है । और बन्धके विना पुरुषवेद कपायकी स्थितिको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उस समय वह अपतद्ग्रहरूप है । तात्पर्य यह है कि जब तक पुरुषवेदका बन्ध न हो तब तक उसमें कपायकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्तः कोड़ाकोड़ी तक होती है ।

§ ७७३, इसका खुलासा इस प्रकार है—कपायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाध कर प्रतिभन्नकालके पहले समयमें बंधनेवाले पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके संक्रमण होने पर पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । पुन सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त होकर और कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभन्न कालके प्रथम समयमें

बंधिय पदिहगसमए बज्जमाणित्यवेदम्मि बंधावस्त्रियादिबर्कतफसायद्विदीए संकंताए इन्धिवेदद्विदी उक्कत्ता होदि । तक्काले पुरिसवेदद्विदी सगुक्कत्ता पेक्खिदूण अंतोमुहुत्ता; पुरिस-अधु सयवेदबहण्णबंधगद्धानं समूहस्त अंतोमुहुत्ता बर्लमादो । पुणो कसायाणं समयुण्णक्कत्ताद्विदि बंधिय पदिहगसमए बज्जमाणपुरिसवेदम्मि बंधावस्त्रिया दीदकमायुक्कत्ताद्विदीए संकंताए पुम्बिण्णद्विदि पेक्खिदूण पुरिसवेदद्विदी सपहि समयूखा होदि । पुणो अवद्विदमंतोमुहुत्तामण्डिय उक्कत्तासंकिक्खेसं गतूण कसायाण्णक्कत्ताद्विदि बंधिय पदिहगसमए बज्जमाणित्यवेदम्मि बंधावस्त्रियादीदकसायद्विदीए संकंताए इतिवेदस्त उक्कत्ताद्विदी होदि । तक्काले पुरिसवेदद्विदी सगुक्कत्ताद्विदि पेक्खिदूण समयारियमंतोमुहुत्ता । एवं जाण्णिदूण ओदारियन्नं माय णिम्भियण्ण अंतोकोवाकोदि पि ।

• इस्त-रवीणं द्विदिविहरी कियुक्कत्ता अयुक्कत्ता ?

§ ७७४ सुगममेदं ।

• उक्कत्ता या अणुक्कत्ता वा ।

§ ७७५ यदि इतिवेदे बज्जमाण इस्त-रवीणं बंधो अस्ति तो इतिवेदुक्कत्ता द्विदीए विहस्त्रिभो पदासिं पि उक्कत्ताद्विदीए; तिणं पयडीणमुपरि अकमेण संकंतीए ।

बैभनेबाले स्त्रीवेदमें बन्धावस्त्रिये रहित कयायकी स्थितिके संकल्प करने पर स्त्रीवेदकी उक्कत्ता स्थिति होती है । इस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उक्कत्ता स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है क्योंकि पुरुषवेद और नपुंसकबन्धके बन्धन पन्थकपालोंका समूह अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । पुनः कयायकी एक समय कम उक्कत्ता स्थितिको वांचकर प्रतिभद्रकालके पहले समयमें बैभनेबाले पुरुषवेदमें बन्धावस्त्रिये रहित कयायकी एक समय कम उक्कत्ता स्थितिके संकल्प होने पर पुरुषवेदकी पहलकी स्थितिको देखते हुए इस समयकी स्थिति एक समय कम होती है । पुनः अबस्थित अन्तर्मुहूर्त कागतक ठहर कर और उक्कत्ता संकल्पका प्राप्त होकर तथा कयायकी उक्कत्ता स्थितिका बन्ध करके प्रतिभद्र कालके प्रथम समयमें बैभनेबाले स्त्रीवेदमें बन्धावस्त्रिये रहित कयायकी स्थितिके संकल्प होना पर स्त्रीवेदकी उक्कत्ता स्थिति होती है । तथा इस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उक्कत्ता स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम होती है । इसी प्रकार धान कर निर्बिकल्प अन्तःकोवाकोदी स्थितिके प्राप्त होनेपर पुरुषवेदकी स्थितिको घटते जाना चाहिये ।

• स्त्रीवेदकी उक्कत्ता स्थितिके समय हास्य और रतिकी स्थितिनिमित्त क्या उक्कत्ता हावी है या अनुक्कत्ता ?

§ ७७४ पर सूत्र सुगम है ।

• उक्कत्ता होती है और अनुक्कत्ता होती है ।

§ ७७५ यदि स्त्रीवेदके कयके समय हास्य और रतिका कय होता है तो स्त्रीवेदकी उक्कत्ता स्थितिनिमित्तवाञ्छा होना इच्छा इन दोनोंकी भी उक्कत्ता स्थितिनिमित्तवाञ्छा होता है ; क्योंकि बन्धावस्त्रिये रहित कयायकी उक्कत्ता स्थिति तीनों प्रवृत्तियोंमें एकसाथ मंत्रान्त हुइ है ।



अण्णहा अणुक्कस्सा; वंधाभावेण अपडिग्गहाणं हस्स-रदीणमुवरि कसायुक्कस्सट्ठिदीए संकमाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ?

§ ७७६. तं जहा—अंतोमुहुत्तकालमावलयियमेत्तकालं वा कसायुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणित्थिवेद-हस्स-रदीसु वंधावल्यादिककतकसायट्ठिदीए संकंताए तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । पुणो तटणंतरउवरिमसमए हस्स-रदि-बंधवोच्छेददुवारेण अरदि-सोगेसु बंधमागदेसु इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदीए सह हस्स-रदीणमणुक्कस्सट्ठिदी होदि; अप्पणो उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदिगलणेण गलिदेगसम-यत्तादो । एवं हस्स-रदिट्ठिदीए जाव समयूणावलयियमेत्तकालो गलदि तावित्थि-वेदस्सुक्कस्सट्ठिदिनिहत्ती चेव । उवरि अणुक्कस्सा होदि; तत्थ वंधावल्यादीदकसाय-क्कस्सट्ठिदिसकंतीए अभावादो ।

§ ७७७. तदो अण्णेण जीवेण एगसमय समयूणावलयियुणकसायउक्कस्सट्ठिदिं वंधिय समयूणावलयियमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदेण सह वज्झमाणहस्स-रदीसु आवल्यादिककंतकसायट्ठिदीए संकामिदाए इत्थिवेद-हस्स-रदीणं

अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्ध नहीं होनेसे अपतद्ग्रहको प्राप्त हुई हास्य और रतिमें कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण नहीं होता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है ।

§ ७७६ खुलासा इस प्रकार है—अन्तर्मुहूर्त काल तक या एक आवलि कालतक कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रम कालके पहले समयमें बधनेवाले स्त्रीवेद हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके सक्रान्त होने पर तीनों ही प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । पुन तदनन्तर अगले समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छ्रित होकर अरति और शोकके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ हास्य और रतिकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि तब इन प्रकृतियोंकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । इस प्रकार जब तक हास्य और रतिकी स्थितिमेंसे एक समय कम एक आवलि प्रमाण काल जीर्ण होता है तब तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति ही रहती है तथा इसके बाद स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि एक समय कम एक आवलिके बाद स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण नहीं पाया जाता है । अर्थात् तब स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिसे उत्तरोत्तर कम स्थितिका सक्रमण होता है ।

§ ७७७ तदनन्तर किसी एक जीवने एक समय तक एक समयसे न्यून एक आवलि कम कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर एक समय एक आवलि प्रमाण काल तक कपाय की उत्कृष्ट स्थितिको बंध कर प्रतिभ्रमकालके पहले समयमें स्त्रीवेदके साथ बधनेवाली हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिका सक्रमण किया तब उसके स्त्रीवेद, हास्य और रति

द्विदी सगुणकस्तद्विदि पेक्षित्वाण समयुगावस्थियाए ऊणा होदि । त्रिदियसमए इस्स रदिषपबोच्छेददुवारण भरदि-सोगेसु बंधमागदसु इत्यिषदस्सुकस्तद्विदिविहारी हादि; बंधावस्थियादिबकंतकसायुकस्तद्विदीए तरिपरियबदम्मि संकतिदंतणादो । इस्स रदि द्विदी पुण सगुणकस्तद्विदि पेक्षित्वाण आनखियुणं; बंधाभावादो । एवं भाष दुसम-युगावस्थियमेत्तमदानुसुपरि गच्छदि तावित्थियेदद्विदी उक्कस्सा चेव । इस्स-रदीणं पुण भाष तत्थियमदानं गच्छदि ताव सगुणकस्तद्विदी दुसमयुगा दोआनखियुणं होदि । बंधावस्थियादीदकसायुकस्तद्विदीए आवस्थियादि ऊणा होदि ।

§ ७७- तदो अण्णो भीनो दुसमयुगादोआनखियादि ऊणिय कसापुक्कस्त-द्विदि षधिय पुणो समयुगावस्थियमेत्तकालमुक्कस्तद्विदि षधिय पडिहगसमए इत्यिषद इस्स-रदीसु बन्धमाणिपासु बंधावस्थियादीकसापुक्कस्तद्विदि सक्कामिय तिणं पि अणुक्कस्त द्विदिविहारीओ जादो । तदो उवरिमसमयप्यहुदि इम्म-रदिषपबोच्छेददुवारेण इत्यिषदण सह भरदि-सोगे बंधाविय पुम्मं व ओदारेदम्मं । एवं पुणो पुणा पदेण विहाणेण ओदारेण गेदम्म भाव अतोकाटाकोदि सि । णवरि भं अ द्विदिं पिण्णमिदुमिच्छदि ततो आवस्थियम्मरियमेगसमयं बंधाविय पुणो समयणानमियमेत्तकालं कसायाणमुक्कस्त द्विदिं षधिय पडिहगसमए बन्धमाणित्थियेद-इस्स-रदीसु पुण्यभिहृदद्विदीए आवस्थि-

की स्थिति अपनी कष्ट स्थितिके बेलते हुए एक समयसे म्यून एक आवस्थिकाल प्रमाण कम होती है । तथा दूसरे समयमें हास्य और रतिकी बन्ध व्युत्पत्तिके द्वारा अरति और शाकके बन्धको प्राप्त हान पर स्त्रीवैरकी कष्ट स्थिति विनाश है, क्योंकि बन्धावस्थिसे रहित कयायकी कष्ट स्थितिके पक्षे स्त्रीवैरमें संक्रमण बेला जाता है । पर हास्य और रति की स्थिति अपनी कष्ट स्थितिके बेलते हुए एक आवस्थि कम जाती है, क्योंकि उस समय इनका बंध नहीं है । इस प्रकार रूप तक वा समय कम आवस्थिमयाए काल भागे जाते हैं तब तक स्त्रीवैरकी स्थिति कष्ट स्थिति ही होती है । पर हास्य और रतिके घटना काल भागे जाने तक इनकी कष्ट स्थिति से समयसे म्यून ही आवस्थि कम जाती है ।

§ ७८- पुनः अन्य जीवने एक समय तक वा समय कम वा आवस्थियोंसे म्यून कयायकी कष्ट स्थितिका बन्ध करके पुनः एक समय कम एक आवस्थि काल तक कष्ट स्थितिके बन्ध करके प्रतिभक्त कालक पहल समयमें बंधमबाल कीवत् हास्य और रतिमें बन्धावस्थिसे रहित कयायकी स्थितिका संक्रमण क्रिया तब वह तीनों ही प्रवृत्तियोंकी अनुकूल स्थितिभिन्नकिया धारक हुआ । तदनन्तर इसके आगेके समयसे लेकर हास्य और रतिकी बन्धव्युत्पत्तिकेद्वारा स्त्रीवैरक साथ अरति और शाकका बन्ध करके पहलक समान हास्य और रतिकी स्थितिके पटल जाना चाहिये । इस प्रकार पुनः पुनः इस विधिसे अन्तःकाकाकही सागर प्रमाण स्थितिके प्राप्त हान तक हास्य और रतिकी स्थितिका पटाट हुए सजाना चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि त्रिम जिस स्थितिका उच्छेदना जाया हमने एक आवस्थि अधिक कयायकी स्थितिके एक समय तक बन्ध करके पुनः एक समय कम एक आवस्थि काल तक कयायकी कष्ट स्थितिके बन्ध करके प्रतिभक्त कालके पहल समयमें बंधमबाल स्त्रीवैर हास्य और रतिमें परत स्त्री हुए स्थितिके एक आवस्थिक

१ या मनी 'आवस्थिया' इति स्थाने 'रतिवैर' इति पाठः ।

यादीदाए संकंताए तिण्हं अणुकस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तदो उवरिमसमए हस्स-रदिवंघे फिट्ठे अरदि-सोग्गित्थिवेदाणमुक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि । तत्काले हस्स-रदीणं पुव्व-णिरुद्धट्टिदी समयूणा होदि ।

❀ अरदि-सोगाणं ट्टिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुकस्सा ?

§ ७७६. सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुकस्सा वा ।

§ ७८०. इत्थिवेदे वज्झमाणे जदि अरदि-सोगा वंज्झति तो इत्थिवेदुक्कस्स-ट्टिदीए सह अरदि-सोगाण पि उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि; वंधावलियादीदकसायुकस्स-ट्टिदीए अक्रमेण तिण्हमुवरि संकंतीए । अण्णहा अणुकस्सा; पडिहग्गावलियाए अरदि-सोगाणं वंधाभावेण णट्ठपडिहग्गभावाण कसायुकस्सट्टिदीए आगमाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुकस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीससागरो-वमकोडाकोडीओ पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणाओ त्ति ।

§ ७८१. एदासिं पयडीणं समयूणुकस्सट्टिदिआदिट्टिदीणं सण्णियासो वुच्चदे । तं जहा—आवलियमेत्तकालं कसायाणमुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पडिहग्गसमए वज्झमा-णित्थिवेद-अरदि-सोगेसु वंधावलियादिककतकसायट्टिदीए संकंताए तिण्हं पि उक्कस्स-

वाद सक्रान्त होने पर तीनोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है तदनन्तर इसके आगेके समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जानेपर अरति, शोक और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तथा उस समय हास्य और रतिकी पहले रुकी हुई स्थिति एक समय कम होती है ।

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थिति विभक्ति क्या उत्कृ ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७६. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७८० स्त्रीवेदके बन्धके समय यदि अरति और शोकका बन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी भी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि बन्धावलि से रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक साथ तीनोंमें संक्रमण हुआ है । अन्यथा अरति और शोक की स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्न कालकी एक आवलिके भीतर बन्ध नहीं होनेसे पनद्रूपपनेसे रहित अरति और शोकमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्य का असख्यातवाँ भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७८१ अब इन प्रकृतियोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष कहते हैं । जो इस प्रकार है—एक आवलिकाल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बधनेवाली स्त्रीवेद, अरति और शोक प्रकृतियोंमें बधावलिले रहित कषायकी स्थितिके सक्रान्त होनेपर तीनोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तदनन्तर

ह्रिदिबिहृची होदि । तदो उचरिमसमए अरदि-सोगपघषो-ञ्जेदुबारेण हस्स-रदीसु  
 पचमागयासु अरदि-सोगुक्स्सह्रिदी समयूणा होदि; पडिगगइचामावण तत्य कसाय  
 ह्रिदीए संकमाभावदो । एचमुवरि वि वचत्थं ज्ञाय समयूणाबलियाए ऊणमुक्कस्स  
 ह्रिदी जादा सि । सेसुवरिमपरुवणा बद्धा हस्स रदीणमित्थिनदुक्स्सह्रिदिसर्षघाणं कदा  
 तहा कायन्वा । णवरि एत्थ समयूणायाहाकडएणूणससागरावपकोडाकोडीभा  
 कसायुक्कस्सह्रिदिर्षवण सह अरदि-सोगे वधाविय पडिगगसमए अरदि-सोगर्षव  
 वोच्चदं क्कादूण भावस्सियमेचह्रिदीओ गालिय अंतिमवियप्या वचत्थो । इदो ? कसायु  
 क्कस्सह्रिदीए वधक्कमाणए णयु सयवेद-अरदि-सोग मय-दुगु छाणं णियमेण तत्य  
 षंपे मंथ सगुक्कस्सह्रिदीदो समयूणायाहाकडएणूणस्सव ह्रिदिभक्स्सुवरांभाटो ।

⊗ एव णयु सयवेदस्स ।

§ ७८२ बहा अरदि-सोगाणं इत्थिबहुमक्कस्सह्रिदिपटियद्धाणं परुवणा कदा  
 तहा णयु सयवेदस्स वि परुवणा कायन्वा; समयूणमादिं क्कादूण जाव धीसंसागरोवम  
 कोडाकोडीओ पच्छिदो० अमंस्सं०भागेण ऊखाओ सि एवेहि सण्णियासभियप्येहि  
 अणिसंसादो । एत्थतणविसेसपदुण्णायणदुसुत्तरसुत्त भणदि—

⊗ अवरि पियमा अणुक्कस्सा ।

आगेके समयमें अरति और शोककी वस्तुस्थिति होकर हास्य और रतिके कथको प्राप्त होनपर  
 अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उस समय पतदुम्भपना नहीं  
 रहनेसे धर्म कथायुक्ती स्थितिका संक्रमण नहीं जाता है । इसी प्रकार आगे भी एक समयकम  
 एक आबलितसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिके प्रसन्न होने तक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । श्रेय आगोत्री  
 प्ररूपय्या, जिस प्रकार स्त्रीवर्गकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्बन्ध रक्षनयाह्य। हास्य और रतिकी भी  
 इस प्रकार करनी चाहिये । किन्तु यहाँ पर कथायुक्ती उत्कृष्ट स्थितिके कथके साथ अरति और  
 शोकका एक समय कम आवाभावाव्यवहसे न्यून वीस कोडाकोडी सागर स्थितिप्रमाय कथ्य करके  
 तथा प्रतिमन्त कथके प्रथम समयमें अरति और शोककी वस्तुस्थिति कथके और एक आबलि  
 प्रमाय स्थितियोंके गलाकर अन्तिम विकल्प करना चाहिये क्योंकि कथायुक्ती उत्कृष्ट स्थितिके  
 कथके समय नपुंसकवद् अरति शोक मय और सुगुप्ताद्य नियमसे कथ्य होता है पर यह  
 स्थितिकथ्य अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम आवाभावाव्यवहसे न्यून तक ही होता है ।

⊗ इसी प्रकार नपुंसकवद्की प्ररूपणा करनी चाहिये ।

§ ७८२ जिस प्रकार स्त्रीवर्गकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी प्ररूपणा की है  
 उसी प्रकार नपुंसकवद्की भी प्ररूपणा करनी चाहिये क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे  
 उत्कर पत्नोपमके अर्धक्यातर्षं भाग कम वीस कोडाकोडी सागर प्रमाय स्थिति तक होनेवाले  
 साभिकर्षके भेदोंकी अपेक्षा अरति और शोकके कथनसे नपुंसकवद्के कथनमें कोई भेद नहीं है ।  
 अब इस विषय में किसेस्ता बटसानके किय आलोका सूत्र करते हैं—

⊗ किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवर्गकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवद्की  
 स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७८३. कुदो ? इत्थिवेदेण सह णवुंसयवेदस्स वंधाभावादो । तेण पडिहग्ग-  
पढमसमए वज्झमाणित्थिवेदम्मि वंधावलियादीदकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकताए इत्थि-  
वेदस्स उक्कस्सट्ठिदी होदि णवुंसयवेदस्स पुण णियमेण समयूणुक्कस्सट्ठिदी । एत्तो  
उवरि जाव आवलियमेत्तद्धाणं गच्छदि तावित्थिवेदो उक्कस्सो चेव । णवरि णवुंसयवेदु-  
क्कस्सट्ठिदी आवलियूणा होदि । एवमुत्तरि अरदि-सोगोयरणविहाणं बुद्धीए काऊण  
ओदारयेव्वं ।

❀ भय-दुगुंझाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७८४. सुगमं ।

❀ णियमा उक्कस्सा ।

§ ७८५. जम्मि काले इत्थिवेदो वज्झदि तम्मि काले भय-दुगुंझाणं वधो  
णियमा अत्थि; धुवबंधितादो । तेणित्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए भय-दुगुंझाओ  
ट्ठिदि पडुच्च णियमा उक्कस्साओ त्ति भणिद ।

❀ जहा इत्थिवेदेण तहा सेसेहि कम्महि ।

§ ७८६. जहा इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए सेसकम्महि सण्णियासो कदो  
तहा हस्स-रदि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिणिरुंभणं कादूण सण्णियासो वत्तव्वो

§ ७८३ क्योंकि स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है । अतः प्रतिभग्न कालके  
प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्वावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर  
स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है परन्तु उस समय नपुंसकवेदकी नियमसे एक समय कम उत्कृष्ट  
स्थिति होती है । इसके आगे एक आवलिकाल व्यतीत होने तक स्त्रीवेद उत्कृष्ट ही रहता है  
परन्तु नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति उस समय एक आवलि कम होती है । इसी प्रकार आगे अरति  
और शोककी स्थितिके घटानेकी विधिको बुद्धिसे विचार कर उसी प्रकार नपुंसकवेदकी स्थितिको  
घटाना चाहिये ।

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७८४. यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७८५ जिस कालमें स्त्रीवेदका बन्ध होता है उस कालमें भय और जुगुप्साका बन्ध  
नियमसे होता है, क्योंकि ये दोनो प्रकृतिया ध्रुवबन्धिनी हैं । अतः स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके होने  
पर भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है । यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

\* जिस प्रकार स्त्रीवेदके साथ सन्निकर्षके विकल्प कहे हैं उसी प्रकार शेष  
कर्मोंके साथ जानने चाहिये ।

§ ७८६ जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके सद्भावमें शेष कर्मोंके साथ सन्निकर्ष  
कहा है उसी प्रकार हास्य, रति और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका सद्भाव करके सन्निकर्ष कहना

विसेसामावादो ।

⊙ षष्ठीरि विसेसो जाणियव्यो ।

१ ७८७ तस्य पुरिसवेदगिरु भर्गं क्वाऊण भण्णमाणे णत्थि विसेसो; सम्मकम्मोहि सह सण्णिकासिज्जमाण इत्थिवेदसण्णिकासेण समाणघादो । इस्स-रदिगिरु भर्गं क्वाऊण भण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मच-सम्मामिच्छत्त-सोत्तसकसाय-भय-दुग्गुञ्जापं सण्णियासेसु णत्थि विसेसो; इत्थिवेदुक्कस्सद्विदिसण्णियासेण समाणघादो । इत्थि पुरिसाणं सण्णियासं भत्थि विसेसो, तं वचइस्सासो । तं वहा—इस्स-रदीणमुक्कस्सद्विदीप संतीए इत्थि पुरिसवेदाणं द्विदी सिया उक्कस्सा; क्सायाणमुक्कस्सद्विदीप पडिच्छिदाए चदुक्कं पि क्कम्माणमुक्कस्सद्विदिसणादो । सिया अप्पुक्कस्सा; पडिहग्गसमए इस्स-रदीसु वज्जमागियासु इत्थि पुरिसवेदाणं वचामाये सति उक्कस्सद्विदीप अभावादो । मदि अप्पुक्कस्सा तो अंतामुदुत्तणमार्दि क्वाऊण भाव अंतोकावाकोदि चि । इदो सम अप्पुक्कस्सद्विदिमादिवियप्यो ण क्कम्मदे ? इस्स रदीणं व इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण पयद्विधंघस्स बोच्छेवामावादो ।

१ ७८८ एदस्स णयणिरुद्धाप क्को मुक्कवे । तं महा—क्सायाणमुक्कस्सद्विदिं

पत्तिये क्कोकि इत्ते क्कम्मं कोई विसेयता नही है ।

⊙ किन्तु कुछ विशय जानना चाहिये ।

१ ७८७ इनमेंसे पुरुषवर्षके राककर कथन करने पर कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि सब कर्मके साथ पुरुषवर्षका सन्निकष कर्म पर स्त्रीवर्षके सन्निकषके समान है। हास्य और रतिको रोक कर कथन करभ पर मिध्यास्य सम्यक्त्व, सम्बमिध्यात्व मोहाह कयाय, मय और जुगुप्साके सन्निकषमें कोई विशेषता नहीं है क्योंकि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ एक प्रकृतियोंकी स्थितिक्रम होनाबाला सन्निकष स्त्रीवर्षकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ हानबाले सन्निकषके समान है। पर स्त्रीवर्ष और पुरुषवर्षके सन्निकषमें कुछ विशेषता है। भागे एसीको पताते हैं। जो इस प्रकार है—हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके यह रूप स्त्रीवर्ष और पुरुषवर्षकी उत्कृष्ट स्थिति कदापि उत्कृष्ट होती है, क्योंकि कयायकी उत्कृष्ट स्थितिके इनमें संश्रमित हो जान पर बातें ही कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति देनी जाती है। कदापि अनुकृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिमम कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके कथन समय स्त्रीवर्ष और पुरुषवर्षका बन्ध नहीं हान पर इनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं जाती है। यदि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवर्ष और पुरुषवर्षकी अनुकृष्ट स्थिति होती है तो वह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे अंतर अन्तः कोइकोई तक होती है।

शुका—एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति चापि विकल्प क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—क्योंकि जिस प्रकार हास्य और रतिका एक समयतक बन्ध होकर अनन्तर वसकी व्युत्पत्ति हो जाती है उस प्रकार स्त्रीवर्ष और पुरुषवर्षका एक समयतक बन्ध होकर वसकी व्युत्पत्ति नहीं होती।

१ ७८८ अब सबकी अपेक्षा इसके कम्मका कथन करते हैं जो इस प्रकार है—कयायोंकी

वधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणित्थि-पुरिसवेदेसु वधावलियादिककंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए इत्थि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिं कादूण पुणो अंतोमुहुत्त णवुंसयवेद-अरदि-सोगेहि सह कसायुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए अरदि-सोगपयडिवधवोच्छेद-दुवारेण वज्झमाणहस्स-रदीसु वंधावलियादिककंतकसायट्ठिदीए संकंताए हस्स-रदीण-मुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तक्काले इत्थि-पुरिसवेदट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा । संपहि एदमतोमुहुत्तूणमादिं कादूण णेढव्वं जाव धुवट्ठिदि त्ति एसो विसेसो त्ति ।

§ ७८६ के वि आइरिया भणंति—एटासु वि पयडीसु णत्थि विसेसो; हस्स-रदीणं व एगसमएण पयडिवंधवोच्छेदसभवाटो । इत्थि पुरिसवेदाणमेगसमएण वंधवोच्छेदो होदि त्ति कुदो णव्वदो ? महाबंधसुत्तादो हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदि-णिरुंभणं काऊणित्थि-पुरिसवेदाणं समयूणादिसण्णियासवियप्पपरूयउच्चारणाटो च णव्वदे । 'णवरि विसेसो जाणियव्वो' त्ति चुणिसुत्तणिहेसण्णहाणुववत्तीदो इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण वंधवोच्छेदो ण होदि त्ति ण वोत्तुं जुत्तं; एदस्स णिहेसस्स णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं सण्णियासेसु उववत्तिदसणाटो । तं जहा—इत्थिवेदे

उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रम कालके प्रथम समयमे बंधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । पुन अन्तर्मुहूर्त काल तक नपुसकवेद, अरति और शोकके साथ कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रमकालके प्रथम समयमे अरति और शोक इन दो प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्तिद्वारा बंधनेवाली हास्य और रतिमे बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तथा उस समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । अब इस अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर ध्रुवस्थिति प्राप्त होने तक स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । यही यहाँ विशेषता है ।

§ ७८६ कुछ आचार्य कहते हैं कि इन प्रकृतियोंमे भी कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि हास्य और रतिके समान इन प्रकृतियोंका भी एक समय तक बन्ध हाकर अनन्तर उनकी व्युच्छित्ति संभव है ।

**शंका**—स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति होती है यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

**समाधान**—महाबन्धसूत्र से । तथा हास्य और रति की उत्कृष्ट स्थितिको रोककर स्त्रीवेद और पुरुषवेद की एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि सन्निकर्ष विकल्पों का कथन करनेवाली उच्चारणासे जाना जाता है ।

**शंका**—'एवरि विसेसो जाणियव्वो' इस प्रकार चूर्णिसूत्रका निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता, इसलिये स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती ।

**समाधान**—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस निर्देशकी सार्थकता नपुसकवेदअ, रति

गिरुद्धे णवु सयवेदो गियमा अणुक्कस्ता; इत्थिवेदवधकाले णवु सयवेदस्स बंधामावादो ।  
 हस्स-रदीण पुण षक्कस्सद्विदीए गिरुद्धाए णवु सयवेदद्विदी सिया उक्कस्ता; हस्स  
 रदिवंधकाखे वि णवु सयवेदस्स बंधुवर्त्तमादो । सिया अणुक्कस्ता; कयाइ तत्थ  
 बंधामावेण तस्स समयूणादिवियप्पुवत्तदीदो । इत्थिवेदउक्कस्सद्विदीएण अरदि-सोगार्ण  
 सिया षक्कस्ता; इत्थिवेदण सह एवेसि बंधं पडि विरोहामावादो । सिया अणुक्कस्ता;  
 पडिहमासमए हस्स-रदीसु बंधमागदासु अरदि-सोगार्णं समयूणमाधिं काड्ढ णव  
 पडिधोवमस्स असंखेज्जदिमागम्महियवीसंसागरोवमकोढाकोडिमेषवियप्पुवत्तमादो ॥  
 हस्स-रदीणमुक्कस्सद्विदीए गिरुद्धाए पुण अरदि-सोगद्विदी गियमा अणुक्कस्ता;  
 पडिहमासमए हस्स-रदीसु बज्जमागियासु तप्पदिक्कस्वाणमरदि-सोगार्णं, बंधामावादो ।  
 तदो इत्थि-पुरिसवेदसु जत्थि वित्तेसो चि सिद्ध ।

§ ७६० सुचाहिप्पाएण पुण इत्थि पुरिसवेदेसु वि वित्तेसो अत्थि चेव, हस्स  
 रदीण व इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण वधुवरमाणम्भुवममादो । तदो इत्थिवेदे गिरुद्धे  
 हस्स-रदीणं समयूणादिवियप्पा होति । हस्स-रदीसु पुण गिरुद्धासु इत्थि पुरिसवेदाणमंतो  
 सुद्धुत्तादिवियप्पा चि ।

और श्राक प्रकृतमाक समनकारोमि कतकार्त्तं गई ह । जुजासा इस प्रकार है—स्त्रीवर्क की उत्पत्ति  
 स्थितिके रहने पर नपुंसकवर्क की स्थिति नियमसे अनुत्पत्ति होती है, क्योंकि स्त्रीवर्क बन्धके  
 समय नपुंसकवर्क का बन्ध नहीं होता । परन्तु हास्य और रतिकी उत्पत्ति स्थितिके रहने पर  
 नपुंसकवर्क की स्थाव कर्त्ताचित् उत्पत्ति होती है क्योंकि हास्य और रतिके बन्धके समय मा  
 नपुंसकवर्क का बन्ध पाया जाता है । कर्त्ताचित् अनुत्पत्ति होती है क्योंकि कर्त्ताचित् हास्य और  
 रतिके बन्ध नहीं होनेसे नपुंसकवर्क की उत्पत्ति स्वातन्त्र्य एक समय कम आदि विकल्प पाय  
 जात है । स्त्रीवर्क की उत्पत्ति स्वातन्त्र्य साथ अरगत और श्राककी स्थाव कर्त्ताचित् उत्पत्ति होती है,  
 क्योंकि स्त्रावर्क बन्धके साथ इनका बन्ध हानम कर (परतम नही) जाता है । कर्त्ताचित् अनुत्पत्ति  
 होता है, क्योंकि प्रातमगतश्राक प्रथम समयसम हास्य और रतिके बन्धका प्रस हान पर अरगत  
 और श्राकका एक समय कम उत्पत्ति स्वातन्त्र्य सत्कर पत्तका असंभवतया भाग आधिक बास  
 कोडाका। सागर तक स्वातन्त्रिकल्प बंध जात है । परन्तु हास्य और रतिकी उत्पत्ति स्वातन्त्र्य  
 रहने पर अरगत और श्राकका स्थाव नियमसे अनुत्पत्ति होता है, क्योंकि मतिमग्न कासक समय  
 समयसम हास्य और रतिके बन्धका प्रस हान पर इनका प्रातपद्यभूत अररति और श्राक प्रकृतियाका  
 बन्ध नहीं होता है इसीसम स्त्रावर्क और पुरुषवर्क विषयम कर विकल्पता नही है यह  
 सिद्ध हुआ ।

§ ७६० परन्तु उक्त सूत्रक अभिप्रायानुसार स्त्रीवर्क और पुरुषवर्क विषयम मी विरोधता  
 है ही, क्योंकि उक्त सूत्रम हास्य और रतिके समान स्त्रीवर्क और पुरुषवर्क की एक समयक हाव  
 बन्ध व्युत्पत्ति नहीं स्वीकार की है, अतः स्त्रीवर्क की उत्पत्ति स्थितिके रहने पर हास्य और रतिके  
 एक समय कम उत्पत्ति स्थिति आदि विकल्प हाव हैं । परन्तु हास्य और रतिकी उत्पत्ति स्वातन्त्र्य  
 रहने पर स्त्रावर्क और पुरुषवर्क अन्तर्गुह्ये कम उत्पत्ति स्थिति आदि विकल्प हाव हैं ।



❀ णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७९१. सुगमं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७९२. णवुंसयवेदट्टिदीए उक्कस्साए संतीए जदि मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदी पबद्धा होज्ज तो मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदिविहत्ती होदि अण्णहा अणुक्कस्सा; उक्कस्सादो हेट्टिमट्टिदीदो वंधंतस्स उक्कस्सत्ताभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणा त्ति ।

§ ७९३. पल्लिदो० असंखे० भागो किपमाणो ? एगावलियन्भहियसमयूणावाहाकंडयमेत्तो । अहिओ किण्ण होदि ? ण, कसाएसु उक्कस्सट्टिदिवंधे संते मिच्छत्तस्स समऊणावाहाकंडएण्णउक्कस्सट्टिदिमेत्तजहण्णट्टिदिवंधस्स तत्थुवलंभादो । एगावलियाए अहियत्तं कथमुवल्लभदे ? ण, पडिहग्गकाले वि णवुंसयवेदस्स आवलियमेत्तकालमुक्कस्सट्टिदिसंभवादो । सेसं सुगमं; बहुसो परुविदत्तादो ।

\* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७९१ यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७९२. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिक रहते हुए यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि उत्कृष्टसे कमकी स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है ।

§ ७९३. शंका—यहापर पल्योपमके असंख्यातवें भागका कितना प्रमाण लिया है ?

समाधान—एक समय कम आवाधाकाण्डकमे एक आवलि कालके जोड़ देने पर जितना प्रमाण हो तत्रमाण यहा पल्यका असंख्यातवें भाग काल लिया है ।

शंका—इससे अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होते समय मिथ्यात्वका कमसे कम स्थितिवन्ध एक समय न्यून आवाधाकाण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति मात्र ही होता है, इससे कम नहीं ।

शंका—पल्यके असंख्यातवें भागको जो एक आवलि अधिक और एक समय कम आवाधा काण्डक प्रमाण बतलाया है तो यहा एक आवलि काल अधिक कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रतिभ्रम कालके भीतर भी नपुंसकवेदकी एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थिति संभव है ।

सूत्रका शेष व्याख्यान सुगम है, क्योंकि उसका अनेकवार कथन कर आये हैं ।

⊗ सम्मत्त-सम्मामिच्छतायं द्विविहरी किमुक्त्वा अणुक्त्वा ?  
 § ७६४ सुगमं ।

⊗ विषया अणुक्त्वा ।

§ ७६५ णडु सपयदुक्त्वाद्विदिविहृत्त्रिसंस्थितातो मिच्छाद्विद्विमि सम्मत्त सम्मामिच्छ  
 चाणमुक्त्वादिदीए अमानादो । ण च सम्माद्विद्विमिसमए पविबद्धाए सम्मत्त-सम्मा  
 मिच्छाचुक्त्वादिदीए अणुत्वास्यि समथो; विरोहादा ।

⊗ उक्त्वातो अणुक्त्वा अंतोमुत्त एमादि कावृष जाव एगा द्विवि  
 ति । पवरि वरिसुव्येक्यकंठयवरिमफाकीए क्त्वा ।

§ ७६६ एदेसि दोणं मुत्ताणमत्थे मण्णमाणे अहा मिच्छाचुक्त्वादिदिविभवंमणं  
 काकण सम्मत्त-सम्मामिच्छाचोमुत्ताणं परूणा क्त्वा तथा एत्य वि कायम्मा; विसंसा  
 मावादो ।

⊗ सोवसकसायायं द्विविहरी किमुक्त्वा अणुक्त्वा ?

§ ७६७ सुगमं ।

⊗ उक्त्वा वा अणुक्त्वा वा ।

\* नपुसकबेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्की  
 स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६४ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ नियमस अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६५ नपुसकबेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके प्रकार मिथ्यादृष्टि बीषके सम्यक्त्व और  
 सम्बन्धित्वात्की उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति नहीं पाई जाती है । सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्की  
 उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धित्वात्के प्रथम समयमें होती है अतः उसका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं  
 है, क्योंकि ऐसा मानने पर विरोध आता है ।

⊗ यह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक  
 स्थिति तक होती है । किन्तु इतनी विद्योपता है कि इसमेंसे अन्तिम बड़े अनाकाण्डकी  
 अन्तिम फासिप्रमाण स्थितिको कम कर देना चाहिए ।

§ ७६६ इन बातों सुनोका अर्थ करनेपर जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहत  
 हुए सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्की सन्धकी से सुनोका कथन किया है उसी प्रकार यहां भी करना  
 चाहिए, क्योंकि इनके कथनोंसे कोई क्लेशोपता नहीं है ।

⊗ नपुसकबेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोवस कपायोकी स्थितिबिभक्ति क्या  
 उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६७ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७६८. यदि णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए अप्पिदकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिवंधो होज्ज तो उक्कसा, अण्णहा अणुक्कस्सा; समयूणादिट्ठिदीसु वद्धासु उक्कस्सत्त-विरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव आवल्लिऊणा त्ति ।

§ ७६९ तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमावल्लियमेत्तकालं वधिय पडिहग्ग-समए वज्जमाणणवुंसयवेदस्सि वधावल्लियादिककसंताकसायट्ठिदीए संकंताए णवुंसयवेद-ट्ठिदी उक्कस्सा होदि तस्समए कसायट्ठिदी समयूणा होदि; उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदि-गल्लणाए गलिदेगसमयत्तादो । एवं दुसमयूणादिकमेण णेदव्वं जाव आवल्लियमेत्तकालो कसायट्ठिदीए गलिदो त्ति । अहिओ किण्ण गालिज्जदे ? ण, उवरि णवुंसयवेदुक्कस्स-ट्ठिदीए असंभवादो ।

❀ इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदिविहृत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८००. सुगमं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ८०१. णवुंसयवेदवधकाले णियमेणित्थि-पुरिसवेदाणं वंधाभावादो । किं

§ ७६८ यदि नपु सकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए विवक्षित कपायका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होवे तो उत्कृष्ट स्थिति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि एक समय कम आदि स्थितियोंके बंधने पर उन्हे उत्कृष्ट माननेमें विरोध आता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर आवली क्रम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७६९ जो इस प्रकार है—कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि कालतक बाधकर पश्चिन्न कालके प्रथम समयमे बंधनेवाले नपुसकवेदमे बन्धावल्लिसे रहित कपायकी स्थितिके अन्त होन पर नपुसकवेदकी स्थिति उत्कृष्ट होती है और उस समय कपायकी स्थिति एक क्रम रूप होती है, क्योंकि उस समय कपायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक क्रमसे गली गयी है । इसी प्रकार कपायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे दो समय कम आदि क्रमसे आवलि क्रमसे गलने तक कथन करते जाना चाहिये ।

—कपायकी उत्कृष्ट स्थितिमें से एक आवलिसे अधिक काल क्यों नहीं गलाया

—नहीं, क्योंकि इसके आगे नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना असंभव है ।

स्थि। —कपायकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थितिबिभक्ति

—या अनुत्कृष्ट ?

आवाधा —समय है ।

सम। —होती है ।

उत्कृष्ट स्थिति —बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नियमसे नहीं

सूत्रका अ



वेदो सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिय समयूणो होदि; तत्थ तदो गळ्ळिदेगसमयत्तादो । णवुंसय-  
वेदे पुण उक्कस्सट्ठिदिमुवगदे इत्थिवेदो णियमेण अंतोमुहुत्तूणो इत्थिवेदबंधपडिसेह-  
दुवारेण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए सह णवुंसयवेदे बंधमागदे तव्वंधपढमसमयप्पहुडि जाव  
अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव कसायाणमुक्कस्सट्ठिवंधसंभवाभावादो । तं कुदो णव्वदे ?  
उक्कस्सट्ठिदिवंधंतरस्स जहण्णस्स वि अतोमुहुत्तपमाणपरूवयबंधसुत्तादो । इत्थि-पुरिस-  
वेदानमेगसमएण बंधुवरमाणब्भुवगमादो च अंतोमुहुत्तं णत्तमविरुद्धं सिद्धं ।

❀ हस्स-रदीणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८०४. सुगम

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ८०५. पडिहग्गपढमसमए णवुंसयवेदुक्कस्सट्ठिदीए संतीए जदि हस्स-रदीणं  
बंधो होज्ज तो उक्कस्सा, अण्णहा अणुक्कस्सा; बंधाभावेण हस्स-रदीसु कसायट्ठिदि-  
संकंतीए अभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समज्जणमादिं कादूए जाव अंतोकोडा-  
कोडि ति ।

वेदकी उत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है, क्योंकि वहा पर  
उसमेसे एक समय गल गया है। परन्तु नपुसकवेदके उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी  
उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नपुसक-  
वेदके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता और स्त्रीवेदके बन्धके प्रथम समयसे लेकर  
जब तक अन्तर्मुहूर्त काल नहीं व्यतीत होता है तब तक कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध समब नहीं  
है। अतः नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अन्तर्मुहूर्त कम हो  
जाता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धान्तर भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है इस प्रकार कथन  
करनेवाले बन्धसूत्रसे जाना जाता है। तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्ध-  
व्युच्छित्ति नहीं स्वीकार की गई है अतः इससे भी नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेद  
और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति ठीक अन्तर्मुहूर्त कम सिद्ध होती है।

❀ नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८०४ यह सूत्र सुगम है।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ८०५ प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यदि हास्य  
और रतिका बन्ध होव तो उनकी स्थिति उत्कृष्ट होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्धके  
विना हास्य और रतिमें कषायकी स्थितिका सक्रमण नहीं पाया जाता है।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः-  
कोडाकोड़ी सागर तक होती है।

§ ८०६ पडिहृत्पडमसमयमि णु सयवेद-हस्त-रदीणं बंधे सत तिणं पि उचकस्तद्विदिविहृती होदि । वदर्णतरभिव्रियसमए हस्त-रदिवंध बोच्चिण्णे हस्त-रदीणं समयूणुकस्तद्विदी होदि । एषं दुसमयूणादिकमेण णेद्वन् नाव समऊणावस्मियाए ऊणुकस्तद्विदि पि । उचरि इतिवेदं णिरुद्धे हस्त रदीणं पचकमं पुदीए अयहारिय पचव्व ।

⊗ अरदि-सोगाण द्विदिविहृती किमुपकस्ता अणपकस्ता ?

§ ८०७ सुगमं ?

⊗ उचकस्ता वा अणुपकस्ता वा ।

§ ८०८ णनुसयवेदबंधफाले मरदि-सोगाणं बंधे संते तिणं पि उचकस्तद्विदि विहृती होदि, अण्णहा अणुपकस्ता; अयन्कमाणबंधपयदीणं पडिगगत्तामावातो ?

⊗ उचकस्तावो अणुपकस्ता समऊणमादिं काकूय जाव बीसं सागरोवम कोडाकोडीओ पसिवोचमस्त असंखेऊजबिभागेण ऊणाओ ।

§ ८०९ सं महा—सोक्षसकसायाणमुचकस्तद्विदिमतोमुहुत्तमेचकलं बंधिय पडिहृत्तसमए अरदि-सोगबंधवोच्छेददुबारेण हस्त रदीसु बंधमागयासु णनु सयवेदद्विदी सत्य उचकस्ता; अन्कमाणत्तावो । अरदि-सोगद्विदी पुण समयूणुकस्ता; बंधामावातो ।

§ ८१० प्रतिमम कालके प्रथम समयमें नुपुसकवद हास्य और रतिके बन्ध होत हुए तीनों की ही वृत्त स्थितिबिभक्ति होती है । वदन्तर दूसरे समयमें हास्य और रतिके बन्धके म्युच्छिन्न हा घान पर हास्य और रतिकी वृत्त स्थिति एक समय कम होती है । इस प्रकार वा समय कम आवि क्रमसे लेकर एक समय कम आवलिते म्युन वृत्त स्थिति तक जानना चाहिये । तथा इसके आगे रतीवदका वृत्त स्थितिके रहते हुए हास्य और रतिका वा प्रथम पदा है वसका पुढिसे िरणय करके वहाँ भी कमन करना चाहिये ।

⊗ नपुसकवेदकी वृत्त स्थितिके सर्वय अरति और शोषकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८११ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ८१२. नपुसकवदके वचक समय अरति आर शाकक वन्ध हान पर तीनोंकी ही वृत्त स्थितिबिभक्ति होती है अथवा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होगी है, क्योंकि नयी बंधनवासी प्रवृत्तिधर्मोंमें पदव्यवस्था नहीं पाया जाता है ।

⊗ यह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिस लेकर पन्वोपमक असम्प्राप्तों भाग न्यून बीस फोडाफाड़ी सागर तक होती है ।

§ ८१३ वा इस प्रकार है—आसह कयासोकी वृत्त स्थितिका अन्तर्गत काम तक दोबकर प्रतिममकालके प्रथम समयमें अरति आर शाककी वन्ध म्युच्छिन्न हापर हास्य और रतिके बन्धहा प्राण हान पर वहाँ पर नपुसकवदकी स्थिति वृत्त होती है क्योंकि प्रथम वन्ध हा रहा है परन्तु अरति और शाकका वृत्त स्थिति एक समय कम होती है क्योंकि प्रथम वन्ध

एवं जाव पडिहग्गालियमेत्तकालो उवरि गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी आवलियुणा होदि । पुणो समयाहियावलियपढमसमए कसायाणमावलिऊणुक्कस्सट्ठिदि वंधिय पुणो आवलियमेत्तकालं उक्कस्सट्ठिदि वंधिय पडिहग्गपढमसमए हस्स-रदीसु वंधमागदासु अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी समयाहियावलियाए ऊणा होदि । पुणो जाव आवलियमेत्तकालो गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी दोहि आवलियाहि ऊणा होदि । एवं जाणिदूण ओदारेय्वं जाव आवलियव्भहियसमऊणावाहाकंडएणुणवीसं सागरोवमकोडाकोडिमेत्तकम्मट्ठिदी चेट्ठिदा ति ।

❀ भय-दुगुंछाणं टिदीविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८१० सुगमं ?

❀ गियमा उक्कस्सा ।

§ ८११, धुवबंधित्तदो ।

❀ एवमरदि-सोग-भय दुगुंछाणं पि ।

§ ८१२, जहा णवुंसयवेदस्स सव्वकम्मेहि सह सण्णियासो कदो तहा अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि कायवं ।

नहीं हो रहा है। इस प्रकार एक आवलिप्रमाण प्रतिभग्नकालके आगे जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिप्रमाण कम हो जाती है। पुनः एक समय अधिक आवलिके प्रथम समयमें कपायोंकी एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिको बंधकर पुन एक आवलि काल तक कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बंधकर प्रतिभग्न वानके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक एक आवलि कम होती है। पुनः एक आवलि प्रमाण कालके जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति दो आवलि काल प्रमाण कम होती है। इस प्रकार एक समय कम आवाधाकाण्डकमें एक आवलि कालके जोड़ने पर जितना प्रमाण हो उतने कालसे न्यून वीस कोडाकोडी सागर प्रमाण कर्मस्थितिके प्राप्त होने तक अरति और शोककी स्थितिको घटाते जाना चाहिये।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८१० यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ८११, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ धुवबन्धिनी हैं ।

❀ इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी सब कर्मों के साथ सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

§ ८१२, जिस प्रकार नपुंसकवेदका सब कर्मोंके साथ सन्निकर्ष किया उसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी करना चाहिये ।

⊙ षापरि विसेसो जाषियम्बो ।

‡ = १३ एत्थ विसेसपक्वणह पुक्वदे—अरदि-सोगाणमुक्कस्सहिद्विदिग मणं कादूण मण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोल्लसकसायाणं णभु सयवेद्वर्गो । अरदि-सोगाणमुक्कस्सहिदीए संतीए इत्थिवेदस्स सिया उक्कस्सहिदी; पडिहग्गपडम समए अरदि सागहि सह इत्थिवेदे बज्जमाणे सिण्ह पि उक्कस्सहिदिविहचिदसपादो । अण्णाहा अयुक्कस्सा; बंधामां कसायहिदिपडिच्छणसचीए अमाबादो । अय अणु कस्सा समञ्जमादिं कादूण आव अंतोकोडाकोहि चि । इदो ? इत्थिवेद्वर्षकालस्स एगसमए एते समयूणउक्कस्सहिदिसंतुवर्त्तमादो ।

‡ = १४ जेसिमाइरियाणमित्थिवेद्वर्षकालो नइण्णभो अंतोमुहुत्तमेचो तेसिम हिप्पाएण अंतोमुहुत्तमादिं कादूण आव अंतोकोडाकोहि चि । तं जहा—कसायु कस्सहिदिं वंषिय पडिहग्गसमए इत्थिवद अरदि-सोगाणमावळियमेचकालमुक्कस्सहिदी होदि । संपहि इत्थिवेद्वर्षो आव अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव ण फिद्धदि । एदम्मि आपत्तिय बज्जंतोमुहुत्तमेचइत्थिवेद्वर्षकालम्मि इत्थिवेद अरदि सोगाणं हिदीओ अपडिदिगत्ताए गत्ताणामो वेह ति । इदो ? आव अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव संकिसेत्तं पूरेदु ओ सक्कदि चि कादूण उहुमुक्कस्सहिदिं बंधाविदो । पुणो तप्पाओमोण जइण्णकालेपुक्कस्स

⊙ परन्तु इह विधेय जानना चाहिये ।

‡ = १३ अब यहाँ पर (श्रोपका कथन करत हैं—अरति और शाककी उत्कृष्ट स्थितिको राक्क करन करने पर सिध्दात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्निध्दात्व और सोल्लह कपायोंका मंग न्तुत्क-वक्के समान है । अरति और शोक्की उत्कृष्ट स्थितिक रहते हुए स्त्रीवर्ककी कथापित् उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि प्रतिभन्तकालके प्रथम समयमें अरति और शाकके साथ स्त्रीवर्कके बन्ध होने पर तीनोंकी ही उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति दक्का आती है । अथवा अरति और शाककी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवर्ककी स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवर्कका बन्ध नहीं होने पर उसमें कथावकी स्थितिका संक्रमित करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है । अब यदि अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो वह एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके संकर अन्तःकाहकाही सागर तक जाती है, क्योंकि स्त्रीवर्कके बन्धकालके एक समय होनेपर एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है ।

‡ = १४ किन्तु जिन आचार्योंके मतमें स्त्रीवर्कका बंधम्य वन्धकाल मी अन्तमु हुतं है उनके अभिप्रायानुसार अन्तमुहुतं कम उत्कृष्ट स्थितिके संकर अन्तःकाहकाही सागर तक अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । इसका झुतासा इस प्रकार है—कथावकी उत्कृष्ट स्थितिका बंधकर प्रतिभन्तकालमें स्त्रीवर्क, अरति और शोक्की एक आच्छिन्नत्व तक उत्कृष्ट स्थिति होती है । यहाँ पर स्त्रीवर्कका बन्ध जब तक अन्तमुहुतं काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक नहीं छूटता है । इस एक आचार्यसे उचित अन्तमुहुतं प्रमाण स्त्रीवर्कके बन्धकालमें स्त्रीवर्क, अरति और शाककी स्थितियों आपत्तस्थिति गत्ताके द्वारा गत्ताती रहती हैं, क्योंकि जब तक एक अन्तमु हुतं काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक उत्कृष्ट संक्लेशको पूरा करना क्षम्य नहीं है, ऐसा समझकर छांट अन्तमुहुतं काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करया है । पुनः इसके पाप्य अपम्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त



संकिलेसं गंतूणुक्कस्सट्ठिदि वंधिय वंधावलियादीदकसायट्ठिदीए सकामिदाए अंतो-  
मुहुत्तकालं सव्वमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि । कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए  
उक्कस्ससंकिलेसेण वज्झमाणाए हस्स-रदीहि विणा अरदि-सोगाणं चेव वंधसंभवादो ।  
कसायुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिकालेण अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिकालो सरिसो कसा-  
याणमुक्कस्सट्ठिदिवंधे थक्के वि आवलियमेत्तकालमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ति-  
दंसणादो । सपहि इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा । पुणो अण्णेण  
जीवेण कसायाणं समज्जुक्कस्सट्ठिदिमंतोमुहुत्तकालं वंधिय पडिहरगसमए वज्झमाणा-  
इत्थिवेदम्मि वंधावलियादीदकसायट्ठिदी संकामिदा । ताथे इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्स  
पेक्खिदूण समज्जणा । तदो अतोमहुत्तकालमित्थिवेदं वंधिय अवरेगमंतोमुहुत्तकालं  
णवंसयवेदं वंधिय पणो अतोमहुत्तेणुक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूणुक्कस्सकसायट्ठिविं वंधिय  
बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए सकामिदाए अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि । तम्मि  
समए इत्थिवेदो अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तूणो होदि । एवं  
दुसमयाहिय-तिसमयाहिय-अतोमुहुत्तमूणं कादूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ।  
एवं पुरिसवेदस्स । णवंसयवेदस्स एव चेव । णवरि समज्जणमादिं कादूण [ जाव ]  
वोसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति णेदव्वं ।

होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके  
सक्रमित होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालतक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि  
कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट सकलेशसे बंधने पर हास्य और रतिको छोड़कर अरति और  
शोकका ही बन्ध सभव है । यद्यपि अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल  
कषायकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके कालके समान है तो भी कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके रुक  
जाने पर भी एक आवलि काल तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति देखी  
जाती है । यहाँ पर स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम है ।  
पुनः अन्य जीवने कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त काल तक बाँधा और  
प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका सक्रमण  
किया तो उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती  
है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका बन्ध करके तथा दूसरे एक अन्तर्मुहूर्त काल तक  
नपुंसकवेदका बन्ध करके पुनः एक अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलेशकी पूर्ति करके और  
कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर बन्धावलिसे रहित उस कषायकी स्थितिका अरति और शोकमें  
सक्रमण होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है । तथा उस समय स्त्रीवेद अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिवाला होता है । इसी  
प्रकार दो समय अधिक और तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त-  
कोडाकोड़ी सागर तक स्त्र वेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी स्थिति  
होती है । तथा नपुंसकवेदकी स्थिति भी इसी प्रकार होती है । किन्तु इतनी विशेषता हे कि  
नपुंसकवेदकी स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असखयातवा भाग कम  
वीस कोडाकोड़ी सागर तक घटाते हुए ले जाना चाहिये ।

५८१५ इत्स-रदीर्ण गियमा अणुवकस्ता समजणमादिं कादूण आब अंतोकोडा कादि चि । मय-दुगुंङ्गाणं गियमा उक्कस्ता; धुवधंभिचत्तो । मय-दुगुंङ्गाणं भिस मणं कादूण भण्णमाणं भिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोत्तसकसाय तिण्णित्रदापमरदि सागभंगो । इत्स-रदि अरदि-सोगाणं णवुसयवेदभंगो ।

५८१६ एवं जुष्मिस्तुत्तमास्सिदूण सण्णियासपरूवणं करिय संपदि उप्पारभम स्सिदूणकस्ससण्णियासं कस्सामो । पुणरुत्तमिदि एतय भण्णयरो ण कायम्भो; आइरियाणाहुवदेसत्तरनाणावणद परूविदाए पुप्फत्तदोसामावावो ।

५८१७ सण्णियासो दुविहो—अहण्णभो उक्कस्सभो वेदि । तत्य उक्कस्सए पयदं । दुविहो गिहेसो—ओयेण आवेसेण य । ओयेण भिच्छत्तउक्कस्सद्विदिविहचियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० सिया अरिय सिया गत्यि । अदि अरिय, किमुक्कस्ता अणुक्कस्ता ? गियमा अणुक्कस्ता । अंतोमुहुचूणमादिं कादूण आब एगा द्विदि चि । णवरि चरिमु भ्येन्नकाकटएत्ता । सोत्तसक० किमुक्क अणुवक० ? उक्कस्ता वा अणुवकस्ता वा । उक्कस्तादो अणुवकस्ता समजणमादि कादूण आब पस्सिदीवमस्स अस्सेत्तदिभागेण ऊपा । चचारिणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुवक० अंतोमुहुचूणमादिं कादूण

५८१४ हास्य और रतिकी स्थिति एक समय कम अपनी वृत्त स्थितिसे लेकर अन्तः कोडाकोडी सागर तक गिनते अनुकृत होती है । तथा मय और जुगुंसाकी स्थिति नियमसे वृत्त होती है क्योंकि वे दोनों मन्त्रतिथीं भ्रुवग्विनी हैं । मय और जुगुंसाकी वृत्त स्थिति रहते हुए सन्निकर्षक कथन करनेपर मिष्यात्व, सम्पत्त्व सम्मगिमप्यात्व, साह्य कपाय और तीनों वेदोंका संग अरति और शोकके समान है । तथा हास्य रति अरति और शोकका संग नपुंसकवेदके समान है ।

५८१५ इस प्रकार त्रिसुक्का आत्मय लेकर सन्निकर्षका कथन करके अब उच्चारणाका आशय लेकर वृत्त सन्निकर्षके बताते हैं । यदि कोई कहे कि त्रिसुक्का द्वारा कथन किया है उसका उच्चारणा द्वारा कथन करने पर पुनरुक्त होय जाता है अतः किसी एकका कथन नहीं करना चाहिये सा भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मायोंके उच्चारणोंका अन्तरका ज्ञान कथनके लिए त्रिसुक्काके कथनके बाद भी उच्चारणाका कथन करने पर पुनरुक्त होय नहीं जाता है ।

५८१६ सन्निकर्ष हो पश्चात्त है—इयम्य और वृत्त; जन्तसे पहले वृत्तका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश हो पश्चात्त है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । जन्तसे ओपकी अपेक्षा मिष्यात्वकी वृत्त स्थितिबिम्बित्वात्त बीजके सम्पत्त्व और सम्मगिमप्यात्वकी स्थिति-बिम्बित्वात्त कथाचित् है और कथाचित् नहीं है । यदि है तो क्या वृत्त होती या अनुकृत ? नियमसे अनुकृत होती है । जो एक अन्तर्मुहूर्त कम अपनी वृत्त स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुकृत स्थिति अन्तःम उद्येत्तनाकाव्यक्तके सन्निकर्ष विषयों से मूल होती है । साह्य कपायोंकी स्थिति क्या वृत्त होती है या अनुकृत ? वृत्त कथना अनुकृत होती है । जन्त अनुकृत स्थिति एक समय कम अपनी वृत्त स्थितिसे लेकर पत्सोपय क अस्सेत्तवर्षे माग कम वृत्त स्थिति तक होती है । चार नोकपायोंकी स्थिति क्या वृत्त

जाव अंतोकोडाकोडि ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादृण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखे० भागेण्णाओ ति ।

§ ८१८, सम्मत्तुकरसद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा अतोमुहुत्तूणा । णत्थि अणो वियप्पो । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादिं कादृण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेण्णा ति । एवं सम्मामि० ।

§ ८१९, अणंताणु०कोध० मिच्छत्त-पण्णारसक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादृण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण्णा ति । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । चत्तारिणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा अतोमुहुत्तूणमादिं कादृण जाव अंतोकोडाकोडि ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । यदि अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादृण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखेज्जदिभागेण्णा ति । एवं पण्णारसकसायाणं ।

हाती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट हाती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । पाच नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । उनमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असख्यावा भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है ।

§ ८१८ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहा मिथ्यात्वकी स्थितिका अन्य विकल्प नहीं होता । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पल्योपमके असख्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्षका कथन करना चाहिये ।

§ ८१९ अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और पन्द्रह कपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असख्यातवें भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । चारो नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । पाच नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । यदि अनुत्कृष्ट होती है तो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असख्यातवा भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है । इसी प्रकार शेष पन्द्रह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८२० इतिषवेदुनकस्मद्विद्विदिशिहृत्पियस्त मिच्छत्त० किमुनक० अणुक्क० ?  
 णियमा अणुक्कस्ता, एगसमयमादिं काट्ण जाव पत्तिदो० असत्त्व० भागेणूणा । सम्मत्त  
 सम्मामि० मिच्छत्तमंगो । पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्ता समय्  
 णमादिं काट्ण जाव अंतोकोडाकादि सि । अथवा अतोमुदुत्तणमादिं काट्णे चि नत्तत्त्वं ।  
 णत्तस० किमुनक० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्ता, समय्णमादिं काट्ण जाव षीस  
 सागरोवमकाडाकोडाभा पत्तिदो० असत्त्वज्जदिभागण ऊणाभा । इत्त-ग्दि० किमुक्क०  
 अणुक्क० ? उक्कस्ता अणुक्कस्ता वा । उक्कस्तादो अणुक्कस्ता समय्णमादिं काट्ण  
 जाव अंतोकाडाकोडीभा । अरदि सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्ता अणुक्कस्ता  
 वा । उक्कस्तादा अणुक्कस्ता समय्णमादिं काट्ण जाव षीससागरोवमकोडाकोडीभा  
 पत्तिदो० असत्त्वज्जदिभागण ऊणाभा । मय-दुगुळ किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा  
 उक्कस्ता । सात्तसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । समय्णमादिं काट्ण  
 जाव आसत्तिउणा । एवं पुरिसवेत्तस्स ।

§ ८२१ णदु सयवेत्तकस्सद्विद्विदिशिहृत्पियस्त मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ?  
 उक्कस्ता अणुक्कस्ता वा । उक्कस्तादा अणुक्कस्ता समय्णमादिं काट्ण जाव पत्तिदो०  
 असत्त्व० भागेण ऊणा । सम्मत्त-सम्मामि मिच्छत्तमंगो । सोत्तसक० किमुक्क० अणुक्क० ?

§ ८२० स्त्रीवेदकी अकृष्ट स्थितिबिम्बिचाले बीबके मिष्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती  
 है या अनुकृष्ट ? नियमसे अनुकृष्ट होती है । जा एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्तोपमके  
 असंख्यातवर्षे भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्वका मंग मिष्यात्वक समान  
 है । पुनर्वेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुकृष्ट ? नियमसे अनुकृष्ट होती है । जो एक  
 समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त-कोडाकोडी सागर तक होती है । अथवा एक समय  
 कमके स्थानमें अन्तर्मुहूर्ते कमसे लेकर एसा करना चाहिये । ननुसकवदकी स्थिति क्या  
 उत्कृष्ट होती है या अनुकृष्ट ? नियमसे अनुकृष्ट होती है । जा एक समय कम अपनी उत्कृष्ट  
 स्थितिसे लेकर पत्तोपमका असंख्यातवर्षा भाग कम बीस अन्तकाडी सागर तक होती है । हास्य और  
 रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुकृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुकृष्ट भी । इसमेंसे  
 अनुकृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तकोडाकोडी सागर तक होती है ।  
 अरति और शाहकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुकृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुकृष्ट  
 भी । इनमेंसे अनुकृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्तोपमका असंख्यातवर्षा  
 भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है । मय और नुगुळकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या  
 अनुकृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोत्तह कयापोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होगी है या अनुकृष्ट ?  
 नियमसे अनुकृष्ट होती है । वा एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें लेकर एक आसत्ति कम तक होती  
 है । इसी प्रकार पुनर्वेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बिचाले बीबके सन्निकर करना चाहिये ।

§ ८२१ अनुसकवदकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बिचाले जापक मिष्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
 होती है या अनुकृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुकृष्ट भी । इनमेंसे अनुकृष्ट स्थिति एक समय  
 कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्तोपमका असंख्यातवर्षे भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और  
 सम्यग्मिष्यात्वका मंग मिष्यात्वक समान है । सोत्तह कयापोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या

उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समययूणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा । इत्थि-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा । समययूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण । हस्स-रदि० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समययूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । अग्दि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समययूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवम-कोडाकोडीओ पत्तिदो० अमंखेज्जदिभागेण ऊणाओ । भय-दुगुद्धा० इत्थिवेदभंगो ।

§ ८२२, हस्सउक्कस्सद्विविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा । समययूणमादि कादूण जाव पत्तिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण्णा । सम्पत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभगो । सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । एगसमयमादिं कादूण जाव आवलिऊणा । इत्थि०-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समययूणमादिं कादूण जाव अंतो-कोडाकोडि त्ति । अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण । णवुंसय० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समययूणमादिं कादूण जाव वीसं-

अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेमे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर के' स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' कहना चाहिये । हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त कोडाकोडी सागर तक होती है । अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका अपख्यातवां भाग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है । भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है ।

§ ८२२ हास्य प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असख्यावै भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है । स्त्रावेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेमे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त कोडाकोडी सागर तक होती है । अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर के स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' जानना चाहिये । नपुसकवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट

सागरोपमकोडाकोडीभो पल्लिवो० असंसे० भागेणुणाभो । अरदि-सोग० किमुक्क०  
अणुक्क० ? गियमा अणुक्कस्ता । समयुणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीभो  
पल्लिवो० असंसे० भागेणुणाभो । रदि मय-दुगु धामो किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा  
उक्कस्ता । एवं रदि० ।

§ ८२३ अरदि० उक्कस्ताद्विदिविहृत्पवससिशासो मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्कस्ता अणुक्कस्ता वा । उक्कस्तादो अणुक्कस्ता समयुणमादिं कादूण जाव पल्लिवो०  
असंसे० भागेणुणा । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तमंगो । सोससक० णवुसगमंगो । इत्थि  
पुरिस-गर्भसयवेदाणं रदिमंगो । इत्थ-रदि० किमुक्क० ? गियमा अणुक्क० । समयुण  
मादिं कादूण जाव अतोकोडाकोडि प्ति । सोग मय-दुगुधाणं गियमा उक्कस्ता ।  
एवं सोम० ।

§ ८२४ मय० उक्क० द्विदिवि० मिच्छत्त०-सम्म० सम्मामि० सोससक०  
तिष्णिवेद० अरदिमंगो । इत्थ-रदि-अरदि-सोम० णवु सयमंगो । दुगु छ० किमुक्क०  
अणुक्क० ? उक्क० । एवं दुगुद्ध० । एवं सम्भगेरइय-तिरिक्क-पंचिदियतिरिक्क  
पंचिदियतिरि० पञ्च० पंचि० तिरि० नाणिणी० मणुसतिय० वेव-भनणादि जाव सहस्तार०  
पंचि०-पंचि०-पञ्च०-वस-वसपञ्च०-पंचमण०-पंचवचि०-कायसोगि० ओरासि०

स्वित्तिसे लेखर पस्पोपमका असंख्यातवां माग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है । अरति और  
कोकणी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । वो एक समय  
कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेखर पस्पोपमका असंख्यातवां माग कम वीस कोडाकोडी सागर तक  
होती है । रति, मय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट  
होती है । इसी प्रकार रति महृत्तिकी उत्कृष्ट स्थितिबिमत्तिके पारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८२३ अरति महृत्तिकी उत्कृष्ट स्थितिबिमत्तिके पारक जीवके मिष्प्यात्वकी स्थिति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट मी होती है और अनुत्कृष्ट मी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति  
एक समय कमसे लेखर पस्पोपमके असंख्यातवां माग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । सम्मत्त  
और सम्मगिमिष्प्यात्वका मंग मिष्प्यात्वके समान है । सोलह कपायोंका मंग नपुंसकवेदके समान  
है । स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदका मंग रतिके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । वो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे  
लेखर अस्तकोडाकोडी सागर तक होती है । तथा छोड मय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे  
उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार शोकमहृत्तिकी उत्कृष्ट स्थितिबिमत्तिके पारक जीवके सन्निकर्ष  
जानना चाहिये ।

§ ८२४ मयमहृत्तिकी उत्कृष्ट स्थितिबिमत्तिके पारक जीवके मिष्प्यात्व, धम्यत्त,  
सम्मगिमिष्प्यात्व, सासह कयाय और तीन बर्षोंका मंग अरतिके समान है । हास्य रति अरति  
और कोकणी मंग नपुंसकवेदके समान है । जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?  
उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार जुगुप्सा महृत्तिकी स्थितिबिमत्तिके पारक जीवके सन्निकर्ष जानना  
चाहिये । इसी प्रकार सब नारकी तिर्यक्, पंचेन्द्रिय तिर्यक् पंचेन्द्रिय तिथय पयात्त पंचेन्द्रिय  
तिर्यक् पानिमती सामान्य मनुष्य, मनुष्य पयात्त, मनुष्यनी सामान्य देव भवनवासियोसे लेखर  
सहस्तार कस्य तकके देव, पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्वाम, वस, वस पयात्त, पांचों मनायोगी पांचों

वेडव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसिद्धि०-  
सण्णि-आहारि ति ।

§ ८२५. पंचिंदियतिरि० अपज्ज० मिच्छत्त उक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स सम्मत्त०-  
सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा  
अणुक्कस्सा । अंतोमुहुत्तूणमादि कादूण जाव एया द्विदी । णवरि चरिमुव्वेत्तल्लण-  
कंडएणूणा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा  
वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादि कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेणूणा ।  
सम्मत्त० उक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुक्क०  
अंतोमुहुत्तूणा । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा उक्कस्सा । सोलसक०-  
णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा अणुक्क० । अंतोमुहुत्तूणमादि कादूण जाव  
पल्लिदोबमस्स असंखे० भागेणूणा । एवं सम्मामि० । अणंताणुबंधिकोध० उक्कस्सद्विदि-  
विहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो  
अणुक्कस्सा समयूणमादि कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेणूणा । सम्मत्त० सम्मा-  
मिच्छत्तभंगो । पण्णारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा उक्कस्सा ।

वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले,  
असयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाच लेश्यावाले, मव्य, सही और आहारक  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकामे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति पर्यंत होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें अन्तिम  
उद्वेलना काण्डक प्रमाण स्थितिको घटा देना चाहिये ; सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति  
क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट  
स्थिति एक समय कमसे लेकर पल्लोपमके असख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।  
सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या  
अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होनी है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय  
और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो  
अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक  
होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।  
अनन्तानुवन्धी श्लोथकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय  
कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार पन्द्रह कषाय

एवं पण्णारसक०-शाबलोकासायाणं । एवं मणुसभपञ्ज०-बादरेदियमपञ्ज०-सुहुमेदिय  
पञ्जचापञ्जच-सम्भविगसिदिय-पँधि०-अपञ्ज०-बादरपुठविमपञ्ज०-सुहुमपुठवि-पञ्ज-  
चापञ्जच-बादरभाठअपञ्ज०-सुहुमभाठ-पञ्जचापञ्जच तेच-बादरसुहुमपञ्जचापञ्जच-  
पाठ०-बादरसुहुमपञ्जचापञ्जच-बादरवणफदियचेय०-अपञ्ज०-भिगोद-बादरसुहुमपञ्ज-  
चापञ्जच-तसअपञ्जचा चि ।

१२६ आणदादि जाव चरिमगेवर्जं ति मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहरीरियस्स  
सम्मच-सम्मामि० सिया मत्थिय, सिया यत्थिय । अदि अत्थिय किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्क० मणुक्कस्सा वा । चक्कस्सादो मणुक्कस्सा पस्सिदो० अतंसंभारुणमादिं फादुण  
जाव एगा ट्ठिदि चि । णपरि चरिसुम्भरणकंदयचरिमफालीयाए ऊणा । सोलसक०  
जवणोक० किमुक्क० मणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवं सोलसक०-जवणोक० ।  
सम्मच० चक्कस्सट्ठिदिविहरीरियस्स मिच्छत्त सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क०  
मणुक्क० ? छियमा उक्क । एवं सम्मामि० ।

१२७ मणुहिसादि जाव सम्भट्टिसिद्धि ति मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहरीरियस्स

और नौ नाकपायोकी स्थितिबिम्बिके धारक बीजके समिकर्ये जानना चाहिय । इसी प्रकार मणुष्य  
अपयोत्त, बादर एकेन्द्रिय अपयोत्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपयोत्त,  
सब विकलात्रिय, पचेन्द्रिय अपयोत्त, बादर प्रविवाकायिक अपयोत्त सूक्ष्म प्रविवाकायिक, सूक्ष्म  
प्रविवाकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म प्रविवाकायिक अपयोत्त बादर जलकायिक अपयोत्त, सूक्ष्म जलकायिक,  
सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपयोत्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर  
अग्निकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपयोत्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म अग्निकायिक अपयोत्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर  
वायुकायिक अपयोत्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपयोत्त,  
बादर वनस्पतिकार्यक प्रत्येक प्रकार अपयोत्त, निगाह, बादर निगाह, बादर निगाह पर्याप्त, बादर  
निगोह अपयोत्त, सूक्ष्म निगाह, सूक्ष्म निगोह पर्याप्त सूक्ष्म निगाह अपयोत्त और त्रस अपयोत्त  
बीजोंके जानना चाहिये ।

१२६ आगत कस्यसे कस्य उपरिम प्रेयेयक उक्क देवोमें मिच्छत्तुक्की उक्क स्थिति-  
बिम्बिके धारक बीजक सम्पत्त्व और सम्भगिमप्यात्व य वा प्रहंतवर्षा कदावात्त इ और कदाचित्  
गती हैं । यदि हैं ता इनकी स्थिति क्या उक्कट्ट हाती इ या अनुत्कट्ट ? उक्कट्ट मी होती है और  
अनुत्कट्ट मी । इनमस अनुत्कट्ट स्थिति पस्यापमक असंख्यातवे भाग कम अपनी उक्कट्ट स्थितिस  
कस्य एक स्थिति उक्क हाती इ । किन्तु इतनी चिहोयता इ कि इसमेंसे आन्तम उच्छ्रवणाकाण्डकी  
अन्तम काशप्रमाम्य स्थितियोंका घटा इना चर्चइयें । सालह कपाव और नौ नाकपायोकी स्थिति  
क्या उक्कट्ट हाती इ या अनुत्कट्ट ? निबमस उक्कट्ट हाती इ । इसी प्रकार सालह कपाव और  
नौ नाकपायोकी उक्कट्ट स्थितिक धारक बीजक समिकर्ये जानना चाहिय । सम्पत्त्वर्षा उक्कट्ट  
स्वित्तविविम्बिके धारक बीजक मिच्छत्त्व, सम्भगिमप्यात्व सालह कपाव और नौ नाकपायोकी  
स्थिति क्या उक्कट्ट हाता इ या अनुत्कट्ट ? निबमस उक्कट्ट हाता है । इसी प्रकार सम्भगिमप्यात्व  
की उक्कट्ट स्वित्तविविम्बिके धारक बीजक समिकर्ये जानना चाहिये ।

१२७ अनुदियसं कस्य सवोयोसट्ठि उक्क देवोमें मिच्छत्तुक्की उक्क स्थितिबिम्बिके



सम्पत्त-सम्पामि०-सोलमक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवमेक्केक्कस्स । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-सजद०-सामाइयत्तेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-खइय-उवसम०-सासण०-दिट्ठि त्ति ।

§ ८२८. एइदिय-वादरेइंदिय-तप्पज्ज०-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादरआउ०-वादरआउपज्ज०-अणप्फदि-वादरअणप्फदिपत्तेयसरी-तप्पज्ज०-ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि०-मट्ठि०-सुट्ठि०-विहंग०-मिच्छादिट्ठि त्ति ओघं । णवरि एइंदियादि अणाहारिपज्जत्तेसु धुववन्धिणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स चट्ठणोक० उक्क० अणुक्क० वा । समज्जणमार्दि काट्ठण जाव अंतोकोडा-कोडि त्ति । चट्ठणोक० उक्कस्सट्ठिदिवि० धुववन्धिणमुक्क० अणुक्क० वा । समयूण-मार्दि काट्ठण जाव पल्लिदो० असखे० भागेणूणा । समज्जणावल्लिज्जणा त्ति एसो विसेसो जाणियव्वो ।

§ ८२९. आभिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्पत्त-सम्पामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० धारक जीवके सम्यक्त्व, सम्याग्मिध्यात्व, सालह कपाय और नौ नाकपायोंका स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार प्रत्येक प्रकृतिकी स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायवाले, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदापस्थापनासयत, परिहार-विशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत, चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२८. एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वनस्पति कायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, आहारिकमिश्र-काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, असज्ञा, अनाहारक, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी और मिध्यादृष्टि जीवोंके ओघक समान सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि एकेन्द्रियोंसे लेकर अनाहारकतक जीवोंमें धुववन्धिनी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके धारक जीवके चार नोकपायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भा होती है और अनुत्कृष्ट भा । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त कोडाकाड़ा सागर तक होती है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके धुववन्धिनी प्रकृतियोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । यहा पर एक समय कम या एक आवली कम उत्कृष्ट स्थिति होती है इतना विशेष जानना चाहिए ।

§ ८२९ आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्याग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट



पलिदो० असंखे० भागेणूणा ति । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० ।  
एवं सम्मामि० ।

एवगुक्कस्सट्ठिदिसणियासो समत्तो ।

❀ जहणणट्ठिदिसणियासो ।

§ ८३१ सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्तजहणणट्ठिदिसंतकम्मियस्स अणंताणुबंधीणं एत्थि ।

§ ८३२. अणंताणुबंधीणं एत्थि सणियासो ति संबंधो कायव्वो । कुदो ? पुब्बं  
चेव विसंजोइदाए तत्थ ट्ठिदिसंताभावादो ।

❀ सेसाए कम्मए ट्ठिदिविहत्ती किं जहणणा अजहणणा ?

§ ८३३. सुगममेदं ।

❀ णियमा अजहणणा ।

§ ८३४. कुदो, उवरि जहणणट्ठिदिं पडिवज्जमाणामेत्थ जहणणत्तविरोहादो ।

❀ जहणणादो अजहणणा असंखेज्जगुणव्वभहिया ।

§ ८३५. कुदो ? मिच्छत्तस्स दुसमयकालेगट्ठिदीए सेसाए सम्मत्त-सम्मामि-  
च्छत्ताए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं वारसकसाय-णवणोकसायाणमंतोकोडा-  
कोडिसागरोवममेत्ताणं ट्ठिदीणमवसिट्ठाणमुवलंभादो ।

हैं । इसी प्रकार सन्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये ।  
इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसन्निकषं समाप्त हुआ ।

\* अव जघन्य स्थितिके सन्निकर्षका अधिकार है ।

§ ८३१ यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका  
सन्निकर्ष नहीं है ।

§ ८३२ यहा पर अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सन्निकर्ष नहीं है, इस प्रकार सवन्ध करना  
चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होनेके पहले ही इसकी विसंयोजना हो जाती है,  
अतः इसका मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समय स्थिति सत्त्व नहीं पाया जाता है ।

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके शेष कर्मोंकी स्थिति विभक्ति  
क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?

§ ८३३ यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अजघन्य होती है ।

§ ८३४ क्योंकि शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति आगे जाकर प्राप्त होनेवाली है, अतः उनकी  
यहा जघन्य स्थिति माननेमें विरोध आता है ।

\* वह अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

§ ८३५ क्योंकि जब मिथ्यात्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थिति शेष रहती है तब  
सन्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्वकी पत्योपमके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण तथा बारह कषाय और नौ  
नोकषायोंकी अन्त-कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति शेष पाई जाती है ।

⊙ मिच्छन्नेण पीयो सेसेहि वि अणुमग्गियब्बो ।

§ ८३६ मिच्छन्नब्रह्मणद्विदिविहृत्तारिख्यासो पीयो कहिदो परुविदो चि वत्तं होदि । सेसेहि वि कम्मोहि एसो ब्रह्मणसप्पियासो अणुमग्गियब्बो गबेसियब्बो चि वत्तं होदि ।

§ ८३७ एवं जइसहाइरियमुहविणिग्गय सुणिसुत्ताए देसामासिएण घूचि दस्त उचारणपक्कणं कस्तामो । बहण्यए पपदं । दुविहो णिइसो—ओपेए मादेसेण । ओपेण मिच्छन्न०ब्रह्मणद्विदिविहृत्तारिख्यास सम्मत्त-सम्मामि० किं भइ० अत्रइ० ? णियमा अत्र० अमत्ते० गुणम्महिया । बारस०-णवणोक्क० किं जइ० अत्रइ० ? णियमा अत्र० अत्तंसे० गुणम्महिया । अर्णताणुवपी णिस्तंता ।

§ ८३८ सम्मत्तस्तं जइ० बारसक०-णवणोक्क० किं जइ० अत्र० ? णियमा अत्र० अत्तंसे०गुणम्महिया । सेसस्तं अत्तं ।

§ ८३९ सम्मामि० जइ०विहृत्तारिख्यास मिच्छन्न-सम्मत्त-अर्णताणु० सिया अत्थि सिया अत्थि । यदि अरिय किं भइ० अत्रइ० ? णियमा अत्र० अत्तंसे०गुणम्महिया । बारसक०-णवणोक्क० किं अ० अत्र० ? णियमा अत्र० अत्तंसेजगुसा ।

⊙ जिस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष कहा है वही प्रकार छेप कर्मोंके साथ भी उसका विचार करना चाहिये ।

§ ८३६ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी अथवा स्थितिके साथ सन्निकर्ष कहा है वही प्रकार शेष कर्मोंके साथ भी यह अथवा सन्निकर्ष करना चाहिये । सूत्रमें जो 'यत्थो' पद है उसका अर्थ 'कहना चाहिये प्रकृत्युत्तरमा चाहिये' यह होता है तथा 'अणुमग्गियब्बो' पदका अर्थ 'सोचना चाहिये होता है' ।

§ ८३७ इस प्रकार बलिहूपम व्याचार्यके मुकसे निकले हुए शूणिसूत्रोंके बेशामानक हानेसे सूचित हुए अर्थकी उच्चारणाका कथन करते हैं—अब अथवा सन्निकर्षका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्वैध बोधप्रकार है—बोधनिर्वैध और आबोधनिर्वैध । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी अथवा स्थितिबिमत्तियके बीचके सम्बन्ध और सम्पन्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या अथवा होती है या अत्रपथ्य ? निकमसे अत्रपथ्य होती है । जो अपनी अथवा स्थितिसे अस्संस्मात गुणी अधिक होती है । बारस कथाय और नौ गोकथायोंकी स्थिति क्या अथवा होती है या अत्रपथ्य ? नियमसे अत्रपथ्य होती है, जो अपनी अथवा स्थितिसे अस्संस्मातगुणी अधिक होती है । तथा अनन्ता-नुदन्तीका यहाँ अभाव है ।

§ ८३८ सम्पन्मिथ्यात्वकी अथवा स्थितिबिमत्तियके धारक बीचके बाह्य कथाय और नौ नोकथायोंकी स्थिति क्या अथवा होती है या अत्रपथ्य ? नियमसे अत्रपथ्य होती है । जो अपनी अथवा स्थितिसे अस्संस्मातगुणी अधिक होती है । इसके शेष प्रकृतियोंका मन्त्र नहीं है ।

§ ८३९ सम्पन्मिथ्यात्वकी अथवा स्थितिबिमत्तियके धारक बीचके मिथ्यात्व सम्पन्म और अनन्तानुदन्ती अनुदन्त ये बह प्रकृतियों का अभाव है और अभाव नहीं है । यदि है तो इनकी स्थिति क्या अथवा होती है या अत्रपथ्य ? नियमसे अत्रपथ्य होती है । जो अपनी अथवा स्थितिसे

§ ८४० अणंताणु०कोध० जह० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णव-  
णोक० कि ज० अज० ? णियमा अज० असखेज्जगुणा । तिण्णिक० किं ज०  
[ अजह० ] ? णियमा जह० । एवं तिण्हं कसायाण ।

§ ८४१ अपच्चक्खाणकोध० जह०विहत्तियस्स चत्तारिसज०-णवणोक० कि  
ज० अज० ? णियमा अज० असखे०गुणा । सत्तकसाय० किं जह० अज० ? णियमा  
जह० । एव सत्तकसायाण ।

§ ८४२ इत्थि०ज०विहत्तियस्स सत्तणोक०-तिण्णिसजल० कि जह० अज० ?  
णियमा अज० सखे०गुणा । लोभसज० कि जह० अज० ? णियमा अज० असखे०-  
गुणा । एव एणु स० ।

§ ८४३ पुरिस०ज०विहत्तियस्स तिण्ह सजल० किं ज० अज० ? णियमा  
अज० सखेज्जगुणा । लोभसज० कि जह० अज० ? णियमा अज० असखे०गुणा ।

§ ८४४ इस्सज० तिण्णिसंज०-पुरिस० कि जह० अज० ? णियमा अज०

असख्यातगुणी अधिक होती है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्यस्थितिसे असख्यातगुणी होती है ।

§ ८४०. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४१. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके चार सज्वलन और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि सात कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्या-  
वरण मान आदि सात कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४२. स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सात नोकपाय और तीन सज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । लोभसज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४३ पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके तीनों सज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । लोभ संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है ।

§ ८४४. हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके तीन सज्वलन और पुरुषवेदकी

संसेंगुणा । सोमसंभक्त० किं नह० अत्रह० ? गियमा अम० असंसेगुणा । पंच  
 पोक० किं नह० अत्र ? गियमा अहृणा । एव पंचपाक० ।

५ ८४५ कौपसजक्त० अह० विहसियस्त दोसंभक्त० किं अह० अत्रह० ? गियमा  
 अम० संसेज्जगुणा । सोम० किं अ० अह० ? गियमा अम०, असंसे०गुणा । माणसंज०  
 अह० विहसियस्त मायासंभ० किं अ० अम० ? गियमा अम० संसे०गुणा । स्वेम  
 किं अ० अम० ? गियमा अम०, असंसे०गुणा । मायासंज्जक्त० अह० विहसि० सोम०  
 किं अ० अम० ? गियमा अम० असंसे०गुणा ।

५ ८४६ सोमसंभ० अह० द्विदि० सेसणत्वि । एवं मणुस-मणुसपञ्च०  
 मणुसिषी-पंचिदिय-पंचि०पञ्च०-तस-तसपञ्च०-यषमण०-पंचवधि०-कायमोगि०  
 मोरसि०-सोमक० चकसु०-अचकसु० सुचक० भवसि०-सण्णि०-माहारि च । षवरि  
 मणुसपञ्चपसु इत्यि० अहृणाद्विदिविहसियस्त चदुसंभक्त०-सत्तणोक० गियमा अम०  
 असंसे०गुणा । णवु स० सिया अत्वि सिया णत्वि । नदि अत्वि, गियमा अम०  
 असंसे०गुणा । मणुसिषीणु णवु'स० अ० द्विदिवि० चदुसंभ०-अहृणोक० गियमा

स्विति क्या अत्रपन्व होती है या अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है । जो अत्रपन्व स्वितिसे  
 संख्यातगुणी जाती है । सोम संख्यातनकी स्विति क्या अत्रपन्व होती है या अत्रपन्व ? नियमसे  
 अत्रपन्व होती है । जो अत्रपन्व स्वितिसे असंख्यातगुणी होती है । पाँच नोक्यायोंकी स्विति क्या  
 अत्रपन्व होती है या अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है । इसी प्रकार पाँच नोक्यायोंकी अत्रपन्व  
 स्वितिबिमलिके धारक बीबके सन्निकष जानना चाहिये ।

५ ८४७ अत्र संख्यातनकी अत्रपन्व स्वितिबिमलिके धारक बीबके दो संख्यातनकी स्विति क्या  
 अत्रपन्व होती है या अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है । जो अत्रपन्व स्वितिसे संख्यातगुणी होती  
 है । सोम संख्यातनकी स्विति क्या अत्रपन्व होती है या अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है जो  
 अत्रपन्व स्वितिसे असंख्यातगुणी होती है । मानसंख्यातनकी अत्रपन्व स्वितिबिमलिके धारक बीबके  
 मायासंख्यातनकी स्विति क्या अत्रपन्व होती है या अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है जो  
 अत्रपन्व स्वितिसे संख्यातगुणी होती है । सोमसंख्यातनकी स्विति क्या अत्रपन्व होती है या  
 अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है जो अत्रपन्व स्वितिसे असंख्यातगुणी होती है । माया  
 संख्यातनकी अत्रपन्व स्वितिबिमलिके धारक बीबके सोमसंख्यातनकी स्विति क्या अत्रपन्व होती है  
 या अत्रपन्व ? नियमसे अत्रपन्व होती है जो अत्रपन्व स्वितिसे असंख्यातगुणी होती है ।

५ ८४८ सोमसंख्यातनकी अत्रपन्व स्विति बिमलिके धारक बीबके छेप पञ्चतिषो नहीं पाई  
 जाती है । इसी प्रकार अर्वाच ओपके समान मनुष्य मनुष्य पयास, मनुष्यनी पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय-  
 पर्याप्त, अस अस परास पाँचों मनोवागी, पाँचों बचनसेगी, अयसेगी औरपरिच्छयसेगी,  
 सोम कयायवाये, चक्रुर्हर्नवासे अचपुपसंभक्तं पुनसत्तेयवावातो मध्य, संदी और अहारक  
 बीबके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पयासकोई बीबकी अत्रपन्व स्विति  
 बिमलिके धारक बीबके पार संख्यातन और सात नोक्यायोंकी नियमसे अत्रपन्व स्विति होती है  
 और वह अत्रपन्व स्वितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा नपुंसकवेद कदाचित् है और कदाचित्  
 नहीं है । यदि है तो उसकी स्विति नियमसे अत्रपन्व होता है या अत्रपन्व स्वितिसे असंख्यात-  
 गुणी होती है । मनुष्यनियमों मनुसकवेदकी अत्रपन्व स्वितिबिमलिके धारक बीबके पार संख्यातन

अज०, असंखे०गुणा । पुरिस० जृण्णोकसायभंगो ।

§ ८४७. आदेसेण णेरइय० मिञ्चत्त० जह० विहत्ति० धारसक०-भय-दुग्ध० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा सम-उत्तरादि जाव पल्लिदो० असंखे० भाग्वभहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, कि. जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपट्टिदा संखेज्जगुणवभहिया असंखे०गुणवभहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि मिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपट्टिदा संखे०गुणा अमंखे०गुणा वा णिसंय-प्पहाणत्तणेण, अण्णाहा तिट्ठाणपट्टिदा । अणंताणु० चउक्क० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गुणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? णि० अज०, असंखे०भाग-वभहिया । सम्मत्त० जहण्णद्विदिविहत्ति० धारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विहत्तियस्स मिञ्चत्त-धारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा तिट्ठाणपट्टिदा असंखे०-भागवभहिया संखे०भागवभहिया मंखे०गुणवभहिया वा । अणंताणु० णियमा अजहण्णा

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे अमद्व्यातगुणी होती है । तथा पुरुषवेदका भग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ८४७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमके असख्या-तर्वे भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या अमद्व्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई सख्यातगुणी या असख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निपेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असख्यातर्वे भाग अधिक होती है ? सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे सख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असख्यातर्वे भाग अधिक, सख्यातर्वे भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

असंखे०गणा । अर्णताणु०कोष० ज० विहरि० मिच्छत्-वारसक०-गवणोक० किं अ०  
 अम० ? णि० अम० संखे०गुणा । सम्मामि० किं ज० अमह० ? णियमा अम०,  
 असंखे०गुणम्महिया । तिण्हमर्णताणुअपीर्ण किं० ज० अम० ? णि० अहण्णा । एवं  
 तिण्हं कसायाणं । अपचनत्वा० कोषज० विहरि० मिच्छ०-एकारसक० किं अ० अम० ?  
 [ अम० ] तं तु समवचरमादिं कावृण जाव पखि० असंखे०मागम्महिया । मय-  
 दुगुंअ० किं० अ० अम० ? णिय० अहण्णा । सम्मत्त-सम्मामि० अर्णताणु०चउक०-  
 सचणोक० मिच्छत्तमंगो । एवमेकारसक० । इरिय० अ० विहरि० मिच्छत्-वारसक०-  
 अहणोक० किं अ० अम० ? णि० अम० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० अर्णता०  
 चउक० मिच्छत्तमंगो । एवं पुरिस० । गुपुंस० अहण्णदिदिदिबिहयिपस्स मिच्छत्-  
 वारसक०-इति० पुरिस० अरदि-सोग मय-दुगुंअ० किं अ० अम० ? णियमा अम०,  
 संखे०गुणा । इस्सरदि० किं अ० अम० ? णियमा अम० वेहाणपदिदा असंखे०  
 मागम्महिया संखे०गुणम्महिया वा । सम्मत्त-सम्मामि० अर्णताणु०चउक० मिच्छत्तमंगो ।

श्रोत्रकी अथवा स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व बरह कयाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या  
 अथवा होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है, जो अजपम्यसे संख्यातगुणी होती है ।  
 सम्पत्त्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वकी स्थिति क्या अथवा होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य  
 होती है । जो अजपम्यसे असंख्यातगुणी अधिक हाती है । शेष तीन अनन्तलुपन्थीकी स्थिति  
 क्या अथवा होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है । इसी प्रकार अनन्तलुपन्थी मान  
 आदि तीन कयायोंकी अथवा स्थिति विमर्शिके धारक जीवके सभिकर्ष जानना चाहिये । अपत्या-  
 कयानावरण श्रोत्रकी अथवा स्थितिविमर्शिके धारक जीवके अपत्याकयानावरण मान आदि  
 ग्याह कयायोंकी स्थिति क्या अथवा होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है । मिथ्यात्व  
 की स्थिति क्या अथवा होती है या अजपम्य ? अथवा भी होती है और अजपम्य भी । इनमेंसे  
 अजपम्य स्थिति अथवा स्थितिकी अपेक्षा एक समव अधिकसे अकर पस्योपमके असंख्यातके  
 भाग तक अधिक होती है । मय और जुगुप्साकी स्थिति क्या अथवा होती है या अजपम्य ?  
 नियमसे अजपम्य हाती है । सम्पत्त्व, सम्बन्धिमिथ्यात्व, अनन्तलुपन्थी चतुष्क और सात नोकयायोंका  
 मंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अपत्याकयानावरण मान आदि ग्याह कयायोंकी अथवा  
 स्थितिविमर्शिके धारक जीवके सभिकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवैरकी अथवा स्थितिविमर्शिके  
 धारक जीवके मिथ्यात्व, बरह कयाय और सात नोकयायोंकी स्थिति क्या अथवा होती है  
 या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य हाती है, जो अजपम्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है ।  
 सम्पत्त्व, सम्बन्धिमिथ्यात्व और अनन्तलुपन्थी चतुष्कका मंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार  
 पुशुवेरकी अथवा स्थितिविमर्शिके धारक जीवके जानना चाहिये । नपुंसकवेरकी अथवा स्थिति  
 विमर्शिके धारक जीवके मिथ्यात्व बरह कयाय, स्त्रीवैर, पुशुवेर अरति श्लोक, मय और  
 जुगुप्साकी स्थिति क्या अथवा होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है जो अजपम्यसे  
 संख्यातगुणी अधिक होती है । हास्य और एतिकी स्थिति क्या अथवा होती है या अजपम्य ?  
 नियमसे अजपम्य होती है, जो अजपम्यसे असंख्यातगुणी अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार  
 वा स्थान पठित होती है । तथा सम्पत्त्व, सम्बन्धिमिथ्यात्व और अनन्तलुपन्थी चतुष्कका मंग  
 मिथ्यात्वके समान है । किसी उच्चारणमें अरति और श्लोककी स्थिति हास्य और एतिके



अज०, असंखे०गुणा । पुत्रिम० दृण्णोक्रमायभंगो ।

§ ८४७. आदेशेण षेण्डय० मिन्द्रत्त० जह० विट्ति० वारसक०-भय-दृग्-० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा मम-उत्तरादि तत्र पलिटो० असंखे० भाग्वभहिया । सम्मत्त० मिया अत्थि, मिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपट्टिदा मंवेज्जगुणवभहिया अमंवे०गुणवभहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि मिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपट्टिदा मंवे०गुणा अमंवे०गुणा वा णियमा-पपहाणत्तेणेण, अण्णहा विट्ठाणपट्टिदा । अणताणु० चउज० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? एि० अज०, अमंवे०भाग-वभहिया । सम्मत्त० जहण्णाद्विद्विहत्ति० वारसक०-एणणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०, मंवे०गुणा । सम्मामि० ज० विट्त्तियम्म मिन्द्रत्त-वारसक०-एणणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा विट्ठाणपट्टिदा अमंवे०-भागवभहिया मंवे०भागवभहिया मंवे०गुणवभहिया वा । अणताणु० णियमा अजहण्णा

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुण्यवेदका भग छह नोकपायके समान है ।

§ ८४७ आदेशकी अपेक्षा नारियोग मिश्रात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय, भय और जुगुम्माकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पत्योपनये अमश्या-तवें भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति वदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होता हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिश्रात्व कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निपेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्करी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निपेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्करी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिश्रात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिश्रात्व, वारह कपाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्करी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

असंखे० गुणा । अर्णतापु० कोप० अ० विहसि० मिच्छय० बारसक०-प्रबणोक० किं अ०  
 अज० ? गि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० किं अ० अज० ? गियमा अज०,  
 असंखे० गुणमरिया । तिन्दमर्णतापु० बंधीर्ण किं अ० अज० ? गि० अहम्मा । एष  
 तिन्द कसायार्ण । अयत्तत्ता० कोपज० विहसि० मिच्छ०-एकारसक० किं अ० अज० ?  
 [ अज० ] तं तु समचचरमार्दिं क्कद्दण जान पखि० असंखे० मागमरिया । मय  
 दुग्गुद्ध० किं अ० अज० ? गिय० अहम्मा । सम्मच-सम्मामि०-अर्णतापु० चउत्त०  
 सचणोक० मिच्छचमंगो । एयमेकारसक० । इत्थि० अ० विहसि० मिच्छय०-बारसक०  
 अहणोक० किं अ० अज० ? सि० अज० संखे० गुणा । सम्मच-सम्मामि०-अर्णता-  
 चउत्त० मिच्छचमंगो । एवं पुरिस० । णपुंस० अहम्पद्विदिविहसियस्त मिच्छय०-  
 बारसक०-इत्थि० पुरिस० अरदि-सोग मय-दुग्गुद्ध० किं अ० अज० ? गियमा अज०,  
 संखे० गुणा । इत्सरदि० किं अ० अज० ? गियमा अज० वेद्धानपविदा असंखे०  
 मागमरिया संखे० गुणमरिया वा । सम्मच-सम्मामि०-अर्णतापु० चउत्त० मिच्छचमंगो ।

कोपकी अजय स्थिति के पारक बीबके मिष्ठात्त्व वारह कयाप और नौ नोकययोकी स्थिति क्या  
 अजय्य होती है वा अजयय्य ? नियमसे अजयय्य होती है, वा अजयय्यसे संख्यातगुणी होती है ।  
 सम्पत्त्व और सम्मामिष्ठात्त्वकी स्थिति क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ? नियमसे अजयय्य  
 होती है । जो अजयय्यसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । सेय तीन अनन्तानुबन्धीकी स्थिति  
 क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ? नियमसे अजय्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान  
 आवि तीन कयायोकी अजय्य स्थिति विमल्लिके पारक बीबके सभिकर्ष जानना चाहिये । अग्रत्या-  
 वमानावरण कोपकी अजय्य स्थिति विमल्लिके पारक बीबके अग्रत्यावमानावरण मात्र आवि  
 ग्याह कयायोकी स्थिति क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ? नियमसे अजय्य होती है । मिष्ठात्त्व  
 की स्थिति क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ? अजय्य भी होती है और अजयय्य भी । इनमेंसे  
 अजयय्य स्थिति अजय्य स्थिति की अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्तोपमके असंख्यातमें  
 माग तक अधिक होती है । मय और अनुगुप्ताकी स्थिति क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ?  
 नियमसे अजय्य होती है । सम्पत्त्व, सम्मामिष्ठात्त्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और साठ नोकययोका  
 मंग मिष्ठात्त्वके समान है । इसी प्रकार अग्रत्यावमानावरण सन आवि ग्याह कयायोकी अजय्य  
 स्थिति विमल्लिके पारक बीबके सभिकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी अजय्य स्थिति विमल्लिके  
 पारक बीबके मिष्ठात्त्व वारह कयाप और आठ नोकययोकी स्थिति क्या अजय्य होती है  
 वा अजयय्य ? नियमसे अजयय्य होती है वा अजयय्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है ।  
 सम्पत्त्व, सम्मामिष्ठात्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका मंग मिष्ठात्त्वके समान है । इसी प्रकार  
 पुरुषवेदकी अजय्य स्थिति विमल्लिके पारक बीबके जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी अजय्य स्थिति  
 विमल्लिके पारक बीबके मिष्ठात्त्व, वारह कयाप, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरुति, शोक, मय और  
 अनुगुप्ताकी स्थिति क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ? नियमसे अजयय्य होती है जो अजयय्यसे  
 संख्यातगुणी अधिक होती है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या अजय्य होती है वा अजयय्य ?  
 नियमसे अजयय्य होती है, वा अजयय्यसे असंख्यातगुणी अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार  
 दो स्थान पठित होती है । तथा सम्पत्त्व, सम्मामिष्ठात्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका मंग  
 मिष्ठात्त्वके समान है । किसी कथावार्थामें अरुति और शोककी स्थिति हास्य और रतिके

अज०, असंखे०गुणा । पुरिस० छण्णोकसायभगो ।

§ ८४७, आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुंङ्ग० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा सम-उत्तरादि जाव पत्तिदो० असंखे० भाग्वभहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, कि. जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणवभहिया असंखे०गुणवभहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि मिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा संखे०गुणा अमंखे०गुणा वा णिसेय-प्पहाणत्तणेण, अण्णहा तिट्ठाणपदिदा । अणंताणु० चउक्क० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गुणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? णि० अज०, असंखे०भाग-वभहिया । सम्मत्त० जहण्णद्विदिविहत्ति० वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा असंखे०-भागवभहिया संखे०भागवभहिया संखे०गुणवभहिया वा । अणंताणु० णियमा अजहण्णा

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुरुषवेदका भग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ८४७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निषेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है ? सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

किं ब्र० अम० ? स्थियमा अम० असंखे० गुणा । वारसक० किं ब्र० अज० ? गियमा  
 जहण्णा । एवं वारसक०-गवणोकसायार्ण । सम्पत्त० ब्र० विहृषियस्स मिच्छत्त-वार  
 सक०-गवणोक० किं ब्र० अज० ? पि० अज० मंखे० गणा । सम्मामि०-अणत्ताणु०  
 चरक्क० किं ब्र० अज० ? स्थिय० अज० अमंखे० गुणा । सम्मामिच्छ० अह० विहृषि  
 यस्स मिच्छत्त-वारसक०-गवणोक० किं अह० अज० ? गिय० अज० संखेज्जगुणा ।  
 अणत्ताणु० चरक्क० किं अह० अज० ? गिय० अज० अमंखे० गुणा । सम्पत्तां एत्थिय ।  
 अणत्ताणु० कोह० अ० विहृषि० मिच्छत्त वारसक०-गवणोक० किं ब्र० अज० ? स्थिय०  
 अम० षट्ठाणपटिदा असंखे० मागळमरिया सखे० मागळमरिया वा । सम्पत्त-सम्मामि०  
 किं अ० अज० ? गियमा अम० असंखे० गुणा । तिण्णि कसाय० किं अ० अम० ?  
 स्थियमा अह० । एवं तिण्ण कसायार्ण ।

§ ८४६ सत्तमाए पुढवीए मिच्छत्त० अ० विहृषि० वारसक० मय-दुगु झा०

किं ब्र० अज० ? अहण्णा अजहण्णा वा । अहण्णादो अज० समयुत्तरमादिं क्कान्ण जाय

पारक जीवके सम्पत्त्व और सम्मगिमिध्यात्वकी स्थिति क्या ज्ञपन्व हाती है वा अज्ञपन्व ?  
 नियमसे अज्ञपन्व होती है, वा ज्ञपन्व स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । वारह क्यार्यों और  
 नौ नोक्यार्योंकी स्थिति क्या ज्ञपन्व होती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे ज्ञपन्व होती है । इसी  
 प्रकार वारह क्यार्य और नौ नोक्यार्योंकी ज्ञपन्व स्थितिबिमच्छिके पारक जावक सन्निकष जानना  
 चाहिये । सम्पत्त्वकी ज्ञपन्व स्थितिबिमच्छिके पारक जीवके मिध्यात्व वारह क्यार्य और नौ  
 नोक्यार्योंकी स्थिति क्या ज्ञपन्व होती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे अज्ञपन्व होती है, वा ज्ञपन्व  
 स्थितिसे संख्यातगुणी हाती है । सम्मगिमिध्यात्व और अनन्तालुक्की पशुप्पकी स्थिति क्या  
 ज्ञपन्व होती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे अज्ञपन्व होती है । जो ज्ञपन्व स्थितिसे असंख्यातगुणी  
 होती है । सम्मगिमिध्यात्वकी ज्ञपन्व स्थितिबिमच्छिके पारक जीवके मिध्यात्व वारह क्यार्य और  
 नौ नोक्यार्योंकी स्थिति क्या ज्ञपन्व होती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे अज्ञपन्व होती है, वा  
 अपनी ज्ञपन्व स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तालुक्की पशुप्पकी स्थिति क्या ज्ञपन्व  
 होती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे अज्ञपन्व हाती है, जो अपनी ज्ञपन्व स्थितिसे असंख्यातगुणी  
 होती है । इनके सम्पत्त्व प्रकृति नहीं है इसलिये वसका सन्निकष नहीं कहा । अनन्तालुक्की  
 कोषकी ज्ञपन्व स्थितिबिमच्छिके पारक जीवके मिध्यात्व वारह क्यार्य और नौ नोक्यार्योंकी स्थिति  
 क्या ज्ञपन्व होती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे अज्ञपन्व होती है, जो अपनी ज्ञपन्व स्थितिसे  
 असंख्यातगुणें भाग अधिक वा संख्यातगुणें भाग अधिक इस प्रकार से स्थान पठित होती है ।  
 सम्पत्त्व और सम्मगिमिध्यात्वकी स्थिति क्या ज्ञपन्व हाती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे अज्ञपन्व  
 हाती है, वा अपनी ज्ञपन्व स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तालुक्की मान आदि तीन  
 क्यार्योंकी स्थिति क्या ज्ञपन्व हाती है वा अज्ञपन्व ? नियमसे ज्ञपन्व होती है । इसी प्रकार  
 अनन्तालुक्की मान आदि तीन प्रकृतिबोंकी ज्ञपन्व स्थितिबिमच्छिके पारक जीवके सन्निकष  
 जानना चाहिये ।

§ ८४६. सावधी वृत्तिमें मिध्यात्वकी ज्ञपन्व स्थितिबिमच्छिके पारक जीवके वारह क्यार्य,  
 मय और सुगुप्ताकी स्थिति क्या ज्ञपन्व हाती है वा अज्ञपन्व ? ज्ञपन्व भी होती है और

कम्हि वि उच्चारणाए अरदि-सोगट्टिदी हस्सरदीणं व वेट्टाणपट्टिदा त्ति भणदि, तं जाणिय वत्तव्वं । हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंढं किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि०-पुरिस०वे० किं ज० अज० ? णि० अज० विट्टाणपट्टिदा असंखे०भाग० संखे०गुणव्वभहिया वा । रट्टि० किं ज० अज० ? णिय० जहण्णा । एवं रदि० । अरदि० जह० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस-णवुंस० किं ज० अज० ? णियमा अज० विट्टाणपट्टिदा असंखे०भागव्वभहिया संखे०गुण-व्वभहिया वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं मोग० । भयस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्तवारसक० किं ज० [अज०] ? अज०, तं तु विट्टाणपट्टिदा असंखे०भाग-व्वभहिया संखे०भागव्वभहिया वा । दुगुंढं किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंढाए । एवं पढमाए पुढवीए ।

§ ८४८ विदियादि जाव छट्टि त्ति मिच्छत्त ज० विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि०

समान दो स्थान पतित कही है मो जानकर उसका फयन करना चाहिये । हास्यकी जपन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय, नपुसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और वारह कपायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । शेष कथन मिथ्यात्वके समान है- इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये ।

§ ८४८. दूसरीसे लेकर छठी पृथिवीतकके नारकियोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति विभक्तिके

वारसक०-इत्य पुरिस० अदि सोग भय-दुर्गुह० किं ब० अज० ? पियमा अज०  
सखे०गुणा । सम्मच-सम्मामि० अर्णतापु०चरकक० किं स० अज० ? गियमा अज०  
असंखे०गुणा । इस्स-रदि किं न० अज० ? पि० अज० वेहाणपदिदा असंखे०  
मागम्महिषा संखेज्जगुणा वा ? इस्स जह० विइत्ति० मिच्छद्व०-वारसक० णपुंस०  
अरदि-सोग-भय-दुर्गुह० किं न० अज० ? पि० अज० संखेज्जगुणा । सम्मच  
सम्मामि०-अर्णतापु०चरकक० णपुंस० मगो । इत्य पुरिस० किं ब० अज० ? गिय०  
अज० वेहाणपदिदा असंखे०भागम्महिषा सखे०गुणा वा । रदि० किं ब० अज० ?  
पियमा अइणा । एवं रदि० । अरदि० जह० विइत्ति० मिच्छद्व०-वारसक०-इस्स-रदि  
भय-दुर्गुह० किं स० अज० ? खियमा अज० सखे०गुणा । सम्मच०-सम्मामि०  
अर्णतापु०चरकक० रदिमगो । तिग्गि वेद० किं ब० अज० ? पिय० अज० वेहाण-  
पदिदा असखं मागम्महिषा संखे० गुणा वा । सोग० किं ब० अज० ? गियमा  
अइणा । एव सोग० । मय ज० विइत्ति० मिच्छद्व०-वारसक० किं स० ? अज० । तं तु

स्वित्तिसे असंख्यातगुणी होती है इसी प्रकार पुरुषोत्तमकी अथवा स्वित्तिविमर्शके धारक जीवके  
सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । नपुंसकशब्दकी अथवा स्वित्तिविमर्शके धारक जीवके मिथ्यात्व बरह  
क्याय, स्त्रीविषय पुरुषत्व, अरति शोक मय और जुगुप्साकी स्विति क्या अथवा होती है या  
अज्ञपण्य ? निश्चयसे अज्ञपण्य होती है जो अपनी अथवा स्वित्तिसे संख्यातगुणी होती है ।  
सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुपन्वी अतुल्यकी स्विति क्या अथवा होती है या  
अज्ञपण्य ? निश्चयसे अज्ञपण्य होती है जो अपनी अथवा स्वित्तिसे असंख्यातगुणी होती है ।  
हास्य और रतिकी स्विति क्या अथवा होती है या अज्ञपण्य ? नियमसे अज्ञपण्य होती है । जो  
अपनी अथवा स्वित्तिसे असंख्यातके भाग अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्वान  
पतित होती है । हास्यकी अथवा स्वित्तिविमर्शके जीवके मिथ्यात्व, वरह क्याय नपुंसकशब्द  
अरति, शोक मय और जुगुप्साकी स्विति क्या अथवा होती है या अज्ञपण्य ? नियमसे अज्ञपण्य  
होती है । जो अपनी अथवा स्वित्तिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्मिमिथ्यात्व और  
अनन्तलुपन्वी अतुल्यका मंग नपुंसकशब्दके समान है । स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी स्विति क्या  
अथवा होती है या अज्ञपण्य ? निश्चयसे अज्ञपण्य होती है जो अपनी अथवा स्वित्तिसे  
असंख्यातके भाग अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्वान पतित होती है ।  
रतिकी स्विति क्या अथवा होती है या अज्ञपण्य ? नियमसे अज्ञपण्य होती है । इसी प्रकार रतिकी  
अथवा स्वित्तिविमर्शके जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । अरतिकी अथवा स्वित्तिविमर्शके  
धारक जीवके मिथ्यात्व बरह क्याय, हास्य रति, मय और जुगुप्साकी स्विति क्या अथवा  
होती है या अज्ञपण्य ? नियमसे अज्ञपण्य होती है, जो अपनी अथवा स्वित्तिसे संख्यातगुणी  
होती है । सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुपन्वी अतुल्यका मंग रतिके समान है । तीनों  
शेषोंकी स्विति क्या अथवा होती है या अज्ञपण्य ? निश्चयसे अज्ञपण्य होती है । जो अपनी  
अथवा स्वित्तिसे असंख्यातके भाग अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्वान पतित  
होती है । शोककी स्विति क्या अथवा होती है या अज्ञपण्य ? निश्चयसे अज्ञपण्य होती है । इसी  
प्रकार शोककी अथवा स्वित्तिविमर्शके जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । मयकी अथवा स्विति  
विमर्शके जीवके मिथ्यात्व और बरह क्यायकी स्विति क्या अथवा होती है या अज्ञपण्य ?

पत्तिदो० असंखे० भागव्भहिया । सम्मत्त-सम्मामि० अणंताणु० चउक्क० किं ज०  
 अज० ? णि० अज० अमखे० गुणा । सत्तणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज०  
 असखे० भागव्भहिया । एवं वारसकसायाणं, णवरि भय-दुगुंछा० तं तु समयुत्तरमादि०  
 जाव आवल्लियव्भहिया । सम्मत्त० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं  
 ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज०  
 असंखे० गुणा । अणंताणु० चउक्क० विदियपुढविभंगो । सम्मामि० एवं चेव, णवरि  
 सम्मत्तं णत्थि । अणंताणु० कोध० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं  
 ज० अज० ? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागव्भहिया मखे० भागव्भहिया वा ।  
 सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । तिण्णि क० किं ज० अज० ? णि० ज० । एवं  
 तिण्हं कसायाणं । इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० असंखे० गुणा । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-

अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्त्योपमके असख्यातवें भाग तक अधिक होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके भय और जुगुप्साकी स्थिति अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग दूसरों पृथिवीके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तान कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय, और आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य

मिच्छत्-वारसक०-गण्योक्त० किं ज० अत्र० ? मह्य्या अत्रहणा वा । अहणादो  
 अत्रहणा विहाखपदिदा असंखे० भाग्यमहिया संखे० भाग्यमहिया संखे० गुण्यमहिया  
 वा । असंखे० चतकक० किं ज० अत्र० ? खि० अत्र० संखे० गुण्यमहिया । अर्णतापु०  
 कोप० अह० विहृषि० मिच्छत्-वारसक०-गण्योक्त० किं ज० अत्र० ? खि० अत्र०  
 असंखे० गुणा । सम्मत्-सम्पामि० किं ज० अत्र० ? शियमा अत्र० असंखे० गुणा ।  
 विभिनक० किं ज० अत्र० ? पि० अहणा । एवं तिर्ह कसायार्ण । मय० अ०  
 विहृषि० मिच्छत्-वारसक० किं ज० अत्र० ? अहणा अत्रहणा वा । अहणादो  
 अत्रहणा असंखे० भाग्यमहिया । सम्मत्-सम्पामि० अणतापु० चतक० मिच्छत्  
 मंगो । सत्तलोक० किं ज० अत्र० ? पि० अत्र० असंखे० भाग्यमहिया । दुर्गुद०  
 किं ज० अत्र० ? पि० अहणा । एवं दुर्गुदप । इत्यि० अह० विहृषि० मिच्छत्  
 वारसक०-अहणोक्त० किं ज० अत्र० ? पि० अत्र० संखे० गुणा । सम्मत्-सम्पामि०-  
 अर्णतापु० चतक० मिच्छत्-मंगो । एवं पुरिस० । गनुंस० अह० विहृषि० मिच्छत्०

अप्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्पत्तिध्यातकी अपन्य स्थिति विमर्शके धारक जीवके  
 मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अत्रपन्य ? अपन्य  
 मी होती है और अत्रपन्य मी । इनमेंसे अत्रपन्य स्थिति अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातबे माग  
 अधिक, संख्यातबे माग अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पठित होती है ।  
 अनन्तानुबन्धी अनुष्णकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अत्रपन्य ? नियमसे अत्रपन्य होती  
 है वा अपनी अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । अनन्तानुबन्धी कोषकी अपन्य  
 स्थिति विमर्शके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या अपन्य  
 होती है वा अत्रपन्य ? नियमसे अत्रपन्य होती है वा अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी  
 होती है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिध्यातकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अत्रपन्य ? नियमसे  
 अत्रपन्य होती है वा अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान  
 आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अत्रपन्य ? नियमसे अपन्य होती है ।  
 इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी अपन्य स्थितिके धारक जीवके सन्नि  
 कर्षे जानना चाहिये । मयकी अपन्य स्थिति विमर्शके धारक जीवके मिथ्यात्व और बारह  
 कपायकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अत्रपन्य ? अपन्य मी होती है और अत्रपन्य मी ।  
 इनमेंसे अत्रपन्य स्थिति अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातबे माग अधिक होती है ।  
 सम्पत्त्व, सम्पत्तिध्यात और अनन्तानुबन्धी अनुष्ण मंग मिथ्यात्वके समान है । सात  
 नोकपायोंकी स्थिति क्या अपन्य होता है । वा अत्रपन्य ? नियमसे अत्रपन्य होता है, वा  
 अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातबे माग अधिक होती है । पुण्यताकी स्थिति क्या अपन्य  
 होती है वा अत्रपन्य ? नियमसे अपन्य होती है । इसी प्रकार पुण्यताकी अपन्य स्थिति  
 विमर्शके धारक जीवके सन्निकर्षे जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी अपन्य स्थिति विमर्शके धारक  
 जीवके मिथ्यात्व बारह कपाय और आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा  
 अत्रपन्य ? नियमसे अत्रपन्य होती है, वा अपनी अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।  
 सम्पत्त्व सम्पत्तिध्यात और अनन्तानुबन्धी अनुष्ण मंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार

१ वा मये संखेगुणा इति चठ ।



तिट्टाणपदिदा असखे० भागव्भहिया संखे० भागव्भहिया संखे० गुणा वा । दुगुं० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । सेसं मिच्छत्तभगो । एवं दुगुं० ।

§ ८५०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त० ज० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुं० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पत्तिदो० असंखे० भागव्भहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्टाणपदिदा सखे० गुणा असखे० गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेट्टाणपदिदा सखे० गुणा असखे० गुणा वा । अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज ? णि० अज०-असंखे० गुणा । सत्तणो० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० भागव्भहिया । एवं वारसक० । णवरि वारसकसाएसु एक्कदरस्स जहण्णद्विदीए णिरुद्धाए भय-दुगुं० द्वाओ किं ज० [ अज० ] ? अज०, तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलियव्भहियाओ । सम्मत्त० ज० विहत्ति० वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मामि० जह० विहत्ति०

नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक, सख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । जुगुत्साकी स्थिति क्या जघन्य हांती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । शेष प्रकृतियोंका भग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुत्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ण जानना चाहिये ।

§ ८५०. तिर्यचगतमे तिर्यचोमं मिथ्यात्ववी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय, भय और जुगुत्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । सम्यक्त्वप्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य हांती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक या असंख्यात गुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होता है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ण कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपायोंमेंसे किसी एक कपायकी जघन्य स्थितिके रुके रहने पर भय और जुगुत्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी

मिच्छत्-वारसक०-वशयोक्त० किं न० अत्र० ? अहंसा अत्रहंसा वा । अहंसादो  
 अत्रहंसा तिहाणपदिदा असंखे० भागम्भिया संखे० भागम्भिया संखे० गुणम्भिया  
 वा । अणंताणु० चठक० किं न० अत्र० ? णि० अत्र० संखे० गुणम्भिया । अणंताणु०  
 कोप० अह० विहसि० मिच्छत्-वारसक०-वशयोक्त० किं न० अत्र० ? णि० अत्र०  
 असंखे० गुणा । सम्मत्-सम्भामि० किं न० अत्र० ? णिपमा अत्र० असंखे० गुणा ।  
 तिष्णिक्त० किं न० अत्र० ? णि० अहंसा । एवं तिष्णं कसायानं । मय० अ०  
 विहसि० मिच्छत् वारसक० किं न० अत्र० ? अहंसा अत्रहंसा वा । अहंसादो  
 अत्रहंसा असंखे० भागम्भिया । सम्मत्-सम्भामि० अणंताणु० चठक० मिच्छत्  
 मंगो । सत्तयाक्त० किं न० अत्र० ? णि० अत्र० असंखे० भागम्भिया । दुर्गुञ्ज०  
 किं न० अत्र० ? णि० अहंसा । एवं दुर्गुञ्जाप । इत्थि० अह० विहसि० मिच्छत्  
 वारसक०-अहणोक्त० किं न० अत्र० ? णि० अत्र० संखे० गुणा । सम्मत्-सम्भामि०  
 अणंताणु० चठक० मिच्छत्-मंगो । एवं पुरिस० । णवुस० अह० विहसि० मिच्छत्०

अपत्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्भामिच्छत्-वशयोक्त अपत्य स्थिति विमर्शके पारक बीजके  
 मिच्छत्, वारस कपाय और नौ नोक्यायोंकी स्थिति क्या अपत्य होती है या अत्रापत्य ? अपत्य  
 मी होती है और अत्रापत्य मी । कर्मसे अत्रापत्य स्थिति अपनी अपत्य स्थितिसे असंख्यातमें भाग  
 अधिक, संख्यातमें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है ।  
 अनन्तलुब्धी वशुच्छ्वस स्थिति क्या अपत्य होती है या अत्रापत्य ? नियमसे अत्रापत्य होती  
 है जो अपनी अपत्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । अनन्तलुब्धी श्लेषकी अपत्य  
 स्थिति विमर्शके पारक बीजके मिच्छत् वारस कपाय और नौ नोक्यायोंकी स्थिति क्या अपत्य  
 होती है या अत्रापत्य ? नियमसे अत्रापत्य होती है, जो अपनी अपत्य स्थितिसे असंख्यातगुणी  
 होती है । सम्भक्त और सम्भामिच्छत्की स्थिति क्या अपत्य होती है या अत्रापत्य ? नियमसे  
 अत्रापत्य होती है जो अपनी अपत्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तलुब्धी मान  
 आदि तीन कयायोंकी स्थिति क्या अपत्य होती है या अत्रापत्य ? नियमसे अपत्य होती है ।  
 इसी प्रकार अनन्तलुब्धी मान आदि तीन कयायोंकी अपत्य स्थितिसे पारक बीजके समान  
 कर्षे जानना चाहिये । मयकी अपत्य स्थिति विमर्शके पारक बीजके मिच्छत् और वारस  
 कपायकी स्थिति क्या अपत्य होती है या अत्रापत्य ? अपत्य मी होती है और अत्रापत्य मी ।  
 कर्मसे अत्रापत्य स्थिति अपनी अपत्य स्थितिसे असंख्यातमें भाग अधिक होती है ।  
 सम्भक्त सम्भामिच्छत् और अनन्तलुब्धी वशुच्छ्वस मंग मिच्छत्के समान है । सात  
 नोक्यायोंकी स्थिति क्या अपत्य होता है । या अत्रापत्य ? नियमसे अत्रापत्य होती है, जो  
 अपनी अपत्य स्थितिसे असंख्यातमें भाग अधिक होती है । अणुष्ठाकी स्थिति क्या अपत्य  
 होती है या अत्रापत्य ? नियमसे अपत्य होती है । इसी प्रकार अणुष्ठाकी अपत्य स्थिति  
 विमर्शके पारक बीजके समान जानना चाहिये । स्त्रीवैश्वी अपत्य स्थिति विमर्शके पारक  
 बीजके मिच्छत् वारस कपाय और आठ नोक्यायोंकी स्थिति क्या अपत्य होती है या  
 अत्रापत्य ? नियमसे अत्रापत्य होती है, जो अपनी अपत्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।  
 सम्भक्त सम्भामिच्छत् और अनन्तलुब्धी वशुच्छ्वस मंग मिच्छत्के समान है । इसी प्रकार

१ वा प्रती संखेगुणा इति शब्दः ।

वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० इत्थि०भंगो । हस्स-रदि० किं ज० अज० [ णियमा अज० ] वेढाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा । हस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंता०चउक्क० णवुंसंभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णि० अज० वेढाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा । रदि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० हस्सभंगो । तिण्णि वेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेढाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सोग० ।

§ ८५१ पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा ।

पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग स्त्रीवेदके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, नपुसकवेद अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या जघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग नपुसकवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारहकषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५१. पंचेन्द्रियतिर्य्यच, पंचेन्द्रियतिर्य्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्य्यच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके वारह, कषाय भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या

अहणादो अत्रहणा समपुत्रमादिं क्वाद्ग भाव पल्लिदो० असंखे० भागम्हरिया । गवरि मयद्गुं० विहाणपदिदा । सम्मर्ष सिया अत्यि सिया गत्यि । अदि अत्यि किं ज० अज० ? जि० अज० वेहाणपदिदा सखे० गुणा असंखे० गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्यि सिया गत्यि । अदि अत्यि, किं ज० अज० ? अहणा अमहणा वा, अहणादो अमहणा विहाणपदिदा संखे० गुणा असंखे० गुणा वा । अर्णताणु० चतक० किं ज० अज० ? जि० अज० असंखे० गुणा । सत्तणो० किं ज० अज० ? जि० अज० विहाण पदिदा-असंखे० भागम्हरिया सखे० भागम्हरिया संखे० गुणम्हरिया वा । एव बारस- कसाय० । मय० अह० मिच्छत्-वारसक०-दुगुं० किं ज० [ अज० ] ? अज० तं तु समपुत्रमादिं क्वाद्ग भाव पल्लिदो० असंखे० भागम्हरिया । सेसं मिच्छत्तमगो । पर्न दुगुं० । सम्मत्त ज० विहृत्ति० वारसक०-जवणो० किं ज० अज० ? जि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० ज० विहृत्ति० मिच्छत्-वारसक०-जवणो० किं० ज० अज० ? अहणा अमहणा वा । अहणादो अमहणा विहाणपदिदा असंखे० भागम्हरिया संखे० भागम्० खे० गुणा वा । अर्णताणु० चतक० किं ज० अज० ? जि० अज०

वपम्ब होती ह या अजपम्ब ? वपम्ब भी होती है और अजपम्ब भी । जन्मसे अजपम्ब स्थिति एक समय अधिक अजपम्ब स्थितिसे लेकर पस्वोपमके असंख्यातर्षे भाग अधिक तक जाती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्वान्तपतित जाती है । सम्पत्त्व क्वाचित् है और क्वाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या अजपम्ब होती है या अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब जाती है वा संख्यातगुणी अधिक वा असंख्यात गुणी अधिक इस प्रकार दो स्वान्त पतित होती है । सम्पत्त्वक्याचित् क्वाचित् है और क्वाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या अजपम्ब जाती है वा अजपम्ब ? वपम्ब भी होती है और अजपम्ब भी । जन्मसे अजपम्ब स्थिति अपनी अजपम्ब स्थितिकी अपेक्षा-संख्यात गुणी अधिक वा असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्वान्तपतित होती है । अमन्तलुबन्धी वस्तुपुष्ठी स्थिति क्या अजपम्ब जाती है या अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब जाती है जो अपनी अजपम्ब स्थितातसे असंख्यातगुणी जाती है । साथ नाकपायोकी स्थिति क्या अजपम्ब होती है या अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब जाती है वा असंख्यातर्षे भाग अधिक संख्यातर्षे मय अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्वान्त पतित होती है । इस प्रकार बारह क्वाचोकी अजपम्ब स्थितिबिम्बिबन्धन जाचोके समिकरं जानना चाहिये । मयकी अजपम्ब स्थितिबिम्बिबन्धनसे बीचके मिध्यात्व, बारह क्वाच और जुगुप्साकी स्थिति क्या अजपम्ब जाती है या अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब होती है । फिरभी वह अपनी अजपम्ब स्थितिकी अपवा एक समय अधिकसे लेकर पस्वोपमके असंख्यातर्षे भाग अधिकतक जाती है । शेष मय मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी अजपम्ब स्थितिबिम्बिबन्धनसे बीचके समिकरं जानना चाहिये । सम्पत्त्वकी अजपम्ब स्थितिबिम्बिबन्धनसे बीचके बारह क्वाच और भी नाकपायोकी स्थिति क्या अजपम्ब होती है या अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब जाती है वा अपनी अजपम्ब स्थितिसे संख्यातगुणी जाती है । सम्पत्त्वक्याचित् अजपम्ब स्थितिबिम्बिबन्धनसे बीचके मिध्यात्व, बारह क्वाच और भी नाकपायोकी स्थिति क्या अजपम्ब जाती है या अजपम्ब ? वपम्ब भी जाती है और अजपम्ब भी । जन्मसे अजपम्ब स्थिति अपनी अजपम्ब स्थितिसे असंख्यातर्षे भाग अधिक, संख्यातर्षे भाग

असंखे० गुणा । इत्थि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-अट्टणोक० किं ज० अज० ?  
 गियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं  
 पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-  
 भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? गि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणं-  
 ताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । हस्स-रदि० किं ज० अज० ? गियमा अज० वेट्टाण-  
 पदिदा असखे० भागवभहिया संखे० गुणा । हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-  
 अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? गियमा अज० संखे० गुणा । एवं णवुंस० ।  
 सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ?  
 गियमा अज० वेट्टाणपदिदा असंखे० भागवभ० संखे० गुणा वा । रदि किं ज० अज० ?  
 गि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि०-  
 भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? गि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-  
 चउक्क० हस्सभंगो । तिण्णवेद० किं ज० अज० ? गि० अज० वेट्टाणपदिदा असंखे०

अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय और आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग अधिक और सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है,

भागम्भ० संखे०गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? शि० जहणा । एवं सो० । गवरि  
पंथि० तिरि० ज्योषिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तर्मगो ।

§ ८५२ पंथि०तिरि० अपञ्ज० मिच्छत्त ज० विह्वि० सम्मत्त-सम्मामि०  
धारसक०-गवणोक० जोषिणीर्मगो । अणंतापु०चउत्तक० किं ज० अज० ? जहणा  
अमहणा वा । जहणादो अमहणा समयुत्तरमादिं कादृण ब्राभ पस्त्रि० असख०भाग  
महिया । सम्मत्त० अ० विह्वि० मिच्छत्त सोलसक०-गवणोक० किं ज० अज० ?  
जहणा अमहणा वा । जहणादो अज० तिहाणपदिदा असख०भागभ० सख०  
भागम्भ० संखे०गुणा वा । सम्मामि० शि० अज० असख०गुणा । एवं सम्मामि०, गवरि  
सम्मत्तं गत्सि । सोलसक० मिच्छत्तर्मगो । मय० मह० मिच्छत्त-सोलसक०-गुणं  
किं ज० [ अज० ] ? अज०, सं तु समयुत्तरमादिं कादृण जाव पस्त्रि० असख०  
भागम्भ० । सेसं मिच्छत्तर्मगो । एवं दुगु द्वाए । सत्तजोक० ज्योषिणीर्मगो । गवरि  
अणंतापु० चउत्तक० शि० संखे०गुणा । एवं मणुसमपञ्ज०-यथि०मपञ्ज० तसअप

को अपनी जपन्य स्थितिसे अस्वभावतर्षे माग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दा स्थान  
पठित होती है । सोकही स्थिति क्या अजम्भ हाती है या अजपम्भ ? नियमसे अजपन्य हाती है ।  
इसी प्रकार साकका अजम्भ स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके सन्निकर्य जानना चाहिये । किन्तु इ०नी  
विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यैच योनिमात जोषामे स० कत्वका मग सन्ध रित्वात्कके समान है ।

§ ८५२ पंचेन्द्रिय तिर्यैच सन्धपवात्तर्षे मिध्यत्तकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके  
सम्भक्त्य, सम्माम्भप्यात्, बारह क्वाय और नो नोक्यायोका मंग यानिमति तिर्यैचके समान है ।  
अनन्तानुवन्धा चतुष्कका स्थिति क्या जपन्य हाती है या अजपन्य ? जपन्य भी हाती है और  
अजपन्य भी । इनमसे अजपन्य स्थिति अपनी जपन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकस  
सेकर पक्षोपमक अस्वभावतर्षे माग अधिक तक हाती है । सम्भक्त्यकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले  
बीबके मिध्यत्त, सोलह क्वाय और नो माक्यायोकी स्थिति क्या जपन्य हाती है या अजपन्य ?  
जपन्य भी हाती है और अजपन्य भी । इनमसे अजपन्य स्थिति अपनी जपन्य स्थितिकी अपेक्षा  
अस्वभावतर्षे माग अधिक, संख्यातर्षे माग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान  
पठित हाती है । सम्माम्भप्यात्तकी स्थिति नियमसे अजपन्य हाती है या अपनी जपन्य स्थितसे  
अस्वभावतगुणी हाती है । इसी प्रकार सम्भाम्भप्यात्तकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके  
सन्निकर्य जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्भक्त्य प्रकृति नहीं है । साक  
क्वायोकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके सन्निकर्य सन्निकर्य मिध्यत्तके समान है ।  
मयकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके मिध्यत्त, सोलह क्वाय और सुगुणाकी स्थिति क्या  
जपन्य हाती है या अजपन्य ? नियमसे अजपन्य हाती है फिर मो वह अपनी जपन्य स्थितिकी  
अपेक्षा एक समय अधिकस सेकर पक्षोपमका अस्वभावतर्षे माग अधिक तक हाती है । सेर  
पक्षोपमका मंग मिध्यत्तके समान है । इसी प्रकार सुगुणाकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके  
सन्निकर्य जानना चाहिये । सत्त नोक्यायोकी जपन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीबके मंग यानिमती  
तिर्यैचके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुवन्धी चतुष्कका स्थिति नियमसे  
संखे त्पणी हाती है । इसी प्रकार मणुस्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक और अज अपर्याप्तक

उज्जत्ताणं ।

§ ८५३, देवाणं गारयभंगो । भवण०-वाणवेंतराणमेवं चैव । णवरि सम्मत्त० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्जो-त्ति मिच्छत्तजह०विहत्ति० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असखे०गुणा । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० जह० विह० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेढाण-पदिदा संखे० भागम्भहिया । कुदो ? उवसमसेढिं चढिय ओदरिदूण दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण ५ देवेसुप्पणस्स संखेज्जभागम्भहियत्तुवलभादो । संखेज्ज-गुणा वा, उवसमसेढिं चढिय दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण देवेसुप्प-णस्स संखे०गुणत्तुवलभादो । किरियाविरहिदसम्मादिद्वीणं द्विदिखंडयघादो णत्थि-त्ति भणंताणमाइरियाणमहिप्पाएण एदं भणिदं । किरियाए विणा तिक्खविसोहिवसेण द्विदिखंडयघादो देवेसु अत्थि-त्ति भणंताणामहिप्पाएण संखेज्जगुणा चैव । णेरइय०-भवण०-वाण०-जोदिसियसम्माइद्वीणं किरियाए विणा णत्थि द्विदिखंडयघादो । कुदो ? साभावियादो । सम्मामि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० किं ज०

जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८५३, देवोंके नारकियोंके समान भग है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषा देवोंके भग दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भग जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो दो स्थान पतित होती है । उनमेंसे पहली संख्यातवें भाग अधिक होती है क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणीपर चढ़कर और उतरकर अनन्तर दर्शनमोहनीयका क्षय करता हुआ कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि होकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातवें भाग अधिक देरी जाती है । या संख्यातगुणी अधिक होती है क्योंकि उपशमश्रेणीपर चढ़कर और वहासे उतरकर दर्शनमोहनीयका क्षय करता हुआ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होकर जो देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी अधिक देखी जाती है । क्रिया रहित सम्यग्दृष्टियोंके स्थितिकाण्डकप्राप्त नहीं होता है ऐसा माननेवाले आचार्योंके अभिप्रायानुसार उक्त कथन किया है । परन्तु जो आचार्य क्रियाके बिना तीव्र विशुद्ध परिणामोंसे देवोंमें स्थितिकाण्डकघात होता है ऐसा मानते हैं उनके अभिप्रायानुसार उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी ही होती है । तो भी नारकी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्रियाकृत् विना स्थितिकाण्डकघात नहीं हाता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके जीवके

अत्र० ? पि० अत्र० संस्ते०गुणा । अर्णतापु० चउक्क किं अ० अम० ? पि० अत्र०  
 असंस्ते०गुणा । अर्णतापु० कोषम० मिच्छत्त पारसक० णवणोक० किं अ० अम० ?  
 पि० अम० संस्ते०गुणा । सम्मत्तसम्मामि० किं अ० अत्र० ? पि० अत्र० असंस्ते०  
 गुणा । तिप्पिक० किं अ० अम० ? पि० अहण्णा । एवं तिप्पिं कसायाण । अपत्त  
 क्खणकोषत्र० विहसि० एककारसक०-णवणोक० किं अ० अत्र० ? पि० अहण्णा ।  
 एवमेकारसक०-णवणोकसायार्ण ।

§ ८५४ अणुदिसादि चाव सम्बद्धसिद्धि वि मिच्छत्त अह० विहसि० पारसक०  
 णवणोक० किं अ० अत्र० ? पि० अत्र० संस्ते०गुणा । सम्मत्त० किं अ० अत्र० ?  
 पि० अत्र० असंस्ते०गुणा । सम्मामि० किं अ० अम० ? पि० अहण्णा । एवं  
 सम्मामि० । सम्मत्त० अह० विहरी० पारसक०-णवणोक० किं अ० अत्र० ? पि०  
 अम० संस्ते०गुणा । अथवा संस्ते०भागम्म० संस्ते०गुणा पि वेद्धानपदिदा । एत्थ कारणं  
 पुम्मं य पत्तम् । अर्णतापु०कोष० ज०विह० मिच्छत्त-सम्मामि०-पारसक०-णवणोक०

मिध्यात्व बाह्य कथाय और नौ नोकथायोंकी स्थिति क्या अत्रपत्र्य हाठी है या अत्रपत्र्य ? नियमसे  
 अत्रपत्र्य होती है, जो अपनी अत्रपत्र्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी अनुबन्धी  
 स्थिति क्या अत्रपत्र्य होती है या अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य होती है, वा अपनी अत्रपत्र्य  
 स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी कोषकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवके  
 मिध्यात्व बाह्य कथाय और नौ नोकथायोंकी स्थिति क्या अत्रपत्र्य होती है या अत्रपत्र्य ? नियमसे  
 अत्रपत्र्य होती है जो अपनी अत्रपत्र्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्य  
 निमिध्यात्वकी स्थिति क्या अत्रपत्र्य हाठी है या अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य होती है, वा अपनी  
 अत्रपत्र्य स्थितिसे असंख्यातगुणी हाठी है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कथायोंकी स्थिति  
 क्या अत्रपत्र्य होती है या अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान  
 आदि तीन कथायोंकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यान्त-  
 वरण कोषकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवके अप्रत्याख्यामावरण मान आदि ग्याह्य कथाय  
 और नौ नोकथायोंकी स्थिति क्या अत्रपत्र्य होती है या अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य हाठी है । इसी  
 प्रकार अप्रत्याख्यामावरण मान आदि ग्याह्य कथाय और नौ नोकथायोंकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वा-  
 ले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५४ अनुदिससे लेख सवार्थसिद्धि ठकके देवोंमें मिध्यात्वकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले  
 जीवके बाह्य कथाय और नौ नोकथायोंकी स्थिति क्या अत्रपत्र्य होती है वा अत्रपत्र्य ? नियमसे  
 अत्रपत्र्य होती है जो अपनी अत्रपत्र्य स्थितिसे संख्यातगुणी हाठी है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या  
 अत्रपत्र्य होती है या अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य होती है जो अपनी अत्रपत्र्य स्थितिसे असंख्या-  
 तगुणी होती है । सम्यन्मिध्यात्वकी स्थिति क्या अत्रपत्र्य होती है वा अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य  
 होती है । इसी प्रकार सम्यन्मिध्यात्वकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवके सन्निकर्ष जानना  
 चाहिये । सम्यक्त्वकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवके बाह्य कथाय और नौ नोकथायोंकी स्थिति  
 क्या अत्रपत्र्य है या अत्रपत्र्य ? नियमसे अत्रपत्र्य है वा अपनी अत्रपत्र्य स्थितिसे संख्यातगुणी है ।  
 अथवा संख्यातर्षभाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्वान पठित है । यहाँ पर  
 कारण पक्षके समान कहना चाहिये । अनन्तानुबन्धी कोषकी अत्रपत्र्य स्थितिबिम्बित्वाले जीवके



किं ज० अज० ? णि० अज० रंखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज ? णि० अज० असंखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्ख्वाण-कोधज० एक्कारसक०-णवणोक० [ कि० जह० अज० ? ] णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक० णवणोकसायाणं ।

§ ८५५. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु मिच्छत्तजह० विहत्ति० सोलसक०-भय-दुगुंछ० किं० ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असखे० भागेण० भहिया । सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिटाणपदिदा संखे० भाग० भहिया संखे० गुणा वा असंखे० गुणा वा । सत्तणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० असखे० भाग० भहिया । एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं । णवरि भय जह० दुगुंछ० णियमा जहण्णा । एव दुगुंछ० । भय-दुगुंछाणं जहण्णाद्विदीए सतीए कथं सोलसकसायाणमसंखे० भाग० भहियत्तं ? ण, सोलसकसायाणं जहण्णाद्विदीदो अ० भहियद्विदि-

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायों की जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरणमान आदि ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५६. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्त्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातवें भाग अधिक, सख्यातगुणी अधिक या असख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थानपतित होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवाले जीवके जुगुप्साकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिवाले जीवके भयकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है ।

शंका—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिके रहते हुए सोलह कपायोंकी स्थिति असख्यातवें भाग अधिक कैसे होती है ?



पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । णवरि भय-दुगुं'बाओ तिहाणपदिदा । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो । सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० तिहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० भागवभ० सखे० गुणवभहिया वा । एवं सोलसकसाय-भय-दुगुं'बाणं । णवरि भयजह० दुगुं० किं० ज० [ अजह० ] ? अजह० तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असखे० भागवभ० । एवं दुगुं० । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो । इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक० किं० जह० अजहण्णा ? णि० अज० संखे० भागवभहिया । अट्ठणोक० किं० ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणवभहिया । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवु स० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं'छ० इत्थिवेदभंगो । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो । हस्सरदि० किं० ज० अजह० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भाग-वभहिया सखे० गुणवभहिया वा । हस्सज० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुं स०-अरदि-सोग-भय-दुगुं'छ०-सम्मत्त०-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो । इत्थि-पुरिस० किं० ज० अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० गुणवभहिया वा । रदि०

लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयही जघन्य स्थितिवालेके जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है । इसी प्रकार जुगुप्साके विषयमें जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्य त्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभाक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक होती है । आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । साम्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । साम्यही जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो

किं ज० अम० ? पि० अहृणा । एवं रदीए । अरदि० ज० विहृषि० मिच्छत्-  
सोससक०-इस्स-रदि-मय-दुगु छा०-सम्मत्त-सम्मामि० इत्यिषेदमंगो । तिष्णिवेद० किं  
ज० अज० ? पि० अज० वेढाणपदिदा संस्ले०भागम्महिया संस्लेग्गुणम्महिया वा ।  
सोग० किं म० अम० ? पि० अहृणा । एवं सोग० ।

§ ८५७ मोरास्त्रियमिस्स० विरिक्खोप । णवरि अणंताणु०पत्तक० मिच्छत्त  
मंगो । वेदम्भियक्कायजोगीसु मिच्छत्तन०विहृषि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अम० ?  
पि० अमहृणा अस्तंसे०गुणा । वारसक० पवणोक० किं ज० अम० ? पि० अम०  
संस्ले०गुणा । सम्मत्त० म० विहृषि० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज० अम० ?  
पि० अम० संस्ले०गुणा । सम्मामि०-अणंताणु०पत्तक० किं ज० अम० ? पि० अज०  
अस्तंसे०गुणा । एवं सम्मामि० । णवरि सम्मत्तं गत्थि । अणंताणु०-कोपन०विहृषि०  
सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अम० ? पि० अम० अस्तंसे०गुणा । मिच्छत्त०-वारसक०  
पवणोक० किं ज० अम० ? पि० अज० संस्ले०गुणा । तिष्णिक्क० किं ज० [ अम० ]

असंस्पातवें भाग अधिक वा संस्पातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्थान पठित होती है । रतिकी  
स्थिति क्या जपम्य होती है वा अजपम्य ? निरुमसे जपम्य होती है । इसी प्रकार रतिकी  
जपम्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके समिकर्म्म जानना चाहिये । अरतिकी जपम्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके मिष्यात्व सोसह क्काय हास्य, रति, मय, सुगुप्ता सम्पत्त्व और  
सम्पग्मिष्वात्त्वक मंग स्त्रीवेदक समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जपम्य होती है वा  
अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है । जो संस्पातवें भाग अधिक वा संस्पातगुणी अधिक इस  
प्रकार दो स्थान पठित होती है । आककी स्थिति क्या जपम्य होती है वा अजपम्य ? निरुमसे  
जपम्य होती है । इसी प्रकार शोककी जपम्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके जानना चाहिये ।

§ ८५८ औदारिकमिअययोगी जीवके सामान्य तिर्यचोके समान मंग है । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि इनके अन्तलावुवन्धी वतुष्कम मंग मिष्वात्त्वके समान है । वैकियिकअयवोगीदोमें  
मिष्वात्त्वकी जपम्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्पत्त्व और सम्पग्मिष्वात्त्वकी स्थिति क्या  
जपम्य है वा अजपम्य ? नियमसे अजपम्य है, जो जपम्य स्थितिसे असंस्पातगुणी है । बारह  
क्काय और नौ नोक्यायोंकी स्थिति क्या जपम्य होती है वा अजपम्य ? निरुमसे अजपम्य होती  
है, जो जपम्य स्थितिसे संस्पातगुणी हाठी है । सम्पत्त्वकी जपम्य स्थितिविभक्तिके धारक  
जीवके मिष्वात्त्व, बारह क्काय और नौ नोक्यायोंकी स्थिति क्या जपम्य हाठी है वा अजपम्य ?  
नियमसे अजपम्य होती है, जो जपम्य स्थितिसे संस्पातगुणी होती है । सम्पग्मिष्वात्त्व और  
अन्तलावुवन्धी वतुष्ककी स्थिति क्या जपम्य होती है वा अजपम्य ? निरुमसे अजपम्य होती  
है जो जपम्य स्थितिसे असंस्पातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्पग्मिष्वात्त्वकी जपम्य  
स्थितिविभक्तिके धारक जीवके समिकर्म्म जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके  
सम्पत्त्व प्रकृति नहीं होती है । अन्तलावुवन्धी क्कायकी जपम्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके  
सम्पत्त्व और सम्पग्मिष्वात्त्वकी स्थिति क्या जपम्य हाठी है वा अजपम्य ? निरुमसे अजपम्य  
हाठी है, वा जपम्य स्थितिसे असंस्पातगुणी होती है । मिष्वात्त्व, बारह क्काय और नौ  
नोक्यायोंकी स्थिति क्या जपम्य होती है वा अजपम्य ? नियमसे अजपम्य हाठी है, वा  
जपम्य स्थितिसे संस्पातगुणी हाठी है । अन्तलावुवन्धी मात्र अरि तीन क्कायोंकी स्थिति क्या

पल्लिदो० असखे०भागवभहिया । णवरि भय-दुगुंछाओ तिहाणपदिदा । सम्मत्त-  
सम्मामि० एइदियभंगो । सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० तिहाणपदिदा  
असखे०भागवभहिया सखे०भागवभ० संखे०गुणवभहिया वा । एवं सोलसकसाय-भय-  
दुगुंछाणं । णवरि भयजह० दुगुं० किं० ज० [ अजह० ] ? अजह० त तु समयुत्तरमादिं  
कादूण जाव पल्लिदो० असखे०भागवभ० । एवं दुगुं० । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो ।  
इत्थि० ज०विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक० किं० जह० अजहण्णा ? णि० अज० संखे०  
भागवभहिया । अट्ठणोक० किं० ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणवभहिया ।  
सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-  
सोलसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० इत्थिवेदभंगो । सम्मत्त-सम्मामि०  
एइदियभंगो । हस्सरदि० किं० ज० अजह० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असखे०भाग-  
वभहिया सखे० गुणवभहिया वा । हस्सज० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-  
अरदि-सोग-भय-दुगुंछ०-सम्मत्त०-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो । इत्थि-पुरिस० किं० ज०  
अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असखे०भागवभहिया संखे०गुणवभहिया वा । रदि०

लेकर पत्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असख्यातवें भाग अधिक, मख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती हैं । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितियालेके जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । इसी प्रकार जुगुप्साके विषयमें जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यत्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातवें भाग अधिक होती है । आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो

वह० द्विदिवि० मिच्छत्-वारसक०-णषणोक्त० किं ज० अज० ? णि० अज० संले  
 गुणा । तिञ्जि कसाय० शियमा वृहण्णा । एवं सिर्णं कसायाख्यं । इत्थि० अ० विह  
 मिच्छत्-सोक्तसक० अट्टणोक्त० किं ज० अज० ? णि० अज० संख० गुणा । सम्म  
 सम्मामि० सिपा मत्वि सिपा एत्तिव । अइ अतिव किं ज० अज० ? जइएणा म  
 इएणा वा । वृहण्णादो अजइएणा वेढाणपदिदा संले० गुणा असले० गुणा वा । एन  
 सम्म० अ० एत्तिव । एवं पुरिस० । पयु० स० अ० वि० मिच्छत्-सोक्तसक०-एणोष  
 किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्-सम्मामि० इत्थियमंगा । इत्स-रति  
 किं अ० अज० ? णि० अज० विद्याणपदिदा अत्सले० मागम्महिया संखे० गुणा वा  
 इत्स० अइ० विह० मिच्छत्-सोक्तसक०-यषणोक्त० किं ज० अज० ? णि० अज  
 संखे० गुणा । सम्मत्-सम्मामि० इत्थि० मंगा । इत्थि पुरिस० किं ज० अज० ? णि  
 अज० विद्याणपदिदा अत्सले० माग० महिया संखे० गुणा वा । रदि० किं म अज०  
 णि० अ० । एव रदीए । एवं चैव अरदि-सोगाणं । णवरि पयुस० वेढाणपदिदा ।

भारत का एक मिथ्या है, भारत क्या और नौ नाक्याओंकी स्थाप कया जपम्य हाता है  
 अजपम्य ? नियमसे अजपम्य हाती है । जो अपनी जपम्य स्थितिसे संस्मातगुणी होती है ।  
 (सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका मंग मिथ्यात्वके समान जानना) । तथा अनन्तानुकरणी मान आ  
 तीन क्याओंकी स्थिति नियमसे अजपम्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुकरणा मान आत्त त  
 क्याओंकी जपम्य स्थितिपिमच्छिके भारत बीबके सन्निकर्य जानना चाहिये । स्त्रीवैदकी जप  
 स्थितिपिमच्छिके भारत बीबके मिथ्यात्व, सोलह क्याय और आठ मोक्षयोंकी स्थिति क  
 जपम्य होती है या अजपम्य ? निममसे अजपम्य हाती है, जा जपम्य स्थितिसे संस्मातगु  
 होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व क्याचित हैं और क्यापित नहीं हैं । यदि हैं तो इन  
 स्थात क्या जपम्य हाती है या अजपम्य ? जपम्य मी होती है और अजपम्य मा । उनमें  
 अजपम्य स्थिति अपनी जपम्य स्थितिकी अपका संस्मातगुणी अधिक वा असंस्मातगुणी अधि  
 इस प्रकार दो स्थान पठित हाती है । किन्तु विशेषता इतना है कि इसके सम्यक्त्वकी जप  
 स्थिति नहीं हाती है । इसी प्रकार पुरुषवैद। वाके सन्निकर्य जानना चाहिये । नपुंसकवैदकी जप  
 स्थितिपिमच्छिके भारत बीबके मिथ्यात्व सातह क्याय और दूह नाक्याओंकी स्थिति क्या जप  
 होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य हाता है । जो अपनी जपम्य स्थितिसे संस्मातगु  
 होती है । सम्यक्त्व आर सम्यग्मिथ्यात्वका मंग स्त्रीवैदके समान है । हास्य आर उठिके स्थि  
 क्या जपम्य हाती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य हाती है, जा अपनी जपम्य स्थिति  
 असंस्मातवें मंग अधिक वा संस्मातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्थान पठित हाती है । हास्य  
 जपम्य स्थितिपिमच्छिके भारत बीबके मिथ्यात्व, सातह क्याय और पांच नाक्याओंकी स्थि  
 क्या जपम्य हाता है या अजपम्य ? निममसे अजपम्य हाती है जो अपनी जपम्य स्थिति  
 संस्मातगुणा हाती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका मंग स्त्रीवैदके समान है । स्त्रीवैद में  
 पुरुषवैदकी स्थिति क्या जपम्य हाती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य हाती है, जा अप  
 जपम्य स्थितिसे असंस्मातवें मंग अधिक वा संस्मातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्थान पठि  
 होती है । उठिकी स्थिति क्या जपम्य हाती है या अजपम्य ? नियमसे जपम्य हाती है । इस  
 प्रकार उठिकी जपम्य स्थितिपिमच्छिके भारत बीबके सन्निकर्य जानना चाहिये । तथा इसी प्रक

णि० जहं० । एवं तिहं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोधज० विहत्ति० एक्कारसक०-  
णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं ।

§ ८५८ वेउच्चियमिस्स० मिच्छत्त० ज०विह० वारसक०-णवणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्भत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज०  
असंखे०गुणा । सम्भत्तज० विह० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि०  
अज० विहाणपदिदा असंखे०भागवभहिया सखे०गुणा वा । सम्मामि० ज० वि०  
मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुञ्छ० किं० ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सत्त-  
णोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा जहण्णादो अजहण्णा तिहाणपदिदा  
असंखे०भागवभहिया सखे० भागवभ० संखे०गुणा वा । अपच्चक्खाणकोध० ज०  
वि० एक्कारसक०-भय-दुगुञ्छ० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । सत्तणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । एवमेक्कारसकसाय-भय-दुगुञ्छाणं । अणताणु० कोध०-

जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी मान आदि  
तीन कषायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण  
क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह  
कषाय और नौ नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है ।  
इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५८ वैक्रियकमिभ्रकाययोगियोमे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके  
वारह कषाय और नौ नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य  
होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य हाती है । जा जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी  
होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय और नौ नोकषायोकी  
स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग  
अधिक या सख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती  
है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जा जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सात  
नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य । जघन्य भी होती है और अजघन्य भी ।  
उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असख्यातवें भाग अधिक, सख्यातवें  
भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अप्रत्याख्यानावरण  
क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय, भय  
और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । सात  
नोकषायोकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य  
स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुवन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

पुरिस० एवं चेव । एषरि पुरिस० ज० वि० चत्वारिक० किं ज० अम० ? णि०  
 अहणा । एवं चदुसं संज्ञकणान् । छण्णोक० पुरिस० चदुसम० णि० अम०  
 संखे०गुणा ।

१८६१ अत्रगदमिच्छसञ्ज० वि० सम्पत्त-सम्माभि० किं म० अम० ? णि०  
 अहणा । अहकसाय० इत्थि-णवुस० किं ज० अम० ? णि० अम० संखे०गुणा ।  
 चदुसंज०-सत्तणोक० किं म० अम० ? णि० अम० असंखे०गुणा । एवं सम्म०  
 सम्माभि० । अपयनस्वाणकोपज० वि० मिच्छस-सम्पत्त-सम्माभि० णत्थि ? सत्तक०  
 इत्थि-णवुस० किं अम० ? णि० अहणा । चत्वारिसंखल०-सत्तणोक० किं ज०  
 अम० ? णि० अम० असंखे०गुणा । एवं सत्तकसायणं । इत्थि म० वि० चत्वारि  
 संन-सत्तणोक० किं ज० अज० ? णि० अम० असंखे०गुणा । अहक० णवुस०  
 णि० अहणा । एवं णवुस० । सत्तणोक० चत्वारिसंज्ञकणानामोपं ।

नपुंसकश्रेणी ज्ञाप्य स्थितिविमलिके धारक जीवके आठ नोकपाय और चार संवत्सनोंकी स्थिति  
 नियमसे अज्ञाप्य होती है जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार  
 मपुंसकश्रेणी जीवके ज्ञानना चाहिये । पुरुषश्रेणी जीवके भी इसी प्रकार ज्ञानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विवेकता है कि पुरुषश्रेणी ज्ञाप्य स्थितिविमलिके धारक जीवके चार संवत्सलन करायोंकी स्थिति  
 क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य हाती है । इसी प्रकार चार संवत्सनोंकी  
 ज्ञाप्य स्थितिविमलिके धारक जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । छह नोकपायोंकी ज्ञाप्य स्थिति  
 विमलिके धारक जीवके पुरुषश्रेणी और चार संवत्सनोंकी स्थिति नियमसे अज्ञाप्य होती है या  
 ज्ञाप्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।

१८६१ अपगतवेरियोंमें मिध्यात्वकी ज्ञाप्य स्थितिविमलिके धारक जीवके सम्यक्त्व  
 सम्पत्तिमिध्यात्वकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य होती है । आठ  
 कपाय, स्त्रीश्रेणी और नपुंसकश्रेणी स्थिति क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य  
 हाती है या ज्ञाप्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । चार संवत्सलन और सात नोकपायोंका स्थिति  
 क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है । या ज्ञाप्य स्थितिसे असंख्यात-  
 गुणी होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वकी ज्ञाप्य स्थितिविमलिके धारक  
 जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । अप्रत्याक्यान श्लेषकी ज्ञाप्य स्थितिविमलिके धारक जीवके  
 मिध्यात्व, सम्यक्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्व ध तीन प्रकृतियों नहीं हैं । सात कपाय, स्त्रीश्रेणी और  
 नपुंसकश्रेणी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य होती है । चार संवत्सलन  
 और सात नोकपायोंकी स्थिति क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है  
 जो ज्ञाप्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सात कपायोंकी ज्ञाप्य स्थिति  
 विमलिके धारक जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । स्त्रीश्रेणी ज्ञाप्य स्थिति विमलिके धारक  
 जीवके चार संवत्सलन और सात नोकपायोंकी स्थिति क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ?  
 नियमसे अज्ञाप्य होती है जो ज्ञाप्य स्थितिसे असंख्यातगुणा हाती है । आठ कपाय चार  
 मपुंसकश्रेणी स्थिति नियमसे ज्ञाप्य हाती है । इसी प्रकार नपुंसकश्रेणी ज्ञाप्य स्थितिविमलिके  
 धारक जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । सात नोकपाय और चार संवत्सनोंकी ज्ञाप्य स्थिति  
 विमलिके धारक जीवके आपक समान ज्ञानना चाहिये ।



§ ८५६. आहार० मिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । एवं सम्मत्त-सम्मामि० । अणंताणु० कोधज० मिच्छत्त-सम्मत्त सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कमायाणं । अपचक्खाणकोधज० वि० एकारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एकमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं । एवमाहारमि० । कम्मइय० ओरालियमिस्सभंगो । णवरि सत्तणोक० अण्णदरज० मिच्छ० सोलसक० सेसणोक० णिय० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे० भागव्वहिया संखे० गुणव्वहिया ।

§ ८६०. वेदाणुमादेण इत्थि० पंचिंदियभंगो । णवरि इत्थि० ज० वि० सत्तणोक०-चत्तारि संज० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सत्तणोकसाय-चत्तारिसंजलणाणं । एवुंस० जह० विह० अट्ठणोक०-चटुसज० णि० अज० असंखे० गुणा । एवं एवुंसं, अरति और शाककी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुसकवेदकी स्थिति दो स्थान पतित होती है ।

§ ८५६ आहारक काययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुवन्धी क्रोवनी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । अनन्तानुवन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अपत्याख्यानारण काधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जावक ग्यारह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । इसी प्रकार ग्यारह कपाय और नौ नाकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जावके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । कामणकाययोगियोंके आहारकमिश्रकाययोगियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नाकपायोंमेंसे विसा भा प्रवृत्तिकी जघन्य स्थितिवाले मिथ्यात्व, सोलह कपाय और शेष नौ कपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है ।

§ ८६०. वेद माणणके अनुवादसे म्त्रीवेदियोंका भग पंचेन्द्रशोक समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तियाल जीवके सात नाकपाय और चार संख्यलनायी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । इसी प्रकार सात नाकपाय और चार संख्यलनायी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।



§ ८६२, कसायाणुवादेण कोध० पंचिदियभंगो । णवरि कोध० ज० वि० तिण्णि-  
सज० किं ज० अज० ? णिं० जहण्णा । एवं तिण्ह संजलणाणं । एव माण० । णवरि  
दोण्णि० संजल० णि० जहण्णा ? एव माय० । णवरि एगसंज० णियमा जहण्णा ।

§ ८६३, अकसा० मिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि०  
जहण्णा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । एवं  
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । अपच्चक्वाणकोधज० वि० एकारसक०-णवणोक० किं ज०  
अज० ? णि० जहण्णा । एवमेकारसक०-णवणोकसायाणं । एवं सुहुमसांपराय-जहा-  
क्वादाणं । णवरि सुहुम० लोभसंज० जह० वि० सेसं णत्थि । सेस० जह० लोभसंज०  
णिय० अज० असंखे० गुणा ।

§ ८६४, णाणाणुवादेण मदिमुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० चउक०  
मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । एवमभवसि० मिच्छायिद्वि०-असणी० ।  
णवरि अभवसिद्धिएसु सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । विहंग० मिच्छत्त ज० वि० सोलसक०-

§ ८६२ कपाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधी जीवका पचेन्द्रियोंके समान भग है। किन्तु  
इतनी विशेषता है कि क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलनोंकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वलनों-  
की जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार मानी जीवके  
जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके माया आदि दो संज्वलनोंकी स्थिति नियमसे  
जघन्य होती है। इसी प्रकार मायो जीवके जानना चाहिये; किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके  
लोभ सज्वलनकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है।

§ ८६३ कपायरहित जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है।  
वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य  
होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य  
स्थितिविभक्तिके धारक जीवके शेष ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती  
है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी  
जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्म सापरायिक  
सयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसापराय  
गुणस्थानमें लोभ सज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष प्रकृतियों नहीं हैं। तथा शेष  
प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके लोभसज्वलनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती  
है जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है।

§ ८६४ ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्त्यज्ञानी जीवोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान कथन  
जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान  
है तथा सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अभव्य, मिथ्यादृष्टि और  
असज्जी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतिया नहीं हैं। विभग ज्ञानियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके



सम्मत्तभंगो । अणंताणु०कोध० जह० टंसणतिय-तिण्णकसा० ओघं । सेसं मिच्छत्त-  
भंगो । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चरवाणकोध० ज० वि० एवारसक०-णवणोक० किं  
ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेवारसक० णवणोकसायाणं । एवं संजटासंजटाणं ।

§ ८६७. असंजद० मिच्छत्त० ज० वि० सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अज० । णि०  
अज० असंखे०गुणा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा ।  
सम्मत्त० ज० वि० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखेज्जगुणा ।  
सम्मामि० ज० वि० सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि  
अत्थि णि० असंखे०गुणा । वारसक० णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा  
वा । जहण्णादो अज० तिहाणपदिदा । सेसं तिरिक्खोघ । णवरि मिच्छत्त० अणंताणु०  
चउक्क०भंगो ।

§ ८६८ किण्ह-णील-काउ० तिरिक्खोघ । णवरि किण्ह-णील्लेस्सासु सम्मत्त०-  
सम्मामिच्छत्तभंगो । तेउ०-पम्म०परिहार०भंगो । णवरि सम्मामि० ओघं ।

अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होनी है । शेष प्रकृतियोंका भग सम्यक्त्वके समान है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंका कथन ओघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार सयतासंयतोंके जानना चाहिये ।

§ ८६९ असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपना जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे तीन स्थान पतित होती है । शेष कथन सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका भग अनन्तानुबन्धी चतुष्कके समान है ।

§ ८६८ कृष्ण नील और कापोत लेश्यावालोंके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्याओंमें सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पीत और पद्मलेश्यावालोंमें परिहार विशुद्धिसयतोंके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भग ओघके समान है ।

§ ८६६ स्वइयसम्मा० एकवीसपयदीगमोर्ष । वेदप० मिच्छत्-सम्मापि०  
 अर्णताणु० चउक्ताणं परिहारमंगो । सम्मच० न० वि० वारसक० जवणोक्क० किं न०  
 अन्न० ? जहण्णा अनहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेहाणपदिदा । अपन्नकत्ता०  
 कोषन्न० वि० सम्मच० किं न० अन्न० ? णि० जहण्णा । एवमेवकारसक०-गवणोक्क  
 सायार्णं जहण्णत्तं पत्तव्वं । एवमेवकारसक०-गवणोक्कसायार्णं । उवसपसम्मा० मिच्छत्-  
 न० वि० सम्मच०-सम्मापि०-वारसक०-गवणोक्क० किं न० अन्न० ? णि० जहण्णा ।  
 एवं सम्मच-सम्मापि०-वारसक०-गवणोक्क० । अर्णताणु० कोष० न० वि० मिच्छत्  
 सम्मच-सम्मापि०-वारसक०-जवणोक्क० किं न० अन्न० ? णि० अन्न० सत्से० गुणा ।  
 तिष्णिक० किं न० अन्न० ? णि० जहण्णा । एवं तिष्णं कसायार्णं । एवं सासपसम्मा  
 विदीर्णं । पवरि अर्णताणु० चउक्क० मिच्छत्तमंगो ।

§ ८७० सम्मामिच्छाद्दी० मिच्छत्तजह० सम्म०-सम्मापि० णि० अन्न०  
 सत्से० गुणा । सेसं गियमा जह० । गवरि अर्णताणु० चउक्कं गतिम् । एवं वारसक०-

§ ८६६ वायिकसम्बन्धित्त्वोर्षे इषीस प्रकृतयोका मंग ओषधे समान है । वेदक  
 सम्बन्धित्त्वोर्षे मिथ्यात्व, सम्बन्धित्त्वोर्षे और अनन्तलुब्धकी वस्तुच्छन्न मंग परिहारविष्णुसिद्धिबर्तके  
 समान है । सम्बन्धित्त्वोर्षे अपन्य स्थितिविभक्तिबाले बीबक वारह कपाय और नौ नाक्यायोकी स्थिति  
 क्या अपन्य हाती है वा अन्नपन्य ? अपन्य मी हाती है और अन्नपन्य मी । तन्मसे अन्नपन्य  
 स्थिति अपन्य स्थितिसे दो स्वानपवित्त होती है । अन्नपन्यस्वानावरण ओषधी अपन्य स्थिति-  
 विभक्तिबाले बीबके सम्बन्धित्त्वोर्षे स्थिति क्या अपन्य हाती है वा अन्नपन्य ? नियमसे अपन्य हाती  
 है । इसी प्रकार ग्याह कपाय और नौ नाक्यायोका स्थिति अपन्य कइना चाहिये ।  
 इसी प्रकार अन्नपन्यस्वानावरण मान आह ग्याह कपाय और नौ नाक्यायोकी अपन्य  
 स्थितिबिभक्तिबाले बाबाके सन्निकय जानना चाहिये । अपन्य सम्बन्धित्त्वोर्षे मिथ्यात्वकी  
 अपन्य स्थितिबिभक्तिबाले बीबके सम्बन्धित्त्व, सम्बन्धित्त्वोर्षे, वारह कपाय और नौ नाक्यायोका  
 स्थिति क्या अपन्य हाती है वा अन्नपन्य ? नियमसे अपन्य हाती है । इसी प्रकार सम्बन्धित्त्व  
 सम्बन्धित्त्वोर्षे, वारह कपाय और नौ नाक्यायोकी अपन्य स्थितिबिभक्तिबाले बीबके सन्निकय  
 जानना चाहिये । अनन्तलुब्धकी कायका अपन्य स्थितिबिभक्तिबाले बीबके मिथ्यात्व, सम्बन्धित्त्व,  
 सम्बन्धित्त्वोर्षे, वारह कपाय और नौ नाक्यायोकी स्थिति क्या अपन्य हाती है वा अन्नपन्य ?  
 नियमसे अन्नपन्य हाती है जो अपन्य स्थितिसे संख्यातगुण्य होती है । अनन्तलुब्धकी मान  
 आदि तीन कपायोका स्थिति क्या अपन्य हाता है वा अन्नपन्य ? नियमसे अपन्य हाती है । इसी  
 प्रकार अनन्तलुब्धकी मान आदि तीन कपायोका अपन्य स्थितिबाले बीबके सन्निकय जानना  
 चाहिये । इसी प्रकार सासपसम्बन्धित्त्व बाबाके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि  
 अनन्तलुब्धकी वस्तुच्छन्न मंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ८७० सम्बन्धित्त्वोर्षे मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिबिभक्तिबाले बीबके सम्बन्धित्त्व  
 और सम्बन्धित्त्वोर्षे स्थिति नियमसे अन्नपन्य हाती है जो अपन्य स्थितिसे संख्यातगुण्य  
 हाती है । तथा ओष प्रकृतयोकी स्थिति नियमसे अपन्य हाती है किन्तु इतनी विवेचना है कि  
 इसके अनन्तलुब्धकी वस्तुच्छन्न मंगी है । इसी प्रकार वारह कपाय और नौ नाक्यायोकी अपन्य

णवणोक० । अणंताणु० कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक०  
णिय० अज० असंखेज्जगुणा<sup>१</sup> । तिण्णि कमा० णिय० जहण्णा । एवं तिण्णं कसायाण ।  
सम्म० जह० द्विदिविह० सम्मामि० णिय० जह० । सेसमव्व० णिय० अज० संखे०-  
गुणा । एवं सम्मामि० । अणाहाराणं कम्मइयभगो ।

एवं सण्णियासो समत्तो ।

❀ [ अप्पावहुअं । ]

§ ८७१. अप्पावहुअं दुमिहं द्विद्विअप्पावहुअ जीअप्पावहुअ चेदि । तत्थ द्विदि-  
अप्पावहुअं वत्तइस्सामो ।

❀ सव्वत्थोवा णवणोकसायाणमुक्कस्सद्विदिविहृती ।

§ ८७२. कुदो ? वंधावलियूणचत्तालीस-सागरोवमकोडाकोडि<sup>१</sup>पमाणत्तादो । किमठ-  
बंधावलियाए ऊणा ? ण, वद्धसमए चेव कसायुक्कस्सद्विदीए णोकसायाणमुगि संकम-  
णसत्तिविरोहादो । तं पि कुदो ? साहावियादो । ण च सहापो परपडि<sup>२</sup>जोयणारुहो,

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नारुपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । तथा तीन उपायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । तथा शेष सब प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनाहारकोंके कार्मणकाययोगियोंके समान भग है ।

इस प्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

\* अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८७१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थिति अल्पबहुत्व और जीव अल्पबहुत्व । उनमेंसे स्थितिअल्पबहुत्वको बतलाते हैं—

\* नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७२ क्योंकि नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण बन्धावलि कम चालीस कोड़ा-काड़ी सागर है ।

शंका—इसे एक बन्धावलिप्रमाण कम किसलिये किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्ध होनेके पहले समयमें ही कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें नौ नोकषायरूपसे संक्रमण होनेकी शक्ति माननेमें विरोध आता है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव दूसरेकी प्रकृतिके अनुरूप होता नहीं,

१. ता० प्रती 'सखे०गुणा' इति पाठ । २ ता० प्रती 'कोडीओ' इति पाठ । ३ आ० प्रती 'परपडि' इति पाठ ।

अप्यसगादो ।

⊗ सोखसकसापाबमुक्स्तद्विदिविहरी बिसेसाहिया ।

§ ८७३ बंपाबक्षियमेचेण ।

⊗ सम्मामिच्छुस्तस्स उक्स्तद्विदिविहरी बिसेसाहिया ।

§ ८७४ केतियमेचेण ? अंतामुद्दुत्तुतासमागतोन्नमकाढाकोडोमेराण ।

⊗ सम्मतस्स उक्स्तद्विदिविहरी बिसे० ।

§ ८७५ के० मेचेण ? एगुदयमित्तेगद्विदियेचेण । सुण्णसुत्ते अइपसाहुरियो

कमिह वि कासपहाणं कादूण द्विदिवण्णं कुणदि पिच्छत्तस्स संपुण्णसत्तरिसागरो-  
पपकोडाकोडिद्विदियरूपादो । कमिह वि गित्तेगपहाणं कादूण वण्णं कुणदि; सम्म  
पुक्स्तद्विदि पेक्खिदूण सम्मामिच्छुक्स्तद्विदीए वेण्णत्तपत्तुत्तादो, अण्णोक्साय  
अइण्णद्विदीए अठोमुद्दुत्तपेत्तावहाणपत्तुत्तादो च । उच्चारणाहुरियो वि कमिह वि  
कासपहाणं कादूण द्विदिवण्णं कुणदि; सम्मतजइण्णद्विदि पेक्खिदूण पिच्छत्तअइण्ण  
द्विदीए सत्तेअरुणत्तपत्तुत्तादो । कमिह वि पिसमपहाणं कादूण वण्णं कुणदि; अणु

अम्बवा अतिप्रसंग दाव आता ह ।

⊗ नां नोक्कापयोकी उत्कट स्थितिसे सोखह कयायोकी उत्कट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७३ नो नोक्कापयोकी उत्कट स्थितिसे सोखह कयायोकी उत्कट स्थिति एक कयावक्ति अल प्रमाय अधिक है ।

⊗ सोखह कयायोकी उत्कट स्थितिसे सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७४ श्रुंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—अणुमुद्दुत्तं कम तोस कोडाकोकी सागर अधिक है ।

⊗ सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७५ श्रुंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक कय निक्केका स्मित्तप्रमाय अधिक है ।

श्रुंका—अर्थिसूत्रमें यत्तियुपम आभाव कही अलकी प्रमानता करके स्थितिका पयान करते हैं उसे मिध्यात्वको उत्कट स्थिति वा अतर काडाकोकी सागरप्रमाय कही है वह अलकी प्रमानतासे कही है । कही निक्केका प्रमान करके स्थितिका अर्थेन करते हैं, अत सम्यक्त्वकी उत्कट स्थितिका देखते हुए सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कट स्थिति वा दर्शन कही है और वह नोक्कापयोकी अपम्य स्थितिकी वा अन्तमुद्दुत्तप्रमाय अथस्थिति कही है वह नियकोकी प्रमानतासे ही कही है । इसी प्रकार अवारणाचार्य भी कही अलका प्रमान करके स्थितिका अर्थेन करते हैं वैसे सम्यक्त्वकी अपम्य स्थितिकी अलत्त हुए वा मिध्यात्वकी अपम्य स्थिति संख्यातगुकी कही



दिसामु मिच्छत्तद्विदिं पेक्खिदूण सम्मत्तुकस्सद्विदीए विसेसाहियत्तपरूवणादो । तदो एदेसिं दोण्हमाइरियाणमहिप्पाओ दुरवगमो च्चि ? ण; णिसंगेहिंतो कालस्स अभेद-  
प्पहाणा परूवणा भेदप्पणाए कालपहाणा च्चि दोसाभावादो । किमदं गुणपहाणभावेण  
परूवणा कीरटे ? कारणंतरावेस्खाए दुविहणयमस्सिदूणाद्विदिसिस्साणुग्गहदं वा ।

❖ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७६, के० मेत्तेण ? अतोमुहुत्तेण ।

❖ णिरयगदीए सव्वत्थोवा इत्थिवेदपुरिसवेदाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती ।

§ ८७७, कुटो ? तत्थेदेसिमुदयाभावेणुदयणिसेगस्स एणुंसयवेदसरूवेण त्थि-  
उक्कसंकमेण गमणादो ।

❖ सेसाणं णोकसायाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती विससाहिया ।

§ ८७८, केत्तिएण ? एणुदयणिसेगेण ।

हैं वह कालकी प्रधानतासे ही कही है । कहीं निपेकोंको प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे अनुदिश आदिमें मिथ्यात्वकी स्थितिको देखते हुए जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक कहीं है वह निपेकोंकी प्रधानतासे ही कही है इससे मालूम होता है कि इन दोनों आचार्योंका अभिप्राय दुरवगम है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि जहा निपेकोंकी अपेक्षा प्ररूपणा की है वहा निपेकोंसे कालके अभेदकी प्रधानता करके प्ररूपणा की है और जहा भेदकी विवक्षासे प्ररूपणा की है वहां कालकी प्रधानतासे प्ररूपणा की है, इसलिये कोई दोष नहीं है ।

**शंका**—इस प्रकार गौण मुख्यभावसे प्ररूपणा किसलिये की जाती है ?

**समाधान**—भिन्न भिन्न कारणोंकी अपेक्षासे अथवा द्रव्याधिक और पर्यायार्थिक नवोंका आश्रय लेनेवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये गौण मुख्यभावसे प्ररूपणा की जाती है ।

\* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ?

§ ८७६ शंका—कितनी अधिक है ?

**समाधान**—अन्तर्मुहूर्त अधिक है ।

\* नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७७ शंका—नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सबसे थोड़ी क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि वहा पर इन दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है अतः इनका उदय-निषेक स्तवुकसक्रमणके द्वारा नपुंसकवेदरूपसे परिणत हो जाता है ।

\* स्त्रीवेद और पुदुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे शेष नोकचार्योंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७८, शंका—कितनी अधिक है ?

**समाधान**—एक उदय निषेकप्रमाण अधिक है ।

⊗ सोलसयह कसायाणमुभक्तस्सद्विदिविहृत्पी विसेसाहिया ।

§ ८७६ केचिएण, वंधारसियाए ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्स उक्त्तस्सद्विदिविहृत्पी विसेसाहिया ।

§ ८८० केचियमेचो विसेसो पि ? तीसं सागरोवमकोवाकोदीभो मंठो सुदुष्साभो ।

⊗ सम्मतस्स उक्त्तस्सद्विदिविहृत्पी विसेसाहिया ।

§ ८८१ केचिएण; एगुदयणिसेगेण ।

⊗ मिच्छत्तस्स उक्त्तस्सद्विदिविहृत्पी विसेसाहिया ।

§ ८८२ के० ? मंठीसुदुत्तेण ।

⊗ सेसासु गवीसु येवब्भो ।

§ ८८३ पवेणेत्तसि सुत्ताणं देसामासियत्तं आखाविदं, वेण सुप्पिणुत्तच्चनि

दाणमत्थायमुत्तारणमस्सिदूण परूवणं कस्सामो ।

⊙ शेष नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८६ शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक सम्भावति काजममाय अधिक है ।

⊙ सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८० शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ।

समाधान—विशेषका प्रमाण अमृतमुहूर्त कम तीस कोवल्कोही मागर है ।

⊙ सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८१ शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक वदमनिपेक्ष्यमाण अधिक है ।

⊙ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८८२ शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—अमृतमुहूर्त अधिक है ।

⊙ इसी प्रकार शेष गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ८८३ पूर्वोक्त ममी स्य देसामर्पक है यह इस सूत्रसे ज्ञात किया है, अतः पूर्विसूत्रम सुचित होनेका अर्थोक्त उच्चारणात्त आशय लेकर बर्तन करत है—

§ ८८४ द्विद्विअप्पावहुअं दुविहं—जहणणमुक्कसं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य ? तत्थ ओघेण सञ्चत्थोवा एवणोक्कं उक्कस्सद्विदिविहत्ती । सोलसकं उक्कं विहत्ती विसे । सम्मत्त-सम्मामिं उक्कं विसेसां । मिच्छत्तं उक्कं विसेसां । एवं सत्तसु पुढवीसु । तिरिक्खगइच्च उक्कं-गणुसतियं-देवगईं-भवणादि जाव सहस्सारं-पंचिदिय-पंचिंपज्जं-तस-तसपज्जं-पचमणं-पंचवचिं-कायजोगिं-ओरालिं-वेउच्चिं-तिण्णिवेद-चत्तारिकं-असंजदं-चक्खुं-अचक्खुं-पचलें-भवसिद्धिं-सण्णिं-आहारए त्ति ।

§ ८८५, पंचिं तिरिं अपज्जं सञ्चत्थोवा सोलसकं-णवणोक्कं उक्कं द्विद्वि विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामिं उक्कं द्विद्वि विहत्ती विसे । मिच्छत्तुक्कं द्विद्वि विहत्ती विसे । एवं मणुसअपज्जं-वादरेइंदिय अपज्जं-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-मव्वविग-लंदिय-पंचिंदिय अपज्जं-वादरपुढविंअपज्जं-सुहुमपुढविं-पज्जत्तापज्जत्त-वादरआउं अपज्जं-सुहुमआउं पज्जत्तापज्जत्त-तेउं वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-वाउं वादरसुहुम-

§ ८८४ स्थिति अल्पवहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहल यहा उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दां प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सत्रसे थोडी है । सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यचगतिसमें सामान्य, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियक्रकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, असयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि पाच लेश्यावाले, भव्य, सही, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८५ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोडी है । इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, वादर जलकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोदवनस्पति, वादर

१. ता० प्रती 'विहत्ती [ विसेसाहिया ] । सोलसकं' इति पाठः ।

पञ्जचापञ्जस वादरबणपफदिअपञ्ज० सुहुमवणपफदिपञ्जचापञ्जस गियोदबणपफदि वादरसुहुमपञ्जचापञ्जस-वादरबणपफदिपचेयसरीरअपञ्ज०-तस अपञ्जचेति ।

§ ८८६ आणदादि जाव उवरिमगेवम्भो ति सञ्चत्योवा सोससक०-णवणोक० उक्कस्सहिदिविहती । सम्मामि० उक्कस्सहिदिविहती विसे० । मिञ्चत्त-सम्मत्त० उक्क० हिदिवि० विसे० । एवं सुक्कत्तेस्ताए । णवरि सम्मत्तसुवरि मिञ्चत्त० उक्क० विसे० । मणुहिसादि आव० सम्बहसिदि ति सम्बत्योवा सोससक० णवणोक० उक्क० हिदिविहती । मिञ्चत्त-सम्मामि० उक्क० वि० विसे० । सम्मचुक्क० विह० विसे० । एवमाहार माहारमि०-आमिभि०-सुव० ओरि०-मणफञ्ज०-सज्जद०-सामाइयञ्जेदो०-परिहार० उज्जदासज्जद० ओरिदस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादिहिदि ।

§ ८८७ इदियाणु० एइदिवेसु सम्बत्योवा णवणोक० उक्क० हिदिविहती । सोससक० उक्क० वि० विमे० । सम्मत्त सम्मामि० उक्क० विहती विसे० । मिञ्चत्तुक्क० वि० विसे० । एवं वादरेइदिय-वादरेइदियपञ्जत्त पुडवि०-वादरपुडवि०-तप्पञ्ज०-यात्त०-वादरयात्त०-सप्पञ्ज०-वादरबणपफदिपचेय-तप्पञ्ज०-ओरासिपमिस्स०-येत्त० मिस्स-कम्म-इय-तिष्णिअण्णाण मिञ्चादिहि-असणि०-अणाहारए ति । एवमभसि० । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० पत्तिव ।

गिगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म गिगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८६ आनत कल्पसे लेकर उपरिम नैवयक तक बेधोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायों की उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित सबसे बड़ी है । इससे सम्मन्मिप्यात्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इससे मिप्यात्त्व और सम्मन्मत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इसी प्रकार सुक्कत्तेएवामे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्मन्मत्त्वके अनन्तर मिप्यात्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक होती है । अनुदिससे लेकर सर्वावसिद्धिकके बेधोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित सबसे बड़ी है । इससे मिप्यात्त्व और सम्मन्मिप्यात्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इससे सम्मन्मत्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इसी प्रकार आहारककामयोगी आहारकमिमअययोगी, मतिज्ञानी बुतज्ञानी, अक्षयिज्ञानी, अन्नप्रवैयज्ञानी, संवत्त, सामायिकसंवत्त जेहोपस्थापना संवत्त परिहारबिभुदिसंवत्त, संवत्तासंवत्त, अक्षयिदशनबाले सम्मन्मत्ति, और अक्षयसम्मन्मत्ति जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८७ इन्द्रिय मागणके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित सबसे बड़ी है । इससे सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इससे सम्मन्मत्त्व और सम्मन्मिप्यात्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इससे मिप्यात्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविर्मलित विशेष अधिक है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पयात्त, पृथिवीकायिक वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, अक्षयिकायिक वादर अक्षयिकायिक, वादर अक्षयिकायिक पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपयात्त, ओदारिक मिमअययोगी वैद्वियिअमिअययोगी, अमंसअययोगी तीनों अज्ञानी मिप्यात्ति अमंज्ञी और अगद्वारकोंके जानना चाहिये । तथा अमप्योके इसी प्रकार जानना । किन्तु इतने

§ ८८८. अवगद० सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिवि० विसे० । एव मृहुम०-जहाक्खाद० अकसायित्ति ।

§ ८८९. खइए णत्थि अप्पावद्दुगं; वारसक०-णवणोक०-उक्क० द्विदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिविहत्ती विसे० । एवं सासण० । सम्मामि० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिविहत्ती । सम्मत्त० उक्कद्विदिविहत्ती विसे० । सम्मामि० उक्क० द्विदिवि० विसे० । मिच्छत्तउक्क० विसे० ।

एवमुक्कसप्पावहुआणुगमो समत्तो ।

§ ८९०. जहण्णए पयटं । दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसे० । ओघेण सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि०-णवुंस०-लोभसंज० जहण्णद्विदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक० जहण्णद्विदिविहत्ती सखे० गुणा । मायासंज० जह० द्विदिवि० असंखे० गुणा । माण-संजल० जह० द्विदिविह० संखे० गुणा । कोधजह० द्विदिवि० सखे० गुणा । पुरिसजह० द्विदि० विह० संखेज्जगुणा । छण्णोक० जह० द्विदिवि० संखे० गुणा । एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-पंचिदिय-पचिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काय-सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिया नहीं हैं ।

§ ८८८. अपगत वेदियोंमें वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सरसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सूक्ष्मसापराधिक सयत, यथाख्यातसयत और अकपायी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ८८९. चायिक सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि इनके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थितिया समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ ८९०. अब जघन्य स्थिति अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सम्यक्त्व, स्त्रीवेद, नपुसकवेद और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस, पर्याप्त,

अग्नि० भोरासि०-सोमक०-आमिणि०-सुद०-भोहि०-संजद० चक्षु० अचक्षु०  
 भोरिदस०-सुक्कले०-मवसि०-सम्मादि०-सणि आहारए चि । गवरि मणुसपञ्ज०  
 क्षणोकसायाणमुवरि इस्विवेद० नह० असस्से०गुणा । मणुसिपी० कोधसंभवाणस्तुवरि  
 पुरिस०-क्षणोक्क० नह० द्विदिवि० संखे०गुणा । जभुंस० नह० द्विदिवि० असस्से०गुणा ।

१८९१ ओदेसेण णेरएण्डु सम्भत्थोवा सम्मच० नह० द्विदिवि० । सम्मामि०-  
 अणसाणु०चत्तक० नह० द्विदिवि० संस्सेगुणा । पुरिस० नह० द्विदिवि० असस्से०गुणा ।  
 इस्विअ० द्वि० विसेसा० । के० मेत्तेण ? पुरिसवेदबंधगद्धणित्यवेदबंधगद्धामेत्तेण ।  
 इस्स रदि० नह० द्वि० वि० विसे० । के० मेत्तेण ? अरदि-सोर्गबंधगद्धण पुरिसजभुं-  
 सपवेदबंधगद्धामेत्तेण । अरदि-सोर्ग० नहण्ण० द्विदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ? इस्स  
 रबंधगद्धापारिहीणसर्गबंधगद्धामेत्तेण । जभुंस० नह० द्विदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ?  
 इस्वि-पुरिसबंधगद्धणइस्स-रदिवबंधगद्धामेत्तेण । पारसक० मय-जुगुंधाण नह० द्विदिवि०  
 विसे० । मिक्कचत्त० द्विदिवि० विसे० ।

१८९२ एत्तुवचन्मत्तमदप्यावृत्तं वत्तइस्सामो । तं महा—सम्भत्थोवा पुरिस  
 बंधगद्धा २ । इस्विवेदबंधगद्धा संखे०गुणा ४ । इस्स-रदि-बंधगद्धा संस्से०गुणा १६ ।

पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, क्रययोगी औद्योगिक क्रययोगी सोम कथाधारा, मतिज्ञानी,  
 कृतज्ञानी अक्षिज्ञानी संवत् चतुर्वर्षान्तकाले अक्षयवृत्तकाले, अक्षयवृत्तकाले, दुष्कालकाले,  
 मध्य, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और अज्ञानक बीजोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विक्षेपता है कि  
 मनुष्य पर्याप्तकोंमें नह नोक्याकों ऊपर स्त्रीवेदकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी होती  
 है । मनुष्यनियोंमें कोषसंखलनके ऊपर पुरुषवेद और नह नोक्याओंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि  
 संख्यातगुणी होती है । इससे नपुंसकवेदकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी होती है ।

१८९१ आवेशनिर्वेशकी अपेक्षा नारदियोंमें सम्बन्धकी अपन्य स्थितिबिमर्षि सत्यसे  
 बोझी है ? इससे सम्बन्धियात्त और अनन्तागुणकी वतुष्पकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यात  
 गुणी है । इससे पुत्रवदकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इसमें स्त्रीवेदकी अपन्य  
 स्थितिबिमर्षि विशेष अधिक है । किन्तनी अधिक है ? पुरुषवेदके कर्मकालसे कम स्त्रीवेदके  
 कर्मक कालप्रमाण अधिक है । इससे हास्य और रतिकी अपन्य स्थितिबिमर्षि विशेष अधिक  
 है । किन्तनी अधिक है ? अरति और झोकके कर्मक कालसे कम पुरुषवेद और नपुंसकवेदके  
 कर्मक कालप्रमाण अधिक है । इससे अरति और झोककी अपन्य स्थितिबिमर्षि विशेष अधिक  
 है । किन्तनी अधिक है ? हास्य और रतिके कर्मक कालसे कम अपने कर्मक कालप्रमाण अधिक  
 है । इससे नपुंसकवेदकी अपन्य स्थितिबिमर्षि विशेष अधिक है । किन्तनी अधिक है ? स्त्रीवेद  
 और पुरुषवेदके कर्मकालसे कम हास्य और रतिके कर्मकाल प्रमाण अधिक है । इससे वाह  
 कयय भव और पुत्रुप्ताकी अपन्य स्थितिबिमर्षि विशेष अधिक है । इससे निष्कालकी अपन्य  
 स्थितिबिमर्षि विशेष अधिक है ।

१८९२ अब यहाँ प्रकृतमें वचनयोगी अस्पष्टत्वको बतलाते हैं । जो इस प्रकार है—  
 पुरुषवेदका कर्मकाल सत्यसे बोझा है जिसकी सहायनी २ है । इससे स्त्रीवेदका कर्म  
 काल संख्यातगुणा है जिसकी सहायनी ४ है । इससे हास्य और रतिके कर्मकाल संख्यात

अरदि-सोगबंधगद्धा संखे० गुणा ३२ । णवुंसयवेदबंधगद्धा विसे० ४२ । सगसगपडि-  
वक्खबंधगद्धाओ कसायजहण्णट्टिदीदो २०० सोहिदे सत्तणोकसायाणं जहण्णट्टिदीओ  
होति । तासिं पमाणमेदं—पुरिस० जहण्णट्टिदी एसा १५४ । इत्थि० जहण्ण०ट्टिदी  
१५६ । हस्स-रदिज० ट्टिदी १६८ । अरदि-सोगजहण्णट्टिदी १८४ । णवुंस०जह  
ट्टिदी १६४ । एसा उच्चारणप्पावहुअस्स संदिदी ।

§ ८६३. संपहि चिरंतणवक्खाणाइरियाणमप्पावहुअं वत्तइस्सामो । सव्वत्थोवा  
सम्मत्त० जह० द्विविहत्ती । सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० विहत्ति० संखे०  
गुणा । पुरिस० ज० विहत्ती असखे० गुणा । इत्थि० जह० विहत्ती विसे० । हस्स-  
रदि० ज० ट्टि० विह० विसे० । णवुंस० जह० वि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि०  
विसे० । भय-दुगुंझाणं ज० ट्टिदि० विसे० । वारसण्हं कसायाणं ज० ट्टि० वि० विसे० ।  
मिच्छत्त ज० ट्टि० वि० विसे० । एदस्स अप्पावहुअस्स साहण्हमद्धप्पावहुअं वत्तइ-  
स्सामो । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिस० बंधगद्धा ३ । इत्थि० बंधगद्धा संखे० गुणा  
६ । हस्स-रदिवंधगद्धा विसे० ११ । णवुंस० बंधगद्धा संखे० गुणा २२ । अरदि-सोग  
बंधगद्धा विसेसा० २३ । अप्पप्पणो पडिवक्खबंधगद्धाओ कसायजहण्णट्टिदीए २००

गुणा है जिसकी सहनानी ६ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी  
सहनानी ३२ है । इससे नपुसकवेदका बन्धकाल विशेष अधिक है इसकी सहनानी ४२ है । ऊपर  
जो अंक सट्टि दी है उसके अनुसार अपने-अपने प्रतिपच्च बन्धकालोंको कपायकी जघन्य स्थिति  
२०० मेंसे घटा देनेपर सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितियाँ होती हैं । उनका प्रमाण निम्न प्रकार  
है—पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति १५४ होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति १५६ होती है ।  
हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति १६८ होती है । अरति और शोककी जघन्य स्थिति १८४  
होती है । नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति १६४ होती है । यह उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये अल्प-  
बहुत्वकी सट्टि है ।

§ ८६३. अब चिरन्तन व्याख्यानाचार्यके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे  
स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति-  
बिभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे  
अरति और शोककी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।  
इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । अब इस अल्पबहुत्वकी सिद्धि करनेके  
लिये अल्पबहुत्वको बतलाते हैं, जो इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा है  
जिसकी सहनानी ३ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ६ है ।  
इससे हास्य रतिका बन्धकाल विशेष अधिक है जिसकी सहनानी ११ है । इससे नपुसकवेदका  
बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी २२ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल विशेष  
अधिक है जिसकी सहनानी २३ है । इस प्रकार ऊपर जो अंकसट्टि दी है उसके अनुसार अपने

सोहिय सत्तणोकसायज्जहण्णट्ठिदीयो उष्णपादेद्व्यामो । पुरिस० अहण्णट्ठिदी १६९ । इत्थि० अह०ट्ठिदी १७५ । इस्स-रदिज्जहण्णट्ठिदी १७७ । णवुंस० अह० ट्ठिदी १८८ । अरदि सोग अहण्णट्ठिदी १८६ ।

१८९४ एत्व दोसु पि वक्खत्ताणेषु एककेणैव सप्पेण होदन्नं, ण दोणं, पिरो हादो । किंतु मय-दुग्गु क्षाणसुवरि कसायाणं अह० हिदिविसेसाहिया चि अं मणिदं तण्ण घबदे ; णेरइयविदियसमए जादकसायट्ठिदिं मयदुग्गु क्षासु संकामिय संकामणा वल्लियमेत्तट्ठिदीण गाळणोवापामावादो । इदो ? गरिदसरीरणेरइयसस पढमसमए कसा एहि सह मय-दुग्गु क्षाणमंतोकोदाकोदिमेत्तट्ठिदिषुषुषलंभादा । णेरइयविदियसमयादो इहा ण मयदुग्गु क्षाणं अहण्णट्ठिदी होदि एत्थ मय-दुग्गुक्षहि पडिक्खिज्जमाणकसाप अहण्णट्ठिदीए अमावादो । त पि इदो णम्भवे ? णेरइयविदियसमए चेव अहण्ण सामिचदाणादो । तम्हा धारसकसायदुग्गुक्षार्णं अहण्णट्ठिदीयो सरिसामो चि अमुधारणाए मधिदं तं चेव पेत्तव्व पिरवज्जवादो । अह पुण असण्णिपरिमसमए कसायज्जहण्ण ट्ठिदीदो मयदुग्गुक्ष-अहण्णट्ठिदिविहृत्पीए भावलिपुण्णं सम्मइ तो कसायाणं विसेहियणं पबद । णवरि एदं ज्ञाणिय वत्तन्नं । उष्णारणाहिणामा पुण तहा ण सम्मइ चि ।

अपने प्रतिपक्ष व्याख्यातोंका कपायकी अपम्य स्थिति ० ० मेंसे पदानपर सात नोऽपार्योंकी अपम्य स्थितियां उत्पन्न करना चाहिये । उनमेंसे पुरुषवेदकी अपम्य स्थिति १६६ हाती है । स्त्रीवेद की अपम्य स्थिति १७२ होती है । हास्य और रतिकी अपम्य स्थिति १७० होती है । नपुंसकवेदकी अपम्य स्थिति १८८ होती है । अरति और शोककी अपम्य स्थिति १८८ होती है ।

१८९४ यहाँ इन दोनों व्याख्यातोंमेंसे कोई एक व्याख्यान ही सत्य होना चाहिये दोनों नहीं, क्योंकि दोनोंको सत्य माननेमें विरोध आता है । किन्तु मय और जुगुप्साके ऊपर कपायोंकी अपम्य स्थितिका जो विशेष अधिक कहा है वह नहीं पतता है क्योंकि नारकियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें प्राप्त हुई कपायकी स्थितिके मय और जुगुप्सामें संश्रमिठ कर देम पर संश्रमणा वक्तिप्रमाण स्थितियोंके गलानेका कोई उपाय नहीं पाया जाता है । इसका कारण यह है कि नारकीके शरीर प्रसूत करनेके पहले समयमें कपायोंके मय मय और जुगुप्साका अस्त काइकाई प्रमाण स्थितिबन्ध पाया जाता है । और नारकियोंके दूसरे समयसे नीच मय और जुगुप्सा प्रकृतियोंकी अपम्य स्थिति नहीं हाती है क्योंकि वहाँ मय और जुगुप्साकूपसे हीयनेवाली कपायों की अपम्य स्थिति नहीं पायी जाती है ।

धार्क्य—यह किस प्रमाणासे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि नारकियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही कपायोंका अपम्य स्थानित्व दिया है ।

अतः बाह्य कपाय और जुगुप्सा इनकी अपम्य स्थितियां समान हाती हैं एता जा उधारणमें कहा है वही महसूस करना चाहिये क्योंकि यह कथन निरर्थक है । और यदि अस्तित्वोंके अन्तिम समयमें रहम वाली कपायोंकी अपम्य स्थितिसे मय और जुगुप्साकी अपम्य स्थितिमें एक आचली अस्त कथ प्राप्त हाता है । ता कपायोंकी अपम्य स्थिति मय और जुगुप्साकी अपम्य स्थितिसे विशेष अधिक बत जाती है । किन्तु जानकर इसका कथन करना चाहिये । परन्तु उधारणाकायका



§ ८६५, एव पढमाए पुढवीए । विदियादि जाव छट् त्ति सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउक्काण जह० विहत्ती । वारसक०-णवणोकसायाणं ज० विह० असखेज्जगुणा । मिच्छत्तज० वि० विसेसा० ।

§ ८६६, सत्तमाए पुढवीए सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउक्काणं ज० द्विदिविहत्ती । पुरिस० ज० द्विदी असंखे०गुणा । इत्थि० ज० द्विदिविहत्ती विसेसा० । हस्स-रदिज० वि० विसेसा० । अरदि-सोग० ज० द्विदिवि० विसे० । णवुंस० ज० द्वि० वि० विसेसा० । भय-दुगुंछ० जह० द्विदिवि० विसे० । वारसक० ज० वि० विसेसा० । केत्तियमेत्तेण ? एगावलियामेत्तेण । कुदो ? कसायाणं जहण्ण द्विदीए जादाए पुणो आवलियमेत्तमद्धानमुत्तरि गंतूण भय-दुगुंछाणं जहण्णद्विदिसमु-प्पत्तीदो । कसायाणमेत्थ जहण्णद्विदिसंतसमवधस्स अतोमुहुत्तमेत्तकालसंभवादो । जहण्ण-द्विदिसंतादो कसायद्विदिबंधे अहिए जादे वि भयदुगुंछाणं सगजहण्णद्विदिसंतादो हेट्ठा वधसंभवादो । मिच्छत्तज० वि० विसे० । एत्थ अद्दप्पावहुअं णवणोकसायाणं जहण्ण-द्विदिउप्पायणविहाणं च पढमपुढविभंगो; भेदाभावादो चिरंतणाइरियवक्खाणं पि एत्थ

अभिप्राय वैसा नहीं है ।

§ ८६५ इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८६६ सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? एक आवली अधिक है ।

**शंका**—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति एक आवलि अधिक क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि कषायोंकी जघन्य स्थिति हो जानेपर तदनन्तर एक आवलिप्रमाण काल आगे जाकर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति उत्पन्न होती है । इसका कारण यह है कि यहा पर अन्तर्मुहूर्त कालतक कषायोंकी सत्तामें स्थित जघन्य स्थितिके समान कषायोंका बन्ध संभव है । और जघन्य स्थिति सत्त्वसे कषायका स्थितिबन्ध अधिक होनेपर भी भय और जुगुप्साका अपने जघन्य स्थितिसत्त्वसे नीचे बन्ध संभव है । बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । यहा पर काल सम्बन्धी अल्पबहुत्वको और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके उत्पन्न करनेकी विधिको पहली पृथिवीके समान जानना चाहिये,

मप्यपो पदमपुहविहस्वाणसमाणं ।

§ ८६७ तिरिक्त्वर्गए सम्प्रत्योषा सम्प्रच० अह० द्विदिविहती । ऋषिया द्विदि  
विहती ऋषिया च न सम्मायि० । अणंताणु० चठक्क० ऋ० द्विदि० ऋषिया चैत्र ।  
अ० द्विदिविह० संस्ते० गुणा णित्तेगसमयगाहणादो । पुरिस० अ० द्विदिधि० असंस्तेज्ज  
गुणा । इत्थिअह० द्विदिधि० पिमे० । इत्सरदि० अ० निह० विमेसा० । अरदि  
सोगअ० पि० विसे० । णवु स० अ० द्विदिधि० विमे० । मय-दुगु अ० अ० वि० विसे० ।  
वारसक० अह० विहती विसेसा० । कारणमेत्थ नहा सत्तमपुहवीए उच्च तथा वचस्मं ।  
पिच्छत्तमह० द्विदिधि० विसे० । एत्थ उच्चारणाइरियस्त सत्तणोकसायवंपगदाओ  
पुष्पं व वचस्वाओ; अदुगदीसु वासि विसेसामावादो । वक्त्वाणाइरियाणमेत्थ सत्तणो  
कसायदप्यावहृषमुच्चारणदप्यावहृषण सरिसत्तेण तिरिक्त्वर्गए णरिय दोषमप्याव  
हुमाणं मेदो । एवं पंचिदियतिरिक्त्व-यंचि० तिरि० पउत्रचाणं । णवरि णवुंस० अहण्ण  
द्विदीए चवरि मय-दुगु अावहण्णद्विदी संस्ते० गुणा । कुदो ? णवु सयवदजहण्णद्विदी  
णाम सागरोवमचचारि सत्तभागा पस्सिदो० असत्ते० भागण पद्वियवत्तुवंपगदाए च उणा;  
पंचिदियसु सप्यज्जिय वंचामावण पंचिदियद्विदिसत्तम्वेव तत्त्यंतोमुहुचकालुवत्तमादो । मय

क्योंकि इससे इसमें कोई भेद नहीं है । चिरन्तनाचार्यका व्याख्यान भी यहाँ अपने पहली प्रविषीके  
व्याख्यानके समान है ।

§ ८८० तिर्यैचगतिमें सम्प्रत्यकी अपत्य स्थितिबिभक्ति सबसे योकी है । सम्प्रत्यकी  
क्रिती स्विबिभक्ति है इतनी ही सम्प्रतिप्यात्वकी और इतनी ही अनन्तानुवपी अनुष्की  
अपत्य स्थिति है । पर यह स्थिति बिभक्ति संख्यातगुणी है, क्योंकि इसमें निपद्योके समयोका प्रत्य  
किया है । इससे पुरुषवेदकी अपत्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवदकी अपत्य  
स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और उक्तिकी अपत्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक  
है । इससे अरति और शोककी अपत्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवदकी  
अपत्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे मय और अनुप्रासकी अपत्य स्थितिबिभक्ति विशेष  
अधिक है । इससे वाच्य कथायोंकी अपत्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इसका कारण जिस  
प्रकार सातवीं प्रविषीमें यह वाच्य हैं उस प्रकार यहाँ कदा वाच्ये । वाच्य कथायोंकी अपत्य  
स्थितिके निष्पत्त्याकी अपत्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । यहाँ उच्चारणाचार्यके द्वारा यह  
गये सात नोकथायोंके व्याख्यातोंका पहलेके समान व्याख्यान करना चाहिये, क्योंकि यहाँ  
गतिबोमें इनके अन्तमें कोई विशेषता नहीं है । परन्तु यहाँ तिर्यैचगतिमें व्याख्यानमाचार्यके द्वारा  
यहाँ गये सात नोकथायों सम्प्रती अपत्यवद्वय उच्चारणाचार्यके अस्वरवृत्तके समान है अतः  
तिर्यैचगतिमें यहाँ अपत्यवृत्तोंमें कोई भेद नहीं है । इसी प्रकार पंचमिन्द्रिय नियम और पंचमिन्द्रिय  
तिर्यैच पर्याप्तकोके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवदकी अपत्य स्थिति  
ऊपर मय और अनुप्रासकी अपत्य स्थिति संख्यातगुणी है, क्योंकि पंचमिन्द्रिय तिर्यैच और पंचमिन्द्रिय  
तिर्यैच पर्याप्तकोमें नपुंसकवदकी अपत्य स्थिति एक भागके सात भागमेंसे पचासवम  
असंख्यातवा भाग और प्रतिपद्य महत्तिके अर्थकात्से कम बार भागममाल्य हाती है क्योंकि यह  
एक पंचमिन्द्रिय पंचमिन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वसन नपुंसकवद्वय अप्य नहीं किया तो इसके

§ ८६५. एव पढमाए पुढवीए । विदियादि जाव छट्ति सञ्चत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउकाण जह० विहृत्ती । वारसक०-णवणोकसायाणं ज० विहृ० असखेज्जगुणा । मिच्छत्तज० वि० विसेसा० ।

§ ८६६. सत्तमाए पुढवीए सञ्चत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउकाणं ज० द्विदिविहृत्ती । पुरिस० ज० द्विदी असखे०गुणा । इत्थि० ज० द्विदिविहृत्ती विसेसा० । हस्स-रदिज० वि० विसेसा० । अरदि-सोग० ज० द्विदिवि० विसे० । णवुंस० ज० द्वि० वि० विसेसा० । भय-दुगुंछ० जह० द्विदिवि० विसे० । वारसक० ज० वि० विसेसा० । केत्तियमेत्तेण ? एगावलियामेत्तेण । कुदो ? कसायाणं जहण्ण द्विदीए जादाए पुणो आवलियमेत्तमद्धानमुवरि गंतूण भय-दुगुंछाणं जहण्णद्विदिसमु-प्पत्तीदो । कसायाणमेत्थ जहण्णद्विदिमंतसमवधस्स अतोमुहुत्तमेत्तकालसभवादो । जहण्ण-द्विदिसंतादो कसायद्विदिवंधे अहिए जादे वि भयदुगुंछाणं सगजहण्णद्विदिसंतादो हेट्ठा वधसभवादो । मिच्छत्तज० वि० विसे० । एत्थ अद्दप्पावहूअं णवणोकसायाणं जहण्ण-विदिउप्पायणविहाणं चं पढमपुढविभंगो; भेदाभावादो चिरंतणाइरियवक्खाणं पि एत्थ अभिप्राय वैसा नहीं है ।

§ ८६५ इसी प्रकार पहली पृथिवीमे जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें सम्यक्त्त, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८६६. सातवीं पृथिवीमे सम्यक्त्त, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? एक आवली अधिक है ।

**शुका**—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति एक आवलि अधिक क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि कपायोंकी जघन्य स्थिति हो जानेपर तदनन्तर एक आवलिप्रमाण काल आगे जाकर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थित उत्पन्न होती है । इसका कारण यह है कि यहा पर अन्तर्मुहूर्त कालतक कपायोंकी सत्तामें स्थित जघन्य स्थितिके समान कपायोंका बन्ध संभव है । और जघन्य स्थिति सत्त्वसे कपायका स्थितिबन्ध अधिक होनेपर भी भय और जुगुप्साका अपने जघन्य स्थितिसत्त्वसे नीचे बन्ध संभव है । वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । यहां पर काल सम्बन्धी अल्पबहुत्वको और नौ नाकपायोंकी जघन्य स्थितिके उत्पन्न करनेकी विधिको पहली पृथिवीके समान जानना चाहिये,

बप्यो पदमपुहविब्रक्त्वाअसमाण ।

१८६७ तिरिकत्त्वगईए सम्बन्धोना सम्मच०अह० द्विदिविहरी । त्रिपिया द्विदि  
 विहरी त्रिपिया चेव सम्मामि० । अर्णताणु०पउक्क० ज० द्विदि० त्रिपिया चेव ।  
 ३०द्विदिविह० संखे०गुणा णिसेगसमयगहणादो । पुरिस० न० द्विदिवि० असंखेअ  
 गुण । इरियअह० द्विदिवि० विसे० । इस्सरदि० ज० निह० विसेसा० । अरदि  
 सोयअ० वि० विसे० । अयु स० अ द्विदिविह० विसे० । मय-दुगु अ० अ०वि० विसे० ।  
 अरसक० अह० निहरी विसेसा० । कारणमेरय जहा सचमपुहवीए उचं तथा बत्तम् ।  
 भिच्छचअह० द्विदिवि० विस० । पत्थ उच्चारणाइरियस्स सचणोकसायबंधगदाओ  
 दुम् व बत्तम्माओ; चदुगदीसु तासिं विसेसाभावादो । बक्त्वाणाइरियाणमेत्व सचणो  
 कसायदप्पाबहुअमुच्चारणदप्पाबहुएण सरिसतेण तिरिकत्त्वगईए जरिय दोअमप्याब  
 ह्मार्ण भेदो । एवं पंचिंदियतिरिक्त्वा-पंचिं० तिरि०पउक्कचार्णं । जवरि जणुंस० अहणा  
 द्विरीए अवरि मय-दुगु अाअहम्पद्विदी संखे०गुणा । कुदो ? णवु सयवेदअहम्पद्विदी  
 णम सागरोधमचचारि सचमागा पस्सिदो० असत्ते०मागण पटिक्त्वाबंधगदाए च उणा;  
 पंचिदिपसु सप्पजिय बचाभाषेण एइदियद्विदिसंतस्सेव तत्त्यंतोमुहुक्काशुवर्षमादो । भय

क्योंकि इससे इसमें कोई भेद नहीं है । चिरन्तनाचार्यका व्याख्यान भी वहां अपन पढ़ी प्रथिपीके  
 व्याख्यानके समान है ।

१८६८ तिर्यैचगतिमें सम्यक्त्वकी अपम्य स्थितिभिन्नति सबसे बड़ी है । सम्बन्धकी  
 द्विती स्थितिभिन्नति है तृती ही सम्मामिप्यात्वकी और छत्ती ही अनन्तालुक्त्वाी चतुष्पत्ती  
 अपम्य स्थिति है । पर यह स्थिति विभक्ति संख्यातगुणी है, क्योंकि इसमें विभक्तिके समर्थका प्रथम  
 क्रिया है । इससे पुरुषेवकी अपम्य स्थितिभिन्नति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवैरकी अपम्य  
 स्थितिभिन्नति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी अपम्य स्थितिभिन्नति विशेष अधिक  
 है । इससे अरति और शोककी अपम्य स्थितिभिन्नति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवैरकी  
 अपम्य स्थितिभिन्नति विशेष अधिक है । इससे मय और छुगप्ताकी अपम्य स्थितिभिन्नति विशेष  
 अधिक है । इससे वारह कर्पायोंकी अपम्य स्थितिभिन्नति विशेष अधिक है । इसका अर्थ है जिस  
 प्रकार सातवीं प्रथिपीमें यह आय है उस प्रकार वहां करना चाहिये । वारह कर्पायोंकी अपम्य  
 स्थितिसे मिथ्यात्वकी अपम्य स्थितिभिन्नति विशेष अधिक है । वहां उच्चारणाचार्यके द्वारा यह  
 गये सात नोकपायोंके अन्वयशक्त परस्के समान व्याख्यान करना चाहिये, क्योंकि वारों  
 गतिवर्गमें इनके अन्वयमें कोई विशेषता नहीं है । परन्तु वहां तिर्यैचगतिमें व्याख्यानाचार्यके द्वारा  
 कहा गया सात नोकपायों सम्बन्धी अस्पष्टत्व उच्चारणाचार्यके समान है, अतः  
 तिर्यैचगतिमें दोनों अस्पष्टत्वोंमें कोई भेद नहीं है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यैच और पंचेन्द्रिय  
 तिर्यैच पर्यायके वानना चाहिये । किन्तु तृती विधेयता है कि नपुंसकवैरकी अपम्य स्थितिसे  
 अमर धर और छुगप्ताकी अपम्य स्थिति संख्यातगुणी है, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यैच और पंचेन्द्रिय  
 तिर्यैच पर्यायके नपुंसकवैरकी अपम्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे बसतामय  
 एक पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रियोंमें जलन हुआ और इसमें नपुंसकवैरका अन्वय नहीं किया तो इनके

दुग्ंघ्राण पुण सागरोवमसहस्सस्स वे सत्तभागा पल्लिदोवमस्स भंखे० भागेणूणा, भयदुग्ंघ्राण ध्रुववधित्तणेण पंचिंदिएसुप्पण्णपढमसमए वि वंयसंभंजादो । तेण एणुंसं० जहण्णद्विदीदो भयदुग्ंघ्राणजहण्णद्विदी सखेज्जगुणा त्ति सिद्धं । वारसक० जहण्णद्विदी सखे०गुणा । कुदो ? पल्लिदो० सखे०भागेणूणं सागरोवमसहस्सचत्तारिमत्तभागत्तादो । मिच्छत्त-जहण्णद्विदी विसे० ; पल्लिदो० सखे०भागेणूणसागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्त भागत्तादो । जोण्णणीसु एवं चेव, णवरिं सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० द्विदिविहत्ती ।

८६८ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त०-सम्मामि० ज० द्विदिवि० । पुरिस० ज० द्विदिवि० असंखे०गुणा । सेस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्काण वारसक०भंगो । एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज०-तस-अपज्जत्ताणं ।

§ ८६९. एहंठिय-वादरेडंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहमेडंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं तिरि-क्खोघभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्वं, अणंताणु०चउक्क च वारस-

अन्तर्मुहूर्त कालतक एकेन्द्रियोंका स्थितिसत्त्व ही पाया जाता है । परन्तु भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमका संख्यातवा भाग कम दो भागप्रमाण पाई जाती है, क्योंकि भय और जुगुप्सा ध्रुववन्धिनी प्रकृतिया होनेसे पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें भी उनका बन्ध सभव है, इसलिये नपु सकवेदकी जघन्य स्थितिसे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति सरयातगुणी होती है यह सिद्ध हुआ । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति संख्यातवै भाग कम चार भागप्रमाण है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विशेष अधिक है, क्योंकि इसका प्रमाण हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमका संख्यातवा भाग कम सात भागप्रमाण है । पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८६८ पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है । शेष प्रवृत्तियोंका भंग पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग वारह कपायोंके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८६९. एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके साथ करना चाहिये ।

१ आ प्रती '—भागेणूणा' इति पाठ । २ आ ता प्रत्यो 'द्विदिवि० सखे०गुणा । पुरिस०' इति पाठ ।

कसाएई सह माणिद्वं । सम्बविगलिदियाणं पंचिदियभपञ्जतभंगो ।

§ ६०० कायाणुवादेण सन्नपुडवि०-सम्बग्राठ०-सम्बतेउ०-सम्बनाठ०-सम्बत्रण  
फदि०-सम्बणिगोद०-बादरबणफदिपचेय०-पञ्जचापञ्जत्ताणं एइदियभंगो । बे  
अण्णाण० अमव०-मिच्छादि० असण्णीणं च एइ दियभंगो । एअरि अमभेसु सम्मत्त  
सम्मामि० एत्थि ।

§ ९०१ देवगईय देवाखं गारगभंगो । एभं भवण०-वाणपेंतर० । एअरि सम्भत्तं  
सम्मामिच्छेणेण सह माणिद्वं । जोइसियेसु सन्नत्योवा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त०  
अणंताणु० चठकाणं न० विहरी । पारसक० एण्णोक० झ० विह० असंखे०गुणा ।  
न० द्विदि० संखे०गुणा । मिच्छत्त० झ० विहरी विसेसा० ।

§ ६०२ सोइम्मादि जाव गत्रगत्रजाचि सम्बत्थोवा सम्मत्तन० विहरी ।  
सम्मामि० अणंताणु० चठकक० न० विहरी सचिया चेव । न० द्विदी० संखेअगुणा ।  
वारसक०-गत्रणोक० नइण्णविहरी असंखे०गुणा; कान्पहाणपानखंखणादो । णिमेय  
पहाणणे पुण पारसक० अट्टणोकसायाणमुपरि पुरिमबेदन० द्विदिवि० विसे० । एसो  
अरयो अणत्थे वि इत्थो । मिच्छत्तन० विह० संखे०गुणा । अपुरिसादि नाव  
सम्बइसिदि चि सम्बरयोवा सम्मत्तन० विहरी । अणता० चउकक० न० द्विदिविहरी

और अनन्तलुबन्धी बनुपकका बचन बाए कयायके साथ करना चाहिये । सब विकल्पियोंका  
भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तके समान है ।

§ ६०० अयमार्माणके अनुवापसे सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक,  
सब वायुकायिक, सब मनस्वतिकायिक सब निगोद बाए अनन्तलुबन्धीका प्रायेःक्षरीर और  
इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त स्थितियोंके पंचेन्द्रियोंके समान भंग है । मत्पक्षान्ती अन्ताज्ञाना, अभस्य  
मिच्छादि और अमभियेके पंचेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी शरयता है कि अभस्योमें  
सम्पत्त्व और सम्मगिमिच्छात्त्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं ।

§ ६१ देवगतिये देवोंका भंग मारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनबाही और  
अन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी शरयता है कि इनमें सम्पत्त्वका सम्मगिमिच्छात्त्व  
साथ अस्वरबहुत्व करना चाहिये । अस्वत्तियेमें सम्पत्त्व सम्मगिमिच्छात्त्व और अनन्तलुबन्धी  
बनुपककी अपन्य स्थितिबिभक्ति सबसे बाही है इससे बाए कयाय भी मोक्षार्थोंकी अपन्य  
स्थितिबिभक्ति असंख्यगतगुणी है । इससे यस्तिस्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मिच्छात्त्वकी  
अपन्य स्थितिबिभक्ति बिना अधिक है ।

§ ६०२ शोधम स्वर्गसे ककर नो मीत्रेयक तउके देवोंमें सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिबिभक्ति  
सबसे बाही है । सम्मगिमिच्छात्त्व और अनन्तलुबन्धी बनुपककी अपन्य स्थितिबिभक्ति इतनी ही  
है । पर यस्तिस्थिति संख्यातगुणी है । इससे बाए कयाय और भी मारकियोंकी अपन्य स्थिति  
बिभक्ति अस्वरगतगुणी है क्योंकि यहाँ पर कामकी प्रधानता स्वीकार की गई है । मित्रोंकी  
प्रधानता रहनेपर ता बाए कयाय और आठ मारकियोंके ऊपर पुरयवकका अपन्य स्थितिबिभक्ति  
बिना अधिक है । यह अर्ये अय्यत्र भी करना चाहिये । इनमें मिच्छात्त्वकी अपन्य स्थितिबिभक्ति  
संख्यातगुणी है । अनुदिरउसे लेकर सत्त्वसिद्धि तक देवोंमें सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिबिभक्ति

तत्तिया चेव । ज०ट्टि०वि संखे०गुणा । वारसक० एवणोको० जह० विहत्ती असंखे० गुणा । मिच्छत्त-सम्मामि० ज० ट्टिदि वि० संखे०गुणा ।

§ ६०३. ओरालियमिस्स०तिरिक्खोघभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्क० वारस-कसायभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स० । णवरि णवुंसयवेदस्सुवरि वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० संखे०गुणा । मिच्छ० सखे०गुणा । अणंताणु० चउक्क० संखे०गुणा । वेउव्वियकाय० सोहम्मभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्व । कम्मइय० सव्वत्थोवा सम्मत्त० ज० ट्टिदिवि० । सम्मामि० ज० वि० संखे०गुणा । पुरिस० ज० ट्टिदिवि० असंखे०गुणा । इत्थिज० वि० विसे० । हस्स-रदि० ज० पि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि० विसे० । णवुंस० ज० वि० विसे० । भय-दुगुंछ० ज० वि० विसे० । सोलसक० ज० वि० विसे० । मिच्छ० ज० वि० विसेमाहिया । एवमणा-हारीण । आहार० आहारमिस्स० सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोको० ज० ट्टिदिवि० । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ज० ट्टिदिवि० सखेज्जगुणा । अणंताणु०चउक्क० ज० ट्टि० वि० संखे०गुणा ।

§ ९०४. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि० जह० ट्टि० विहत्ती ।

सवसे थोड़ी है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति उतनी ही है । पर यत्स्थिति विभक्ति सख्यातगुणी है । इससे वारह कषाय और नौ नोकरायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है ।

§ ६०३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंका भग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग वारह कषायोंके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नपुसकवेदके ऊपर वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । वैक्रियिककाययोगियोंका भग सौधर्म कल्पके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वको सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कहना चाहिये । कर्मणुकाययोगियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोकका जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें वारह कषाय और नौ नोकरायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है ।

§ ६०४ वेद मार्गणके अनुवादसे स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति

मिच्छत्-सम्मामि०-वारसक० अ० द्वि० वि० संस्वे०गुणा । सप्तगो०-चतुसंज० अ० द्वि० वि० असंस्वे०गुणा । णवसयवेद० अ० द्वि० वि० असंस्वे०गुणा । एवं णवसं० । ष्वरि अम्बि इत्विवेदो सम्पचेम सह पुषो तम्बि णव सयवेदो षचम्बो । नम्बि णवु सयवेदो तम्बि इत्विवेदो षचम्बो । पुरिसवेदे सञ्चत्योवा सम्पत्० अ० निहरी । मिच्छत्-सम्मामि०-वारसक० अ० द्वि० वि० निहरी संस्वे०गुणा । पुरिसवेदम० असंस्वे० गुणा । चतुसंज० अ० सत्वे०गुणा । छम्बो० अ० सत्त्वंगुणा । इत्विवेदम० विहरी असंस्वे०गुणा । णवसं० अ० वि० असंस्वे०गुणा । अथगदवेदे सञ्चत्योवा कोमसमक्षणज० द्वि० वि० । मापासंज० अ० विहरी असंस्वे०गुणा । माणसंज० अ० सत्वे०गुणा । काचसंज० अ० वि० संस्वे०गुणा । पुरिस० अ० वि० संस्वे०गुणा । छम्बो० अ० वि० संस्वे०गुणा । अहकसा०-इत्वि०-णवसं० अ० वि० असंस्वे०गुणा । मिच्छत्-सम्मत्-सम्मामि० अ० वि० संस्वे०गुणा ।

१२५ कसायाणुभावेण कोषकसारसु सम्बरयोवा सम्पत्०-इत्वि०-णवसं० अ० द्वि० वि० । मिच्छत्-सम्मामि०-वारसक० अ० द्वि० वि० सत्वे०गुणा । चतुसंज० अ० द्वि० वि० असंस्वे०गुणा । पुरिस० अ० द्वि० वि० संस्वे०गुणा । छम्बो० अ०

सर्वसे बाड़ी है । इससे मिथ्यात्व सम्बन्धिप्यात्व और बाह्य कथायोंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे सात नाकपाय और चार सञ्जयनोंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । इससे नपुंसकवेदकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार नपुंसकवेद वाले जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु जहाँ पर सम्पत्त्वके साथ स्त्रीत्व कहा है वहाँ नपुंसकवेद कहना चाहिये और जहाँ नपुंसकत्व कहा है वहाँ स्त्रीवेद कहना चाहिये । पुरुषत्वमें सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिबिमर्षि सबसे धोड़ी है । इससे मिथ्यात्व सम्बन्धिप्यात्व और बाह्य कथायोंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदका अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । इससे चार सञ्जयनोंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे छह नोक्यायोंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे स्त्रावदका अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । इससे नपुंसकत्वका अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । भगवत्त्वमें साम्प्रत्यक्षनकी अपन्य स्थितिबिमर्षि सर्वसे बाड़ी है । इससे माया संवत्सनकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । इससे मानसवत्सनकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे काचसंजयनकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवदकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे छह नाकपायोंका अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे आठ कथाय स्त्रीत्व और नपुंसकत्वकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणा है । इससे मिथ्यात्व, सम्पत्त्व और सम्बन्धिप्यात्वकी अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणा है ।

१२६ कथाय माभाषाक अनुवादसे काच कथायब्रह्मे जीवोंमें सम्पत्त्व, स्त्रीत्व और नपुंसकत्वकी अपन्य स्थितिबिमर्षि सर्वसे बाड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्बन्धिप्यात्व और बाह्य कथायोंका अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणा है । इससे चार सञ्जयनोंकी अपन्य स्थितिबिमर्षि असंख्यातगुणी है । इससे पुरुषवदका अपन्य स्थितिबिमर्षि संख्यातगुणी है । इससे छह



वि० संखे० गुणा । एवं माणकसाईसु, णवरि वारसक० ज० द्विदीदो तिणिसंज० ज० द्विदी असखे० गुणा । कोधसंज० ज० द्वि० संखे० गुणा । पुरिस० ज० द्विदी संखे० गुणा । छण्णोक० ज० द्वि० संखे० गुणा । एवं मायक०, णवरि वारसक० जह० द्विदीदो उवरि माया-लोभसंजलणाणं ज० द्विदीओ असंखे० गुणाओ । माणसंज० ज० संखे० गुणा । कोधसज० ज० वि० संखे० गुणा । पुरिसज० वि० संखे० गुणा । छण्णोक० ज० वि० संखे० गुणा ।

§ ६०६. अकसाईसु सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० ज० द्वि० विहत्ती । सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामि० ज० वि० सखे० गुणा । एवं जहावखाद० । सुहुमसांपरा० एवं चेव । णवरि सव्वत्थोवा लोभसंजल० ज० द्वि० विह० । एकारसक०-णवणोक० ज० द्वि० वि० असंखे० गुणा ।

§ ६०७. विहंगणाणीणं जोदिसियभंगो । णवरि अणंताणु० चउकस्स वारसक-सायभंगो । मणपज्ज० आभिणि० भंगो । णवरि छण्णोकसायाणमुवरि इत्थिवेद० जह० असंखे० गुणा । णवुंस० जह० असखे० गुणा । सामाइयछेदो० मायकसायभंगो । णवरि वारसकसायाणमुवरि लोभसंज० ज० वि० असखे० गुणा । माय० ज० वि०

नोरुपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इसी प्रकार मान कषायवाले जावोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे तीन रुज्वलनोंकी जघन्य स्थिति असख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति सख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इसी प्रकार मायारुपायवाले जावोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिसे ऊपर माया और लोभसज्वलनोंकी जघन्य स्थिति असख्यातगुणी है । इससे मानसज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे क्रोधसज्वलनका जघन्य स्थितिविभक्त सख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्त सख्यातगुणी है । इससे छह नाकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है ।

§ ६०६. कषाय रहित जावाम वारह कषाय और नौ नोरुपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जावोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म सापरायिकसंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है ।

§ ६०७. विभगज्ञानियोंके ज्योतिषियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग वारह कषायोंके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंके मतिज्ञानियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके छह नोकषायोंके ऊपर स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है । इससे नपुंसवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जावोंके मायाकषायवाले जीवोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कषायोंके ऊपर लोभसज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असख्यातगुणी है ।



णवणोक० ज० द्वि० वि० संखेज्जगुणा । मिच्छ० जह० विसे० । अणंताणु० चउक०  
ज० द्वि० वि० संखे० गुणा ।

एव द्विदिअप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ ९११. संपहि जीव अप्पावहुगाणुगम वत्तहस्सामो । सो दुविहो—जहण्णओ  
उकस्सओ चेदि । तत्थ उकस्सए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण छ्वीसं पयडीणं सव्वत्थोवा उकस्सद्विदिविहत्तिया जीवा । अणुक० द्विदि-  
विहत्तिया जीवा अणंतगणा । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा उक० द्विदि०  
जीवा । अणुक० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एवं तिरिक्ख०-एइदिय-वणप्फदि०-  
णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-  
णवुंसं०-चत्तारिक०-मदिसुदअण्णाण-असजद०-अचक्खुदस०-तिण्णिले०-भवसि०-  
अभव०-मिच्छादि०-असणी०-आहारि०-अणाहारि त्ति । णवरि अभव० सम्म०-सम्मा-  
मि० णत्थि ।

§ ९१२. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अट्ठावीस० उक० द्विदि० जीवा । अ-  
णुक० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एव सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख०-मणुस  
मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद त्ति सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-सव्व-  
चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स-इत्थि-पुरिस०-विहं-

और नौ नोकषायोंकी जग्न्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है ।

इस प्रकार स्थिति अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९११. अब जीव विषयक अल्पबहुत्वानुगमको बतलाते हैं । वह दो प्रकारका है—जघन्य  
और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-  
निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-  
वाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार तिर्यंचों, तथा एकेन्द्रिय, वनस्पति और निगोद  
जीव तथा इन तीनोंके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीव तथा काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी कार्मणकाययोगी, नपुसकवेदवाले, चारों कषायवाले,  
मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्या  
दृष्टि, असन्ना, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिया नहीं हैं ।

§ ९१२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले  
जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इसा प्रकार सब  
नारकी, सब पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर  
अपराजित तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पचेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक आदि चार कायवाले,

म०-आभिषि०-सुद०-ओहि०-संज्ञदासंज्ञद०-चक्रसु०-ओहिदस०-तिष्णिळे०-सम्मादि०  
 स्वयसम्मा०-बदयसम्मादि०-उचसम०-सासण०-सम्मापि०-सण्णि चि ।

§ ९१३ मणुसपञ्च०-मणुसिणोसु सन्वपयबीर्ण सन्वत्वोबा उफ० द्विदि० जीवा ।  
 अणुफ० द्विदि जीवा संखे० गुणा । एष सन्वदृ०-आहार० आहारमिस्त-अवगद०  
 अकसा०-मणपञ्च०-भाजी-संज्ञद०-सामाहय-अदो०-परिहार०-सुहुमसांप० महाकत्वाद०  
 संज्ञदे चि ।

एनमुफत्समो जीव अप्याबहुगापुमो समचो ।

§ ९१४ बहृष्णए पयदं । द्विदिही लिहेसो—ओपेण मादेसेण य । उरब ओपेण  
 सन्वत्वोबा सन्वपयबीर्णं च० द्विदि० जीवा । अण० उफत्समंगो । एषं सन्वपेरदय  
 सन्वर्पंचिदियतिरिक्त्त-सन्वमणुस-सन्वदेव-सन्वविगर्खिदिय-सन्वर्पंचिदिय-चचारि काय  
 सन्वतस-यंचमणु पंचवधि०-अयजोगि० ओरासि०-वेउच्चि०-वेउच्चियमिस्त० आहार०  
 माहार०मिस्त०-विष्णुवेद०-अवगद०-चचारिक० अकसा०-विहंग०-आभिषि० सुद०  
 ओहि०-मणपञ्च०-संज्ञद०-सामाहयअदो०-परिहार०-सुहुम०-महाकत्वाद०-संज्ञदासंज्ञद०  
 चक्रसु०-ओहिदस०-तिष्णिळे० भवसि०-सम्मादि०-स्वय०-वेदय०-उचसम०-सासण०

सब ब्रह्म, पांचों मनायोगी, पांचों बचनयोगी वैदिकिककाययोगी वैदिकियमिभ्रमययोगी,  
 स्त्रीवेदबाले, पुरुषवेदबाले विमंगझानी, मतिझानी जनझानी अचभिझानी संयतासंयत चक्र-  
 बर्हैनबाले अचभिचर्हैनबाले, पीतादि तीन वेदबाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि  
 लपकमसम्यग्दृष्टि, सामाहयसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिज्यादृष्टि और संधी बीर्णों बानना ।

§ ९१५ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियमों सब प्रकृतियोंकी उच्छ्रि स्थितिबिभक्तबाले जीव  
 उचसे बोधे हैं । इन्से अनुकूल स्थितिबिभक्तबाले जीव संवशातरुपे हैं । इसी प्रकार सर्ववै-  
 सिदिक देव आहारकअवयोगी, आहारकमिभ्रमययोगी अपगतवेदबाले, अकसापबाले मना  
 पर्येकझानी संयत सामाधिकसंयत, जेहोपस्थापनासंयत, परिहारबिभुदिसंयत, सुहमसांपराधिक-  
 संवत और पचाक्यातसंयत बीर्णों बानना चाहिए ।

इस प्रकार उच्छ्रि जीव अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९१४ अब जीव विषयक अणु अल्पबहुत्वक प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो  
 प्रकारका है—ओपनिर्देश और आवेदननिर्देश । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अणु  
 स्थितिबिभक्तके धारक जीव उचसे बोधे हैं । अणुअणु अंग उच्छ्रिके समान है । इसी प्रकार  
 सब नारकी, सब पंचेन्द्रिब तिर्ण सब मनुष्य, सब देव सब विकलेश्चिब सब पंचेन्द्रिब, धूमिबी  
 आदि बार द्वाबर अणु, सब ब्रह्म पांचों मनायोगी पांचों बचनयोगी अणुयोगी, ओहरिक-  
 अणुयोगी वैदिकिककाययोगी वैदिकियमिभ्रमययोगी आहारकअणुयोगी आहारकमिभ्रमय-  
 योगी, तीनों वेदबाले, अपगतवेदबाले ओपदि चारों क्यायबाले, अकसायी विमंगझानी मति  
 झानी जनझानी अचभिझानी मनापर्येकझानी संवत, सामाधिकसंयत, जेहोपस्थापनासंयत,  
 परिहारबिभुदिसंयत सुहमसांपराधिकसंयत, पचाक्यातसंयत संवतसंवत, चक्रबर्हैनबाले अचभि-  
 चर्हैनबाले, पीतादि तीन वेदबाले अणु, सम्यग्दृष्टि ज्ञानिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, लपकम-



